दशवें स्कन्ध का सारांश

इस दशवें स्कन्ध के प्रत्येक अध्याय का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है : प्रथम अध्याय में ६९ श्लोक हैं। इसमें भगवान् कृष्ण द्वारा अवतार लेने के बारे में जानने की महाराज परीक्षित की उत्सुकता तथा कंस द्वारा देवकी की आठवीं संतान से मारे जाने के भय से उसके छह पुत्रों के वध का वर्णन हुआ है। दूसरे अध्याय में ४२ श्लोक हैं। इसमें कंस को मारने के लिए भगवान् कृष्ण का देवकी के गर्भ में प्रवेश करने का उल्लेख हुआ है। जब भगवान् कृष्ण देवकी के गर्भ में थे तो ब्रह्मा आदि सारे देवताओं ने उनकी स्तुति की। तीसरे अध्याय में ५३ श्लोक हैं। इसमें भगवान् के यथारूप आविर्भाव का वर्णन हुआ है। भगवान् के माता-पिता ने यह जानकर कि भगवान् प्रकट हो रहे हैं उनकी स्तुति की। कंस के भय से भगवान् के पिता इस शिशु को मथुरा से गोकुल वृन्दावन ले गये। चौथे अध्याय में ४६ श्लोक हैं जिसमें देवी चण्डिका की भविष्यवाणी दी गई है। अपने असुर मित्रों से परामर्श करके कंस उस समय उत्पन्न सारे बच्चों को मारने लगा क्योंकि उसने सोचा कि इससे उसे लाभ हो सकता है।

पाँचवें अध्याय में ३२ श्लोक हैं। इसमें नन्द महाराज द्वारा कृष्ण के जन्मोत्सव मनाने तथा उनके मथुरा जाने का वर्णन हुआ है जहाँ वसुदेव से उनकी भेंट हुई। छठे अध्याय में ४४ श्लोक हैं। इसमें नन्द महाराज अपने मित्र वसुदेव की सलाह मानकर गोकुल लौट आते हैं। रास्ते में वे पूतना के मृत शरीर को देखते हैं और यह जानकर आश्चर्यचकित होते हैं कि इसका वध कृष्ण ने किया है। सातवें अध्याय में ३७ श्लोक हैं। इसमें महाराज परीक्षित द्वारा भगवान् कृष्ण की बाल लीलाओं के विषय में सुनने की उत्कण्ठा का वर्णन है। इसमें कृष्ण द्वारा शकटासुर तथा तृणासुर का वध और अपने मुख के भीतर सम्पूर्ण विश्व दिखलाने का उल्लेख है। आठवें अध्याय में ५२ श्लोक हैं। इसमें गर्गमुनि द्वारा कृष्ण तथा बलराम के नामकरण संस्कार का तथा उनकी बालक्रीड़ाओं का वर्णन हुआ है कि वे किस तरह जमीन पर घुटनों के बल चलते, अपने छोटे-छोटे पाँवों से चलने का प्रयास करते, मक्खन चुराते तथा बर्तन-भांडे तोड़ते थे। इस अध्याय में विश्वरूप की झाँकी का भी वर्णन है।

नवें अध्याय में २३ श्लोक हैं। इसमें कृष्ण द्वारा मक्खन के लिए दही मथती अपनी माता को तंग करने का वर्णन हुआ है। कृष्ण की माता आग पर उबलते दूध को देखने के लिए कृष्ण को छोड़ कर चली गई थी और उन्हें अपना दूध नहीं पिला रही थीं। इससे कृष्ण बहुत क्रुद्ध थे और उन्होंने दही की

मटकी तोड़ डाली। उद्दण्ड बालक को दण्ड देने के लिए माता यशोदा ने रस्सी से उन्हें बाँधना चाहा, किन्तु गाँठ देते समय रस्सी छोटी पड़ जाने से वे उन्हें बाँध न पाईं। दशवें अध्याय में ४३ श्लोक हैं। इसमें वर्णन हुआ है कि दामोदर कृष्ण ने किस तरह जुड़वाँ यमलार्जुन वृक्षों को गिराया और किस तरह वृक्षों के भीतर के दोनों देवताओं का उद्धार कृष्ण की कृपा से हुआ। ग्यारहवें अध्याय में ५९ श्लोक हैं। इस अध्याय में बतलाया गया है कि किस तरह नन्द महाराज ने कृष्ण की रस्सियाँ खोलीं, किस तरह कृष्ण ने फल बेचने वाले को फल के बदले अनाज लेते समय कृपा की और किस तरह नन्द महाराज तथा अन्य ग्वालों ने गोकुल छोड़कर वृन्दावन जाने का निश्चय किया जहाँ कृष्ण ने वत्सासुर तथा बकासुर का वध किया।

बारहवें अध्याय में ४४ श्लोक हैं। इसमें जंगल में ग्वालबालों के साथ कृष्ण की लीलाओं का तथा अघासुर-वध का वर्णन हुआ है। तेरहवें अध्याय में ६४ श्लोक हैं जिनमें बतलाया गया है कि ब्रह्मा ने किस तरह कृष्ण के बछड़ों को तथा उनके ग्वाल-मित्रों को चुरा लिया। कृष्ण ने एक वर्ष तक अपनी लीलाओं का विस्तार किया और अपने को बछड़ों तथा बालकों के सही रूपों में प्रकट किए रखा। इस तरह ब्रह्मा चकरा गये और अन्त में जब उन्होंने कृष्ण की शरण ग्रहण की तो यह मोह समाप्त हुआ। चौदहवें अध्याय में ६१ श्लोक हैं। इस अध्याय में यह अच्छी तरह जान लेने पर कि कृष्ण भगवान् हैं, ब्रह्मा उनकी स्तुति करते हैं। पन्द्रहवें अध्याय में ५२ श्लोक हैं। इस अध्याय में बलराम के साथ कृष्ण का तालवन में प्रवेश, बलराम द्वारा धेनुकासुर का वध तथा कालिय के विष से ग्वालों तथा गौवों की कृष्ण द्वारा रक्षा किये जाने का वर्णन मिलता है।

सोलहवें अध्याय में ६७ श्लोक हैं। इसमें कृष्ण द्वारा कालिय को दण्ड दिये जाने तथा कालिय की पत्नियों द्वारा कृष्ण की स्तुति किये जाने का वर्णन हुआ है। सत्रहवें अध्याय में २५ श्लोक हैं। इस अध्याय में बतलाया गया है कि कालिय ने नागालय नामक द्वीप के अपने वासस्थान को (जो फिजी द्वीपसमूह है) त्यागकर यमुना नदी में क्यों प्रवेश किया, किस तरह गरुड़ को सौभरि ऋषि ने शाप दिया, किस तरह कृष्ण के मित्र ग्वालबालों को यमुना से कृष्ण के प्रकट होने पर जीवनदान मिला और किस तरह कृष्ण ने व्रज के सो रहे वासियों की दावानल रोक कर रक्षा की।

अठारहवें अध्याय में ३२ श्लोक हैं जिनमें कृष्ण तथा बलराम का वन-भ्रमण, वृन्दावन में ग्रीष्म

तथा वसन्तऋतु का वर्णन तथा बलराम द्वारा प्रलम्बासुर के वध किये जाने का वर्णन मिलता है। उन्नीसवें अध्याय में १६ श्लोक हैं जिनमें कृष्ण द्वारा मुञ्जारण्य नामक वन में प्रवेश, ग्वालों तथा गौवों को दावानल से बचाने और उन्हें भाण्डीरवन लाने का वर्णन मिलता है। अध्याय बीस में ४९ श्लोक हैं। इसमें वर्षाऋतु में ग्वालबालों के साथ बलराम तथा कृष्ण द्वारा जंगल में आनन्द मनाने का वर्णन है। इसमें वर्षाऋतु तथा शरद की उपमाओं के माध्यम से अनेक उपदेश दिये गये हैं।

इक्कीसवें अध्याय में २० श्लोक हैं जिसमें कृष्ण द्वारा शरत् ऋतु में वृन्दावन के जंगलों में जाकर बाँसुरी बजाने तथा उनका गुणगान करने वाली गोपियों को आकृष्ट करने का वर्णन है। बाइसवें अध्याय में ३८ श्लोक हैं। इनमें बतलाया गया है कि किस तरह गोपियों ने कृष्ण को पति रूप में पाने के लिए देवी कात्यायनी से प्रार्थना की और बाद में किस तरह कृष्ण ने यमुना में स्नान करती गोपियों का चीर हरण किया। तेइसवें अध्याय में ५२ श्लोक हैं जिनमें भूखे ग्वालबालों द्वारा कृष्ण के आदेशानुसार यज्ञ कर रहे ब्राह्मणों के पास जाकर उनके लिए तथा अपने लिए भोजन माँगने का वर्णन है। उन ब्राह्मणों ने ग्वालबालों द्वारा माँगे जाने पर भी कृष्ण तथा बलराम के लिए भोजन नहीं दिया, किन्तु उनकी पत्नियाँ भोजन देने के लिए तैयार हो गईं अतएव कृष्ण ने उन्हें अपनी कृपा प्रदान की।

चौबीसवें अध्याय में ३८ श्लोक हैं। इसमें वर्णन हुआ है कि किस तरह कृष्ण ने इन्द्र–यज्ञ रोककर उसके स्थान पर गोवर्धन पूजा करके राजा इन्द्र के प्रतिष्ठापूर्ण पद के बावजूद उनका तिरस्कार किया। पच्चीसवें अध्याय में ३३ श्लोक हैं। इसमें बतलाया गया है कि *इन्द्र–यज्ञ* बन्द किये जाने से इन्द्र अत्यन्त कुपित हुआ और वृन्दावन और व्रज के वासियों को मार डालने के लिए उसने सारे क्षेत्र को वर्षा–जल से आप्लावित कर दिया। किन्तु कृष्ण ने राजा इन्द्र की चुनौती स्वीकार की और वृन्दावन तथा समस्त गौवों की रक्षा करने के लिए गोवर्धन पर्वत को छाते की तरह उठा लिया। छब्बीसवें अध्याय में २५ श्लोक हैं जिनमें कृष्ण के असाधारण कृत्यों को देखकर नन्द के आश्चर्य तथा उनके द्वारा ग्वालों से कृष्ण के ऐश्वर्य की गर्गमुनि द्वारा पूर्वकथित सारी कथा सुनाये जाने का वर्णन हुआ है। सत्ताइसवें अध्याय में २८ श्लोक हैं। इसमें कृष्ण की असीम शक्ति को देखकर राजा इन्द्र द्वारा उनकी पूजा किये जाने का वर्णन हुआ है जिनका इन्द्र ने सुरभि के दूध से प्रक्षालन किया और वे तब से गोविन्द कहलाये। अट्ठाइसवें अध्याय में १७ श्लोक हैं। इसमें कृष्ण द्वारा अपने पिता महाराज नन्द को

वरुण से छुड़ाकर लाये जाने तथा ग्वालबालों को वैकुण्ठलोक का दर्शन कराने का वर्णन हुआ है।

उन्तीसवें अध्याय में ४८ श्लोक हैं जिसमें रासलीला शुरू करने के पूर्व गोपियों से कृष्ण की वार्ता तथा रासलीला प्रारम्भ होने पर उस स्थान से कृष्ण के अदृश्य होने का वर्णन हुआ है। तीसवें अध्याय में ४४ श्लोक हैं। इसमें बतलाया गया है कि किस तरह गोपियाँ कृष्ण से विलग होने से पागल होकर उन्हें ढूँढने के लिए जंगल में घूमती रहीं। गोपियों की भेंट वृषभानुजा श्रीमती राधारानी से हुई और वे सब मिलकर यमुना तट पर कृष्ण को ढूँढ़ती रहीं। इकतीसवें अध्याय में १९ श्लोक हैं जिसमें कृष्ण से मिलने के लिए वियुक्त गोपियों की प्रतीक्षा का वर्णन हुआ है। अध्याय बत्तीस में २२ श्लोक हैं। इसमें कृष्ण गोपियों के मध्य प्रकट होते हैं और गोपियाँ उनके प्रेमभाव से पूर्ण तुष्ट हो जाती हैं। अध्याय तैंतीस में ३९ श्लोक हैं। इसमें कृष्ण नाना वेशों में गोपियों के बीच प्रकट होते हैं और उनके साथ रास नृत्य करते हैं। तत्पश्चात् वे सभी यमुना नदी में स्नान करते हैं। इसी अध्याय में शुकदेवमुनि परीक्षित के मन में रासलीला विषयक उठने वाले सन्देहों को दूर करते हैं।

चौंतीसवें अध्याय में ३२ श्लोक हैं। इस अध्याय में बतलाया गया है कि किस तरह कृष्ण के पिता नन्द एक अजगर द्वारा निगल लिये गये थे। यह अजगर विद्याधर नामक देवता था, किन्तु अंगिरा ऋषि ने इसे शाप दिया था। कृष्ण ने अपने पिता को बचाया तथा इस देवता को एकसाथ शापमुक्त किया। पैंतीसवें अध्याय में २६ श्लोक हैं जिसमें कृष्ण द्वारा गौवें लेकर चरागाहों में जाने और उनके वियोग में गोपियों के गीत का वर्णन हुआ है।

छत्तीसवें अध्याय में ४० श्लोक हैं। इसमें कृष्ण द्वारा अरिष्टासुर का वध तथा नारद द्वारा कंस से कृष्ण तथा राम का वसुदेव के पुत्र होने के रहस्योद्घाटन का वर्णन मिलता है। इस रहस्योद्घाटन के फलस्वरूप कंस इन दोनों को मारने की योजना बनाता है। वह अपने सहायक केशी को वृन्दावन भेजता है और बाद में राम तथा कृष्ण को मथुरा लाने के लिए अक्रूर को भेजता है। अध्याय सैंतीस में ३३ श्लोक हैं। इसमें कृष्ण द्वारा केशी असुर के वध, कृष्ण की भावी लीलाओं का वर्णन करते हुए नारद द्वारा उनकी पूजा तथा कृष्ण द्वारा व्योमासुर-वध का वर्णन हुआ है। अड़तीसवें अध्याय में ४३ श्लोक हैं। इसमें अक्रूर का वृन्दावन-गमन एवं राम-कृष्ण तथा नन्द द्वारा उनके स्वागत का वर्णन हुआ है। उन्तालीसवें अध्याय में ५७ श्लोक हैं। इसमें कंस द्वारा आमंत्रित किये जाने पर राम तथा कृष्ण का

मथुरा के लिए प्रस्थान बताया गया है। जब वे रथ पर सवार हुए तो गोपियाँ बिलखने लगीं और कृष्ण ने उन्हें सान्त्वना देने के लिए अपना दूत भेजा। तभी वे मथुरा के लिए प्रस्थान कर पाये। रास्ते में अक्रूर को यमुना के जल के भीतर सम्पूर्ण विष्णुलोक का दर्शन हुआ।

चालीसवें अध्याय में ३० श्लोक हैं जिनमें अक्रूर द्वारा की गई स्तुतियों का वर्णन हैं। इकतालीसवें अध्याय में ५२ श्लोक हैं और इनमें राम तथा कृष्ण द्वारा मथुरापुरी में प्रवेश करने का वर्णन हुआ है। वहाँ की स्त्रियाँ इन दोनों भाइयों को देखकर अत्यधिक हर्षित थीं। कृष्ण ने एक धोबी को मारा, सुदामा का गुणगान किया और उसे वर दिया। बयालीसवें अध्याय में ३८ श्लोक हैं। इसमें कृष्ण द्वारा कुब्जा–उद्धार तथा कंस के विशाल धनुष को तोड़ने और इसके संरक्षकों को मारने का वर्णन है। इस तरह कंस और कृष्ण की भेंट हुई। अध्याय तैंतालीस में ४० श्लोक हैं। कंस की रंगभूमि के बाहर कृष्ण ने कुवलयापीड़ नामक हाथी को मारा, फिर रंगभूमि में प्रविष्ट होकर चाणूर से बातें कीं। चवालीसवें अध्याय में ५१ श्लोक हैं जिनमें कृष्ण तथा बलराम द्वारा चाणूर तथा मुष्टिक नामक मल्लों के मारे जाने और इसके बाद कंस तथा उसके आठों भाइयों के मारे जाने का वर्णन हुआ है। किन्तु कृष्ण ने कंस की पत्नियों तथा अपने माता–पिता देवकी तथा वसुदेव को सान्त्वना दी।

पैंतालीसवें अध्याय में ५० श्लोक हैं। इसमें कृष्ण द्वारा अपने माता–पिता को सान्त्वना देने और अपने नाना उग्रसेन के सिंहासनारूढ़ कराने का वर्णन है। वृन्दावनवासियों को यह वचन देने के बाद कि वे शीघ्र ही वृन्दावन लौटेंगे, कृष्ण का क्षत्रिय–संस्कार सम्पन्न हुआ। वे ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर गुरुकुल में रहे जहाँ उन्होंने नियमित रूप से अध्ययन किया। पञ्चजन नामक असुर का वध करने पर उन्हें पाञ्चजन्य शंख प्राप्त हुआ। कृष्ण ने अपने गुरु–पुत्र को यमराज के पाश से छुड़ाकर गुरु को लाकर सौंपा। इस तरह गुरु का ऋण उतारने के लिए गुरु–दक्षिणा देकर भगवान् कृष्ण मथुरापुरी लौट आये। छियालीसवें अध्याय में ४९ श्लोक हैं। इसमें कृष्ण ने अपने माता–पिता, यशोदा तथा नन्द महाराज को ढाढ़स बँधाने के उद्देश्य से उद्धव को वृन्दावन भेजा। सैंतालीसवें अध्याय में ६९ श्लोक हैं जिनमें कृष्ण के आदेशानुसार उद्धव गोपियों को सान्त्वना देने जाते हैं और तब मथुरा लौट आते हैं। इस तरह उद्धव को वृन्दावनवासियों द्वारा कृष्ण के लिए अनुभूत परम आनन्ददायक प्रेम का पता चलता है।

अड़तालीसवें अध्याय में ३६ श्लोक हैं। इसमें बतलाया गया है कि कृष्ण ने किस प्रकार कुब्जा के

घर जाकर उसकी इच्छा पूरी की। इसके बाद कृष्ण अक्रूर के घर गये। अक्रूर की प्रार्थनाओं से प्रसन्न होकर उसकी प्रशंसा की और पाण्डवों का समाचार लाने के लिए उसे हस्तिनापुर भेज दिया। उञ्चासवें अध्याय में ३१ श्लोक हैं। इसमें बताया गया है कि अक्रूर कृष्ण का आदेश पाकर हस्तिनापुर गया जहाँ उसने विदुर तथा कुन्ती से भेंट की और उनसे पाण्डवों के साथ धृतराष्ट्र द्वारा किये गये दुर्व्यवहार के बारे में सुना। कृष्ण के प्रति पाण्डवों की श्रद्धा से परिचित होने पर उसने धृतराष्ट्र को उचित सलाह दी और फिर धृतराष्ट्र के मन की बात जानकर मथुरा लौट आया। यहाँ उसने हस्तिनापुर की स्थिति का सारा समाचार कह सुनाया।

पचासवें अध्याय में ५७ श्लोक हैं। इसमें जरासन्ध द्वारा मथुरा पर आक्रमण करने का उल्लेख है। जब जरासन्ध ने सुना कि उसका दामाद कंस मारा गया तो उसने राम तथा कृष्ण को मार डालने के लिए मथुरा पर आक्रमण कर दिया, किन्तु उसे सत्रह बार मुँह की खानी पड़ी। जब अठारहवीं बार जरासंध मथुरा पर आक्रमण करने वाला था, तो नारद के कहने से कालयवन ने भी मथुरा पर धावा बोल दिया। इस तरह यादववंश जल के बीच बने किले में प्रविष्ट हुआ और योगशक्ति द्वारा वहाँ रहा। यादववंश की सुरक्षा का प्रबन्ध करके तथा बलदेव से परामर्श करने के बाद भगवान् कृष्ण द्वारका से बाहर आये। अध्याय इक्यावन में ६३ श्लोक हैं जिसमें मुचकुन्द द्वारा मात्र दृष्टिपात करने से कालयवन के मारे जाने का उल्लेख मिलता है।

अध्याय बावन में ४४ श्लोक हैं। इस अध्याय में मुचकुन्द कृष्ण की स्तुति करता है और कृष्ण कालयवन के सारे सैनिकों को मारकर उनके द्वारा लूटी हुई सारी सामग्री लेकर द्वारका लौट आते हैं। जब जरासन्ध फिर से मथुरा पर आक्रमण करता है, तो राम तथा कृष्ण भगकर पहाड़ की चोटी पर चढ़ जाते हैं मानो डर गये हों जिसके बाद जरासन्ध पर्वत में आग लगा देता है। जरासन्ध के देखे बिना कृष्ण तथा बलराम पर्वत की चोटी से नीचे कूदकर द्वारका पहुँचते हैं, जो चारों ओर से समुद्र से घिरा है। जरासन्ध समझता है कि वे दोनों मर गये हैं अत: वह अपनी सेना लेकर अपने देश लौट जाता है और कृष्ण द्वारका में रहने लगते हैं। विदर्भराज की कन्या रुक्मिणी कृष्ण के प्रति अत्यधिक आकृष्ट थी। उसने एक ब्राह्मण के हाथ कृष्ण के पास एक पत्र भेजा। अध्याय तिरपन में ५७ श्लोक हैं। रुक्मिणी की विनती पर कृष्ण विदर्भ जाकर जरासन्ध जैसे शत्रुओं की उपस्थिति में रुक्मिणी का हरण

कर लाते हैं। अध्याय चौवन, जिसमें ६० श्लोक हैं बतलाता है कि कृष्ण ने सारे विपक्षी राजकुमारों को हराकर रुक्मिणी के भाई रुक्मी को कुरूप बना दिया। फिर वे रुक्मिणी समेत द्वारका लौट आये जहाँ आकर उन दोनों ने औपचारिक विवाह कर लिया। किन्तु रुक्मी अपने बहनोई कृष्ण से क्रुद्ध होकर भोजकट नामक स्थान में रहने लगा। पचपनवें अध्याय में ४० श्लोक हैं जिसमें प्रद्युम्न-जन्म, शम्बरासुर द्वारा प्रद्युम्न-अपहरण तथा बाद में किस तरह प्रद्युम्न के द्वारा शम्बरासुर वध और अपनी पत्नी रति देवी के साथ द्वारका लौट आने का वर्णन मिलता है।

छप्पनवें अध्याय में ४५ श्लोक हैं। इसमें बतलाया गया है कि किस तरह सूर्यदेव की कृपा से राजा सत्राजित को स्यमंतक मणि की प्राप्ति हुई। बाद में यह मणि चोरी चली गयी तो सत्राजित को कृष्ण पर व्यर्थ ही सन्देह हुआ, किन्तु कृष्ण ने अपने को निर्दोष सिद्ध करने के लिए उस मणि को पुनः प्राप्त किया और साथ में जाम्बवान की पुत्री को भी। बाद में कृष्ण ने सत्राजित की पुत्री से विवाह किया और प्रचुर दहेज प्राप्त किया। सत्तावनवें अध्याय में, जिसमें ४२ श्लोक हैं, बतलाया गया है कि पाण्डवों के लाक्षागृह में अग्निकाण्ड की घटना सुनने के बाद बलराम तथा कृष्ण दोनों हस्तिनापुर गये। जब अक्रूर तथा कृतवर्मा के बहकावे में आकर शतधन्वा द्वारा सत्राजित मारा गया तो बलराम और कृष्ण द्वारका लौट आये। स्यमन्तक मणि को अक्रूर के पास छोड़कर शतधन्वा जंगल की ओर भाग गया। इस तरह शतधन्वा का वध करके भी कृष्ण स्यमन्तक मणि नहीं पा सके। अन्त में मणि ढूँढ़ निकाली गयी और अक्रूर को दे दी गयी। अट्ठावनवें अध्याय में ५८ श्लोक हैं। जब पाण्डवों का अज्ञातवास समाप्त हुआ तो कृष्ण उनसे भेंट करने इन्द्रप्रस्थ गये। इसके बाद उन्होंने कालिन्दी आदि पाँच पत्नियों से विवाह किया। जब कृष्ण तथा अर्जुन ने खाण्डवबन में आग लगा दी तो अर्जुन को गाण्डीव धनुष प्राप्त हुआ। मयदानव असुर ने पाण्डवों के लिए सभा भवन बनाया। इससे दुर्योधन अत्यन्त व्यथित हो गया।

उनसठवें अध्याय में ४५ श्लोक हैं। इस अध्याय में कृष्ण ने इन्द्र की प्रार्थना पर साक्षात् पृथ्वी के पुत्र नरकासुर तथा मुर इत्यादि उसके असुर संगियों का वध किया। साक्षात् पृथ्वी ने कृष्ण की प्रार्थना की और नरकासुर द्वारा चुराई हुई सारी वस्तुएँ लाकर कृष्ण को लौटा दीं। तब कृष्ण ने नरकासुर के पुत्र को अभयदान दिया और नरकासुर द्वारा बन्दी बनाई गई सोलह हजार राजकुमारियों के साथ अपना

विवाह किया। इसी अध्याय में कृष्ण स्वर्ग से पारिजात पौधा लाते हैं तथा इन्द्र आदि की मूर्खता का भी इसी में उल्लेख मिलता है।

साठवें अध्याय में ५९ श्लोक हैं। कृष्ण अपने परिहास से रुक्मिणी को क्रुद्ध करते हैं, दोनों के बीच प्रेम–कलह होता है और रुक्मिणी को कृष्ण मनाते हैं। इकसठवें अध्याय में ४० श्लोक हैं। इसमें कृष्ण के पुत्रों–पौत्रों का वर्णन हुआ है। अनिरुद्ध के विवाह के समय बलराम रुक्मी का वध करते हैं और कलिंगराज के दाँत तोड़ते हैं।

बासठवें अध्याय में ३३ श्लोक हैं। इस अध्याय का शुभारम्भ बाणासुर की पुत्री उषा के हरण की वार्ता एवं उषा तथा अनिरुद्ध के प्रेमालाप से होता है। इसमें अनिरुद्ध तथा बाणासुर के बीच युद्ध का तथा बाणासुर द्वारा अनिरुद्ध को नागपाश में बाँधे जाने का भी वर्णन हुआ है। तिरसठवें अध्याय में ५३ श्लोक हैं। इसमें बाणासुर तथा यादवों के बीच छिड़ने वाले संग्राम में शिवजी की पराजय का वर्णन हुआ है। जब रुद्रज्वर वैष्णवज्वर से हार गया तो उसने कृष्ण की प्रार्थना की। कृष्ण ने बाणासुर की हजार भुजाओं में से केवल चार भुजाएँ छोड़कर और शेष सभी को काट कर उस पर कृपा की। तत्पश्चात् वे उषा तथा अनिरुद्ध को साथ लेकर द्वारका लौट आये।

चौंसठवें अध्याय में ४४ श्लोक हैं। इसमें कृष्ण इक्ष्वाकुपुत्र राजा नृग का शाप से उद्धार करते हैं और सभी राजाओं को उपदेश देते हैं कि ब्राह्मण की सम्पत्ति का हरण–करण एक दोष है। राजा नृग के उद्धार के प्रसंग में उन यादवों के लिए भी आदेश हैं, जो सम्पत्ति–भोग ऐश्वर्य, विलास इत्यादि के कारण गर्वित हो उठे थे।

अध्याय पैंसठ में ३४ श्लोक हैं। भगवान् बलदेव अपने मित्रों तथा सम्बन्धियों से भेंट करने गोकुल जाते हैं। चैत और बैसाख के महीनों में यमुना के तटवर्ती कुंजों में अपनी गोपियों के साथ वे रासोत्सव तथा यमुना–कर्षण लीलाएँ सम्पन्न करते हैं।

छियासठवें अध्याय में ४३ श्लोक हैं। इसमें कृष्ण काशी जाते हैं और वहाँ पौण्ड्रक तथा उसके मित्र काशी नरेश सुदक्षिण तथा अन्यों का वध करते हैं। अध्याय सड़सठ में २८ श्लोक हैं जिनमें रैवतक पर्वत में अनेक युवतियों के साथ बलदेवजी द्वारा भोग–विलास करने एवं मैन्द के भाई तथा नरकासुर के मित्र द्विविद नामक उपद्रवी लंगूर के मारे जाने का वर्णन मिलता है।

अध्याय अड़सठ में ५४ श्लोक हैं जिसमें जाम्बवती के पुत्र साम्ब द्वारा दुर्योधन की पुत्री लक्ष्मणा के हरण एवं कौरवों से युद्ध करते हुए उसके बन्दी बनाये जाने का उल्लेख है। उसे छुड़ाने तथा शान्ति स्थापित किये जाने के लिए भगवान् बलदेव एक शुभचिन्तक के रूप में हस्तिनापुर जाते हैं किन्तु कौरवगण असहयोग दिखलाते हैं अत: उनके अहंकार को देखकर भगवान् बलराम अपने हल से हस्तिनापुर को खींचने लगते हैं। इस पर दुर्योधन समेत सारे कौरव बलदेव की स्तुति करते हैं और वे साम्ब तथा लक्ष्मणा समेत द्वारका लौट जाते हैं।

उनहत्तरवें अध्याय में ४५ श्लोक हैं। इसमें कृष्ण अपनी सोलह हजार रानियों के साथ गृहस्थ-जीवन बिताते हैं। महर्षि नारद तक को आश्चर्य होता है कि कृष्ण किस प्रकार सोलह हजार रूपों में विस्तारित होकर गृहस्थ-जीवन बिताते हैं। फलत: नारद भी कृष्ण की स्तुति करते हैं जिससे कृष्ण उन पर अत्यधिक प्रसन्न होते हैं।

सत्तरवें अध्याय में ४७ श्लोक हैं जिनमें कृष्ण के दैनिक कर्मकाण्ड तथा जरासंध द्वारा बन्दी बनाये गये राजाओं को मुक्त किये जाने का वर्णन हुआ है। जब भगवान् कृष्ण इन राजाओं द्वारा भेजे गये दूत से भेंट कर रहे थे तभी नारद ने आकर पाण्डवों की जानकारी दी। उन्होंने कृष्ण को बताया कि पाण्डव लोग राजसूय यज्ञ करना चाहते हैं, तो कृष्ण ने उसमें सम्मिलित होने की हामी भर दी, किन्तु उन्होंने पहले उद्धव का निर्णय जानना चाहा कि क्या राजा जरासन्ध के वध को प्राथमिकता दी जाय या राजसूय यज्ञ सम्पन्न कराने को। इकहत्तरवें अध्याय में ४५ श्लोक हैं जिसमें कृष्ण के इन्द्रप्रस्थ पहुँचने पर पाण्डवों की प्रसन्नता का वर्णन हुआ है। कृष्ण की अकल्पनीय इच्छा थी कि जरासन्ध का वध हो और महाराज युधिष्ठिर राजसूय यज्ञ भी सम्पन्न करें।

बहत्तरवें अध्याय में ४६ श्लोक हैं। कृष्ण द्वारा राजसूय यज्ञ सम्पन्न कराने की स्वीकृति दिये जाने पर महाराज युधिष्ठिर अत्यधिक प्रसन्न हुए। इस अध्याय में जरासन्ध के वध, उसके पुत्र का सिंहासन पर बैठना तथा जरासन्ध द्वारा कैदी बनाये गये राजाओं की मुक्ति का भी वर्णन हुआ है। तिहत्तरवें अध्याय में ३५ श्लोक हैं। जब कृष्ण ने राजाओं को छुड़ा दिया और उन्हें अपनी राजसत्ता मिल गई तो जरासन्ध के पुत्र सहदेव ने कृष्ण की पूजा की और कृष्ण भीम तथा अर्जुन समेत इन्द्रप्रस्थ लौट आये। चौहत्तरवें अध्याय में ५४ श्लोक हैं। महाराज युधिष्ठिर ने कृष्ण की स्तुति की और राजसूय यज्ञ में

उनकी अग्रपूजा की। भगवान् को इस प्रकार सम्मान देना प्रत्येक मनुष्य का सर्वोपरि कर्तव्य है, किन्तु चेदि नरेश शिशुपाल के लिए यह असह्य था। वह कृष्ण की निन्दा करने लग पड़ा। अत: कृष्ण ने उसका सिर धड़ से अलग कर दिया और उसे सारूप्य मुक्ति प्रदान की। राजसूय यज्ञ के समाप्त होने के बाद कृष्ण अपनी रानियों समेत द्वारका लौट आये। पचहत्तरवें अध्याय में ४० श्लोक हैं। इसमें राजसूय यज्ञ सम्पन्न होने के बाद युधिष्ठिर द्वारा अन्तिम स्नान-कर्म सम्पन्न किये जाने का वर्णन है। दुर्योधन मय दानव द्वारा बनाये गये राजमहल को देखकर मोहित हो गया फलत: उसने अपने को अपमानित हुआ समझा।

छिहत्तरवें अध्याय में ३३ श्लोक हैं। इसमें रुक्मिणी का हरण करते समय कृष्ण द्वारा हराये गये राजा साल्व के संकल्प का वर्णन हुआ है कि किस प्रकार उसने संसार से यादवों का विनाश करने का निर्णय किया। यादवों को हराने के लिए उसने शिवजी की पूजा की जिन्होंने उसे सौभ नामक विमान दिया। जब साल्व वृष्णियों से युद्ध कर रहा था, तो प्रद्युम्न ने मय दानव द्वारा निर्मित विमान को चकनाचूर कर दिया, किन्तु साल्व के भाई द्युमान ने उस पर आक्रमण कर दिया। उसकी गदा से चोट खाकर बेहोश हुए प्रद्युम्न को उसका सारथी युद्ध-स्थल से कुछ दूर तक ले आया, किन्तु बाद में उसे पश्चात्ताप हुआ कि उसे युद्ध-स्थल से दूर क्यों ले जाया गया। सतहत्तरवें अध्याय में ३७ श्लोक हैं। इसमें प्रद्युम्न होश आने पर साल्व से फिर युद्ध करता है। इन्द्रप्रस्थ से द्वारका लौटने पर तुरन्त ही कृष्ण युद्ध-स्थल पर पहुँचे जहाँ प्रद्युम्न और साल्व युद्ध कर रहे थे। वहाँ कृष्ण ने साल्व का वध कर डाला यद्यपि वह मायाजनित अस्त्रों को धारण किये था।

अठहत्तरवें अध्याय में ४० श्लोक हैं। इसमें साल्व का मित्र दन्तवक्र तथा उसका भाई विदूरथ कृष्ण द्वारा मारे जाते हैं। कौरवों तथा पाण्डवों के युद्ध में भाग लेने के बजाए बलदेव जो द्वारकापुरी में रह रहे थे, तीर्थ-भ्रमण करने चले जाते हैं। नैमिषारण्य में रोमहर्षण के दुर्व्यवहार के कारण बलदेव उसे मारकर उसके पुत्र उग्रश्रवा अर्थात् सूत गोस्वामी को *श्रीमद्भागवत* का वाचक नियुक्त करते हैं जिससे पुराणों पर प्रवचन चलता रहे। उन्यासीवें अध्याय में ३४ श्लोक हैं। इसमें नैमिषारण्य के ब्राह्मणों द्वारा बलदेव को रोमहर्षण की मृत्यु के लिए प्रायश्चित्त करने के लिए कहा जाता है। बल्वल नामक असुर को मारने के बाद बलदेव यात्रा करते रहे और तीर्थस्थानों में स्नान करते हुए अन्ततः कुरुक्षेत्र की

युद्धभूमि पहुँचे, जहाँ भीम तथा दुर्योधन लड़ रहे थे। तत्पश्चात् वे द्वारका लौट आये और एक बार फिर नैमिषारण्य गये जहाँ उन्होंने ऋषियों को उपदेश दिया। तत्पश्चात् वे अपनी पत्नी रेवती समेत वहाँ से चले गये।

अध्याय अस्सी में ४५ श्लोक हैं जिनमें बतलाया गया है कि किस तरह कृष्ण का मित्र विप्र सुदामा कृष्ण के पास धन माँगने आया और कृष्ण द्वारा पूजित हुआ। कृष्ण ने गुरुकुल में अपने बाल्यकाल के संस्मरण सुनाये। इक्यासीवें अध्याय में ४१ श्लोक हैं। इसमें कृष्ण तथा उनके मित्र सुदामा के बीच मैत्री की बातों का उल्लेख मिलता है। कृष्ण ने सुदामा विप्र से चावल की भेंट बड़े हर्ष सहित स्वीकार की। जब सुदामा विप्र अपने घर लौटा तो उसे वहाँ हर वस्तु ऐश्वर्यपूर्ण दिखी। फलत: उसने भगवान् की मित्रता की सराहना की। उसने भगवान् द्वारा दी गई भेंट से भौतिक ऐश्वर्य का भोग किया और बाद में भगवद्धाम गया।

बयासीवें अध्याय में ४८ श्लोक हैं। इसमें यादवों द्वारा सूर्य ग्रहण के अवसर पर कुरुक्षेत्र जाने तथा वहाँ अन्य राजाओं द्वारा कृष्ण के विषय में बातें करने का वर्णन मिलता है। इस भेंट में कृष्ण ने नन्द महाराज तथा वहाँ आये वृन्दावनवासियों को तुष्ट किया। तिरासीवें अध्याय में ४३ श्लोक हैं जिसमें कुरुक्षेत्र में एकत्र हुई स्त्रियों के बीच कृष्ण की बातें चलने तथा द्रौपदी द्वारा कृष्ण की रानियों से उनके विवाह की बात पूछने का वर्णन हुआ है। चौरासीवें अध्याय में ७१ श्लोक हैं। जब बड़े–बड़े ऋषिमुनि कृष्ण का दर्शन करने कुरुक्षेत्र आये तो कृष्ण ने उन सबकी बड़ी प्रशंसा की। इस अवसर पर वसुदेव बहुत बड़ा यज्ञ करना चाह रहे थे अतएव ऋषियों ने सलाह दी कि कृष्ण की पूजा की जाय। यज्ञ सम्पन्न होने पर वहाँ आये समस्त जन अपने–अपने घरों को चले गये। पचासीवें अध्याय में ५९ श्लोक हैं। कृष्ण ने अपनी माता–पिता के अनुरोध पर अपनी कृपा से उनके मृत पुत्रों को लौटा दिया और उन सबका उद्धार हो गया। छियासीवें अध्याय में भी ५९ श्लोक हैं। इस अध्याय में महान् युद्ध के पश्चात् अर्जुन द्वारा सुभद्रा–हरण का वर्णन हुआ है। इसमें यह भी बतलाया गया है कि किस प्रकार कृष्ण अपने भक्त बहुलाश्व पर कृपा करने मिथिला गये और श्रुतदेव के मकान पर ठहरे तथा उनकी आध्यात्मिक प्रगति के विषय में उपदेश दिया।

सत्तासीवें अध्याय में ५० श्लोक हैं जिसमें वेदों द्वारा नारायण की स्तुति का वर्णन है। अट्ठासीवें

अध्याय में ४० श्लोक हैं जिनमें यह बतलाया गया है कि किस प्रकार विष्णु की पूजा करके वैष्णवजन दिव्य बनते हैं और भगवद्धाम वापस जाते हैं। देवताओं की पूजा से भौतिक शक्ति भले मिलती हो, किन्तु इस अध्याय में बतलाया गया है कि किस तरह इस भौतिक जगत में सामान्य जीव पर श्रीकृष्ण की कृपा हो सकती है। इस तरह ब्रह्मा तथा शिव के ऊपर भगवान् विष्णु की श्रेष्ठता स्थापित होती है। नवासीवें अध्याय में ६५ श्लोक हैं जिनमें यह उद्घाटित हुआ है कि भौतिक अर्चाविग्रहों में कौन सर्वश्रेष्ठ है। यद्यपि विष्णु त्रिदेवों—ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर—में से एक हैं किन्तु वे दिव्य तथा सर्वोच्च हैं। इसी अध्याय में इसका भी वर्णन मिलता है कि कृष्ण तथा अर्जुन द्वारका के किसी ब्राह्मण-पुत्र का उद्धार करने महाकालपुर गये और किस तरह अर्जुन अचम्भित हुए। नब्बेवें अध्याय में ५० श्लोक हैं। इसमें कृष्ण की लीलाओं का सारांश दिया गया है और *मधुरेण समापयेत्* का तर्क प्रस्तुत किया गया है, जिससे यह सिद्ध होता है कि हर बात दिव्य आनंद में अच्छी तरह समाप्त होती है।

Chapter एक

भगवान् श्रीकृष्ण का अवतार: परिचय

प्रथम अध्याय का सारांश इस प्रकार है। इस अध्याय में बताया गया है कि देवकी के आठवें पुत्र द्वारा मारे जाने के अपशकुन को सुनकर डरे हुए कंस ने किस तरह देवकी के पुत्रों को एक-एक करके मार डाला।

जब शुकदेव गोस्वामी यदुवंश तथा उसी के साथ चन्द्र देव तथा सूर्य देव के वंशों का वर्णन कर चुके तो महाराज परीक्षित ने उनसे प्रार्थना की कि वे यदुवंश में बलदेव के साथ प्रकट होने वाले भगवान् कृष्ण का तथा इस जगत में उनके द्वारा सम्पन्न कार्यकलापों का वर्णन करें। राजा ने कहा कि कृष्ण दिव्य हैं अतएव उनके कार्यकलापों को समझना मुक्तात्माओं का कार्य है। कृष्ण-लीला का श्रवण ऐसी नाव है, जिससे जीवन के चरम लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है। कसाई या आत्मघाती व्यक्ति को छोड़कर प्रत्येक बुद्धिमान मनुष्य को कृष्ण तथा उनके कार्यकलापों को समझने का प्रयास करना चाहिए।

पाण्डवों के एकमात्र आराध्यदेव कृष्ण थे। जब महाराज परीक्षित अपनी माता उत्तरा के गर्भ में थे

तो कृष्ण ने उन्हें ब्रह्म-शस्त्र के प्रहार से बचाया था। अब महाराज परीक्षित शुकदेव गोस्वामी से पूछते हैं कि रोहिणी-पुत्र भगवान् बलदेव किस तरह देवकी के गर्भ से प्रकट हो सके, कृष्ण मथुरा से वृन्दावन क्यों स्थानान्तरित हुए और वे वहाँ अपने परिवार वालों के साथ किस तरह रहे? कृष्ण ने मथुरा तथा वृन्दावन में क्या किया और उन्होंने अपने मामा कंस का वध क्यों किया? कृष्ण कितने वर्षों तक द्वारका में रहे और उनके कितनी रानियाँ थीं? महाराज परीक्षित ने शुकदेव गोस्वामी से ये सारे प्रश्न पूछे। उन्होंने शुकदेव गोस्वामी से यह भी अनुरोध किया कि वे कृष्ण के उन अन्य कार्यों का भी वर्णन करें जिन्हें उन्होंने नहीं पूछा।

जब शुकदेव गोस्वामी कृष्णभावनामृत के विषय में बताने लगे तो महाराज परीक्षित को अपने उपवास से उत्पन्न थकान भूल गई। कृष्ण का वर्णन करने के लिए उत्सुक शुकदेव गोस्वामी ने बतलाया, ''कृष्ण के कार्यों का वर्णन गंगाजल के समान समस्त ब्रह्माण्ड को शुद्ध बनाने वाला है। वक्ता, प्रश्नकर्ता तथा श्रोता सभी शुद्ध हो जाते हैं।''

एक बार जब समस्त विश्व आसुरी राजाओं की बढ़ती सैन्य शक्ति से बोझिल हो उठा तो पृथ्वी माता ने गाय का रूप धारण किया और उनसे छुटकारा पाने के लिए ब्रह्माजी के पास पहुँची। माता पृथ्वी के सन्ताप पर दया करके ब्रह्माजी शिवजी तथा अन्य देवताओं समेत गाय रूपी धरती को अपने साथ लेकर क्षीर सागर के तट पर पहुँचे और भगवान् विष्णु को, जो दिव्य परमानन्द में एक द्वीप पर शयन कर रहे थे, प्रसन्न करने के लिए स्तुतियाँ कीं। तत्पश्चात् ब्रह्माजी ने महाविष्णु की सलाह समझ कर सूचित किया कि असुरों का भार हटाने के लिए विष्णु पृथ्वी पर प्रकट होंगे। देवताओं को चाहिए कि अपनी अपनी पत्नियों सहित यदुवंश की जनसंख्या बढ़ाने के लिए कृष्ण के संगियों के रूप में प्रकट हों। कृष्ण-कृपा से सबसे पहले अनन्तदेव बलराम के रूप में प्रकट होंगे और कृष्ण की शक्ति योगमाया भी प्रकट होंगी। ब्रह्माजी ने माता पृथ्वी को इसके विषय में सबकुछ बताया और तब वे अपने धाम लौट गये।

जब वसुदेव देवकी से विवाह करके देवकी के भाई कंस द्वारा हाँके जा रहे रथ पर सवार होकर अपने घर लौट रहे थे तभी आकाशवाणी सुनाई पड़ी कि देवकी का आठवाँ पुत्र कंस का वध करेगा। यह अपशकुन सुनकर कंस देवकी को तत्क्षण मार डालने के लिए उद्यत हुआ किन्तु वसुदेव ने

व्यवहारकुशलता उसे यह कहकर समझाया कि उसे अपनी छोटी बहन को, विशेषत: विवाह के समय पर, नहीं मारना चाहिए। हर देहधारी की मृत्यु अवश्य होगी। हर जीव एक शरीर में कुछ काल तक जीवित रहता है और तब वह दूसरे शरीर में स्थानान्तरित होता है किन्तु दुर्भाग्यवश वह शरीर को आत्मा मान बैठता है। यदि इस भ्रान्त धारणा से कोई व्यक्ति अन्य व्यक्ति को मारना चाहता है, तो उसकी नारकीय के तौर पर निन्दा होती है।

चूँकि कंस को वसुदेव के उपदेशों से सन्तोष नहीं हुआ इसलिए वसुदेव ने एक युक्ति निकाली। उन्होंने यह प्रस्ताव रखा कि वे देवकी की सारी सन्तानों को लाकर कंस को सौंप दिया करेंगे जिन्हें वह मार डाले। तो फिर देवकी को अब मारने से क्या लाभ? कंस को यह प्रस्ताव भा गया। समय आने पर जब देवकी के बच्चा उत्पन्न हुआ तो वसुदेव उस नवजात शिशु को लेकर कंस के पास पहुँचे जो वसुदेव की वदान्यता देखकर चकित रह गया। जब वसुदेव ने वह शिशु कंस को दे दिया तो कुछ बुद्धि दिखाते हुए कंस ने कहा कि चूँकि उसका वध आठवीं सन्तान के द्वारा होना है, तो फिर पहली सन्तान को मारने से क्या लाभ? यद्यपि वसुदेव को कंस के कहने पर विश्वास नहीं हो रहा था किन्तु कंस ने वसुदेव से बालक को वापस ले जाने के लिए कहा परन्तु बाद में जब नारदमुनि कंस के पास पहुँचे और उसे यह रहस्य बताया कि देवतागण यदु तथा वृष्णिवंशों में उत्पन्न होकर उसे मारने का षडयंत्र रच रहे हैं, तो कंस ने इन वंशों में जन्म लेने वाले समस्त बालकों को मार डालने का निश्चय किया और उसने यह भी तय किया कि देवकी के गर्भ से उत्पन्न सारे बालकों को मार डाला जाय। अतएव उसने वसुदेव तथा देवकी दोनों ही को बन्दी बना लिया और एक-एक करके उनके छह पुत्रों को मारता रहा। नारद ने कंस को यह भी सूचित किया कि कंस अपने पूर्वजन्म में कालनेमि नामक असुर था जिसका वध विष्णु ने किया था। फलस्वरूप कंस यदुवंशियों का महान् शत्रु बन गया। यहाँ तक कि उसने अपने पिता उग्रसेन को भी बन्दी बना लिया क्योंकि वह अकेले राज्य-भोग करना चाहता था।

कृष्ण की लीलाएँ तीन प्रकार की हैं—व्रज लीला, मथुरा लीला तथा द्वारका लीला। जैसाकि पहले उल्लेख किया जा चुका है, *श्रीमद्भागवत* के दसवें स्कंध में ९० अध्याय हैं जिनमें इन लीलाओं का वर्णन हुआ है। प्रथम चार अध्यायों में पृथ्वी का भार हटाने के लिए ब्रह्मा द्वारा की गई स्तुतियाँ हैं और भगवान् के प्राकट्य का भी वर्णन है। अध्याय ५ से लेकर ३९वें अध्याय तक कृष्ण की वृन्दावन

लीलाओं का वर्णन है। चालीसवें अध्याय में बतलाया गया है कि कृष्ण ने किस तरह यमुना-जल का आनन्द लूटा और अक्रूर ने किस तरह स्तुतियाँ कीं। अध्याय ४१ से लेकर ५१ तक के ग्यारह अध्यायों में कृष्ण की मथुरा लीलाएँ हैं और अध्याय ५२ से ९० तक के ३९ अध्यायों में कृष्ण की द्वारका लीलाएँ हैं।

उन्तीस से लेकर तैंतीसवें अध्याय तक गोपियों के साथ कृष्ण के नाचने का, अर्थात् *रासलीला* का वर्णन है। अतएव इन पाँच अध्यायों को *रास पञ्चाध्याय* कहा जाता है। और सैंतालीसवाँ अध्याय *भ्रमर गीता* कहलाता है।

श्रीराजोवाच

कथितो वंशविस्तारो भवता सोमसूर्ययोः ।
राज्ञां चोभयवंश्यानां चरितं परमाद्भुतम् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-राजा उवाच—राजा परीक्षित ने कहा; **कथितः**—पहले ही वर्णित हो चुका है, जो; **वंश-विस्तारः**—वंश का विस्तार से वर्णन; **भवता**—आपके द्वारा; **सोम-सूर्ययोः**—चन्द्रदेव तथा सूर्यदेव के; **राज्ञाम्**—राजाओं का; **च**—तथा; **उभय**—दोनों; **वंश्यानाम्**—वंश के सदस्यों का; **चरितम्**—चरित्र; **परम**—श्रेष्ठ; **अद्भुतम्**—तथा अद्भुत।

राजा परीक्षित ने कहा : हे प्रभु, आपने चन्द्रदेव तथा सूर्यदेव दोनों के वंशों का, उनके राजाओं के महान् तथा अद्भुत चरित्रों सहित विशद वर्णन किया है।

तात्पर्य : नवम स्कन्ध के अन्त में चौबीसवें अध्याय में शुकदेव गोस्वामी ने कृष्ण के कार्यकलापों का सार दे दिया है। उन्होंने बतलाया कि कृष्ण किस प्रकार धरती का बोझ कम करने के लिए स्वयं प्रकट हुए थे, किस तरह उन्होंने गृहस्थ के रूप में लीलाएँ कीं और किस तरह जन्म के तुरन्त बाद उन्हें उनकी व्रजभूमिलीला में ले जाया गया। परीक्षित महाराज कृष्ण-भक्त होने के कारण भगवान् कृष्ण के विषय में और अधिक सुनना चाह रहे थे। इसीलिए कृष्ण के विषय में कथा कहते रहने तथा विस्तृत जानकारी देने के लिए प्रोत्साहित करने की दृष्टि से उन्होंने शुकदेव गोस्वामी का आभार प्रकट किया कि उन्होंने कृष्ण के कार्यकलापों का संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत किया है। शुकदेव गोस्वामी ने कहा था—

जातो गतः पितृ-गृहाद् व्रजमेधितार्थो
हत्वा रिपून् सुतशतानि कृतोरुदारः ।
उत्पाद्य तेषु पुरुषः क्रतुभिः समीजे
आत्मानमात्मनिगमं प्रथयाञ्जनेषु ॥

''लीलापुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण वसुदेव के पुत्र रूप में प्रकट तो हुए, किन्तु वे तुरन्त ही अपने पिता का घर छोड़कर वृन्दावन चले गये जिससे वहाँ अपने विश्वस्त भक्तों के साथ अपने स्नेहमय सम्बन्धों का विस्तार कर सकें। उन्होंने वृन्दावन में अनेक असुरों का वध किया और बाद में वे द्वारका चले गये जहाँ उन्होंने वैदिक विधि से अनेक पत्नियों के साथ विवाह किया जो स्त्रीरत्ना थीं। उनसे सैकड़ों पुत्र उत्पन्न किये और गृहस्थ जीवन के नियमों की स्थापना करने के लिए अपनी पूजा हेतु अनेक यज्ञ सम्पन्न किये।'' (भागवत ९.२४.६६)

यदुवंश सोम अर्थात् चन्द्रदेव से चले आ रहे कुल से सम्बन्धित था। यद्यपि ग्रहों की ऐसी व्यवस्था है कि सूर्य चन्द्रमा से पहले आता है, किन्तु परीक्षित महाराज ने चन्द्रवंश अर्थात् *सोमवंश* को अधिक सम्मान दिया क्योंकि चन्द्रमा से चले आ रहे यादववंश में कृष्ण अवतीर्ण हुए थे। दो पृथक् क्षत्रिय राजवंश हैं चन्द्रग्रह के राजा से चला आने वाला वंश तथा सूर्यग्रह के राजा से चला आने वाला वंश। जब भी भगवान् अवतीर्ण होते हैं, तो सामान्यतया वे क्षत्रियवंश में प्रकट होते हैं क्योंकि वे धर्म के सिद्धान्तों तथा सत्यमय जीवन की स्थापना करने आते हैं। वैदिक प्रणाली के अनुसार क्षत्रियवंश मानव जाति का रक्षक होता है। जब भगवान् श्रीरामचन्द्र के रूप में प्रकट हुए तो वे सूर्य देवता से चले आ रहे सूर्यवंश में अवतरित हुए थे, किन्तु जब वे कृष्ण के रूप में प्रकट हुए तो वे चन्द्रदेवता से चले आ रहे यदुवंश में अवतीर्ण हुए। *श्रीमद्भागवत* के नवम स्कन्ध के चौबीसवें अध्याय में यदुवंशी राजाओं की लम्बी सूची दी हुई है। सोमवंश तथा सूर्यवंश के सारे राजा महान् तथा शक्तिशाली थे और महाराज परीक्षित ने सबकी बड़ी प्रशंसा की थी (*राज्ञां चोभयवंश्यानां चरितं परमाद्भुतम्*)। फिर भी वे सोमवंश के विषय में और अधिक सुनना चाह रहे थे क्योंकि इसी वंश में कृष्ण अवतीर्ण हुए थे।

ब्रह्म-संहिता में भगवान् कृष्ण के परम धाम को चिन्तामणि धाम कहा गया है— *चिन्तामणिप्रकरसद्मसु कल्पवृक्षलक्षावृतेषु सुरभीरभिपालयन्तम्।* इस धरा पर वृन्दावन धाम उसी धाम का प्रतिरूप है। जैसाकि *भगवद्गीता* (८.२०) में कहा गया है वैकुण्ठलोक में एक अन्य नित्य प्रकृति होती है, जो व्यक्त तथा अव्यक्त पदार्थ से परे होती है। व्यक्त जगत को अनेक नक्षत्रों तथा ग्रहों यथा चन्द्रमा तथा सूर्य के रूप में देखा जा सकता है, किन्तु इसके परे अव्यक्त है, जो देहधारियों के लिए अदृश्य होता है। इस अव्यक्त पदार्थ के परे आध्यात्मिक लोक है, जिसे *भगवद्गीता* में परम तथा नित्य

कहा गया है। इस लोक का कभी संहार नहीं होता। यद्यपि भौतिक प्रकृति का बारम्बार सृजन तथा संहार होता रहता है, किन्तु आध्यात्मिक प्रकृति शाश्वत रहती है। *श्रीमद्भागवत* के दशम स्कन्ध में उस आध्यात्मिक प्रकृति, उस आध्यात्मिक जगत का वर्णन वृन्दावन, गोलोक वृन्दावन या व्रजधाम के रूप में हुआ है। नवम स्कन्ध के उपर्युक्त श्लोक *जातोगत: पितृगृहाद्* का विस्तृत वर्णन इस दशम स्कन्ध में मिलेगा।

यदोश्च धर्मशीलस्य नितरां मुनिसत्तम ।
तत्रांशेनावतीर्णस्य विष्णोर्वीर्याणि शंस नः ॥ २ ॥

शब्दार्थ

यदोः—यदु या यदुवंश का; च—भी; धर्म-शीलस्य—जो धर्मनिष्ठ हैं; नितराम्—अत्यन्त योग्य; मुनि-सत्तम—हे मुनियों में श्रेष्ठ अथवा मुनियों के राजा (शुकदेव गोस्वामी); तत्र—उस वंश में; अंशेन—अपने अंश बलदेव के साथ; अवतीर्णस्य—अवतार रूप में प्रकट; विष्णोः—भगवान् विष्णु के; वीर्याणि—महिमामय कार्यकलाप; शंस—कृपया वर्णन करें; नः—हमसे।

हे मुनिश्रेष्ठ, आप परम पवित्र तथा धर्मशील यदुवंशियों का भी वर्णन कर चुके हैं। अब हो सके तो कृपा करके उन भगवान् विष्णु या कृष्ण के अद्भुत महिमामय कार्यकलापों का वर्णन करें जो यदुवंश में अपने अंश बलदेव के साथ प्रकट हुए हैं।

तात्पर्य : *ब्रह्म-संहिता* (५.१) में बतलाया गया है कि *विष्णुतत्त्व* के उद्गम कृष्ण ही हैं :

ईश्वर: परम: कृष्ण: सच्चिदानन्दविग्रह: ।

अनादिरादिर्गोविन्द: सर्वकारणकारणम् ॥

"गोविन्द कहे जाने वाले कृष्ण ही परम नियन्ता हैं। उनका शरीर नित्य, आनन्दमय तथा आध्यात्मिक है। वे सबके उद्गम हैं। उनका कोई अन्य उद्गम नहीं क्योंकि वे समस्त कारणों के कारण हैं।"

यस्यैकनिश्वसितकालमथावलम्ब्य

जीवन्ति लोमविलजा जगदण्डनाथा: ।

विष्णुर्महान स इह यस्य कलाविशेषो

गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥

"असंख्य ब्रह्माण्डों के प्रधान ब्रह्मागण महाविष्णु के एक श्वास की अवधि के बराबर जीवित रहते हैं। महाविष्णु जिन आदि भगवान् गोविन्द के अंशमात्र हैं, मैं उनकी पूजा करता हूँ।" (*ब्रह्म-संहिता*

५.४८)।

गोविन्द या कृष्ण आदि भगवान् हैं। *कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।* यहाँ तक कि वे महाविष्णु, जिनकी श्वास से करोड़ों ब्रह्माण्ड उत्पन्न होते हैं, कृष्ण के *कला विशेष* अर्थात् अंश के भी अंश हैं। महाविष्णु संकर्षण के अंश (कला) हैं, जो नारायण के अंश हैं। नारायण *चतुर्व्यूह* के और चतुर्व्यूह कृष्ण के प्रथम प्राकट्य बलदेव के अंश हैं। अत: जब बलदेव समेत कृष्ण आविर्भूत हुए तो उनके साथ सारे के सारे विष्णुतत्त्व प्रकट हुए।

महाराज परीक्षित ने शुकदेव गोस्वामी से प्रार्थना की कि वे कृष्ण तथा उनके महिमामय कार्यकलापों का वर्णन करें। इस श्लोक का एक दूसरा भी अर्थ निकलता है। यद्यपि शुकदेव गोस्वामी सबसे बड़े मुनि थे तो भी वे कृष्ण का आंशिक (*अंशेन*) वर्णन ही कर सके क्योंकि कृष्ण का पूरा-पूरा वर्णन कोई नहीं कर सकता। कहा जाता है कि अनन्तदेव के हजारों सिर हैं और यद्यपि वे अपनी हजारों जीभों से कृष्ण का वर्णन करने का प्रयत्न करते हैं, तो भी यह वर्णन अधूरा ही रहता है।

अवतीर्य यदोर्वंशे भगवान्भूतभावन: ।
कृतवान्यानि विश्वात्मा तानि नो वद विस्तरात् ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

अवतीर्य—अवतार लेकर; यदो: वंशे—यदुवंश में; भगवान्—भगवान्; भूत-भावन:—विराट जगत के कारणस्वरूप; कृतवान्—सम्पन्न किया; यानि—जो भी (कार्य); विश्व-आत्मा—सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के परमात्मा; तानि—उन सभी (कार्यों) को; न:—हमसे; वद—कहें; विस्तरात्—विस्तार से।

परमात्मा अर्थात् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण, जो विराट जगत के कारण हैं, यदुवंश में प्रकट हुए। आप कृपा करके मुझे उनके यशस्वी कार्यकलापों तथा उनके चरित्र का आदि से लेकर अन्त तक वर्णन करें।

तात्पर्य : इस श्लोक में आये *कृतवान् यानि* शब्द सूचित करते हैं कि इस धरा में रहते हुए कृष्ण ने जितने भी कार्यकलाप किये वे मानव समाज के लिए लाभप्रद हैं। यदि धर्मवेत्ता, दार्शनिक तथा सामान्य लोग कृष्ण के कार्यकलापों का केवल श्रवण करें तो उनको मुक्ति मिल सकती है। हमने कई बार कहा है कि कृष्णकथा दो प्रकार की है—एक तो *भगवद्गीता* जिसे भगवान् कृष्ण ने अपने विषय में कहा है और दूसरी *श्रीमद्भागवत* जिसे शुकदेव गोस्वामी ने कृष्ण की महिमा के विषय में कहा है। जो भी व्यक्ति कृष्णकथा में थोड़ी सी भी रुचि दिखलाता है, वह मुक्ति प्राप्त करता है। *कीर्तनाद् एव कृष्णस्य*

मुक्तसंग: परं व्रजेत् (*भागवत* १२.३.५१)। केवल कीर्तन करने अथवा बारम्बार कृष्णकथा कहने से मनुष्य कलियुग के कल्मष से मुक्त हो जाता है। इसीलिए चैतन्य महाप्रभु ने उपदेश दिया है— *यारे देख, तारे कह 'कृष्ण' उपदेश* (*चैतन्य-चरितामृत,* मध्य ७.१२८)। कृष्णभावनामृत का उद्देश्य है—कृष्ण के विषय में सुनकर भवबन्धन से निवृत्त हो जाना।

निवृत्ततर्षैरुपगीयमानाद्
भवौषधाच्छ्रोत्रमनोऽभिरामात् ।
क उत्तमश्लोकगुणानुवादात्
पुमान्विरज्येत विना पशुघ्नात् ॥ ४॥

शब्दार्थ

निवृत्त—मुक्त; तर्षैः—काम या भौतिक कार्यों से; उपगीयमानात्—वर्णित या गाया जाने वाला; भव-औषधात्—भौतिक रोग की सही औषधि से; श्रोत्र—कानों से सुनने की विधि; मनः—मन के लिए विचार का विषय; अभिरामात्—ऐसे महिमा-वर्णन की सुहावनी ध्वनि से; कः—कौन; उत्तमश्लोक—भगवान् का; गुण-अनुवादात्—ऐसे कार्यों का वर्णन करने से; पुमान्—मनुष्य; विरज्येत—अपने को विलग रख सकता है; विना—रहित; पशु-घ्नात्—कसाई अथवा अपने आप का ही वध करने वाले से।

भगवान् की महिमा का वर्णन परम्परा-पद्धति से किया जाता है अर्थात् यह अध्यात्मिक गुरु से शिष्य तक पहुँचाया जाता है। ऐसे वर्णन का आनन्द उन लोगों को मिलता है, जो इस जगत के मिथ्या, क्षणिक वर्णन में रुचि नहीं रखते। भगवान् का गुणगान जन्म-मृत्यु के चक्कर में फँसे बद्धजीवों के लिए उपयुक्त औषधि है। अतएव कसाई (पशुघाती) या अपने को ही मारने वाले (आत्मघाती) के अतिरिक्त भगवान् की महिमा को सुनना कौन नहीं चाहेगा?

तात्पर्य : भारत में सामान्य लोगों के बीच यह आम प्रथा है कि बारम्बार जन्म-मरण के रोग से छुटकारा पाने के लिए वे *भगवद्गीता* या *श्रीमद्भागवत* से कृष्ण के विषय में सुनते हैं। यद्यपि अब भारत पतित हो चुका है, किन्तु यह समाचार मिलते ही कि अमुक व्यक्ति *भगवद्गीता* या *श्रीमद्भागवत* पर बोलेगा, अब भी हजारों लोग सुनने के लिए एकत्र हो जाते हैं। किन्तु यह श्लोक इंगित करता है कि *भगवद्गीता* तथा *श्रीमद्भागवत* का ऐसा पाठ ऐसे व्यक्तियों द्वारा किया जाना चाहिए जो भौतिक इच्छाओं से पूरी तरह मुक्त हो चुके हों (*निवृत्ततर्षै*)। इस जगत में ब्रह्मा से लेकर एक क्षुद्र चींटी तक सारे जीव इन्द्रियभोग की भौतिक इच्छा से पूर्ण हैं और हर प्राणी इन्द्रियतृप्ति में लगा हुआ है, किन्तु इस तरह लगे रहने पर कृष्णकथा के महत्त्व को, चाहे वह *भगवद्गीता* के रूप में हो, चाहे

श्रीमद्भागवत के रूप में, पूरी तरह नहीं समझा जा सकता।

यदि हम मुक्तपुरुषों के मुख से भगवान् की महिमा के विषय में सुनें तो इससे भवबन्धन से अवश्य छूट सकते हैं, किन्तु *श्रीमद्भागवत* के पेशेवर वाचकों से सुनने पर वास्तव में मुक्ति-प्राप्ति में कोई सहायता नहीं मिल सकती है। कृष्णकथा अतीव सरल है। *भगवद्गीता* में कहा गया है कि कृष्ण परमेश्वर हैं। वे स्वयं बतलाते हैं—*मत्तः परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति धनञ्जय*—हे अर्जुन! मुझसे श्रेष्ठ कोई सत्य नहीं है (*भगवद्गीता* ७.७)। केवल इतना ही जान लेने से कि कृष्ण परमेश्वर हैं, मुक्त हुआ जा सकता है। किन्तु इस कलियुग में लोग असली लाभ से वंचित रहते हैं क्योंकि वे ऐसे धूर्त व्यक्तियों से *भगवद्गीता* सुनना पसन्द करते हैं, जो *भगवद्गीता* को यथारूप में प्रस्तुत न करके उसे अपनी इच्छानुसार तोड़ते-मरोड़ते हैं। बड़े-बड़े विद्वान, राजनीतिज्ञ, दार्शनिक तथा वैज्ञानिक अपने ही दूषित तरीके से *भगवद्गीता* पर प्रवचन करते हैं और सामान्य लोग इन्हीं से सुनते हैं क्योंकि वे किसी भक्त से भगवान् के गुणानुवाद को सुनने में रुचि नहीं रखते। भक्त वह है, जो भगवान् की सेवा करने के अतिरिक्त *भगवद्गीता* तथा *श्रीमद्भागवत* का पाठ करते हुए कोई अन्य प्रयोजन नहीं रखता। इसीलिए श्री चैतन्य महाप्रभु ने हम सबको सलाह दी है कि स्वरूपसिद्ध व्यक्ति से ही भगवान् का गुणानुवाद सुना जाय (*भागवत परो दिय भागवत स्थाने*)। जब तक कोई कृष्णभावनामृत विज्ञान में सिद्धात्मा न हो तब तक नवदीक्षित को चाहिए कि वह उससे भगवान् के विषय में सुनाने के लिए न कहे क्योंकि श्रील सनातन गोस्वामी ने *पद्मपुराण* से निम्नलिखित उद्धरण देते हुए ऐसा करने से मना किया है—

अवैष्णव मुखोद्गीर्णं पूतं हरिकथामृतम्।
श्रवणं नैव कर्तव्यं सर्पोच्छिष्टं यथा पयः॥

जो वैष्णव-आचरण वाला न हो उससे कथा नहीं सुननी चाहिए। वैष्णव तो *निवृत्त-तृष्ण* होता है—उसका कोई भौतिक उद्देश्य नहीं होता क्योंकि उसका एकमात्र उद्देश्य कृष्णभावनामृत का प्रचार करना होता है। तथाकथित विद्वान, दार्शनिक तथा राजनीतिज्ञ स्वार्थवश *भगवद्गीता* के अर्थ को तोड़-मरोड़ कर अपना उल्लू सीधा करना चाहते हैं। इसीलिए यह श्लोक सावधान करता है कि कृष्णकथा का वाचन वही करे जो *निवृत्त-तृष्ण* हो। शुकदेव गोस्वामी *श्रीमद्भागवत* के आदर्श उपयुक्त वाचक हैं और मृत्यु का सामना करने के पूर्व अपना राज्य तथा परिवार को किसी उद्देश्य से छोड़ने वाले परीक्षित

महाराज आदर्श श्रोता हैं। *श्रीमद्भागवत* का सुयोग्य वाचक बद्धजीवों को सही औषधि (*भवौषधि*) प्रदान करता है। इसीलिए कृष्णभावनामृत आन्दोलन ऐसे योग्य प्रचारकों को प्रशिक्षित करने में प्रयत्नशील है, जो सारे जगत में *श्रीमद्भागवत* तथा *भगवद्गीता* का वाचन कर सकें जिससे विश्वभर के सामान्यजन इस आन्दोलन का लाभ उठा सकें और भौतिक संसार के तीनों तापों से छूट सकें।

भगवद्गीता के आदेश तथा *श्रीमद्भागवत* के वर्णन इतने मनोहारी हैं कि भौतिक संसार के तीनों तापों से तप्त प्राय: प्रत्येक व्यक्ति इन ग्रंथों में से भगवान् की महिमा को सुनना चाहेगा और मुक्ति के मार्ग में लाभ उठाना चाहेगा। किन्तु दो प्रकार के लोग कभी-भी *भगवद्गीता* तथा *श्रीमद्भागवत* के सन्देश को सुनने में रुचि नहीं लेंगे—एक वे जो आत्महत्या करने पर तुले हैं और दूसरे वे जो अपने स्वाद के लिए गौवों तथा अन्य पशुओं का वध करने पर तुले हुए हैं। यद्यपि ऐसे लोग भागवत-सप्ताह के समय *श्रीमद्भागवत* सुनने का दिखावा करते हैं, किन्तु यह कर्मीजनों की दूसरी सृष्टि है जिन्हें ऐसे कृत्य से कोई लाभ नहीं मिल सकता। इस सम्बन्ध में *पशुघ्नात्* शब्द महत्त्वपूर्ण है। *पशुघ्न* का अर्थ है ''कसाई।'' उच्चत्तर लोकों में जाने के लिए कर्मकाण्डी व्यक्तियों को यज्ञ करते समय पशुओं का वध करना होता है इसीलिए भगवान् बुद्धदेव ने वेदों के प्रमाण का तिरस्कार किया क्योंकि वे पशुबलि को रोकना चाहते थे जिनकी वैदिक अनुष्ठानों में संस्तुति की गई है।

निन्दसि यज्ञविधेरहह श्रुतिजातं
सदयहृदय दर्शितपशुघातं
केशव धृतबुद्धशरीर जय जगदीश हरे

(*गीत गोविन्द*)

यद्यपि वैदिक उत्सवों में पशुबलि को मान्यता प्राप्त है, किन्तु ऐसे उत्सवों के लिए जो व्यक्ति पशुओं का वध करते हैं, वे कसाई (*पशुघ्न*) माने जाते हैं। भला कसाइयों को कृष्णभावनामृत में कैसे रुचि हो सकती है जब उन्हें भौतिक आकर्षण मिला रहता है? उनकी एकमात्र रुचि नश्वर शरीर के लिए सुविधाएँ उत्पन्न करने में होती है—

भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम्।
व्यवसायात्मिका बुद्धि: समाधौ न विधीयते॥

''जो लोग इन्द्रियभोग तथा भौतिक ऐश्वर्य के प्रति आसक्त हैं और जो ऐसी वस्तुओं से मोहग्रस्त रहते हैं उनके मन में भगवान् की भक्ति के लिए दृढ़ संकल्प नहीं बन पाता।'' (भगवद्गीता २.४४) श्रील नरोत्तमदास ठाकुर कहते हैं—

मनुष्य जन्म पाइया, राधा-कृष्ण ना भजिया

जानिया शुनिया विष खाइनु

जो कृष्णभावनाभावित नहीं है और इस तरह जो भगवान् की सेवा में अपने को नहीं लगाता वह भी *पशुघ्न* है क्योंकि वह जानबूझ कर विष पीता है। ऐसे व्यक्ति को कृष्णकथा में रुचि नहीं होती क्योंकि उसमें इन्द्रियतृप्ति की लालसा शेष रहती है। वह *निवृत्ततृष्ण* नहीं होता। जैसाकि कहा गया है—*त्रैवर्गिकास्ते पुरुषा विमुरवा हरिमेधस:।* जिन्हें *त्रिवर्ग* अर्थात् धर्म, अर्थ तथा काम में रुचि रहती है वे भौतिक पद प्राप्त करने तथा उसके द्वारा इन्द्रियतृप्ति के लिए अच्छी-अच्छी सुविधाएँ प्राप्त करने के निमित्त धार्मिक होते हैं। ऐसे लोग अपने को जानबूझ कर जन्म-मरण के चक्र में डालकर अपनी हत्या करते हैं। वे कृष्णभावनामृत में कभी-भी रुचि नहीं ले सकते।

कृष्णकथा के लिए वक्ता तथा श्रोता होना चाहिए और ये दोनों कृष्णभावनामृत में तभी रुचि ले सकेंगे जब उन्हें भौतिक कथाओं में रुचि न हो। वास्तव में यह हर कोई देख सकता है कि जो लोग कृष्णभावनाभावित हैं उनमें यह प्रवृत्ति स्वत: उत्पन्न होती है। यद्यपि कृष्णभावनामृत आन्दोलन के भक्तगण तरुण व्यक्ति हैं, किन्तु वे भौतिकतावादी अखबार, पत्रिकाएँ इत्यादि नहीं पढ़ते क्योंकि उन्हें ऐसी कथाओं में कोई रुचि नहीं होती (*निवृत्ततर्षै*)। वे देहात्मबुद्धि का सर्वथा परित्याग कर देते हैं। गुरु उत्तमश्लोक अर्थात् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् विषयक कथाओं को कहता है और शिष्य ध्यान से उन्हें सुनता है। जब तक दोनों भौतिक इच्छाओं से मुक्त नहीं हो लेते, तब तक उन्हें कृष्णभावनामृत की कथाओं में रुचि नहीं हो सकती। गुरु तथा शिष्य को कृष्ण के अतिरिक्त और कुछ समझने की आवश्यकता नहीं रहती क्योंकि कृष्ण को समझने तथा कृष्ण के विषय में बातें करने मात्र से ही व्यक्ति पूर्णतया विद्वान बन सकता है (*यस्मिन् विज्ञाते सर्वमेवं विज्ञातं भवति*)। भगवान् हर एक के हृदय में आसीन रहता है और उनकी कृपा से भक्त तो भगवान् से ही सीधे आदेश प्राप्त करता है जैसाकि *भगवद्गीता* (१५.१५) में भगवान् ने कहा है—

सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च।

वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद् वेदविदेव चाहम्॥

''मैं हर एक के हृदय में आसीन हूँ और मुझी से स्मृति, ज्ञान तथा विस्मृति उत्पन्न होते हैं। सारे वेदों के द्वारा मैं ही वेद्य हूँ। मैं ही वेदान्त का रचयिता और वेदों का ज्ञाता हूँ।'' कृष्णभावनामृत इतना उच्च है कि कृष्णभावनाभावित व्यक्ति गुरु के निर्देशन से *श्रीमद्भागवत, भगवद्गीता* तथा अन्य वैदिक साहित्य में प्राप्य कृष्णकथा को पढ़कर तुष्ट रहता है। जब कृष्ण के विषय में केवल बातें करना इतना सुहावना लगता है, तो फिर कृष्ण की सेवा करना कितना सुहावना होगा, इसकी कल्पना की जा सकती है।

जब मुक्तगुरु तथा उसके शिष्य के मध्य कृष्णकथा पर वार्ताएँ होती हैं, तो अन्य लोग भी कभी कभी इन कथाओं को सुनकर लाभ उठाते हैं। ये कथाएँ जन्म तथा मृत्यु के चक्र को रोकने में रामबाण औषधि का कार्य करती हैं। बारम्बार जन्म तथा मृत्यु का चक्र, जिससे मनुष्य को पुनः-पुनः विभिन्न शरीर ग्रहण करने पड़ते हैं, *भव* या *भवरोग* कहलाता है। यदि कोई व्यक्ति इच्छा या अनिच्छा से कृष्णकथा सुनता है, तो उसका भवरोग अर्थात् जन्म-मरण का रोग निश्चय ही जाता रहता है। इसलिए कृष्णकथा को *भवौषधि*—जन्म-मृत्यु के चक्र को रोकने की औषधि—कहा गया है। कर्मीजन जो भौतिक इन्द्रियतृप्ति में आसक्त हैं, सामान्यतया अपनी भौतिक इच्छाओं का परित्याग नहीं कर सकते, किन्तु कृष्णकथा ऐसी रामबाण औषधि है कि कृष्णकथा सुनने के लिए प्रेरित होने पर वह इस रोग से निश्चित रूप से मुक्त हो जाता है। इसके ज्वलन्त उदाहरण ध्रुव महाराज हैं, जो अपनी तपस्या के बाद अत्यन्त तुष्ट थे। जब भगवान् ने उन्हें वर देना चाहा तो ध्रुव ने वर लेने से मना कर दिया। *स्वामिन् कृतार्थोऽस्मि वरं न याचे*—हे प्रभु! मैं पूरी तरह से तुष्ट हो गया हूँ, मुझे इन्द्रियतृप्ति के लिए कोई वर नहीं चाहिए। हम देख रहे हैं कि कृष्णभावनामृत आन्दोलन में युवकों तथा युवतियों तक ने अपनी बुरी से बुरी आदतें जैसे अवैध यौन, मांसाहार, नशा तथा जुआ खेलना छोड़ दी हैं। चूँकि कृष्णभावनामृत इतना प्रबल है कि इससे उन्हें पूर्ण सन्तोष मिलता है अतएव वे भौतिक इन्द्रियतृप्ति में रुचि नहीं लेते।

पितामहा मे समरेऽमरञ्जयै-

देवव्रताद्यातिरथैस्तिमिङ्गिलैः ।
दुरत्ययं कौरवसैन्यसागरं
कृत्वातरन्वत्सपदं स्म यत्प्लवाः ॥ ५ ॥
द्रौण्यस्त्रविप्लुष्टमिदं मदङ्गं
सन्तानबीजं कुरुपाण्डवानाम् ।
जुगोप कुक्षिं गत आत्तचक्रो
मातुश्च मे यः शरणं गतायाः ॥ ६ ॥
वीर्याणि तस्याखिलदेहभाजा-
मन्तर्बहिः पूरुषकालरूपैः ।
प्रयच्छतो मृत्युमुतामृतं च
मायामनुष्यस्य वदस्व विद्वन् ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

पितामहाः—पाँचों पाण्डव, जो मेरे बाबा हैं; मे—मेरे; समरे—कुरुक्षेत्र के युद्धस्थल में; अमरम् जयैः—युद्धभूमि में देवताओं पर विजय प्राप्त करने वाले योद्धाओं समेत; देवव्रत-आद्य—भीष्मदेव तथा अन्य; अतिरथैः—महा सेनापतियों के साथ; तिमिङ्गिलैः—तिमिंगिल (बड़ी मछली) के समान; दुरत्ययम्—दुर्लंघ्य; कौरव-सैन्य-सागरम्—कौरवों के एकत्र सैनिकों के सागर को; कृत्वा—मानकर; अतरन्—पार कर लिया; वत्स-पदम्—गो खुर के समान; स्म—था; यत्-प्लवाः—कृष्ण की चरणकमल रूपी नाव का आश्रय; द्रौणि—अश्वत्थामा के; अस्त्र—ब्रह्मास्त्र से; विप्लुष्टम्—आक्रमण करके जलाया गया; इदम्—यह; मत्-अङ्गम्—मेरा शरीर; सन्तान-बीजम्—एकमात्र बचा हुआ बीज, वंश का अन्तिम उत्तराधिकारी; कुरु-पाण्डवानाम्—कौरवों तथा पाण्डवों का (कुरुक्षेत्र में मेरे अतिरिक्त सभी लोग मारे जा चुके हैं); जुगोप—शरण दी; कुक्षिम्—गर्भ में; गतः—स्थापित; आत्त-चक्रः—हाथ में चक्र लिए; मातुः—माता का; च—भी; मे—मेरी; यः—जो भगवान्; शरणम्—शरण; गतायाः—ग्रहण कर ली है; वीर्याणि—दिव्य गुणों का गान; तस्य—उस (भगवान्) का; अखिल-देह-भाजाम्—समस्त देहधारी जीवों का; अन्तः बहिः—भीतर तथा बाहर; पूरुष—परम पुरुष का; काल-रूपैः—नित्य समय के रूपों में; प्रयच्छतः—देने वाला; मृत्युम्—मृत्यु को; उत—ऐसा कहा जाता है; अमृतम् च—तथा शाश्वत जीवन; माया-मनुष्यस्य—भगवान् का, जो अपनी शक्ति से मनुष्य रूप में प्रकट हुए हैं; वदस्व—कृपा करके कहें; विद्वन्—हे विद्वान (शुकदेव गोस्वामी)।

कृष्ण के चरणकमल रूपी नाव को लेकर मेरे बाबा अर्जुन तथा अन्यों ने उस कुरुक्षेत्र युद्धस्थल रूपी सागर को पार कर लिया जिसमें भीष्मदेव जैसे सेनापति उन बड़ी-बड़ी मछलियों के तुल्य थे, जो उन्हें आसानी से निगल गई होतीं। मेरे पितामहों ने भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा से इस दुर्लंघ्य सागर को इतनी सरलता से पार कर लिया मानो कोई गोखुर का चिन्ह हो। चूँकि मेरी माता ने सुदर्शन चक्रधारी भगवान् श्रीकृष्ण के चरणकमलों की शरण ग्रहण की थी अतः उन्होंने उनके गर्भ में प्रवेश करके मुझे बचा लिया जो कौरवों तथा पाण्डवों का अन्तिम बचा हुआ उत्तराधिकारी था और जिसे अश्वत्थामा ने अपने ब्रह्मास्त्र से नष्टप्राय कर दिया था। भगवान् कृष्ण ने समस्त देहधारी जीवों के भीतर तथा बाहर शाश्वत काल के रूपों में—यथा परमात्मा तथा विराट रूपों में—अपनी शक्ति से प्रकट होकर हर एक को क्रूर मृत्यु के रूप में या जीवन के रूप में मोक्ष प्रदान किया। कृपया उनके दिव्य गुणों का वर्णन करके मुझे प्रबुद्ध कीजिए।

तात्पर्य : जैसाकि *श्रीमद्भागवत* (.१४.५८) में में कहा गया है—

समाश्रिता ये पदपल्लवप्लवं

महत्पदं पुण्ययशो मुरारेः।

भवाम्बुधिर्वत्सपदं परं पदं

पदं पदं यद् विपदां न तेषाम्॥

"जिसने विराट जगत के आश्रय तथा मुरारि अर्थात् मुर नामक असुर के शत्रु, भगवान् के चरणकमल रूपी नाव को पकड़ लिया है उसके लिए यह भवसागर गोखुर में भरे जल के समान है। उसका लक्ष्य *परं पदं* अर्थात् वैकुण्ठ होता है जहाँ भौतिक कष्टों का नामोनिशान नहीं रहता, न कि वह स्थान जहाँ पग-पग पर संकट है।"

जो व्यक्ति भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों की शरण लेता है उसे तुरन्त ही भगवान् सुरक्षा प्रदान करते हैं। *भगवद्गीता* (१८.६६) में भगवान् वचन देते हैं—*अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः*—मैं तुम्हें सारे पापों से उबार लूँगा; तुम डरो मत—भगवान् कृष्ण की शरण में आने से मनुष्य सबसे सुरक्षित आश्रय प्राप्त कर लेता है। इस तरह जब पाण्डवों ने कृष्ण के चरणकमलों की शरण ग्रहण कर ली तो वे कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि में सुरक्षित दल में आ गये। इसीलिए परीक्षित महाराज अपने जीवन के अन्तिम दिनों में कृष्ण का चिन्तन करते हुए कृतज्ञता का अनुभव कर रहे थे। कृष्णभावनामृत का यह आदर्श फल है—*अन्ते नारायणस्मृतिः।* यदि मृत्यु के समय कोई कृष्ण का स्मरण कर सके तो उसका जीवन सफल हो जाता है। इसीलिए परीक्षित महाराज ने अपने जीवन के अन्तिम दिनों में कृष्ण की अनेक कृतज्ञताओं के कारण कृष्ण का निरन्तर चिन्तन करने की बुद्धिमानी की। कृष्ण ने महाराज परीक्षित के बाबाओं को कुरुक्षेत्र के युद्धस्थल में बचाया था और कृष्ण ने स्वयं महाराज परीक्षित की उस समय रक्षा की थी जब अश्वत्थामा ने ब्रह्मास्त्र से उन पर आक्रमण किया था। पाण्डव परिवार के लिए कृष्ण एक मित्र तथा आराध्यदेव के तुल्य थे। भगवान् कृष्ण का पाण्डवों के साथ व्यक्तिगत संपर्क होने के अतिरिक्त, कृष्ण सारे जीवों के परमात्मा हैं और हर एक को मुक्ति प्रदान करने वाले हैं—भले ही कोई शुद्ध भक्त हो या न हो। उदाहरणार्थ, कंस बिलकुल भक्त नहीं था फिर भी उसे मारने के बाद कृष्ण ने उसे मोक्ष प्रदान किया। कृष्णभावनामृत हर एक के लिए लाभप्रद है, चाहे वह शुद्ध भक्त हो या

अभक्त। कृष्णभावनामृत की यही महिमा है। यह विचार कर भला कौन ऐसा होगा जो कृष्ण के चरणकमलों की शरण ग्रहण नहीं करेगा? इस श्लोक में कृष्ण को *मायामनुष्य* कहा गया है क्योंकि वे बिलकुल मनुष्य की ही तरह अवतरित होते हैं। वे कर्मियों या सामान्य जीवों की तरह यहाँ आने के लिए बाध्य नहीं हैं प्रत्युत वे अपनी अन्तरंगा शक्ति के द्वारा (*सम्भवाम्यात्ममायया*) पतित बद्धजीवों पर कृपा दिखाने के लिए प्रकट होते हैं। कृष्ण अपने *सच्चिदानन्द विग्रह* रूप में सदैव स्थित रहते हैं और जो कोई उनकी सेवा करता है, वह भी अपने मूल आध्यात्मिक स्वरूप में स्थित हो जाता है (*स्वरूपेण व्यवस्थितिः*) । यही मानव जीवन की सर्वोच्च सिद्धि है।

रोहिण्यास्तनयः प्रोक्तो रामः सङ्कर्षणस्त्वया ।
देवक्या गर्भसम्बन्धः कुतो देहान्तरं विना ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

रोहिण्याः—बलदेव की माता रोहिणी देवी का; तनयः—पुत्र; प्रोक्तः—विख्यात; रामः—बलराम; सङ्कर्षणः—संकर्षण और कोई नहीं, बलराम हैं, जो चतुर्व्यूह (संकर्षण, अनिरुद्ध, प्रद्युम्न तथा वासुदेव) में प्रथम हैं; त्वया—आपके द्वारा (ऐसा कहा जाता है); देवक्याः—कृष्ण की माता, देवकी का; गर्भ-सम्बन्धः—गर्भ सम्बन्धी; कुतः—कैसे; देह-अन्तरम्—शरीरों के स्थानान्तरण के; विना—बिना.

हे शुकदेव गोस्वामी, आप पहले ही बता चुके हैं कि द्वितीय चतुर्व्यूह से सम्बन्धित संकर्षण रोहिणी के पुत्र बलराम के रूप में प्रकट हुए। यदि बलराम को एक शरीर से दूसरे शरीर में स्थानान्तरित न किया गया होता तो यह कैसे सम्भव हो पाता कि वे पहले देवकी के गर्भ में रहते और बाद में रोहिणी के गर्भ में? कृपया मुझसे इसकी व्याख्या कीजिए।

तात्पर्य : यहाँ पर एक प्रश्न उठाया गया है, जो विशेष रूप से साक्षात् संकर्षण, बलराम को समझने की ओर लक्ष्यित है। यह प्रसिद्ध है कि बलराम रोहिणी के पुत्र थे, किन्तु यह भी ज्ञात है कि वे देवकी के पुत्र थे। परीक्षित महाराज इस रहस्य को जानना चाहते थे कि बलराम देवकी तथा रोहिणी दोनों ही के पुत्र किस तरह थे?

कस्मान्मुकुन्दो भगवान्पितुर्गेहाद्व्रजं गतः ।
क्व वासं ज्ञातिभिः सार्धं कृतवान्सात्वतां पतिः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

कस्मात्—क्यों; मुकुन्दः—हर एक को मोक्ष देने वाले कृष्ण; भगवान्—भगवान्; पितुः—अपने पिता (वसुदेव) के; गेहात्—घर से; व्रजम्—व्रजधाम या व्रजभूमि; गतः—गये; क्व—कहाँ; वासम्—रहने के लिए रखा; ज्ञातिभिः—उनके सम्बन्धियों के; सार्धम्—साथ; कृतवान्—कर दिया; सात्वताम् पतिः—समस्त वैष्णव भक्तों के स्वामी।.

भगवान् कृष्ण ने अपने पिता वसुदेव का घर क्यों छोड़ा और अपने को वृन्दावन में नन्द के घर क्यों स्थानान्तरित किया? यदुवंश के स्वामी अपने सम्बन्धियों के साथ वृन्दावन में कहाँ रहे?

तात्पर्य : ये कृष्ण के परिभ्रमण-विषयक प्रश्न हैं। मथुरा में वसुदेव के घर में जन्म लेने के तुरन्त बाद कृष्ण यमुना के उस पार गोकुल गाँव चले गये और कुछ दिनों के बाद वे अपने पिता, माता तथा अन्य सम्बन्धियों के साथ नन्द गाँव, वृन्दावन चले गये। महाराज परीक्षित कृष्ण की वृन्दावन लीलाओं को सुनने के लिए अत्यन्त उत्सुक थे। *श्रीमद्भागवत* का यह सम्पूर्ण स्कन्ध वृन्दावन तथा द्वारका में सम्पन्न लीलाओं से भरा पड़ा है। प्रथम चालीस अध्यायों में कृष्ण के वृन्दावन के कार्यकलापों का वर्णन हुआ है और अगले पचास अध्यायों में कृष्ण की द्वारका लीलाओं का वर्णन है। महाराज परीक्षित ने कृष्ण के विषय में सुनने की अपनी इच्छापूर्ति के लिए शुकदेव गोस्वामी से प्रार्थना की कि वे इन लीलाओं का विस्तार से वर्णन करें।

व्रजे वसन्किमकरोन्मधुपुर्यां च केशवः ।
भ्रातरं चावधीत्कंसं मातुरद्धातदर्हणम् ॥ ॥

शब्दार्थ

व्रजे—वृन्दावन में; वसन्—रहते हुए; किम् अकरोत्—उन्होंने क्या किया; मधुपुर्याम्—मथुरा में; च—तथा; केशवः—केशी के संहार करने वाले, कृष्ण ने; भ्रातरम्—भाई; च—तथा; अवधीत्—मारा; कंसम्—कंस को; मातुः—अपनी माता के; अद्धा—प्रत्यक्ष; अ-तत्-अर्हणम्—शास्त्र जिसकी अनुमति नहीं देते।

भगवान् कृष्ण वृन्दावन तथा मथुरा दोनों जगह रहे तो वहाँ उन्होंने क्या किया? उन्होंने अपनी माता के भाई (मामा) कंस को क्यों मारा जबकि शास्त्र ऐसे वध की रंचमात्र भी अनुमति नहीं देते?

तात्पर्य : मामा का पद पिता के तुल्य होता है। मामा के सन्तान न होने पर भाञ्जा ही उसकी संपत्ति का वैध उत्तराधिकारी बनता है। तो फिर कृष्ण ने अपनी माता के भाई को क्यों मारा? महाराज परीक्षित को ये बातें जानने की अत्यन्त उत्सुकता थी।

देहं मानुषमाश्रित्य कति वर्षाणि वृष्णिभिः ।
यदुपुर्यां सहावात्सीत्पत्न्यः कत्यभवन्प्रभोः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

देहम्—शरीर; मानुषम्—मनुष्य की ही तरह; आश्रित्य—स्वीकार करके; कति वर्षाणि—कितने वर्षों तक; वृष्णिभिः—वृष्णि वंश में उत्पन्न होने वालों के साथ में; यदु-पुर्याम्—यदुओं के आवास-स्थानों में, द्वारका में; सह—साथ; अवात्सीत्—भगवान् रहे; पत्न्यः—पत्नियाँ; कति—कितनी; अभवन्—हुईं; प्रभोः—भगवान् के.

भगवान् कृष्ण का शरीर भौतिक नहीं है, फिर भी वे मानव के रूप में प्रकट होते हैं। वे वृष्णि के वंशजों के साथ कितने वर्षों तक रहे? उनके कितनी पत्नियाँ थीं? वे द्वारका में कितने वर्षों तक रहे?

तात्पर्य : अनेक स्थलों पर भगवान् को *सच्चिदानन्द विग्रह* अर्थात् दिव्य आनन्दमय शरीर वाले कहा गया है। उनका स्वरूप *नराकृति* अर्थात् मनुष्य जैसा है। यहाँ पर इसी भाव को *मानुषम् आश्रित्य* द्वारा दुहराया गया है, जो इस बात का सूचक है कि वे मनुष्य जैसा ही शरीर धारण करते हैं। सर्वत्र इसकी पुष्टि हुई है कि कृष्ण *निराकार* नहीं हैं। उनका स्वरूप मनुष्य जैसा है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

एतदन्यच्च सर्वं मे मुने कृष्णविचेष्टितम् ।
वक्तुमर्हसि सर्वज्ञ श्रद्दधानाय विस्तृतम् ॥ १२॥

शब्दार्थ

एतत्—ये सारी बातें; अन्यत् च—तथा अन्य बातें भी; सर्वम्—सारी बातें; मे—मुझको; मुने—हे मुनि; कृष्ण-विचेष्टितम्—भगवान् कृष्ण के कार्यकलापों को; वक्तुम्—बतलाने में; अर्हसि—समर्थ हैं; सर्व-ज्ञ—सब कुछ जानने वाले; श्रद्दधानाय—श्रद्धावान होने के कारण; विस्तृतम्—विस्तार से।.

हे महामुनि, आप कृष्ण के विषय में सब कुछ जानते हैं अतएव उन सारे कार्यकलापों का वर्णन विस्तार से करें जिनके बारे में मैंने पूछा है तथा उनके बारे में भी जिनके विषय में मैंने नहीं पूछा क्योंकि उन पर मेरा पूर्ण विश्वास है और मैं उन सबको सुनने के लिए अत्यन्त उत्सुक हूँ।

नैषातिदु:सहा क्षुन्मां त्यक्तोदमपि बाधते ।
पिबन्तं त्वन्मुखाम्भोजच्युतं हरिकथामृतम् ॥ १३॥

शब्दार्थ

न—नहीं; एषा—यह सब; अति-दु:सहा—सहने में अत्यन्त कठिन; क्षुत्—भूख; माम्—मुझको; त्यक्त-उदम्—जल ग्रहण करना छोड़ देने के बाद; अपि—भी; बाधते—बाधा नहीं डालता; पिबन्तम्—पीते रहने पर; त्वत्-मुख-अम्भोज-च्युतम्—आपके कमलमुख से निकला हुआ; हरि-कथा-अमृतम्—कृष्ण कथा का अमृत।.

मृत्यु द्वार पर होते हुए अपने व्रत के कारण मैंने जल ग्रहण करना भी छोड़ दिया है फिर भी आपके कमलमुख से निकले कृष्ण-कथा रूपी अमृत का पान करने से मेरी असह्य भूख तथा प्यास मुझे किसी तरह भी बाधा नहीं पहुँचा रही।

तात्पर्य : सात दिनों के भीतर मरने की तैयारी करने के उद्देश्य से महाराज परीक्षित ने भोजन तथा जल ग्रहण करना छोड़ दिया था। मनुष्य होने के नाते उनको भूख तथा प्यास लगनी स्वाभाविक थी इसलिए शुकदेव गोस्वामी कृष्णकथा बन्द करना चाह रहे होंगे, किन्तु महाराज परीक्षित उपवास रखने के बावजूद भी थके हुए नहीं थे। उन्होंने कहा, ''मेरे उपवास से उत्पन्न भूख तथा प्यास मुझे नहीं सतातीं। एक बार मैं अत्यन्त प्यासा था, तो जल पीने के लिए शमीक मुनि के आश्रम गया था, किन्तु मुनि ने मुझे जल नहीं दिया। अतएव मैंने उस मुनि के कन्धे पर एक मृत सर्प लपेट दिया था जिसके फलस्वरूप ब्राह्मण बालक ने मुझे शाप दे डाला। किन्तु अब मैं स्वस्थ हूँ। मैं भूख तथा प्यास से तनिक भी विचलित नहीं हूँ।'' इससे सूचित होता है कि यद्यपि भौतिक स्तर पर भूख तथा प्यास बाधक बनती हैं, किन्तु आध्यात्मिक स्तर पर थकान जैसी कोई वस्तु नहीं होती।

सारा संसार आध्यात्मिक प्यास के कारण कष्ट उठा रहा है। हर जीव ब्रह्म या आध्यात्मिक आत्मा है और उसे अपनी भूख-प्यास बुझाने के लिए आध्यात्मिक भोजन की आवश्यकता पड़ती है। किन्तु दुर्भाग्य ही कहेंगे कि संसार कृष्णकथा के अमृत से सर्वथा अनजान है। इसलिए कृष्णभावनामृत आन्दोलन दार्शनिकों, धर्मविदों तथा सामान्य लोगों के लिए वरदान तुल्य है। कृष्ण तथा कृष्णकथा में निश्चित रूप में विशेष आकर्षण है। इसीलिए परब्रह्म कृष्ण अर्थात् सर्वाधिक आकर्षक कहलाते हैं।

अमृत शब्द चन्द्रमा का भी द्योतक है और *अम्बुज* का अर्थ है ''कमल''। सुहावनी चाँदनी तथा कमल की सुहावनी सुगन्ध मिलकर शुकदेव गोस्वामी के मुख से कृष्णकथा सुनने में आनन्द प्रदान कर रही थी। कहा भी गया है—

मतिर्न कृष्णे परतः स्वतो वा
मिथोऽभिपद्येत गृहव्रतानाम्।
अदान्त गोभिर्विशतां तमिस्रं
पुनः पुनश्चर्वितचर्वणानाम्॥

''भौतिकतावादी जीवन के प्रति अत्यन्त आसक्त व्यक्ति अपनी अनियंत्रित इन्द्रियों के कारण नारकीय स्थिति की ओर बढ़ते जाते हैं और एक बार चबाये हुए को पुनः-पुनः चबाते रहते हैं। उनमें न तो किसी के उपदेश से, न अपने आप, न ही इन दोनों के द्वारा कृष्ण के प्रति रुचि जागृत होती है।''

(श्रीमद्भागवत ७.५.३०) सम्प्रति सारा मानव समाज चर्वितचर्वण करने में लगा है (*पुन: पुनश्चर्वितचर्वणानाम्*)। लोग एक शरीर में जन्म लेकर मरने और पुन: दूसरा शरीर धारण कर फिर मृत्यु भोगने के लिए तैयार रहते हैं (*मृत्युसंसार-वर्त्मनि*)। इस जन्म-मृत्यु के चक्र को रोकने के लिए कृष्णकथा अथवा कृष्णभावनामृत नितान्त आवश्यक है। किन्तु जब तक शुकदेव गोस्वामी जैसे स्वरूपसिद्ध व्यक्ति से कृष्णकथा नहीं सुनी जाती तब तक सारी भौतिक थकान को दूर करने वाली कृष्णकथा के अमृत का न तो आनन्द लिया जा सकता है न ही आध्यात्मिक अस्तित्व में आनन्दमय जीवन भोगा जा सकता है। जब हम कृष्णभावनामृत आन्दोलन के बारे में सोचते हैं, तो हम देखते हैं कि जिन्होंने कृष्ण-कथा रूपी अमृत का आस्वादन कर लिया है वे सारी भौतिक इच्छाओं का परित्याग कर देते हैं, किन्तु जो कृष्ण या कृष्णकथा को नहीं समझते वे कृष्णभावनाभावित जीवन को ''मस्तिष्क धुलाई'' या ''मन-नियंत्रण'' मानते हैं। एक ओर जहाँ भक्तगण आध्यात्मिक आनन्द का अनुभव करते हैं वहीं अभक्तों को यह देखकर हैरानी होती है कि भक्तों ने भौतिक लालसाओं का परित्याग कर दिया है!

सूत उवाच
एवं निशम्य भृगुनन्दन साधुवादं
वैयासकि: स भगवानथ विष्णुरातम् ।
प्रत्यर्च्य कृष्णचरितं कलिकल्मषघ्नं
व्याहर्तुमारभत भागवतप्रधान: ॥ १४॥

शब्दार्थ

सूत: उवाच—सूत गोस्वामी ने कहा; एवम्—इस प्रकार; निशम्य—सुनकर; भृगु-नन्दन—हे भृगुवंशी, शौनक; साधु-वादम्—शुभ प्रश्न; वैयासकि:—व्यासदेव के पुत्र, शुकदेव गोस्वामी; स:—वह; भगवान्—अत्यन्त शक्तिशाली; अथ—इस प्रकार; विष्णु-रातम्—विष्णु द्वारा सुरक्षित परीक्षित महाराज को; प्रत्यर्च्य—सादर नमस्कार करके; कृष्ण-चरितम्—कृष्णकथा को; कलि-कल्मष-घ्नम्—इस कलियुग के कष्टों को कम करने वाली; व्याहर्तुम्—वर्णन करने के लिए; आरभत—शुरू किया; भागवत-प्रधान:—शुद्ध भक्तों में प्रमुख शुकदेव गोस्वामी ने।

सूत गोस्वामी ने कहा : हे भृगुपुत्र (शौनक ऋषि), परम आदरणीय व्यासपुत्र भक्त शुकदेव गोस्वामी ने महाराज परीक्षित के शुभ प्रश्नों को सुनकर राजा को सादर धन्यवाद दिया। फिर उन्होंने कृष्णकथा के विषय में वार्ता प्रारम्भ की जो इस कलियुग के समस्त कष्टों के लिए औषधि है।

तात्पर्य : *कृष्णचरितं कलिकल्मषघ्नम्* पद सूचित करता है कि विशेषकर इस कलियुग के लिए

कृष्ण के कार्यकलाप समस्त कष्टों की रामबाण औषधि हैं। कहा जाता है कि कलियुग के लोग अल्पायु होते हैं और उनमें कृष्णभावनामृत की संस्कृति नहीं पाई जाती। यदि कदाचित् किसी की रुचि आध्यात्मिक संस्कृति में होती भी है, तो उसे विभिन्न प्रकार के अप्रामाणिक स्वामी तथा योगी भ्रान्त करते रहते हैं, जो कृष्णकथा का नाम भी नहीं लेते। इसीलिए अधिकांश लोग अभागे तथा अनेक विपदाओं से ग्रस्त रहते हैं। श्रील व्यासदेव ने इस युग के कष्ट भोग रहे लोगों को छुटकारा दिलाने के लिए (*कलि कल्मषघ्नम्*) नारदमुनि के आग्रह पर *श्रीमद्भागवत* लिखा। कृष्णभावनामृत आन्दोलन *श्रीमद्भागवत* की मनोहारी कथाओं के माध्यम से लोगों को प्रबुद्ध करने में जी-जान से लगा है। *श्रीमद्भागवत* तथा *भगवद्गीता* का सन्देश सारे विश्व में, सारे क्षेत्रों में, विशेष रूप से प्रगत शिक्षित लोगों के बीच मान्य हो रहा है ।

इस श्लोक में श्रील शुकदेव गोस्वामी को *भागवत-प्रधान* कहा गया है और महाराज परीक्षित को *विष्णुरातम्*। इन दोनों शब्दों का एक ही अर्थ है अर्थात् महाराज परीक्षित कृष्ण के महान् भक्त थे और शुकदेव गोस्वामी भी महान् साधु पुरुष तथा कृष्ण के महान् भक्त थे। इन दोनों ने मिलकर कृष्णकथा प्रस्तुत करके कष्ट में फँसी मानवता को बड़ी राहत दी है।

अनर्थोपशमं साक्षाद् भक्ति-योगमधोक्षजे।
लोकस्याजानतो विद्वांश्चक्रे सात्वतसंहिताम्॥

''जीव के भौतिक कष्ट, जो उसे व्यर्थ लगने वाले हैं, यदि भक्ति के साथ जोड़ दें तो कम किये जा सकते हैं। किन्तु लोग इसे समझ नहीं पाते इसीलिए विद्वान व्यासदेव ने इस वैदिक ग्रंथ *श्रीमद्भागवत* की रचना की जो परम सत्य के विषय में है।'' (*श्रीमद्भागवत* १.७.६) अधिकांश लोग इस तथ्य से अवगत नहीं होते कि *श्रीमद्भागवत* का सन्देश कलियुग के कष्टों से मानव समाज को छुटकारा दिला सकता है (*कलिकल्मषघ्नम्*)।

श्रीशुक उवाच
सम्यग्व्यवसिता बुद्धिस्तव राजर्षिसत्तम ।
वासुदेवकथायां ते यज्जाता नैष्ठिकी रतिः ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; सम्यक्—पूरी तरह; व्यवसिता—स्थिर; बुद्धिः—बुद्धि; तव—आपकी; राज-ऋषि-सत्तम—हे राजर्षियों में श्रेष्ठ; वासुदेव-कथायाम्—वासुदेव कृष्ण विषयक कथाओं के सुनने में; ते—आपका; यत्—क्योंकि; जाता—उत्पन्न; नैष्ठिकी—अनवरत; रतिः—आकर्षण या भावमय भक्ति।.

श्रील शुकदेव गोस्वामी के कहा : हे राजर्षियों में श्रेष्ठ, चूँकि आप वासुदेव की कथाओं के प्रति अत्यधिक आकृष्ट हैं अतः निश्चित रूप से आपकी बुद्धि आध्यात्मिक ज्ञान में स्थिर है, जो मानवता का एकमात्र असली लक्ष्य है। चूँकि यह आकर्षण अनवरत रहता है अतएव निश्चितरूप से उत्कृष्ट है।

तात्पर्य : *राजर्षि* अर्थात् प्रमुख प्रशासक के लिए कृष्णकथा अनिवार्य है। *भगवद्गीता* में भी यही कहा गया है (*इमं राजर्षयो विदुः*)। किन्तु दुर्भाग्यवश इस युग में सरकारी शक्ति धीरे-धीरे ऐसे निकृष्ट लोगों के हाथ में जा रही है जिन्हें कोई आध्यात्मिक ज्ञान नहीं है। इसीलिए समाज का तेजी से पतन हो रहा है। सरकार के प्रशासकों को कृष्णकथा समझनी चाहिए अन्यथा प्रजा कैसे सुखी हो सकती है और किस तरह उसे भौतिकतावादी जीवन के कष्टों से छुटकारा मिल सकता है? जिसका मन कृष्णभावनामृत में स्थिर हो चुका हो, समझिए कि जीवन-मूल्यों के विषय में उसे प्रखर बुद्धि प्राप्त है। महाराज परीक्षित *राजर्षि-सत्तम्* अर्थात् समस्त राजर्षियों में श्रेष्ठ थे और शुकदेव गोस्वामी *मुनि-सत्तम्* थे अर्थात् सारे मुनियों में श्रेष्ठ थे। दोनों ही कृष्णकथा में एक सी रुचि के कारण उच्च पद को प्राप्त थे। अगले श्लोक में वक्ता तथा श्रोता के उच्च पद की बहुत सुन्दर व्याख्या की गई है। कृष्णकथा इतनी उत्साहदायक है कि महाराज परीक्षित समस्त भौतिक बातों को, यहाँ तक कि खाने-पीने सम्बन्धी निजी सुविधाओं को भी भूल गये। यह इसका प्रमाण है कि कृष्णभावनामृत आन्दोलन को वक्ता तथा श्रोता दोनों को एकसमान दिव्य स्तर पर लाने तथा भगवद्धाम ले जाने के लिए सारे विश्व में किस तरह फैल जाना चाहिए।

वासुदेवकथाप्रश्नः पुरुषांस्त्रीन्पुनाति हि ।
वक्तारं प्रच्छकं श्रोतृंस्तत्पादसलिलं यथा ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

वासुदेव-कथा-प्रश्नः—वासुदेव कृष्ण की लीलाओं तथा गुणों के विषय में प्रश्न; पुरुषान्—पुरुषों को; त्रीन्—तीनों; पुनाति—पवित्र करते हैं; हि—निश्चय ही; वक्तारम्—वक्ता को, यथा शुकदेव गोस्वामी; प्रच्छकम्—जिज्ञासु श्रोता को, यथा महाराज परीक्षित; श्रोतृन्—तथा कथा को सुनने वालों को; तत्-पाद-सलिलम् यथा—जिस तरह भगवान् विष्णु के अँगूठे से निकलने वाले गंगा जल से सम्पूर्ण संसार पवित्र हो जाता है।.

भगवान् विष्णु के चरणों के अँगूठे से निकलने वाली गंगा तीनों लोकों—ऊपरी, मध्य तथा

अधः लोकों—को पवित्र बनाने वाली है। इसी तरह जब कोई व्यक्ति भगवान् वासुदेव कृष्ण की लीलाओं तथा गुणों के विषय में प्रश्न करता है, तो तीन प्रकार के व्यक्ति—वक्ता या उपदेशक, प्रश्नकर्ता तथा सुनने वाले मनुष्य—शुद्ध हो जाते हैं।

तात्पर्य : *श्रीमद्भागवत* में ही (११.३.२१) कहा गया है *तस्माद् गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम्।* जो लोग जीवन का लक्ष्य जैसा दिव्य विषय जानना चाहते हैं उन्हें चाहिए कि प्रामाणिक आध्यात्मिक गुरु के पास जाँए। *तस्माद् गुरुं प्रपद्येत।* मनुष्य को चाहिए कि ऐसे गुरु की शरण में जाये जो कृष्ण के विषय में उसे सही जानकारी दे सके। यहाँ पर महाराज परीक्षित ने वासुदेव कथा के विषय में जानने के लिए प्रामाणिक व्यक्ति शुकदेव गोस्वामी की शरण ग्रहण की है। वासुदेव आदि भगवान् हैं जिनके अनन्त आध्यात्मिक कार्यकलाप हैं। *श्रीमद्भागवत* इन कार्यकलापों का संग्रह है और *भगवद्गीता* वासुदेव द्वारा स्वयं दिए गए प्रवचन का संग्रह है। चूँकि कृष्णभावनामृत आन्दोलन वासुदेव कथा से ओतप्रोत है अतएव जो भी इसमें शामिल होता है, जो भी सुनता है और जो भी प्रचार करता है, वह शुद्ध हो जाएगा।

भूमिर्दृप्तनृपव्याजदैत्यानीकशतायुतैः ।
आक्रान्ता भूरिभारेण ब्रह्माणं शरणं ययौ ॥ १७॥

शब्दार्थ

भूमिः—पृथ्वी माता; दृप्त—गर्वित; नृप-व्याज—राजाओं का स्वांग भरते हुए अथवा राज्य में साक्षात् परम शक्ति; दैत्य—असुरों की; अनीक—सैनिकों की सेना; शत-अयुतैः—सैकड़ों हजारों में, असंख्य; आक्रान्ता—बोझिल होकर; भूरि-भारेण—व्यर्थ की सेना के बोझ से; ब्रह्माणम्—ब्रह्मा के पास; शरणम्—शरण खोजने; ययौ—गयी।.

एक बार माता पृथ्वी राजाओं के वेश में गर्वित लाखों असुरों की सेना से बोझिल हो उठी तो वह इससे छुटकारा पाने के लिए ब्रह्मा के पास पहुँची।

तात्पर्य : जब भी संसार अनावश्यक सैनिक व्यवस्थाओं से बोझिल हो उठता है और जब भी विविध आसुरी राजाओं का शासन होता है, तो इस बोझ के कारण भगवान् को प्रकट होना पड़ता है। *भगवद्गीता* (४.७) में भगवान् कहते हैं :

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

''हे भरतवंशी! जब-जब धर्म का ह्रास होता है और अधर्म का प्राबल्य होता है तब-तब मैं

अवतीर्ण होता हूँ।'' जब इस धरा के निवासी नास्तिक तथा ईश्वरविहीन हो जाते हैं, तो वे कूकरों-सूकरों की स्थिति को प्राप्त होते हैं और उनका एक ही कार्य रह जाता है, वह है परस्पर भूँकना। यही *धर्मस्य ग्लानि* अर्थात् जीवन लक्ष्य से विचलन है। मनुष्य जीवन तो कृष्णभावनामृत में सर्वोच्च सिद्धि प्राप्त करने के निमित्त है, किन्तु जब लोग ईश्वरविहीन हो जाते हैं और राज्याध्यक्ष या राजा अपनी सैन्यशक्ति पर अनावश्यक गर्व करने लगते हैं, तो उनका कार्य युद्ध करना तथा अपने विभिन्न राज्यों की सैन्य शक्ति को बढ़ाना रह जाता है। इसीलिए आजकल ऐसा प्रतीत होता है कि हर राज्य तृतीय विश्व-युद्ध की तैयारी के लिए परमाणु हथियार बनाने में व्यस्त है। ऐसी तैयारी व्यर्थ है और इससे राज्य के प्रधानों का मिथ्या अहंकार प्रतिबिम्बित होता है। प्रधान शासक का असली कार्य तो जीवन के विभिन्न विभागों में सामान्य लोगों को कृष्णभावनामृत का प्रशिक्षण देकर उन्हें सुखी बनाना है। *चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागश:* (*भगवद्गीता* ४.१३)। नेता को चाहिए कि लोगों को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र का प्रशिक्षण दे और उन्हें अनेक वृत्तिपरक कार्यों में लगाये जिससे वे कृष्णभावनामृत की दिशा में प्रगति कर सकें। किन्तु हो यह रहा है कि चोर तथा उचक्के रक्षक के वेश में मतदान-पद्धति की व्यवस्था करते हैं और प्रजातंत्र के नाम पर वे येन-केन प्रकारेण सत्ता में आकर प्रजा का शोषण करते हैं। यहाँ तक कि बहुत पुराने जमाने में असुरगण, जो कि ईशभावनामृत से विहीन थे, राज्य के प्रधान बन गए थे और अब फिर से वैसा ही हो रहा है। संसार के विभिन्न राज्य सैन्यशक्ति को व्यवस्थित करने में लगे हुए हैं। कभी-कभी तो वे इस कार्य के लिए सरकार की आय का ६५ प्रतिशत खर्च कर देते हैं। किन्तु लोगों की कठिन कमाई को इस तरह क्यों फूँका जाए? वर्तमान विश्व परिस्थिति को देखते हुए कृष्णभावनामृत आन्दोलन के रूप में कृष्ण अवतरित हुए हैं। यह स्वाभाविक ही है क्योंकि कृष्णभावनामृत आन्दोलन के बिना विश्व में शान्ति और सुख स्थापित नहीं हो सकता।

गौर्भूत्वाश्रुमुखी खिन्ना क्रन्दन्ती करुणं विभो: ।
उपस्थितान्तिके तस्मै व्यसनं समवोचत ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

गौ:—गाय; भूत्वा—बनकर; अश्रु-मुखी—आँखों में आँसू भरकर; खिन्ना—अत्यन्त दुखी; क्रन्दन्ती—रोती हुई; करुणम्—बेचारी; विभो:—ब्रह्मा के; उपस्थिता—प्रकट हुई; अन्तिके—समक्ष; तस्मै—उनसे (ब्रह्मा से); व्यसनम्—अपनी विपदा; समवोचत—निवेदन किया।

माता पृथ्वी ने गाय का रूप धारण किया। वह अत्यन्त दुखियारी, अपनी आँखों में आँसू भर

कर भगवान् ब्रह्मा के समक्ष प्रकट हुई और उसने उनसे अपनी विपदा कह सुनायी।

ब्रह्मा तदुपधार्याथ सह देवैस्तया सह ।
जगाम सत्रिनयनस्तीरं क्षीरपयोनिधेः ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

ब्रह्मा—ब्रह्माजी; तत्-उपधार्य—हर बात को ठीक से समझ कर; अथ—तत्पश्चात्; सह—साथ; देवैः—देवताओं के; तया सह—माता पृथ्वी के साथ; जगाम—निकट गए; स-त्रि-नयनः—तीन नेत्रों वाले शिवजी के साथ; तीरम्—तट पर; क्षीर-पयः-निधेः—क्षीर सागर के।.

माता पृथ्वी की विपदा सुनकर ब्रह्माजी, माता पृथ्वी तथा शिवजी एवं अन्य समस्त देवताओं के साथ क्षीरसागर के तट पर जा पहुँचे।

तात्पर्य : जब ब्रह्माजी पृथ्वी की संकटमय स्थिति को समझ गये तो सबसे पहले वे इस ब्रह्माण्ड के विविध कार्यों का भार सँभालने वाले भगवान् इन्द्र तथा संहार के लिए उत्तरदायी शिवजी के पास गये। सृजन और संहार कार्य भगवान् के आदेशानुसार निरन्तर चलता रहता है। जैसाकि *भगवद्गीता* (४.८) में कहा गया है *परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।* जो लोग ईश्वर के नियमों का पालन करने वाले हैं उनकी रक्षा विभिन्न सेवकों तथा देवताओं द्वारा की जाती है, किन्तु जो अवांछित हैं, शिवजी उनका संहार कर देते हैं। सर्वप्रथम ब्रह्माजी शिवजी समेत सारे देवताओं से मिले। तब माता पृथ्वी को साथ लेकर वे क्षीर सागर के किनारे गये जहाँ विष्णु भगवान् श्वेतद्वीप में शयन करते हैं।

तत्र गत्वा जगन्नाथं देवदेवं वृषाकपिम् ।
पुरुषं पुरुषसूक्तेन उपतस्थे समाहितः ॥ २० ॥

शब्दार्थ

तत्र—वहाँ (क्षीरसागर के तट पर); गत्वा—जाकर; जगन्नाथम्—समग्र ब्रह्माण्ड के स्वामी को; देव-देवम्—सारे देवताओं के भी परम ईश्वर को; वृषाकपिम्—परम पुरुष विष्णु को जो हर एक का पालन करने वाले तथा सबके कष्टों को दूर करने वाले हैं; पुरुषम्—परम पुरुष को; पुरुष-सूक्तेन—पुरुषसूक्त नामक वैदिक मंत्र से; उपतस्थे—पूजा किया; समाहितः—पूर्ण मनोयोग से।.

क्षीर सागर के तट पर पहुँच कर सारे देवताओं ने समस्त ब्रह्माण्ड के स्वामी, समस्त देवताओं के परम ईश तथा हर एक का पालन करने वाले और उनके दुखों को दूर करने वाले भगवान् विष्णु की पूजा की। उन्होंने बड़े ही मनोयोग से पुरुषसूक्त नामक वैदिक मंत्रों के पाठ द्वारा क्षीर सागर में शयन करने वाले भगवान् विष्णु की पूजा की।

तात्पर्य : सारे देवता यथा ब्रह्माजी, शिवजी, देवराज इन्द्र, चन्द्र तथा सूर्य पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के

अधीन हैं। देवताओं के अतिरिक्त मानव समाज में भी अनेक प्रभावशाली व्यक्ति हैं, जो विविध व्यापारों या प्रतिष्ठानों का अधीक्षण करते हैं। किन्तु भगवान् विष्णु तो देवताओं के भी ईश्वर (*परमेश्वर*) हैं। वे *परम पुरुष* परमात्मा हैं। जैसाकि *ब्रह्म-संहिता* (५.१) में पुष्टि हुई है—*ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः*—''गोविन्द नाम से विख्यात कृष्ण परम नियन्ता हैं। उनका शरीर सत्, चित् तथा आनन्द से युक्त है।'' न तो कोई भगवान् के तुल्य है, न ही उनसे बढ़कर है इसीलिए यहाँ पर *जगन्नाथ, देव-देव, वृषाकपि* तथा *पुरुष* जैसे शब्दों से उनका वर्णन किया गया है। भगवान् विष्णु की श्रेष्ठता की पुष्टि *भगवद्गीता* (.१२) में अर्जुन के नि म्नलिखित कथन से भी होती है—

परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान्।

पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम्॥

''आप परम ब्रह्म, परम धाम, शुद्धकर्ता, परम सत्य तथा नित्य दैवी पुरुष हैं। आप आदि भगवान् हैं, दिव्य और शाश्वत हैं और अजन्मा हैं तथा सर्वव्यापक सौन्दर्य हैं।'' कृष्ण *आदि पुरुष* (*गोविन्दमादि पुरुषं तमहं भजामि*) हैं। विष्णु भगवान् कृष्ण के स्वांश हैं और सारे *विष्णुतत्त्व परमेश्वर* तथा *देवदेव* हैं।

गिरं समाधौ गगने समीरितां
निशम्य वेधास्त्रिदशानुवाच ह ।
गां पौरुषीं मे श‍ृणुतामराः पुन-
र्विधीयतामाशु तथैव मा चिरम् ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

गिरम्—शब्दों की ध्वनि; **समाधौ**—समाधि में; **गगने**—आकाश में; **समीरिताम्**—ध्वनित; **निशम्य**—सुनकर; **वेधाः**—ब्रह्मा ने; **त्रिदशान्**—देवताओं को; **उवाच**—कहा; **ह**—ओह; **गाम्**—आदेश; **पौरुषीम्**—परम पुरुष से प्राप्त; **मे**—मुझको; **श‍ृणुत**—सुनिए; **अमराः**—हे देवताओ; **पुनः**—फिर; **विधीयताम्**—सम्पन्न करो; **आशु**—तुरन्त; **तथा एव**—उसी तरह; **मा**—मत; **चिरम्**—विलम्ब।

ब्रह्माजी जब समाधि में थे, भगवान् विष्णु के शब्दों को आकाश में ध्वनित होते सुना। तब उन्होंने देवताओं से कहा, ''अरे देवताओ! मुझसे परम पुरुष क्षीरोदकशायी विष्णु का आदेश सुनो और बिना देर लगाए उसे ध्यानपूर्वक पूरा करो।''

तात्पर्य : ऐसा प्रतीत होता है कि भगवान् के शब्दों को सक्षम व्यक्ति समाधि में सुन सकते हैं। आधुनिक विज्ञान ने हमें टेलीफोन प्रदान किया है, जिसकी सहायता से हम सुदूर स्थान की ध्वनियाँ

सुन सकते हैं। इसी तरह, यद्यपि अन्य लोग भगवान् विष्णु के शब्दों को नहीं सुन सकते, किन्तु ब्रह्माजी अपने अभ्यंतर में भगवान् के शब्दों को सुन सकते हैं। इसकी पुष्टि *श्रीमद्भागवत* के प्रारम्भ में ही (१.१.१) *तेने ब्रह्महृदा य आदि कवये* के द्वारा हुई है। *आदि कवि* ब्रह्माजी हैं। ब्रह्माजी ने सृष्टि के आदि में अपने हृदय के माध्यम से (*हृदा*) भगवान् विष्णु से वैदिक ज्ञान का आदेश प्राप्त किया। यहाँ उसी सिद्धान्त की पुष्टि हुई है। ब्रह्मा ने समाधिस्थ अवस्था में क्षीरोदकशायी विष्णु के शब्द सुने और भगवान् के सन्देश को देवताओं तक पहुँचाया। इसी तरह ब्रह्मा ने सृष्टि के आदि में अपने हृदय के भीतर भगवान् से वैदिक ज्ञान प्राप्त किया। दोनों ही अवसरों पर ब्रह्माजी तक सन्देश ले जाने में एक ही विधि प्रयुक्त हुई। दूसरे शब्दों में, यद्यपि भगवान् विष्णु ब्रह्माजी को भी नहीं दिख रहे थे, किन्तु वे अपने हृदय के माध्यम से भगवान् विष्णु के शब्द सुन सके। ब्रह्माजी तक को नहीं दिखते फिर भी वे इस धरा पर अवतरित होते हैं और सामान्य जनता को दृष्टिगोचर होते हैं। यह उनकी अहैतुकी कृपावश ही होता है, किन्तु मूर्ख तथा अभक्त यही सोचते हैं कि कृष्ण सामान्य ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। चूँकि वे भगवान् को अपने ही जैसा सामान्य व्यक्ति सोचते हैं इसलिए उन्हें *मूढ* कहा गया है (*अवजानन्ति मां मूढा:*)। ऐसे असुरगण जो *भगवद्गीता* के उपदेशों को नहीं समझ पाते और जो इसीलिए उन उपदेशों की गलत व्याख्या करते हैं, वे भगवान् की अहैतुकी कृपा की उपेक्षा करते हैं।

पुरैव पुंसावधृतो धराज्वरो
भवद्भिरंशैर्यदुषूपजन्यताम् ।
स यावदुर्व्या भरमीश्वरेश्वरः
स्वकालशक्त्या क्षपयंश्चरेद्भुवि ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

पुरा—इससे भी पहले; एव—निस्सन्देह; पुंसा—भगवान् द्वारा; अवधृतः—ज्ञात था; धरा-ज्वरः—पृथ्वी पर संकट; भवद्भिः—आपके; अंशैः—अंशों द्वारा; यदुषु—राजा यदु के वंश में; उपजन्यताम्—जन्म लेकर; सः—वह (भगवान्); यावत्—जब तक; उर्व्याः—पृथ्वी का; भरम्—भार; ईश्वर-ईश्वरः—ईश्वरों के ईश्वर; स्व-काल-शक्त्या—अपनी ही काल शक्ति द्वारा; क्षपयन्—घटाने के लिए; चरेत्—गति करें; भुवि—पृथ्वी की सतह पर।

भगवान् ब्रह्माजी ने देवताओं को बतलाया: हमारे द्वारा याचना करने के पूर्व ही भगवान् पृथ्वी के संकट से अवगत हो चुके थे। फलतः जब तक भगवान् अपनी काल शक्ति के द्वारा पृथ्वी का भार कम करने के लिए पृथ्वी पर गतिशील रहें तब तक तुम सभी देवताओं को यदुओं के परिवार में उनके पुत्रों तथा पौत्रों के अंश के रूप में अवतीर्ण होना होगा।

तात्पर्य : *ब्रह्म-संहिता* (५.३९) में कहा गया है—

रामादिमूर्तिषु कलानियमेन तिष्ठन्

नानावतारमकरोद् भुवनेषु किन्तु।

कृष्णः स्वयं समभवत् परमः पुमान् यो

गोविन्दमादि पुरुषं तमहं भजामि॥

''मैं उन गोविन्द की पूजा करता हूँ जो राम, नृसिंह अवतारों तथा अन्य उप-अवतारों के रूप में सदैव स्थित रहते हैं, किन्तु जो आदि भगवान् हैं और कृष्ण कहलाते हैं और जो स्वयं भी अवतरित होते हैं।''

श्रीमद्भागवत के इस श्लोक में *पुरैव पुंसावधृतो धराज्वरः* शब्द आये हैं। *पुंसा* कृष्ण का द्योतक है, जो पहले से अवगत थे कि सारा संसार असुरों की बाढ़ से किस तरह पीड़ित था। भगवान् की परम शक्ति का उल्लेख किये बिना असुरगण अपने आपको स्वतंत्र राजा तथा राष्ट्रपति बतलाते हैं और इस तरह अपनी सैन्य शक्ति बढ़ाकर उत्पात मचाते हैं। जब ऐसे उत्पात अत्यधिक मुखर हो उठते हैं, तो कृष्ण प्रकट होते हैं। इस समय भी विश्वभर में अनेक आसुरी राज्य अनेक प्रकार से अपनी-अपनी सैन्य शक्ति बढ़ा रहे हैं जिससे सारी स्थिति पीड़ाजनक हो उठी है। इसीलिए कृष्ण अपने नाम से हरे कृष्ण आन्दोलन में प्रकट हुए हैं, जो निश्चय ही विश्व के भार को कम करेगा। दार्शनिकों, धर्मज्ञों तथा सामान्य जनों को गम्भीरतापूर्वक इस आन्दोलन में भाग लेना चाहिए क्योंकि मानवनिर्मित योजनाओं तथा युक्तियों से पृथ्वी पर शान्ति लाने में सहायक नहीं हो सकती। हरे कृष्ण की दिव्य ध्वनि पुरुष कृष्ण से भिन्न नहीं है।

नाम चिन्तामणिः कृष्णश्चैतन्यरसविग्रहः।

पूर्णः शुद्धो नित्यमुक्तोऽभिन्नत्वान् नामनामिनोः॥

(*पद्म पुराण*)

हरे कृष्ण ध्वनि तथा पुरुष कृष्ण में कोई अन्तर नहीं है।

वसुदेवगृहे साक्षाद्भगवान्पुरुषः परः ।

जनिष्यते तत्प्रियार्थं सम्भवन्तु सुरस्त्रियः ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

वसुदेव-गृहे—वसुदेव (कृष्ण के पिता) के घर में; **साक्षात्**—साकार रूप में; **भगवान्**—पूर्ण शक्तिमान भगवान्; **पुरुषः**—आदि पुरुष; **परः**—दिव्य; **जनिष्यते**—उत्पन्न होगा; **तत्-प्रिय-अर्थम्**—उसकी तुष्टि के लिए; **सम्भवन्तु**—जन्म लेना होगा; **सुर-स्त्रियः**—देवताओं की स्त्रियों को।

सर्वशक्तिमान भगवान् कृष्ण वसुदेव के पुत्र रूप में स्वयं प्रकट होंगे। अतः देवताओं की सारी स्त्रियों को भी उन्हें प्रसन्न करने के लिए प्रकट होना चाहिए।

तात्पर्य : *भगवद्गीता* (४.९) में भगवान् कहते हैं—*त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति*—भौतिक शरीर त्यागने के बाद भगवद्भक्त भगवान् के पास वापस लौट आता है। इसका अर्थ यह होता है कि भक्त पहले उस ब्रह्माण्ड विशेष में भेजा जाता है जहाँ भगवान् उस समय अपनी लीलाएँ करते होते हैं। ब्रह्माण्ड असंख्य हैं और हर क्षण भगवान् इनमें से किसी एक में प्रकट होते रहते हैं। इसीलिए उनकी लीलाएँ *नित्यलीला* कहलाती हैं। शिशुओं के रूप में देवकी के घर भगवान् का प्राकटय निरन्तर एक के बाद दूसरे ब्रह्माण्ड में होता रहता है। इसलिए भक्त को सर्वप्रथम वहाँ भेजा जाता है जहाँ उस समय भगवान् की अपनी लीलाएँ चल रही होती हैं। जैसाकि *भगवद्गीता* में कहा गया है कि यदि भक्त की भक्ति पूरी नहीं भी हो पाती तो भी वह स्वर्ग का सुख भोगता है जहाँ अत्यन्त पवित्र लोग निवास करते हैं और तब वह किसी *शुचि* या *श्रीमान्* अर्थात् पवित्र ब्राह्मण या धनी वैश्य के घर में जन्म लेता है। (*शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते*)। इस तरह शुद्ध भक्त यदि भक्ति को पूरा करने में असमर्थ रहता है, तो भी वह स्वर्ग में भेज दिया जाता है जहाँ पुण्यात्मा रहते हैं। यदि उसकी भक्ति पूरी हो जाती है, तो वहाँ से ऐसा भक्त ऐसे स्थान को भेज दिया जाता है जहाँ भगवान् की लीलाएँ चल रही होती हैं। यहाँ पर *सम्भवन्तु सुरस्त्रियः* कहा गया है। *सुरस्त्री* अर्थात् स्वर्ग की स्त्रियों को वृन्दावन में यदुवंशियों के यहाँ जन्म लेकर कृष्ण की लीलाओं को समृद्ध बनाने का आदेश दिया गया। ये *सुरस्त्रियाँ* कृष्ण के साथ रहने का और अधिक प्रशिक्षण पाने के बाद आदि गोलोक वृन्दावन भेज दी जाएँगी। इस जगत में कृष्ण की लीलाओं के समय सुरस्त्रियों को विभिन्न परिवारों में विभिन्न प्रकारों से कृष्ण को आनन्द प्रदान करने के लिए प्रकट होना था जिससे नित्य गोलोक वृन्दावन भेजे जाने के पूर्व वे पूरी तरह प्रशिक्षित हो जाँय। वे द्वारकापुरी, मथुरापुरी या वृन्दावन में कृष्ण की संगति से निश्चय ही भगवद्धाम वापस जाएँगी। सुरस्त्रियों में अनेक भक्तिनें हैं यथा कृष्ण के उपेन्द्र अवतार की माता। ऐसी ही अनुरक्त

स्त्रियों का इस प्रसंग में बुलाया गया था।

वासुदेवकलानन्तः सहस्रवदनः स्वराट् ।
अग्रतो भविता देवो हरेः प्रियचिकीर्षया ॥ २४॥

शब्दार्थ

वासुदेव-कला अनन्तः—भगवान् कृष्ण का अंश जो अनन्तदेव या संकर्षण अनन्त के नाम से प्रसिद्ध हैं, भगवान् का सर्वव्यापक अवतार; सहस्र-वदनः—हजार फनों वाला; स्वराट्—पूर्णतया स्वतंत्र; अग्रतः—इसके पूर्व; भविता—प्रकट होगा; देवः—भगवान्; हरेः—कृष्ण का; प्रिय-चिकीर्षया—आनन्द के लिए कार्य करने की इच्छा से।.

कृष्ण का सबसे अग्रणी स्वरूप संकर्षण है, जो अनन्त कहलाता है। वह इस भौतिक जगत में सारे अवतारों का उद्गम है। भगवान् कृष्ण के प्राकटय के पूर्व यह आदि संकर्षण कृष्ण को उनकी दिव्य लीलाओं में प्रसन्न करने के लिए बलदेव के रूप में प्रकट होगा।

तात्पर्य : श्री बलदेव साक्षात् भगवान् हैं। वे श्रेष्ठता में ईश्वर के ही समान हैं, फिर भी जहाँ कहीं कृष्ण प्रकट होते हैं, श्रीबलदेव उनके भाई के रूप में, कभी बड़े भाई के रूप में तो कभी छोटे भाई के रूप में प्रकट होते हैं। जब कृष्ण अवतीर्ण होते हैं, तो उनके सारे स्वांश तथा अन्य अवतार भी उन्हीं के साथ प्रकट होते हैं। *श्रीचैतन्य-चरितामृत* में इसकी विस्तृत रूप में व्याख्या की गई है। इस बार बलदेव कृष्ण से पहले उनके बड़े भाई के रूप में प्रकट होंगे।

विष्णोर्माया भगवती यया सम्मोहितं जगत् ।
आदिष्टा प्रभुणांशेन कार्यार्थे सम्भविष्यति ॥ २५॥

शब्दार्थ

विष्णोः माया—भगवान् विष्णु की शक्ति; भगवती—भगवान् के ही समकक्ष अतएव भगवती नाम से जानी जाने वाली; यया—जिससे; सम्मोहितम्—मोहित; जगत्—सारे जगत, भौतिक तथा आध्यात्मिक दोनों; आदिष्टा—आदेश पाकर; प्रभुणा—स्वामी के द्वारा; अंशेन—अपने विभिन्न शक्तिशाली कारकों के साथ; कार्य-अर्थे—पूरा काम करने के लिए; सम्भविष्यति—जन्म लेगी।.

विष्णु माया कहलाने वाली भगवान् की शक्ति जो भगवान् के ही समान है, भगवान् कृष्ण के साथ-साथ ही प्रकट होगी। यह शक्ति विभिन्न पदों पर कार्य करती हुई भौतिक तथा आध्यात्मिक सभी जगतों को मोहने वाली है। वह अपने स्वामी के आग्रह पर भगवान् का कार्य सम्पन्न करने के लिए अपनी विविध शक्तियों सहित प्रकट होगी।

तात्पर्य : *परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते* (*श्वेताश्वतर उपनिषद्* ६.८)। वेदों में कहा गया है कि भगवान् की शक्तियाँ विविध नामों से पुकारी जाती हैं यथा *योगमाया* तथा *महामाया*। किन्तु अन्ततोगत्वा

भगवान् की शक्ति एक है, ठीक उसी तरह जिस तरह कि विद्युत् शक्ति एक है यद्यपि वह शीतल करने तथा गरम करने दोनों का ही कार्य करती है। भगवान् की शक्ति आध्यात्मिक तथा भौतिक दोनों जगतों में कार्य करती है। आध्यात्मिक जगत में यह *योगमाया* के रूप में कार्य करती है, तो भौतिक जगत में वही *महामाया* के रूप में कार्य करती है उसी तरह जिस तरह विद्युत् शक्ति हीटर तथा कूलर दोनों में काम करती है। भौतिक जगत में यह शक्ति महामाया के रूप में कार्य करती हुई बद्धजीवों को भक्ति से अधिकाधिक वंचित कराने वाली है। कहा गया है *यया सम्मोहितो जीव आत्मानं त्रिगुणात्मकम्।* बद्धजीव भौतिक जगत में अपने को तीन गुणों (*त्रिगुण*) की उपज मानता है। यह देहात्मबुद्धि है। हर व्यक्ति भौतिक शक्ति के तीन गुणों से अपने को सम्बद्ध करने के ही कारण अपने को अपना शरीर मानता है। कोई अपने को ब्राह्मण तो कोई अपने को क्षत्रिय मानता है और कोई वैश्य या शूद्र। वास्तव में न तो कोई ब्राह्मण है, न क्षत्रिय, न वैश्य और न शूद्र। वह तो भगवान् का अंश है (*ममैवांश:*) किन्तु भौतिक शक्ति महामाया से प्रच्छन्न होने के कारण वह भिन्न-भिन्न ढंगों से अपनी पहचान करता है। किन्तु जब बद्धजीव मुक्त हो जाता है, तो वह अपने को कृष्ण का नित्य दास मानता है। *जीवेर 'स्वरूप' हयकृष्णेर 'नित्य-दास'।* जब वह इस पद को प्राप्त कर लेता है, तो वही शक्ति योगमाया उसे शुद्ध बनने और अपनी शक्ति भगवान् की सेवा में लगाने में अधिकाधिक सहायक बनती है।

जीव चाहे बद्ध हो या मुक्त, भगवान् प्रत्येक अवस्था में सर्वोपरि हैं। जैसाकि *भगवद्गीता* (९.) में कहा गया है— *मयाध्यक्षेण प्रकृति: सूयते सचराचरम्*—भगवान् के ही आदेश से महामाया बद्धजीव पर अपना प्रभाव दिखलाती है।

प्रकृते: क्रियमाणानि गुणै कर्माणि सर्वश: ।
अहंकार-विमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते॥

''मोहग्रस्त जीव प्रकृति के तीनों गुणों के वशीभूत होकर अपने को उन कार्यों का कर्ता मान बैठता है, जो वास्तव में प्रकृति द्वारा सम्पन्न होते हैं।'' (*भगवद्गीता* ३.२७) बद्धजीव में किसी को स्वतंत्रता प्राप्त नहीं, किन्तु मनुष्य मोहग्रस्त होने तथा महामाया के वशीभूत होने से मूर्खतावश अपने को स्वतंत्र मान बैठता है (*अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते*)। किन्तु जब भक्ति करने के कारण बद्धजीव मुक्त बनता है, तो उसे विभिन्न रसों में यथा दास्य-रस, सख्य-रस, वात्सल्य-रस तथा माधुर्य-रस में

भगवान् के साथ अपने सम्बन्ध का आस्वादन करने का अधिकाधिक अवसर प्राप्त होता है।

इस तरह से भगवान् की शक्ति *विष्णुमाया* के दो स्वरूप हैं—*आवरणिका* तथा *उन्मुख*। जब भगवान् अवतीर्ण हुए तो उनकी शक्ति उनके साथ आई और उसने अनेक प्रकार से कार्य किये। उसने यशोदा, देवकी तथा भगवान् के अन्य घनिष्ठ सम्बन्धियों के साथ *योगमाया* के रूप में कार्य किया, किन्तु कंस, शाल्व तथा अन्य असुरों के साथ उसने भिन्न रूप से कार्य किया। भगवान् कृष्ण के आदेश से उनकी शक्ति योगमाया उनके साथ आई और उसने देश तथा काल के अनुसार विविध कार्यकलाप प्रदर्शित किये—*कार्यार्थे सम्भविष्यति।* योगमाया ने भगवान् के द्वारा इच्छित विविध प्रयोजनों के लिए भिन्न-भिन्न प्रकारों से कार्य किया। जैसाकि *भगवद्गीता* (९.१३) में पुष्टि हुई है—*महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिता:।* भगवान् के चरणकमलों में पूर्णतया शरणागत महात्मा-जन योगमाया द्वारा निर्देशित होते हैं जबकि भक्ति से रहित दुरात्मा-जन महामाया द्वारा निर्देशित होते हैं।

श्रीशुक उवाच
इत्यादिश्यामरगणान्प्रजापतिपतिर्विभुः ।
आश्वास्य च महीं गीर्भिः स्वधाम परमं ययौ ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार; आदिश्य—सूचना देकर; अमर-गणान्—देवताओं को; प्रजापति-पतिः—प्रजापतियों के स्वामी ब्रह्माजी; विभुः—सर्वशक्तिमान; आश्वास्य—आश्वासन देकर; च—भी; महीम्—माता पृथ्वी को; गीर्भिः—मधुर शब्दों से; स्व-धाम—अपने धाम, ब्रह्मलोक; परमम्—सर्वश्रेष्ठ (ब्रह्माण्ड के भीतर); ययौ—लौट गये।

शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : इस तरह देवताओं को सलाह देकर तथा माता पृथ्वी को आश्वस्त करते हुए अत्यन्त शक्तिशाली ब्रह्माजी, जो समस्त प्रजापतियों के स्वामी होने से प्रजापति-पति कहलाते हैं, अपने धाम ब्रह्मलोक लौट गये।

शूरसेनो यदुपतिर्मथुरामावसन्पुरीम् ।
माथुराञ्छूरसेनांश्च विषयान्बुभुजे पुरा ॥ २७॥

शब्दार्थ

शूरसेनः—राजा शूरसेन; यदु-पतिः—यदुवंश का मुखिया; मथुराम्—मथुरा नामक स्थान में; आवसन्—जाकर रहने लगा; पुरीम्—नगरी में; माथुरान्—माथुर जिले के नाम से विख्यात स्थान में; शूरसेनान् च—तथा शूरसेन नामक स्थान में; विषयान्—ऐसे राज्यों का; बुभुजे—भोग किया; पुरा—प्राचीन काल में।

प्राचीन काल में यदुवंश का मुखिया शूरसेन मथुरा नामक नगरी में रहने के लिए गया। वहाँ

उसने माथुर तथा शूरसेन नामक स्थानों का भोग किया।

राजधानी ततः साभूत्सर्वयादवभूभुजाम् ।
मथुरा भगवान्यत्र नित्यं सन्निहितो हरिः ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

राजधानी—राजधानी; ततः—उस समय से; सा—वह (मथुरा नामक नगरी तथा देश); अभूत्—बन गया; सर्व-यादव-भूभुजाम्—यदुवंश में होने वाले सारे राजाओं की; मथुरा—मथुरा नामक स्थान; भगवान्—भगवान्; यत्र—जहाँ; नित्यम्—शाश्वत रूप से; सन्निहितः—घनिष्टतापूर्वक सम्बद्ध, नित्यवास करते हुए; हरिः—भगवान्।

उस समय से मथुरा नगरी सारे यदुवंशी राजाओं की राजधानी बनी रही। मथुरा नगरी तथा मथुरा जनपद कृष्ण से घनिष्टतापूर्वक जुड़े हैं क्योंकि वहाँ कृष्ण का नित्य वास है।

तात्पर्य : ऐसा ज्ञात होता है कि मथुरा नगरी भगवान् कृष्ण का नित्य धाम है। यह कोई सामान्य भौतिक नगरी नहीं क्योंकि यह सदा से पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से जुड़ी हुई है। वृन्दावन मथुरा की सीमा के अन्तर्गत है और आज भी विद्यमान है। चूँकि मथुरा तथा वृन्दावन का कृष्ण से शाश्वत सम्बन्ध है इसलिए कहा जाता है कि कृष्ण वृन्दावन को कभी नहीं छोड़ते (*वृन्दावनं परित्यज्य पदमेकं न गच्छति*)। सम्प्रति मथुरा जिले के अन्तर्गत वृन्दावन दिव्य स्थान के रूप में मान्य है और जो भी वहाँ जाता है, शुद्ध बन जाता है। नवद्वीप धाम भी व्रजभूमि से घनिष्टतापूर्वक सम्बद्ध है। इसीलिए श्रील नरोत्तमदास ठाकुर कहते हैं—

श्रीगौडमण्डल भूमि, येबा जाने चिन्तामणि

ताऽर हय व्रजभूमे वास

''व्रजभूमि'' द्योतक है मथुरा-वृन्दावन का और गौड़ मण्डल भूमि के अन्तर्गत नवद्वीप आता है। ये दोनों स्थान अभिन्न हैं। इसलिए नवद्वीप धाम का कोई भी वासी जो कृष्ण तथा चैतन्य महाप्रभु को एक रूप में जानता है, वह व्रजभूमि मथुरा-वृन्दावन में वास करता है। महाप्रभु ने बद्धजीवों को मथुरा, वृन्दावन तथा नवद्वीप में वास करना और भगवान् से प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित करना आसान बना दिया है। इन स्थानों में रहने से ही मनुष्य भगवान् के सम्पर्क में आ सकता है। ऐसे अनेक भक्त हैं, जो वृन्दावन तथा मथुरा छोड़कर अन्यत्र न जाने का व्रत लेते हैं। यह अच्छी बात है, किन्तु यदि कोई व्यक्ति भगवान् की सेवा करने के लिए वृन्दावन, मथुरा या नवद्वीप धाम को छोड़ता है, तो उसका सम्बन्ध भगवान् से टूटता नहीं। जो हो, हमें चाहिए कि मथुरा-वृन्दावन तथा नवद्वीप धाम के दिव्य

महत्त्व को समझना चाहिए। जो व्यक्ति इन स्थानों में रहकर भक्ति करता है, वह शरीर त्यागने के बाद निश्चित रूप से भगवद्धाम जाता है। इस प्रकार *मथुरा भगवान् यत्र नित्यं सन्निहितो हरिः*—ये वचन विशेष महत्त्व रखते हैं। भक्त को चाहिए कि इस उपदेश का पूरा-पूरा लाभ उठाए। जब भी भगवान् अवतीर्ण होते हैं, तो मथुरा में ही अवतीर्ण होते हैं क्योंकि इस स्थान से उनका घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसलिए मथुरा तथा वृन्दावन इस धराधाम में स्थित होते हुए भी भगवान् के दिव्य धाम हैं।

तस्यां तु कर्हिचिच्छौरिर्वसुदेवः कृतोद्वहः ।
देवक्या सूर्यया सार्धं प्रयाणे रथमारुहत् ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

तस्याम्—उस मथुरा नामक स्थान में; तु—निस्सन्देह; कर्हिचित्—कुछ समय बीता; शौरिः—शूर का वंशज, देवता; वसुदेवः—वसुदेव रूप में प्रकट; कृत-उद्वहः—विवाह करने के बाद; देवक्या—देवकी से; सूर्यया—अपनी नवविवाहिता पत्नी के; सार्धम्—साथ; प्रयाणे—घर लौटने के लिए; रथम्—रथ पर; आरुहत्—चढ़ा।

कुछ समय पूर्व देववंश (या शूरवंश) के वसुदेव ने देवकी से विवाह किया। विवाह के बाद वह अपनी नवविवाहिता पत्नी के साथ घर लौटने के लिए अपने रथ पर आरूढ़ हुआ।

उग्रसेनसुतः कंसः स्वसुः प्रियचिकीर्षया ।
रश्मीन्हयानां जग्राह रौक्मै रथशतैर्वृतः ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

उग्रसेन-सुतः—उग्रसेन का बेटा; कंसः—कंस ने; स्वसुः—अपनी बहिन देवकी के; प्रिय-चिकीर्षया—विवाह के अवसर पर उसे प्रसन्न करने के लिए; रश्मीन्—लगामों को; हयानाम्—घोड़ों की; जग्राह—पकड़ लिया; रौक्मैः—सोने की बनी; रथ-शतैः—सैकड़ों रथों से; वृतः—घिरा हुआ।

राजा उग्रसेन के पुत्र कंस ने अपनी बहन देवकी को उसके विवाह के अवसर पर प्रसन्न करने की दृष्टि से घोड़ों की लगामें अपने हाथ में थाम लीं और स्वयं रथचालक (सारथी) बन गया। वह सैकड़ों सुनहरे रथों से घिरा था।

चतुःशतं पारिबर्हं गजानां हेममालिनाम् ।
अश्वानामयुतं सार्धं रथानां च त्रिषट्शतम् ॥ ३१ ॥
दासीनां सुकुमारीणां द्वे शते समलङ्कृते ।
दुहित्रे देवकः प्रादाद्याने दुहितृवत्सलः ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

चतुः-शतम्—चार सौ; पारिबर्हम्—दहेज; गजानाम्—हाथियों के; हेम-मालिनाम्—सोने के हारों से सजे; अश्वानाम्—घोड़ों के; अयुतम्—दस हजार; सार्धम्—साथ में; रथानाम्—रथों के; च—तथा; त्रि-षट्-शतम्—छह सौ का तिगुना, अठारह सौ;

दासीनाम्—दासियों के; सु-कुमारीणाम्—अत्यन्त जवान तथा सुन्दर अविवाहित लड़कियाँ; द्वे—दो; शते—सौ; समलङ्कृते—गहनों से सज्जित; दुहित्रे—अपनी पुत्री को; देवकः—राजा देवक; प्रादात्—भेंट स्वरूप दिया; याने—जाते समय; दुहितृ-वत्सलः—अपनी पुत्री देवकी को अत्यधिक चाहने वाला।

देवकी का पिता राजा देवक अपनी पुत्री को अत्यधिक स्नेह था। अतएव जब देवकी तथा उसका पति घर से विदा होने लगे तो उसने दहेज में सोने के हारों से सुसज्जित चार सौ हाथी दिए। साथ ही दस हजार घोड़े, अठारह हजार रथ तथा दो सौ अत्यन्त सुन्दर तथा गहनों से अच्छी तरह अलंकृत युवा दासियाँ दीं।

तात्पर्य : वैदिक सभ्यता में अपनी पुत्री को दहेज देने की प्रथा दीर्घकाल से चली आ रही है। आज भी, उसी प्रथा का पालन करते हुए धनवान पिता अपनी पुत्री को भरपूर दहेज देता है। चूँकि पुत्री को पिता की सम्पत्ति में अधिकार नहीं मिलता इसलिए वत्सल पिता अपनी पुत्री के विवाह के अवसर पर यथाशक्ति दहेज देता है। इसलिए वैदिक प्रथा के अनुसार दहेज अवैध नहीं है। किन्तु देवक ने देवकी को जो दहेज दिया वह सामान्य नहीं था। चूँकि देवक राजा था अतएव अपने राजसी-पद के अनुसार उसने उपयुक्त दहेज दिया। यहाँ तक कि सामान्य व्यक्ति, विशेष रूप से कुलीन ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य से आशा की जाती है कि वह दिल खोल कर यथेष्ठ दहेज दे। विवाह के तुरन्त बाद पुत्री अपने ससुराल जाती है और यह भी प्रथा है कि अपनी बहन के प्रति प्रेभभाव दर्शाने के लिए दुलहिन का भाई उसके तथा बहनोई के साथ-साथ जाय। कंस इसी प्रथा का पालन कर रहा था। *वर्णाश्रम धर्म* समाज में, जिसे आज गलती से हिन्दू समाज कहा जाता है, ये पुराने रीति-रिवाज पाए जाते हैं। इन पुराने रीति-रिवाजों का यहाँ पर सुन्दर ढंग से वर्णन हुआ है।

शङ्खतूर्यमृदङ्गाश्च नेदुर्दुन्दुभयः समम् ।
प्रयाणप्रक्रमे तात वरवध्वोः सुमङ्गलम् ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

शङ्ख—शंख; तूर्य—तुरही; मृदङ्गाः—मृदंग; च—भी; नेदुः—बजने लगे; दुन्दुभयः—नगाड़े; समम्—एकसाथ; प्रयाण-प्रक्रमे—विदाई के समय; तात—हे पुत्र; वर-वध्वोः—दूल्हा तथा दुल्हन की; सु-मङ्गलम्—शुभ विदाई के लिए।

हे प्रिय पुत्र महाराज परीक्षित, जब दूल्हा तथा दुल्हन विदा होने लगे तो उनकी शुभ विदाई पर शंख, तुरही, मृदंग तथा नगाड़े एकसाथ बजने लगे।

पथि प्रग्रहिणं कंसमाभाष्याहाशरीरवाक् ।

अस्यास्त्वामष्टमो गर्भो हन्ता यां वहसेऽबुध ॥ ३४॥

शब्दार्थ

पथि—रास्ते में; प्रग्रहिणम्—घोड़ों की लगाम थामे हुए; कंसम्—कंस को; आभाष्य—सम्बोधित करते हुए; आह—कहा; अ-शरीर-वाक्—अदृश्य शरीर से आने वाली आवाज ने; अस्याः—इस (देवकी) का; त्वाम्—तुमको; अष्टमः—आठवाँ; गर्भः—गर्भ; हन्ता—मारने वाला; याम्—जिसको; वहसे—लिए जा रहे हो; अबुध—हे मूर्ख।

जब कंस घोड़ों की लगाम थामे मार्ग पर रथ हाँक रहा था, तो किसी अशरीरी आवाज ने उसको सम्बोधित किया, ''अरे मूर्ख दुष्ट! तुम जिस स्त्री को लिए जा रहे हो उसकी आठवीं सन्तान तुम्हारा वध करेगी।''

तात्पर्य : इस भविष्यवाणी में *अष्टमोगर्भः* की बात थी, किन्तु स्पष्ट नहीं बतलाया गया था कि वह लड़का होगा या लड़की। यदि कंस यह भी देख सकता कि देवकी की आठवीं सन्तान लड़की होगी तो भी उसे सन्देह नहीं रहता कि आठवीं सन्तान से उसका वध होना है। 'विश्वकोश' के अनुसार *गर्भ* तथा *अर्भक* दोनों ही शिशु के द्योतक हैं। कंस अपनी बहन के प्रति वत्सल था इसीलिए वह अपनी बहन तथा बहनोई को उनके घर पहुँचाने के लिए रथचालक का काम कर रहा था। किन्तु देवतागण नहीं चाहते थे कि कंस देवकी के प्रति वत्सल रहे अतएव उन्होंने अदृश्य स्थान से कंस को उसके प्रति उकसाने के लिए प्रोत्साहित किया। यही नहीं, मरीचि के छहों पुत्रों को शाप मिला था कि वे देवकी के गर्भ से जन्म लें और कंस द्वारा वध किए जाने पर उनका उद्धार हो। जब देवकी को पता चला कि कंस उसके गर्भ से जन्म लेने वाले भगवान् के द्वारा मारा जाएगा तो वह अत्यधिक प्रसन्न हुई। *वहसे* शब्द भी सार्थक है क्योंकि यह सूचित करता है कि उस भविष्यवाणी ने कंस को धिक्कारा कि तुम अपने शत्रु की माता को ले जाने वाले वाहक पशु का कार्य कर रहे हो।

इत्युक्तः स खलः पापो भोजानां कुलपांसनः ।
भगिनीं हन्तुमारब्धं खड्गपाणिः कचेऽग्रहीत् ॥ ३५॥

शब्दार्थ

इति उक्तः—इस तरह कहे जाने पर; सः—वह (कंस); खलः—दुष्ट, ईर्ष्यालु; पापः—पापी; भोजानाम्—भोज कुल का; कुल-पांसनः—अपने कुल की ख्याति को नीचे गिराने वाला; भगिनीम्—अपनी बहन को; हन्तुम् आरब्धम्—मारने के लिए उद्यत; खड्ग-पाणिः—हाथ में तलवार लेकर; कचे—बाल; अग्रहीत्—पकड़ लिया।

कंस भोजवंश का अधम व्यक्ति था क्योंकि वह ईर्ष्यालु तथा पापी था। इसलिए उसने जब यह आकाशवाणी सुनी तो उसने बाएँ हाथ से अपनी बहन के बाल पकड़ लिए और उसके सिर को धड़ से अलग करने के लिए दाहिने हाथ से अपनी तलवार निकाली।

तात्पर्य : कंस रथ हाँक रहा था और बाएँ हाथ से लगामें थामे था, किन्तु ज्योंही उसने यह आकाशवाणी सुनी कि उसकी बहन की आठवीं सन्तान उसका वध करेगी तो उसने लगाम छोड़ दी, तुरन्त अपनी बहन के बाल पकड़ लिए और दाहिने हाथ में तलवार लेकर उसका वध करना चाहा। इसके पूर्व वह इतना वत्सल था कि अपनी बहन का रथ हाँक रहा था, किन्तु ज्योंही उसने स्वार्थ की बात सुनी अथवा यह सुना कि उसके प्राण संकट में हैं, तो वह सारा वात्सल्य भूल गया और तुरन्त महान् शत्रु बन गया। यही असुरों का स्वभाव है। असुर चाहे कितना ही वत्सल क्यों न हो उस पर विश्वास नहीं करना चाहिए। इसके अतिरिक्त राजा, राजनीतिज्ञ या स्त्री पर भी कभी विश्वास नहीं करना चाहिए क्योंकि वे निजी हित के लिए घृणित से घृणित कार्य कर सकते हैं। इसीलिए चाणक्य पण्डित कहता है—*विश्वासो नैव कर्तव्यः स्त्रीषु राजकुलेषु च।*

तं जुगुप्सितकर्माणं नृशंसं निरपत्रपम् ।
वसुदेवो महाभाग उवाच परिसान्त्वयन् ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

तम्—उस (कंस) को; जुगुप्सित-कर्माणम्—जो ऐसा घृणित कर्म करने के लिए तैयार था; नृशंसम्—अत्यन्त क्रूर; निरपत्रपम्—बेहया, निर्लज्ज; वसुदेवः—वसुदेव ने; महा-भागः—वासुदेव का अत्यन्त भाग्यशाली पिता; उवाच—कहा; परिसान्त्वयन्—सान्त्वना देते हुए।

कंस इतना क्रूर तथा ईर्ष्यालु था कि वह निर्लज्जतापूर्वक अपनी बहन को मारने के लिए तैयार था अतः उसे शान्त करने के लिए कृष्ण के होने वाले पिता महात्मा वसुदेव ने उससे निम्नलिखित शब्द कहे।

तात्पर्य : कृष्ण के होने वाले पिता वसुदेव को *महाभाग* अत्यंत ईमानदार तथा गम्भीर व्यक्ति बतलाया गया है क्योंकि यद्यपि कंस उनकी पत्नी को मारने जा रहा था, किन्तु वसुदेव गम्भीर तथा अविचल थे। वसुदेव ने शान्त मुद्रा में युक्तियुक्त तर्क प्रस्तुत करते हुए कंस को सम्बोधित किया। वसुदेव महाभाग या महापुरुष थे क्योंकि वे क्रूर व्यक्ति को शान्त करना तथा कट्टर से कट्टर शत्रु को क्षमा करना जानते थे। जो भाग्यशाली होता है उसे बाघ या साँप भी नहीं पकड़ पाते।

श्रीवसुदेव उवाच
श्लाघनीयगुणः शूरैर्भवान्भोजयशस्करः ।
स कथं भगिनीं हन्यात्स्त्रियमुद्वाहपर्वणि ॥ ३७॥

शब्दार्थ

श्री-वसुदेवः उवाच—महाभाग वसुदेव ने कहा; श्लाघनीय-गुणः—प्रशंसनीय गुणों से युक्त; शूरैः—शूरवीरों के द्वारा; भवान्—आप; भोज-यशः-करः—भोजवंश का दैदीप्यमान नक्षत्र; सः—आप जैसा; कथम्—किस तरह; भगिनीम्—अपनी बहन को; हन्यात्—मार सकता है; स्त्रियम्—विशेष रूप से स्त्री को; उद्वाह-पर्वणि—विवाहोत्सव के समय।

वसुदेव ने कहा : हे साले महाशय, तुम्हारे भोज परिवार को तुम पर गर्व है और बड़े-बड़े शूरवीर तुम्हारे गुणों की प्रशंसा करते हैं। भला तुम्हारे जैसा योग्य व्यक्ति एक स्त्री को, जो उसी की बहन है, विशेष रूप से उसके विवाह के अवसर पर, मार कैसे सकता है?

तात्पर्य : वैदिक नियमों के अनुसार ब्राह्मण, वृद्ध व्यक्ति, स्त्री, बालक या गाय का किसी भी स्थिति में वध नहीं करना चाहिए। वसुदेव ने इस बात पर बल दिया कि देवकी स्त्री ही नहीं अपितु कंस के परिवार की ही सदस्या है। वसुदेव से अब विवाहित होने के कारण वह *परस्त्री* थी और यदि ऐसी स्त्री का वध किया जाए तो उससे कंस को न केवल पाप लगेगा अपितु भोजवंश के राजा के रूप में उसकी कीर्ति पर कलंक चढ़ेगा। इस तरह वसुदेव ने अनेक प्रकार से कंस को आश्वासन दिलाने का प्रयास किया कि वह देवकी का वध न करे।

मृत्युर्जन्मवतां वीर देहेन सह जायते ।
अद्य वाब्दशतान्ते वा मृत्युर्वै प्राणिनां ध्रुवः ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

मृत्युः—मृत्यु; जन्म-वताम्—जन्म लेने वाले जीवों के; वीर—हे वीर; देहेन सह—शरीर के साथ; जायते—उत्पन्न होती है; अद्य—आज; वा—चाहे; अब्द-शत—सौ वर्षों के; अन्ते—अन्त में; वा—अथवा; मृत्युः—मृत्यु; वै—निस्सन्देह; प्राणिनाम्—सारे जीवों की; ध्रुवः—निश्चित है।

हे शूरवीर, जिसने जन्म लिया है उसकी मृत्यु निश्चित है, क्योंकि शरीर के ही साथ मृत्यु का उद्भव होता है। कोई चाहे आज मरे या सौ वर्षों बाद, किन्तु प्रत्येक जीव की मृत्यु निश्चित है।

तात्पर्य : वसुदेव कंस को यह बतलाना चाह रहे थे कि यद्यपि वह मृत्यु से भयभीत है इसलिए स्त्री तक का वध करना चाह रहा है, किन्तु वह मृत्यु से बच नहीं सकता। मृत्यु ध्रुव है। तो फिर कंस ऐसा कुछ क्यों करे जो उसकी कीर्ति तथा उसके परिवार के लिए अशोभनीय हो? जैसाकि *भगवद्गीता* (२.२७) में पुष्टि हुई है—

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि॥

"जिसने भी जन्म लिया है उसकी मृत्यु निश्चित है और जो मर चुका है उसका जन्म भी निश्चित

है। अत: अपने अपरिहार्य कार्य को करने में तुम्हें शोच नहीं करना चाहिए।'' मनुष्य को मृत्यु से डरना नहीं चाहिए प्रत्युत अपने आप को अगले जन्म के लिए तैयार करना चाहिए। उसे अपने इस मनुष्य जीवन के समय का उपयोग जन्म-मृत्यु की क्रिया को समाप्त करने में करना चाहिए। ऐसा नहीं है कि मृत्यु से अपने को बचाने के लिए पापकर्म किए जाँय। यह अच्छी बात नहीं है।

देहे पञ्चत्वमापन्ने देही कर्मानुगोऽवशः ।
देहान्तरमनुप्राप्य प्राक्तनं त्यजते वपुः ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

देहे—जब शरीर; पञ्चत्वम् आपन्ने—पाँच तत्त्वों में बदल जाता है; देही—देहधारी, जीव; कर्म-अनुगः—अपने सकाम कर्मों के फलों का पालन करता हुआ; अवशः—स्वतः; देह-अन्तरम्—दूसरा शरीर (भौतिक तत्त्वों से निर्मित); अनुप्राप्य—फल के रूप में प्राप्त करके; प्राक्तनम्—पहले वाला; त्यजते—छोड़ देता है; वपुः—शरीर।

जब यह शरीर मिट्टी बन जाता है और फिर से पाँच तत्त्वों में—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश—परिणत हो जाता है, तो शरीर का स्वामी जीव स्वतः अपने सकाम कर्मों के अनुसार भौतिक तत्त्वों से बना दूसरा शरीर प्राप्त करता है। अगला शरीर प्राप्त होने पर वह वर्तमान शरीर को त्याग देता है।

तात्पर्य : *भगवद्गीता* (२.१३) में इसकी पुष्टि हुई है, जिससे आध्यात्मिक ज्ञान के शुभारम्भ का पता चलता है—

देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।

तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति॥

''जिस तरह इस शरीर में देहधारी आत्मा बालपन से युवावस्था और फिर वृद्धावस्था को प्राप्त होता है उसी तरह मृत्यु के समय आत्मा दूसरे शरीर में चला जाता है। स्वरूपसिद्ध व्यक्ति ऐसे परिवर्तन से मोहग्रस्त नहीं होता।'' व्यक्ति या पशु भौतिक देह नहीं, प्रत्युत भौतिक देह जीवात्मा का आवरण है। *भगवद्गीता* में शरीर की तुलना वस्त्र से की गई है और विस्तार से बतलाया गया है कि मनुष्य किस प्रकार अपने वस्त्र एक के बाद एक बदलता रहता है। उसी वैदिक ज्ञान की यहाँ पुष्टि हुई है। जीव अर्थात् आत्मा निरन्तर एक के बाद एक शरीर बदलता रहता है। यहाँ तक कि वर्तमान जीवन में भी शरीर बालकपन से कुमारावस्था, कुमारावस्था से युवावस्था और युवावस्था से वृद्धावस्था में बदलता जाता है। इसी कारण जब शरीर काफी वृद्ध हो जाता है, तो जीव इस शरीर को त्याग देता है और

प्रकृति के नियमानुसार अपने सकाम कर्मों, इच्छाओं तथा महत्त्वाकांक्षाओं पर आधारित दूसरा शरीर पाता है। प्रकृति के नियम इस अनुक्रम को नियंत्रित करते हैं अत: जीव जब तक बहिरंगा भौतिक शक्ति के नियंत्रण में रहता है तब तक सकाम कर्मों के अनुसार शारीरिक परिवर्तन स्वत: होते रहते हैं। इसलिए वसुदेव कंस को यह बताना चाह रहे थे कि यदि वह स्त्री को मारने का यह पापकर्म करता है, तो अगले जन्म में उसे भौतिक शरीर तो मिलेगा, किन्तु उसे और कष्ट झेलने होंगे। इस तरह वसुदेव ने कंस को सलाह दी कि वह पापकर्म न करे।

जो व्यक्ति अपने अज्ञान अर्थात् तमोगुण के कारण पापकर्म करता है उसे निम्नतर शरीर मिलता है। *कारणं गुण-संगोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु* (*भगवद्गीता* १३.२२)। जीवन की लाखों योनियाँ हैं। तो फिर उच्चतर तथा निम्नतर शरीर क्यों मिलते हैं? जीव को ये शरीर प्रकृति के दूषणों के कारण प्राप्त होते हैं। यदि कोई इस जीवन में तमोगुण तथा पापकर्मों (*दुष्कृती*) से संदूषित हो जाता है, तो अगले जीवन में उसे निश्चय ही कष्टमय शरीर प्राप्त होगा यह प्रकृति का नियम है। प्रकृति के नियम बद्धजीव की कल्पनाजनक इच्छाओं के अधीन नहीं रहते। अतएव हमारा प्रयास यही होना चाहिए कि सदैव *सत्त्वगुण* के साथ चले और रजोगुण या तमोगुण में लिप्त न हों (*रजस्तमोभावा:*)। कामेच्छाएँ तथा लोभ जीव को लगातार अज्ञान में रखते हैं और सत्त्वगुण या शुद्ध सत्त्वगुण के पद तक पहुँचने से रोकते हैं। मनुष्य को सलाह दी जाती है कि वह शुद्ध सत्त्वगुण अर्थात् भक्ति के पद को प्राप्त हो क्योंकि तभी वह भौतिक प्रकृति के तीन गुणों के फल से प्रतिरक्षित रहेगा।

व्रजंस्तिष्ठन्पदैकेन यथैवैकेन गच्छति ।
यथा तृणजलौकैवं देही कर्मगतिं गत: ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

व्रजन्—रास्ते पर चलते हुए कोई व्यक्ति; तिष्ठन्—खड़े होकर; पदा एकेन—एक पाँव पर; यथा—जिस तरह; एव—निस्सन्देह; एकेन—दूसरे पाँव से; गच्छति—जाता है; यथा—जिस तरह; तृण-जलौका—तिनके पर बैठा कीड़ा; एवम्—इस तरह; देही—जीव; कर्म-गतिम्—सकाम कर्मों के फल; गत:—भोगता है।

जिस तरह रास्ते पर चलते हुए मनुष्य अपना एक पाँव जमीन पर टेकता है और फिर दूसरे पाँव को उठाता है या जिस तरह वनस्पति का एक कीड़ा पहले एक पत्ती पर बैठता है और फिर इसे छोड़ कर दूसरी पत्ती पर जाता है उसी तरह जब बद्धजीव दूसरे शरीर का आश्रय ग्रहण करता है तब पिछले शरीर को त्याग देता है।

तात्पर्य : यह विधि है आत्मा द्वारा एक शरीर से दूसरे में देहान्तरण की। मृत्यु के समय, जीव अपनी मानसिक अवस्था के अनुसार सूक्ष्म शरीर द्वारा, जिसमें मन, बुद्धि तथा अहंकार सम्मिलित हैं, दूसरे स्थूल शरीर में ले जाया जाता है। जब उच्च अधिकारी यह निश्चित कर देते हैं कि जीव को किस तरह का स्थूल शरीर मिलेगा तो उसे बाध्य होकर उस शरीर में प्रवेश करना पड़ता है और इस तरह वह पिछले शरीर को स्वयमेव त्याग देता है। जो मन्दबुद्धि लोग देहान्तर की इस विधि को नहीं समझते वे यह मान बैठते हैं कि स्थूल शरीर के समाप्त होते ही जीवन हमेशा के लिए समाप्त हो जाता है। ऐसे लोगों के पास मस्तिष्क होता ही नहीं जिससे देहान्तरण की विधि को समझें। सम्प्रति हरे कृष्ण आन्दोलन का काफी विरोध हो रहा है इसे ''मस्तिष्क धुलाई'' आन्दोलन बतलाया जाता है। किन्तु वास्तविकता यह है कि पाश्चात्य देशों के तथाकथित वैज्ञानिकों, दार्शनिकों तथा अन्य नेताओं के तनिक भी मस्तिष्क नहीं हैं। हरे कृष्ण आन्दोलन ऐसे मूर्ख लोगों की बुद्धि को चेतन करके उन्हें ऊपर उठाने के लिए प्रयत्न कर रहा है, जिससे वे मानव शरीर का लाभ उठा सकें। दुर्भाग्यवश, निपट अज्ञान के कारण ही वे हरे कृष्ण आन्दोलन को मस्तिष्क धुलाई आन्दोलन कहते हैं। वे यह नहीं जानते कि ईशभावनामृत के बिना मनुष्य को एक शरीर से दूसरे शरीर में स्थानान्तरण करते रहना पड़ता है। अपने शैतानी मस्तिष्क के कारण उन्हें आगे गर्हित जीवन स्वीकार करना होगा और वे इस भौतिक जगत के बद्ध जीवन से अपने को कभी भी मुक्त नहीं कर पाएँगे। इस श्लोक में आत्मा के देहान्तरण की स्पष्ट व्याख्या हुई है।

स्वप्ने यथा पश्यति देहमीदृशं
मनोरथेनाभिनिविष्टचेतनः ।
दृष्टश्रुताभ्यां मनसानुचिन्तयन्
प्रपद्यते तत्किमपि ह्यपस्मृतिः ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

स्वप्ने—सपने में; यथा—जिस तरह; पश्यति—देखता है; देहम्—शरीर का प्रकार; ईदृशम्—उसी तरह; मनोरथेन—मानसिक चिन्तन द्वारा; अभिनिविष्ट—पूरी तरह लीन; चेतनः—चेतना से युक्त; दृष्ट—आँखों से देखकर जो अनुभव किया गया हो; श्रुताभ्याम्—तथा सुन करके; मनसा—मन से; अनुचिन्तयन्—सोचते, अनुभव करते तथा इच्छा करते हुए; प्रपद्यते—शरण में आता है; तत्—उस अवस्था तक; किम् अपि—क्या कहा जा सकता है; हि—निस्सन्देह; अपस्मृतिः—वर्तमान शरीर का विस्मरण।.

किसी परिस्थिति को देखकर या सुनकर ही मनुष्य उसके बारे में चिन्तन-मनन करता है और

अपने इस शरीर का विचार न करते हुए उसके वशीभूत हो जाता है। इसी तरह मानसिक संतुलन द्वारा वह रात में भिन्न शरीरों तथा भिन्न परिस्थितियों में रहकर सपना देखता है और अपनी वास्तविक स्थिति को भूल जाता है। उसी प्रक्रिया के अन्तर्गत वह अपना वर्तमान शरीर त्यागकर दूसरा शरीर ग्रहण करता है (*तथा देहान्तरप्राप्तिः*)।

तात्पर्य : इस श्लोक में आत्मा के देहान्तर की स्पष्ट व्याख्या हुई है। मनुष्य कभी-कभी अपने वर्तमान शरीर को भूल जाता है और अपने बचपन के शरीर के विषय में विगत शरीर के बारे में सोचता है कि वह किस तरह खेलता, कूदता और बातें इत्यादि किया करता था। जब भौतिक शरीर काम के लायक नहीं रह जाता तो मिट्टी बन जाता है, ''तुम माटी हो और अन्त में माटी में मिल जाओगे।'' किन्तु जब शरीर फिर से पाँच भौतिक तत्त्वों—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश—में मिल जाता है, तो मन तब भी कार्य करता रहता है। मन सूक्ष्म तत्त्व है, जिससे शरीर बनता है जैसाकि हम अपने स्वप्न में और जग जाने पर चिन्तन के समय अनुभव करते हैं। हमें यह समझना होगा कि मानसिक चिन्तन की विधि ऐसे नए-नए प्रकार के शरीर उत्पन्न करती रहती है जिनका वास्तविक अस्तित्व ही नहीं होता। यदि हम मन की प्रकृति (*मनोरथेन*) तथा इसके सोचने, अनुभव करने तथा चाहने को समझ सकें तो हम यह आसानी से समझ सकते हैं कि किस तरह मन से विभिन्न प्रकार के शरीर उत्पन्न होते हैं।

अतएव कृष्णभावनामृत आन्दोलन दिव्य कार्यकलापों की ऐसी विधि प्रस्तुत करता है, जिसमें मन कृष्ण सम्बन्धी कार्यों में पूरी तरह लीन रहता है। आत्मा की उपस्थिति चेतना द्वारा अनुभव की जाती है और मनुष्य को चाहिए कि वह अपनी चेतना को शुद्ध करके भौतिक से आध्यात्मिक बना ले अथवा दूसरे शब्दों में कृष्णभावनामृत में परिणत कर ले। जो आध्यात्मिक है, वह शाश्वत है और जो भौतिक है, वह अनित्य या नश्वर है। कृष्णभावनामृत के बिना मनुष्य की चेतना सदैव नश्वर वस्तुओं में लीन रहती है। इसीलिए कृष्ण ने *भगवद्गीता* (९.३४) में हर एक के लिए संस्तुति की है—*मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।* मनुष्य को चाहिए कि वह सदैव कृष्ण के विचारों में लीन रहे, उन्हीं का भक्त बने, सदा उनकी सेवा करे और उन्हें ही सबसे बड़ा मानकर पूजे तथा नमस्कार करे। भौतिक जगत में मनुष्य किसी न किसी बड़े व्यक्ति का दास होता है और आध्यात्मिक जगत में हमारी वैधानिक

स्थिति *परब्रह्म* की सेवा करने की है। यही श्री चैतन्य महाप्रभु का उपदेश है। *जीवेर 'स्वरूप' हयकृष्णेर 'नित्य दास'* (*चैतन्य-चरितामृत, मध्य* २०.८)।

कृष्णभावनामृत में कार्य करना जीवन की सिद्धि और योग की सर्वोच्च सिद्धि है। भगवान् कृष्ण *भगवद्गीता* (६.४७) में कहते हैं—

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना।

श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मत: ॥

''समस्त योगियों में जो अत्यन्त श्रद्धापूर्वक दिव्य प्रेमाभक्ति में मेरी पूजा करते हुए सदैव मुझमें ही रहता है, वह योग में मुझसे घनिष्टतापूर्वक संयुक्त होता है और सर्वोच्च होता है।''

संकल्प तथा *विकल्प* के बीच डगमगाने वाले अर्थात् किसी को स्वीकार करने और फिर उसी को अस्वीकार करने वाले की दशा मृत्यु के समय एक भौतिक शरीर से दूसरे में आत्मा के स्थानान्तरण में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है।

यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।

तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावित: ॥

''शरीर त्यागते समय मनुष्य जैसी दशा का स्मरण करता है उसे अवश्यमेव वैसी ही दशा प्राप्त होती है।'' (*भगवद्गीता* ८.६) अत: मनुष्य को चाहिए कि वह अपने मन को भक्तियोग पद्धति में प्रशिक्षित करे जैसाकि सदा कृष्णभावनामृत में रहने वाले महाराज अम्बरीष ने किया था। *स वै मन: कृष्ण पदारविन्दयो:।* मनुष्य को चाहिए कि चौबीसों घंटे अपने मन को कृष्ण के चरणकमलों पर स्थिर रखे। ऐसा करने से अन्य इन्द्रियों के कार्यकलाप भी कृष्ण की सेवा में लगे रहेंगे। *हृषीकेण हृषीकेश-सेवनं भक्तिरुच्यते*—शुद्ध इन्द्रियों द्वारा इन्द्रियों के स्वामी हृषीकेश की सेवा करना *भक्ति* है। जो लोग निरन्तर भक्ति में लगे रहते हैं, वे प्रकृति के भौतिक गुणों से ऊपर दिव्य पद पर स्थित होते हैं। जैसाकि कृष्ण ने *भगवद्गीता* (१४.२६) में कहा है—

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते।

स गुणान् समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते॥

''जो पूर्णतया भक्ति में लगा रहता है, जो किसी भी परिस्थिति में च्युत नहीं होता वह तीनों गुणों

को तत्क्षण पार करके ब्रह्म के स्तर पर आ जाता है।'' मनुष्य को वैदिक साहित्य से, विशेष रूप से जब वैदिक ज्ञान का नवनीत *भगवद्गीता* यथारूप में प्रस्तुत किया गया है, सफलता की कुंजी प्राप्त कर लेनी चाहिए।

चूँकि मन अन्ततोगत्वा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण द्वारा नियंत्रित होता है अतएव *अपस्मृति:* शब्द महत्त्वपूर्ण है। अपनी ही पहचान को भूल जाना *अपस्मृति:* है। यह अपस्मृति भगवान् द्वारा नियंत्रित हो सकती है क्योंकि भगवान् कहते हैं—*मत्त: स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च*—मुझी से स्मृति, ज्ञान तथा विस्मृति उत्पन्न होते हैं। कृष्ण मनुष्य को अपनी असली स्थिति भूलने न देकर मृत्यु के समय उसकी मूल पहचान को जागृत कर सकते हैं यद्यपि मन चंचल होता है। भले ही मृत्यु के समय मन ठीक से काम न करे, कृष्ण अपने भक्त को अपने चरणकमलों में शरण देते हैं। अत: जब भक्त अपना शरीर त्यागता है, तो मन उसे दूसरे भौतिक शरीर में नहीं ले जाता (*त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति*) प्रत्युत भक्त को कृष्ण ऐसी जगह ले जाते हैं जहाँ वे अपनी लीलाएँ करते हैं (*माम् एति*) जैसाकि हम पिछले श्लोकों में बतला चुके हैं। अत: मनुष्य की चेतना सदा कृष्ण में लीन रहे तो उसका जीवन सफल हो जाएगा। अन्यथा मन आत्मा को किसी अन्य भौतिक शरीर में ले जाएगा। यह आत्मा पिता के वीर्य में प्रस्थापित होकर माता के गर्भ में स्खलित होगा। वीर्य तथा रज से माता-पिता के स्वरूप के अनुसार विशेष प्रकार का शरीर उत्पन्न करते हैं और जब शरीर परिपक्व हो जाता है, तो आत्मा उसमें प्रस्फुटित होता है और नवीन जीवन का सूत्रपात होता है। एक शरीर से दूसरे शरीर में आत्मा के देहान्तरण की विधि यही है (*तथा देहान्तरप्राप्ति:*)। दुर्भाग्यवश अल्पबुद्धि वाले लोग यह सोचते हैं कि शरीर के लुप्त होने पर सब समाप्त हो जाता है। सारा संसार ऐसे मूर्खों तथा मूढ़ों द्वारा भ्रान्त हो रहा है। किन्तु *भगवद्गीता* (२.२०) में कहा गया है—*न हन्यते हन्यमाने शरीरे।* शरीर के नष्ट होने पर भी आत्मा नष्ट नहीं होता। यह आत्मा दूसरा शरीर ग्रहण करता है।

यतो यतो धावति दैवचोदितं
मनो विकारात्मकमाप पञ्चसु ।
गुणेषु मायारचितेषु देह्यसौ
प्रपद्यमानः सह तेन जायते ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

यतः यतः—एक स्थान से दूसरे स्थान को या एक पद से दूसरे पद को; **धावति**—चिन्तन करता है; **दैव-चोदितम्**—भाग्य द्वारा प्रेरित; **मनः**—मन; **विकार-आत्मकम्**—एक प्रकार के भावों से दूसरे प्रकार में बदलते हुए; **आप**—अन्त में प्राप्त करता है (प्रवृत्ति); **पञ्चसु**—मृत्यु के समय (जब भौतिक शरीर भौतिक पदार्थों में परिणत हो जाता है); **गुणेषु**—(मुक्त न होने से मन संलग्न रहता है) भौतिक गुणों से; **माया-रचितेषु**—जहाँ माया वैसा ही शरीर रचती है; **देही**—ऐसा शरीर धारण करने वाला आत्मा; **असौ**—वह; **प्रपद्यमानः**—शरणागत (ऐसी स्थिति को); **सह**—साथ; **तेन**—वैसे ही शरीर के द्वारा; **जायते**—जन्म लेता है।.

मृत्यु के समय मनुष्य सकाम कर्मों में निहित मन के सोचने, अनुभव करने और चाहने के अनुसार ही शरीर-विशेष प्राप्त करता है। दूसरे शब्दों में, मन के कार्यकलापों के अनुसार ही शरीर विकास करता है। शरीर के परिवर्तन मन की चंचलता के कारण हैं अन्यथा आत्मा तो मूल आध्यात्मिक शरीर में रह सकता है।

तात्पर्य : मनुष्य यह आसानी से समझ सकता है कि मन निरन्तर चलायमान रहता है, वह अपने सोचने, अनुभव करने तथा चाहने की गुणवत्ता को बदलता रहता है। *भगवद्गीता* (६.३४) में अर्जुन ने इसकी व्याख्या की है—

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्॥

मन चञ्चल है और बड़े जोर से बदलता है। इसलिए अर्जुन ने स्वीकार किया कि मन को वश में करना बिलकुल सम्भव नहीं है यह कार्य उतना ही कठिन है जितना कि वायु को वश में करना। उदाहरणार्थ, यदि कोई नदी या समुद्र में नाव में बैठकर वायु के सहारे जा रहा हो और वायु नियंत्रण से बाहर हो तो नाव डगमगाने लगेगी और उसे संभाल पाना मुश्किल हो जाएगा। हो सकता है, वह उलट भी जाए। अतः *भव-सागर* अर्थात् मनोरथों एवं विभिन्न शरीरों में स्थानान्तरण के सागर में सर्वप्रथम मन को वश में करना चाहिए।

मन को सतत अभ्यास से वश में किया जा सकता है और योग पद्धति का यही उद्देश्य है (*अभ्यासयोगयुक्तेन*)। किन्तु इस कलियुग में योग पद्धति असफल होने की संभावना रहती है क्योंकि इसमें कृत्रिम विधियाँ प्रयुक्त होती हैं। किन्तु यदि मन भक्तियोग में लगा रहे तो कृष्ण की कृपा से इसे आसानी से वश में किया जा सकता है। इसीलिए श्री चैतन्य महाप्रभु ने संस्तुति की है—*हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।* मनुष्य को चाहिए कि भगवान् के पवित्र नाम का निरन्तर कीर्तन करे क्योंकि भगवान् का नाम परम पुरुष हरि से अभिन्न है।

मनुष्य चाहे तो हरे कृष्ण मंत्र का निरंतर कीर्तन करते हुए अपने मन को कृष्ण के चरणकमलों में स्थिर कर सकता है (*स वै मन: कृष्ण पदारविन्दयो:*) और इस तरह योग-सिद्धि प्राप्त कर सकता है। अन्यथा मन तो इन्द्रियभोग के लिए चंचल होता रहेगा और मनुष्य को एक शरीर छोड़कर दूसरा शरीर धारण करते रहना होगा क्योंकि मन केवल भौतिक तत्त्वों या दूसरे शब्दों में मिथ्या इन्द्रियतृप्ति का अभ्यस्त होता है। *मायासुखाय भरमुद्वहतो विमूढान्* (*भागवत* ७.९.४३)। मनोरथ के द्वारा नियंत्रित होने के कारण मूढ़ लोग जीवन का क्षणिक आनन्द लेने के लिए वृहद् आयोजन करते हैं, किन्तु मृत्यु के समय उन्हें अपना यह शरीर त्यागना होगा, जब कृष्ण की बहिरंगा शक्ति सब कुछ छीन लेती है (*मृत्यु: सर्वहरश्चाहम्*)। उस समय जीवन भर में जो कुछ अर्जित किया हुआ रहता है, वह सब नष्ट हो जाता है और भौतिक प्रकृति द्वारा बाध्य होकर नया शरीर स्वत: धारण करना होता है। इस जीवन में भले ही किसी ने गगनचुम्बी महल क्यों न बनाया हो, किन्तु अगले जीवन में अपनी मानसिकता के कारण उसे बिल्ली, कुत्ता या वृक्ष अथवा, हो सकता है, देवता का शरीर धारण करना पड़े। इस तरह भौतिक प्रकृति के नियमों के द्वारा शरीर प्रदत्त होता है। *कारणं गुण संगोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु* (*भगवद्गीता* १३.२२)। भौतिक प्रकृति के तीन गुणों के सम्पर्क से ही आत्मा उच्च तथा निम्न योनियों में जन्म लेता है।

ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठिन्ति राजसा: ।

जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसा: ॥

''जो सतोगुणी हैं, वे क्रमश: स्वर्गलोक को जाते हैं, जो रजोगुणी हैं, वे पृथ्वीलोक में रहते हैं और जो तमोगुणी हैं, वे नरकलोक में जाते हैं।'' (*भगवद्गीता* १४.१८)

कहने का तात्पर्य यह है कि कृष्णभावनामृत आन्दोलन मानव समाज के लिए सर्वोत्कृष्ट कल्याण कार्य प्रदान करता है। अत: समाज के विज्ञ लोगों को चाहिए कि समस्त मानवता के लाभ के लिए इस आन्दोलन को गंभीरतापूर्वक समझें। अपने को जन्म-मृत्यु चक्र से बचाने के लिए अपनी चेतना को शुद्ध बनाना होगा। *सर्वोपाधि विनिर्मुक्तं तत्परत्वेन निर्मलम्।* मनुष्य को ऐसी सारी उपाधियों से कि—मैं अमरीकी हूँ, मैं भारतीय हूँ, मैं यह हूँ, मैं वह हूँ—मुक्त होना चाहिए और इस भावभूमि पर आना चाहिए कि कृष्ण आदि-स्वामी हैं और हम सब उनके नित्यदास हैं। जब इन्द्रियाँ निर्मल होकर कृष्ण

की सेवा में लगी रहती हैं, तो सर्वोच्च सिद्धि प्राप्त होती है। *हृषीकेण हृषीकेशसेवनं भक्तिरुच्यते।* कृष्णभावनामृत आन्दोलन भक्तियोग का आन्दोलन है। *वैराग्यविद्या निजभक्तियोग।* इस आन्दोलन के नियमों पर चलकर मनुष्य भौतिक मनोरथों से विलग हो जाता है और जीव तथा परमेश्वर के सेवक-सेव्य के नित्य सम्बन्ध वाले मूल पद पर स्थित हो जाता है। संक्षेप में, कृष्णभावनामृत आन्दोलन का यही उद्देश्य है।

ज्योतिर्यथैवोदकपार्थिवेष्वदः
समीरवेगानुगतं विभाव्यते ।
एवं स्वमायारचितेष्वसौ पुमान्
गुणेषु रागानुगतो विमुह्यति ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

ज्योतिः—आकाश में सूर्य, चन्द्रमा तथा तारे; यथा—जिस तरह; एव—निस्सन्देह; उदक—जल में; पार्थिवेषु—या अन्य तरल पदार्थ यथा तैल में; अदः—प्रत्यक्ष रूप से; समीर-वेग-अनुगतम्—वायु के वेग से ठेला जाकर; विभाव्यते—विभिन्न रूपों में प्रकट होते हैं; एवम्—उसी तरह; स्व-माया-रचितेषु—अपने मनोरथों से उत्पन्न परिस्थिति में; असौ—जीव; पुमान्—मनुष्य; गुणेषु—प्रकृति के गुणों द्वारा प्रकट, भौतिक जगत में; राग-अनुगतः—अपनी आसक्ति के अनुसार; विमुह्यति—पहचान के द्वारा मोहग्रस्त होता है।.

जब आकाश में स्थित नक्षत्र जैसे सूर्य, चन्द्रमा तथा तारे तेल या जल जैसे तरल पदार्थों में प्रतिबिम्बित होते हैं, तो वायु के वेग के कारण वे विभिन्न आकारों के लगते हैं कभी गोल, कभी लम्बे तो कभी और कुछ। इसी तरह जब जीवात्मा भौतिकतावादी विचारों में मग्न रहता है, तो वह अज्ञान के कारण विविध रूपों को अपनी पहचान के रूप में ग्रहण करता है। दूसरे शब्दों में, प्रकृति के भौतिक गुणों से विचलित होने के कारण वह मनोरथों के द्वारा मोहग्रस्त हो जाता है।

तात्पर्य : यह श्लोक एक उत्तम उदाहरण प्रस्तुत करता है, जिससे यह समझा जा सकता है कि भौतिक जगत में नित्य आत्मा किस तरह विभिन्न पदों और विभिन्न शरीरों को ग्रहण करता है (*देहान्तरप्राप्तिः*)। चन्द्रमा स्थिर है और एक है, किन्तु जब इसका प्रतिबिम्ब जल या तेल में पड़ता है, तो हवा चलने से यह विभिन्न आकार ग्रहण करता है। इसी तरह आत्मा कृष्ण का नित्यदास है, किन्तु जब उसे प्रकृति के भौतिक गुणों में रखा जाता है, तो वह विभिन्न शरीर धारण करता है कभी देवता का, कभी मनुष्य का तो कभी कुत्ते, वृक्ष इत्यादि का। जीव भगवान् की भ्रामक शक्ति अर्थात् माया के वशीभूत होकर सोचता है कि वह अमुक-अमुक व्यक्ति—अमरीकी, भारतीय, अथवा बिल्ली, कुत्ता,

वृक्ष इत्यादि है। इसे ही *माया* कहते हैं। जब मनुष्य इस मोह से छूट जाता है और समझता है कि आत्मा इस भौतिक जगत के किसी स्वरूप से सम्बन्धित नहीं है, तो वह आध्यात्मिक पद पर (*ब्रह्मभूतो*) स्थित होता है।

इस अनुभूति को कभी-कभी *निराकार* कहा जाता है। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि आत्मा का कोई रूप नहीं होता। आत्मा का रूप होता है, किन्तु भौतिक कल्मष के कारण उसे जो बाह्य-उद्वेलित रूप प्राप्त होता है, वह मिथ्या होता है। इसी तरह ईश्वर को भी *निराकार* कहा जाता है, जिसका अर्थ है कि ईश्वर के कोई स्वरूप नहीं होता, किन्तु वह *सच्चिदानन्द विग्रह* है। जीव इसी परम सच्चिदानन्द विग्रह का अंश है, किन्तु उसके भौतिक स्वरूप नश्वर या भ्रामक होते हैं। जीव तथा परमेश्वर दोनों के आदि आध्यात्मिक स्वरूप (*सच्चिदानन्द विग्रह*) होते हैं लेकिन परमेश्वर अपना स्वरूप नहीं बदलता। परमेश्वर उसी रूप में रहता है, किन्तु जीव को प्रकृति से बाध्य होकर विभिन्न रूप धारण करने पड़ते हैं। जब जीव को ये विभिन्न स्वरूप प्राप्त होते हैं, तो वह उन्हें अपना स्वरूप मान बैठता है न कि अपने मूल आध्यात्मिक स्वरूप को। ज्यों ही जीव अपने मूल आध्यात्मिक स्वरूप तथा ज्ञान को फिर से पा लेता है त्यों ही वह परम स्वरूप परमेश्वर की शरण में चला जाता है। इसकी व्याख्या *भगवद्गीता* (७.१९) में हुई है। *बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते।* जब जीव अनेकानेक जन्मों में विभिन्न स्वरूपों के पश्चात् अपने मूल कृष्णभावनामृत स्वरूप में लौटता है, तो वह तुरन्त परम स्वरूप कृष्ण के चरणकमलों में अपने को समर्पित कर देता है। यही मुक्ति है। *भगवद्गीता* (१८.५४) में भगवान् कहते हैं—

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति।

समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्॥

"जो दिव्य पद पर स्थित है उसे परब्रह्म की अनुभूति तुरन्त ही हो जाती है और वह परम प्रसन्न हो जाता है। वह न तो कभी शोक करता है न किसी वस्तु की इच्छा करता है। वह हर जीव को सम-भाव से देखता है। उस अवस्था में वह मेरी शुद्ध भक्ति प्राप्त करता है।" परमस्वरूप के प्रति समर्पण भक्ति का प्रतिफल है। यह भक्ति अथवा अपनी स्थिति का ज्ञान ही पूर्ण मुक्ति है। जब तक मनुष्य परम सत्य को निराकार मानता है तब तक उसे शुद्ध ज्ञान नहीं होता किन्तु फिर भी उसे शुद्ध ज्ञान के लिए

संघर्ष करना चाहिए। *क्लेशोऽधिकतरस्तेषां अव्यक्तासक्तचेतसाम्* (*भगवद्गीता* १२.५)। भले ही कोई आध्यात्मिक दृष्टि से कितना ही उन्नत क्यों न हो यदि वह परम सत्य के निराकार स्वरूप के प्रति आसक्त है, तो उसे और अधिक श्रम करने की आवश्यकता रहती है जैसाकि *क्लेशोऽधिकतर:* शब्दों से सूचित होता है जिनका अर्थ है और अधिक कष्ट। किन्तु भक्त को अपना आदि आध्यात्मिक स्वरूप प्राप्त करने में कठिनाई नहीं होती और वह भगवान् के आदि रूप को समझ लेता है।

स्वयं कृष्ण *भगवद्गीता* के द्वितीय अध्याय में जीवों के विविध रूपों का वर्णन करते हुए अर्जुन को बतलाते हैं कि वे, अर्जुन तथा अन्य सारे जीव, जो इसके पूर्व अपने मूल रूप में थे अब पृथक्-पृथक् पहचान रखते हैं। वे भूतकाल में वैयक्तिक अस्तित्व वाले थे, अब भी हैं और भविष्य में भी अपना-अपना स्वरूप रखते होंगे। अन्तर इतना ही है कि बद्धजीव विविध भौतिक स्वरूपों में प्रकट होता है, जबकि कृष्ण अपने मूल आध्यात्मिक रूप में प्रकट होते हैं। दुर्भाग्यवश जिनका आध्यात्मिक ज्ञान अल्प है वे सोचते हैं कि कृष्ण उनके ही जैसे हैं और कृष्ण का स्वरूप भौतिक स्वरूपों जैसा है। *अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्* (*भगवद्गीता* ९.११)। कृष्ण कभी भी भौतिक ज्ञान से गर्वित नहीं होते इसीलिए उन्हें अच्युत कहा जाता है, जबकि जीव नीचे गिरते हैं (च्युत) और प्रकृति द्वारा विक्षुब्ध होते हैं। परमेश्वर तथा जीवों में यही अन्तर है।

इस प्रसंग में यह ध्यान देने की बात है कि दिव्य पद पर स्थित होने के कारण वसुदेव ने कंस को सलाह दी कि वह और आगे पापकर्म न करे। असुरों का प्रतिनिधि कंस कृष्ण या ईश्वर को मारने के लिए सदा तैयार रहता था जबकि वसुदेव ऐसे दिव्य पद प्राप्त पुरुष का प्रतिनिधित्व करते हैं जिनके यहाँ कृष्ण जन्म लेते हैं (वासुदेव पुत्र हैं वसुदेव के)। वसुदेव चाहते थे कि उनका साला कंस अपनी बहन की हत्या का पापकर्म न करे क्योंकि भौतिक प्रकृति द्वारा विक्षुब्ध किये जाने पर कंस को ऐसा शरीर धारण करना होगा जिसमें उसे बारम्बार कष्ट सहना पड़ेगा। *श्रीमद्भागवत* में अन्यत्र (५.५.४) ऋषभदेव भी कहते हैं—

न साधुमन्ये यत आत्मनोऽयम्

असन्नपि क्लेशद आस देह:।

जब तक जीव तथाकथित सुख-दुख के सकाम-कर्मों में फँसा रहता है तब तक उसे ऐसा विशेष

शरीर प्राप्त होता रहेगा जिसमें भौतिक प्रकृति के कारण उसे तीन प्रकार के तापों को सहन करना होगा (*त्रितापयन्त्रणा*)। अत: बुद्धिमान व्यक्ति को चाहिए कि वह अपने को भौतिक प्रकृति के तीन गुणों के प्रभाव से मुक्त कर ले और भगवान् कृष्ण की सेवा में लग कर अपने मूल आध्यात्मिक शरीर को फिर से प्राप्त करे। संसार में आसक्त रहने पर मनुष्य को जन्म, मृत्यु, जरा तथा रोग स्वीकार करने होंगे। इसलिए बुद्धिमान व्यक्ति को चाहिए कि तथाकथित अच्छे तथा बुरे सकाम कर्मों के फेर में न पड़कर वह अपने जीवन को कृष्णभावनामृत में प्रगति करने में लगाए जिससे उसे दूसरा शरीर न धारण करना पड़े (*त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति*) और वह भगवद्धाम वापस जा सके।

तस्मान्न कस्यचिद्द्रोहमाचरेत्स तथाविध: ।
आत्मन: क्षेममन्विच्छन्द्रोग्धुर्वै परतो भयम् ॥ ४४॥

शब्दार्थ

तस्मात्—अत:; **न**—नहीं; **कस्यचित्**—किसी की; **द्रोहम्**—ईर्ष्या; **आचरेत्**—आचरण करे; **स:**—पुरुष (कंस); **तथा-विध:**—(वसुदेव द्वारा) इस प्रकार से उपदेश दिया गया; **आत्मन:**—अपना; **क्षेमम्**—कल्याण; **अन्विच्छन्**—चाहे तो; **द्रोग्धु:**—अन्यों से ईर्ष्या रखने वाले का; **वै**—निस्सन्देह; **परत:**—अन्यों से; **भयम्**—भय का कारण होता है।

चूँकि ईर्ष्यालु एवं अपवित्र कार्य ऐसे शरीर का कारण बनते हैं जिससे अगले जीवन में कष्ट भोगना पड़ता है इसलिए मनुष्य अपवित्र कार्य करे ही क्यों? अपने कल्याण को ध्यान में रखते हुए मनुष्य को चाहिए कि वह किसी से ईर्ष्या न करे क्योंकि ईर्ष्यालु व्यक्ति को इस जीवन में या अगले जीवन में अपने शत्रुओं से सदा हानि का भय बना रहता है।

तात्पर्य : अन्य जीवों के प्रति शत्रु भाव रखने के बजाय मनुष्य को चाहिए कि भगवान् की सेवा में लगकर पवित्र कार्य करे जिससे इस जीवन तथा अगले दोनों जीवनों में भयापूर्ण स्थिति से बच सके। इस सम्बन्ध में, महान् राजनीतिज्ञ चाणक्य पण्डित का निम्नलिखित नैतिक उपदेश अत्यन्त सार्थक है—

त्यज दुर्जनसंसर्गं भज साधु समागमम्।

कुरु पुण्यमहो रात्रं स्मर नित्यमनित्यताम्॥

मनुष्य को चाहिए कि खलों, असुरों तथा अभक्तों की संगति का त्याग करे और सदैव भक्तों तथा सन्त पुरुषों की संगति करे। उसे चाहिए कि इस जीवन को नश्वर मानकर पुण्यकर्म करे और क्षणिक सुख तथा दुख में लिप्त न हो। कृष्णभावनामृत आन्दोलन सारे मानव समाज को कृष्णभावनाभावित होने के इसी सिद्धान्त की शिक्षा देता है और इस तरह उनके जीवन की समस्याओं को सदा-सदा के

लिए हल कर देता है। (*त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन*)

एषा तवानुजा बाला कृपणा पुत्रिकोपमा ।
हन्तुं नार्हसि कल्याणीमिमां त्वं दीनवत्सलः ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

एषा—यह; तव—तुम्हारी; अनुजा—छोटी बहन; बाला—अबोध स्त्री; कृपणा—तुम पर आश्रित; पुत्रिका-उपमा—तुम्हारी ही पुत्री के समान; हन्तुम्—उसे मारना; न—नहीं; अर्हसि—तुम्हें चाहिए; कल्याणीम्—तुम्हारे स्नेहाधीन; इमाम्—इसको; त्वम्—तुम; दीन-वत्सलः—गरीब तथा अबोध पर अत्यन्त दयालु।

तुम्हारी छोटी बहन बेचारी देवकी तुम्हारी पुत्री के समान है और वह लाड़-प्यार से पाले जाने योग्य है। तुम दयालु हो, अतः तुम्हें इसका वध नहीं करना चाहिए। निस्संदेह यह तुम्हारे स्नेह की पात्र है।

श्रीशुक उवाच
एवं स सामभिर्भेदैर्बोध्यमानोऽपि दारुणः ।
न न्यवर्तत कौरव्य पुरुषादाननुव्रतः ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; एवम्—इस तरह; सः—वह (कंस को); सामभिः—समझाने-बुझाने के प्रयासों से; भेदैः—नैतिक उपदेश द्वारा कि वह अन्यों के प्रति क्रूर न बने; बोध्यमानः अपि—किये जाने पर भी; दारुणः—अत्यन्त क्रूर; न न्यवर्तत—नहीं माना (जघन्य कार्य करने से); कौरव्य—हे महाराज परीक्षित; पुरुष-अदान्—राक्षसों का; अनुव्रतः—अनुयायी।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे कुरुवंश में श्रेष्ठ, कंस अत्यंत क्रूर था और वास्तव में राक्षसों का अनुयायी था। अतएव वसुदेव के सदुपदेशों से उसे न तो समझाया-बुझाया जा सकता था, न ही भयभीत किया जा सकता था। उसे इस जीवन में या अगले जीवन में पापकर्मों के फलों की कोई चिन्ता नहीं थी।

निर्बन्धं तस्य तं ज्ञात्वा विचिन्त्यानकदुन्दुभिः ।
प्राप्तं कालं प्रतिव्योढुमिदं तत्रान्वपद्यत ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ

निर्बन्धम्—करने के संकल्प को; तस्य—उस (कंस) का; तम्—उस (संकल्प) को; ज्ञात्वा—जानकर; विचिन्त्य—गहराई से सोचकर; आनकदुन्दुभिः—वसुदेव; प्राप्तम्—आया हुआ; कालम्—आसन्न मृत्यु-संकट को; प्रतिव्योढुम्—ऐसे कार्यों से रोकने के लिए; इदम्—यह; तत्र—वहाँ; अन्वपद्यत—अन्य उपायों को सोचा।

जब वसुदेव ने देखा कि कंस अपनी बहन देवकी को मार डालने पर तुला हुआ है, तो उसने अपने मन में गम्भीरतापूर्वक सोचा। मृत्यु को आया हुआ देखकर उसने कंस को रोकने का दूसरा

उपाय सोचा।

तात्पर्य : यद्यपि वसुदेव ने देखा कि उसकी पत्नी देवकी के मारे जाने का संकट उपस्थित है, किन्तु उसे अपने कल्याण का भरोसा था क्योंकि उसके जन्म के समय देवताओं ने दुन्दुभियाँ बजाई थीं अत: उसने देवकी को बचाने की दूसरी युक्ति सोची।

मृत्युर्बुद्धिमतापोह्यो यावद्बुद्धिबलोदयम् ।
यद्यसौ न निवर्तेत नापराधोऽस्ति देहिनः ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ

मृत्युः—मृत्यु; बुद्धि-मता—बुद्धिमान व्यक्ति द्वारा; अपोह्यः—दूर रहना चाहिए; यावत्—जब तक; बुद्धि-बल-उदयम्—बुद्धि तथा शारीरिक शक्ति रहते हुए; यदि—यदि; असौ—वह (मृत्यु); न निवर्तेत—रोकी नहीं जा सकती; न—नहीं; अपराधः—अपराध; अस्ति—है; देहिनः—मृत्यु संकट में फँसे व्यक्ति का।

बुद्धिमान मनुष्य को चाहिए कि जब तक बुद्धि तथा शारीरिक पराक्रम रहे, तब तक मृत्यु से बचने का प्रयास करता रहे। हर देहधारी का यही कर्तव्य है। यदि उद्यम करने पर भी मृत्यु को टाला नहीं जा सके, तो मृत्यु को वरण करने वाला मनुष्य अपराधी नहीं है।

तात्पर्य : असामयिक मृत्यु का सामना करने वाले व्यक्ति के लिए स्वाभाविक है कि वह अपनी रक्षा का पूरा प्रयत्न करे। यद्यपि मृत्यु निश्चित है, किन्तु प्रत्येक व्यक्ति को चाहिए कि उससे बचे और बिना विरोध के मृत्यु को वरण न करे क्योंकि प्रत्येक जीव नित्य आत्मा है। चूँकि मृत्यु इस जगत में निन्दनीय जीवन पर थोपा गया दण्ड होती है, अत: वैदिक संस्कृति मृत्यु से बचने पर आधारित है (*त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति*)। हर व्यक्ति को चाहिए कि आध्यात्मिक जीवन का अनुशीलन करके मृत्यु तथा पुनर्जन्म से बचने का प्रयास करे और जीवित रहने के लिए संघर्ष किए बिना मृत्यु के सामने घुटने न टेके। जो व्यक्ति मृत्यु को रोकने का प्रयास नहीं करता वह बुद्धिमान मनुष्य नहीं है। चूँकि देवकी को आसन्न मृत्यु का सामना करना पड़ रहा था अतएव वसुदेव का कर्तव्य था कि उसे प्राणपण से बचाते। अत: उन्होंने कंस को फुसलाने का दूसरा तरीका सोचा जिससे देवकी को बचाया जा सके।

प्रदाय मृत्यवे पुत्रान्मोचये कृपणामिमाम् ।
सुता मे यदि जायेरन्मृत्युर्वा न म्रियेत चेत् ॥ ४९ ॥
विपर्ययो वा किं न स्याद्गतिर्धातुर्दुरत्यया ।
उपस्थितो निवर्तेत निवृत्तः पुनरापतेत् ॥ ५० ॥

शब्दार्थ

प्रदाय—देने का वादा करके; मृत्यवे—देवकी के लिए कालस्वरूप कंस को; पुत्रान्—पुत्रों को; मोचये—आसन्न संकट से छुड़ाने के लिए; कृपणाम्—निर्दोष; इमाम्—देवकी को; सुताः—पुत्र; मे—मेरे; यदि—यदि; जायेरन्—उत्पन्न होंगे; मृत्युः—कंस; वा—अथवा; न—नहीं; म्रियेत—मरना होगा; चेत्—यदि; विपर्ययः—इसके विपरीत; वा—अथवा; किम्—क्या; न—नहीं; स्यात्—हो सकता है; गतिः—गति; धातुः—प्रारब्ध की; दुरत्यया—समझना मुश्किल है; उपस्थितः—अभी प्राप्त होने वाला; निवर्तेत—रुक सकता है; निवृत्तः—देवकी की मृत्यु को रोकने पर; पुनः आपतेत्—भविष्य में फिर हो सके (तो मैं क्या कर सकता हूँ)।

वसुदेव ने विचार किया: मैं मृत्यु रूपी कंस को अपने सारे पुत्र देकर देवकी के प्राण बचा सकता हूँ। हो सकता है कि कंस मेरे पुत्रों के जन्म के पूर्व ही मर जाए, या फिर जब उसे मेरे पुत्र के हाथों से मरना लिखा है, तो मेरा कोई पुत्र उसे मारे ही। इस समय मुझे चाहिए कि मैं कंस को अपने सारे पुत्रों को सौंपने की प्रतिज्ञा कर लूँ जिससे कंस अपनी यह धमकी त्याग दे और यदि आगे चलकर कंस मर जाता है, तो फिर मुझे डरने की कोई बात नहीं रह जाती।

तात्पर्य : अपने पुत्रों को कंस को सौंपने का वचन देकर वसुदेव अपनी पत्नी देवकी के प्राण बचाना चाह रहे थे। उन्होंने सोचा, ''हो सकता है भविष्य में कंस मर जाए या हो सकता है कि मेरे पुत्र ही न हों। यदि पुत्र उत्पन्न भी हो और मैं उसे कंस को दे दूँ तो कंस उसके हाथों मर सकता है क्योंकि दैववश कुछ भी हो सकता है। यह समझ सकना बहुत कठिन है कि विधाता द्वारा किस तरह व्यवस्था की जाती है।'' इस तरह वसुदेव ने निश्चय किया कि मैं देवकी को मृत्यु के आसन्न संकट से उबारने के लिए अपने पुत्रों को कंस के हाथों सौंप देने का वचन दे दूँ।

अग्नेर्यथा दारुवियोगयोगयो-
रदृष्टतोऽन्यन्न निमित्तमस्ति ।
एवं हि जन्तोरपि दुर्विभाव्यः
शरीरसंयोगवियोगहेतुः ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ

अग्नेः—जंगल की आग का; यथा—जिस तरह; दारु—लकड़ी का; वियोग-योगयोः—संयोग तथा वियोग दोनों का; अदृष्टतः—अदृश्य प्रारब्ध की अपेक्षा; अन्यत्—कोई अन्य कारण या संयोग; न—नहीं; निमित्तम्—कारण; अस्ति—है; एवम्—इस प्रकार; हि—निश्चय ही; जन्तोः—जीव का; अपि—निस्सन्देह; दुर्विभाव्यः—पाया नहीं जा सकता; शरीर—शरीर का; संयोग—स्वीकृति; वियोग—परित्याग; हेतुः—कारण।

जब किसी अदृश्य कारण से आग लकड़ी के एक टुकड़े से लपक कर दूसरे खंड को जला देती है, तो इसका कारण प्रारब्ध है। इसी तरह जब जीव एक प्रकार का शरीर स्वीकार करके दूसरे का परित्याग करता है, तो इसमें अदृश्य प्रारब्ध के अतिरिक्त कोई अन्य कारण नहीं होता।

तात्पर्य : जब किसी गाँव में आग लगती है, तो कभी-कभी वह एक घर को फाँद कर दूसरे घर को जला देती है। इसी तरह जब जंगल में आग लगती है, तो वह कभी-कभी एक वृक्ष से फाँद कर दूसरे में लग जाती है। ऐसा क्यों होता है, यह कोई नहीं जानता। यह कल्पना ही की जा सकती है कि पास के घर या वृक्ष को छोड़कर दूर के घर या वृक्ष में आग क्यों लगी, किन्तु इसका असली कारण प्रारब्ध है। यही बात आत्मा के देहान्तरण पर भी लागू होती है, जिसके फलस्वरूप इस जीवन का प्रधानमंत्री अगले जीवन में कुत्ता बन सकता है। अदृश्य प्रारब्ध के कार्य को किसी व्यावहारिक प्रयोगात्मक ज्ञान से निश्चित नहीं किया जा सकता अत: इस तर्क से ही सन्तोष करना होगा कि सारे कार्य प्रारब्ध द्वारा ही सम्पन्न होते हैं।

एवं विमृश्य तं पापं यावदात्मनिदर्शनम् ।
पूजयामास वै शौरिर्बहुमानपुर:सरम् ॥ ५२ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार से; विमृश्य—सोच विचार कर; तम्—कंस को; पापम्—अत्यन्त पापी; यावत्—यथासम्भव; आत्मनि-दर्शनम्—अपनी बुद्धि भर, भरसक; पूजयाम् आस—प्रशंसा की; वै—निस्सन्देह; शौरि:—वसुदेव ने; बहु-मान—सत्कार करते हुए; पुर:सरम्—उसके सामने।

इस तरह इस विषय पर अपनी बुद्धिसे भरपूर विचार करने के बाद वसुदेव ने पापी कंस के समक्ष बड़े ही आदरपूर्वक अपना प्रस्ताव रखा।

प्रसन्नवदनाम्भोजो नृशंसं निरपत्रपम् ।
मनसा दूयमानेन विहसन्निदमब्रवीत् ॥ ५३ ॥

शब्दार्थ

प्रसन्न-वदन-अम्भोज:—वसुदेव, जो बाहर से परम प्रसन्न लग रहे थे; नृशंसम्—अत्यन्त क्रूर; निरपत्रपम्—निर्लज्ज कंस को; मनसा—मन से; दूयमानेन—चिन्ता तथा दुख से पूर्ण; विहसन्—बाहर से हँसते हुए; इदम् अब्रवीत्—इस प्रकार बोले।

वसुदेव का मन चिन्ता से पूर्ण था क्योंकि उनकी पत्नी संकट में थीं, किन्तु क्रूर, निर्लज्ज तथा पापी कंस को प्रसन्न करने के उद्देश्य से बनावटी हँसी लाते हुए वे इस प्रकार बोले।

तात्पर्य : कभी-कभी संकटकालीन स्थिति में कपट से काम चलाना पड़ता है जैसाकि वसुदेव ने अपनी पत्नी को बचाने के लिए किया। यह भौतिक जगत बहुत ही जटिल है और अपना कर्तव्य निभाने के लिए ऐसी दोहरी चाल अपनानी पड़ती है। वसुदेव ने कृष्ण को जन्म देने के लिए अपनी पत्नी को बचाने के लिए हर सम्भव प्रयास किए। इससे सूचित होता है कि कृष्ण तथा उनके हितों की

रक्षा के लिए दोहरी चाल से काम लिया जा सकता है। पूर्व-घोषित व्यवस्था के अनुसार कंस का वध करने के लिए कृष्ण को वसुदेव तथा देवकी से जन्म लेना था। अत: वसुदेव को इस स्थिति से निपटने के लिए हर प्रयत्न करना पड़ा। यद्यपि सारी घटनाएँ कृष्ण द्वारा पूर्वनियोजित होती हैं, किन्तु भक्त को कृष्ण की सेवा के लिए हर सम्भव प्रयास करना होता है। कृष्ण स्वयं सर्वशक्तिमान हैं किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि भक्त को हाथ पर हाथ धरकर बैठ जाना चाहिए और सबकुछ कृष्ण पर ही छोड़ देना चाहिये। *भगवद्गीता* से भी यही उपदेश प्राप्त होता है। यद्यपि अर्जुन के लिए कृष्ण सब कुछ कर रहे थे, किन्तु अर्जुन कभी अहिंसक की तरह आलसी बन कर बैठा नहीं। वह युद्ध में यथाशक्ति लड़ने और विजयी बनने का प्रयास करता रहा।

श्रीवसुदेव उवाच
न ह्यस्यास्ते भयं सौम्य यद्वै साहाशरीरवाक् ।
पुत्रान्समर्पयिष्येऽस्या यतस्ते भयमुत्थितम् ॥ ५४॥

शब्दार्थ

श्री-वसुदेव: उवाच—श्री वसुदेव ने कहा; न—नहीं; हि—निस्सन्देह; अस्या:—इससे (देवकी से); ते—तुम्हारा; भयम्—भय; सौम्य—हे शालीन; यत्—जो; वै—निस्सन्देह; सा—वह; आह—बोली; अ-शरीर-वाक्—बिना शरीर के वाणी; पुत्रान्—अपने सारे पुत्रों को; समर्पयिष्ये—तुम्हें सौंप दूँगा; अस्या:—इस देवकी के; यत:—जिससे; ते—तुम्हारा; भयम्—भय; उत्थितम्—उत्पन्न हुआ है।.

वसुदेव ने कहा : हे भद्र-श्रेष्ठ, तुमने अदृश्यवाणी से जो भी सुना है उसके लिए तुम्हें अपनी बहन देवकी से तनिक भी डरने की कोई बात नहीं है। तुम्हारी मृत्यु का कारण उसके पुत्र होंगे अत: मैं तुम्हें वचन देता हूँ कि जब उसके पुत्र उत्पन्न होंगे, जिनसे तुम्हें डर है, तो उन सबको लाकर मैं तुम्हें सौंप दिया करूँगा।

तात्पर्य : कंस को देवकी से भय था कि उसके आठवें गर्भ से जो पुत्र उत्पन्न होगा वही उसका वध करेगा। इसलिए वसुदेव ने अपने साले को सर्वाधिक सुरक्षा का वचन दिया कि वह सारे पुत्रों को लाकर उसे दे दिया करेगा। आठवें पुत्र की प्रतीक्षा न करके वह प्रारम्भ से ही देवकी के गर्भ से उत्पन्न सारे पुत्रों को कंस के हाथों सौंप देगा। वसुदेव ने कंस के समक्ष यह सबसे उदार प्रस्ताव प्रस्तुत किया।

श्रीशुक उवाच
स्वसुर्वधान्निववृते कंसस्तद्वाक्यसारवित् ।
वसुदेवोऽपि तं प्रीत: प्रशस्य प्राविशद्गृहम् ॥ ५५ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; स्वसुः—अपनी बहन के (देवकी के); वधात्—वध से; निववृते—कुछ काल के लिए रुक गया; कंसः—कंस; तत्-वाक्य—वसुदेव के वचन; सार-वित्—सही जानकर; वसुदेवः—वसुदेव; अपि—भी; तम्—उसको (कंस को); प्रीतः—तुष्ट होकर; प्रशस्य—अधिक सान्त्वना देकर; प्राविशत् गृहम्—अपने घर में प्रवेश किया।.

श्री शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : कंस वसुदेव के तर्कों से सहमत हो गया और वसुदेव के वचनों पर पूरा भरोसा करके उसने अपनी बहन को मारने का विचार छोड़ दिया। वसुदेव ने कंस से प्रसन्न होकर उसे और भी सान्त्वना दी और अपने घर में प्रवेश किया।

तात्पर्य : यद्यपि कंस पापी असुर था, किन्तु उसे विश्वास था कि वसुदेव अपने वचनों से कभी डिगेगा नहीं। वसुदेव जैसे शुद्ध भक्त का चरित्र ऐसा था कि कंस जैसे महान् असुर को भी उसके वचनों पर दृढ़ विश्वास था और वह सन्तुष्ट हो गया। *यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्यकिञ्चना सर्वैर्गुणैस्तत्र समासते सुराः* (*भागवत* ५.१८.१२)। भक्त में सारे अच्छे गुण विद्यमान रहते हैं यहाँ तक कि कंस तक को भी वसुदेव के वचनों पर विश्वास था।

अथ काल उपावृत्ते देवकी सर्वदेवता ।
पुत्रान्प्रसुषुवे चाष्टौ कन्यां चैवानुवत्सरम् ॥ ५६ ॥

शब्दार्थ

अथ—तत्पश्चात्; काले—समय बीतने पर; उपावृत्ते—परिपक्व होने पर; देवकी—कृष्ण के पिता वसुदेव की पत्नी ने; सर्व-देवता—देवकी, जिसके लिए सारे देवता तथा स्वयं भगवान् प्रकट हुए; पुत्रान्—पुत्रों को; प्रसुषुवे—उत्पन्न किया; च—तथा; अष्टौ—आठ; कन्यां च—तथा एक कन्या सुभद्रा को भी; एव—निस्सन्देह; अनुवत्सरम्—वर्षानुवर्ष, प्रतिवर्ष।.

तत्पश्चात् प्रति-वर्ष समय आने पर ईश्वर तथा अन्य देवताओं की माता देवकी ने एक शिशु को जन्म दिया। इस तरह एक के बाद एक उनके आठ पुत्र तथा सुभद्रा नामक एक कन्या उत्पन्न हुई।

तात्पर्य : गुरु को कभी-कभी *सर्वदेवमयोगुरु* कहकर महिमामंडित किया जाता है (*भागवत* ११.७.२७)। आध्यात्मिक गुरु की कृपा से विभिन्न प्रकार के देवों को समझा जा सकता है। *देव* शब्द ईश्वर का सूचक है, जो समस्त देवताओं (देवों) का मूल उद्गम है। *भगवद्गीता* (.२) में भगवान् कहते हैं—*अहं आदिर्हि देवानाम्*—मैं समस्त देवों का उद्गम हूँ। आदि पुरुष भगवान् विष्णु अपने विभिन्न रूपों में विस्तार करते हैं। *तदैक्षत बहुस्याम्* (*छान्दोग्य उपनिषद्* ६.२.३)। वे ही अनेक रूपों में विस्तीर्ण हो गए। *अद्वैतम् अच्युतम् अनादिम् अनन्तरूपम्* (*ब्रह्म-संहिता* ५.३३)। स्वरूप की विभिन्न

कोटियाँ *स्वांश* तथा *विभिन्नांश* कहलाती हैं। *स्वांश* अथवा *विष्णु-तत्त्व* भगवान् होते हैं और *विभिन्नांश जीवतत्त्व* होते हैं, जो भगवान् के अंश हैं (*ममैवांशो जीवलोके जीवभूत: सनातन:*)। यदि हम कृष्ण को भगवान् मानकर उनकी पूजा करते हैं, तो भगवान् के सारे अंश स्वत: पुज जाते हैं। *सर्वार्हणमच्युतेज्या* (*भागवत* ४.३१.१४)। कृष्ण अच्युत कहलाते हैं (*सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत*)। अच्युत कृष्ण की पूजा करने से सारे देवताओं की स्वत: पूजा हो लेती है। तब न तो विष्णु-तत्त्व न ही जीव-तत्त्व को अलग-अलग पूजने की आवश्यकता रह जाती है। यदि कृष्ण पर ध्यान एकाग्र किया जाए तो हर एक की पूजा हो जाती है। अत: कृष्ण को जन्म देने के कारण माता देवकी को *सर्वदेवता* कहा गया है।

कीर्तिमन्तं प्रथमजं कंसायानकदुन्दुभिः ।
अर्पयामास कृच्छ्रेण सोऽनृतादतिविह्वलः ॥ ५७ ॥

शब्दार्थ

कीर्तिमन्तम्—कीर्तिमान नाम से; **प्रथम-जम्**—पहले पहल जन्मा शिशु; **कंसाय**—कंस को; **आनकदुन्दुभि:**—वसुदेव द्वारा; **अर्पयाम् आस**—दे दिया गया; **कृच्छ्रेण**—बड़ी मुश्किल से; **स:**—वह (वसुदेव); **अनृतात्**—झूठा बनने के भय से, वचन भंग करने से; **अति-विह्वल:**—अत्यन्त भयभीत।

वसुदेव अत्यधिक विह्वल थे कि कहीं उनका वचन भंग हुआ तो वे झूठे साबित होंगे। इस तरह उन्होंने बड़ी ही वेदना के साथ अपने प्रथम पुत्र कीर्तिमान को कंस के हाथों में सौंप दिया।

तात्पर्य : वैदिक पद्धति में, ज्यों ही कोई बच्चा, विशेषकर पुत्र, उत्पन्न होता है, तो पिता विद्वान ब्राह्मणों को बुलवाता है और बच्चे की कुंडली के अनुसार उसका नामकरण किया जाता है। इसे *नामकरण संस्कार* कहते हैं। इस तरह वर्णाश्रम धर्म पद्धति में दस *संस्कार* होते हैं जिनमें से नामकरण संस्कार एक है। यद्यपि वसुदेव के प्रथम पुत्र को कंस के हाथों सौंप दिया जाना था, किन्तु उसका नामकरण संस्कार सम्पन्न हुआ और उसका नाम कीर्तिमान रखा गया। ऐसे नाम जन्म के तुरन्त बाद रखे जाते हैं।

किं दु:सहं नु साधूनां विदुषां किमपेक्षितम् ।
किमकार्यं कदर्याणां दुस्त्यजं किं धृतात्मनाम् ॥ ५८ ॥

शब्दार्थ

किम्—क्या; दु:सहम्—पीड़ाप्रद है; नु—निस्सन्देह; साधूनाम्—साधु पुरुषों के लिए; विदुषाम्—विद्वान पुरुषों के लिए; किम् अपेक्षितम्—क्या निर्भरता है; किम् अकार्यम्—क्या मना है; कदर्याणाम्—अधम पुरुषों के लिए; दुस्त्यजम्—छोड़ पाना अत्यन्त कठिन; किम्—क्या; धृत-आत्मनाम्—स्वरूपसिद्ध व्यक्तियों के लिए।

वे साधु पुरुष जो सत्य पर अटल रहते हैं, उनके लिए क्या पीड़ादायक है? उन शुद्ध भक्तों के लिए जो भगवान् को तत्त्व के रूप में जानते हैं, भला स्वतंत्रता क्यों नहीं होती? निम्नचरित्र वाले पुरुषों के लिए कौन से कार्य वर्जित हैं? जिन्होंने भगवान् कृष्ण के चरणकमलों पर अपने को पूरी तरह समर्पित कर दिया है वे कृष्ण के लिए भला कौन सी वस्तु नहीं त्याग सकते?

तात्पर्य : चूँकि देवकी के आठवें पुत्र द्वारा कंस का वध होना था अत: यह प्रश्न किया जा सकता है कि वसुदेव को पहले पुत्र को ले जाकर देने की क्या आवश्यकता थी? इसका उत्तर यह है कि वसुदेव ने कंस को वचन दिया था कि वह देवकी से उत्पन्न सारे पुत्रों को लाकर सौंप देगा। असुर होने के कारण कंस को विश्वास नहीं हो पा रहा था कि आठवीं सन्तान ही उसका वध करेगी। उसने यह मान लिया था कि वह देवकी की किसी भी सन्तान के द्वारा मारा जा सकता है। इसीलिए देवकी को बचाने के लिए वसुदेव ने कंस को हर सन्तान, चाहे वह लड़का हो या लड़की, देने का वचन दिया था। दूसरी दृष्टि से, वसुदेव तथा देवकी दोनों परम प्रसन्न थे कि भगवान् कृष्ण आठवें पुत्र के रूप में उनके यहाँ उत्पन्न होंगे। भगवान् का शुद्ध भक्त होने से वसुदेव कृष्ण को देवकी के आठवें गर्भ से उत्पन्न होते देखने के लिए लालायित थे। इसीलिए वे सारी सन्तानों को तुरन्त सौंपना चाहते थे जिससे आठवीं सन्तान की बारी आए और कृष्ण प्रकट हों। इसीलिए प्रतिवर्ष वे एक सन्तान उत्पन्न करते रहे जिससे कृष्ण यथासम्भव शीघ्र ही उत्पन्न हों।

दृष्ट्वा समत्वं तच्छौरेः सत्ये चैव व्यवस्थितिम् ।
कंसस्तुष्टमना राजन्प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ ५९ ॥

शब्दार्थ

दृष्ट्वा—देखकर; समत्वम्—सुख या दुख से अविचलित, समभाव से; तत्—उस; शौरेः—वसुदेव के; सत्ये—सत्य में; च—निस्सन्देह; एव—निश्चय ही; व्यवस्थितिम्—दृढ़ परिस्थिति; कंसः—कंस ने; तुष्ट-मनाः—अत्यन्त संतुष्ट होकर (अपना वचन निभाने के लिए पहली संतान लाकर सौंपने के वसुदेव के आचरण से); राजन्—हे महाराज परीक्षित; प्रहसन्—हँसते हुए; इदम्—यह; अब्रवीत्—कहा।

हे राजा परीक्षित, जब कंस ने देखा कि वसुदेव सत्य में स्थिर रहते हुए अपनी सन्तान उसे सौंपने में समभाव बने रहे, तो वह अत्यधिक प्रसन्न हुआ और उसने हँसते हुए यह कहा।

तात्पर्य : इस श्लोक में *समत्वम्* शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। *समत्वम्* सूचक है ऐसे व्यक्ति का जो

सुख या दुख से अप्रभावित रहते हुए सदैव समरस रहता है। वसुदेव इतने समरस थे कि अपने प्रथम जातपुत्र को कंस के हाथों मारे जाने के लिए सौंपते हुए भी तनिक भी विचलित नहीं हुए। *भगवद्गीता* (२.५६) में कहा गया है—*दु:खेष्वनुद्विग्नमना: सुखेषु विगतस्पृह: ।* भौतिक जगत में न तो किसी को सुखी रहने के लिए अत्यन्त उत्सुक होना चाहिए, न ही भौतिक दुख से अधिक दुखी होना चाहिए। भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को उपदेश दिया कि(*भगवद्गीता* २.१४)—

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदु:खदा: ।

आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत ॥

"हे कुन्तीपुत्र! सुख तथा दुख का अस्थायी प्राकट्य और कालक्रम में उनका अदृश्य हो जाना शीत तथा ग्रीष्म ॠतुओं के आने तथा जाने के तुल्य है। हे भरतवंशी! ये इन्द्रियबोध से उत्पन्न होते हैं और मनुष्य को चाहिए कि विचलित हुए बिना इन्हें सहना सीखे।" स्वरूपसिद्ध व्यक्ति तथाकथित दुख या सुख से कभी भी विचलित नहीं होता और वसुदेव जैसे महान् भक्त पर तो यह बात विशेष रूप से लागू होती है जिन्होंने अपने व्यावहारिक उदाहरण द्वारा ऐसा कर दिखलाया। वे कंस के हाथों अपनी पहली संतान मारे जाने के लिए सौंपते समय तनिक भी उद्विग्न नहीं थे।

प्रतियातु कुमारोऽयं न ह्यस्मादस्ति मे भयम् ।
अष्टमाद्युवयोर्गर्भान्मृत्युर्मे विहित: किल ॥ ६० ॥

शब्दार्थ

प्रतियातु—हे वसुदेव, अपने बच्चे को घर ले जाओ; कुमार:—नवजात शिशु; अयम्—यह; न—नहीं; हि—निस्सन्देह; अस्मात्—उससे; अस्ति—है; मे—मेरा; भयम्—भय; अष्टमात्—आठवें से; युवयो:—तुम पति-पत्नी दोनों के; गर्भात्—गर्भ से; मृत्यु:—मृत्यु; मे—मेरा; विहित:—जो होना है; किल—निस्सन्देह।

हे वसुदेव, तुम अपने बच्चे को वापस ले सकते हो और घर जा सकते हो। मुझे तो तुम्हारी और देवकी की आठवीं सन्तान से चिन्तित हूँ, जिसके हाथों मेरी मृत्यु लिखी है।

तथेति सुतमादाय ययावानकदुन्दुभि: ।
नाभ्यनन्दत तद्वाक्यमसतोऽविजितात्मन: ॥ ६१ ॥

शब्दार्थ

तथा—बहुत अच्छा; इति—इस प्रकार; सुतम् आदाय—अपने पुत्र को वापस लाकर; ययौ—उस स्थान से चला गया; आनकदुन्दुभि:—वसुदेव; न अभ्यनन्दत—बहुत महत्त्व नहीं दिया; तत्-वाक्यम्—उसके (कंस के) वचनों पर; असत:—चरित्रविहीन; अविजित-आत्मन:—तथा आत्मसंयमविहीन।

वसुदेव मान गये और वे अपना पुत्र घर वापस ले आए, किन्तु कंस चरित्रहीन तथा आत्मसंयमविहीन व्यक्ति था अतएव वसुदेव जानते थे कि कंस के शब्दों का कोई भरोसा नहीं।

नन्दाद्या ये व्रजे गोपा याश्चामीषां च योषितः ।
वृष्णयो वसुदेवाद्या देवक्याद्या यदुस्त्रियः ॥ ६२ ॥
सर्वे वै देवताप्राया उभयोरपि भारत ।
ज्ञातयो बन्धुसुहृदो ये च कंसमनुव्रताः ॥ ६३ ॥

शब्दार्थ

नन्द-आद्याः—नन्द महाराज तथा अन्य लोग; ये—ये सभी; व्रजे—वृन्दावन में; गोपाः—ग्वाले; याः—जो; च—तथा; अमीषाम्—उन सबका (वृन्दावनवासियों का); च—भी; योषितः—स्त्रियाँ; वृष्णयः—वृष्णिवंश के सदस्य; वसुदेव-आद्याः—वसुदेव इत्यादि; देवकी-आद्याः—देवकी इत्यादि; यदु-स्त्रियः—यदुवंश की स्त्रियाँ; सर्वे—सभी; वै—निस्सन्देह; देवता-प्रायाः—स्वर्ग के निवासी थे; उभयोः—नन्द महाराज तथा वसुदेव दोनों के; अपि—निस्सन्देह; भारत—हे महाराज परीक्षित; ज्ञातयः—सम्बन्धीगण; बन्धु—सारे मित्र; सुहृदः—शुभेच्छु जन; ये—जो; च—तथा; कंसम् अनुव्रताः—कंस के अनुयायी होते हुए भी।

हे भरतवंशियों में श्रेष्ठ, महाराज परीक्षित, नन्द महाराज तथा उनके संगी ग्वाले तथा उनकी स्त्रियाँ स्वर्गलोक की ही वासी थीं। इसी तरह वसुदेव आदि वृष्णिवंशी तथा देवकी एवं यदुवंश की अन्य स्त्रियाँ भी स्वर्गलोक की वासी थीं। नन्द महाराज तथा वसुदेव के मित्र, सम्बन्धी, शुभचिन्तक तथा ऊपर से कंस के अनुयायी लगने वाले व्यक्ति सभी देवता ही थे।

तात्पर्य : जैसा पहले बतलाया जा चुका है, भगवान् विष्णु ने ब्रह्माजी को बतला दिया था कि धरती का कष्ट हरने के लिए कृष्ण स्वयं अवतरित होंगे। भगवान् ने स्वर्ग लोंको के समस्त निवासियों को आदेश दिया था कि वे यदु तथा वृष्णि वंश के विभिन्न परिवारों में तथा वृन्दावन में जाकर जन्म लें। इस श्लोक से पता चलता है कि यदुवंश, वृष्णिवंश, नन्द महाराज के सारे मित्र तथा गोप भगवान् की लीलाओं को देखने के लिए स्वर्गलोक से अवतरित हुए थे। जैसाकि *भगवद्गीता* (४.८) में पुष्टि की गई है भगवान् की लीलाओं में भक्तों की रक्षा करना तथा असुरों का वध करना सम्मिलित है—*परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।* इन लीलाओं के प्रदर्शनार्थ भगवान् ने ब्रह्माण्ड के विभिन्न भागों के भक्तों को बुलाया।

ऐसे अनेक भक्त हैं, जो स्वर्गलोक को भेजे जाते हैं।

प्राप्य पुण्यकृतां लोकान् उषित्वा शाश्वती समाः।

शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते॥

"असफल योगी अनेकानेक वर्षों तक पवित्र जीवों के लोकों में भोग करने के बाद पवित्र लोगों के परिवार में या किसी धनवान व्यक्ति के घर में जन्म लेता है (भगवद्गीता ६.४१)। कुछ भक्त अपनी भक्ति के विफल हो जाने पर उस स्वर्गलोक को भेजे जाते हैं जहाँ पुण्यात्मा जाते हैं और वहाँ पर भोग करने के बाद उन्हें उस स्थान को भेजा जा सकता है जहाँ भगवान् की लीलाएँ हो रही हों। जब कृष्ण को अवतीर्ण होना था, तो स्वर्गवासियों को भगवान् की लीलाएँ देखने के लिए आमंत्रित किया गया था इसीलिए यहाँ पर यह कहा गया है कि यदु तथा वृष्णिवंशी एवं वृन्दावन के निवासी देवता थे या देवताओं के ही तुल्य थे। यहाँ तक कि ऊपर ऊपर से कंस के कार्यकलापों की सहायता करने वाले भी स्वर्ग लोक से सम्बद्ध थे। वसुदेव को बन्दी बनाना और उनका छोड़ा जाना तथा विविध असुरों का वध—ये सब भगवान् की लीलाओं की अभिव्यक्तियाँ थीं और चूँकि भक्तगण इन लीलाओं को देखकर प्रसन्न होंगे इसलिए उन्हें इन परिवारों के मित्रों तथा सम्बन्धियों के रूप में जन्म लेने के लिए आमंत्रित किया गया था। कुन्ती की स्तुति (श्रीमद्भागवत १.८.१९) में पुष्टि की गई है *नटो नाटयधरो यथा।* भगवान् को असुर संहारक की और अपने भक्तों के मित्र, पुत्र तथा भाई की भूमिका अदा करनी थी इसीलिए इन सारे भक्तों को बुलाया गया था।

एतत्कंसाय भगवाञ्छशंसाभ्येत्य नारदः ।
भूमेर्भारायमाणानां दैत्यानां च वधोद्यमम् ॥६४॥

शब्दार्थ

एतत्—यदु तथा वृष्णि वंशों के विषय में ये शब्द; **कंसाय**—कंस के लिए; **भगवान्**—परमेश्वर का अत्यन्त शक्तिशाली प्रतिनिधि; **शशंस**—सूचना दी (कंस को, जो संशय में था); **अभ्येत्य**—निकट जाकर; **नारदः**—नारद मुनि ने; **भूमेः**—भूमिपर; **भारायमाणानाम्**—जो भारस्वरूप हैं उनके; **दैत्यानाम् च**—तथा असुरों के; **वध-उद्यमम्**—वध करने का प्रयास।

एक बार नारद मुनि कंस के पास गए और उसे यह बतलाया कि पृथ्वी के अत्यंत भारस्वरूप असुर व्यक्तियों का किस प्रकार वध किया जाने वाला है। इस तरह कंस अत्यधिक भय तथा संशय में पड़ गया।

तात्पर्य : यह पहले ही बतलाया जा चुका है कि माता पृथ्वी ने ब्रह्माजी से भारस्वरूप असुरों से उत्पन्न कष्ट से छुटकारा पाने के लिए याचना की थी और ब्रह्माजी ने उसे बतलाया कि साक्षात् कृष्ण अवतीर्ण होने वाले हैं। *भगवद्गीता* (४.८) में कृष्ण कहते हैं—

परित्राणाय साधूनाम् विनाशाय च दुष्कृताम्।

धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

जब भी असुरों द्वारा भार उत्पन्न होता है और जब भी निर्दोष भक्तों को आसुरी शासक पीड़ित करते हैं, तो भगवान् समय आने पर अपने असली प्रतिनिधियों जो पारिभाषिक शब्द में देवता कहलाते हैं, की सहायता से असुरों का वध करने के लिए प्रकट होते हैं। उपनिषदों में कहा गया है कि देवतागण भगवान् के विभिन्न अंग हैं। जिस तरह शरीर के अंगों का पूरे शरीर की सेवा करना कर्तव्य है उसी तरह कृष्ण के भक्तों का कृष्ण की इच्छानुरूप उनकी सेवा करना कर्तव्य है। कृष्ण का कार्य है असुरों का वध करना अतएव भक्तों का भी यही कार्य होना चाहिए। किन्तु कलियुग के लोग पतित हैं अत: श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन पर कृपा करके उन्हें मारने के लिए कोई हथियार ग्रहण नहीं किया। प्रत्युत कृष्णभावनामृत (कृष्ण-प्रेम) का प्रसार करके उन्होंने उनके बुरे आसुरी कृत्यों को मारना चाहा। कृष्णभावनामृत आन्दोलन का यही उद्देश्य है। जब तक इस पृथ्वी के ऊपर से आसुरी कृत्यों का सफाया नहीं किया जाता तब तक कोई सुखी नहीं रह सकता। बद्धजीव के लिए पूरी योजना का वर्णन भगवद्गीता में किया गया है। मनुष्य को केवल उसका पालन करके सुखी बनना चाहिए। इसीलिए श्री चैतन्य महाप्रभु ने संस्तुति की है—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।

कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

लोगों को चाहिए कि हरे कृष्ण मंत्र का निरन्तर कीर्तन करें। तभी उनकी आसुरी प्रवृत्तियाँ नष्ट होंगी और वे उत्तम भक्त बन सकेंगे तथा इस जीवन में तथा अगले जीवन में सुखी रह सकेंगे।

ऋषेर्विनिर्गमे कंसो यदून्मत्वा सुरानिति ।
देवक्या गर्भसम्भूतं विष्णुं च स्ववधं प्रति ॥ ६५॥
देवकीं वसुदेवं च निगृह्य निगडैर्गृहे ।
जातं जातमहन्पुत्रं तयोरजनशङ्कया ॥ ६६॥

शब्दार्थ

ऋषेः—नारद ऋषि के; विनिर्गमे—चले जाने पर; कंसः—कंस ने; यदून्—समस्त यदुवंशियों को; मत्वा—सोचकर; सुरान्—देवता के रूप में; इति—इस तरह; देवक्याः—देवकी के; गर्भ-सम्भूतम्—गर्भ से उत्पन्न संतानें; विष्णुम्—विष्णु के रूप में स्वीकार करते हुए; च—तथा; स्व-वधम् प्रति—विष्णु से अपनी मृत्यु के भय से; देवकीम्—देवकी को; वसुदेवम् च—तथा उसके पति वसुदेव को; निगृह्य—बन्दी बनाकर; निगडैः—लोहे की जंजीरों से; गृहे—घर पर ही; जातम् जातम्—एक के बाद एक उत्पन्न होने वाले; अहन्—मार डाला; पुत्रम्—पुत्रों को; तयोः—वसुदेव तथा देवकी के; अजन-शङ्कया—इस भय से कि वे विष्णु न हों।

नारद ऋषि के चले जाने पर कंस ने सोचा कि यदुवंश के सारे लोग देवता हैं और देवकी के गर्भ से जन्म लेने वाली कोई भी सन्तान विष्णु हो सकती है। अतः अपनी मृत्यु के भय से कंस ने वसुदेव तथा देवकी को बन्दी बना लिया और उनके लोहे की जंजीरें डाल दीं। कंस ने इस भविष्यवाणी से सशंकित होकर कि विष्णु उसका वध करेंगे, हर सन्तान को इस आशंका से कि वह कहीं विष्णु न हो, एक एक करके मार डाला।

तात्पर्य : इस श्लोक की टीका करते हुए श्रील जीव गोस्वामी ने उल्लेख किया है कि नारद मुनि ने कंस को यह जानकारी कैसे दी। यह घटना 'हरिवंश' में वर्णित है। दैवयोग से नारद मुनि कंस को देखने गये तो कंस ने उनका स्वागत किया। इसलिए नारद ने उसे बतलाया कि देवकी का कोई एक पुत्र विष्णु होगा। चूँकि कंस का वध विष्णु द्वारा होना था इसलिए नारदमुनि ने सलाह दी कि देवकी के किसी भी पुत्र को जीवित न छोड़ा जाए। नारद का उद्देश्य था कि इन संतानों की हत्या करने से कंस के पापकर्म बढ़ेंगे जिससे शीघ्र ही उसे मारने के लिए कृष्ण अवतरित होंगे। नारदमुनि से आदेश पाकर कंस ने एक-एक करके देवकी के सारे पुत्रों को मार डाला।

अजन-शंकया शब्द सूचित करता है कि विष्णु कभी जन्म नहीं लेते (*अजन*) अतः कृष्ण के रूप में उन्होंने सामान्य मनुष्य की तरह जन्म लिया (*मानुषीं तनुमाश्रितम्*)। कंस ने देवकी तथा वसुदेव से उत्पन्न सारे शिशुओं को मारने का प्रयास किया यद्यपि वह जानता था कि यदि विष्णु उत्पन्न हुए तो उनका वध नहीं हो सकता। वास्तव में हुआ भी ऐसा कि जब विष्णु कृष्ण के रूप में प्रकट हुए तो कंस उन्हें मार नहीं पाया; प्रत्युत भविष्यवाणी के अनुसार वह उन्हीं के द्वारा मारा गया। यह सच्चाई जान लेनी चाहिए कि कृष्ण का जन्म दिव्य विधि से होता है और वे असुरों को मारने के लिए लीला करते हैं, किन्तु उनका वध नहीं किया जा सकता। जब शास्त्रों के माध्यम से कृष्ण को इस तरह समझ लिया जाता है, तो मनुष्य अमर हो जाता है। भगवान् ने *भगवद्गीता* (४.९) में कहा है—

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।

त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥

"हे अर्जुन! जो मेरे प्रादुर्भाव तथा कार्यों की दिव्य प्रकृति को जानता है, वह शरीर त्यागने के बाद इस भौतिक संसार में फिर से जन्म नहीं लेता अपितु मेरे धाम को प्राप्त होता है।"

मातरं पितरं भ्रातॄन्सर्वांश्च सुहृदस्तथा ।
घ्नन्ति ह्यसुतृपो लुब्धा राजानः प्रायशो भुवि ॥ ६७ ॥

शब्दार्थ

मातरम्—माता को; पितरम्—पिता को; भ्रातॄन्—भाइयों को; सर्वान् च—सबको; सुहृदः—मित्रगण; तथा—भी; घ्नन्ति—मारते हैं; हि—निस्सन्देह; असु-तृपः—जो अपनी इन्द्रियों के लिए अन्यों से ईर्ष्या करते हैं; लुब्धाः—लालची; राजानः—ऐसे राजा; प्रायशः—प्रायः; भुवि—पृथ्वी पर।

इस पृथ्वी पर इन्द्रियतृप्ति के लालची राजा प्रायः सदा अपने शत्रुओं का अंधाधुंध वध करते हैं। वे अपनी सनक की पूर्ति के लिए किसी का भी, यहाँ तक कि अपनी माता, पिता, भाइयों या मित्रों का भी वध कर सकते हैं।

तात्पर्य : भारत के इतिहास में हम पाते हैं कि औरंगजेब ने अपनी राजनीतिक महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए अपने भाई तथा भतीजों को मार डाला और अपने पिता को बन्दी बना लिया। इस तरह के अनेक दृष्टान्त मिलते हैं और कंस ऐसा ही राजा था। कंस को अपने भांजों को मारने तथा अपनी बहन तथा पिता को बन्दी बनाने में तनिक भी हिचकिचाहट नहीं हुई। असुरों के लिए ऐसे कार्य करना कोई आश्चर्य की बात नहीं। यद्यपि कंस असुर था, किन्तु उसे पता था कि विष्णु का वध नहीं किया जा सकता और इस तरह उसे मोक्ष प्राप्त हुआ। भगवान् विष्णु के कार्यों की थोड़ी सी भी जानकारी से मोक्ष मिल सकता है। कंस कृष्ण के विषय में थोड़ा-बहुत जानता था कि उनका वध नहीं किया जा सकता अतः विष्णु या कृष्ण को अपना शत्रु मानते हुए भी उसे मोक्ष मिल सका। भला जो व्यक्ति *भगवद्गीता* जैसे शास्त्रों के विवरणों द्वारा कृष्ण को पूरी तरह जानता है उसके बारे में क्या कहा जाए? अतः हर एक का कर्तव्य है कि वह *भगवद्गीता* पढ़े और कृष्ण को पूरी तरह समझे। इससे उसका जीवन सफल हो सकेगा।

आत्मानमिह सञ्जातं जानन्प्राग्विष्णुना हतम् ।
महासुरं कालनेमिं यदुभिः स व्यरुध्यत ॥ ६८ ॥

शब्दार्थ

आत्मानम्—स्वयं; इह—इस संसार में; सञ्जातम्—पुनः जन्म लेकर; जानन्—भलीभाँति जानते हुए; प्राक्—इस जन्म के पूर्व; विष्णुना—भगवान् विष्णु द्वारा; हतम्—मारा गया था; महा-असुरम्—बड़े असुर; कालनेमिम्—कालनेमि को; यदुभिः—यदुवंश के सदस्यों के साथ; सः—उस (कंस) ने; व्यरुध्यत—शत्रुवत् व्यवहार किया।

पूर्व जन्म में कंस कालनेमि नाम का महान् असुर था और विष्णु द्वारा मारा गया था। नारद से

यह जानकर कंस यदुवंश से सम्बन्धित हर किसी से द्वेष करने लगा।

तात्पर्य : जो व्यक्ति राक्षस होते हैं और भगवान् के शत्रु होते हैं, वे *असुर* कहलाते हैं। जैसाकि *भगवद्गीता* में कहा गया है कि भगवान् के प्रति शत्रुता के कारण असुरगण जन्म-जन्मांतर असुर परिवारों में जन्म लेते हैं और घोर अंधकारमय नरक को जाते हैं।

उग्रसेनं च पितरं यदुभोजान्धकाधिपम् ।
स्वयं निगृह्य बुभुजे शूरसेनान्महाबलः ॥ ६९ ॥

शब्दार्थ

उग्रसेनम्—उग्रसेन को; च—तथा; पितरम्—अपने पिता को; यदु—यदुवंशी; भोज—भोजवंशी; अन्धक—अन्धकवंशी; अधिपम्—राजा को; स्वयम्—स्वयं; निगृह्य—दमन करके; बुभुजे—भोग किया; शूरसेनान्—शूरसेन कहलाने वाले समस्त राज्य; महा-बलः—अत्यन्त बलशाली कंस ने।

उग्रसेन के अत्यन्त बलशाली पुत्र कंस ने अपने पिता तक को, जो यदु, भोज तथा अंधक वंशों का राजा था, बन्दी बना लिया और शूरसेन नामक राज्यों का शासन स्वयं चलाने लगा।

तात्पर्य : शूरसेन नामक राज्यों के अन्तर्गत मथुरा भी सम्मिलित था।

इस अध्याय के लिए अतिरिक्त टिप्पणियाँ

आत्मा के देहान्तरण के विषय में श्रील मध्वाचार्य ने निम्नलिखित टिप्पणियाँ दी हैं। जब मनुष्य जगा रहता है, तो वह जो कुछ देखता या सुनता है उसका अंकन मन पर होता रहता है, जो बाद में स्वप्न में भिन्न अनुभव दर्शाता है यद्यपि स्वप्न में मनुष्य भिन्न शरीर में प्रकट-सा होता है। उदाहरणार्थ, जब मनुष्य जगा रहता है, तो वह कामकाज करता है और ग्राहकों से बातें करता है। इसी तरह स्वप्न में भी कई ग्राहकों से मिलता है, उनसे व्यापार की बातें करता है और चीजों के मूल्य बताता है। इसलिए मध्वाचार्य कहते हैं कि मनुष्य जो भी देखता, सुनता और स्मरण करता है उसी के हिसाब से स्वप्न देखता है। किन्तु जब वह फिर जग जाता है, तो स्वप्न के शरीर को भूल जाता है। यह विस्मरण *अपस्मृति* कहलाती है। इस तरह हम शरीर बदलते रहते हैं क्योंकि कभी हम सपना देखते हैं, तो कभी जगे रहते हैं और कभी भूल जाते हैं। अपने पूर्वसृजित शरीर की विस्मृति मृत्यु कहलाती है और वर्तमान देह में किया जाने वाला कार्य जीवन कहलाता है। मृत्यु के बाद कोई अपने पूर्व शरीर के कार्यों को स्मरण नहीं रख सकता चाहे वे काल्पनिक हों या वास्तविक।

उत्तेजित मन की उपमा क्षुब्ध जल से दी जाती है, जो सूर्य और चन्द्रमा को प्रतिबिम्बित करता है।

वास्तव में जल में प्रतिबिम्बित सूर्य और चन्द्रमा का अस्तित्व नहीं रहता फिर भी जल की गतियों के अनुसार उनका प्रतिबिम्ब पड़ता रहता है। इसी तरह जब हमारे मन विक्षुब्ध रहते हैं, तो हम विभिन्न भौतिक परिवेशों में विचरण करते हैं और तरह-तरह के शरीर प्राप्त करते हैं। *भगवद्गीता* में इसे *गुण-सङ्ग* कहा गया है। *कारणं गुण-संगोऽस्य।* मध्वाचार्य का कथन है—*गुणानुबद्धः सन्।* और श्री चैतन्य महाप्रभु कहते हैं—*ब्रह्माण्ड भ्रमिते कोन भाग्यवान जीव* (*चैतन्य-चरितामृत* १९.१५१)। जीव ब्रह्माण्ड भर में चक्कर लगाता रहता है कभी स्वर्गलोक में तो कभी मध्यलोक और निम्नलोकों में, कभी मनुष्य रूप में तो कभी देवता, कुत्ता, वृक्ष इत्यादि के रूप में। यह मन की चंचलता के कारण है। इसलिए मन को स्थिर बनाना चाहिए। जैसाकि कहा जाता है—*स वै मनः कृष्णपदारविन्दयोः।* मनुष्य को चाहिए कि वह कृष्ण के चरणकमलों में मन को स्थिर करे। तब वह चंचलता से छुटकारा पा सकता है। यह *गरुड़ पुराण* का उपदेश है और *नारदीय पुराण* में भी यही बात दुहराई गई है। *भगवद्गीता* में *यान्ति देवव्रता देवान्* कहा गया है। चंचल मन विभिन्न लोकों को चला जाता है क्योंकि वह भिन्न-भिन्न देवताओं के प्रति अनुरक्त रहता है। किन्तु इन देवताओं की पूजा करके वह भगवद्धाम नहीं जा सकता क्योंकि किसी भी वैदिक साहित्य द्वारा इसकी पुष्टि नहीं होती। मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता होता है। इस मनुष्य जीवन में उसे यह सुविधा प्राप्त है कि वह अपनी वास्तविक स्थिति को समझे और यह निर्धारित करे कि उसे ब्रह्माण्ड भर में निरन्तर चक्कर लगाते रहना है अथवा भगवद्धाम लौट जाना है। *भगवद्गीता* में इसकी भी पुष्टि हुई है (*अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि*)।

संयोग नाम की कोई वस्तु नहीं है। यदि दावाग्नि से कोई वृक्ष जल रहा हो और दूर के वृक्ष में आग लग जाए, किन्तु पास का वृक्ष बच जाए तो यह संयोग जैसा लगता है। इसी तरह मनुष्य को संयोगवश विभिन्न प्रकार के शरीर प्राप्त होते दिखते हैं, किन्तु वास्तव में उसे ये शरीर मन के कारण प्राप्त होते हैं। मन स्वीकृति और अस्वीकृति के बीच दोलायमान रहता है और मन द्वारा इस स्वीकृति-अस्वीकृति के अनुसार ही हमें विभिन्न प्रकार के शरीर प्राप्त होते हैं यद्यपि ऊपर से ऐसा प्रतीत होता है कि संयोगवश ही ऐसा होता है। यदि हम इस संयोग-सिद्धान्त को मान भी लें तो शरीर परिवर्तन होने का तात्कालिक कारण मन की चंचलता होगी।

अंश के सम्बन्ध में टिप्पणी—इस अध्याय में वर्णन हुआ है कि कृष्ण *अंशेन* अर्थात् अपने अंशों

के साथ या आंशिक अभिव्यक्ति के साथ प्रकट हुए। इस सम्बन्ध में श्रीधर स्वामी कहते हैं कि कृष्ण शत प्रतिशत भगवान् हैं (*कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्*)। यह तो हमारी अपूर्णता है कि हम कृष्ण को पूर्णरूपेण समझ नहीं पाते अत: इस धरा पर उपस्थित होकर कृष्ण ने जो कुछ भी प्रदर्शित किया वह उनके ऐश्वर्य की आंशिक अभिव्यक्ति थी। पुन: कृष्ण अपने स्वांश बलदेव के साथ प्रकट हुए। फिर भी कृष्ण पूर्ण हैं। उनके अंश रूप में प्रकट होने का प्रश्न ही नहीं उठता। *वैष्णव तोषणी* में श्रील सनातन गोस्वामी कहते हैं कि यदि हम यह मान लें कि कृष्ण अंश रूप में प्रकट हुए तो *कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्*—यह कथन झूठा पड़ जाएगा। श्रील जीव गोस्वामी का कथन है कि *अंशेन* शब्द का अर्थ यह है कि कृष्ण अपने समस्त स्वांशों समेत प्रकट हुए। *अंशेन विष्णो:* शब्दों का अर्थ यह नहीं है कि कृष्ण भगवान् विष्णु के आंशिक प्रतिनिधि हैं प्रत्युत कृष्ण पूर्ण रूप में प्रकट हुए और वे वैकुण्ठ लोकों में अंशत: प्रकट होते हैं। दूसरे शब्दों में, भगवान् विष्णु कृष्ण की आंशिक अभिव्यक्ति हैं, कृष्ण उनके नहीं। *चैतन्य-चरितामृत* (आदि. अध्याय ४) में इसकी स्पष्ट व्याख्या की गई है। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर की भी टिप्पणी है कि कृष्ण का पूर्णतया वर्णन नहीं किया जा सकता। *श्रीमद्भागवत* में जो भी वर्णन मिलता है, वह कृष्ण का आंशिक विवेचन है। सारांश यह है कि *अंशेन* शब्द सूचित करता है कि भगवान् विष्णु कृष्ण की आंशिक अभिव्यक्ति हैं न कि कृष्ण विष्णु की।

श्रील सनातन गोस्वामी ने *वैष्णव तोषणी* में *धर्मशीलस्य* शब्द की व्याख्या की है। *धर्मशील* का असली अर्थ है ''विशुद्ध भक्त।'' असली *धर्म* तो पूर्णतया भगवान् कृष्ण की शरण में जाना है (*सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज*)। जो पूर्णतया कृष्ण की शरणागत है, वही वास्तव में धर्मशील है। ऐसे ही धर्मशील थे महाराज परीक्षित। जो भी व्यक्ति अन्य सारे धर्मों को त्यागकर भगवान् के चरणकमलों की शरण ग्रहण करने के सिद्धान्त का पालन करता है, वही वास्तविक धर्मशील है।

निवृत्त-तर्षै शब्द द्योतक है ऐसे व्यक्ति का जो सारी भौतिक इच्छाओं से रहित है (*सर्वोपाधिविनिर्मुक्तम्*)। इस भौतिक जगत के कल्मष के कारण मनुष्य में नाना प्रकार की भौतिक इच्छाएँ हो सकती हैं, किन्तु जब वह सारी भौतिक इच्छाओं से मुक्त हो जाता है, तो उसे *निवृत्त-तृष्ण* कहते हैं जिसका अर्थ है कि वह भौतिक तृप्ति के लिए अब कोई तृष्णा नहीं रखता। *स्वामिन् कृतार्थोऽस्मि वरं न याचे* (*हरिभक्ति सुधोदय*)। भौतिकतावादी व्यक्ति भक्ति सम्पन्न करने के बदले में

कुछ भौतिक लाभ चाहते हैं, किन्तु भक्ति का उद्देश्य यह नहीं है। भक्ति की पूर्णता तो कृष्ण के चरणकमलों में बिना भौतिक इच्छाओं के समर्पण है। जो इस प्रकार शरणागत होता है, वह पहले से मुक्त होता है। *जीवन्मुक्त: स उच्यते।* जो व्यक्ति, चाहे किसी भी स्थिति में क्यों न रहे सदैव कृष्ण की सेवा में लगा रहता है, वह इसी जीवन में ही मुक्त हुआ माना जाता है। ऐसा व्यक्ति शुद्ध भक्त होता है और उसे अपना शरीर बदलने की आवश्यकता नहीं होती। निस्सन्देह उसका भौतिक शरीर रहता ही नहीं क्योंकि उसका शरीर पहले ही आध्यात्मिक बन चुका होता है। आग में रखा लोहे का डंडा अन्तत: आग बन जाता है और वह जिसे भी छूता है, वह जल जाता है। इसी प्रकार शुद्ध भक्त आध्यात्मिक जगत रूपी अग्नि में रहता है, अत: उसका शरीर चिन्मय अर्थात् आध्यात्मिक, न कि भौतिक, होता है क्योंकि शुद्ध भक्त को भगवान् की दिव्य सेवा करने के अतिरिक्त अन्य कोई इच्छा नहीं सताती। चतुर्थ श्लोक में *उपगीयमानात्* शब्द प्रयुक्त हुआ है—*निवृत्ततर्षैरुपगीयमानात्।* भला भक्त हुए बिना भगवान् की महिमा का कीर्तन कौन करेगा? अत: *निवृत्त-तर्षै* शब्द भक्त का ही सूचक है और किसी का नहीं। वीरराघव आचार्य तथा विजयध्वज जैसे आचार्यों का यही मत है। भक्ति के बजाय किसी और की इच्छा करना भौतिक इच्छाओं से मुक्ति को कम कर देगा किन्तु जब कोई ऐसी सभी इच्छाओं से मुक्त हो जाता है, तो वह निवृत्त-तर्षै कहलाता है।

विना पशुघ्नात् पशुघ्न अर्थात् पशु का वध करने वाले को कभी भी कृष्णभावनामृत प्राप्त नहीं हो सकता। इसीलिए हमारे कृष्णभावनामृत आन्दोलन में पशु-वध का पूर्ण निषेध है।

उत्तमश्लोक-गुणानुवादात् उत्तमश्लोक का अर्थ है ''उत्तमों में सर्वश्रेष्ठ।'' भगवान् सभी परिस्थितियों में उत्तम हैं। यही उनकी सहज ख्याति है। उनकी अच्छाई (उत्तमता) असीम है और वे इसका उपयोग असीमित रूप में करते हैं। कभी-कभी भक्त को भी उत्तमश्लोक कहा जाता है, जिसका अर्थ होता है कि वह भगवान् या भगवान् के भक्तों का गुणानुवाद करने के लिए उत्सुक रहता है। भगवान् का गुणानुवाद तथा भगवान् के भक्तों का गुणानुवाद एक है। अथवा भक्त का गुणानुवाद भगवान् के प्रत्यक्ष गुणानुवाद से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। नरोत्तमदास ठाकुर ने इस तथ्य की व्याख्या की है—*छाड़िया वैष्णवसेवा, निस्तार पायेछे केबा।* कृष्ण भक्त की सच्चे मन से सेवा किए बिना मनुष्य भवजाल से मुक्त नहीं हो सकता।

भवौषधात् शब्द का अर्थ है, ''विश्व औषधि से।'' नाम कीर्तन तथा भगवान् का गुणानुवाद ये भौतिकतावादी जीवन के कष्टों की रामबाण औषधियाँ हैं। जो लोग इस भौतिक जगत से मुक्त होना चाहते हैं, वे *मुमुक्षु* कहलाते हैं। ऐसे लोग भौतिकतावादी जीवन के कष्टों को समझते हैं और वे भगवान् के कार्यकलापों का गुणानुवाद करके इन कष्टों से छुटकारा पा सकते हैं। भगवान् के नाम, यश, रूप, गुण तथा साज-सामान विषयक दिव्य ध्वनियाँ भगवान् से अभिन्न होती हैं। इसलिए भगवान् के गुणानुवाद और नाम की ध्वनि कानों को आनन्ददायी लगती हैं और भक्त भगवान् के नाम, रूप तथा गुण की परम प्रकृति को समझकर हर्षित होता है। यहाँ तक कि जो भक्त नहीं हैं, वे भी भगवान् के दिव्य कार्यकलापों की मोहक कथाओं का आनन्द लेते हैं। यहाँ तक कि ऐसे सामान्य व्यक्ति जो कृष्णभावनामृत में बढ़े-चढ़े नहीं होते वे *श्रीमद्भागवत* में अंकित कथाओं के वर्णन में आनन्द प्राप्त करते हैं। जब कोई भौतिकतावादी व्यक्ति इस तरह से शुद्ध हो जाता है, तो वह भगवान् की महिमा सुनने और कीर्तन करने में लग जाता है। चूँकि भगवान् की लीलाओं का गुणानुवाद भक्त के कानों तथा हृदय के लिए अत्यन्त मोहक होता है, अत: यह विषय एवं विषयी दोनों बन जाता है।

इस जगत में तीन प्रकार के लोग हैं मुक्त, मुमुक्षु तथा इन्द्रियभोग में लिप्त। इन तीनों में से मुक्त लोग भगवान् के नाम का कीर्तन तथा श्रवण करते हैं क्योंकि वे भलीभाँति जानते हैं कि केवल भगवान् के गुणानुवाद से ही दिव्य पद पर रहा जा सकता है। दूसरी प्रकार के लोग जो मुक्ति पाने का प्रयास कर रहे हैं भगवन्नाम कीर्तन तथा श्रवण को मुक्ति की विधि मानते हैं अत: उन्हें भी इस कीर्तन में दिव्य आनन्द मिलता है। जहाँ तक कर्मियों तथा विषयी लोगों की बात है वे भी भगवान् की लीलाओं यथा कुरुक्षेत्र में भगवान् द्वारा युद्ध करने तथा वृन्दावन में गोपियों के साथ नृत्य को सुनने में आनन्द ले सकते हैं।

उत्तमश्लोकगुणानुवाद शब्द भगवान् के दिव्य गुणों का द्योतक है यथा माता यशोदा तथा ग्वालों के प्रति उनका स्नेह तथा गोपियों के प्रति प्रेमभाव। भगवान् के भक्तों को भी उत्तमश्लोकगुणानुवाद की पदवी दी जाती है यथा महाराज युधिष्ठिर को। *अनुवाद* शब्द भगवान् या उनके भक्तों के गुणों के वर्णन का सूचक है। जब इन गुणों का वर्णन किया जाता है, तो अन्य भक्त भी उन्हें सुनने में रुचि दिखलाते हैं। जो इन दिव्य गुणों को सुनने में जितनी अधिक रुचि लेता है उसे उतना ही आनन्द प्राप्त होता है।

इसलिए *मुमुक्षों, विमुक्तों* तथा *कर्मियों* समेत हर एक को भगवान् की महिमा का कीर्तन और श्रवण करके लाभान्वित होना चाहिए।

यद्यपि भगवान् के दिव्य गुणों की ध्वनि सबको समान रूप से लाभप्रद होती है, किन्तु जो *मुक्त* हैं उन्हें यह विशेष रूप से प्रिय है। *श्रीमद्‌भागवत* (८.३.२०) में बतलाया गया है कि शुद्ध भक्त जिनकी भौतिक इच्छाएँ समाप्त हो जाती हैं और जो भगवान् के चरणकमलों की शरण ग्रहण कर लेते हैं, भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन एवं श्रवण करके आनन्दसागर में निरन्तर मग्न रहते हैं। इस श्लोक के अनुसार नारद तथा श्वेतद्वीप के अन्य निवासियों जैसे भक्त सदैव भगवन्नाम का कीर्तन करते देखे जाते हैं क्योंकि ऐसा करने से वे ब्राह्यत: तथा आन्तरिक रूप से आनन्दित रहते हैं। मुमुक्षगण जो मुक्त होना चाहते हैं, इन्द्रियों के सुख पर आश्रित नहीं रहते अपितु भगवन्नाम कीर्तन करके मुक्त होने पर ध्यान लगाए रहते हैं। कर्मीजन अपने कानों तथा ह्रदयों को अच्छे लगने वाले कार्य करना चाहते हैं, किन्तु कभी-कभी वे भी भगवान् का गुणानुवाद करना-सुनना चाहते हैं फिर भी वे इसे प्रत्यक्ष रूप में नहीं करते। किन्तु भक्तगण सदैव भगवान् के कार्यों का श्रवण, कीर्तन और स्मरण स्वेच्छा से करते हैं और इस तरह वे पूर्णत: सन्तुष्ट रहते हैं भले ही ये इन्द्रियतृप्ति के विषय दिखाई दें। परीक्षित महाराज तो भगवान् के कार्यकलापों की दिव्य कथाएँ सुनने मात्र से मुक्त हो गए। अत: वे *श्रोत्रमनोऽभिराम* थे अर्थात् उन्होंने श्रवण विधि को अपनाया। सारे जीवों को यही विधि अपनानी चाहिए।

इन दिव्य आनन्दों से विहीन व्यक्तियों को पृथक् करने के लिए परीक्षित महाराज ने *विरज्येत पुमान्* शब्दों का प्रयोग किया है। *पुमान्* किसी भी व्यक्ति का चाहे नर हो या नारी या इन दोनों के बीच का, सूचक है। देहात्मबुद्धि के कारण हम शोक करते हैं, किन्तु देहात्मबुद्धि से रहित व्यक्ति आध्यात्मिक श्रवण तथा कीर्तन में आनन्द का अनुभव करता है। इसलिए देहात्मबुद्धि में मग्न व्यक्ति आध्यात्मिक उन्नति न कर सकने के कारण निश्चय ही अपने आपको मारता रहता है। ऐसा व्यक्ति *पशुघ्न* कहलाता है। पशुओं के शिकारी(आखेटक) जो भगवान् के पवित्र नाम के श्रवण और कीर्तन में रुचि नहीं रखते, आध्यात्मिक जीवन से विलग रहते हैं। ऐसे आखेटक इस जीवन में और अगले जीवन में भी सदैव दुखी रहते हैं। इसीलिए कहा गया है कि आखेटक को न तो मरना चाहिए न ही जीवित रहना चाहिए क्योंकि मरना तथा जीना दोनों ही उसके लिए कष्टकारक होते हैं। ये पशु आखेटक सामान्य

कर्मियों से सर्वथा भिन्न होते हैं इसीलिए इन्हें श्रवण तथा कीर्तन विधि में सम्मिलित नहीं किया जाता। *विना पशुघ्नात्।* उन्हें भगवन्नाम के कीर्तन और श्रवण में कोई दिव्य आनन्द नहीं मिलता।

महारथ शब्द उस महावीर का सूचक है, जो १ ००० अन्य योद्धाओं से अकेले लड़ सकता है। श्लोक ५ में आया *अतिरथ* शब्द ऐसे व्यक्ति का सूचक है, जो असंख्य योद्धाओं से लड़ सकता है। *महाभारत* में इसका वर्णन इस प्रकार हुआ है—

एकादशोसहस्राणि योधयेद्यस्तु धन्विनाम्

अस्त्रशस्त्रप्रवीणश्च महारथ इति स्मृत:

अमितान् योधयेद्यस्तु सम्प्रोक्तोऽतिरथस्तु स:॥

श्रील सनातन गोस्वामी ने *वृहद् वैष्णवतोषणी* में यह विवरण दिया है।

माया-मनुष्यस्य (.१.१७)। योगमाया द्वारा आवृत होने के कारण (*नाहं प्रकाश: सर्वस्य योगमायासमावृत:*) कृष्ण कभी-कभी *मायामनुष्य* कहलाते हैं, जो यह बतलाता है कि भगवान् होते हुए भी वे सामान्य मनुष्य की तरह प्रकट होते हैं। चूँकि जनता की दृष्टि पर योगमाया का पर्दा पड़ा रहता है इसीलिए भ्रम उत्पन्न होता है। यद्यपि भगवान् सामान्य व्यक्ति की तरह उत्पन्न होते हैं, किन्तु उनका पद सामान्य व्यक्ति से सर्वथा भिन्न होता है। वे सदैव दिव्य हैं। *माया* शब्द कभी ''दया'' तो कभी ''ज्ञान'' को सूचित करता है। भगवान् समस्त दिव्य ज्ञान से पूर्ण रहते हैं अतएव मनुष्य की भाँति कर्म करते हुए भी वे ज्ञान से पूर्ण भगवान् होते हैं। उनका मूल स्वरूप माया के अधीक्षक (*मयाध्यक्षेण प्रकृति: सूयते सचराचरम्*) के रूप में होता है। इसीलिए भगवान् को एक सामान्य मनुष्य की भाँति कार्य करने के कारण *मायामनुष्य* कहा जा सकता है यद्यपि वे भौतिक और आध्यात्मिक दोनों शक्तियों के नियन्ता हैं। भगवान् पुरुषोत्तम हैं, किन्तु योगमाया द्वारा हमारे छले जाने के कारण वे सामान्य व्यक्ति की तरह प्रकट होते हैं। किन्तु अन्ततोगत्वा योगमाया अभक्त को भी प्रेरित करती है कि वह परम पुरुष को पुरुषोत्तम रूप में समझे। *भगवद्गीता* में भगवान् के दो कथन प्राप्य हैं। भक्तों के विषय में उनका कथन है—

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।

ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥

"जो लोग निरन्तर मेरी भक्ति करते हैं और प्रेमपूर्वक मेरी पूजा करते हैं उन्हें मैं बुद्धि प्रदान करता हूँ जिससे वे मेरे पास आ सकें।" *भगवद्गीता .*)। इस तरह चाहने वाले भक्त को भगवान् बुद्धि देते हैं जिससे वह उन्हें समझ सके और भगवद्धाम वापस जासके। अभक्तों के लिए भगवान् का कथन है—*मृत्युः सर्वहरश्चाहम्*—मैं सब कुछ हरण करने वाली अनिवार्य मृत्यु हूँ। प्रह्लाद जैसा भक्त भगवान् नृसिंहदेव के कार्यकलापों में आनन्द पाता है और प्रह्लाद के पिता हिरण्यकशिपु जैसा अभक्त भगवान् नृसिंह के समक्ष मृत्यु को प्राप्त होता है। इसलिए भगवान् दो तरह से कार्य करते हैं कुछ को तो वे जन्म-मरण के चक्र में डाल देते हैं और कुछ को भगवद्धाम वापस भेज देते हैं।

काल शब्द का अर्थ "काला" है, जो भगवान् कृष्ण के रंग का सूचक है। भगवान् कृष्ण तथा रामचन्द्र दोनों ही श्याम रंग के दिखते हैं। वे अपने भक्तों को मुक्ति तथा दिव्य आनन्द प्रदान करते हैं। भौतिक शरीर धारण करने वाले कुछ व्यक्ति कभी-कभी इच्छामृत्यु भोगते हैं। ऐसे व्यक्ति के लिए मृत्यु असम्भव है क्योंकि कोई भी मरना नहीं चाहता। यद्यपि भीष्मदेव में यह शक्ति थी, किन्तु भगवान् की परम इच्छा से वे भगवान् के समक्ष बड़ी ही आसानी से मर गए। ऐसे अनेक असुर भी हो चुके हैं, जिन्हें मोक्ष की कोई आशा नहीं थी फिर भी भगवान् की परम इच्छा से कंस को मोक्ष मिला। कंस ही नहीं, पूतना को भी मोक्ष मिला और वह भगवान् की माता के समान पद प्राप्त कर सकी। इसीलिए परीक्षित महाराज उन भगवान् के विषय में सुनने के लिए अत्यधिक उत्सुक थे, जो अपने अचिन्त्य गुणों के द्वारा किसी को भी मुक्ति प्रदान कर सकते हैं। अपनी मृत्यु के निकट परीक्षित महाराज निश्चय ही अपनी मुक्ति के विषय में उत्सुक थे। जब भगवान् जैसा महान् मनुष्य अचिन्त्य गुणों से सम्पन्न होकर सामान्य मनुष्य की तरह व्यवहार करता है, तो उसका वह व्यवहार *माया* कहलाता है। इसीलिए भगवान् को *मायामनुष्य* कहा गया है। यह श्रील जीव गोस्वामी का मत है। *मु* सूचक है *मुक्ति* का और *कु* बुरे अर्थ में आता है। अतः *मुकु* भगवान् का सूचक है, जो मनुष्य को भौतिक संसार की बुरी स्थिति से बचाता है। भगवान् को *मुकुन्द* इसीलिए कहा गया है क्योंकि वे भक्त को न केवल भौतिक संसार से बचाते हैं अपितु उसे सेवा में दिव्य प्रेममय आनन्द प्रदान करते हैं।

केशव (क+ईश) में *क* का अर्थ है ब्रह्मा तथा *ईश* का अर्थ है शिवजी। भगवान् अपने दिव्य गुणों से ब्रह्मा तथा शिव दोनों का मन मोह लेते हैं इसीलिए वे केशव कहलाते हैं। यह मत श्रील सनातन

गोस्वामी ने ''वैष्णव तोषणी'' टीका में व्यक्त किया है।

कहा जाता है कि त्रिनयन अर्थात् शिव समेत सारे देवता क्षीर सागर के तट पर गए और *पुरुष-सूक्त* मंत्र द्वारा विष्णु की स्तुति की। इस कथन से पता चलता है कि देवता न तो क्षीरशायी विष्णु के पास सीधे जा सकते हैं न उनके धाम में प्रवेश कर सकते हैं। *महाभारत* के *मोक्षधर्म* तथा *श्रीमद्भागवत* के अगले अध्याय में भी यह स्पष्ट कहा गया है : भगवान् कृष्ण का धाम गोलोक में है (*गोलोकनाम्नि निजधाम्नि तले च तस्य*)। भगवान् कृष्ण से उत्पन्न है चतुर्व्यूहसंकर्षण, अनिरुद्ध, प्रद्युम्न तथा वासुदेव। ब्रह्माण्डों की संख्या अनन्त है और वे सब कारणोदकशायी विष्णु के रोमकूपों से उद्भूत होते हैं और हर ब्रह्माण्ड में एक गर्भोदकशायी विष्णु होता है, जो अनिरुद्ध का आंशिक विस्तार होता है। अनिरुद्ध अंश हैं प्रद्युम्न के, जो आंशिक क्षीरोदकशायी विष्णु हैं और सारे जीवों में परमात्मा के रूप में हैं। ये विष्णु अंश उन कृष्ण से भिन्न हैं, जो गोलोक वृन्दावन में निवास करते हैं। जब यह कहा जाता है कि देवताओं ने पुरुष सूक्त द्वारा भगवान् की स्तुति की तो इसका यही अर्थ होता है कि उन्होंने भक्तिमयी स्तुतियों के द्वारा भगवान् को प्रसन्न किया।

वृषाकपि शब्द उस व्यक्ति का सूचक है, जो अपने भक्तों को हर तरह से तुष्ट करता है और उन्हें सारी भौतिक चिन्ताओं से मुक्त करता है। *वृष* यज्ञ जैसे धार्मिक कृत्यों का सूचक है। भगवान् यज्ञ किए बिना ही स्वर्ग के सारे भोग प्राप्त कर सकते हैं। यह कथन कि पुरुषोत्तम या जगन्नाथ वसुदेव के घर में प्रकट होंगे, भगवान् को सामान्य पुरुषों से विभेदित करता है। उनका कथन कि वे स्वयं प्रकट हुए यह बतलाता है कि उन्होंने अपने अंश को नहीं भेजा। *प्रियार्थम्* शब्द सूचित करता है कि वे रुक्मिणी तथा राधारानी को प्रसन्न करने के लिए प्रकट हुए। *प्रिया* का अर्थ है, ''सर्वाधिक प्रिय।''

श्री वीरराघव आचार्य ने अपनी टीका में श्लोक २३ के बाद निम्नलिखित अतिरिक्त श्लोक स्वीकार किया है—

ऋषयोऽपि तदादेशात् कल्पयन्तां पशुरूपिणः।

पयोदानमुखेनापि विष्णुं तर्पयितुं सुराः॥

''हे देवताओ! बड़े-बड़े मुनि तक विष्णु का आदेश पाकर भगवान् को दूध देकर प्रसन्न करने के लिए गौवों तथा बछड़ों के रूप में प्रकट हुए।''

रामानुजाचार्य कभी–कभी बलदेव को *शक्त्यावेश अवतार* स्वीकार करते हैं, किन्तु श्रील जीव गोस्वामी ने बतलाया है कि बलदेव कृष्ण के अंश हैं और बलदेव के भी अंश हैं संकर्षण। यद्यपि बलदेव तथा संकर्षण अभिन्न हैं, किन्तु बलदेव संकर्षण के उद्‌गम हैं। इसीलिए यह बताने के लिए कि बलदेव की स्वतंत्र सत्ता है, *स्वराट्* शब्द प्रयुक्त हुआ है। *स्वराट्* शब्द यह भी सूचित करता है कि बलदेव इस संसार की भौतिक कल्पना से परे हैं। माया उन्हें आकृष्ट नहीं कर सकती क्योंकि वे पूर्ण स्वतंत्र हैं और वे कहीं भी अपनी आत्मशक्ति से प्रकट हो सकते हैं। माया विष्णु के अधीन है। चूँकि भौतिक शक्ति तथा योगमाया भगवान् के प्राकट्य में घुलमिल जाती हैं अत: उन्हें *एकानंशा* कहा गया है। कभी–कभी *एकानंशा* का अर्थ "बिना अन्तर" लगाया जाता है। संकर्षण तथा शेषनाग अभिन्न हैं। यमुना देवी ने कहा है, "हे राम, हे संसार के महाभुज स्वामी! आपने अपने एक स्वांश से अपने को सारे विश्व में फैला दिया है। भला आपको कौन पूरी तरह समझ सकता है।" इसलिए *एकांशा* शेषनाग का द्योतक है। दूसरे शब्दों में, बलदेव अपने अंश से सारे विश्व को धारण करते हैं।

कार्यार्थे शब्द उस व्यक्ति का द्योतक है, जिसने देवकी के गर्भ को आकृष्ट किया तथा यशोदा माता को मोहित किया। ये लीलाएँ परम गुह्य हैं। भगवान् ने योगमाया को आदेश दिया कि वह उनके संगियों को लीलाओं में और कंस जैसे असुर को मोहित करे। जैसाकि पहले कहा जा चुका है— *योगमायां समादिशत्।* भगवान् की सेवा करने के लिए योगमाया महामाया के साथ प्रकट हुई। *महामाया* द्योतक है *यया सम्मोहितं जगत्*—"जो सारे भौतिक जगत को मोहित करने वाली है।" इस कथन से यह समझना चाहिए कि योगमाया अपने अंश रूप में महामाया बनती है और सारे बद्धजीवों को मोहती है। दूसरे शब्दों में, सम्पूर्ण सृष्टि के दो विभाग हैं दिव्य या आध्यात्मिक तथा भौतिक। योगमाया आध्यात्मिक जगत की व्यवस्था करती हैं और वह अपने अंश महामाया के रूप में इस भौतिक जगत का भार संभालती हैं। जैसा *नारद पञ्चरात्र* में कहा गया है महामाया अंश है योगमाया का। उस ग्रंथ में स्पष्ट कहा गया है कि भगवान् के केवल एक शक्ति होती है, जो कभी–कभी दुर्गा कहलाती है। *ब्रह्म–संहिता* कहती है—*छायेव यस्य भुवनानिबिभर्ति दुर्गा।* दुर्गा योगमाया से भिन्न नहीं है। दुर्गा को भलीभाँति जान लेने पर मनुष्य तुरन्त ही मुक्त हो जाता है क्योंकि दुर्गा आदि ह्लादिनी शक्ति है, जिसकी कृपा से भगवान् को बहुत आसानी से जाना जा सकता है। *राधाकृष्ण प्रणयविकृतिर्ह्लादिनीशक्तिरस्माद्।*

महामाया शक्ति योगमाया की आवरण है इसीलिए उसे आवृता शक्ति कहा गया है। इसी आवृता शक्ति से सारा भौतिक जगत मोहित है (*यया सम्मोहितं जगत्*)। निष्कर्ष यह निकला कि बद्धजीवों को मोहित करना तथा भक्तों को मुक्ति देना ये दोनों कार्य योगमाया के हैं। देवकी के गर्भ का स्थानान्तरण और यशोदा को गहरी निद्रा में रखना ये दोनों कार्य योगमाया द्वारा किए गए। महामाया ऐसे भक्तों पर अपना असर नहीं दिखा सकती क्योंकि वे सदैव मुक्त रहते हैं। यद्यपि महामाया मुक्तात्माओं या भगवान् को अपने वश में नहीं कर सकती, किन्तु कंस को मोहित किया ही। योगमाया का स्वयं को कंस के सामने प्रस्तुत करना महामाया का कार्य था, योगमाया का नहीं। योगमाया कंस जैसे दूषित व्यक्ति को देख या छू भी नहीं सकती। *मार्कण्डेय पुराण* में चण्डी नामक ग्यारहवें अध्याय में महामाया कहती हैं, ''वैवस्वत मनु के काल में अट्ठाइसवें युग में मैं यशोदा की पुत्री के रूप में जन्म लूँगी और विन्ध्याचलवासिनी के नाम से जानी जाऊँगी।''

इन दोनों मायाओं, योगमाया तथा महामाया का अन्तर इस प्रकार बतलाया जाता है। गोपियों के साथ कृष्ण की रासलीला करना तथा गोपियों द्वारा अपने पतियों, ससुरों तथा अन्य सम्बन्धियों से संभ्रमित होना ये सब योगमाया के काम थे जिनमें महामाया का कोई प्रभाव नहीं था। *श्रीमद्भागवत* में इसका पर्याप्त प्रमाण मिलता है जब यह स्पष्ट कहा जाता है *योगमायामुपाश्रित:।* दूसरी ओर साल्व आदि असुर तथा दुर्योधन जैसे क्षत्रिय थे, जो कृष्ण के वाहन गरुड़ तथा उनके विश्वरूप को देखकर भी भक्ति से विहीन थे और जो कृष्ण को भगवान् के रूप में समझ ही नहीं पाए। यह भी मोह था, किन्तु यह महामाया के कारण था। अत: जो माया मनुष्य को भगवान् से दूर खींच ले जाती है, वह *जड़माया* और दिव्य स्तर पर कार्य करने वाली माया योगमाया है। जब नन्द महाराज को वरुण ले गया तो उन्होंने कृष्ण का वैभव देखा, किन्तु तो भी उन्हें अपना पुत्र ही समझा। आध्यात्मिक जगत में इस तरह का वात्सल्य प्रेम योगमाया का कार्य है, जड़माया या महामाया का नहीं। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर का ऐसा मत है।

शूरसेनांश्च। कार्तवीर्यार्जुन का पुत्र शूरसेन था और जिन देशों में वह शासन चलाता था वे भी शूरसेन कहलाते थे। ऐसी टिप्पणी सनातन गोस्वामी कृत *वैष्णव तोषणी* टीका में है।

मथुरा के विषय में निम्नलिखित उद्धरण आया है—

मथ्यते तु जगत् सर्वं ब्रह्मज्ञानेन येन वा।

तत्सारभूतं यद्यस्यां मथुरा सा निगद्यते॥

जब कोई स्वरूपसिद्ध अपने दिव्य पद पर स्थित होकर कर्म करता है, तो उसका पद मथुरा कहलाता है। दूसरे शब्दों में, जब कोई व्यक्ति भक्तियोग की विधि से कर्म करता है, तो वह चाहे जहाँ रहे, किन्तु वास्तव में वह मथुरा-वृन्दावन में होता है। नन्द महाराज के पुत्र कृष्ण की भक्ति ही समस्त ज्ञान का सार है और ऐसा ज्ञान जहाँ भी प्रकट किया जाता है उस स्थान को मथुरा कहा जाता है। अपरंच, जब कोई व्यक्ति अन्य विधियों को छोड़कर भक्तियोग की स्थापना करता है, तो उसकी स्थिति मथुरा कहलाती है। *यत्र नित्यं सन्निहितो हरिः*—जिस स्थान में भगवान् नित्य रहते हैं वह मथुरा कहलाता है। भगवान् नित्य हैं और उनका धाम नित्य है। *गोलोक एव निवसत्यखिलात्मभूतः।* यद्यपि भगवान् अपने धाम गोलोक वृन्दावन में नित्यवास करते हैं, किन्तु वे सर्वत्र पूर्ण रूप से विद्यमान रहते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि जब भगवान् इस विश्व पर अवतरित होते हैं, तो उनका आदि धाम रिक्त नहीं रहता क्योंकि वे अपने मूलधाम में रहते हुए मथुरा, वृन्दावन, अयोध्या इत्यादि स्थानों में एकसाथ अवतरित हो सकते हैं। उन्हें अवतरित होने की आवश्यकता भी नहीं पड़ती क्योंकि वे पहले से वहाँ विद्यमान रहते हैं। बस, उन्हें अपने आपको प्रकट करना होता है।

श्रील शुकदेव गोस्वामी ने महाराज परीक्षित को *तात* अर्थात् ''प्रिय पुत्र'' कहकर सम्बोधित किया है। अपने अंत:करण में वात्सल्य प्रेम होने के कारण ही शुकदेव गोस्वामी ने इस शब्द का प्रयोग किया है। चूँकि शीघ्र ही वसुदेव तथा देवकी के पुत्र रूप में कृष्ण उत्पन्न होने वाले थे इसलिए शुकदेव गोस्वामी ने वात्सल्य प्रेम के कारण महाराज परीक्षित को *तात* कहा है।

विश्वकोश में *गर्भ* शब्द की व्याख्या इस प्रकार है—*गर्भो भ्रूणे अर्भके कुक्षावित्यादि।* जब कंस देवकी को मारने वाला था, तो वसुदेव ने उसे रोकने के लिए *साम* तथा *भेद* कूटनीति का सहारा लिया। *साम* का अर्थ है ''सान्त्वना देना।'' वसुदेव ने कंस को सम्बन्ध, लाभ, कल्याण, पहचान तथा गुणानुवाद द्वारा सान्त्वना देनी चाही। इन पाँचों का सन्दर्भ *साम* के अन्तर्गत आता है। वसुदेव द्वारा इस जीवन तथा अगले जीवन में भय प्रस्तुत करना *भेद* था। इस तरह वसुदेव ने कंस को सान्त्वना देने के लिए साम तथा भेद का प्रयोग किया। कंस के गुणों की प्रशंसा करना गुणानुवाद था और भोजवंश का

उत्तराधिकारी कहना *सम्बन्ध* का द्योतक था। ''तुम्हारी बहन'' से पहचान का बोध कराना था। स्त्री की हत्या के उल्लेख से यश तथा कल्याण विषयक प्रश्न उठते हैं और विवाह के समय अपनी बहन की हत्या का पापपूर्ण कृत्य भय उत्पन्न करता है, जो *भेद* का एक पक्ष है। भोज वंश उन लोगों का द्योतक है, जो एकमात्र इन्द्रियतृप्ति में लगे रहते थे अतएव अधिक कुलीन नहीं थे। *भोज* का अन्य अर्थ है ''युद्ध करना।'' ये सभी कंस के अपयश के लक्षण थे। जब वसुदेव ने कंस को *दीनवत्सल* कहा तो यह अतिशय प्रशंसा थी। चूँकि कंस अपने गरीब राज्यों से कर के रूप में बछड़े लिया करता था इसलिए भी वह *दीनवत्सल* कहलाता था। वसुदेव को पता था कि वे बल-प्रयोग से देवकी को आसन्न संकट से नहीं बचा सकेंगे। देवकी वास्तव में कंस के चाचा की लड़की थी इसीलिए देवकी को *सुहृत्* अर्थात् ''सम्बन्धी'' कहा गया है। कहा जाता है कि कंस ने अपने निकट सम्बन्धी देवकी की हत्या इसीलिए नहीं की क्योंकि तब परिवार के अन्य सदस्यों में महान् युद्ध छिड़ जाता। कंस इस संकट से बचना चाह रहा था क्योंकि इससे अनेक लोगों की जानें चली जातीं।

पूर्व काल में कालनेमि नामक असुर के छह पुत्र हुए जिनके नाम थे हंस, सुविक्रम, क्राथ, दमन, रिपुर्मर्दन तथा क्रोधहन्ता। ये *षड्गर्भ* कहलाए। ये छहों समान बलशाली तथा युद्धकला में निपुण थे। इन छहों ने अपने बाबा हिरण्यकशिपु का साथ छोड़ दिया और ब्रह्मा को प्रसन्न करने के लिए कठिन तपस्या की। ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर मुँहमाँगा वर देने के लिए कहा। इस पर षड्गर्भों ने कहा, ''हे ब्रह्माजी! यदि आप हमें वर देना ही चाहते हैं, तो हमें यह आशीर्वाद दीजिए कि हम किसी देवता, महारोग, यक्ष, गन्धर्वपति, सिद्ध, चारण या मनुष्य अथवा अपनी तपस्याओं में पूर्ण किसी भी महर्षि द्वारा मारे न जा सकें।'' ब्रह्मा उनके मनोभाव जान गए अत: उन्होंने उनकी इच्छा पूरी कर दी। किन्तु जब हिरण्यकशिपु को इसका पता चला तो वह अपने पौत्रों पर अत्यन्त क्रुद्ध हुआ। उसने कहा, ''मेरा साथ छोड़कर तुम लोग ब्रह्मा की पूजा करने गए। अत: अब मैं तुमसे नाता तोड़ता हूँ। तुम लोगों ने अपने आपको देवताओं से बचने का प्रयत्न किया है लेकिन मैं तुम लोगों को शाप देता हूँ कि तुम्हारा पिता कंस के रूप में जन्म लेगा और तुम छहों देवकी के गर्भ से उत्पन्न होने पर कंस द्वारा मारे जाओ। इसी शाप के कारण हिरण्यकशिपु के पौत्रों को देवकी के गर्भ से जन्म लेना पड़ा और कंस द्वारा उनका वध होना ही था, भले ही पूर्वजन्म में वह उनका पिता क्यों न रहा हो। यह वर्णन हरिवंश के विष्णुपर्व

के द्वितीय अध्याय में मिलता है। ''वैष्णवतोषणी'' टीका के अनुसार कीर्तिमान नामक देवकी का पुत्र तीसरा अवतार था। अपने पहले अवतार में वह मरीचि का पुत्र स्मर था, जो बाद में कालनेमि का पुत्र बना। पुराणों में इसका उल्लेख मिलता है।

श्रीमद्भागवत के इस अध्याय में मध्वाचार्य सम्प्रदाय द्वारा स्वीकृत जिसका प्रतिनिधित्व विजय ध्वज तीर्थ करते हैं, एक अतिरिक्त श्लोक मिलता है, जो इस प्रकार है—

अथ कंसं उपागम्य नारदो ब्रह्मनन्दनः ।

एकान्तमुपसंगम्य वाक्यमेतदुवाच ह ॥

अथ—इस प्रकार; **कंसम्**—कंस के पास; **उपागम्य**—जाकर; **नारदः**—महामुनि नारद; **ब्रह्मनन्दनः**—ब्रह्माजी के पुत्र; **एकान्तमुपसंगम्य**—एकान्त स्थान में जाकर; **वाक्यम्**—सूचना; **एतत्**—यह; **उवाच**—कहा; **ह**—निश्चित रूप से।

''तत्पश्चात् ब्रह्मा के मानस पुत्र नारद कंस के पास गये और एकान्त स्थान में उन्होंने उसे निम्नलिखित जानकारी दी।''

महान् मुनि नारद स्वर्ग से मथुरा आए और उन्होंने कंस के पास अपना दूत भेजा। जब दूत ने कंस के पास जाकर नारद के आने की जानकारी दी तो असुरों का मुखिया कंस अत्यन्त प्रसन्न हुआ और वह तुरन्त ही उनके स्वागतार्थ अपने महल से बाहर आया। नारद मुनि सूर्य जैसे तेजस्वी थे, अग्नि जैसे शक्तिशाली थे और सभी प्रकार के पाप-कृत्यों से रहित थे। कंस ने अतिथि के रूप में सत्कार करते हुए उन्हें सादर नमस्कार किया और सूर्य सदृश देदीप्यमान सोने के सिंहासन पर बिठाया। नारद स्वर्ग के राजा के मित्र थे अतएव उन्होंने उग्रसेन के पुत्र कंस से कहा, ''हे शूरवीर! मैं तुम्हारे आतिथ्य से प्रसन्न हूँ अतएव मैं तुमसे कुछ गुप्त बातें कहूँगा। जब मैं नन्दन कानन के चैत्ररथ जंगल से होकर यहाँ आ रहा था, तो मैंने देवताओं की एक विशाल सभा देखी और ये देवता मेरे साथ सुमेरु पर्वत तक आए। हम अनेक तीर्थस्थलों में गए और अन्त में हमने पवित्र गंगा नदी का दर्शन किया। जब ब्रह्माजी अन्य देवताओं के साथ सुमेरु पर्वत पर मंत्रणा कर रहे थे तो मैं भी अपनी वीणा के साथ वहाँ उपस्थित था। मैं तुम्हें गुप्त रूप से बतलाऊँगा कि यह सभा तुम समेत सारे असुरों को मार डालने की योजना बनाने के लिए की गई थी। तुम्हारी छोटी बहन देवकी है न! और यह तथ्य है कि उसका आठवाँ पुत्र तुम्हारा वध करेगा। (*हरिवंश, विष्णु पर्व,* १.२१६)

नारद पर कोई यह दोषारोपण नहीं कर सकता कि उन्होंने देवकी के पुत्रों का वध करने के लिए

कंस को प्रोत्साहित किया। नारद मुनि तो मानव समाज के सतत् शुभचिन्तक हैं। वे चाहते थे कि जितनी जल्दी हो सके, कृष्ण इस धरा पर अवतरित हों जिससे देवताओं का समाज प्रसन्न हो और कंस तथा उसके मित्रों का कृष्ण द्वारा वध देखें। कंस को भी अपने कुकृत्यों से मोक्ष प्राप्त हो सके। इससे देवताओं तथा उनके अनुयायियों को परम प्रसन्नता होगी। इस सम्बन्ध में श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर की टिप्पणी है कि नारदमुनि कभी-कभी ऐसे कार्य करते थे, जो देवताओं तथा असुरों को एक साथ लाभप्रद होते थे। इस प्रसंग में श्री वीरराघव आचार्य ने अपनी टीका में निम्नलिखित आधा श्लोक सम्मिलित किया है—

असुरा: सर्व एवैत लोकोपद्रवकारिण:

असुरगण सदा-सदा ही मानव समाज के लिए उपद्रवी तत्त्व रहे हैं।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत ''भगवान् श्रीकृष्ण का अवतार:परिचय'' नामक प्रथम अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter दो

देवताओं द्वारा गर्भस्थ कृष्ण की स्तुति

इस अध्याय में बताया गया है कि कंस का वध करने के लिए जब भगवान् ने देवकी के गर्भ में प्रवेश किया, तो सारे देवता समझ गये कि भगवान् देवकी के गर्भ में वास कर रहे हैं अत: देवताओं उनके सम्मान में *गर्भस्तुति* की।

कंस अपने ससुर जरासंध के संरक्षण में प्रलम्ब, बक, चाणूर, तृणावर्त, अघासुर, मुष्टिक, बाण तथा भौमासुर जैसे असुर मित्रों की सहायता से यदुवंशियों को सताने लगा। इसलिए यदुवंशी अपने अपने घर छोड़ कर कुरु, पञ्चाल, केकय, शाल्व तथा विदर्भ जैसे राज्यों की शरण में चले गये। उनमें से कुछ ही, जो नाममात्र के मित्र थे, कंस के साथ रहते रहे।

जब कंस ने एक एक करके देवकी के छ: पुत्रों (*षड्गर्भ*) को मार डाला तो अनन्तदेव ने देवकी के गर्भ में प्रवेश किया और भगवान् के आदेश का पालन करने वाली योगमाया की युक्ति से वे रोहिणी के गर्भ में स्थानान्तरित कर दिये गये। देवकी के आठवें पुत्र के रूप में शीघ्र प्रकट होने वाले स्वयं

भगवान् ने योगमाया को आदेश दिया कि वह यशोदादेवी के गर्भ से जन्म ले। चूँकि कृष्ण तथा उनकी शक्ति योगमाया एकसाथ भाई–बहन के रूप में प्रकट हुए इसलिए यह संसार वैष्णवों तथा शाक्तों से परिपूर्ण है और उनके बीच निश्चय ही कुछ प्रतिद्वन्द्विता है। वैष्णव जन परमेश्वर की पूजा करते हैं और शाक्तगण योगमाया की पूजा अपनी अपनी इच्छा के अनुसार दुर्गा, भद्रकाली तथा चण्डिका जैसे रूपों में करते हैं। योगमाया ने भगवान् के आदेशानुसार देवकी के सातवें पुत्र बलदेव या संकर्षण को देवकी के गर्भ से रोहिणी के गर्भ में स्थानान्तरित कर दिया। चूँकि संकर्षण कृष्ण के प्रेम को बढ़ाने के लिए प्रकट होते हैं इसलिए वे बलदेव कहलाते हैं। भगवद्भक्त बनने के लिए मनुष्य को चाहिए कि वह इन्हीं से शुभ शक्ति ग्रहण करे इसीलिए वे बलभद्र भी कहलाते हैं।

जब योगमाया ने देवकी की सातवीं सन्तान को रोहिणी के गर्भ में स्थानान्तरित कर दिया तो वसुदेव के हृदय में स्वंय भगवान् प्रकट हुए और तब अपने को देवकी के हृदय में स्थानान्तरित कर लिया। चूँकि भगवान् देवकी के हृदय में उपस्थित थे अत: ज्यों–ज्यों गर्भ की अवधि बढ़ती गई त्यों–त्यों देवकी तेजवान प्रतीत होने लगीं। इस तेज को देखकर कंस चिन्तित था किन्तु पारिवारिक सम्बन्ध के कारण देवकी को नुकसान नहीं पहुँचा सकता था। इस तरह वह कृष्ण के विषय में अप्रत्यक्ष रूप से सोचने लगा और पूर्णतया कृष्णभावनाभावित हो गया।

इसी बीच में देवकी के गर्भ में भगवान् की उपस्थिति के कारण सारे देवता उनकी स्तुति करने आये। उन्होंने कहा कि भगवान् परम सत्य हैं। आत्मा स्थूल शरीर की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण है और परमात्मा आत्मा से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। भगवान् परम स्वतंत्र हैं और उनके अवतार दिव्य हैं। देवताओं की स्तुतियाँ भक्तों की महिमा को द्योतित करती हैं और उन व्यक्तियों के भाग्य का बखान करती हैं, जो अपने को भौतिक प्रकृति की परिस्थितियों से ऊपरी तौर पर मुक्त मानते हैं। भक्त सदैव सुरक्षित रहते हैं। जब भक्त भगवान् के चरणकमलों पर पूरी तरह शरण ले लेता है, तो वह भौतिक संसार के भय से पूर्णतया मुक्त हो जाता है। देवताओं की स्तुतियाँ भगवान् के अवतरित होने के कारण को बतलाती हैं। वे *भगवद्गीता* (४.७) में भगवान् के कथन की पुष्टि करती हैं—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम॥

''हे भरतवंशी! जब जब धर्म का ह्रास होता है और अधर्म का प्राधान्य होने लगता है तब तब मैं अवतार लेता हूँ।''

श्रीशुक उवाच

प्रलम्बबकचाणूरतृणावर्तमहाशनैः ।
मुष्टिकारिष्टद्विविदपूतनाकेशीधेनुकैः ॥ १ ॥
अन्यैश्चासुरभूपालैर्बाणभौमादिभिर्युतः ।
यदूनां कदनं चक्रे बली मागधसंश्रयः ॥ २ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; प्रलम्ब—प्रलम्ब नामक असुर; बक—बक नामक असुर; चाणूर—चाणूर नामक असुर; तृणावर्त—तृणावर्त नामक असुर; महाशनैः—अघासुर द्वारा; मुष्टिक—मुष्टिक नामक असुर; अरिष्ट—अरिष्ट असुर; द्विविद—द्विविद असुर जैसे; पूतना—पूतना; केशी—केशी; धेनुकैः—धेनुक द्वारा; अन्यैः च—तथा अन्यों द्वारा; असुर-भूपालैः—पृथ्वी पर असुर राजाओं द्वारा; बाण—बाण असुर; भौम—भौमासुर; आदिभिः—इत्यादि के द्वारा; युतः—से सहायता प्राप्त करके; यदूनाम्—यदुवंश के राजाओं का; कदनम्—उत्पीड़न; चक्रे—किया; बली—अत्यन्त शक्तिशाली; मागध-संश्रयः—मगध के राजा जरासन्ध के संरक्षण में।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : मगधराज जरासंध के संरक्षण में शक्तिशाली कंस द्वारा यदुवंशी राजाओं को सताया जाने लगा। इसमें उसे प्रलम्ब, बक, चाणूर, तृणावर्त, अघासुर, मुष्टिक, अरिष्ट, द्विविद, पूतना, केशी, धेनुक, बाणासुर, नरकासुर तथा पृथ्वी के अनेक दूसरे असुर राजाओं का सहयोग प्राप्त था।

तात्पर्य : इस श्लोक से *भगवद्गीता* (४.७-८) में आये भगवान् के निम्नलिखित कथन की पुष्टि होती है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

''हे भरतवंशी! जब जब धर्म का ह्रास होता है और अधर्म की प्रधानता हो जाती है तब तब मैं अवतार लेता हूँ। मैं पुण्यात्माओं का उद्धार करने, दुष्टों का विनाश करने एवं धर्म की फिर से स्थापना करने के लिए युग-युग में अवतरित होता हूँ।''

इस भौतिक जगत का पालन करने के पीछे भगवान् का उद्देश्य है कि वे हर एक को भगवद्धाम

वापस जाने का अवसर प्रदान करें किन्तु दुर्भाग्यवश राजा तथा राजनेता भगवान् के उद्देश्य में बाधक बनते हैं। अत: सबकुछ ठीक करने के लिए भगवान् स्वयं या अपने अंशों के साथ प्रकट होते हैं। इसीलिए कहा गया है—

गर्भं संचार्य रोहिण्यां देवक्या योगमायया।

तस्या: कुक्षिं गत: कृष्णो द्वितीयोविबुधै स्तुत: ॥

''योगमाया की शक्ति से बलदेव को रोहिणी के गर्भ में स्थानान्तरित करने के बाद कृष्ण देवकी के गर्भ में प्रकट हुए।'' *यदुभि: स व्यरुध्यत।* यदुवंशी सारे राजा भक्त थे किन्तु शाल्व जैसे अनेक शक्तिशाली असुर उन्हें सताने लगे। उस समय कंस का श्वसुर जरासन्ध अत्यधिक शक्तिशाली था अत: कंस ने यदुवंशी राजाओं को सताने में उसके संरक्षण का तथा असुरों की सहायता का लाभ उठाया। ये असुर स्वभावत: देवताओं की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली प्रतीत होते थे किन्तु अन्तत: भगवान् से सहायता प्राप्त होने से ये असुर पराजित हो गये और देवता विजयी रहे।

ते पीडिता निविविशु: कुरुपञ्चालकेकयान् ।
शाल्वान्विदर्भान्निषधान्विदेहान्कोशलानपि ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

ते—यदुवंशी राजा; पीडिता:—सताये हुए; निविविशु:—राज्यों में घुस आये; कुरु-पञ्चाल—कुरुओं तथा पंचालों द्वारा अधिकृत देशों में; केकयान्—केकयों के देश; शाल्वान्—शाल्वों द्वारा अधिकृत देश; विदर्भान्—विदर्भों द्वारा अधिकृत देश; निषधान्—निषधों द्वारा अधिकृत देश; विदेहान्—विदेहों का देश; कोशलान् अपि—कोशलों द्वारा अधिकृत देशों में भी।

असुर राजाओं द्वारा सताये जाने पर यादवों ने अपना राज्य छोड़ दिया और कुरुओं, पञ्चालों, केकयों, शाल्वों, विदर्भों, निषधों, विदेहों तथा कोशलों के राज्य में प्रविष्ट हुए।

एके तमनुरुन्धाना ज्ञातय: पर्युपासते ।
हतेषु षट्सु बालेषु देवक्या औग्रसेनिना ॥ ४॥
सप्तमो वैष्णवं धाम यमनन्तं प्रचक्षते ।
गर्भो बभूव देवक्या हर्षशोकविवर्धन: ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

एके—कुछ; तम्—उस कंस को; अनुरुन्धाना:—अपनी नीति का पालन करने वाले; ज्ञातय:—सम्बन्धीजन; पर्युपासते—उसकी हाँ में हाँ मिलाने लगे; हतेषु—मारे जाकर; षट्सु—छ:; बालेषु—बालक; देवक्या:—देवकी द्वारा उत्पन्न; औग्रसेनिना—उग्रसेन के पुत्र (कंस) द्वारा; सप्तम:—सातवाँ; वैष्णवम्—भगवान् विष्णु के; धाम—अंश; यम्—जिसको; अनन्तम्—अनन्त नाम से; प्रचक्षते—विख्यात है; गर्भ:—गर्भ; बभूव—था; देवक्या:—देवकी का; हर्ष-शोक-विवर्धन:—एकसाथ हर्ष तथा शोक को बढ़ाने वाला।

किन्तु उनके कुछ सम्बन्धी कंस के इशारों पर चलने लगे और उसकी नौकरी करने लगे। जब उग्रसेन का पुत्र कंस देवकी के छह पुत्रों का वध कर चुका तो देवकी के गर्भ में कृष्ण का स्वांश प्रविष्ट हुआ जिससे उसमें कभी सुख की तो कभी दुख की वृद्धि होती। यह स्वांश महान् मुनियों द्वारा अनन्त नाम से जाना जाता है और कृष्ण के द्वितीय चतुर्व्यूह से सम्बन्धित है।

तात्पर्य : कुछ प्रमुख भक्तगण, यथा अक्रूर कंस के साथ उसकी तुष्टि के लिए रहते रहे। ऐसा उन्होंने कई उद्देश्यों से किया। उन सबों को आशा थी कि कंस द्वारा देवकी के अन्य पुत्रों के वध के पश्चात् आठवें पुत्र के रूप में भगवान् प्रकट होंगे अत: वे उत्सुकतापूर्वक उनके प्राकट्य की प्रतीक्षा करने लगे। कंस के साथ रहने से वे भगवान् को जन्म लेते तथा बाललीलाएँ करते देख सकेंगे और बाद में अक्रूर कृष्ण तथा बलराम को वृन्दावन से मथुरा ले जाने के लिए जाएँगे। *पर्युपासते* शब्द महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह सूचित करता है कि कुछ भक्त कंस के पास इसीलिए रुकना चाहते थे कि वे भगवान् की इन सब लीलाओं को देख सकें। कंस ने जिन छह बालकों का वध किया था वे पूर्वजन्म में मरीचि के पुत्र थे किन्तु एक ब्राह्मण के शापवश उन्हें हिरण्यकशिपु के नातियों के रूप में जन्म लेना पड़ा। कंस ने कालनेमि के रूप में जन्म लिया था और अब वह अपने ही पुत्रों को मारने के लिए विवश था। यही वह रहस्यपूर्ण बात थी। ज्योंही देवकी के पुत्र मारे जाते, वे अपने मूल स्थान लौट जाते। भक्तगण इसे भी देखना चाहते थे। सामान्यतया कोई भी व्यक्ति अपने भांजों को नहीं मारता किन्तु कंस इतना क्रूर था कि बिना किसी झिझक के ऐसा करता था। अनन्त या संकर्षण द्वितीय चतुर्व्यूह से सम्बन्धित हैं। यह अनुभवी टीकाकारों का मत है।

भगवानपि विश्वात्मा विदित्वा कंसजं भयम् ।
यदूनां निजनाथानां योगमायां समादिशत् ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

भगवान्—श्रीकृष्ण ने; अपि—भी; विश्वात्मा—हर एक का परमात्मा; विदित्वा—यदुओं तथा उनके अन्य भक्तों की स्थिति जानकर; कंस-जम्—कंस के कारण; भयम्—डर; यदूनाम्—यदुओं के; निज-नाथानाम्—अपने परम आश्रय स्वरूप; योगमायाम्—कृष्ण की आध्यात्मिक शक्ति योगमाया को; समादिशत्—आदेश दिया।

कंस के आक्रमण से अपने निजी भक्त, यदुओं, की रक्षा करने के लिए विश्वात्मा भगवान् ने योगमाया को इस प्रकार आदेश दिया।

तात्पर्य : श्रील सनातन गोस्वामी ने *भगवान् अपि विश्वात्मा विदित्वा कंसजं भयम्* की टीका इस

प्रकार की है। भगवान् स्वयम् श्रीकृष्ण हैं। *कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।* वे विश्वात्मा हैं क्योंकि उनका स्वांश परमात्मा के रूप में विस्तार करता है। इसकी पुष्टि *भगवद्‌गीता* (१३.३) से होती है। *क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत।* भगवान् कृष्ण सभी जीवों के *क्षेत्रज्ञ* अर्थात् परमात्मा हैं। वे भगवान् के समस्त अंशों के आदि उद्‌गम हैं। विष्णु के लाखों अंश हैं यथा संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध तथा वासुदेव किन्तु इस भौतिक जगत में विश्वात्मा तो क्षीरोदकशायी विष्णु हैं। जैसाकि *भगवद्‌गीता* (१८.६१) में कहा गया है—*ईश्वर: सर्वभूतेषु हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति*—हे अर्जुन! परमेश्वर समस्त जीवों के हृदय में स्थित हैं। अपने अंश *विष्णुतत्त्व* के रूप में कृष्ण वस्तुत: विश्वात्मा हैं फिर भी अपने भक्तों के स्नेहवश वे उन्हें निर्देश देने के लिए परमात्मा का कार्य करते हैं (*सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो मत्त: स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च*)।

परमात्मा के कार्य क्षीरोदकशायी विष्णु से सम्बन्धित होते हैं किन्तु कृष्ण ने अपनी भक्त देवकी पर कृपा की क्योंकि वे जानते थे कि कंस द्वारा सतायी जाने के कारण देवकी डरी हुई है। शुद्ध भक्त भौतिक अस्तित्व से सदैव डरता रहता है। कोई यह नहीं जानता कि आगे क्या होगा क्योंकि उसे किसी भी क्षण अपना शरीर बदलना पड़ सकता है (*तथा देहान्तर-प्राप्ति:*)। यह जानकर शुद्ध भक्त इस तरह कार्य करता है कि कहीं उसे दूसरा शरीर धारण करके संसार के कष्ट न भोगने पड़ें जिससे उसका जीवन दूषित हो जाए। यही *भयम्* अर्थात् डर है। *भयं द्वितीयाभिनिवेशत:स्यात्* (*भागवत* ११.२.३७)। यह भय संसार के कारण है। ठीक ठीक कहें तो हर एक को इस संसार से सतर्क और भयभीत रहना चाहिए। इस तरह संसार को न जानने से हर व्यक्ति प्रभावित होता है किन्तु भगवान् कृष्ण अपने भक्तों की रक्षा के लिए सदैव सतर्क रहते हैं। अपने भक्तों की रक्षा करने के लिए कृष्ण अपने भक्तों के प्रति इतने दयालु तथा वत्सल हैं कि वे उन्हें बुद्धि प्रदान करते हैं जिससे वे उन्हें एक क्षण भी भुलाये बिना भौतिक जगत में रहते रहें। भगवान् ने *भगवद्‌गीता* (.११) में कहा है—

तेषां एवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तम:।

नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता॥

"मैं उन पर कृपा के कारण उनके हृदयों में रहकर ज्ञान रूपी दीपक से अज्ञान से उत्पन्न अंधकार को दूर करता हूँ।"

योग शब्द का अर्थ है ''कड़ी''। कोई भी योग पद्धति भगवान् से अपने टूटे सम्बन्ध को पुन: जोड़ने का प्रयास है। योग के अनेक भेद हैं जिनमें से *भक्तियोग* सर्वश्रेष्ठ है। अन्य योग पद्धतियों में सिद्धि के पूर्व विविध प्रकार की विधियाँ अपनानी पड़ती हैं किन्तु भक्तियोग तो प्रत्यक्ष होता है। *भगवद्गीता* (६.४७) में भगवान् कहते हैं—

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना।

श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मत: ॥

''समस्त योगियों में से जो योगी श्रद्धापूर्वक मेरी पूजा करते हुए मुझमें निष्ठा रखता है, वह योग में मुझसे भलीभाँति जुड़ा रहता है और वही सर्वोच्च है।'' भक्तियोगी के लिए अगले जन्म में मनुष्य-शरीर मिलना निश्चित है जैसाकि कृष्ण ने कहा है (*शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते*)। *योगमाया* भगवान् की आध्यात्मिक शक्ति है। भगवान् अपने भक्तों पर स्नेह के कारण निरंतर उनके सम्पर्क में रहते हैं अन्यथा उनकी *माया* शक्ति इतनी प्रबल है कि वह ब्रह्मा जैसे बड़े बड़े देवताओं को भी मोहित कर देती है। अत: भगवान् की शक्ति योगमाया कहलाती है। चूँकि भगवान् विश्वात्मा हैं अतएव उन्होंने योगमाया को आदेश दिया कि वह देवकी की रक्षा करे।

गच्छ देवि व्रजं भद्रे गोपगोभिरलङ्कृतम् ।
रोहिणी वसुदेवस्य भार्यास्ते नन्दगोकुले ।
अन्याश्च कंससंविग्ना विवरेषु वसन्ति हि ॥ ७॥

शब्दार्थ

गच्छ—अब जाओ; देवि—हे समस्त जगत की पूज्या; व्रजम्—व्रज भूमि में; भद्रे—हे समस्त जीवों का कल्याण करनेवाली; गोप-गोभि:—ग्वालों तथा गायों के साथ; अलङ्कृतम्—अलंकृत, सज्जित; रोहिणी—रोहिणी; वसुदेवस्य—कृष्ण के पिता वसुदेव की; भार्या—पत्नियों में से एक; आस्ते—रह रही है; नन्द-गोकुले—गोकुल नाम से विख्यात महाराज नन्द के राज्य में जहाँ लाखों गायें पाली जाती हैं; अन्या: च—तथा अन्य पत्नियाँ; कंस-संविग्ना:—कंस के भय से; विवरेषु—एकान्त स्थानों में; वसन्ति—रह रही हैं; हि—निस्सन्देह।

भगवान् ने योगमाया को आदेश दिया: हे समस्त जगत द्वारा पूज्या तथा समस्त जीवों को सौभाग्य प्रदान करने वाली शक्ति, तुम व्रज जाओ जहाँ अनेक ग्वाले तथा उनकी पत्नियाँ रहती हैं। उस सुन्दर प्रदेश में जहाँ अनेक गौवें निवास करती हैं, वसुदेव की पत्नी रोहिणी नन्द महाराज के घर में रह रही हैं। वसुदेव की अन्य पत्नियाँ भी कंस के भय से वहीं अज्ञातवास कर रही हैं। कृपा करके वहाँ जाओ।

तात्पर्य : राजा नन्द का आवास नन्दगोकुल स्वयं अत्यन्त सुन्दर था और जब योगमाया को वहाँ जाकर भक्तों को अभय प्रदान करने के लिए आदेश दिया गया तो यह और भी सुन्दर तथा सुरक्षित हो गया। चूँकि योगमाया में ऐसा वातावरण उत्पन्न करने की क्षमता थी इसलिए उसे नन्दगोकुल के यहाँ जाने का आदेश दिया गया।

देवक्या जठरे गर्भं शेषाख्यं धाम मामकम् ।
तत्सन्निकृष्य रोहिण्या उदरे सन्निवेशय ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

देवक्याः—देवकी के; **जठरे**—गर्भ में; **गर्भम्**—भ्रूण; **शेष-आख्यम्**—कृष्ण के अंश, शेष नाम से विख्यात; **धाम**—अंश; **मामकम्**—मेरा; **तत्**—उसको; **सन्निकृष्य**—निकाल करके; **रोहिण्याः**—रोहिणी के; **उदरे**—गर्भ के भीतर; **सन्निवेशय**—बिना कठिनाई के स्थानान्तरित करो।

देवकी के गर्भ में संकर्षण या शेष नाम का मेरा अंश है। तुम उसे बिना किसी कठिनाई के रोहिणी के गर्भ में स्थानान्तरित कर दो।

तात्पर्य : कृष्ण के प्रथम अंश बलदेव हैं, जो शेष भी कहलाते हैं। भगवान् का शेष अवतार सारे ब्रह्मांड को धारण करता है और इस अवतार की शाश्वत माता हैं माता रोहिणी। भगवान् ने योगमाया से कहा, ''चूँकि मैं देवकी के गर्भ में जा रहा हूँ अत: शेष अवतार पहले ही वहाँ पहुँच चुके हैं और उन्होंने वहाँ मेरे रहने की पूरी व्यवस्था कर दी है। अब उन्हें अपनी माता रोहिणी के गर्भ में प्रवेश करना चाहिए।''

इस सम्बन्ध में कोई पूछ सकता है कि भगवान् जो सदैव दिव्य रूप में स्थित हैं, किस तरह देवकी के उस गर्भ में प्रवेश पा सके जिसमें पहले ही छह असुर (*षड्गर्भ*) वास कर चुके थे। तो क्या इसका यह अर्थ हुआ कि ये षड्गर्भासुर भगवान् के दिव्य शरीर के तुल्य थे? इसका उत्तर श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने दिया है, जो इस प्रकार है—

समग्र सृष्टि तथा इसके व्यष्टि अंश भी भगवान् की शक्ति के विस्तार हैं। इसलिए भौतिक जगत में भगवान् प्रवेश करके भी ऐसा नहीं करते। इसकी व्याख्या भगवान् ने स्वयं *भगवद्गीता* (९.४-५) में की है—

माया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना।

मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थित: ॥

न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम्।

भूत-भृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावन:॥

''यह समग्र ब्रह्माण्ड मेरे अप्रकट रूप में मुझसे व्याप्त है। सारे जीव मुझमें हैं किन्तु मैं उनमें नहीं हूँ। फिर भी हर सृजित वस्तु मुझमें टिकी नहीं है। मेरे योग-ऐश्वर्य को तो देखो! यद्यपि मैं सारे जीवों का पालक हूँ और सर्वत्र रहता हूँ किन्तु मेरी आत्मा सृष्टि का उद्गम है।'' *सर्वं खल्विदं ब्रह्म।* हर वस्तु ब्रह्म अर्थात् भगवान् का अंश है फिर भी हर वस्तु ईश्वर नहीं है और ईश्वर सर्वत्र हैं भी नहीं। हर वस्तु उन पर टिकी है और नहीं भी टिकी है। इसे केवल *अचिन्त्य भेदाभेद* दर्शन द्वारा समझाया जा सकता है। फिर भी ऐसे सत्य को शुद्ध भक्त के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं समझ सकता क्योंकि *भगवद्गीता* (१८.५५) में भगवान् कहते हैं—*भक्त्या मामभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्त्वत:*—भगवान् को उनके असली रूप में केवल भक्ति द्वारा समझा जा सकता है। यद्यपि सामान्य व्यक्ति भगवान् को नहीं समझ सकते किन्तु इस सिद्धान्त को शास्त्रों के कथन से समझा जा सकता है।

शुद्ध भक्त भक्तियोग की नौ विभिन्न विधियाँ सम्पन्न करके (*श्रवणं कीर्तनं विष्णो: स्मरणं पाद-सेवनम्। अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्*) दिव्य पद पर आसीन रहता है। इस तरह भक्ति को प्राप्त भक्त इस भौतिक जगत में रहते हुए भी उसमें नहीं रहता। इतने पर भी भक्त सदा डरता रहता है कि भौतिक जगत से सान्निध्य होने से उसे अनेक कल्मष प्रभावित कर सकते हैं। इसलिए वह सदैव भय के कारण चौकन्ना रहता है, जिससे उसका भौतिक सान्निध्य क्रमश: घटता जाता है।

प्रतीक रूप में माता देवकी का कंस से निरन्तर डरना उन्हें शुद्ध बना रहा था। शुद्ध भक्त को सदैव भौतिक सान्निध्य से डरते रहना चाहिए। इससे भौतिक सान्निध्य में रहनेवाले सारे असुरों का वध हो जाएगा जिस तरह कंस के द्वारा षड्गर्भासुरों का वध हुआ था। ऐसा कहा जाता है कि मरीचि मन से प्रकट होता है। दूसरे शब्दों में, मरीचि मन का अवतार है। मरीचि के छह पुत्र हैं—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद एवं मात्सर्य। भगवान् शुद्ध भक्ति से प्रकट होते हैं। इसकी पुष्टि वेदों द्वारा हुई है—*भक्तिरेवैनं दर्शयति।* केवल भक्ति से ही मनुष्य को भगवान् का सान्निध्य प्राप्त हो सकता है। भगवान् देवकी के गर्भ से प्रकट हुए इसलिए देवकी भक्ति की प्रतीक हैं और कंस भौतिक भय का प्रतीक है। जब भक्त भौतिक सान्निध्य से डरता रहता है, तो उसका असली पद—भक्ति—प्रकट होता है, जिससे उसमें

भौतिक भोग के प्रति अरुचि उत्पन्न हो जाती है। जब मरीचि के छहों पुत्रों का ऐसे भय द्वारा वध हो जाता है और मनुष्य भौतिक कल्मष से मुक्त हो जाता है, तो भक्ति के गर्भ से भगवान् उत्पन्न होते हैं। इस तरह देवकी का सातवाँ गर्भ भगवान् के प्राकटय को सूचित करता है। जब काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद तथा मात्सर्य—ये छह पुत्र मार डाले जाते हैं, तो भगवान् के प्राकट्य हेतु शेष अवतार उपयुक्त परिस्थिति उत्पन्न करता है। दूसरे शब्दों में, जब मनुष्य में उसकी सहज कृष्णचेतना जागृत होती है, तो भगवान् कृष्ण प्रकट होते हैं। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने यही व्याख्या की है।

अथाहमंशभागेन देवक्याः पुत्रतां शुभे ।
प्राप्स्यामि त्वं यशोदायां नन्दपत्न्यां भविष्यसि ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

अथ—तत्पश्चात्; **अहम्**—मैं; **अंश-भागेन**—अपने अंश द्वारा; **देवक्याः**—देवकी का; **पुत्रताम्**—पुत्र; **शुभे**—हे कल्याणी योगमाया; **प्राप्स्यामि**—बनूँगा; **त्वम्**—तुम; **यशोदायाम्**—माता यशोदा के गर्भ में; **नन्द-पत्न्याम्**—महाराज नन्द की पत्नी; **भविष्यसि**—तुम भी प्रकट होगी।

हे सर्व-कल्याणी योगमाया, तब मैं अपने छहों ऐश्वर्यों से युक्त होकर देवकी के पुत्र रूप में प्रकट होऊँगा और तुम महाराज नन्द की महारानी माता यशोदा की पुत्री के रूप में प्रकट होगी।

तात्पर्य : इस श्लोक में *अंश-भागेन* शब्द महत्त्वपूर्ण है। *भगवद्गीता* (.४२) में भगवान् कहते हैं—

अथवा बहुनैतेन किम् ज्ञातेन तवार्जुन।

विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्॥

"लेकिन हे अर्जुन! इस विस्तृत ज्ञान की क्या आवश्यकता है? मैं अपने एक अंश से ही इस सारे विश्व में व्याप्त हूँ और इसको धारण करता हूँ।" भगवान् की शक्ति के अंश रूप में ही हर वस्तु है। देवकी के गर्भ में भगवान् कृष्ण के आने के लिए ब्रह्मा ने भूमिका निभाई क्योंकि उन्होंने क्षीरसागर के तट पर भगवान् से प्रार्थना की कि वे प्रकट हों। भगवान् के प्रथम अंश बलदेव ने भी भूमिका निभाई। इसी तरह यशोदा की पुत्री रूप में उत्पन्न योगमाया ने भी भूमिका निभाई। इस तरह से *जीवतत्त्व, विष्णुतत्त्व* तथा *शक्तितत्व*—ये तीनों भगवान् से मिल गये और जब कृष्ण प्रकट होते हैं, तो अपने इन संयुक्त अंशों के समेत प्रकट होते हैं। जैसाकि पिछले श्लोकों में बतलाया जा चुका है योगमाया से कहा गया कि वह देवकी के गर्भ से संकर्षण, बलदेव, को निकाल करके रोहिणी के गर्भ में

स्थानान्तरित करे और यह उसके लिए भारी कार्य था। वह समझ ही नहीं पा रही थी कि संकर्षण को किस तरह खींचे। इसीलिए कृष्ण ने उसे *शुभे* कह कर सम्बोधित किया, "तुम्हारा कल्याण हो, तुम मुझसे शक्ति प्राप्त करो और तुम इस काम को कर सकोगी।" भगवत्कृपा होने पर कोई भी व्यक्ति कोई भी कार्य कर सकता है क्योंकि भगवान् हर वस्तु में अपने अंशों से (*अंशभागेन*) उपस्थित रहते हैं और उसे अपनी परम इच्छा से घटाते-बढ़ाते रहते हैं। बलराम कृष्ण से केवल पन्द्रह दिन बड़े थे। कृष्ण के आशीर्वाद से योगमाया माता यशोदा की पुत्री बनी किन्तु परमेश्वर की इच्छा से वह अपने पिता-माता का प्रेम न पा सकी। यद्यपि कृष्ण माता यशोदा के गर्भ से उत्पन्न नहीं हुए थे फिर भी उन्हें माता यशोदा तथा नन्द का प्रेम प्राप्त हुआ। कृष्ण के आशीर्वाद से योगमाया को माता यशोदा की पुत्री होने का गौरव प्राप्त हो सका। यशोदा भी कृष्ण के आशीर्वाद से प्रसिद्ध हो गईं। यशोदा का अर्थ है "यश देने वाली।"

अर्चिष्यन्ति मनुष्यास्त्वां सर्वकामवरेश्वरीम् ।
धूपोपहारबलिभिः सर्वकामवरप्रदाम् ॥ ॥

शब्दार्थ

अर्चिष्यन्ति—पूजा करेंगे; मनुष्याः—मानव समाज; त्वाम्—तुम को; सर्व-काम-वर-ईश्वरीम्—सारी भौतिक इच्छाओं को पूरा करने वाले देवताओं में सर्वश्रेष्ठ होने से; धूप—सुगन्धित द्रव्य से; उपहार—भेंट से; बलिभिः—यज्ञ द्वारा विविध प्रकार की पूजा से; सर्व-काम—सारी भौतिक इच्छाओं में से; वर—आशीर्वाद; प्रदाम्—प्रदान कर सकने वाली।

सामान्य लोग पशुओं की बलि करके विविध सामग्री से तुम्हारी भव्य पूजा करेंगे क्योंकि तुम हर एक की भौतिक इच्छाएँ पूरी करने में सर्वोपरि हो।

तात्पर्य : जैसाकि *भगवद्गीता* (७.२०) में कहा गया है—*कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः*—जिनके मन भौतिक इच्छाओं से विकृत हो चुके होते हैं, वे देवताओं की शरण में जाते हैं।" अतः *मनुष्य* शब्द सामान्य व्यक्ति के लिए आया है, जो जीवन के असली लक्ष्य को नहीं जानता। ऐसा व्यक्ति उच्च परिवार में जन्म लेकर भौतिक आनन्द उठाना चाहता है जहाँ शिक्षा, सौन्दर्य तथा प्रचुर ऐश्वर्य भोगा जा सकता है, जो इस भौतिक संसार में वांछनीय हैं। जीवन के असली लक्ष्य को जो भूल चुका है वैसा व्यक्ति *मायाशक्ति* अर्थात् देवी दुर्गा की पूजा विविध कार्यों के लिए विविध स्थानों तथा नामों से कर सकता है। जिस तरह कृष्ण की पूजा हेतु भारत में अनेक पवित्र स्थान हैं उसी तरह दुर्गा देवी या यशोदा की पुत्री के रूप में उत्पन्न मायादेवी की पूजा के भी अनेक पवित्र स्थल हैं।

कंस को छलने के बाद मायादेवी सामान्य लोगों से नियमित पूजा कराने के लिए अनेक स्थानों में, विशेष रूप से विन्ध्याचल में विकीर्ण हो गईं। मनुष्य को तो वास्तव में *आत्मतत्त्व* अर्थात् आत्मा का सत्य तथा परमात्मा को जानने में रुचि रखनी चाहिए। जो लोग आत्मतत्त्व में रुचि रखते हैं, वे भगवान् की पूजा करते हैं (*यस्मिन् विज्ञाते सर्वमेवं विज्ञातं भवति*)। फिर भी जैसाकि इस अध्याय के अगले श्लोक में बताया गया है, जो लोग आत्मतत्त्व को नहीं समझ सकते (*अपश्यताम् आत्मतत्त्वम्*) वे योगमाया के विभिन्न रूपों की पूजा करते हैं। इसीलिए *श्रीमद्भागवत* (२.१.२) में कहा गया है—

श्रोतव्यादीनि राजेन्द्र नृणां सन्ति सहस्रश:।

अपश्यताम् आत्मतत्त्वं गृहेषु गृहमेधिनाम्॥

''हे राजन्! जो लोग भौतिक संसार में फँसे हैं, वे परम सत्य के ज्ञान के प्रति अंधे होने से मानव समाज में अनेक प्रकार के विषयों को सुनते रहते हैं।'' जो लोग इस भौतिक संसार में बने रहना चाहते हैं और आध्यात्मिक मुक्ति में रुचि नहीं रखते उनके पास करने के लिए अनेक कार्य होते हैं किन्तु जो आध्यात्मिक मुक्ति में रुचि रखता है उसका एकमात्र कर्तव्य होता है कि वह पूरी तरह कृष्ण की शरण ग्रहण कर ले (*सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज*)। ऐसा व्यक्ति भौतिक भोग में रुचि नहीं रखता।

नामधेयानि कुर्वन्ति स्थानानि च नरा भुवि ।
दुर्गेति भद्रकालीति विजया वैष्णवीति च ॥ ११॥
कुमुदा चण्डिका कृष्णा माधवी कन्यकेति च ।
माया नारायणीशानी शारदेत्यम्बिकेति च ॥ १२॥

शब्दार्थ

नामधेयानि—विभिन्न नाम; कुर्वन्ति—देंगे; स्थानानि—विभिन्न स्थानों में; च—भी; नरा:—भौतिक भोग में रुचि रखने वाले लोग; भुवि—पृथ्वी पर; दुर्गा इति—दुर्गा नाम; भद्रकाली इति—भद्रकाली नाम; विजया—विजया नाम; वैष्णवी इति—वैष्णवी नाम; च—भी; कुमुदा—कुमुदा; चण्डिका—चण्डिका; कृष्णा—कृष्णा; माधवी—माधवी; कन्यका इति—कन्यका या कन्याकुमारी; च—भी; माया—माया; नारायणी—नारायणी; ईशानी—ईशानी; शारदा—शारदा; इति—इस प्रकार; अम्बिका—अम्बिका; इति—भी; च—तथा।

भगवान् कृष्ण ने मायादेवी को यह कहकर आशीर्वाद दिया: लोग तुम्हें पृथ्वी पर विभिन्न स्थानों में विभिन्न नामों से पुकारेंगे—यथा दुर्गा, भद्रकाली, विजया, वैष्णवी, कुमुदा, चण्डिका, कृष्णा, माधवी, कन्यका, माया, नारायणी, ईशानी, शारदा तथा अम्बिका।

तात्पर्य : चूँकि कृष्ण तथा उनकी शक्ति साथ साथ प्रकट हुए अत: लोगों ने सामान्यतया दो समूह

बना रखे हैं—शाक्त तथा वैष्णव—और कभी कभी दोनों में स्पर्धा चलती है। अनिवार्य रूप से, जो लोग भौतिक भोग में रुचि रखते हैं, वे शाक्त हैं और जो आध्यात्मिक मोक्ष तथा आध्यात्मिक धाम प्राप्त करने में रुचि रखते हैं, वे वैष्णव हैं। चूँकि लोग सामान्यतया भौतिक भोग में रुचि रखते हैं अतएव वे भगवान् की शक्ति मायादेवी की पूजा करते हैं। किन्तु वैष्णव जन *शुद्धशाक्त* अथवा शुद्ध भक्त होते हैं क्योंकि हरे कृष्ण महामंत्र भगवान् की शक्ति हरा की पूजा को सूचित करता है। प्रत्येक वैष्णव भगवान् की शक्ति से प्रार्थना करता है कि वह ऐसा अवसर प्रदान करे जिससे वह भगवान् की सेवा उनकी आध्यात्मिक शक्ति समेत कर सके। इसलिए सभी वैष्णव जन राधा-कृष्ण, सीता-राम, लक्ष्मी-नारायण तथा रुक्मिणी-द्वारिकाधीश जैसे अर्चाविग्रहों की पूजा करते हैं किन्तु दुर्गाशाक्त लोग भौतिकशक्ति की पूजा विविध नामों से करते हैं।

मायादेवी जिन-जिन नामों से विभिन्न स्थानों में जानी जाती हैं उसकी सूची वल्लभाचार्य ने दी है। वे वाराणसी में दुर्गा, अवन्ती में भद्रकाली, उड़ीसा में विजया और कुलहापुर में वैष्णवी या महालक्ष्मी कही जाती हैं। (महालक्ष्मी तथा अम्बिका की प्रतिनिधि मुम्बई में हैं) वे कामरूप प्रदेश में चण्डिका, उत्तर भारत में शारदा तथा कुमारी अन्तरीप में कन्यका कहलाती हैं। इस तरह वे विभिन्न स्थानों में विभिन्न नामों के अनुसार जानी जाती हैं।

श्रील विजयध्वज तीर्थपाद ने *पद-रत्नावली टीका* में विभिन्न नामों की व्याख्या की है। *माया* को दुर्गा इसलिए कहते हैं क्योंकि उन्हें कठिनाई से प्राप्त किया जाता है। उन्हें शुभ होने से भद्रा और गहरे नीले रंग की होने से काली कहा जाता है। अत्यन्त शक्तिशाली होने से विजया और विष्णु की विभिन्न शक्तियों में से एक होने के कारण वे वैष्णवी कहलाती हैं। भौतिक जगत का भोग करने तथा भोग की सुविधाएँ प्रदान करने के कारण कुमुदा, शत्रुओं (असुरों) के प्रति कठोर होने के कारण चण्डिका और समस्त भौतिक सुविधाएँ प्रदान करने के कारण वे कृष्णा कहलाती हैं। इस तरह भौतिक शक्ति के विविध नाम हैं और वे पृथ्वी पर विभिन्न स्थानों में स्थित हैं।

गर्भसङ्कर्षणात्तं वै प्राहुः सङ्कर्षणं भुवि ।
रामेति लोकरमणाद्बलभद्रं बलोच्छ्रयात् ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

गर्भ-सङ्कर्षणात्—देवकी के गर्भ से निकाल कर रोहिणी के गर्भ में पहुँचाये जाने के कारण; तम्—उसको (रोहिणीनन्दन को); वै—निस्सन्देह; प्राहुः—लोग कहेंगे; सङ्कर्षणम्—संकर्षण को; भुवि—संसार में; राम इति—राम कहलाएगा; लोक-रमणात्—लोगों को भक्त बनने में समर्थ बनाने से; बलभद्रम्—बलभद्र कहलाएगा; बल-उच्छ्रयात्—प्रचुर बल के कारण।.

देवकी के गर्भ से निकाल कर रोहिणी के गर्भ में भेजे जाने के कारण रोहिणी का पुत्र संकर्षण भी कहलाएगा। वह गोकुल के सारे निवासियों को प्रसन्न रखने की क्षमता होने के कारण राम कहलाएगा और अपनी प्रचुर शारीरिक शक्ति के कारण बलभद्र कहलाएगा।

तात्पर्य : बलराम को संकर्षण, बलराम या कभी-कभी राम नाम से विख्यात होने के ये कुछ कारण हैं। महामंत्र—हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे/ हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे—में जब राम को बलराम कहा जाता है, तो कुछ लोग आपत्ति करते हैं। भले ही भगवान् राम के भक्तों को इसमें आपत्ति हो किन्तु बलराम तथा भगवान् राम में कोई अन्तर नहीं है। *श्रीमद्भागवत* के इस स्थल में बलराम को राम भी कहा गया है (*रामेति*)। अत: भगवान् बलराम को भगवान् राम कहना बनावटी नहीं है। जयदेव गोस्वामी ने भी तीन रामों का—परशुराम, रघुपति राम तथा बलराम का—उल्लेख किया है। ये सभी राम हैं।

सन्दिष्टैवं भगवता तथेत्योमिति तद्वचः ।
प्रतिगृह्य परिक्रम्य गां गता तत्तथाकरोत् ॥ १४॥

शब्दार्थ

सन्दिष्टा—आदेश दिये जाने पर; एवम्—इस प्रकार; भगवता—भगवान् द्वारा; तथा इति—ऐसा ही हो; ॐ—ॐ मंत्र; इति—इस प्रकार; तत्-वचः—उनके शब्द; प्रतिगृह्य—मानकर; परिक्रम्य—उनकी परिक्रमा करके; गाम्—पृथ्वी पर; गता—तुरन्त चली गई; तत्—भगवान् द्वारा दिया गया आदेश; तथा—उसी तरह; अकरोत्—किया।.

भगवान् से इस तरह आदेश पाकर योगमाया ने उसे तुरन्त स्वीकार कर लिया। उसने वैदिक मंत्र ॐ के साथ पुष्टि की कि उससे जो कहा गया है उसे वह करेगी। इसके बाद उसने पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की परिक्रमा की और वह पृथ्वी पर स्थित नन्दगोकुल नामक स्थान के लिए चल पड़ी। वहाँ उसने वैसा ही किया जैसा कि उसे आदेश मिला था।

तात्पर्य : भगवान् का आदेश पाकर योगमाया ने अपनी दोहरी सहमति ''हाँ मैं आपका कहना करूँगी'' तथा ॐ कहकर व्यक्त की। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर की टीका है कि ॐ वैदिक पुष्टि का सूचक है। इस तरह योगमाया ने भगवान् के आदेश को वैदिक आदेश के रूप में ग्रहण किया। यह तथ्य है कि भगवान् जो भी कहते हैं वह वैदिक आदेश होता है, जिसकी उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए।

वैदिक आदेशों में न तो कोई त्रुटि है न कोई भ्रान्ति और न धोखा-धड़ी। इसलिए वैदिक प्रमाण को समझे बिना शास्त्र का उद्धरण देना निरर्थक है। वैदिक आदेशों की उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए प्रत्युत वेदों में दिये गये आदेशों को दृढ़ता से पूरा करना चाहिए। *भगवद्गीता* (१६.२४) में कहा गया हैं—

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।

ज्ञात्वा शास्त्र-विधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि॥

"मनुष्य को चाहिए कि शास्त्रों के नियमों के द्वारा कर्तव्य तथा अकर्तव्य को समझे। ऐसे विधि-विधानों को जानते हुए मनुष्य को चाहिए उनके अनुसार कार्य करे जिससे वह क्रमशः ऊपर उठ सके।"

गर्भे प्रणीते देवक्या रोहिणीं योगनिद्रया ।
अहो विस्रंसितो गर्भ इति पौरा विचुक्रुशुः ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

गर्भे—जब गर्भ; **प्रणीते**—ले जाया गया; **देवक्याः**—देवकी का; **रोहिणीम्**—रोहिणी के गर्भ में; **योग-निद्रया**—योगमाया द्वारा; **अहो**—हाय; **विस्रंसितः**—नष्ट हो गया; **गर्भः**—गर्भ; **इति**—इस प्रकार; **पौराः**—घर के रहने वाले; **विचुक्रुशुः**—विलाप करने लगे।

जब योगमाया द्वारा देवकी का बालक खींच करके रोहिणी के गर्भ में स्थानान्तरित कर दिया गया तो देवकी को लगा कि उसे गर्भपात हो गया। फलतः महल के सारे निवासी जोर-जोर से यह कहकर विलाप करने लगे, "हाय! देवकी का बच्चा जाता रहा।"

तात्पर्य : महल के सारे वासियों में कंस भी सम्मिलित था। जब सारे लोग विलाप कर रहे थे तो दयावश कंस भी यह सोचकर उनके साथ विलाप करने लगा कि हो न हो दवाओं के कारण या अन्य किसी बाहरी कारण से देवकी का यह गर्भपात हो गया। किन्तु *हरिवंश* में योगमाया द्वारा देवकी के गर्भ से बालक को खींच करके रोहिणी के सात मास के गर्भ में स्थापित करने की पूरी कथा वर्णित है। अर्धरात्रि में गहरी नींद में सोते सोते रोहिणी को लगा मानो सपने में उसे गर्भपात हो गया है। कुछ समय बाद जब वह जगी तो उसने देखा कि सचमुच ऐसा ही हो चुका है अतएव वह बहुत चिन्तित थी। किन्तु योगमाया ने उसे बतलाया, "हे शुभे! तुम्हारे बालक को पुनर्स्थापित किया जा रहा है। मैं देवकी के गर्भ से बालक खींच रही हूँ इसलिए तुम्हारे बालक का नाम संकर्षण होगा।"

योगनिद्रा शब्द महत्त्वपूर्ण है। जब आत्म-साक्षात्कार द्वारा मनुष्य अध्यात्म से पुनः जुड़ता है, तो

मनुष्य अपने जीवन को स्वप्नवत् मानता है। भगवद्गीता (२.६९) में कहा गया है—

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।

यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः॥

"जो सभी जीवों के लिए रात है, वह संयमी पुरुषों के लिए जगने का समय है और जो सारे जीवों के जगने का समय है, वही मुनियों के लिए रात होती है।" आत्म-साक्षात्कार की अवस्था *योगनिद्रा* कहलाती है। इस अवस्था में सारे भौतिक कार्यकलाप स्वप्नवत् प्रतीत होते हैं। इस तरह *योगनिद्रा* की व्याख्या योगमाया के रूप में की जा सकती है।

भगवानपि विश्वात्मा भक्तानामभयङ्करः ।
आविवेशांशभागेन मन आनकदुन्दुभेः ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

भगवान्—भगवान्; अपि—भी; विश्वात्मा—सारे जीवों के परमात्मा; भक्तानाम्—अपने भक्तों के; अभयम्-करः—भय के कारण को मारने वाले; आविवेश—प्रविष्ट हो गये; अंश-भागेन—अपने सारे ऐश्वर्यों के साथ (षडैश्वर्यपूर्ण); मनः—मन में; आनकदुन्दुभेः—वसुदेव के मन में।

इस तरह समस्त जीवों के परमात्मा तथा अपने भक्तों के भय को दूर करने वाले पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् वसुदेव के मन में अपने पूर्ण ऐश्वर्य के समेत प्रविष्ट हो गये।

तात्पर्य : *विश्वात्मा* शब्द द्योतक है उसका जो हर एक हृदय में स्थित हो (*ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति*)। विश्वात्मा का दूसरा अर्थ है, "हर एक की एकमात्र प्रिय वस्तु"। इस वस्तु को भूल जाने से ही लोग इस भौतिक जगत में कष्ट भोग रहे हैं किन्तु यदि कोई कृष्ण प्रेम करने की अपनी पुरानी चेतना को जागृत कर लेता है और विश्वात्मा से अपने को जोड़ लेता है, तो वह पूर्ण बन जाता है। तृतीय स्कंध (३.२.१५) में भगवान् का वर्णन इस प्रकार हुआ है—*परावरेशो महदंशयुक्तो ह्यजोऽपि जातो भगवान्।* अजन्मा होकर भी सबके प्रभु भगवान् भक्त के मन में प्रविष्ट होकर शिशु की तरह प्रकट हुए लगते हैं। प्रभु पहले से ही मन के भीतर रहते हैं अतएव भक्त के शरीर से उनका उत्पन्न होना आश्चर्यजनक नहीं लगता। *आविवेश* शब्द बताता है कि वे वसुदेव के मन के भीतर प्रकट हुए। वीर्यस्खलन की आवश्यकता ही नहीं पड़ी। श्रीपाद् श्रीधरस्वामी तथा श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर का यही मत है। *वैष्णवतोषणी* में श्रील सनातन गोस्वामी कहते हैं कि वसुदेव के मन के भीतर चेतना जगी। श्रील वीरराघव आचार्य भी कहते हैं कि वसुदेव देवताओं में से एक थे और चेतना जागृत होने

के रूप में भगवान् उनके मन के भीतर प्रकट हुए।

स बिभ्रत्पौरुषं धाम भ्राजमानो यथा रविः ।
दुरासदोऽतिदुर्धर्षो भूतानां सम्बभूव ह ॥ १७॥

शब्दार्थ

सः—वह (वसुदेव); **बिभ्रत्**—धारण किये हुए; **पौरुषम्**—परम पुरुष सम्बन्धी; **धाम**—आध्यात्मिक तेज; **भ्राजमानः**—प्रकाशमान; **यथा**—जिस तरह; **रविः**—सूर्य-प्रकाश; **दुरासदः**—देखे जाने में भी अत्यन्त कठिन; **अति-दुर्धर्षः**—अत्यन्त कठिनाई से पास पहुँचने योग्य; **भूतानाम्**—समस्त जीवों में; **सम्बभूव**—बन गया; **ह**—निश्चित रुप से।

वसुदेव अपने हृदय के भीतर भगवान् के स्वरूप को धारण किये हुए भगवान् के दिव्य प्रकाशमान तेज को वहन कर रहे थे जिसके कारण वे सूर्य के समान चमकीले बन गये। अतः उनकी ओर लौकिक दृष्टि द्वारा देखना या उन तक पहुँचना कठिन था, यहाँ तक कि वे कंस जैसे पराक्रमी व्यक्ति के लिए ही नहीं, अपितु सारे जीवों के लिए भी दुर्धर्ष थे।

तात्पर्य : *धाम* शब्द महत्त्वपूर्ण है। *धाम* सूचक है भगवान् के रहने के स्थान का। *श्रीमद्भागवत* के प्रारम्भ में ही (१.१.१) कहा गया है—*धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि।* भगवान् के धाम में भौतिक शक्ति का कोई प्रभाव नहीं रहता (*धाम्नास्वेन सदा निरस्तकुहकम्*)। जहाँ कहीं भी भगवान् अपने नाम रूप, गुण या परिकर के साथ रहते हैं, वही तुरन्त *धाम* बन जाता है—उदाहरणार्थ, वृन्दावन धाम, द्वारका धाम, मथुरा धाम क्योंकि इन स्थानों में भगवान् का नाम, यश, गुण तथा परिकर सदैव उपस्थित रहते हैं। इसी तरह यदि भगवान् किसी को कुछ करने के लिए शक्ति प्रदान करते हैं, तो उसका हृदय *धाम* बन जाता है और वह इतना शक्तिशाली बन जाता है कि न केवल उसके शत्रु अपितु सारे लोग उसके कार्यकलापों को देखकर चकित रह जाते हैं। दुर्धर्ष होने के कारण उसके शत्रु चकित हुए बिना नहीं रहते जैसाकि *दुरासदोऽतिदुर्धर्षः* शब्दों के द्वारा बतलाया गया है।

पौरुषं धाम की व्याख्या अनेक आचार्यों ने की है। श्रीवीरराघव आचार्य कहते हैं कि ये शब्द भगवान् के तेज के सूचक हैं। विजयध्वज का कहना है कि ये शब्द *विष्णुतेज* के सूचक हैं और शुकदेव इसे *भगवत्स्वरूप* कहते हैं। *वैष्णवतोषणी* के अनुसार ये शब्द परमेश्वर के तेज के प्रभाव को सूचित करते हैं तथा विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर कहते हैं कि ये भगवान् के प्राकट्य के सूचक हैं।

ततो जगन्मङ्गलमच्युतांशं

समाहितं शूरसुतेन देवी ।
दधार सर्वात्मकमात्मभूतं
काष्ठा यथानन्दकरं मनस्तः ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; जगत्-मङ्गलम्—ब्रह्माण्ड भर के जीवों के लिए मंगल; अच्युत-अंशम्—भगवान् जो अपने अंशों में उपस्थित छह ऐश्वर्यों से कभी वियुक्त नहीं होते; समाहितम्—पूरी तरह स्थानान्तरित; शूर-सुतेन—शूरसेन के पुत्र वसुदेव द्वारा; देवी—देवकी देवी ने; दधार—वहन किया; सर्व-आत्मकम्—सबों के परमात्मा; आत्म-भूतम्—समस्त कारणों के कारण; काष्ठा—पूर्व दिशा; यथा—जिस तरह; आनन्द-करम्—आनन्दमय (चन्द्रमा); मनस्तः—मन के भीतर स्थित होने से।

तत्पश्चात् परम तेजस्वी, सम्पूर्ण जगत के लिए सर्वमंगलमय समस्त ऐश्वर्यों से युक्त भगवान् अपने स्वांशों समेत वसुदेव के मन से देवकी के मन में स्थानान्तरित कर दिये गये। इस तरह वसुदेव से दीक्षा प्राप्त करने से देवकी सबों की आदि चेतना, समस्त कारणों के कारण भगवान् कृष्ण को अपने अन्तःकरण में धारण करने के कारण सुन्दर बन गईं जिस तरह उदित चन्द्रमा को पाकर पूर्व दिशा सुन्दर बन जाती है।

तात्पर्य : *मनस्तः* शब्द बताता है कि भगवान् को वसुदेव के मन से देवकी के हृदय में स्थानान्तरित किया गया। हमें ध्यान देना होगा कि भगवान् को देवकी के हृदय में किसी सामान्य विधि के द्वारा नहीं अपितु *दीक्षा* द्वारा स्थानान्तरित किया गया। इस तरह यहाँ पर दीक्षा की महत्ता का उल्लेख हुआ है। जब तक अपने हृदय में भगवान् को वहन करने वाले उपयुक्त व्यक्ति द्वारा मनुष्य दीक्षित नहीं होता तब तक उसे अपने हृदय के भीतर भगवान् को वहन करने की शक्ति प्राप्त नहीं हो सकती।

अच्युतांशम् शब्द का प्रयोग इसलिए किया गया है क्योंकि भगवान् *षडैश्वर्यपूर्ण*—धन, बल, यश, ज्ञान, सौन्दर्य तथा त्याग से पूर्ण हैं, वे कभी भी अपने निजी ऐश्वर्यों से विलग नहीं होते। *ब्रह्म-संहिता* (५.३९) में ठीक ही कहा गया है—*रामादिमूर्तिषु कलानियमेन तिष्ठन्*—भगवान् अपने सारे अंशों-यथा राम, नृसिंह, वराह आदि के सहित सदैव स्थित होते हैं। इसीलिए यहाँ पर *अच्युतम्* शब्द का विशेष रूप से प्रयोग हुआ है। इससे सूचित होता है कि भगवान् सदैव अपने अंशों तथा ऐश्वर्यों के साथ उपस्थित रहते हैं। तब योगीजन जिस रूप में उनका कृत्रिम ढंग से चिन्तन करते हैं उसकी आवश्यकता नहीं रह जाती। *ध्यानावस्थित-तद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनः* (*भागवत* १२.१३.१)। योगीजन अपने मन के भीतर परम पुरुष का ध्यान करते हैं। किन्तु भक्त के लिए भगवान् उपस्थित रहते हैं—उनकी उपस्थिति को प्रामाणिक गुरु द्वारा दीक्षा के माध्यम से जागृत किये जाने की ही आवश्यकता पड़ती है। भगवान् को देवकी के गर्भ के भीतर रहने की आवश्यकता नहीं थी क्योंकि देवकी के हृदय

में उनकी उपस्थिति ही उनको धारण करने के लिए पर्याप्त थी। यहाँ पर यह सोचने के लिए मना किया गया है कि वसुदेव द्वारा देवकी के गर्भ से कृष्ण उत्पन्न किये गये और वे उन्हें अपने गर्भ में धारण किये रहीं।

जब वसुदेव भगवान् को अपने हृदय में धारण किये हुए थे तो वे उस चमकते सूर्य जैसे लग रह थे जिसकी चमचमाती किरणें सामान्य व्यक्ति के लिए सदा असह्य तथा झुलसाने वाली होती हैं। वसुदेव के शुद्ध हृदय में भगवान् का जो रूप स्थित था वह कृष्ण के आदि रूप से भिन्न नहीं है। कृष्ण के रूप का कहीं भी और विशेष रूप से हृदय में प्राकट्य *धाम* कहलाता है। *धाम* न केवल कृष्ण के रूप का अपितु उनके नाम, रूप, गुण तथा परिकर का भी द्योतक है। सब कुछ एकसाथ प्रकट होता है।

इस तरह अपनी पूर्ण शक्तियों समेत भगवान् का नित्य रूप वसुदेव के मन से देवकी के मन में उसी तरह स्थानान्तरित किया गया जिस तरह डूबते सूर्य की किरणें पूर्व में उदय होने वाले चन्द्रमा में स्थानान्तरित हो जाती हैं।

भगवान् कृष्ण वसुदेव के शरीर से देवकी के शरीर में प्रविष्ट हुए। वे सामान्य जीव की परिस्थितियों से परे थे। कृष्ण कहीं भी रहें वे नारायण जैसे अपने अंशों तथा भगवान् नृसिंह, वराह जैसे अवतारों के साथ रहते हैं। इस तरह वे जगत की सामान्य परिस्थितियों से परे होते हैं। इस तरह देवकी अद्वितीय एवं सृष्टि के कारणस्वरूप भगवान् का धाम बन गईं। किन्तु कंस के घर में होने से वे दबी हुई अग्नि या अप्रयुक्त विद्या की तरह दिख रही थीं। जब आग को किसी पात्र की दीवारों से ढक दिया जाता है या किसी लोटे में रख दिया जाता है, तो अग्नि की प्रकाशमान किरणें नहीं दिखतीं। इसी तरह जिस ज्ञान से जनता को लाभ नहीं पहुँचता वह श्लाघनीय नहीं। चूँकि देवकी को कंस के बन्दीगृह की चहारदीवारियों के भीतर रखा गया था अतएव उनके उस दिव्य सौन्दर्य को कोई नहीं देख सकता था, जो उनमें भगवान् को धारण करने से उत्पन्न था।

इस श्लोक की टीका करते हुए श्री वीरराघव आचार्य लिखते हैं—*वसुदेवदेवकी-जठरयोर्हृदयोर्भगवतः सम्बन्धः।* वसुदेव के हृदय से देवकी के गर्भ में भगवान् का प्रवेश दो हृदयों का मिलन था।

सा देवकी सर्वजगन्निवास-
निवासभूता नितरां न रेजे ।
भोजेन्द्रगेहेऽग्निशिखेव रुद्धा
सरस्वती ज्ञानखले यथा सती ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

सा देवकी—वह देवकी देवी; सर्व-जगत्-निवास—सारे ब्रह्माण्ड को धारण करने वाले भगवान् का (मत्स्थानि सर्वभूतानि); निवास-भूता—देवकी की कुक्षि अब निवास बनी हुई है; नितराम्—विस्तार से; न—नहीं; रेजे—प्रकाशमान हो उठा; भोजेन्द्र-गेहे—कंस के घर की चहारदीवारी के भीतर; अग्नि-शिखा इव—आग की लपटों के समान; रुद्धा—ढकी हुई; सरस्वती—विद्या; ज्ञान-खले—ज्ञान-खल नामक व्यक्ति में, ऐसे व्यक्ति में जो ज्ञान होने पर भी उसको वितरित नहीं करता; यथा—जिस तरह; सती—होकर भी।.

तब देवकी ने समस्त कारणों के कारण, समग्र ब्रह्माण्ड के आधार भगवान् को अपने भीतर रखा किन्तु कंस के घर के भीतर बन्दी होने से वे किसी पात्र की दीवालों से ढकी हुई अग्नि की लपटों की तरह या उस व्यक्ति की तरह थीं जो अपने ज्ञान को जनसमुदाय के लाभ हेतु वितरित नहीं करता।

तात्पर्य : इस श्लोक में *ज्ञान-खल* शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। ज्ञान तो वितरण के लिए होता है। यद्यपि पहले से ही पर्याप्त ज्ञान है किन्तु जब भी विज्ञानियों या दार्शनिकों को कोई नया ज्ञान सूझता है, तो वे उसे विश्वभर में वितरित कर देना चाहते हैं अन्यथा वह ज्ञान क्रमशः सूख जाता है और उससे कोई भी व्यक्ति लाभ नहीं उठा पाता। भारत के पास *भगवद्गीता* का ज्ञान है किन्तु दुर्भाग्यवश किसी न किसी कारणवश इस दिव्य भगवद्ज्ञान का विश्वभर में वितरण नहीं हो पाया यद्यपि यह सारे मानव समाज के निमित्त है। इसीलिए कृष्ण स्वयं श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में प्रकट हुए और उन्होंने सारे भारतीयों को आदेश दिया कि वे *भगवद्गीता* के ज्ञान का सारे विश्व में वितरण करने का भार अपने हाथ में लें।

यारे देख, तारे कह 'कृष्ण'-उपदेश।
आमार आज्ञाय गुरु हञा तार एइ देश॥

"*भगवद्गीता* तथा *श्रीमद्भागवत* में दिये गये भगवान् श्रीकृष्ण के आदेशों का पालन करने के लिए हर एक को उपदेश दो। इस तरह आध्यात्मिक गुरु बनकर इस देश के हर व्यक्ति को मुक्त करने का प्रयास करो।" (*चैतन्यचरितामृत मध्य* ७.१२८) यद्यपि भारत के पास *भगवद्गीता* का दिव्य ज्ञान है किन्तु भारतीयों ने इसे वितरित करने का अपना कर्तव्य नहीं निभाया। इसीलिए अब इस ज्ञान को

यथारूप में बिना किसी विकार के वितरित करने के लिए कृष्णभावनामृत आन्दोलन की स्थापना की गई है। यद्यपि इससे पूर्व भी *भगवद्गीता* के ज्ञान का वितरण करने के प्रयास हुए हैं किन्तु इन प्रयासों में विकृति तथा संसारी ज्ञान से समझौता किया जाता रहा है। लेकिन अब कृष्णभावनामृत आन्दोलन *भगवद्गीता* यथारूप का वितरण कर रहा है और लोग इस ज्ञान का लाभ उठाकर कृष्णभावनामृत की ओर जग रहे हैं और कृष्ण के भक्त बन रहे हैं। इस तरह ज्ञान के समुचित वितरण के शुभारम्भ से न केवल सारा विश्व लाभान्वित होगा अपितु मानव समाज में भारत की कीर्ति बढ़ेगी। कंस ने कृष्णभावनामृत को अपने घर के भीतर (*भोजेन्द्रगृहे*) बन्दी बनाने का प्रयास किया जिसका परिणाम यह हुआ कि वह अपने सारे ऐश्वर्य समेत नष्ट हो गया। इसी तरह दुराग्रही भारतीय नेताओं द्वारा *भगवद्गीता* के असली ज्ञान का गला घोंटा जा रहा था और परिणामस्वरूप भारतीय संस्कृति तथा भगवद्ज्ञान नष्ट हो रहा था। किन्तु अब कृष्णभावनामृत के प्रसार के साथ ही *भगवद्गीता* का सही उपयोग होने लगा है।

तां वीक्ष्य कंसः प्रभयाजितान्तरां
विरोचयन्तीं भवनं शुचिस्मिताम् ।
आहैष मे प्राणहरो हरिर्गुहां
ध्रुवं श्रितो यन्न पुरेयमीदृशी ॥ २० ॥

शब्दार्थ

ताम्—उस देवकी को; वीक्ष्य—देखकर; कंसः—उसके भाई कंस ने; प्रभया—उसके सौन्दर्य और प्रभाव के बढ़ने से; अजित-अन्तराम्—अजित या भगवान् विष्णु को अपने भीतर रखने के कारण; विरोचयन्तीम्—प्रकाशित करती हुई; भवनम्—घर के समूचे वातावरण को; शुचि-स्मिताम्—हँसती हुई तथा तेजस्वी; आह—अपने आप कहा; एषः—यह (परम पुरुष); मे—मेरा; प्राण-हरः—मेरी जान लेनेवाले; हरिः—भगवान् विष्णु ने; गुहाम्—देवकी के गर्भ में; ध्रुवम्—निश्चित रूप से; श्रितः—शरण ली है; यत्—क्योंकि; न—नहीं थी; पुरा—पहले; इयम्—देवकी; ईदृशी—इस तरह।

गर्भ में भगवान् के होने से देवकी जिस स्थान में बन्दी थीं वहाँ के सारे वातावरण को वे आलोकित करने लगीं। उसे प्रसन्न, शुद्ध तथा हँसमुख देखकर कंस ने सोचा, ''इसके भीतर स्थित भगवान् विष्णु अब मेरा वध करेंगे। इसके पूर्व देवकी कभी भी इतनी तेजवान तथा प्रसन्न नहीं दिखी।''

तात्पर्य : भगवान् ने *भगवद्गीता* (४.७) में कहा है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

"हे भरतवंशी! जब जब धर्म की हानि होती है और अधर्म की प्रधानता हो जाती है तब तब मैं अवतार लेता हूँ!" इस युग में सम्प्रति मानव कर्तव्यों के पालन में असाधारण गलतियाँ हो रही हैं। मानवजीवन ईश-साक्षात्कार के निमित्त है किन्तु दुर्भाग्यवश भौतिकतावादी सभ्यता शरीर की इन्द्रियों पर जोर देती है शरीर के भीतर की प्राणशक्ति को समझने पर नहीं। जैसाकि *भगवद्गीता* में स्पष्ट कहा गया है (*देहिनोऽस्मिन यथा* देहे), शरीर के भीतर शरीर का स्वामी, प्राणशक्ति है, जो अधिक महत्त्वपूर्ण है। किन्तु मानव समाज इतना पतित हो चुका है कि शरीर के भीतर की प्राणशक्ति को न समझकर मनुष्य बाहरी वस्तुओं में व्यस्त रहता है। मानव कर्तव्यों में यह एक त्रुटि है। इसीलिए कृष्ण ने कृष्णभावनामृत आन्दोलन के गर्भ में जन्म या शरण ले रखी है। इसलिए कंस जैसे लोग अत्यन्त भयभीत हैं और इस आन्दोलन को विशेष रूप से पश्चिमी देशों में रोकने में लगे हुए हैं। एक राजनीतिज्ञ ने तो यहाँ तक कहा है कि कृष्णभावनामृत आन्दोलन महामारी की तरह फैल रहा है और यदि इसे तुरन्त नहीं रोका गया तो यह दस वर्षों में सरकारी शक्ति को हथिया सकता है। निस्सन्देह कृष्णभावनामृत आन्दोलन में ऐसी शक्ति है। जैसाकि अधिकृत लोगों ने कहा है (*चैतन्यचरितामृत, आदि १७.२२*) -*कलिकाले नामरूपे कृष्ण-अवतार*—इस युग में कृष्ण हरे कृष्ण महामंत्र में प्रकट हुए हैं। कृष्णभावनामृत आन्दोलन जंगल की आग की तरह सारे विश्व में फैल रहा है और इसी तरह फैलता रहेगा। कंस जैसे व्यक्ति इस आन्दोलन की प्रगति से तथा तरुण पीढ़ी द्वारा इसकी स्वीकृति से भयभीत हैं। किन्तु जिस तरह कृष्ण को कंस नहीं मार पाया उसी तरह यह आन्दोलन कंस सरीखे व्यक्तियों के रोके नहीं रुकेगा। यह आन्दोलन अधिकाधिक बढ़ता रहेगा, यदि इस आन्दोलन के नेता विधि-विधानों का पालन करते हुए और हरे कृष्ण महामंत्र का नियमित कीर्तन करते हुए कृष्णभावनाभावित बने रहें।

किमद्य तस्मिन्करणीयमाशु मे
यदर्थतन्त्रो न विहन्ति विक्रमम् ।
स्त्रियाः स्वसुर्गुरुमत्या वधोऽयं
यशः श्रियं हन्त्यनुकालमायुः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

किम्—क्या; अद्य—अब तुरन्त; तस्मिन्—इस स्थिति में; करणीयम्—करने योग्य; आशु—बिना बिलम्ब किये; मे—मेरा कर्तव्य; यत्—क्योंकि; अर्थ-तन्त्रः—भगवान्, जो साधुओं की रक्षा करने तथा असाधुओं का वध करने के लिए कृतसंकल्प हैं; न—नहीं; विहन्ति—त्यागते हैं; विक्रमम्—अपने पराक्रम को; स्त्रियाः—स्त्री का; स्वसुः—बहन का; गुरु-मत्याः—विशेषरूप से जब वह गर्भवती है; वधः अयम्—वध; यशः—यश; श्रियम्—ऐश्वर्य; हन्ति—नष्ट हो जाएगा; अनुकालम्—हमेशा के लिए; आयुः—तथा उम्र।

कंस ने सोचाः अब मुझे क्या करना चाहिए? अपना लक्ष्य जानने वाले भगवान् (*परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्*) अपना पराक्रम त्यागने वाले नहीं हैं। देवकी स्त्री है, वह मेरी बहन है और गर्भवती भी है। यदि मैं उसे मार डालूँ तो मेरे यश, ऐश्वर्य तथा आयु निश्चित रूप से नष्ट हो जाएँगे।

तात्पर्य : वैदिक नियमों के अनुसार किसी स्त्री, ब्राह्मण, वृद्ध, शिशु तथा गाय का कभी भी वध नहीं किया जाना चाहिए। ऐसा लगता है कि भगवान् का परम शत्रु होते हुए भी कंस वैदिक संस्कृति से अवगत था और इस तथ्य के प्रति जागरूक था कि आत्मा एक शरीर से दूसरे में देहान्तर करता है और मनुष्य इस जीवन के कर्मों के अनुसार अगले जीवन में कष्ट भोगता है। इसलिए वह देवकी का वध करने से डर रहा था क्योंकि वह स्त्री थी, फिर उसकी बहन थी और तिस पर वह गर्भवती थी। क्षत्रिय वीरतापूर्ण कार्य करके विख्यात होता है। किन्तु ऐसी स्त्री को मारने में कौन सी बहादुरी होगी जो उसकी शरण में थी? इसलिए वह देवकी का वध करने का जघन्य कार्य नहीं करना चाहता था। कंस का शत्रु तो देवकी के गर्भ के भीतर था किन्तु शत्रु का ऐसी अज्ञान की स्थिति में वध करना बहादुरी नहीं होगी। क्षत्रिय नियमों के अनुसार शत्रु से आमने-सामने तथा उचित हथियारों के साथ युद्ध करना चाहिए। और यदि शत्रु मारा जाता है, तो जीतने वाला विख्यात बनता है। कंस ने इन बातों पर बड़े विवेक से तर्क-वितर्क किया और यह पूरी तरह जानते हुए भी कि देवकी के गर्भ में उसका शत्रु प्रकट हो चुका है, वह उसका वध करने से अपने को रोकता रहा।

स एष जीवन्खलु सम्परेतो
वर्तेत योऽत्यन्तनृशंसितेन ।
देहे मृते तं मनुजाः शपन्ति
गन्ता तमोऽन्धं तनुमानिनो ध्रुवम् ॥ २२॥

शब्दार्थ

सः—वह; एषः—वह ईर्ष्यालु व्यक्ति; जीवन्—जीवित रहते हुए; खलु—भी; सम्परेतः—मृत है; वर्तेत—जीवित रह रहा है; यः—जो; अत्यन्त—अत्यधिक; नृशंसितेन—क्रूर कर्मों द्वारा; देहे—शरीर होने पर; मृते—समाप्त हो जाता है; तम्—उसको;

मनुजाः—सारे मनुष्य; शपन्ति—निन्दा करते हैं; गन्ता—जाएगा; तमः अन्धम्—नारकीय जीवन को; तनु-मानिनः—देहात्मबोध वाले व्यक्ति के; ध्रुवम्—कोई सन्देह नहीं।

अत्यधिक क्रूर व्यक्ति को जीवित रहते हुए भी मृत माना जाता है क्योंकि उसके जीवित रहते हुए या उसकी मृत्यु के बाद भी हर कोई उसकी निन्दा करता है। देहात्मबुद्धिवाला व्यक्ति मृत्यु के बाद भी अन्धतम नरक को भेजा जाता है, इसमें कोई सन्देह नहीं।

तात्पर्य : कंस ने विचार किया कि यदि वह अपनी बहन को मारता है, तो जब तक वह जीवित रहेगा तब तक लोग उसकी निन्दा करेंगे और मृत्यु के बाद उसे अपनी इस क्रूरता के लिए अन्धतम नरक में जाना पड़ेगा। कहा गया है कि कसाई जैसे क्रूर व्यक्ति को सलाह दी जाती है कि वह न तो जिये और न ही मरे। जीवित अवस्था में ऐसा क्रूर व्यक्ति अपने अगले जीवन के लिए नारकीय स्थिति उत्पन्न करता है अतएव उसे जीवित नहीं रहना चाहिए। किन्तु उसे मरने की भी सलाह नहीं दी जाती क्योंकि मृत्यु के बाद उसे अन्धतम नरक में जाना पड़ेगा। इस तरह वह दोनों तरह से निन्दनीय है। इसीलिए आत्मा के देहान्तरण का ज्ञान होने के कारण कंस ने जानबूझ कर देवकी का वध करने से अपने को रोका।

इस श्लोक में *गन्ता तमोऽन्धं तनुमानिनो ध्रुवम्* शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं और उनकी विस्तृत जानकारी आवश्यक है। श्रील जीव गोस्वामी ने *वैष्णव तोषणी टीका* में कहा है—*तत्र तनुमानिनः पापिन इति देहात्माबुद्धध्यैव पापाभिनिवेशो भवति।* जो व्यक्ति यह सोचते हुए कि "मैं यह शरीर हूँ" देहात्मबोध में जीता है, वह अपने को इस विचार मात्र के आधार पर पापमय कृत्यों में डालता है। इस विचार के अन्तर्गत जीने वाला कोई भी व्यक्ति नरक का भागी समझा जाना चाहिये।

अदान्तगोभिर्विशतां तमिस्रं

पुनः पुनश्चर्वितचर्वणानाम्

(*भागवत* ७.५.३०)

देहात्मबुद्धि वाला व्याक्ति अपनी इन्द्रियतृप्ति पर अंकुश नहीं लगा पाता। ऐसा व्यक्ति खाने, पीने, आनन्द मनाने तथा इन्द्रियतृप्ति के लिए कुछ भी कर सकता है। उसे इसका ज्ञान नहीं रहता कि आत्मा का देहान्तरण एक शरीर से दूसरे में होता है। ऐसा व्यक्ति जो चाहता है, जो सोचता है, वही करता है, जिसके कारण प्रकृति के नियमों के अनुसार वह विभिन्न भौतिक शरीरों में घोर कष्ट भोगता है।

यावत् क्रियास्तावदिदं मनो वै

कर्मात्मकं येन शरीरबन्धः।

(*भागवत* ५.५.५)

देहात्मबुद्धि के कारण मनुष्य *कर्मानुबन्ध* अर्थात् कर्म द्वारा बद्ध रहता है और जब तक उसका मन कर्म में लीन रहता है तब तक उसे शरीर ग्रहण करना पड़ता है। यह *शरीरबन्ध* कष्ट का कारण (*क्लेश-द*) है।

न साधु मन्ये यत आत्मनोऽयम्

असन्नपि क्लेशद आस देहः।

यद्यति शरीर क्षणभंगुर है यह अनेक प्रकार से कष्ट दिया करता है किन्तु दुर्भाग्यवश्य मानव सभ्यता *तनुमानी* अर्थात् देहात्मबुद्धि पर आश्रित है, जिसमें मनुष्य सोचता है, ''मैं अमुक राष्ट्र से सम्बद्ध हूँ, मैं इस समुदाय का हूँ, उस समुदाय का हूँ'' इत्यादि इत्यादि। हममें से हर एक के अपने अपने विचार हैं और हम व्यक्तिगत, सामाजिक, जातिगत तथा राष्ट्रगत रूप से *कर्मानुबन्ध* की पापमयी जटिलताओं में बँधते जा रहे हैं। शरीर के निर्वाह हेतु लोग अन्य शरीरों का वध करते हैं और कर्मानुबन्ध में फँसते जाते हैं। इसीलिए श्रील जीव गोस्वामी कहते हैं कि *तनुमानी* पापी होते हैं। ऐसे पापियों का अन्तिम गन्तव्य अन्धतम नरक होता है (*गन्ता तमोऽन्धम्*)। विशेषतया, जो व्यक्ति पशुओं को मार कर अपना शरीर पालना चाहता है, वह सबसे बड़ा पापी है और वह आध्यात्मिक जीवन के महत्त्व को नहीं समझ सकता। *भगवद्गीता* (१६.१९-२०) में भगवान् कहते हैं—

तान् अहं द्विषतः क्रूरान् संसारेषु नराधमान्।

क्षिपाम्यजस्रमशुभान् आसुरीष्वेव योनिषु॥

आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि।

मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम्॥

''जो लोग ईर्षालु तथा ऊत्पाती हैं, जो पुरुषों में अधम हैं उन्हें मैं इस भवसागर में विभिन्न आसुरी योनियों में डाल देता हूँ। ऐसे व्यक्ति आसुरी जीवन की योनियों में बारम्बार जन्म ग्रहण करते हुए मेरे पास कभी नहीं पहुँच पाते। ऐसे लोग क्रमशः अत्यन्त निन्दनीय स्थिति में नीचे चले जाते हैं।'' यह

मानव जीवन एक वरदान है, जो अनेकानेक जन्मों के बाद मिला है, जिसके मूल्य को मनुष्य को समझना चाहिए। अत: मनुष्य को *तनुमानी* अर्थात् देहात्मबुद्धि से मुक्त होकर भगवान् का साक्षात्कार करना चाहिए।

इति घोरतमाद्भावात्सन्निवृत्तः स्वयं प्रभुः ।
आस्ते प्रतीक्षंस्तज्जन्म हरेर्वैरानुबन्धकृत् ॥ २३॥

शब्दार्थ

इति—इस तरह उपर्युक्त विधि से सोचते हुए; घोर-तमात् भावात्—अपनी बहन को किस तरह मारे इस अत्यन्त जघन्य विचार से; सन्निवृत्तः—विलग रहकर; स्वयम्—स्वयं विचार करके; प्रभुः—पूर्णज्ञान में (कंस); आस्ते—रहता रहा; प्रतीक्षन्—उस क्षण की प्रतीक्षा करते हुए; तत्-जन्म—उसका जन्म होने तक; हरेः—भगवान् हरि के; वैर-अनुबन्ध-कृत्—ऐसा वैर चलाते रहने के लिए दृढ़।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : इस तरह तर्क-वितर्क करते हुए कंस यद्यपि भगवान् के प्रति शत्रुता बनाये रखने के लिए दृढ़ था किन्तु अपनी बहन का जघन्य वध करने से कतराता रहा। उसने भगवान् के जन्म लेने तक प्रतीक्षा करने और तब जो आवश्यक हो, करने का निश्चय किया।

आसीनः संविशंस्तिष्ठन्भुञ्जानः पर्यटन्महीम् ।
चिन्तयानो हृषीकेशमपश्यत्तन्मयं जगत् ॥ २४॥

शब्दार्थ

आसीनः—कमरे या सिंहासन पर आराम से बैठे हुए; संविशन्—अथवा अपने बिस्तर पर लेटे हुए; तिष्ठन्—या अन्यत्र ठहरे हुए; भुञ्जानः—खाते; पर्यटन्—घूमते; महीम्—पृथ्वी पर, इधर-उधर जाते हुए; चिन्तयानः—सदैव शत्रु-भाव से चिन्तन करते; हृषीकेशम्—सबों के नियन्ता भगवान् को; अपश्यत्—देखा; तत्-मयम्—उससे (कृष्ण से) ही युक्त; जगत्—सारा संसार।

सिंहासन पर अथवा अपने कमरे में बैठे, बिस्तर पर लेटे या कहीं भी रहते हुए, खाते, सोते या घूमते हुए कंस केवल अपने शत्रु भगवान् हृषीकेश को ही देखता था। दूसरे शब्दों में, अपने सर्वव्यापक शत्रु का चिन्तन करते करते कंस प्रतिकूल भाव से कृष्णभावनाभावित हो गया था।

तात्पर्य : श्रील रूप गोस्वामी ने भक्ति के सर्वोत्तम प्रकार को *आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनम्* कहा है। निस्सन्देह कंस भी कृष्णभावनाभावित था किन्तु वह कृष्ण को शत्रु मानता था। अत: कृष्णभावनामृत में निमग्न रहते हुए भी उसका कृष्णभावनामृत उसके जीवन के अनुकूल न था। यदि कृष्णभावनामृत का अनुकूल अनुशीलन किया जाय तो मनुष्य इतना सुखी हो सकता है कि कृष्णभावनाभावित व्यक्ति को *कैवल्यसुखं* अर्थात् कृष्ण में तादात्म्य भी कोई बहुत बड़ा लाभ नहीं लगता। *कैवल्यमं नरकायते।*

कृष्णभावनाभावित व्यक्ति के लिए निर्विशेषवादियों द्वारा अभीष्ट, कृष्ण अथवा ब्रह्म में तादात्म्य असुविधाजनक लगता है। *कैवल्यं नरकायते त्रिदशपूराकाशपुष्पायते।* कर्मीजन स्वर्ग जाने की लालसा करते हैं किन्तु कृष्णभावनाभावित व्यक्ति इसे व्यर्थ का मायाजाल ही मानते हैं। *दुर्दान्तेन्द्रिय कालसर्पपटली प्रोत्खातदंष्ट्रायते।* योगी इन्द्रियों को वश में करने का प्रयास करते हैं और सुखी बनते हैं किन्तु कृष्णभावनाभावित व्यक्ति योग विधि की उपेक्षा करते हैं। वह इन्द्रियरूपी बड़े-बड़े शत्रुओं की परवाह नहीं करता जो सर्पों के समान हैं। किन्तु कृष्णभावनामृत का अनुकूल भाव से अनुशीलन करने वाले व्यक्ति कर्मियों, ज्ञानियों तथा योगियों द्वारा अनुभव किये जानेवाले सुख की लेशमात्र भी परवाह नहीं करते। पर कंस भिन्न प्रकार से—शत्रुता के भाव से—कृष्णभावनामृत का अनुशीलन कर रहा था, अत: अपने जीवन के सारे कार्यकलापों में—बैठते, सोते, घूमते, अथवा खाते बेचैनी का अनुभव करता था और अपने आपको सदा संकट में पाता था। भक्त तथा अभक्त का यही अन्तर है। अभक्त या नास्तिक भी ईशचेतना का अनुशीलन करता है—किन्तु हर वस्तु में ईश्वर को नकारते हुए। उदाहरणार्थ तथाकथित विज्ञानी जो रसायनों के संयोग से जीवन का सृजन करना चाहते हैं, वे बाह्य भौतिक तत्त्वों को सर्वोपरि मानते हैं। ऐसे विज्ञानियों को यह विचार रास नहीं आता कि जीव भगवान् का अंश है। जैसाकि *भगवद्गीता* में स्पष्ट कहा गया है (*ममैवांशो जीवलोकेजीवभूत:*) जीव—पृथ्वी, जल, वायु और अग्नि जैसे भौतिक तत्त्वों के संयोग से नहीं बनते अपितु भगवान् के भिन्नांशों से बने होते हैं। भगवान् के भिन्नांश रूप में जीवों की स्थिति समझ लेने पर, जीव की प्रकृति के अध्ययन द्वारा भगवान् की प्रकृति को समझा जा सकता है क्योंकि जीव भगवान् का अंश-रूप है। किन्तु नास्तिकों की रुचि ईशभावनामृत में नहीं होती, अत: वे प्रतिकूल ढंगों से कृष्णभावनामृत का अनुशीलन करके सुखी बनना चाहते हैं।

यद्यपि कंस हरि के विचारों में सदैव डूबा रहता था किन्तु वह सुखी नहीं था। पर भक्त चाहे सिंहासनारूढ़ हो या वृक्ष के नीचे बैठा हो, सदैव सुखी रहता है। श्रील रूप गोस्वामी ने वृक्ष के नीचे बैठने के लिए सरकार के मंत्रीपद से त्यागपत्र दे दिया था; फिर भी वे सुखी थे। *त्यक्त्वा तूर्णमशेषमण्डलपतिश्रेणीं सदा तुच्छवत्* (*षड्गोस्वाम्यष्टक* ४)। उन्होंने मंत्री के सुखदायक पद की परवाह नहीं की। वे वृन्दावन में एक वृक्ष के नीचे ही भगवान् की अनुकूल सेवा करते हुए सुखी थे।

एक भक्त तथा अभक्त में यही अन्तर है। अभक्त के लिए संसार समस्याओं से पूर्ण है जब कि भक्त के लिए सारा जगत सुखमय है।

विश्वं पूर्णसुखायते विधिमहेन्द्रादिश्च कीटायते।

यत्कारुण्यकटाक्षवैभववतां तं गौरमेव स्तुमः॥

(*चैतन्यचन्द्रामृत* ९५)

भक्त की यह सुखमय स्थिति भगवान् चैतन्य महाप्रभु की कृपा से स्थापित हो सकती है। *यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते।* (*भगवद्गीता* ६.२२) भक्त ऊपरी तौर पर महान् संकट में पड़ कर भी कभी उद्विग्न नहीं होता।

ब्रह्मा भवश्च तत्रैत्य मुनिभिर्नारदादिभिः ।
देवैः सानुचरैः साकं गीर्भिर्वृषणमैडयन् ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

ब्रह्मा—चतुर्मुख सर्वोच्च देवता; भवः च—तथा शिवजी; तत्र—वहाँ; एत्य—आकर; मुनिभिः—मुनियों; नारद-आदिभिः—नारद इत्यादि के साथ; देवैः—तथा इन्द्र, चन्द्र, वरुण इत्यादि देवताओं के साथ; स-अनुचरैः—अपने अपने अनुयायियों के साथ; साकम्—साथ; गीर्भिः—अपनी स्तुतियों से; वृषणम्—किसी को भी वर देने वाले भगवान्; ऐडयन्—प्रसन्न किया।

ब्रह्माजी तथा शिवजी, नारद, देवल तथा व्यास जैसे महामुनियों एवं इन्द्र, चन्द्र तथा वरुण जैसे देवताओं के साथ अदृश्य रूप में देवकी के कक्ष में पहुँचे जहाँ सबों ने मिलकर वरदायक भगवान् को प्रसन्न करने के लिए सादर स्तुतियाँ कीं।

तात्पर्य : *द्वौ भूत-सर्गौ लोकेऽस्मिन् दैव आसुर एव च* (*पद्मपुराण*)। मनुष्य दो प्रकार के होते हैं—*दैव* तथा *असुर*—और इन दोनों में बड़ा भारी अन्तर है। असुर होने के कारण कंस लगातार भगवान् या उनकी माता देवकी को मार डालने के लिए तरह तरह की योजनाएँ बनाता रहता था। इस तरह वह भी कृष्णभावनाभावित था। किन्तु भक्तगण अनुकूल रूप से कृष्णभावनाभावित होते हैं (*विष्णु भक्तः स्मृतो दैवः*)। ब्रह्माजी इतने शक्तिशाली हैं कि उन्हें सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के सृजन का कार्य दिया गया है फिर भी वे भगवान् का स्वागत करने स्वंय आये। भव अर्थात् शिवजी भगवान् के नाम का कीर्तन करके सदा हर्षित होते हैं। और नारद का तो कहना ही क्या? *नारदमुनि, बाजाय वीणा, राधिका-रमण-नामे।* नारदमुनि सदैव भगवान् का गुणगान करते रहते हैं और उनका कार्य है पूरे विश्व का भ्रमण करके भक्त की खोज करना या किसी को भक्त बनाना। नारद की कृपा से शिकारी भी भक्त बन गया। श्रील

सनातन गोस्वामी ने *तोषणी टीका* में लिखा है कि *नारद-आदिभि:* शब्द का अर्थ है कि नारद तथा देवताओं के साथ सनक तथा सनातन मुनि भी थे और वे सभी अपनी बधाई देने तथा भगवान् का स्वागत करने आये थे। यद्यपि कंस देवकी को मारने की योजना बना रहा था किन्तु वह भी भगवान् के आगमन की प्रतीक्षा कर रहा था (प्रतीक्षंस्तज्जन्म)।

सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं
सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये ।
सत्यस्य सत्यमृतसत्यनेत्रं
सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्ना: ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

सत्य-व्रतम्—भगवान् जो अपने व्रत से कभी विचलित नहीं होते; * **सत्य-परम्**—परम सत्य (जैसाकि श्रीमद्भागवत के प्रारम्भ में कहा गया है, सत्यं परं धीमहि); **त्रि-सत्यम्**—वे इस जगत की सृष्टि, पालन तथा इसके संहार के बाद भी परम सत्य के रूप में विद्यमान रहते हैं; **सत्यस्य**—परम सत्य कृष्ण से उद्भूत सारे सत्यों के; **योनिम्**—कारण; **निहितम्**—प्रविष्ट; ** **च**—तथा; **सत्ये**—इस जगत को उत्पन्न करने वाले कारणों (पंचतत्वों-क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर); **सत्यस्य**—सत्य माने जाने वाले का; **सत्यम्**—भगवान् जो आदि सत्य हैं; **ऋत-सत्य-नेत्रम्**—अच्छे लगने वाले सत्य के उद्गम (सुनेत्रम्); **सत्य-आत्मकम्**—भगवान् से सम्बद्ध हर वस्तु सत्य है (सच्चिदानन्द) (उनका शरीर सत्य है, उनका ज्ञान सत्य है और उनका आनन्द सत्य है); **त्वाम्**—तुम्हारी, हे भगवान्; **शरणम्**—शरण में; **प्रपन्ना:**—आपके संरक्षण में हम सभी।.

footnote starts here

* भगवान् का व्रत है—यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत। अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् (भगवद्गीता ४.७)। इसी व्रत को निभाने के लिए भगवान् प्रकट हुए।

** भगवान् सारी वस्तुओं में यहाँ तक कि परमाणु के भीतर भी हैं—*अण्डान्तरस्थ परमाणुचयान्तरस्थम्* (*ब्रह्म-संहिता* ५.४४)। इसीलिए वे अन्तर्यामी कहलाते हैं।

footnote ends here

देवताओं ने प्रार्थना की; हे प्रभो, आप अपने व्रत से कभी भी विचलित नहीं होते जो सदा ही पूर्ण रहता है क्योंकि आप जो भी निर्णय लेते हैं वह पूरी तरह सही होता है और किसी के द्वारा रोका नहीं जा सकता। सृष्टि, पालन तथा संहार—जगत की इन तीन अवस्थाओं में वर्तमान रहने से आप परम सत्य हैं। कोई तब तक आपकी कृपा का भाजन नहीं बन सकता जब तक वह पूरी तरह आज्ञाकारी न हो अत: इसे दिखावटी लोग प्राप्त नहीं कर सकते। आप सृष्टि के सारे अवयवों में असली सत्य हैं इसीलिए आप अन्तर्यामी कहलाते हैं। आप सबों पर समभाव रखते हैं

और आपके आदेश प्रत्येक काल में हर एक पर लागू होते हैं। आप आदि सत्य हैं अतः हम नमस्कार करते हैं और आपकी शरण में आए हैं। आप हमारी रक्षा करें।

तात्पर्य : देवता या भक्तगण भलीभाँति जानते हैं कि चाहे यह भौतिक जगत हो या वैकुण्ठलोक, असली वस्तु तो भगवान् ही हैं। इसीलिए *श्रीमद्भागवत* का आरम्भ *ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ...* सत्यं परं धीमहि *से होता है। वासुदेव, कृष्ण ही* परं सत्य *हैं। परम सत्य तक परम विधि द्वारा ही पहुँचा जा सकता है जैसा कि परम सत्य ने घोषित किया है*—भक्त्यामामभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्त्वत: (भगवद्गीता १८.५५)। *परम सत्य को समझने का एकमात्र ढंग है* भक्ति। इसीलिए देवतागण अपनी रक्षा के लिए परम सत्य की ही शरण में आते हैं सापेक्ष सत्य की नहीं। ऐसे अनेक लोग हैं, जो देवताओं की पूजा करते हैं किन्तु परम सत्य कृष्ण ने *भगवद्गीता* (७.२३) में कहा है—*अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम्*—अल्पज्ञ लोग देवताओं की पूजा करते हैं और उनके फल सीमित तथा क्षणिक होते हैं। देवताओं की पूजा सीमित समय के लिए लाभदायक हो सकती है किन्तु परिणाम नाशवान होता है। यह संसार नश्वर है और देवता भी नश्वर हैं। देवताओं से प्राप्त होने वाले वर भी नश्वर होते हैं जब कि जीव शाश्वत है (*नित्योनित्यानाम् चेतनश्चेतनानाम्*)। इसलिए हर जीव को नश्वर सुख नहीं अपितु शाश्वत सुख की खोज करनी चाहिए। *सत्यं परं धीमहि* सूचित करता है कि मनुष्य को सत्य की खोज करनी चाहिए सापेक्ष सत्य की नहीं।

भगवान् नृसिंहदेव की प्रार्थना करते हुए प्रह्लाद महाराज ने कहा था—

बालस्य नेह शरणं पितरौ नृसिंह
नार्तस्य चागदमुदन्वति मज्जतो नौ:।

सामान्यतया यह समझा जाता है कि बच्चे के रक्षक उसके माता-पिता होते हैं किन्तु यह यथार्थ नहीं है। असली रक्षक तो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं।

तप्तस्य तत्प्रतिविधिर्य इहाञ्जसेष्टस्
तावद्विभो तनुभृतां त्वदुपेक्षितानाम्।

(*भागवत* ७.९.१९)

यदि किसी बालक की उपेक्षा भगवान् द्वारा होती है, वह अपने मातापिता के होते हुए भी कष्ट

भोगता है। इसी तरह रोगी व्यक्ति सारी चिकित्सा होने पर भी मर जाता है। इस भौतिक संसार में, जहाँ जीवन-संघर्ष चल रहा है, लोगों ने रक्षा के अनेक साधन ढूँढ निकाले हैं किन्तु यदि भगवान् इनका तिरस्कार कर देते हैं, तो ये व्यर्थ हो जाते हैं। इसलिए देवताओं ने जानबूझ कर कहा—*सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः*—हे प्रभु! आप ही असली रक्षा कर सकते हैं अतएव हम आपकी शरण ग्रहण करते हैं।

भगवान् चाहते हैं कि लोग उनकी शरण में आएँ (*सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज*) और वे आगे कहते हैं—

सकृदेव प्रपन्नो यस्तवास्मीति च याचते।

अभयंसर्वदातस्मैददाम्येतद्व्रतं मम॥

"यदि कोई निष्ठापूर्वक यह कहकर मेरी शरण में आता है कि 'हे प्रभो! आज से मैं आपकी शरण में हूँ' तो मैं उसे सदैव सुरक्षा प्रदान करता हूँ। यह मेरा व्रत है।" (*रामायण, युद्ध काण्ड* १८.३३)। देवताओं ने भगवान् की स्तुति की क्योंकि कंस तथा उसके सहयोगियों द्वारा सताये गये सारे भक्तों की रक्षा करने के लिए भगवान् अपनी भक्त देवकी के गर्भ में अब प्रकट हो चुके थे। इस तरह भगवान् *सत्यव्रत* की भूमिका अदा करते हैं। भगवान् द्वारा की जाने वाली रक्षा की तुलना देवताओं द्वारा दी जाने वाली रक्षा से नहीं की जा सकती। कहा जाता है कि रावण शिवजी का महान् भक्त था किन्तु जब भगवान् रामचन्द्र जी उसे मारने गये तो शिवजी उसे सुरक्षा प्रदान नहीं कर सके।

ब्रह्माजी तथा शिव, नारद जैसे महान् ऋषियों तथा अनेक अन्य देवताओं के साथ कंस के घर में अदृश्य होकर आये। वे भगवान् की स्तुति ऐसे चुने हुए श्लोकों से करने लगे जो भक्तों को प्रिय हैं और इच्छाओं को पूरा करने वाले होते हैं। प्रारम्भिक शब्दों में उन्होंने कहा है कि भगवान् अपने व्रत के पक्के हैं। जैसाकि *भगवद्गीता* में कहा गया है, कृष्ण पुण्यात्माओं की रक्षा करने तथा अधर्मियों का विनाश करने के लिए ही इस भौतिक संसार में अवतरित होते हैं। यही उनका व्रत है। देवता समझ गये थे कि भगवान् अपने इस व्रत को पूरा करने के लिए ही देवकी के गर्भ में वास कर चुके हैं। वे परम प्रसन्न थे कि भगवान् अपना ध्येय पूरा करने के लिए प्रकट हो रहे हैं और उन्होंने उन्हें *सत्यं परम्* कह कर सम्बोधित किया।

हर व्यक्ति सत्य की खोज में रहता है। यही जीवन की दार्शनिक शैली है। देवता यह जानकारी देते

हैं कि परम सत्य कृष्ण हैं। जो पूर्णतया कृष्णभावनाभावित है, वह परम सत्य को प्राप्त कर सकता है। कृष्ण परम सत्य हैं। सापेक्ष सत्य काल की तीनों अवस्थाओं में सत्य नहीं है। काल को भूत, वर्तमान तथा भविष्य में विभाजित किया जाता है। कृष्ण भूत, वर्तमान तथा भविष्य सबों में सत्य हैं। भौतिक जगत में हर वस्तु का नियंत्रण परम काल द्वारा भूत, वर्तमान तथा भविष्य के रूप में होता है। सृष्टि के पहले भी कृष्ण विद्यमान थे और सृष्टि की रचना हो जाने पर हर वस्तु कृष्ण पर टिकी है और इस सृष्टि के नष्ट होने पर कृष्ण बने रहेंगे। अत: वे समस्त परिस्थितियों में परम सत्य हैं। यदि इस जगत में कोई सत्य है, तो वह परम सत्य कृष्ण से उद्भूत है। यदि इस जगत में कोई ऐश्वर्य है, तो उस ऐश्वर्य का कारण कृष्ण हैं। यदि इस जगत में कोई यश है, तो उसके कारणस्वरूप कृष्ण हैं। यदि इस जगत में कोई पराक्रम है, तो उसका कारण कृष्ण हैं। यदि इस जगत में कोई बुद्धि तथा विद्या है, तो उसका कारण कृष्ण हैं। अत: कृष्ण समस्त सापेक्ष सत्यों के उद्गम हैं।

इसीलिए भक्तगण ब्रह्माजी का अनुसरण करते हुए प्रार्थना करते हैं—*गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि*—कि हम आदि पुरुष परम सत्य गोविन्द की पूजा करते हैं। सर्वत्र सारे कार्य *ज्ञान-बल-क्रिया* इन तीन सिद्धान्तों के रूप में सम्पन्न होते हैं। यदि हर क्षेत्र में पूर्ण ज्ञान, पूर्ण बल तथा पूर्ण क्रिया नहीं होती तो कोई प्रयास कभी सफल नहीं होता। अत: यदि कोई व्यक्ति हर काम में सफलता चाहता है उसे इन तीन सिद्धान्तों का आधार मिलना चाहिए। वेदों में (*श्वेताश्वतर उपनिषद* ६.८) भगवान् सम्बन्धी निम्नलिखित कथन पाया जाता है—

न तस्य कार्यं करणं च विद्यते
न तत् समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते।
परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते
स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च॥

भगवान् को स्वयं कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं पड़ती क्योंकि उनके पास ऐसी शक्तियाँ हैं कि वे जो भी करवाना चाहते हैं वह भौतिक प्रकृति के नियंत्रण द्वारा भलीभाँति सम्पन्न हो जाता है (*स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च*)। इसी तरह जो लोग भगवान् की सेवा में लगे है वे जीवन-संघर्ष करने के निमित्त नहीं होते। इस समय कृष्णभावनामृत आन्दोलन का प्रसार करने में जो दस हजार से

भी अधिक नर-नारी विश्वभर में लगे हुए हैं उनके पास कोई स्थायी वृत्ति नहीं है फिर भी हम देखते हैं कि वास्तव में उनका पालन अत्यन्त ठाट-बाट से होता है। *भगवद्गीता* (९.२२) में भगवान् कहते हैं—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनः पर्युपासते।

तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

''जो लोग भक्तिपूर्वक मेरी पूजा करते हैं और मेरे दिव्य रूप का ध्यान धरते हैं उन्हें मैं वह देता हूँ जो उनके पास नहीं है तथा जो उनके पास है उसकी सुरक्षा करता हूँ।'' भक्तों को इसकी चिन्ता नहीं रहती कि आगे क्या होगा, वे कहाँ ठहरेंगे या क्या खायेंगे क्योंकि उनके लिए वे भगवान् हर वस्तु बनाये रखते हैं और पूर्ति करते हैं जिन्होंने वचन दिया है—*कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति*—हे कुन्तीपुत्र! तू निर्भीक होकर घोषित कर दे कि मेरा भक्त कभी विनष्ट नहीं होता है। (*भगवद्गीता* ९.३१) इसलिए सभी दृष्टियों से, सभी परिस्थितियों में यदि कोई पूरी तरह भगवान् की शरण में चला जाता है, तो फिर उसके जीवन-संघर्ष करने का प्रश्न ही नहीं उठता। इस सम्बन्ध में श्रीपाद मध्वाचार्य की टीका सार्थक है, जिसमें *तन्त्र भागवत* से उद्धरण दिये गये हैं—

सच्छब्द उत्तमं ब्रूयाद् आनन्दन्तीति वै वदेत्॥

येतिज्ञानं समुद्दिष्टं पूर्णानन्ददृशिस्ततः॥

अतृत्वाच्च तदा दानात्

सत्यात्त्य चोच्यते विभुः।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर *सत्यस्य योनिम्* शब्द की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि कृष्ण *अवतारी* अर्थात् सारे अवतारों के उद्‌गम हैं। सारे अवतार परम सत्य हैं फिर भी भगवान् कृष्ण ही समस्त अवतारों के उद्‌गम हैं। *दीपार्चिरेव हि दशान्तरमभ्युपेत्य दीपायते* (*ब्रह्म-संहिता* ५.४६)। मान लीजिये कि अनेक दीपक हैं, जो समान शक्तिवाले हैं फिर भी पहला, दूसरा, तीसरा इत्यादि-इत्यादि दीपक होते हैं। इसी तरह अवतार अनेक हैं जिनकी तुलना दीपकों से की जाती है लेकिन पहला दीपक आदि भगवान् कृष्ण है। *गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।*

देवताओं को पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की आज्ञा पालन करने के लिए पूजा करनी चाहिए किन्तु यह

तर्क किया जा सकता है कि भगवान् देवकी के गर्भ के भीतर थे अत: वे भी भौतिक देह में प्रकट होने वाले थे। तो फिर उनकी पूजा क्यों की जाए? किसी सामान्य जीव तथा भगवान् में अन्तर क्यों करें? इन प्रश्नों का उत्तर अगले श्लोकों में दिया गया हैं।

एकायनोऽसौ द्विफलस्त्रिमूल-
श्चतूरसः पञ्चविधः षडात्मा ।
सप्तत्वगष्टविटपो नवाक्षो
दशच्छदी द्विखगो ह्यादिवृक्षः ॥ २७॥

शब्दार्थ

एक-अयन:—सामान्यजीव का शरीर भौतिक तत्त्वों पर पूरी तरह आश्रित है; असौ—वह; द्वि-फल:—इस शरीर में हमें सुख तथा दुख मिलते रहते हैं, जो कर्मों से प्रतिफलित होते हैं; त्रि-मूल:—तीन जड़ों वाली प्रकृति के तीन गुण (सतो, रजो तथा तमोगुण) जिनसे शरीर बना है; चतु:-रस: *—चार रस या आस्वाद; पञ्च-विध:—ज्ञान प्राप्त करने की पाँच इन्द्रियों (आँख, कान, नाक, जीभ तथा स्पर्श) से युक्त; षट्-आत्मा—छ: परिस्थितियाँ (शोक, मोह, जरा, मृत्यु, भूख, प्यास); सप्त-त्वक्—सात आवरण (त्वचा, रक्त, पेशी, वसा, अस्थि, मज्जा तथा वीर्य) वाला; अष्ट-विटप:—आठ शाखाएँ (पाँच स्थूल तत्त्व पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश तथा मन, बुद्धि एवं अहंकार); नव-अक्ष:—नौ दरवाजे; दश-छदी—दस प्रकार की प्राण वायु जो वृक्ष के पत्तों के सदृश है; द्वि-खग:—दो पक्षी (आत्मा तथा परमात्मा); हि—निस्सन्देह; आदि-वृक्ष:—यही आदि वृक्ष या शरीर की बनावट है।.

शरीर को अलंकारिक रूप में ''आदि वृक्ष'' कहा जा सकता है। यह वृक्ष भौतिक प्रकृति की भूमि पर आश्रित होता है और उसमें दो प्रकार के—सुख भोग के तथा दुख भोग के—फल लगते हैं। इसकी तीन जड़ें तीन गुणों—सतो, रजो तथा तमो गुणों के साथ इस वृक्ष के कारणस्वरूप हैं। शारीरिक सुख रूपी फलों के स्वाद चार प्रकार के होते हैं—धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष जो पाँच ज्ञान इन्द्रियों द्वारा छ: प्रकार की परिस्थितियों—शोक, मोह, जरा, मृत्यु, भूख तथा प्यास के माध्यम से अनुभव किये जाते हैं। इस वृक्ष की छाल में सात परतें होती हैं—त्वचा, रक्त, पेशी, वसा, अस्थि, मज्जा तथा वीर्य। इस वृक्ष की आठ शाखाएँ हैं जिनमें से पाँच स्थूल तत्त्व तथा तीन सूक्ष्मतत्त्व हैं—क्षिति, जल, पावक, समीर, गगन, मन, बुद्धि तथा अहंकार। शरीर रूपी वृक्ष में नौ छिद्र (कोठर) हैं—आँखें, कान, नथुने, मुँह, गुदा तथा जननेन्द्रिय। इसमें दस पत्तियाँ हैं, जो शरीर से निकलने वाली दस वायु हैं। इस शरीररूपी वृक्ष में दो पक्षी हैं—एक आत्मा तथा दूसरा परमात्मा।

तात्पर्य : यह शरीर पाँच प्रधान तत्त्वों—क्षिति, जल, पावक, समीर तथा गगन—से बना है। ये सारे तत्त्व कृष्ण से उद्भूत हैं। यद्यपि भौतिकतावादी विज्ञानी इन पाँच मूल तत्त्वों को भौतिक जगत का

कारण मानते हैं किन्तु ये तत्त्व स्थूल तथा सूक्ष्म अवस्थाओं में कृष्ण द्वारा ही उत्पन्न हैं जिनकी तटस्था शक्ति से भौतिक जगत में जीव भी उत्पन्न होते हैं। *भगवद्गीता* के सप्तम अध्याय में बतलाया गया है कि समग्र विश्व कृष्ण की दो शक्तियों—परा तथा अपरा शक्तियों—का मेल है। सारे जीव परा शक्ति हैं और निर्जीव तत्त्व उनकी अपरा शक्ति हैं। सुषुप्त अवस्था में हर वस्तु कृष्ण पर टिकी रहती है।

footnote starts here

* जिस तरह वृक्ष की जड़ पृथ्वी से जल (रस) खींचती है उसी तरह शरीर धर्म अर्थ, काम तथा मोक्ष का आस्वादन करता है। ये ही चार प्रकार के रस हैं।

footnote ends here

भौतिक विज्ञानी शरीर की भौतिक रचना का ऐसा पूर्ण विश्लेषण प्रस्तुत नहीं कर पाते। भौतिक विज्ञानी केवल निर्जीव पदार्थ का विश्लेषण करते हैं किन्तु यह अपर्याप्त है क्योंकि जीव भौतिक शारीरिक संरचना से पूर्णतया भिन्न होता है। *भगवद्गीता* (७.५) में भगवान् कहते हैं—

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।

जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्॥

''इस अपरा प्रकृति के अतिरिक्त हे महाबाहु अर्जुन! मेरी एक परा प्रकृति है, जिसमें भौतिक प्रकृति से संघर्ष करने वाले तथा विश्व को बनाये रखने वाले सारे जीव पाये जाते हैं।'' यद्यपि सारे भौतिक तत्त्व पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण से उद्भूत होते हैं किन्तु वे पृथक् हुए तत्त्व हैं और जीवित तत्त्वों द्वारा धारण किये जाते हैं।

द्विखग: शब्द से सूचित होता है कि शरीर के भीतर के जीवित तत्त्व वृक्ष में बैठे दो पक्षियों के समान हैं। *ख* का अर्थ है ''आकाश'' तथा '*ग*' का अर्थ है, ''गमन करने वाले अत: *द्वि-खग:* दो पक्षियों का द्योतक है। इस शरीर रूपी वृक्ष में दो पक्षी अर्थात् दो सजीव तत्त्व हैं और वे दोनों सदैव पृथक्-पृथक् होते हैं। *भगवद्गीता* (१३.३) में भगवान् कहते हैं—*क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत*—हे भारत! तुम यह भी जान लो कि मैं सारे शरीरों का ज्ञाता भी हूँ। *क्षेत्रज्ञ* अर्थात् शरीर का स्वामी भी *खग* अर्थात् जीव कहलाता है। शरीर के भीतर ऐसे दो क्षेत्रज्ञ हैं—आत्मा तथा परमात्मा। आत्मा अपने शरीर का स्वामी है किन्तु परमात्मा सारे जीवों के शरीरों के भीतर उपस्थित रहता है।

शारीरिक संरचना का ऐसा सम्यक विश्लेषण तथा ज्ञान वैदिक साहित्य के अतिरिक्त अन्यत्र दुर्लभ है।

जब दो पक्षी किसी वृक्ष में प्रवेश करते हैं, तो मूर्खतावश कोई यह सोच सकता है कि दोनों पक्षी एक हो गये या वृक्ष से तदाकार हो गये किन्तु ऐसा होता नहीं। प्रत्युत हर पक्षी की अपनी व्यष्टि (निजी) पहचान बनी रहती है। इसी तरह आत्मा तथा परमात्मा कभी एक नहीं होते, न ही पदार्थ से उनका तादात्म्य होता है। जीव सदैव पदार्थ के निकट रहता है किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि वह उससे एकाकार हो जाता है (*असंगो ह्ययं पुरुष:*) यद्यपि भौतिक विज्ञानी जैव तथा अजैव या जड़ तथा चेतन को गलती से मिलाजुला मानते हैं।

वैदिक ज्ञान को बंदी बनाकर अथवा गुप्त रखा गया है किन्तु हर व्यक्ति को इसे समझने की आवश्यकता है। अज्ञान की आधुनिक सभ्यता केवल शरीर का विश्लेषण करने में व्यस्त है, अत: लोग इस गलत परिणाम को प्राप्त होते हैं कि शरीर के भीतर की जीवनी शक्ति किन्हीं भौतिक अवस्थाओं में उत्पन्न होती है। लोगों को आत्मा विषयक कोई जानकारी नहीं है किन्तु इस श्लोक में पूरी पूरी व्याख्या दी हुई है कि जीवनी शक्तियाँ दो हैं (*द्वि-खग*)—आत्मा तथा परमात्मा। परमात्मा हर शरीर में उपस्थित है (*ईश्वर: सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति*) जबकि आत्मा केवल अपने ही शरीर में (*देही*) स्थित है और एक शरीर से दूसरे में स्थानान्तरण करता रहता है।

त्वमेक एवास्य सत: प्रसूति-
स्त्वं सन्निधानं त्वमनुग्रहश्च ।
त्वन्मायया संवृतचेतसस्त्वां
पश्यन्ति नाना न विपश्चितो ये ॥ २८॥

शब्दार्थ

त्वम्—तुम (हे प्रभु); एक:—अकेले, आप ही सर्वस्व हैं; एव—निस्सन्देह; अस्य सत:—इस दृश्य जगत का; प्रसूति:—मूल स्त्रोत; त्वम्—आप; सन्निधानम्—सर्वस्व विनष्ट हो जाने पर ऐसी सारी शक्ति का संरक्षण; त्वम्—आप; अनुग्रह: च—तथा पालक; त्वत्-मायया—आपकी माया से; संवृत-चेतस:—उनका, जिनकी बुद्धि ऐसी माया से आवृत है; त्वाम्—आपको; पश्यन्ति—देखते हैं; नाना—अनेक प्रकार; न—नहीं; विपश्चित:—विद्वान या भक्तगण; ये—जो।

हे प्रभु, आप ही कई रूपों में अभिव्यक्त इस भौतिक जगत रूपी मूल वृक्ष के प्रभावशाली कारणस्वरूप हैं। आप ही इस जगत के पालक भी हैं और संहार के बाद आप ही ऐसे हैं जिसमें सारी वस्तुएँ संरक्षण पाती हैं। जो लोग माया से आवृत हैं, वे इस जगत के पीछे आपका दर्शन नहीं कर पाते क्योंकि उनकी दृष्टि विद्वान भक्तों जैसी नहीं होती।

तात्पर्य : अनेक देवता, यथा ब्रह्मा, शिव तथा विष्णु इस भौतिक जगत के स्रष्टा, पालक तथा संहारक माने जाते हैं किन्तु वास्तव में वे हैं नहीं। यथार्थ तो यह है कि भगवान् अपनी विविध शक्तियों के रूप में हर वस्तु में प्रकट हैं। *एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म*—और कोई दूसरा अस्तित्व नहीं है। जो लोग सचमुच *विपश्चित्* अर्थात् विद्वान हैं, वे जीवन की किसी भी अवस्था में भगवान् को समझने तथा देखने में समर्थ होते हैं। *प्रेमाञ्जनच्छुरितभक्तिविलोचनेन सन्तः सदैव हृदयेषु विलोकयन्ति* (*ब्रह्म-संहिता* ५.३८)। विद्वान भक्त कष्ट को भी भगवान् की उपस्थिति के रूप में स्वीकार करते हैं। जब कोई भक्त कष्ट में होता है, तो वह देखता है कि भगवान् तो भौतिक जगत के कल्मष से उसे छुटकारा दिलाने या शुद्ध करने के लिए कष्ट के रूप में प्रकट हुए हैं। इस जगत में रहते हुए मनुष्य विविध अवस्थाओं में रहता है, अतः भक्त कष्ट की अवस्था को भी भगवान् का दूसरा स्वरूप ही स्वीकार करता है। *तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणः* (*भागवत .१४.८*)। अतः भक्त कष्ट को भगवान् का महान् अनुग्रह मानता है क्योंकि वह समझता है कि उसके कल्मष धोये जा रहे हैं। *तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्* (*भगवद्गीता* १२.७)। कष्ट का उदय निषेधात्मक विधि है, जिससे भक्त को इस मृत्यु संसार से अथवा भौतिक संसार से अर्थात् जन्म-मृत्यु की निरन्तर पुनरावृत्ति से छुटकारा दिलाया जाता है। शरणागत को पुनः पुनः जन्म-मृत्यु से बचाने के लिए ही भगवान् उसे थोड़ा कष्ट देकर उसके कल्मष को धो देते हैं। अभक्त इसे नहीं समझ सकता किन्तु भक्त *विपश्चित्* अर्थात् विद्वान होने के कारण इसे देख सकता है। इसलिए अभक्त कष्ट में परेशान हो जाता है किन्तु भक्त इस कष्ट को भगवान् का दूसरा रूप जानकर स्वागत करता है। *सर्वं खल्विदं ब्रह्म।* भक्त वास्तव में देख सकता है कि भगवान् के अतिरिक्त अन्य कोई दूसरी सत्ता नहीं है। *एकमेवाद्वितीयम्।* भगवान् केवल एक है, जो अपने को विभिन्न शक्तियों के रूप में प्रस्तुत करता है।

जिन्हें असली ज्ञान नहीं है, वे सोचते हैं कि ब्रह्मा स्रष्टा हैं, विष्णु पालक हैं और शिव संहारकर्ता हैं और विभिन्न देवतागण विविध कार्यों की पूर्ति के निमित्त हैं। इस तरह वे लोग तरह तरह के प्रयोजन निर्मित करते हैं और इन कार्यों की पूर्ति के लिए विविध देवताओं की पूजा करते हैं। *कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः*)। किन्तु भक्त जानता है कि विविध देवता भगवान् के ही अंग हैं और इन अंशों के पूजे जाने की कोई आवश्यकता नहीं है। भगवान् *भगवद्गीता* (९.२३) में कहते

हैं—

येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः।

तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम्॥

"हे कुन्तीपुत्र! मनुष्य जो कुछ भी अन्य देवताओं को अर्पित करता है, वह वास्तव में केवल मेरे निमित्त होता है किन्तु इसे बिना सही ज्ञान के अर्पण किया जाता है।" देवताओं के पूजन की आवश्यकता नहीं रहती क्योंकि यह *अविधि* है। मात्र कृष्ण के चरणकमलों की शरण ग्रहण करने से मनुष्य के सारे कार्य पूरे हो जाते हैं और विविध अर्चाविग्रहों या देवताओं को पूजने की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। केवल *मूढ* इन सब देवताओं को मानते हैं क्योंकि वे भौतिक प्रकृति के तीनों गुणों द्वारा मोहित होते हैं। (*त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत्*) ऐसे मूढ़ इतना भी नहीं समझ सकते कि हर वस्तु के असली स्रोत तो भगवान् हैं (*मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम्*)। मनुष्य को चाहिए कि भगवान् के विविध स्वरूपों से विचलित न हो अपितु परमेश्वर में ध्यान एकाग्र करके उन्हीं की पूजा करे (*मामेकं शरणं व्रज*)। मनुष्य-जीवन का यही आदर्श सिद्धान्त होना चाहिए।

बिभर्षि रूपाण्यवबोध आत्मा
क्षेमाय लोकस्य चराचरस्य ।
सत्त्वोपपन्नानि सुखावहानि
सतामभद्राणि मुहुः खलानाम् ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

बिभर्षि—आप स्वीकार करें; **रूपाणि**—अनेक रूप यथा मत्स्य, कूर्म, वराह, राम, नृसिंह आदि; **अवबोधः आत्मा**—विभिन्न अवतारों के बावजूद आप परम ज्ञाता बने रहते हैं; **क्षेमाय**—हर एक के और विशेषतया भक्तों के लाभ के लिए; **लोकस्य**—सारे जीवों के; **चर-अचरस्य**—जड़ तथा चेतन का; **सत्त्व-उपपन्नानि**—ऐसे सारे अवतार दिव्य होते हैं (शुद्ध सत्त्व); **सुख-अवहानि**—दिव्य आनन्द से पूरित; **सताम्**—भक्तों का; **अभद्राणि**—सारा अशुभ या संहार; **मुहुः**—पुनः पुनः; **खलानाम्**—अभक्तों का।

हे ईश्वर, आप सदैव ज्ञान से पूर्ण रहने वाले हैं और सारे जीवों का कल्याण करने के लिए आप विविध रूपों में अवतरित होते हैं, जो भौतिक सृष्टि के परे होते हैं। जब आप इन अवतारों के रूप में प्रकट होते हैं, तो आप पुण्यात्माओं तथा धार्मिक भक्तों के लिए मोहक लगते हैं किन्तु अभक्तों के लिए आप संहारकर्ता हैं।

तात्पर्य : इस श्लोक में बतलाया गया है कि भगवान् पुनः पुनः क्यों अवतरित होते हैं। भगवान् के

सारे अवतार अलग-अलग कार्य करते हैं किन्तु उनका एक प्रधान कार्य होता है भक्तों की रक्षा और दुष्टों का संहार (*परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्*)। इन दुराग्रहियों का संहार भी उनके लिए अन्ततोगत्वा शुभ ही होता है।

त्वय्यम्बुजाक्षाखिलसत्त्वधाम्नि
समाधिनावेशितचेतसैके ।
त्वत्पादपोतेन महत्कृतेन
कुर्वन्ति गोवत्सपदं भवाब्धिम् ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

त्वयि—आप में; अम्बुज-अक्ष—हे कमल जैसे नेत्रवाले प्रभु; अखिल-सत्त्व-धाम्नि—जगत के आदि कारण जिससे हर वस्तु उद्भूत होती है और जिसमें समस्त शक्तियाँ नवास करती हैं; समाधिना—स्थायी ध्यान तथा पूर्ण तल्लीनता (आपके विचारों में) द्वारा; आवेशित—पूर्णतया तल्लीन, संलग्न; चेतसा—चेतना द्वारा; एके—आपके चरणकमलों के विषय में चिन्तन की एक विधि; त्वत्-पाद-पोतेन—आपके चरणकमल रूपी नाव में चढ़कर; महत्-कृतेन—ऐसे कार्य द्वारा जो अत्यन्त शक्तिशाली माना जाता है या जो महाजनों द्वारा सम्पन्न किया जाता है; कुर्वन्ति—करते हैं; गोवत्स-पदम्—बछड़े के खुर के निशान तुल्य; भव-अब्धिम्—संसार सागर को।.

हे कमलनयन प्रभु, सम्पूर्ण सृष्टि के आगार रूप आपके चरणकमलों में अपना ध्यान एकाग्र करके तथा उन्हीं चरणकमलों को संसार-सागर को पार करने वाली नाव मानकर मनुष्य महाजनों (महान् सन्तों, मुनियों तथा भक्तों) के चरणचिन्हों का अनुसरण करता है। इस सरल सी विधि से वह अज्ञान सागर को इतनी आसानी से पार कर लेता है मानो कोई बछड़े के खुर का चिन्ह पार कर रहा हो।

तात्पर्य : जीवन का असली उद्देश्य बारम्बार जन्म-मुत्यु के अज्ञान-सागर को पार करना है। किन्तु अज्ञान के अंधकार में रहने वाले इस उद्देश्य को नहीं जानते। उल्टे वे भौतिक प्रकृति की तरंगों द्वारा बहा ले जाये जाने के कारण (*प्रकृते: क्रियमाणानि गुणै कर्माणि सर्वश:*) बारम्बार जन्म-मृत्यु के कष्टों को झेलते रहते हैं (*मृत्युसंसारवर्त्मनि*)। किन्तु जिन व्यक्तियों ने भक्तों की संगति से ज्ञान प्राप्त कर लिया है वे महाजनों का (*महत्कृतेन*) अनुसरण करते हैं। ऐसे लोग अपने चित्त को भगवान् के चरणकमलों पर केन्द्रित करते हैं और नवधा भक्ति में से एक या अधिक को (*श्रवणं कीर्तनं विष्णो: स्मरणं पादसेवनम्*) ग्रहण करते हैं। केवल इसी विधि से मनुष्य अज्ञान के दुर्लंघ्य संसार को पार कर सकता है।

भक्ति चाहे जिस रूप में हो, शक्तिशाली होती है। *श्रीविष्णो: श्रवणे परीक्षिद् अभवद् वैयासकि:*

कीर्तने (*भक्तिरसामृत सिन्धु* १.२.२६५)। इस श्लोक के अनुसार महाराज परीक्षित अपने मन को भगवान् के नाम, गुण तथा लीलाओं के श्रवण में एकाग्र करने के कारण मुक्त हुए। इसी तरह शुकदेव गोस्वामी भी केवल भगवान् के गुणगान से तथा श्रीकृष्ण के ही विषय में प्रवचन करके मुक्त बने जिससे संपूर्ण श्रीमद्भागवतम् की रचना हुई। कोई भी व्यक्ति भगवान् के सख्य—भगवान् की सखा-भाव से भक्ति—द्वारा भी मुक्त हो सकता है। भक्ति में ऐसी शक्ति है जैसाकि भगवान् के अनेक शुद्ध भक्तों द्वारा प्रस्तुत किये गये दृष्टान्तों से हम सीखते हैं।

स्वयम्भूर्नारदः शम्भुः कुमारः कपिलो मुनिः।
प्रह्लादो जनको भीष्मो बलिर्वैयासकिर्वयम्॥

(*श्रीमद्भागवत* ६.३.२०)

हमें ऐसे ही भक्तों के चरणचिह्नों का अनुसरण करना है क्योंकि इस एक सरल विधि से ही मनुष्य अज्ञान के सागर को उसी तरह से पार कर सकता है, जिस तरह बछड़े के खुर से उत्पन्न एक छोटे चिह्न को।

यहाँ पर भगवान् को *अम्बुजाक्ष* अर्थात् कमलनेत्र कहा गया है। भगवान् के कमल जैसे नेत्रों को देखकर मनुष्य इतना तुष्ट हो जाता है कि वह अन्य किसी वस्तु की ओर अपनी दृष्टि उठाना नहीं चाहता। भगवान् के दिव्य स्वरूप को देख करके ही भक्त अपने हृदय में स्थित भगवान् में तल्लीन हो जाता है। यह तल्लीनता ही *समाधि* कहलाती है। *ध्यानावस्थित तद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनः* (*भागवत १२.१३.१*)। योगी भगवान् के विचारों में लीन रहता है क्योंकि उसके हृदय में स्थित भगवान् के चिन्तन के अतिरिक्त उसके पास कोई अन्य कार्य नहीं रहता। कहा भी गया है—

समाश्रिता ये पदपल्लवप्लवं
महत्पदं पुण्ययशो मुरारेः।
भवाम्बुधिर्वत्सपदं परं पदं
पदं पदं यद् विपदां न तेषाम्॥

"जिसने उन भगवान् के चरणकमल रूपी नौका ग्रहण कर ली है, जो संसार के आश्रय हैं और मुर राक्षस के शत्रु, मुरारी नाम से विख्यात हैं, उसके लिए यह भवसागर बछड़े के खुर में भरे हुए जल के

समान है। उसका लक्ष्य *परं पदम्* अर्थात् वैकुण्ठ है जहाँ न तो भौतिक क्लेश हैं और न पग पग पर विपदा है। (*भागवत* .१४.५८) ब्रह्माजी तथा शिव जैसे महाजनों ने (*स्वयम्भूर्नारद:शम्भु:*) इस विधि की संस्तुति की है, अत: अज्ञान को लाँघने के लिए हमें इसी विधि को ग्रहण करना चाहिए। यह अत्यन्त सरल है किन्तु हमें महाजनों के पदचिह्नों का अनुसरण करना चाहिए तभी सफलता मिल सकती है।

महत्कृतेन शब्द के विषय में यह भी महत्त्वपूर्ण बात है कि बड़े-बड़े भक्तों द्वारा दिखलाई गई विधि उन्हीं के लिए नहीं अपितु अन्यों के लिए भी होती है। जो वस्तुओं को इस तरह सरल बनाते हैं उससे न केवल उन्हें ही अपितु उनके अनुसरण करने वालों को भी आसानी होती है। इस श्लोक में अज्ञान-सागर को पार करने के लिए जो विधि बतलाई गई है, वह न केवल एक भक्त के लिए अपितु भक्त का अनुसरण करने वाले किसी सामान्य व्यक्ति के लिए भी है (*महाजनो यने गत: स पन्था:*)।

स्वयं समुत्तीर्य सुदुस्तरं द्युमन्
भवार्णवं भीममदभ्रसौहृदाः ।
भवत्पदाम्भोरुहनावमत्र ते
निधाय याताः सदनुग्रहो भवान् ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

स्वयम्—खुद, आप; समुत्तीर्य—पार करके; सु-दुस्तरम्—दुर्लंघ्य; द्युमन्—अज्ञान के इस लोक के अंधकार में सूर्य के समान चमकने वाले हे प्रभु; भव-अर्णवम्—संसार सागर को; भीमम्—भयानक; अदभ्र-सौहृदाः—भक्तगण जो पतितात्माओं के प्रति सदैव मैत्रीभाव रखते हैं; भवत्-पद-अम्भोरुह—आपके चरणकमल; नावम्—पार करने के लिए नाव को; अत्र—इस संसार में; ते—वे (वैष्णवजन); निधाय—पीछे छोड़कर; याताः—चरम लक्ष्य, वैकुण्ठ; सत्-अनुग्रहः—भक्तों पर सदैव कृपालु तथा दयालु; भवान्—आप।

हे द्युतिपूर्ण प्रभु, आप अपने भक्तों की इच्छा पूरी करने के लिए सदा तैयार रहते हैं इसीलिए आप वांछा-कल्पतरु कहलाते हैं। जब आचार्यगण अज्ञान के भयावह भवसागर को तरने के लिए आपके चरणकमलों की शरण ग्रहण करते हैं, तो वे अपने पीछे अपनी वह विधि छोड़े जाते हैं जिससे वे पार करते हैं। चूँकि आप अपने अन्य भक्तों पर अत्यन्त कृपालु रहते हैं अतएव उनकी सहायता करने के लिए आप इस विधि को स्वीकार करते हैं।

तात्पर्य : इस कथन से पता चलता है कि किस तरह दयालु आचार्यगण तथा कृपालु भगवान् मिलकर उस गंभीर भक्त की सहायता करते हैं, जो भगवद्धाम वापस जाना चाहता है। श्री चैतन्य

महाप्रभु ने श्रील रूप गोस्वामी को शिक्षा देते हुए कहा था—

ब्रह्माण्ड भ्रमिते कोन भाग्यवान् जीव।

गुरु-कृष्ण-प्रसादे पाय भक्ति-लता-बीज॥

(चै.च. *मध्य* १९.१५१)

गुरु तथा कृष्ण की दया से ही मनुष्य को *भक्तिलता बीज* प्राप्त हो सकता है। गुरु का कर्तव्य है कि काल, परिस्थिति तथा पात्र के अनुसार साधनों की खोज करे जिससे मनुष्य को भक्ति करने के लिए प्रेरित किया जा सके क्योंकि भगवद्धाम वापस जाने वाले व्यक्ति से कृष्ण यह भक्ति स्वीकार करते हैं। भाग्यवान व्यक्ति सारे ब्रह्माण्ड का भ्रमण करने के बाद इस भौतिक जगत में ऐसे गुरु या आचार्य की शरण खोजता है, जो भक्त को परिस्थिति के अनुसार सेवा करने की उपयुक्त विधियों का प्रशिक्षण दे सके जिससे भगवान् उसकी सेवा स्वीकार कर लें। इससे पात्र को अपने चरम गन्तव्य तक पहुँचने में सुविधा होती है। अत: आचार्य का कर्तव्य है कि वह ऐसे साधन खोजे जिससे भक्त शास्त्रोक्त विधि से भक्ति कर सके। उदाहरणार्थ, रूप गोस्वामी ने आगे आने वाले भक्तों की सहायता करने के लिए '*भक्तिरसामृतसिन्धु*' जैसे ग्रंथ का प्रकाशन किया। इस तरह आचार्यों का कर्तव्य है कि वे भावी पात्रों को भक्ति करने में सहायक पुस्तकें प्रकाशित करें जिससे लोग परमेश्वर के कृपा से भगवद्धाम वापस जा सकें। हमारे कृष्णभावनामृत आन्दोलन में इसी मार्ग की संस्तुति की जाती है और इसीका पालन किया जाता है। इस तरह भक्तों को सलाह दी गई है कि वे चार पापकर्मों से बचें। ये हैं—अवैध यौन, नशा, मांसाहार तथा जुआ। उन्हें प्रति दिन सोलह मालाएँ जप करने की भी सलाह दी गई है। ये प्रामाणिक आदेश हैं। चूँकि पाश्चात्य देशों में सतत कीर्तन संभव नहीं है अत: बनावटी तरीके से हरिदास ठाकुर की नकल नहीं करनी चाहिए किन्तु इसी विधि का पालन करना चाहिए। जो लोग अधिकारियों द्वारा प्रकाशित विविध पुस्तकों में संस्तुत विधि-विधानों का पालन करते हैं, कृष्ण उन्हें भक्त के रूप में स्वीकार कर लेते हैं। अज्ञान के सागर को पार करने के लिए भगवान् के चरणकमलों की नौका बनाने की उपयुक्त विधि आचार्य द्वारा बतलाई जाती है और यदि पालनकर्ता इस विधि का दृढ़ता से पालन करता है, तो वह भगवद्कृपा से गन्तव्य तक अवश्य पहुँच जाता है। यह विधि *आचार्य सम्प्रदाय* कहलाती है। इसीलिए कहा गया है कि *सम्प्रदायविहीना येमन्त्रास्ते निष्फला मता:* (*पद्मपुराण*)।

आचार्य-सम्प्रदाय नितान्त प्रामाणिक है। इसलिए इस सम्प्रदाय को स्वीकार करना चाहिए अन्यथा सारा प्रयास व्यर्थ जाएगा। इसीलिए श्रील नरोत्तमदास ने गीत गाया है—

ताँदेर चरण सेवि भक्त सने वास।

जनमे जनमे हय, एइ अभिलाष॥

मनुष्य को चाहिए कि आचार्य के चरणकमलों की सेवा करे और भक्तों के समाज में रहे। तब भवसागर पार करने का प्रयास सार्थक होगा।

येऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्तमानिन-
स्त्वय्यस्तभावादविशुद्धबुद्धयः ।
आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः
पतन्त्यधोऽनादृतयुष्मदङ्घ्रयः ॥ ३२॥

शब्दार्थ

ये अन्ये—कोई या अन्य सभी; अरविन्द-अक्ष—हे कमलनेत्र; विमुक्त-मानिनः—भव-कल्मष के बन्धन से अपने को झूठे ही मुक्त मानने वाले; त्वयि—तुम में; अस्त-भावात्—विविध रूप से सोचते हुए किन्तु आपके चरणकमलों के विषय में अधिक न जानने की इच्छा रखते हुए; अविशुद्ध-बुद्धयः—जिनकी बुद्धि अब भी शुद्ध नहीं है और जो जीवन-लक्ष्य को नहीं जानते; आरुह्य—प्राप्त करके भी; कृच्छ्रेण—कठिन तपस्या तथा श्रम के द्वारा; परम् पदम्—सर्वोच्च पद (अपनी कल्पना के अनुसार); ततः—उस पद से; पतन्ति—गिरते हैं; अधः—पुनः नीचे भवसागर में; अनादृत—उपेक्षा किया हुआ; युष्मत्—आपके; अङ्घ्रयः—चरणकमल।

(कोई कह सकता है कि भगवान् के चरणकमलों की शरण खोजने वाले भक्तों के अतिरिक्त भी ऐसे लोग हैं, जो भक्त नहीं हैं किन्तु जिन्होंने मुक्ति प्राप्त करने के लिए भिन्न विधियाँ अपना रखी हैं। तो उनका क्या होता है? इसके उत्तर में ब्रह्माजी तथा अन्य देवता कहते हैं) हे कमलनयन भगवान्, भले ही कठिन तपस्याओं से परम पद प्राप्त करने वाले अभक्तगण अपने को मुक्त हुआ मान लें किन्तु उनकी बुद्धि अशुद्ध रहती है। वे कल्पित श्रेष्ठता के अपने पद से नीचे गिर जाते हैं, क्योंकि उनके मन में आपके चरणकमलों के प्रति कोई श्रद्धाभाव नहीं होता।

तात्पर्य : भक्तों के अलावा अन्य अभक्त भी हैं, जो कर्मी, ज्ञानी, योगी, परमार्थवादी, उपकारी, राजनीतिज्ञ, निर्विशेषवादी तथा शून्यवादी कहलाते हैं। अभक्तों के अनेक भेद हैं जिनके मुक्ति के मार्ग अलग-अलग हैं किन्तु भगवान् के चरणकमलों के आश्रय को न जानने से वे अपने को मुक्त तथा परमपद प्राप्त हुआ सोचते हुए भी नीचे गिरते हैं। *भगवद्गीता* (९.३) में भगवान् ने स्पष्ट कहा हैं—

अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परन्तप।

अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि॥

"हे शत्रुओं के विजेता! जो लोग भक्ति के पथ के प्रति श्रद्धावान् नहीं हैं, वे मुझे नहीं प्राप्त कर सकते। वे इस भौतिक जगत में जन्म तथा मृत्यु के लिए वापस लौट आते हैं।" चाहे कोई कर्मी हो या ज्ञानी, योगी, उपकारी, राजनीतिज्ञ या अन्य कुछ हो, यदि उसके मन में भगवान् के चरणकमलों के प्रति प्रेम नहीं होता तो वह नीचे गिरता है। इस श्लोक में ब्रह्माजी ने यही निणर्य दिया है।

कुछ लोग ऐसे हैं, जो कहते हैं कि चाहे जिस विधि को अपनाया जाय उसी लक्ष्य तक पहुँचा जा सकता है किन्तु इस श्लोक में इसका परिहार किया गया है और ऐसे व्याक्तियों को *विमुक्तमानिनः* कहा गया है, जो इसका सूचक है कि यद्यपि ऐसे लोग अपने को परम सिद्धि प्राप्त हुआ समझते हैं किन्तु यह यथार्थ नहीं होता। सम्प्रति संसार के बड़े-बड़े राजनीतिज्ञ ऐसा सोचते हैं कि योजना बनाकर वे राष्ट्रपति या प्रधान मंत्री जैसे सर्वोच्च राजनीतिक पद पर प्रतिष्ठित हो सकते हैं किन्तु हम देखते हैं कि ऐसे राष्ट्रपति या प्रधानमंत्री अभक्त होने के कारण इसी जीवन में नीचे गिर जाते हैं (*पतन्त्यधः*)। राष्ट्रपति या प्रधान मंत्री बनना सरल नहीं है। उस पद को प्राप्त करने के लिए कठिन श्रम करना होता है (*आरुह्य कृच्छ्रेण*)। और यदि अपने लक्ष्य तक कोई पहुँच भी जाता है, तो किसी भी समय भौतिक प्रकृति उसे ठुकरा सकती है। मानव समाज में ऐसे अनेक दृष्टान्त मिलते हैं जब बड़े बड़े राजनीतिज्ञ सरकार से पदच्युत होकर विस्मृति के गर्भ में विलीन हो गये। इसका कारण है अविशुद्ध बुद्धयः— उनकी बुद्धि अशुद्ध है। शास्त्र का कथन है—*न ते विदुः स्वार्थगतिं हि विष्णुम्* (*भागवत* ७.५.३१)। विष्णु भक्त होकर जीवन-सिद्धि प्राप्त की जा सकती है लेकिन लोग इसे जानते नहीं। इसीलिए *भगवद्गीता* (१२.५) में कहा गया है—*क्लेशोऽधिकतरस्तेषां अव्यक्तासक्त चेतसाम्।* जो लोग अन्ततोगत्वा भगवान् को स्वीकार नहीं करते और भक्ति नहीं करते प्रत्युत निर्विशेषवाद और शून्यवाद में लिप्त रहते हैं उन्हें अपना लक्ष्य प्राप्त करने के लिए बहुत श्रम करना पड़ता है—

श्रेयःसृतिंभक्तिमुदस्यतेविभो

क्लिश्यन्ति ये केवल-बोध-लब्धये।

(*भागवत* .१४.४)

ज्ञान प्राप्त करने के लिए ऐसे लोग अत्यधिक श्रम करते हैं और घोर तप करते हैं किन्तु उससे श्रम तथा तपस्या की उपलब्धि भले हो किन्तु इनसे जीवन-लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हो सकती।

ध्रुव महाराज पहले अपने पिता से भी बड़ा साम्राज्य तथा भौतिक सम्पत्ति प्राप्त करना चाहते थे किन्तु जब भगवान् वर देने के लिए उनके समक्ष प्रकट हुए तो ध्रुव महाराज ने यह कहकर मना कर दिया—*स्वामिन् कृतार्थोऽस्मि वरं न याचे*—अब मैं पूरी तरह सन्तुष्ट हूँ। मुझे कोई भौतिक वर नहीं चाहिए। (*हरि भक्ति सुधोदय* ७.२८) यही जीवनसिद्धि हैं। यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः (*भगवद्गीता* ६.२२)। भगवान् के चरणकमलों की शरण प्राप्त हो जाने पर मनुष्य पूर्णरूपेण संतुष्ट हो जाता है और उसे कोई भौतिक वर माँगने की आवश्यकता नहीं रह जाती।

रात्रि में कमल नहीं दिखते क्योंकि कमल दिन में ही खिलते हैं। *अतः अरविन्दाक्ष* शब्द महत्त्वपूर्ण है। जो व्यक्ति भगवान् के कमलनयनों अथवा उनके दिव्य रूप से मोहित नहीं होता वह उसी तरह अंधकार में रहता है जैसे कमल को न देखने वाला। जिसने श्यामसुन्दर के कमलनेत्रों तथा उनके दिव्य रूप को नहीं देखा उसका जीवन व्यर्थ है। *प्रेमाञ्जनच्छुरित भक्तिविलोचनेन सन्तः सदैव हृदयेषु विलोकयन्ति।* जो लोग भगवान् के प्रेम में अनुरक्त हैं, वे सदैव उनके कमलनेत्रों तथा कमल-चरणों का दर्शन करते हैं किन्तु अन्य लोग भगवान् के सौन्दर्य का दर्शन नहीं कर पाते अतः वे *अनादृत युष्मदङ्घ्रयः* अर्थात् आपके साकार स्वरूप की उपेक्षा करने वाले कहलाते हैं। जो लोग भगवान् के स्वरूप का अनादर करते हैं उनको जीवन-पथ में पग-पग पर असफलता मिलती है किन्तु यदि कोई नाममात्र को भी भगवत्प्रेम उत्पन्न कर लेता है, तो वह अनायास ही मुक्त हो जाता है (*स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्*)। इसीलिए भगवान् ने *भगवद्गीता* (९.३४) में संस्तुति की है—*मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु*—केवल मेरा चिन्तन करो, मेरे भक्त बनो, मेरी पूजा करो और मुझे ही नमस्कार करो। केवल इसी विधि से मनुष्य भगवद्धाम वापस जा सकता है और चरम सिद्धि प्राप्त कर सकता है। भगवान् आगे भी पुष्टि करते हैं (*भगवद्गीता* १८.५४-५५)

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति।

समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्॥

भक्त्या मामभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्त्वतः।

ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम् ॥

''इस तरह दिव्य पद को प्राप्त व्यक्ति तुरन्त परब्रह्म का साक्षात्कार करता है और पूर्ण रूप से प्रसन्न रहता है। वह न शोक करता है न किसी वस्तु की इच्छा करता है। वह हर जीव पर समभाव रखता है। ऐसी स्थिति में उसे मेरी शुद्ध भक्ति प्राप्त होती है। केवल भक्ति द्वारा भगवान् के यथारूप को जाना जा सकता है। जब वह ऐसी भक्ति द्वारा पूर्णतया ईशभावनाभावित हो जाता है, तो वह भगवद्धाम में प्रवेश कर सकता है।''

तथा न ते माधव तावकाः क्वचिद्
भ्रश्यन्ति मार्गात्त्वयि बद्धसौहृदाः ।
त्वयाभिगुप्ता विचरन्ति निर्भया
विनायकानीकपमूर्धसु प्रभो ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

तथा—उनकी (अभक्तों की) तरह; न—नहीं; ते—वे (भक्तगण); माधव—हे लक्ष्मीपति भगवान्; तावकाः—भक्तिमार्ग के अनुयायी, भक्तगण; क्वचित्—किसी भी परिस्थिति में; भ्रश्यन्ति—नीचे गिरते हैं; मार्गात्—भक्ति मार्ग से; त्वयि—आप में; बद्ध-सौहृदाः—आपके चरणकमलों में पूरी तरह से अनुरक्त होने के कारण; त्वया—आपके द्वारा; अभिगुप्ताः—सारे संकटों से सुरक्षित; विचरन्ति—विचरण करते हैं; निर्भयाः—निर्भीक होकर; विनायक-अनीकप—शत्रु जो भक्ति विचारधारा का विरोध करने के लिए साज-सामान रखते हैं; मूर्धसु—अपने सिरों पर; प्रभो—हे प्रभु.

हे माधव, पूर्ण पुरुषोत्तम परमेश्वर, हे लक्ष्मीपति भगवान्, यदि आपके प्रेमी भक्तगण कभी भक्तिमार्ग से च्युत होते हैं, तो वे अभक्तों की तरह नहीं गिरते क्योंकि आप तब भी उनकी रक्षा करते हैं। इस तरह वे निर्भय होकर अपने प्रतिद्वन्द्वियों के मस्तकों को झुका देते हैं और भक्ति में प्रगति करते रहते हैं।

तात्पर्य : सामान्यतया भक्तों का पतन नहीं होता किन्तु यदि परिस्थितिवश ऐसा हो भी जाय तो भगवान् उनकी प्रबल अनुरक्ति के कारण सभी परिस्थितियों में उन्हें संरक्षण प्रदान करते हैं। भक्तगण गिरकर भी इतने प्रबल रहते हैं कि अपने शत्रुओं के मस्तकों पर चल सकें। हमने वास्तव में देखा है कि हमारे कृष्णभावनामृत आन्दोलन के अनेक विरोधी हैं, जैसे ''डीप्रोग्रामर्स'' जिन्होंने हमारे भक्तों के विरुद्ध एक भारी मुकद्दमा चला रखा था। हमने सोच रखा था कि इस मुकद्दमा के तय होने में काफी समय लगेगा किन्तु भक्तों की रक्षा भगवान् करते हैं अतः हम आशा के विपरीत एक दिन में ही मुकद्दमा जीत गये। इस तरह जो मुकद्दमा सालों चलने वाला था वह भगवान् के संरक्षण के कारण एक

ही दिन में तय हो गया क्योंकि *भगवद्गीता* (९.३१) में भगवान् ने वादा किया है—*कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति*—हे कुन्तीपुत्र! तुम निर्भय होकर घोषित कर दो कि मेरा भक्त कभी विनष्ट नहीं होता। इतिहास में भक्तों के ऐसे अनेक दृष्टान्त हैं—यथा चित्रकेतु, इन्द्रद्युम्न तथा महाराज भरत जो परिस्थितिवश च्युत हुए किन्तु फिर भी उनकी रक्षा हुई। उदाहरणार्थ, महाराज भरत एक हिरन के प्रति अपनी अनुरक्ति के कारण अगले जन्म में हिरन बने क्योंकि मरते समय उन्होंने हिरन का ही चिन्तन किया था (*यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्*)। भगवान् की सुरक्षा पाने से हिरन ने भगवान् के साथ अपने सम्बन्ध को स्मरण रखा जिससे अगले जन्म में उसका जन्म एक अच्छे ब्राह्मण परिवार में हुआ और उसने भक्ति सम्पन्न की (*शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते*)। इसी तरह चित्रकेतु का पतन हुआ और वह राक्षस वृत्रासुर बना किन्तु उसकी भी रक्षा की गई। इस तरह यदि कोई भक्ति योग के मार्ग से नीचे गिरता भी है, तो अन्ततोगत्वा उसकी रक्षा होती है। यदि कोई भक्त दृढ़ रूप से भक्तियोग में स्थित है, तो भगवान् उसकी सुरक्षा का वचन देते हैं (*कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति*)। किन्तु यदि परिस्थितिवश भक्त का पतन हो भी जाय तो माधव उसकी रक्षा करते हैं।

माधव शब्द सार्थक है। *मा,* लक्ष्मी, सभी ऐश्वर्यों की माता सदैव भगवान् के साथ रहती हैं और यदि भक्त भगवान् के सम्पर्क में रहता है, तो भगवान् के सारे ऐश्वर्य उसकी सहायता के लिए तैयार रहते हैं।

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥

(*भगवद्गीता* १८.७८)

जहाँ भगवान् कृष्ण तथा उनका भक्त अर्जुन अर्थात् पार्थ रहते हैं वहाँ विजय, ऐश्वर्य, असाधारण शक्ति तथा नैतिकता रहते हैं। भक्त का ऐश्वर्य *कर्मकाण्डविचार* का प्रतिफल नहीं होता। भक्त सदैव भगवान् के सारे ऐश्वर्यों द्वारा सुरक्षित रहता है। कोई भी उससे उन्हें वंचित नहीं कर सकता (*तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्*)। इस तरह भक्त अपने किसी भी विरोधी द्वारा परास्त नहीं किया जा सकता। इसलिए भक्त को चाहिए कि जानबूझ कर भक्ति के मार्ग से विचलित न हो। दृढ़ भक्त की

सुरक्षा भगवान् द्वारा निश्चित है।

सत्त्वं विशुद्धं श्रयते भवान्स्थितौ
शरीरिणां श्रेयउपायनं वपुः ।
वेदक्रियायोगतपःसमाधिभि-
स्तवार्हणं येन जनः समीहते ॥ ३४॥

शब्दार्थ

सत्त्वम्—अस्तित्व; विशुद्धम्—दिव्य, तीन गुणों से अतीत; श्रयते—स्वीकार करता है; भवान्—आप; स्थितौ—इस जगत के पालन के समय; शरीरिणाम्—सारे जीवों के; श्रेयः—परम कल्याण का; उपायनम्—लाभ के लिए; वपुः—दिव्य शरीर; वेद-क्रिया—वेदविहित अनुष्ठानों के द्वारा; योग—भक्ति द्वारा; तपः—तपस्या द्वारा; समाधिभिः—समाधि द्वारा; तव—तुम्हारी; अर्हणम्—पूजा; येन—ऐसे कार्यों से; जनः—मानव समाज; समीहते—कृतज्ञता प्रकट करता है।.

हे परमेश्वर, पालन करते समय आप त्रिगुणातीत दिव्य शरीर वाले अनेक अवतारों को प्रकट करते हैं। जब आप इस तरह प्रकट होते हैं, तो जीवों को वैदिक कर्म—यथा अनुष्ठान, योग, तपस्या, समाधि आपके चिंतन में भावपूर्ण तल्लीनता—में युक्त होने की शिक्षा देकर उन्हें सौभाग्य प्रदान करते हैं। इस तरह आपकी पूजा वैदिक नियमों के अनुसार की जाती है।

तात्पर्य : ‘*भगवद्गीता* (१८.३) में कहा गया है कि वैदिक कर्मकाण्ड, दान, तपस्या तथा अन्य संस्तुत कार्यों का परित्याग नहीं करना चाहिए (*यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यम्*)। जो आत्मासाक्षात्कार में बहुत उन्नत हो उसे भी वैदिक नियमों का पालन करना चाहिए (१८.५)—*यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्।* यहाँ तक कि निम्नतम अवस्था में भी कर्मियों को सलाह दी जाती है कि वे भगवान् के निमित्त कार्य करें।

यज्ञार्थात् कर्मणोऽन्यत्र
लोकोऽयं कर्मबन्धनः।

(*भगवद्गीता* ३.९)

“विष्णु के लिए यज्ञ कर्म करना होता है अन्यथा कर्म मनुष्य को इस भौतिक जगत से बाँध देता है।” *यज्ञार्थात् कर्मणः* शब्द सूचित करते हैं कि सभी प्रकार के कर्म करते हुए मनुष्य को स्मरण रखना चाहिए कि ये कर्म भगवान् को तुष्ट करने के लिए किये जाँय (*स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य*)। वैदिक नियमों के अनुसार मानव समाज का विभाजन होना चाहिए (*चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टम्*)। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रों में से हर एक को भगवान् की पूजा करनी सीखना चाहिए (*तमभ्यर्च्य*)। यही असली मानव

समाज है और इस प्रणाली के बिना हम पशु-समाज में रह जाते हैं।

मानव समाज के आधुनिक कार्यों का वर्णन *श्रीमद्भागवत* में *गोखर* (गौओं और गधों) के कार्यों के रूप में हुआ है—*स एव गोखरः।* हर व्यक्ति देहात्मबुद्धि से कार्य करता है, जिसमें समाज, मैत्री तथा आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों में सुधार के प्रति प्रेम निहित रहता है। इस तरह सारे कार्यकलाप अविद्या में सम्पन्न होते हैं। इसलिए भगवान् हमें सिखलाने के लिए आते हैं कि किस तरह वैदिक सिद्धान्तों के अनुसार कर्म करना चाहिए। इस कलियुग में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में प्रकट हुए और यह उपदेश दिया कि इस युग में वैदिक कार्यकलापों को ठीक से सम्पन्न नहीं किया जा सकता क्योंकि लोग अत्यन्त पतित हो चुके हैं। उन्होंने शास्त्रों के आधार पर यह संस्तुति की—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।

कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

''कलह तथा दिखावे के इस युग में उद्धार का एकमात्र साधन है भगवन्नाम का कीर्तन। इसके अलावा कोई दूसरा रास्ता नहीं है।'' इसीलिए कृष्णभावनामृत आन्दोलन विश्वभर के लोगों को सिखा रहा है कि हरे कृष्ण मंत्र का किस तरह कीर्तन किया जाय और यह सभी स्थानों तथा सभी समयों में अत्यन्त प्रभावशाली सिद्ध हुआ है। हमें वैदिक सिद्धान्तों की शिक्षा देने के लिए भगवान् प्रकट होते हैं जिससे हम उन्हें समझ सकें (*वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः*)। हमें यह जानना चाहिए कि जब कृष्ण तथा श्री चैतन्य महाप्रभु प्रकट हुए थे तो वे अपने शुद्धसत्त्व शरीरों के साथ प्रकट हुए थे। हमें कृष्ण अथवा चैतन्य महाप्रभु के शरीरों को अपने जैसा भौतिक मानने की भूल नहीं करनी चाहिए क्योंकि वे समस्त मानव समाज के लाभ हेतु प्रकट हुए थे। भगवान् अहैतुकी कृपावश विभिन्न युगों में अपने शुद्धसत्त्व दिव्य शरीर के साथ मानव समाज के दिव्य स्तर तक उत्थान हेतु प्रकट होते हैं। दुर्भाग्यवश आधुनिक राजनेता तथा अन्य नेता जीवन की स्थूल सुविधाओं (*यस्यात्मबुद्धिः कुणपे त्रिधातुके*) पर बल देते हैं और इस या उस वाद के कार्यकलापों पर अपना ध्यान एकाग्र करते हैं, जिन्हें वे कई प्रकार की पुष्पित सुन्दर भाषा में वर्णन करते हैं। मूलतः ऐसे कार्यकलाप पशुओं के कार्यकलाप हैं (*स एव गोखरः*)। हमें *भगवद्गीता* से कर्म करना सीखना चाहिए जो मानव ज्ञान के हेतु सब कुछ बताती है। इस प्रकार

हम इस कलियुग में भी सुखी बन सकते हैं।

सत्त्वं न चेद्धातरिदं निजं भवेद्
विज्ञानमज्ञानभिदापमार्जनम् ।
गुणप्रकाशैरनुमीयते भवान्
प्रकाशते यस्य च येन वा गुणः ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

सत्त्वम्—शुद्धसत्त्व, दिव्य; न—नहीं; चेत्—यदि; धातः—समस्त कारणों के कारण; इदम्—यह; निजम्—मेरा, आध्यात्मिक; भवेत्—हो जाता; विज्ञानम्—दिव्य ज्ञान; अज्ञान-भिदा—तमोगुण को भगाने वाला; अपमार्जनम्—पूर्णतया से विलुप्त; गुण-प्रकाशैः—ऐसा दिव्य ज्ञान जागृत करके; अनुमीयते—प्रकट होता है; भवान्—आप; प्रकाशते—प्रकट होते हैं; यस्य—जिसके; च—तथा; येन—जिससे; वा—अथवा; गुणः—गुण या बुद्धि।.

हे कारणों के कारण ईश्वर, यदि आपका दिव्य शरीर गुणातीत न होता तो मनुष्य पदार्थ तथा अध्यात्म के अन्तर को न समझ पाता। आपकी उपस्थिति से ही आपके दिव्य स्वभाव को जाना जा सकता है क्योंकि आप प्रकृति के नियन्ता हैं। आपके दिव्य स्वरूप की उपस्थिति से प्रभावित हुए बिना आपके दिव्य स्वभाव को समझना कठिन है।

तात्पर्य : कहा गया है—*त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।* अध्यात्म को जाने बिना भगवान् के दिव्य स्वभाव को नहीं जाना जा सकता। *श्रीमद्भागवत* (.१४.२९) में कहा गया है—

अथापि ते देव पदाम्बुजद्वय

प्रसादलेशानुगृहीत एव हि।

जानाति तत्त्वं भगवन्महिम्नो

नचान्यएकोऽपिचिरं विचिन्वन्॥

भगवान् की कृपा होने पर ही उन्हें समझा जा सकता है। प्रकृति के गुणों में स्थित रह कर हजारों वर्षों के चिन्तन के बाद भी उन्हें नहीं समझा जा सकता। भगवान् के असंख्य रूप हैं (*रामादिमूर्तिषु कलानियमेन तिष्ठन्*) और यदि भगवान् रामचन्द्र, नृसिंहदेव, कृष्ण तथा बलराम जैसे रूप दिव्य न होते तो अनन्तकाल से भक्तों द्वारा इनकी पूजा क्यों चली आ रही होती? *भक्त्या मामभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्त्वतः* (भगवद्गीता १८.५५)। जो लोग भगवान् की उपस्थिति में अपने दिव्य स्वभाव को जागृत कर लेते हैं और भक्ति के नियमों का पालन करते हैं, वे ही भगवान् कृष्ण, भगवान् रामचन्द्र तथा अन्य अवतारों को, जो इस भौतिक जगत के नहीं होते अपितु जनता के हितार्थ वैकुण्ठ से आते

हैं, समझ सकते हैं। जो इस विधि का पालन नहीं करता वह प्रकृति के अनुसार मनमाने ढंग से ईश्वर के किसी रूप की कल्पना कर लेता है और भगवान् के प्रति असली ज्ञान को कभी जागृत नहीं कर सकता। *भक्त्या मामभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्त्वत:* कथन इस बात का द्योतक है कि भक्ति के विधानों के अनुसार भगवान् की पूजा किये बिना दिव्य स्वभाव को जागृत नहीं किया सकता। भगवान् की अनुपस्थिति में भी मूर्तिपूजा भक्त के दिव्य स्वभाव को जागृत करनेवाली है, जिससे भक्त भगवान् के चरणकमलों में और अधिक अनुरक्त हो जाता है।

कृष्ण के प्रादुर्भाव से भगवान् की समस्त काल्पनिक मूर्तिकला का उत्तर मिल जाता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने गुणानुसार भगवान् के स्वरूप की कल्पना करता है। *ब्रह्म-संहिता* में कहा गया है कि भगवान् सबसे प्राचीन पुरुष हैं। इसलिए कुछ धार्मिक समुदाय ईश्वर को अत्यन्त प्राचीन मानते हैं अत: वे ईश्वर का अंकन एक अत्यन्त वृद्ध पुरुष के रूप में करते हैं। किन्तु उसी *ब्रह्म-संहिता* में इसका विरोध हुआ है—यद्यपि ईश्वर समस्त जीवों में प्राचीन हैं किन्तु साथ ही वे नित्य युवा हैं। *श्रीमद्भागवत* में उनका यथार्थ वर्णन इस प्रकार हुआ है—*विज्ञानम् अज्ञानभिदापमार्जनम्। विज्ञान* का अर्थ है ईश्वर का दिव्य ज्ञान। *विज्ञान* अनुभूत ज्ञान भी है। दिव्य ज्ञान को शिष्य-प्रणाली की परम्परा से उसी तरह ग्रहण किया जाता है, जिस तरह ब्रह्मा ने कृष्ण के ज्ञान को *ब्रह्म-संहिता* में प्रस्तुत किया है। *ब्रह्म-संहिता* विज्ञान है, जो ब्रह्मा द्वारा अनुभव किया गया दिव्य अनुभव है। इस तरह उन्होंने दिव्य धाम में कृष्ण की लीलाओं को तथा उनके स्वरूप को प्रस्तुत किया। *अज्ञानभिदा* का अर्थ है "जो समस्त प्रकार की कल्पनाओं का सामना कर सके"। लोग अज्ञानवश भगवान् के स्वरूप की कल्पना करते हैं। इस तरह उनकी कल्पनाओं के अनुसार कभी उनका स्वरूप होता है, तो कभी नहीं भी होता। लेकिन *ब्रह्म-संहिता* में कृष्ण की प्रस्तुति एक विज्ञान है—विशिष्ट अनुभूत ज्ञान जिसे ब्रह्मा ने अनुभव करके प्रस्तुत किया और महाप्रभु चैतन्य ने स्वीकार किया। इसके विषय में किसी प्रकार का सन्देह नहीं है। श्रीकृष्ण का स्वरूप, श्रीकृष्ण की बाँसुरी, श्रीकृष्ण का रंग—सभी वास्तविकताएँ हैं। यहाँ यह कहा गया है कि यह *विज्ञानम्* सभी प्रकार की कल्पनाओं को सदा पराजित करने वाला है। इसीलिए देवताओं ने स्तुति की कि जब तक आप कृष्ण रूप में प्रकट नहीं होते तब तक न तो *अज्ञानभिदा* (*काल्पनिक ज्ञान की अविद्या*) न ही *विज्ञानम्* की अनुभूति होगी। *अज्ञानभिदापमार्जनम्*—आपके प्राकट्य से अज्ञान की

कल्पना लुप्त हो जाएगी और ब्रह्माजी जैसे महाजनों का असली अनुभूत ज्ञान स्थापित हो सकेगा। लोग तीन गुणों से प्रभावित होकर अपनी प्रकृति के अनुसार विभिन्न प्रकारों में ईश्वर की कल्पना करते हैं। इस तरह ईश्वर को विभिन्न प्रकारों से प्रस्तुत किया जाता है किन्तु आपके प्राकट्य से इसका सत्यापन हो जाएगा कि ईश्वर का असली स्वरूप क्या है।''

निर्विशेषवादी सबसे बड़ी भूल यह सोचने की करते हैं कि जब भगवान् अवतरित होते हैं, तो सतोगुणी पदार्थ का रूप स्वीकार करते हैं। वस्तुत: कृष्ण या नारायण का स्वरूप किसी भी भौतिक विचार से परे होता है। यहाँ तक कि सबसे बड़े निर्विशेषवादी शंकराचार्य ने भी स्वीकार किया है—*नारायण: परोऽव्यक्तात्*—यह भौतिक सृष्टि *अव्यक्त* द्वारा की जाती है और कृष्ण किसी भी भौतिक विचार से परे हैं। *श्रीमद्भागवतम्* में इसे ही *शुद्धसत्त्व* या दिव्य कहा गया है। भगवान् सतोगुणी नहीं हैं क्योंकि वे भौतिक सतोगुण पद से ऊपर हैं। वे सच्चिदानन्दस्वरूप हैं।

देवताओं ने स्तुति की, ''हे प्रभु! जब आप विभिन्न अवतारों में प्रकट होते हैं, तो परिस्थितियों के अनुसार भिन्न भिन्न नाम तथा स्वरूप धारण करते हैं। आपका नाम भगवान् कृष्ण है क्योंकि आप सर्व आकर्षक हैं। आप श्यामसुन्दर कहाते हैं क्योंकि आपका सौन्दर्य दिव्य है। *श्याम* का अर्थ साँवला है फिर भी वे कहते हैं कि आप हजारों कामदेवों से अधिक सुन्दर हैं। *कन्दर्प कोटि कमनीय।* यद्यपि आप श्याममेघ जैसे रंग वाले हैं किन्तु आप परम ब्रह्म हैं अतएव आपका सौन्दर्य कामदेव के कोमल शरीर से भी अधिक आकर्षक है। आप कभी कभी गिरिधारी कहलाते हैं क्योंकि आपने गोवर्धन पर्वत को उठाया था। आप कभी कभी नन्दनन्दन या वासुदेव या देवकीनन्दन कहलाते हैं क्योंकि आप महाराज नन्द, देवकी या वसुदेव के पुत्र रूप में प्रकट होते हैं। निर्विशेषवादी सोचते हैं कि आपके अनेक नाम या स्वरूप आपके कार्य विशेष के अनुसार होते हैं क्योंकि वे आपको भौतिक दृष्टि से देखते हैं।''

''हे भगवन्! आपको समझने की विधि यह नहीं है कि आपके परम स्वभाव, रूप या कार्यकलापों की कल्पना की जाए। भक्ति में संलग्न होने पर ही आपके स्वभाव, आपके दिव्य स्वरूप, नाम तथा गुण को समझा जा सकता है। वास्तव में जिसे आपके चरणकमलों की सेवा करने में तनिक भी रुचि होती है, वह आपके दिव्य स्वभाव, रूप तथा गुण को समझ सकता है। अन्य लोग हजारों वर्षों तक चिन्तन करने के बाद भी आपके एक अंश को भी नहीं जान सकते।'' दूसरे शब्दों में, भगवान् कृष्ण

कभी भी अभक्तों की समझ में नहीं आते क्योंकि कृष्ण का वास्तविक स्वरूप *योगमाया* के आवरण से ढका रहता है। *भगवद्गीता* से (७.२५) पुष्टि होती है—*नाहं प्रकाश: सर्वस्य*—मैं हर एक को दर्शन नहीं देता। जब कृष्ण आये तो वे कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि में वास्तव में उपस्थित हुए और सबों ने उन्हें देखा। किन्तु सभी लोग यह नहीं समझ पाये थे कि वे भगवान् हैं। तथापि जो भी उनके सामने मरा उसे भवबन्धन से पूर्ण मुक्ति प्राप्त हुई और वह वैकुण्ठ लोक को गया।

चूँकि मूढ़ लोग अपनी आध्यात्मिक प्रकृति को जागृत नहीं करते इसलिए वे कृष्ण या राम को नहीं समझ पाते (*अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्*)। यहाँ तक कि बड़े बड़े विद्वान कृष्ण को काल्पनिक मानते हैं क्योंकि वे उन आचार्यों के प्रयासों पर विचार नहीं करते जिन्होंने अपने भाष्यों तथा लेखों में भक्ति की संस्तुति की है। दिव्य ज्ञान के अभाव तथा कृष्णभावनामृत जागृत करने की असफलता के कारण ऐसा होता है। मनुष्य को प्रश्न करने का इतना सामान्य बोध होना चाहिए कि यदि कृष्ण या राम काल्पनिक होते तो श्रीधर स्वामी, रूप गोस्वामी, सनातन गोस्वामी, वीर राघव, विजयध्वज, वल्लभाचार्य जैसे प्रकाण्ड विद्वान एवं गण्यमान्य आचार्य *श्रीमद्भागवत* का भाष्य लिखने तथा कृष्ण के विषय में रचना करने में इतना समय क्यों गँवाते।

न नामरूपे गुणजन्मकर्मभि-
निरूपितव्ये तव तस्य साक्षिण: ।
मनोवचोभ्यामनुमेयवर्त्मनो
देव क्रियायां प्रतियन्त्यथापि हि ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; नाम-रूपे—नाम तथा रूप; गुण—गुण; जन्म—जन्म; कर्मभि:—कार्यकलापों या लीलाओं से; निरूपितव्ये—निश्चित नहीं किये जा सकते; तव—आपके; तस्य—उसके; साक्षिण:—साक्षी; मन:—मन का; वचोभ्याम्—शब्दों द्वारा; अनुमेय—धारणा; वर्त्मन:—रास्ता; देव—हे प्रभु; क्रियायाम्—भक्तिकार्यों में; प्रतियन्ति—अनुभव करते हैं; अथ अपि—फिर भी; हि—निस्सन्देह (भक्तों द्वारा आप अनुभवगम्य हैं)।

हे परमेश्वर, आपके दिव्य नाम तथा स्वरूप का उन व्यक्तियों को पता नहीं लग पाता, मात्र जो केवल कल्पना के मार्ग पर चिन्तन करते हैं। आपके नाम, रूप तथा गुणों का केवल भक्ति द्वारा ही पता लगाया जा सकता है।

तात्पर्य : *पद्म पुराण* में कहा गया है—

अत: श्रीकृष्णनामादि न भवेद् ग्राह्यमिन्द्रियै।

सेवोन्मुखे हि जिह्वादौ स्वयमेव स्फुरत्यद: ॥

''मनुष्य अपनी भौतिकता से दूषित इन्द्रियों के द्वारा श्रीकृष्ण के नाम, रूप, गुण तथा लीलाओं की दिव्य प्रकृति को नहीं समझ सकता। जब वह भगवान् के प्रति दिव्य सेवाभाव से संतृप्त हो जाता है तभी उसे भगवान् के दिव्य नाम, रूप, गुण तथा लीलाएँ प्रकाशित होती हैं। चूँकि कृष्ण और उनके नाम, रूप तथा कार्यकलाप सभी दिव्य हैं अत: सामान्यव्यक्ति, या जिन्हें अत्यल्प ज्ञान है वे उन्हें नहीं समझ सकते। अभक्त विद्वान तक कृष्ण को काल्पनिक मानते हैं। यद्यपि तथाकथित विद्वान एवं भाष्यकार कृष्ण को ऐसा ऐतिहासिक पुरुष नहीं मानते जो महाभारत में अंकित कुरुक्षेत्र के युद्धस्थल में उपस्थित थे फिर भी वे *भगवद्गीता* तथा अन्य ऐतिहासिक ग्रंथों पर भाष्य लिखने को बाध्य होते हैं। *सेवोन्मुखे हि जिह्वादौ स्वयमेव स्फुरत्यद:*—कृष्ण की पूर्ण भावनाभावित सेवा में प्रवृत्त होने पर ही कृष्ण के नाम, रूप, गुण तथा कार्य स्वत: प्रकाशित होते हैं। इसकी पुष्टि कृष्ण के ही शब्दों में *भगवद्गीता* द्वारा (१८.५५) होती है—

भक्त्या मामभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्त्वत: ।

ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम् ॥

''केवल भक्ति के द्वारा भगवान् को यथारूप में जाना जा सकता है। इस तरह कृष्णभावनाभावित होने पर ही भगवद्धाम में प्रवेश किया जा सकता है।'' *सेवोन्मुख* होकर ही भगवान् के नाम, रूप तथा गुणों की अनुभूति हो सकती है।

देवताओं ने कहा, ''हे प्रभु! निर्विशेषवादी अभक्त यह नहीं समझ सकते कि आपका नाम आपके स्वरूप से अभिन्न है।'' ब्रह्म होने से भगवान् के नाम और वास्तविक स्वरूप में कोई अन्तर नहीं रहता। भौतिक जगत में स्वरूप और नाम में अन्तर होता है। आम का फल आम के नाम से भिन्न होता है। केवल ''आम, आम, आम'' कहने से किसी को आम का स्वाद नहीं मिल सकता। किन्तु भक्त जानता है कि भगवान् के नाम तथा रूप में कोई अन्तर नहीं होता इसीलिए वह हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे। हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे का कीर्तन करता है और अनुभव करता है कि वह सदैव कृष्ण के साथ है।

जो भगवद् ज्ञान में बढ़े–चढ़े नहीं हैं, उन्हें कृष्ण अपनी दिव्य लीलाएँ दिखलाते हैं। ऐसे लोग

भगवान् की लीलाओं के चिन्तन मात्र से लाभ उठा सकते हैं। चूँकि भगवान् के दिव्य नाम और स्वरूप में कोई अन्तर नहीं होता इसलिए भगवान् की दिव्य लीलाओं और उनके स्वरूप में भी कोई अन्तर नहीं होता। अल्पज्ञों के लिए (यथा स्त्रियाँ, श्रमिक, या व्यापारी) महर्षि वेदव्यास ने *महाभारत* की रचना की। *महाभारत* में कृष्ण अपने विभिन्न कार्यकलापों में विद्यमान हैं। *महाभारत* इतिहास है और कृष्ण के दिव्य कार्यकलापों के अध्ययन, श्रवण तथा स्मरण से अल्पज्ञों को भी शुद्ध भक्तों का पद प्राप्त हो सकता है।

कृष्ण के चरणकमलों के ध्यान में निरन्तर लीन रहने वाले और कृष्णभावनामृत में रहते हुए भक्ति में मग्न रहने वाले शुद्ध भक्तों को कभी भी भौतिक जगत में रहने वाले नहीं मानना चाहिए। श्रील रूप गोस्वामी ने बतलाया है कि मनसा-वाचा-कर्मणा कृष्ण-भक्ति में लगे रहने वाले लोग इसी शरीर में मुक्त माने जाते हैं। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* में भी हुई है—जो लोग भगवान् की सेवा में संलग्न होते हैं, वे पहले से ही भौतिक स्थिति को पार कर चुके होते हैं।

भगवान् भक्तों तथा अभक्तों को जीवन के चरमलक्ष्य की अनुभूति के लिए समान अवसर प्रदान करते हैं। भक्तों को भगवान् का दर्शन करने और उनकी पूजा करने का प्रत्यक्ष अवसर प्राप्त होता है। जो लोग इस पद को प्राप्त नहीं होते उन्हें भगवान् के कार्यकलापों से परिचित होने और उसी पद तक पहुँचने का अवसर मिलता है।

ब्रह्म-संहिता (५.३८) में कहा गया हैं—

प्रेमाञ्जनच्छुरितभक्ति विलोचनेन

सन्तः सदैव हृदयेषु विलोकयन्ति।

यं श्यामसुन्दरमचिन्त्यगुणस्वरूपं

गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥

यद्यपि कृष्ण का दिव्य स्वरूप श्यामल है किन्तु भगवान् से प्रेम करने वाले भक्त श्यामसुन्दर के रूप में उनका गुणगान करते हैं। भगवान् का स्वरूप इतना सुन्दर है कि *ब्रह्म-संहिता* (५.३०) में भी कहा गया है—

वेणुं क्वणन्तमरविन्ददलायताक्षं

बर्हावतंसमसिताम्बुदसुन्दरांगम् ।

कन्दर्पकोटिकमनीयविशेषशोभं

गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥

''मैं आदि भगवान् गोविन्द की पूजा करता हूँ जो दिव्य बाँसुरी का वादन करते हैं। उनके नेत्र कमलपुष्पों के समान हैं। वे मोरपंखों से सुशोभित हैं और उनका वर्ण स्वच्छ श्यामल बादलों के समान है। उनका यह स्वरूप करोड़ों कामदेवों को लजाने वाला है।'' भगवान् का यह सौन्दर्य उन भक्तों के द्वारा देखा जाता है, जो उनसे प्रेम करते हैं, वे भक्त जिनकी आँखों में भगवत्प्रेम रूपी अंजन लगा रहता है। (*प्रेमाञ्जनच्छुरितभक्तिविलोचनेन*)

भगवान् को गिरिधारी या गिरिवरधारी भी कहा जाता है। चूँकि कृष्ण ने भक्तों के लिए गोवर्धन पर्वत उठा लिया था अत: भक्तगण उनकी अचिन्त्य शक्ति की प्रशंसा करते हैं किन्तु अभक्तगण भगवान् की अचिन्त्य शक्ति को देख करके भी उनके कार्यकलापों को काल्पनिक मानते हैं। एक भक्त और अभक्त में यही अन्तर होता है। अभक्तगण भगवान् को कोई नाम नहीं दे सकते फिर भी वे श्यामसुन्दर तथा गिरिधारी कहलाते हैं। इसी तरह भगवान् देवकीनन्दन तथा यशोदानन्दन कहलाते हैं, क्योंकि उन्होंने माता देवकी तथा माता यशोदा के पुत्र रूप में भूमिका निभाई। वे गायों तथा बछड़ों का पालन करने के कारण गोपाल कहलाते हैं। इसीलिए कोई संसारी नाम न होने पर भी वे भक्तों द्वारा देवकीनन्दन, यशोदानन्दन, गोपाल तथा श्यामसुन्दर कहकर सम्बोधित किये जाते हैं। ये सभी दिव्य नाम हैं जिनकी महिमा भक्तगण ही जानते हैं, अभक्तजन नहीं।

पुरुष रूप में कृष्ण के इतिहास को देखा तो सबों ने है किन्तु जो भक्त हैं और भगवान् से प्रेम करते हैं, वे ही इस इतिहास की प्रशंसा करते हैं जबकि अभक्तगण, प्रेम से वंचित होने के कारण, भगवान् के कार्यों, स्वरूप तथा गुणों को काल्पनिक मानते हैं। अत: इस श्लोक में *न नामरूपे गुणजन्मकर्मभिर्निरूपितव्ये तव तस्य साक्षिण:* की व्याख्या हुई है। इस सम्बन्ध में श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने दृष्टान्त दिया है कि पीलिया रोग से पीड़ित व्यक्तियों को मिश्री की मिठास का स्वाद नहीं मिल पाता यद्यपि उन्हें पता है कि मिश्री मीठी होती है। इसी तरह अभक्त भवरोग के कारण भगवान् के नाम, रूप, गुण तथा कार्यों को नहीं समझ पाते यद्यपि वे महाजनों या इतिहास के माध्यम

से भगवान् के कार्यों का अवलोकन करते रहते हैं। पुराण प्राचीन प्रामाणिक इतिहास-ग्रंथ हैं किन्तु अभक्तगण, उन्हें, विशेषतया वैदिक ज्ञान के सार *श्रीमद्भागवतम्* को नहीं समझ पाते। यहाँ तक कि वे *भगवद्गीता* के दिव्य ज्ञान के प्रारम्भिक अध्ययन को भी नहीं समझ पाते। वे मात्र चिन्तन द्वारा बेतुके विकारों से युक्त मनमाना भाष्य लिखते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि *भक्तियोग* का अभ्यास किये बिना और दिव्य पद तक उठे बिना भगवान् को या उनके नाम, रूप, गुणों या कार्यों को नहीं समझा जा सकता। किन्तु यदि भाग्यवश भक्तों की संगति मिल जाय और मनुष्य भगवान् तथा उनके स्वरूप को वास्तव में समझ ले तो वह तुरन्त मुक्त हो जाता है। *भगवद्गीता* (४.९) में भगवान् कहते हैं—

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वत: ।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ॥

"हे अर्जुन! जो मेरे प्राकट्य तथा कर्मों की दिव्य प्रकृति को जानता है, वह इस शरीर को त्यागने के बाद इस भौतिक जगत में पुन: जन्म नहीं लेता अपितु मेरे दिव्य धाम को प्राप्त होता है।"

इसीलिए श्रील रूप गोस्वामी ने कहा है कि भगवान् के प्रति स्नेह तथा प्रेम से भक्तगण अपने शब्द द्वारा उनसे अपने मन की बात व्यक्त करते हैं। किन्तु अन्य लोग ऐसा नहीं कर पाते जैसाकि *भगवद्गीता* में पुष्टि की गई है। (*भक्त्या मामभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्त्वत:*)

शृण्वन्गृणन्संस्मरयंश्च चिन्तयन्
नामानि रूपाणि च मङ्गलानि ते ।
क्रियासु यस्त्वच्चरणारविन्दयो-
राविष्टचेता न भवाय कल्पते ॥ ३७॥

शब्दार्थ

शृण्वन्—निरन्तर भगवान् के विषय में सुनते हुए (श्रवणं कीर्तनं विष्णोः); गृणन्—कीर्तन करते हुए या सुनाते हुए; संस्मरयन्—स्मरण करते हुए (भगवान् के चरणकमलों तथा उनके स्वरूप के विषय में निरन्तर चिन्तन करते हुए); च—तथा; चिन्तयन्—चिन्तन करते हुए (भगवान् के कार्यकलापों का); नामानि—उनके दिव्य नाम; रूपाणि—उनके दिव्य स्वरूप; च—भी; मङ्गलानि—दिव्य होने से शुभ; ते—आपके; क्रियासु—भक्ति में लगे रहने पर; यः—जो; त्वत्-चरण-अरविन्दयोः—आपके चरण कमलों पर; आविष्ट-चेताः—पूर्णतया लीन रहनेवाला भक्त; न—नहीं; भवाय—भौतिक पद के लिए; कल्पते—योग्य है।

विविध कार्यों में लगे रहने पर भी जिन भक्तों के मन आपके चरणकमलों में पूरी तरह लीन रहते हैं और जो निरन्तर आपके दिव्य नामों तथा रूपों का श्रवण, कीर्तन, चिन्तन करते हैं तथा अन्यों को स्मरण कराते हैं, वे सदैव दिव्य पद पर स्थित रहते हैं और इस प्रकार से पूर्ण पुरुषोत्तम

भगवान् को समझ सकते हैं।

तात्पर्य : इस श्लोक में बतलाया गया है कि भक्तियोग का किस तरह अभ्यास किया जा सकता है। श्रील रूप गोस्वामी ने कहा है कि जिस किसी ने मन से, वचन से तथा कर्म से (*कर्मणामनसा गिरा*) भगवान् की सेवा में अपना जीवन समर्पित कर दिया है (*ईहा यस्य हरेर्दास्ये*) वह चाहे जीवन की किसी भी स्थिति में क्यों न हो, (*निखिलास्वप्यवस्थासु*) वह बद्ध न रहकर मुक्त हो जाता है (*जीवन्मुक्तः स उच्यते*)। ऐसा भक्त भौतिक शरीर धारण करते हुए भी अध्यात्म में स्थित होता है। *नारायणपराः सर्वे न कुतश्चन बिभ्यति*—दिव्य कार्यों में लगे रहने के कारण वह भौतिक देहधारी बनने से भयभीत नहीं रहता। (*भागवत्* ६.१७.२८) इस जीवन्मुक्त अवस्था का दृष्टान्त प्रस्तुत करते हुए श्री चैतन्य महाप्रभु ने प्रार्थना की है—*मम जन्मनि जन्मनीश्वरे भवताद् भक्तिरहैतुकी त्वयि*—मैं तो जन्म-जन्मांतर केवल आपकी अहैतुकी भक्ति की कामना करता हूँ (शिक्षाष्टक, ४)। यदि भगवान् की इच्छा से कोई भक्त इस भौतिक जगत में जन्म लेता भी है, तो भी उसकी भक्ति में अवरोध नहीं आता। जब राजा भरत से भूल हो गई और अगले जन्म में वे हिरन बन गये तो उनकी भक्ति में अवरोध नहीं आया यद्यपि उन्हें उपेक्षा के लिए थोड़ा दण्ड मिला। नारदमुनि कहते हैं कि यदि कोई भक्तिपथ से च्युत भी होता है, तो उसका विनाश नहीं होता किन्तु अभक्तों का सर्वनाश हो जाता है क्योंकि वे भक्ति नहीं करते। इसीलिए *भगवद्गीता* (९.१४) में संस्तुति की गई है कि मनुष्य को चाहिए कि कम से कम हरे कृष्ण महामंत्र का कीर्तन तो किया करे।

सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः।
नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते॥

"महात्मा लोग सदैव मेरे यश का कीर्तन करके दृढ़ संकल्पपूर्वक प्रयास करके मेरे समक्ष नतमस्तक होकर भक्तिपूर्वक मेरी पूजा करते हैं।"

मनुष्य को चाहिए कि नौ प्रकार के भक्तियोग का परित्याग न करे (*श्रवणं कीर्तनं विष्णो स्मरणं पादसेवनम्...*)। इनमें से सबसे महत्त्वपूर्ण विधि है गुरु, साधु तथा शास्त्र से श्रवण करना (*श्रवणम्*)। *साधु-शास्त्र-गुरु-वाक्य, चित्तेते करिया ऐक्य।* हमें अभक्तों की टीकाएँ तथा व्याख्याएँ नहीं सुननी चाहिए क्योंकि श्रील सनातन गोस्वामी ने *पद्मपुराण* से उद्धरण देते हुए इसका निषेध किया है—

अवैष्णवमुखोद्‌गीर्णं पूतं हरिकथामृतम् ।

श्रवणं नैव कर्तव्यं सर्पोच्छिष्टं यथा पयः ॥

हमें चाहिए कि दृढ़तापूर्वक इस आदेश का पालन करें और मायावादियों, निर्विशेषवादियों, शून्यवादियों, राजनीतिज्ञों अथवा तथाकथित विद्वानों से श्रवण करने का प्रयास न करें। हमें ऐसे अशुभ संग से पूरी तरह बचते हुए शुद्ध भक्तों से ही सुनना चाहिए। इसीलिए श्रील रूप गोस्वामी ने कहा है—*श्रीगुरुपदाश्रयः*—अर्थात् मनुष्य को चाहिए कि शुद्ध भक्त के चरणकमलों की शरण खोजे क्योंकि वही गुरु बन सकता है। श्री चैतन्य महाप्रभु का उपदेश है कि जो *भगवद्‌गीता* के आदेशों का दृढ़तापूर्वक पालन करता है, वही गुरु है—*यारेदेखा तारे कह, 'कृष्ण'—उपदेश* (*चैतन्यचरितामृत, मध्य* ७.१२८)। वावदूक या मदारी या जादूगर कभी गुरु नहीं होता। गुरु तो वह है, जो *भगवद्‌गीता* प्रस्तुत करता है, कृष्ण के उपदेशों को यथारूप में प्रस्तुत करता है। *श्रवण* बहुत महत्त्वपूर्ण है, अतः वैष्णव साधु, गुरु तथा शास्त्र से ही श्रवण करना चाहिए।

इस श्लोक का *क्रियासु* शब्द महत्त्वपूर्ण है। इसका अर्थ है ''शारीरिक श्रम द्वारा'' या ''कार्य द्वारा।'' मनुष्य को भगवान् की व्यावहारिक सेवा करनी चाहिए। हमारे कृष्णभावनामृत आन्दोलन में हमारा सारा कार्य कृष्णसाहित्य के वितरण पर केन्द्रित रहता है। यह अत्यावश्यक है। किसी के पास भी पहुँच कर उससे कृष्णसाहित्य पढ़ने के लिए प्रेरित किया जा सकता है, जिससे भविष्य में वह भक्त बन सके। इस श्लोक में ऐसे ही कार्यों की संस्तुति की गई है। *क्रियासु यस्त्वच्चरणारविन्दयोः।* ऐसे कार्य भक्त को भगवान् के चरणकमलों का सदा स्मरण दिलाते रहेंगे। कृष्णविषयक पुस्तकों के वितरण में चित्त एकाग्र करने से मनुष्य कृष्ण में लीन रहता है। यही *समाधि* है।

दिष्ट्या हरेऽस्या भवतः पदो भुवो
भारोऽपनीतस्तव जन्मनेशितुः ।
दिष्ट्याङ्कितां त्वत्पदकैः सुशोभनै-
र्द्रक्ष्याम गां द्यां च तवानुकम्पिताम् ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

दिष्ट्या—**भाग्यवश**; हरे—**हे भगवान्**; अस्याः—**इस (संसार) के**; भवतः—**आपके**; पदः—**स्थान का**; भुवः—**इस धरा पर**; भारः—**असुरों द्वारा उत्पन्न बोझ**; अपनीतः—**दूर हुआ**; तव—**आपके**; जन्मना—**अवतार लेने से**; ईशितुः—**सबके नियन्ता आप**; दिष्ट्या—**तथा भाग्य से**; अङ्किताम्—**चिन्हित**; त्वत्-पदकैः—**आपके चरणकमलों से**; सु-शोभनैः—**शंख, चक्र, पद्म तथा गदा**

चिह्नों से अलंकृत; द्रक्ष्याम—हम देखेंगे; गाम्—इस पृथ्वी पर; द्याम् च—तथा स्वर्ग में भी; तव अनुकम्पिताम्—हम पर आपकी अहैतुकी कृपा होने से।.

हे प्रभु, हम भाग्यशाली हैं कि आपके प्राकट्य से इस धरा पर असुरों के कारण जो भारी बोझा है, वह शीघ्र ही दूर हो जाता है। निस्सन्देह हम अत्यन्त भाग्यशाली हैं क्योंकि हम इस धरा में तथा स्वर्गलोक में भी आपके चरणकमलों को अलंकृत करने वाले शंख, चक्र, पद्म तथा गदा के चिन्हों को देख सकेंगे।

तात्पर्य : भगवान् के चरणकमलों के तलवे शंख, चक्र, गदा, पद्म चिह्नों से अंकित होते हैं। साथ ही ध्वजा तथा वज्र भी अंकित रहते हैं। कृष्ण जब इस धराधाम में या स्वर्गलोक में विचरण करते हैं, तो ये चिह्न दृष्टिगोचर होते रहते हैं। वृन्दावन धाम दिव्य स्थान है क्योंकि यहाँ कृष्ण कई बार विचरण करते हैं। वृन्दावनवासी भाग्यशाली थे कि उन्होंने इन चिह्नों को जगह जगह देखा। जब अक्रूर कृष्ण तथा बलराम को कंस द्वारा आयोजित उत्सव में ले जाने के लिए वृन्दावन गये तो वे वृन्दावन की भूमि पर कृष्ण के चरणचिह्नों को देख कर भूमि पर लोटकर कराहने लगे। ये चिह्न उन्हीं भक्तों को दिखते हैं जिन पर भगवान् की अहैतुकी कृपा होती है (*तवानुकम्पिताम्*)। देवतागण केवल इसलिए हर्षित नहीं थे कि भगवान् असुरों का भार दूर कर देंगे अपितु इसलिए भी कि वे भगवान् के चरणों पर अंकित चिह्नों को भी भूमि पर देख सकेंगे। गोपियाँ चरागाहों में विचरण करते कृष्ण के चरणकमलों का सदैव चिन्तन करती रहती थीं और जैसाकि पिछले श्लोक में कहा गया है, केवल कृष्ण के चरणकमलों के चिन्तन से गोपियाँ अध्यात्म में लीन रहती थीं (*आविष्टचेता न भवाय कल्पते*)। गोपियों की ही तरह जो भगवान् के विचार में सदैव लीन रहता है, वह भौतिक स्तर से ऊपर स्थित रहता है और फिर इस भौतिक जगत में नहीं आता। अत: हमारा कर्तव्य है कि हम सदैव भगवान् के चरणकमलों के विषय में सुनें, कीर्तन करें और चिन्तन करें जिस तरह कि वृन्दावन में रहने वाले वैष्णवजन अहर्निश भगवान् के ही चरणकमलों का चिन्तन करते रहते हैं।

न तेऽभवस्येश भवस्य कारणं
विना विनोदं बत तर्कयामहे ।
भवो निरोध: स्थितिरप्यविद्यया
कृता यतस्त्वय्यभयाश्रयात्मनि ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; ते—आपके; अभवस्य—जो जैसे कि सामान्य जीव, उसका जन्म, मृत्यु, पालन पोषण से परे है, जो, उसका; ईश—हे ईश्वर; भवस्य—आपके जन्म का; कारणम्—कारण; विना—रहित; विनोदम्—लीलाएँ (आपको विवश होकर इस जगत में नहीं आना पड़ता है); बत—फिर भी; तर्कयामहे—हम तर्क-वितर्क नहीं कर सकते (लेकिन इन्हें अपकी लीला ही समझें); भव:—जन्म; निरोध:—मृत्यु; स्थिति:—पालन; अपि—भी; अविद्यया—माया द्वारा; कृता:—किया गया; यत:—क्योंकि; त्वयि—तुममें; अभय-आश्रय—हे सबों के निर्भय आश्रय; आत्मनि—सामान्य जीवन का।

हे परमेश्वर, आप कोई सामान्य जीव नहीं जो सकाम कर्मों के अधीन इस भौतिक जगत में उत्पन्न होता है। अत: इस जगत में आपका प्राकट्य या जन्म एकमात्र ह्लादिनी शक्ति के कारण होता है। इसी तरह आपके अंश रूप सारे जीवों के कष्टों—यथा जन्म, मृत्यु तथा जरा का कोई दूसरा कारण नहीं सिवाय इसके कि ये सभी आपकी बहिरंगा शक्ति द्वारा संचालित होते हैं।

तात्पर्य : जैसाकि *भगवद्गीता* (१५.७) में कहा गया है—*ममैवंशो जीवलोके जीवभूत: सनातन:*—सारे जीव भगवान् के अंश रूप हैं अतएव गुणात्मक रूप में वे भगवान् से अभिन्न हैं। हम यह समझ सकते हैं जब भगवान् अवतार के रूप में प्रकट होते हैं या अन्तर्धान होते हैं, तो इसका कारण उनकी ह्लादिनी शक्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता। हम भगवान् को प्रकट होने के लिए बाध्य नहीं कर सकते। वे *भगवद्गीता* (४.७) में कहते हैं—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

"हे भारत! जब जब धर्म की हानि होती है और अधर्म का प्राधान्य होता है तब तब मैं अवतरित होता हूँ।" जब असुरों द्वारा उत्पन्न भार को कम करने की आवश्यकता होती है, तो भगवान् इसे कई प्रकार से कर सकते हैं क्योंकि उनके पास नानाविध शक्तियाँ हैं। उन्हें अवतार के रूप में आने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि वे सामान्य जीवों की तरह किसी काम को करने के लिए बाध्य नहीं किये जा सकते। सारे जीव इस जगत में भोग करने की अभिलाषा से आते हैं किन्तु वे कृष्ण के बिना भोग करना चाहते हैं (*कृष्ण-बहिर्मुख हैया भोज-वाञ्छा करे*) इसलिए उन्हें माया के अधीन जन्म, मृत्यु, बुढ़ापा तथा रोग भोगना पड़ता है। किन्तु जब भगवान् प्रकट होते हैं, तो ऐसे कारण निहित नहीं रहते। उनका अवतरण उनकी ह्लादिनी शक्ति का कार्य होता है। हमें भगवान् तथा सामान्य जीव के बीच इस अन्तर को सदैव स्मरण रखना चाहिए और व्यर्थ ही यह तर्क-विर्तक नहीं करना चाहिए कि भगवान् आ नहीं सकते। ऐसे दार्शनिक हैं, जो भगवान् के अवतार में विश्वास नहीं करते और प्रश्न करते हैं "भगवान् को आने की क्या आवश्यकता है?" किन्तु इसका उत्तर यह है "उन्हें क्यों नहीं आना

चाहिए? वे जीव की इच्छा से नियंत्रित क्यों हों?'' भगवान् इच्छानुसार कार्य करने के लिए मुक्त हैं। इसीलिए इस श्लोक में कहा गया है—*विना विनोदं बत तर्कयामहे।* वे विनोदवश ही आते हैं अन्यथा उन्हें आने की कोई आवश्यकता नहीं रहती।

जब जीव इस जगत में भौतिक भोग करने आता है, तो वह भगवान् की माया द्वारा *कर्म* तथा *कर्म-फल* में बँध जाता है। किन्तु यदि कोई भगवान् के चरणकमलों की शरण खोज लेता है, तो वह पुन: अपनी आदि मुक्त अवस्था को प्राप्त कर लेता है। जैसाकि यहाँ पर कहा गया है—*कृता यतस्त्वय्यभयाश्रयात्मनि*—जो भगवान् के चरणकमलों का आश्रय खोज लेता है, वह सदा निर्भय रहता है। चूँकि हम भगवान् पर आश्रित हैं अतएव हमें यह विचार त्याग देना चाहिए कि इस जगत में हम कृष्ण के बिना स्वतंत्रता भोग सकते हैं। इसी विचार के कारण हम बँधे हुए हैं। अब हमारा कर्तव्य है कि हम पुन: भगवान् के चरणकमलों की शरण खोजें। यह शरण *अभय* बतलायी गयी है। चूँकि कृष्ण को जन्म, मृत्यु, जरा तथा रोग नहीं सताते और चूँकि हम कृष्ण के ही अंश हैं अत: हम भी जन्म, मृत्यु, जरा तथा रोग के अधीन नहीं हैं किन्तु हम इन मोहमय समस्याओं में इसलिए जकड़ गये हैं क्योंकि हमने कृष्ण को तथा उनके नित्य दास रूप में अपनी स्थिति को भुला दिया है (*जीवेर 'स्वरूप' हय—कृष्णेर 'नित्यदास'*)। अत: यदि हम सदैव भगवान् का चिन्तन, उनका गुणगान उनका कीर्तन करते हुए उनकी सेवा करें जैसाकि श्लोक ३७ में कहा गया है (*श्रवणं गृणन् संस्मरयंश्च चिन्तयन्*) तो हमें अपनी आदि स्वाभाविक स्थिति प्राप्त हो सकती है और हमारा बचाव हो सकता है। इसलिए देवताओं ने देवकी को विश्वास दिलाया कि वे कंस से डरे नहीं अपितु उन भगवान् का चिन्तन करें जो पहले ही उनके गर्भ में आ चुके हैं।

मत्स्याश्वकच्छपनृसिंहवराहहंस-
राजन्यविप्रविबुधेषु कृतावतार: ।
त्वं पासि नस्त्रिभुवनं च यथाधुनेश
भारं भुवो हर यदूत्तम वन्दनं ते ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

मत्स्य—मत्स्यावतार; **अश्व**—घोड़े का अवतार; **कच्छप**—कूर्मावतार; **नृसिंह**—नृसिंह अवतार; **वराह**—वराह अवतार; **हंस**—हंस अवतार; **राजन्य**—रामचन्द्र तथा अन्य क्षत्रियों के रूप में अवतार; **विप्र**—वामनदेव जैसे ब्राह्मणों के रूप में अवतार; **विबुधेषु**—देवताओं के बीच; **कृत-अवतार:**—अवतारों के रूप में प्रकट हुए; **त्वम्**—आपको; **पासि**—कृपया बचायें; **न:**—

हमें; त्रि-भुवनम् च—तथा तीनों लोकों को; यथा—तथा; अधुना—अब; ईश—हे भगवान्; भारम्—भार; भुवः—पृथ्वी का; हर—कृपया कम करें; यदु-उत्तम—हे यदुओं में श्रेष्ठ, हे कृष्ण; वन्दनम् ते—हम आपकी वन्दना करते हैं।

हे परम नियन्ता, आप इसके पूर्व अपनी कृपा से सारे विश्व की रक्षा करने के लिए मत्स्य, अश्व, कच्छप, नृसिंहदेव, वराह, हंस, भगवान् रामचन्द्र, परशुराम का तथा देवताओं में से वामन के रूप में अवतरित हुए हैं। अब आप इस संसार का उत्पातों कम करके अपनी कृपा से पुनः हमारी रक्षा करें। हे यदुश्रेष्ठ कृष्ण, हम आपको सादर नमस्कार करते हैं।

तात्पर्य : प्रत्येक अवतार में भगवान् को किसी न किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति करनी होती है और यदुवंश में देवकी के पुत्र रूप में उनका आविर्भाव इसकी पुष्टि करता है। अतः सारे देवताओं ने नतमस्तक होकर भगवान् की प्रार्थना की और उनसे प्रार्थना की कि जैसी आवश्यकता समझें करें। हम भगवान् को हमारे लिए कुछ करने का आदेश नहीं दे सकते। हम उन्हें केवल नमस्कार कर सकते हैं जैसाकि *भगवद्गीता* का उपदेश है (*मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु*) और उनसे प्रार्थना कर सकते हैं कि विघ्नों का संहार करें।

दिष्ट्याम्ब ते कुक्षिगतः परः पुमा-
नंशेन साक्षाद्भगवान्भवाय नः ।
माभूद्भयं भोजपतेर्मुमूर्षो-
र्गोप्ता यदूनां भविता तवात्मजः ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

दिष्ट्या—भाग्यवश; अम्ब—हे माता; ते—तुम्हारी; कुक्षि-गतः—कोख में; परः—परमात्मा; पुमान्—भगवान्; अंशेन—अपनी समस्त शक्तियों सहित; साक्षात्—प्रत्यक्ष रूप से; भगवान्—भगवान्; भवाय—कल्याण के लिए; नः—हम सबों के; मा अभूत्—कभी न हों; भयम्—भयभीत; भोज-पतेः—भोजवंश के राजा कंस से; मुमूर्षोः—जिसने भगवान् के हाथों से मरने की ठान ली है; गोप्ता—रक्षक; यदूनाम्—यदुवंश का; भविता—होगा; तव आत्मजः—तुम्हारा पुत्र।

हे माता देवकी, आपके तथा हमारे सौभाग्य से भगवान् अपने सभी स्वांशों यथा बलदेव समेत अब आपके गर्भ में हैं। अतएव आपको उस कंस से भयभीत नहीं होना है, जिसने भगवान् के हाथों से मारे जाने की ठान ली है। आपका शाश्वत पुत्र कृष्ण सारे यदुवंश का रक्षक होगा।

तात्पर्य : *परः पुमान् अंशेन* पद द्योतित करता है कि कृष्ण आदि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं। यह शास्त्र का निर्णय है (*कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्*)। अतः देवताओं ने देवकी को सान्त्वना दिलाई, "आपका पुत्र भगवान् है और वह अपने स्वांश बलदेव के साथ प्रकट होने वाला है। वह आपकी पूरी रक्षा करेगा और उस कंस का वध करेगा जिसने भगवान् के प्रति शत्रुता बनाये रखने का निश्चय कर

रखा है। इसलिए वह उनके हाथों से मारा जायेगा।''

श्रीशुक उवाच
इत्यभिष्टूय पुरुषं यद्रूपमनिदं यथा ।
ब्रह्मेशानौ पुरोधाय देवाः प्रतिययुर्दिवम् ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; **इति**—इस प्रकार; **अभिष्टूय**—स्तुति करके; **पुरुषम्**—परम पुरुष की; **यत्-रूपम्**—जिसका स्वरूप; **अनिदम्**—दिव्य; **यथा**—जिस प्रकार; **ब्रह्म**—ब्रह्माजी; **ईशानौ**—तथा शिवजी; **पुरोधाय**—आगे करके; **देवाः**—सारे देवता; **प्रतिययुः**—लौट गये; **दिवम्**—अपने स्वर्ग निवास को।

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु की इस तरह स्तुति करने के बाद सारे देवता ब्रह्माजी तथा शिवजी को आगे करके अपने अपने स्वर्ग-आवासों को लौट गये।

तात्पर्य : कहा गया है कि—

अद्यापिह चैतन्य ए सब लीला करे।

याँऽर भाग्ये थाके, से देखये निरन्तरे॥

(*चैतन्य भागवत, मध्य* २३.५१३)

भगवान् के अवतार नदी या समुद्र की तरंगों के समान सतत प्रकट होते रहते हैं। भगवान् के अवतार असीम हैं किन्तु भाग्यशाली भक्त ही उन्हें देख सकते हैं। सौभाग्यवश देवतागण भगवान् के अवतार को जान गये थे इसीलिए उन्होंने स्तुतियाँ कीं। अपने अपने निवासो को लौटती बार शिवजी तथा ब्रह्माजी ने अगुवाई की।

कुक्षि-गत: का अर्थ है ''देवकी की कोख में''। श्रील जीव गोस्वामी ने *क्रमसन्दर्भ* भाष्य में इसकी व्याख्या की है। चूँकि यह पहले कहा जा चुका है कि कृष्ण वसुदेव के हृदय में विद्यमान थे और तब देवकी के हृदय में स्थानान्तरित किये गये अत: श्रील जीव गोस्वामी लिखते हैं कि यह कैसे हुआ कि कृष्ण अब कुक्षि में हैं? वे कहते हैं कि इसमें कोई विरोधाभास नहीं है। भगवान् हृदय से कुक्षि में या कुक्षि से हृदय में जा सकते हैं। वे कहीं भी जा या रुक सकते हैं। जैसाकि *ब्रह्म-संहिता* (५.३५) में पुष्टि हुई है—*अण्डान्तरस्थपरमाणुचयान्तरस्थं गोविन्दमादि पुरुषं तमहं भजामि*)। भगवान् इच्छानुसार कहीं भी रुक सकते हैं अत: अपने पूर्व-जन्म की इच्छानुसार देवकी को वरदान स्वरुप भगवान् देवकीनन्दन को पुत्र रूप में प्राप्त करने का अवसर मिला।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध के अन्तर्गत ''देवताओं द्वारा गर्भस्थ कृष्ण की स्तुति'' नामक द्वितीय अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter तीन

कृष्ण जन्म

इस अध्याय में बतलाया गया है कि भगवान् कृष्ण जिनका आदि रूप हरि है विष्णु रूप में प्रकट हुए जिससे उनके माता-पिता यह समझ लें कि उनका पुत्र भगवान् है। चूँकि वे कंस से भयभीत थे अत: जब भगवान् सामान्य बालक के रूप में प्रकट हुए तो वे उन्हें नन्द महाराज के घर गोकुल ले गए।

माता देवकी *सच्चिदानन्द* होने के कारण इस भौतिक जगत से सम्बद्ध नहीं है। भगवान् चार हाथों से युक्त प्रकट हुए मानो उनके गर्भ से उत्पन्न हुए हों। भगवान् के इस विष्णु रूप में देखकर वसुदेव विस्मित रह गए और उन्होंने देवकी समेत दिव्य हर्ष में आकर मन ही मन ब्राह्मणों को दस हजार गाएँ दान में दे डालीं। फिर वसुदेव ने भगवान् की स्तुति परम पुरुष, परब्रह्म, परमात्मा के सम्बोधनों से की जो द्वैत से परे हैं और भीतर तथा बाहर से सर्वव्यापक हैं। समस्त कारणों के कारण भगवान् भौतिक जगत से परे हैं यद्यपि वे ही इस भौतिक जगत के स्रष्टा हैं। जब वे इस जगत में परमात्मा रूप में प्रविष्ट होते हैं, तो वे सर्वव्यापक होते हुए (*अण्डान्तरस्थ परमाणुचयान्तरस्थम्*) भी दिव्य बने रहते हैं। इस भौतिक जगत के सृजन, पालन तथा संहार के लिए वे *गुणावतारों*—यथा ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर के रूप में प्रकट होते हैं। इस तरह वसुदेव ने भगवान् की सार्थक प्रार्थना की। उनके बाद देवकी ने भी भगवान् की दिव्य प्रकृति का वर्णन करते हुए प्रार्थना की। कंस के डर से तथा इस अभिलाषा से कि नास्तिक तथा अभक्तजन भगवान् को समझ न पाएँ देवकी ने भगवान् से प्रार्थना की कि वे इस चतुर्भुज रूप को त्यागकर दो हाथ वाले सामान्य बालक के रूप में प्रकट हों।

भगवान् ने वसुदेव तथा देवकी को उन दो अन्य अवतारों का स्मरण कराया जो पहले ही उनके पुत्र रूप में प्रकट हो चुके थे। वे पृश्निगर्भ तथा वामनदेव के रूप में प्रकट हो चुके थे और अब तीसरी बार वे उनकी इच्छा-पूर्ति के लिए देवकी के पुत्र रूप में प्रकट हो रहे थे। तब भगवान् ने कंस के

कारागार में बन्दी वसुदेव तथा देवकी के आवास को छोड़ने का निश्चय किया और ठीक उसी समय योगमाया ने यशोदा की पुत्री के रूप में जन्म लिया। योगमाया की ही व्यवस्था द्वारा वसुदेव बन्दीगृह को त्यागने एवं कंस के हाथों से बालक को बचाने में समर्थ हो सके। जब वसुदेव कृष्ण को नन्द महाराज के घर लाए तो उन्होंने देखा कि योगमाया की व्यवस्था से यशोदा तथा दूसरे सारे लोग सोए हुए थे। इस तरह उन्होंने योगमाया को यशोदा की गोद से लेकर बदले में कृष्ण को रख दिया। फिर वे योगमाया को अपनी पुत्री के रूप में लेकर वापस लौट आए। उन्होंने योगमाया को देवकी के बिस्तर में रख दिया और पूर्ववत् बन्दी बन गए। गोकुल में यशोदा को यह पता नहीं चल पाया कि उन्हें लड़का हुआ या लड़की।

श्रीशुक उवाच

अथ सर्वगुणोपेतः कालः परमशोभनः ।
यर्ह्येवाजनजन्मर्क्षं शान्तर्क्षग्रहतारकम् ॥ १ ॥
दिशः प्रसेदुर्गगनं निर्मलोडुगणोदयम् ।
मही मङ्गलभूयिष्ठपुरग्रामव्रजाकरा ॥ २ ॥
नद्यः प्रसन्नसलिला ह्रदा जलरुहश्रियः ।
द्विजालिकुलसन्नादस्तवका वनराजयः ॥ ३ ॥
ववौ वायुः सुखस्पर्शः पुण्यगन्धवहः शुचिः ।
अग्नयश्च द्विजातीनां शान्तास्तत्र समिन्धत ॥ ४ ॥
मनांस्यासन्प्रसन्नानि साधूनामसुरद्रुहाम् ।
जायमानेऽजने तस्मिन्नेदुर्दुन्दुभयः समम् ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; अथ—भगवान् के आविर्भाव के समय; सर्व—चारों ओर; गुण-उपेतः—भौतिक गुणों से सम्पन्न; कालः—उपयुक्त समय; परम-शोभनः—अत्यन्त शुभ तथा सभी दृष्टियों से उपयुक्त; यर्हि—जब; एव—निश्चित रूप से; अजन जन्म-ऋक्षम्—रोहिणी नक्षत्र समूह; शान्त-ऋक्ष—सारे नक्षत्र शान्त थे; ग्रह-तारकम्—तथा ग्रह एवं तारे (यथा अश्विनी); दिशः—सारी दिशाएँ; प्रसेदुः—अत्यन्त शुभ तथा शान्त प्रतीत हुईं; गगनम्—आकाश; निर्मल-उडु-गण-उदयम्—जिसमें सारे शुभ नक्षत्र दृष्टिगोचर थे; मही—पृथ्वी; मङ्गल-भूयिष्ठ-पुर-ग्राम-व्रज-आकराः—जिसके अनेक नगर, ग्राम, गोचर भूमि तथा खानें शुभ तथा निर्मल हो गईं; नद्यः—नदियाँ; प्रसन्न-सलिलाः—जल स्वच्छ हो गया; ह्रदाः—झीलें या जलाशय; जलरुह-श्रियः—चारों ओर कमलों के खिलने से अत्यन्त सुन्दर लगने लगा; द्विज-अलि-कुल-सन्नाद-स्तवकाः—पक्षियों (विशेषतया कोयल) तथा मधुमक्खियों का समूह मधुर ध्वनि में कीर्तन करने लगा, मानो भगवान् की स्तुति कर रहे हों; वन-राजयः—हरे वृक्ष भी देखने में मनोहर लग रहे थे; ववौ—बहने लगी; वायुः—वायु, मन्द हवा; सुख-स्पर्शः—छूने में सुहावनी; पुण्य-गन्ध-वहः—सुगन्ध से पूरित; शुचिः—धूल से रहित; अग्नयः च—तथा यज्ञस्थलों की अग्नियाँ; द्विजातीनाम्—ब्राह्मणों की; शान्ताः—शान्त; तत्र—वहाँ; समिन्धत—जलती हुई; मनांसि—ब्राह्मणों के मन (जो कंस से भयभीत थे); आसन्—हो गए; प्रसन्नानि—पूर्ण तुष्ट तथा उत्पात से रहित; साधूनाम्—ब्राह्मणों के, जो सबके सब वैष्णव भक्त थे; असुर-द्रुहाम्—जो धार्मिक अनुष्ठान सम्पन्न करते समय कंस तथा अन्य असुरों द्वारा सताए गए थे; जायमाने—जन्म होने से; अजने—अजन्मे, भगवान् विष्णु के; तस्मिन्—उस स्थान में; नेदुः—बज उठीं; दुन्दुभयः—दुन्दुभियाँ; समम्—एकसाथ (ऊपरी लोकों से)।

तत्पश्चात् भगवान् के आविर्भाव की शुभ बेला में सारा ब्रह्माण्ड सतोगुण, सौन्दर्य तथा शान्ति से युक्त हो गया। रोहिणी नक्षत्र तथा अश्विनी जैसे तारे निकल आए। सूर्य, चन्द्रमा तथा अन्य नक्षत्र एवं ग्रह अत्यन्त शान्त थे। सारी दिशाएँ अत्यन्त सुहावनी लगने लगीं और मनभावन नक्षत्र निरभ्र आकाश में टिमटिमाने लगे। नगरों, ग्रामों, खानों तथा चरागाहों से अलंकृत पृथ्वी सर्व-मंगलमय प्रतीत होने लगी। निर्मल जल से युक्त नदियाँ प्रवाहित होने लगीं और सरोवर तथा विशाल जलाशय कमलों तथा कुमुदिनियों से पूर्ण होकर अत्यधिक सुन्दर लगने लगे। फूलों-पत्तियों से पूर्ण एवं देखने में सुहावने लगने वाले वृक्षों और हरे पौधों में कोयलों जैसे पक्षी तथा भौरों के झुण्ड देवताओं के लिए मधुर ध्वनि में गुंजार करने लगे। निर्मल मन्द वायु बहने लगी जिसका स्पर्श सुखद था और जो फूलों की गन्ध से युक्त थी। जब कर्मकाण्ड में लगे ब्राह्मणों ने वैदिक नियमानुसार अग्नि प्रज्ज्वलित की तो अग्नि इस वायु से अविचलित रहती हुई स्थिर भाव से जलने लगी। इस तरह जब अजन्मा भगवान् विष्णु प्रकट होने को हुए तो कंस जैसे असुरों तथा उसके अनुचरों द्वारा सताए गए साधुजनों तथा ब्राह्मणों को अपने हृदयों के भीतर शान्ति प्रतीत होने लगी और उसी समय स्वर्ग में दुन्दुभियाँ बज उठीं।

तात्पर्य : *भगवद्गीता* में भगवान् कहते हैं कि "मेरा जन्म तथा कार्यकलाप सभी दिव्य हैं। जो मुझे यथार्थत: समझ लेता है, वह तुरन्त वैकुण्ठ जाने के योग्य बन जाता है।" भगवान् का जन्म सामान्य व्यक्ति जैसा नहीं होता, जिसे अपने पूर्वकर्म के अनुसार भौतिक शरीर धारण करने के लिए बाध्य होना पड़ता है। भगवान् के प्राकटय की व्याख्या पिछले अध्याय में हो चुकी है वे स्वेच्छा से प्रकट होते हैं।

जब भगवान् के प्राकट्य का समय आ गया तो नक्षत्र शुभ हो गए। रोहिणी नक्षत्र का ज्योतिष-फल भी प्रधान था क्योंकि यह नक्षत्र अत्यन्त शुभ माना जाता है। रोहिणी ब्रह्मा के अधीन है और ब्रह्मा विष्णु से उत्पन्न हैं। रोहिणी अजन्मा विष्णु के जन्म के समय विष्णु से ही जन्म लेकर प्रकट होता है। ज्योतिष के अनुसार नक्षत्रों की स्थिति के अतिरिक्त विभिन्न ग्रहों की विभिन्न स्थितियों के कारण शुभ तथा अशुभ क्षण होते हैं। कृष्ण-जन्म के समय सारे ग्रहों का अपने आप ऐसा तालमेल बैठा कि सब कुछ शुभ बन गया।

उस समय पूर्व, पश्चिम, उत्तर तथा दक्षिण सभी दिशाओं में शान्ति तथा सम्पन्नता का वातावरण था। आकाश में शुभ नक्षत्र दिख रहे थे और पृथ्वी पर सारे नगरों, सारे ग्रामों या चरागाहों में तथा हर प्राणी के मन के भीतर सौभाग्य के लक्षण प्रकट हो रहे थे। नदियाँ जल से पूर्ण थीं और सरोवर सुन्दर कमलों से सुशोभित थे। जंगल सुन्दर पक्षियों तथा मोरों से पूर्ण थे। जंगल के सारे पक्षी मधुर ध्वनि से गाने लगे और मोर मोरनियों के साथ नाचने लगे। सुखद मन्द वायु विभिन्न फूलों की गन्ध लेकर प्रवाहित होने लगी जिसका स्पर्श अत्यन्त सुखद था। अग्नि यज्ञ करने वाले ब्राह्मणों को यज्ञ करने के लिए अपने घर अत्यन्त सुखद प्रतीत होने लगे। आसुरी राजाओं के उत्पातों के कारण ब्राह्मणों के घरों की यज्ञ-अग्नि प्राय: बुझ चुकी थी, किन्तु वही अब पुन: शान्तिपूर्वक जलने लगी। यज्ञों पर पाबन्दी लगाए जाने से ब्राह्मण मन, बुद्धि तथा कर्म से अत्यन्त संतप्त थे। किन्तु कृष्ण के आविर्भाव के समय उनके मन स्वत: प्रसन्नता से भर उठे क्योंकि आकाश में भगवान् के प्राकट्य को घोषित करने वाली दिव्य ध्वनि जोर से सुनाई पड़ने लगी थी।

कृष्ण-जन्म के अवसर पर समस्त ब्रह्माण्ड में ऋतु-परिवर्तन हो गया। यद्यपि कृष्ण भादों (सितम्बर) मास में उत्पन्न हुए थे, किन्तु ऐसा लग रहा था मानो वसन्त हो। वायुमण्डल शीतल था और नदियाँ तथा जलाशय ऐसे लग रहे थे मानो शरद ऋतु हो। कमल तथा कुमुदिनियाँ दिन में खिलती हैं, किन्तु जब कृष्ण प्रकट हुए तो आधी रात में भी वे खिली थीं और सुगन्धित वायु बह रही थी। कंस के उत्पातों के कारण सारे वैदिक कर्मकाण्ड बन्द हो चुके थे। ब्राह्मण तथा साधुगण शान्त चित्त होकर वैदिक अनुष्ठान नहीं कर पा रहे थे, किन्तु अब वे ही ब्राह्मण बिना उत्पात के दैनिक अनुष्ठान करके अत्यन्त प्रसन्न थे। असुरों का कार्य है सुरों, भक्तों तथा ब्राह्मणों को सताना, किन्तु कृष्ण के आविर्भाव के समय ये भक्त तथा ब्राह्मण व्यवधानरहित थे।

जगु: किन्नरगन्धर्वास्तुष्टुवु: सिद्धचारणा: ।
विद्याधर्यश्च ननृतुरप्सरोभि: समं मुदा ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

जगु:—शुभ गीत गाए; किन्नर-गन्धर्वा:—विभिन्न लोकों के निवासी किन्नर तथा गन्धर्व; तुष्टुवु:—स्तुतियाँ कीं; सिद्ध-चारणा:—स्वर्ग के अन्य निवासी सिद्ध तथा चारणों ने; विद्याधर्य: च—और विद्याधरियाँ, स्वर्गलोक के अन्य निवासी; ननृतु:—आनन्दपूर्वक नृत्य किया; अप्सरोभि:—अप्सराओं के, स्वर्ग की सुन्दर नर्तिकाएँ; समम्—साथ; मुदा—प्रमुदित होकर।

किन्नर तथा गन्धर्व शुभ गीत गाने लगे, सिद्धों तथा चारणों ने शुभ प्रार्थनाएँ कीं तथा

अप्सराओं के साथ विद्याधरियाँ प्रसन्नता से नाचने लगीं।

मुमुचुर्मुनयो देवाः सुमनांसि मुदान्विताः ।
मन्दं मन्दं जलधरा जगर्जुरनुसागरम् ।
निशीथे तमउद्भूते जायमाने जनार्दने ॥ ७॥
देवक्यां देवरूपिण्यां विष्णुः सर्वगुहाशयः ।
आविरासीद्यथा प्राच्यां दिशीन्दुरिव पुष्कलः ॥ ८॥

शब्दार्थ

मुमुचुः—बरसाया; मुनयः—मुनियों ने; देवाः—तथा देवताओं ने; सुमनांसि—सुन्दर तथा सुगन्धित फूल; मुदा अन्विताः—प्रसन्नचित्त होकर; मन्दम् मन्दम्—धीरे-धीरे; जल-धराः—बादल; जगर्जुः—गरजने लगे; अनुसागरम्—समुद्र की लहरों की ध्वनि के साथ; निशीथे—अर्धरात्रि में; तमः-उद्भूते—घना अंधकार होने पर; जायमाने—प्रकट होने पर; जनार्दने—भगवान् विष्णु के; देवक्याम्—देवकी के गर्भ में; देव-रूपिण्याम्—भगवान् के रूप में (आनन्दचिन्मय रस प्रतिभाविताभिः); विष्णुः—भगवान् विष्णु; सर्व-गुहा-शयः—हर एक के हृदय में स्थित; आविरासीत्—प्रकट हुए; यथा—जिस प्रकार; प्राच्याम् दिशि—पूर्व दिशा में; इन्दुः इव—पूर्ण चन्द्रमा के समान; पुष्कलः—सब प्रकार से पूर्ण।

देवताओं तथा महान् साधु पुरुषों ने प्रसन्न होकर फूलों की वर्षा की और आकाश में बादल उमड़ आए तथा मन्द स्वर से गर्जन करने लगे मानो समुद्र की लहरों की ध्वनि हो। तब हर हृदय में स्थित पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु रात्रि के गहन अंधकार में देवकी के हृदय से उसी तरह प्रकट हुए जिस तरह पूर्वी क्षितिज में पूर्ण चन्द्रमा उदय हुआ हो क्योंकि देवकी श्रीकृष्ण की ही कोटि की थीं।

तात्पर्य : जैसाकि *ब्रह्म-संहिता* (५.३७) में कहा गया है—

आनन्दचिन्मयरसप्रतिभाविताभिस्

ताभिर्य एव निजरूपतया कलाभिः।

गोलोक एव निवसत्यखिलात्मभूतो

गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥

इस श्लोक से पता चलता है कि कृष्ण तथा उनके परिकर एक ही आध्यात्मिक शक्ति (*आनन्दचिन्मयरस*) के होते हैं। कृष्ण के पिता, उनकी माता, उनके गोपमित्र तथा गाएँ—सभी कृष्ण के अंश हैं जैसाकि 'ब्रह्मविमोहन लीला' में बतलाया जाएगा। जब ब्रह्मा ने भगवान् कृष्ण की सर्वश्रेष्ठता की परीक्षा करने के लिए कृष्ण के संगियों का हरण कर लिया तो भगवान् ने अनेक ग्वालों तथा बछड़ों के रूप में अपना पुनः विस्तार कर लिया और ब्रह्मा ने देखा कि ये सभी *विष्णुमूर्तियाँ* हैं। देवकी भी कृष्ण की अंश हैं इसीलिए इस श्लोक में कहा गया है *देवक्यां देवरूपिण्यां विष्णुः सर्वगुहाशयः*।

भगवान् के आविर्भाव के समय सारे मुनि तथा देवता प्रसन्न होकर फूलों की वर्षा करने लगे। समुद्रतट पर मन्द लहरों की ध्वनि हो रही थी और समुद्र के ऊपर आकाश में बादल थे, जो अत्यन्त मनोहारी गर्जना करने लगे।

जब इस तरह का वातावरण बन गया तो प्रत्येक जीव के हृदय में निवास करने वाले भगवान् विष्णु अँधेरी रात में देवीस्वरूपा देवकी के समक्ष प्रकट हुए। उस समय भगवान् विष्णु के प्राकट्य की उपमा पूर्वी अन्तरिक्ष में पूर्ण चन्द्रमा के उदय होने से दी जा सकती है। यहाँ यह आक्षेप किया जा सकता है कि कृष्ण तो कृष्णपक्ष की अष्टमी के दिन उत्पन्न हुए तो फिर पूर्ण चन्द्रोदय कैसे हुआ? इसका उत्तर यह हुआ कि कृष्ण चन्द्र वंश में उत्पन्न हुए थे अत: भले ही उस रात चन्द्रमा अपूर्ण रहा हो, किन्तु भगवान् जिस कुल में प्रकट हुए उसमें चन्द्रमा साक्षात् आदि पुरुष हैं, अत: चन्द्रमा अत्यधिक प्रसन्न था और कृष्णकृपा से वह पूर्णरूप में प्रकट हो सका। भगवान् का स्वागत करने के लिए कृष्णपक्ष का चाँद हर्ष के मारे पूर्ण चन्द्रमा बन गया।

श्रीमद्‌भागवत के अनेक पाठों में *देवरूपिण्याम्* शब्द के स्थान पर *विष्णुरूपिण्याम्* पाठ मिलता है। प्रत्येक दशा में अर्थ यही है कि देवकी का स्वरूप भगवान् के ही सदृश आध्यात्मिक है। भगवान् सच्चिदानन्द विग्रह हैं और देवकी भी वही हैं। अत: जिस विधि से सच्चिदानन्दविग्रह भगवान् देवकी के गर्भ से प्रकट हुए उसके विषय में कोई त्रुटि नहीं निकाली जा सकती।

जिन्हें यह पूरी तरह समझ नहीं है कि भगवान् का प्राकट्य तथा तिरोधान दिव्य होते हैं (*जन्म कर्म च मे दिव्यम्*) वे कभी-कभी आश्चर्यचकित रह जाते हैं कि भगवान् सामान्य बालक की तरह जन्म ले सकते हैं। किन्तु वास्तविकता यही है कि भगवान् का जन्म कभी भी सामान्य नहीं होता। भगवान् पहले से हर प्राणी के हृदय में अन्तर्यामी परमात्मा के रूप में स्थित हैं। अत: देवकी के हृदय में संपूर्ण शक्ति के साथ उपस्थित रहने से वे उनके शरीर के बाहर भी प्रकट होने में समर्थ थे।

बारह महाजनों में से भीष्म-देव भी एक हैं (*स्वयम्भूर्नारद: शम्भु: कुमार: कपिलो मनु: प्रह्लादो जनको भीष्म:*)। *श्रीमद्‌भागवत* (१.९.४२) में भीष्म जो भक्तों द्वारा अनुसरणीय हैं कहते हैं कि भगवान् हर व्यक्ति के हृदय में उसी प्रकार स्थित हैं जिस प्रकार हर व्यक्ति के सिर के ऊपर सूर्य रहता है। भले ही सूर्य करोड़ों व्यक्तियों के सिर के ऊपर हो, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि सूर्य अलग-

अलग स्थित है। इसी तरह अचिन्त्य शक्तियों के कारण भगवान् भले ही हर एक के हृदय में स्थित हों, किन्तु वे अलग-अलग नहीं हैं। *एकत्वमनुपश्यत:* (*ईषोपनिषद्* ७)। भगवान् एक हैं, किन्तु वे अपनी अचिन्त्य शक्ति के द्वारा हर प्राणी के हृदय में प्रकट हो सकते हैं। इस तरह भगवान् देवकी के हृदय में रहते हुए भी उनके पुत्र रूप में प्रकट हुए। इसीलिए *विष्णु-पुराण* के अनुसार जैसाकि *वैष्णव-तोषणी* में उद्धृत किया है, भगवान् सूर्य के समान प्रकट हुए (*अनुग्रहासय*)। *ब्रह्म-संहिता* (५.३५) पुष्टि करती है कि भगवान् प्रत्येक परमाणु के भीतर भी स्थित हैं (*अण्डान्तरस्थ परमाणुचयान्तरस्थम्*)। वे मथुरा में, वैकुण्ठ में तथा हृदय में स्थित हैं। अत: हमें स्पष्ट समझ लेना होगा कि वे देवकी के हृदय या गर्भ में सामान्य बालक की तरह नहीं रहे थे। न ही वे सामान्य मानवी शिशु की तरह उत्पन्न हुए यद्यपि कंस जैसे असुरों को मोहित करने के लिए ऐसा करते हुए प्रतीत हुए। असुरगण व्यर्थ ही सोचते हैं कि कृष्ण ने सामान्य बालक की तरह जन्म लिया और सामान्य व्यक्ति की भाँति इस संसार से चले गए। भगवत्-ज्ञानी व्यक्ति ऐसी आसुरी धारणाओं का खंडन करते हैं। *अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानाम् ईश्वरोऽपि सन्* (*भगवद्गीता* ४.६)। भगवान् *अज* अर्थात् अजन्मा हैं और सबके परम नियन्ता हैं। फिर भी वे देवकी के पुत्र रूप में प्रकट हुए। इस श्लोक में पूर्ण-चन्द्रस्वरूप प्रकट होने वाले भगवान् की अचिन्त्य शक्ति का वर्णन हुआ है। भगवान् के आविर्भाव की विशिष्ट महत्ता को समझते हुए भगवान् को कभी भी सामान्य बालक की तरह जन्म लेते नहीं मानना चाहिए।

तमद्भुतं बालकमम्बुजेक्षणं
चतुर्भुजं शङ्खगदाद्युदायुधम् ।
श्रीवत्सलक्ष्मं गलशोभिकौस्तुभं
पीताम्बरं सान्द्रपयोदसौभगम् ॥ ९ ॥
महार्हवैदूर्यकिरीटकुण्डल
त्विषा परिष्वक्तसहस्रकुन्तलम् ।
उद्दामकाञ्च्यङ्गदकङ्कणादिभिर्
विरोचमानं वसुदेव ऐक्षत ॥ ॥

शब्दार्थ

तम्—उस; अद्भुतम्—अद्‍भुत; बालकम्—बालक को; अम्बुज-ईक्षणम्—कमल जैसी आँखों वाले; चतु:-भुजम्—चार भुजाओं वाले; शङ्ख-गदा-आदि—चार हाथों में शंख, चक्र, गदा तथा कमल लिए हुए; उदायुधम्—विभिन्न आयुध; श्रीवत्स-लक्ष्मम्—श्रीवत्स से अलंकृत, बालों का विशेष प्रकार श्रीवत्स कहलाता है और यह भगवान् के वक्षस्थल पर ही उगता है; गल-शोभि-कौस्तुभम्—उनके गले में वैकुण्ठ-लोक में प्राप्त होने वाला कौस्तुभ मणि था; पीत-अम्बरम्—पीला वस्त्र; सान्द्र-पयोद-सौभगम्—अत्यन्त सुन्दर तथा श्यामल रंग का; महा-अर्ह-वैदूर्य-किरीट-कुण्डल—उनका मुकुट तथा उनके कुण्डल

मूल्यवान वैदूर्य मणि से जड़े थे; त्विषा—सौन्दर्य द्वारा; परिष्वक्त-सहस्र-कुन्तलम्—बिखरे बड़े-बड़े बालों के द्वारा चमचमाता; उद्दाम-काञ्ची-अङ्गद-कङ्कण-आदिभिः—कमर में चमकीली पेटी, भुजाओं में बलय, कलाइयों में कंकण इत्यादि से युक्त.; विरोचमानम्—अत्यन्त सुन्दर ढंग से अलंकृत; वसुदेवः—कृष्ण के पिता वसुदेव ने; ऐक्षत—देखा।.

तब वसुदेव ने उस नवजात शिशु को देखा जिनकी अद्‌भुत आँखें कमल जैसी थीं और जो अपने चारों हाथों में शंख, चक्र, गदा तथा पद्म चार आयुध धारण किये थे। उनके वक्षस्थल पर श्रीवत्स का चिह्न था और उनके गले में चमकीला कौस्तुभ मणि था। वह पीताम्बर धारण किए थे, उनका शरीर श्याम घने बादल की तरह, उनके बिखरे बाल बड़े-बड़े तथा उनका मुकुट और कुण्डल असाधारण तौर पर चमकते वैदूर्यमणि के थे। वे करधनी, बाजूबंद, कंगन तथा अन्य आभूषणों से अलंकृत होने के कारण अत्यन्त अद्‌भुत लग रहे थे।

तात्पर्य : *अद्‌भुतम्* शब्द के समर्थन में नवजात शिशु के अलंकरण तथा ऐश्वर्य का वर्णन हुआ है। *ब्रह्म-संहिता* (५.३०) में पुष्टि हुई है—*बर्हावतंसमसिताम्बुद सुन्दरांगम्*—भगवान् का सुन्दर स्वरूप श्याम रंग के घने बादलों जैसा (*असित*—श्याम तथा *अम्बुद्*—बादल) है। *चतुर्भुज* शब्द से स्पष्ट है कि कृष्ण पहले चार हाथों सहित भगवान् विष्णु के रूप में प्रकट हुए। मानव समाज में कोई भी सामान्य शिशु आज तक चार हाथों वाला उत्पन्न नहीं हुआ और क्या पूरी तरह बड़े बालों से युक्त कभी कोई शिशु उत्पन्न हुआ है? इसलिए भगवान् का अवतरण सामान्य शिशु के जन्म से सर्वथा भिन्न है। वैदूर्यमणि कभी नीला, कभी पीला तो कभी लाल दिखता है और वैकुण्ठलोक में उपलब्ध है। भगवान् का मुकुट तथा कुंडल इसी विशेष मणि से अलंकृत थे।

स विस्मयोत्फुल्लविलोचनो हरिं
सुतं विलोक्यानकदुन्दुभिस्तदा ।
कृष्णावतारोत्सवसम्भ्रमोऽस्पृशन्
मुदा द्विजेभ्योऽयुतमाप्लुतो गवाम् ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

सः—वह (वसुदेव, जो आनकदुन्दुभि कहलाते हैं); विस्मय-उत्फुल्ल-विलोचनः—भगवान् के सुन्दर स्वरूप को देखने से आश्चर्यचकित आँखें; हरिम्—भगवान् हरि को; सुतम्—पुत्र रूप में; विलोक्य—देखकर; आनकदुन्दुभिः—वसुदेव द्वारा; तदा—उस समय; कृष्ण-अवतार-उत्सव—कृष्ण के आविर्भाव पर उत्सव मनाने के लिए; सम्भ्रमः—सम्मान के साथ भगवान् का स्वागत करने की इच्छा; अस्पृशत्—बाँटने का अवसर प्राप्त किया; मुदा—अत्यधिक हर्ष के साथ; द्विजेभ्यः—ब्राह्मणों को; अयुतम्—दस हजार; आप्लुतः—विभोर; गवाम्—गाएँ।.

जब वसुदेव ने अपने विलक्षण पुत्र को देखा तो उनकी आँखें आश्चर्य से विस्फारित रह गईं। उन्होंने परम हर्ष में मन ही मन दस हजार गाएँ एकत्र कीं और उन्हें ब्राह्मणों में वितरित कर दिया

मानो कोई दिव्य उत्सव हो।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने वसुदेव को अपने विलक्षण पुत्र को देखे जाने पर जो आश्चर्य हुआ उसका विश्लेषण किया है। वसुदेव नवजात शिशु को बहुमूल्य वस्त्रों तथा रत्नों से आभूषित देखकर आश्चर्य से काँप रहे थे। वे तुरन्त समझ गए कि यह कोई सामान्य बालक नहीं अपितु चतुर्भुजी भगवान् हैं, जो अपने आदि रूप में पूरी तरह अलंकृत होकर प्रकट हुए हैं। पहला आश्चर्य यह था कि कंस के उस बन्दीगृह में जन्म लेने से भगवान् डरे नहीं जिसमें वसुदेव तथा देवकी बन्द थे। दूसरा यह कि सर्वव्यापी परम ब्रह्म होते हुए भी वे देवकी की कोख से पैदा हुए। तीसरा आश्चर्य यह कि कोख से जन्म लेने वाला बालक इतनी अच्छी तरह अलंकृत था। चौथा यह कि भगवान् तो वसुदेव के आराध्यदेव थे फिर भी वे उनके पुत्र रूप में उत्पन्न हुए। इन्हीं कारणों से वसुदेव अत्यधिक हर्षित थे अतएव वे क्षत्रियों की तरह पुत्र का जन्मोत्सव मनाना चाह रहे थे, किन्तु बन्दी होने के कारण प्रत्यक्ष रूप में ऐसा करपाने में असमर्थ थे इसीलिए उन्होंने यह उत्सव मन में ही मना लिया। इससे कोई अन्तर नहीं पड़ा। यदि कोई भगवान् की सेवा बाह्यतः नहीं कर सकता है, तो वह मन में भी उनकी सेवा कर सकता है क्योंकि मन के कार्य अन्य इन्द्रियों के कार्यों के ही समान होते हैं। यह *अद्वय ज्ञान* कहलाता है। लोग सामान्यतया पुत्र-जन्म पर कर्मकाण्डीय उत्सव मनाते हैं। तो फिर वसुदेव ऐसा उत्सव क्यों नहीं मना सकते थे जबकि भगवान् ही उनके पुत्र रूप में प्रकट हुए हों?

अथैनमस्तौदवधार्य पूरुषं
परं नताङ्गः कृतधीः कृताञ्जलिः ।
स्वरोचिषा भारत सूतिकागृहं
विरोचयन्तं गतभीः प्रभाववित् ॥ १२॥

शब्दार्थ

अथ—तत्पश्चात्; एनम्—बालक को; अस्तौत्—स्तुति अर्पित किया; अवधार्य—यह निश्चय करके कि बालक भगवान् था; पूरुषम्—परम पुरुष को; परम्—परम दिव्य; नत-अङ्गः—गिरकर; कृत-धीः—एकाग्र होकर; कृत-अञ्जलिः—हाथ जोड़कर; स्व-रोचिषा—अपने शारीरिक सौन्दर्य के तेज से; भारत—हे महाराज परीक्षित; सूतिका-गृहम्—वह स्थान, जहाँ भगवान् का जन्म हुआ; विरोचयन्तम्—चारों ओर से प्रकाशित करते हुए; गत-भीः—भय से रहित होकर; प्रभाव-वित्—(भगवान् के) प्रभाव को जान सका।

हे भरतवंशी, महाराज परीक्षित, वसुदेव यह जान गए कि यह बालक पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् नारायण है। इस निष्कर्ष पर पहुँचते ही वे निर्भय हो गए। हाथ जोड़े, मस्तक नवाये तथा

एकाग्रचित्त होकर वे उस बालक की स्तुति करने लगे जो अपने सहज प्रभाव के द्वारा अपने जन्म-स्थान को जगमग कर रहा था।

तात्पर्य : इतने महान् आश्चर्य से चकित वसुदेव ने अब अपना ध्यान भगवान् पर एकाग्र किया। वे भगवान् के प्रभाव को समझकर निर्भय हो गए क्योंकि वे जान गए कि मेरी रक्षा के लिए भगवान् प्रकट हुए हैं (*गतभी: प्रभाववित्*)। यह जानकर कि साक्षात् भगवान् उपस्थित हैं उन्होंने इस प्रकार यथोचित रूप में स्तुति की।

श्रीवसुदेव उवाच
विदितोऽसि भवान्साक्षात्पुरुषः प्रकृतेः परः ।
केवलानुभवानन्दस्वरूपः सर्वबुद्धिदृक् ॥ १३॥

शब्दार्थ

श्री-वसुदेवः उवाच—श्री वसुदेव ने प्रार्थना की; विदितः असि—अब मैं आपसे अवगत हूँ; भवान्—आप; साक्षात्—प्रत्यक्ष; पुरुषः—परम पुरुष; प्रकृतेः—प्रकृति से; परः—दिव्य, परे; केवल-अनुभव-आनन्द-स्वरूपः—आपका स्वरूप सच्चिदानन्द विग्रह है और जो भी आपका अनुभव करता है, वह आनन्द से पूरित हो जाता है; सर्व-बुद्धि-दृक्—परम प्रेक्षक, परमात्मा, प्रत्येक की बुद्धि।

वसुदेव ने कहा : हे भगवान्, आप इस भौतिक जगत से परे परम पुरुष हैं और आप परमात्मा हैं। आपके स्वरूप का अनुभव उस दिव्य ज्ञान द्वारा हो सकता है, जिससे आप भगवान् के रूप में समझे जा सकते हैं। अब आपकी स्थिति मेरी समझ में भलीभाँति आ गई है।

तात्पर्य : वसुदेव के हृदय के भीतर अपने पुत्र के प्रति स्नेह तथा भगवान् की दिव्य प्रकृति का ज्ञान दोनों जागृत हुए। प्रारम्भ में तो वासुदेव ने सोचा, "ऐसे सुन्दर बालक ने जन्म लिया है, जिसे कंस आकर मार डालेगा।" किन्तु जब उनकी समझ में यह बात आ गई कि यह सामान्य बालक नहीं अपितु साक्षात् भगवान् हैं, तो वे निर्भय हो गए। वे अपने पुत्र को हर तरह से अद्भुत एवं भगवान् समझकर भगवानोचित स्तुति करने लगे। कंस के उत्पीड़नों से निर्भीक होकर उन्होंने एक ही समय उस बालक को स्नेह का पात्र तथा स्तुति द्वारा पूजा का पात्र स्वीकार किया।

स एव स्वप्रकृत्येदं सृष्ट्वाग्रे त्रिगुणात्मकम् ।
तदनु त्वं ह्यप्रविष्टः प्रविष्ट इव भाव्यसे ॥ १४॥

शब्दार्थ

सः—वह (भगवान्); एव—निस्सन्देह; स्व-प्रकृत्या—अपनी ही शक्ति से (मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्); इदम्—यह भौतिक जगत; सृष्ट्वा—सृजन करके; अग्रे—प्रारम्भ में; त्रि-गुण-आत्मकम्—प्रकृति के तीन गुणों से बने (सत्त्वरजस्तमोगुण); तत् अनु—तत्पश्चात्; त्वम्—आप; हि—निस्सन्देह; अप्रविष्टः—प्रवेश न करने पर; प्रविष्टः इव—ऐसा प्रतीत होता है कि प्रवेश किया है; भाव्यसे—ऐसा समझा जाता है।.

हे भगवन्, आप वही पुरुष हैं जिसने प्रारम्भ में अपनी बहिरंगा शक्ति से इस भौतिक जगत की सृष्टि की। तीन गुणों (सत्त्व, रजस् तथा तमस्) वाले इस जगत की सृष्टि के बाद ऐसा लगता है कि आपने उसके भीतर प्रवेश किया है यद्यपि यथार्थ तो यह है कि आपने प्रवेश नहीं किया।

तात्पर्य : *भगवद्गीता* (७.४) में भगवान् स्पष्ट बतलाते हैं—

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।

अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥

तीन गुणों सत्त्वगुण, रजोगुण तथा तमोगुण—वाला यह भौतिक जगत पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, मन, बुद्धि तथा अहंकार से बना है और ये सभी कृष्ण से निकलने वाली शक्तियाँ हैं, किन्तु दिव्य होने के कारण कृष्ण सदैव इस भौतिक जगत से पृथक् हैं। जिन्हें शुद्धज्ञान नहीं है वे कृष्ण को पदार्थ की उपज मानते हैं और उनके शरीर को अपने जैसा भौतिक सोचते हैं (*अवजानन्ति मां मूढाः*)। फिर भी कृष्ण इस भौतिक जगत से सदैव विलग रहते हैं।

वैदिक वाङ्मय में सृष्टि का सम्बन्ध महाविष्णु से बतलाया जाता है। *ब्रह्म-संहिता* (५.३५) में कहा गया है—

एकोऽप्यसौ रचयितुं जगदण्ड कोटिं

यच्छक्तिरस्ति जगदण्डचया यदन्तः।

अण्डान्तरस्थपरमाणुचयान्तरस्थं

गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥

''मैं आदि भगवान् गोविन्द की पूजा करता हूँ। वे महाविष्णु के अंशरूप में भौतिक प्रकृति में प्रवेश करते हैं। फिर वे गर्भोदकशायी विष्णु के रूप में प्रत्येक ब्रह्माण्ड में प्रवेश करते हैं और वे सारे तत्त्वों में, यहाँ तक कि प्रत्येक अणु के भीतर, क्षीरोदकशायी विष्णु के रूप में प्रवेश कर जाते हैं। सृष्टि की ऐसी अभिव्यक्तियाँ अनन्त हैं, जो ब्रह्माण्डों तथा व्यष्टि परमाणुओं में प्रकट होती हैं।'' गोविन्द का

अंशत: प्राकट्य *अन्तर्यामी* अर्थात् परमात्मा के रूप में होता है, जो इस भौतिक जगत में प्रवेश करते हैं (*अण्डान्तरस्थ*) और जो परमाणु के भी भीतर हैं। *ब्रह्म-संहिता* (५.४८) में आगे भी कहा गया है—

यस्यैकनिश्वसितकालमथावलम्ब्य

जीवन्ति लोमविलजा जगदण्डनाथा: ।

विष्णुर्महान स इह यस्य कलाविशेषो

गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥

इस श्लोक में महाविष्णु को कृष्ण का स्वांश बतलाया गया है। महाविष्णु कारणार्णव में शयन करते हैं और जब वे साँस छोड़ते हैं, तो लाखों ब्रह्माण्ड उनके शरीर के छिद्रों से बाहर निकल आते हैं। जब वे श्वास खींचते हैं, तो ये सारे ब्रह्माण्ड विलुप्त हो जाते हैं। इस तरह लाखों ब्रह्माण्डों के नियन्ता, ब्रह्मा और अन्य देवता, महाविष्णु के साँस लेते समय भौतिक संसार में भीतर-बाहर आते-जाते रहते हैं।

मूर्ख व्यक्ति सोचते हैं कि जब कृष्ण वसुदेव के पुत्र रूप में प्रकट होते हैं, तो वे सामान्य बालक की तरह सीमित शक्तिवाले होते हैं। किन्तु वसुदेव यह जानते थे कि भगवान् उनके पुत्र रूप में उत्पन्न हुए हैं, परन्तु वे न तो देवकी के गर्भ में प्रविष्ट हुए और न उससे बाहर आए। प्रत्युत भगवान् सदैव वहाँ विद्यमान थे। भगवान् भीतर और बाहर सर्वत्र उपस्थित रहते हैं, सर्वव्यापी हैं। *प्रविष्ट इव भाव्यसे* ऐसा लगता है कि वे देवकी के गर्भ में प्रविष्ट हुए और अब वसुदेव के पुत्र रूप में प्रकट हुए हैं। वसुदेव द्वारा इस ज्ञान की अभिव्यक्ति संकेत करती है कि वसुदेव को पता था कि ये घटनाएँ किस तरह घटीं। वसुदेव निश्चित ही भगवान् के परम भक्त थे और हमें ऐसे ही भक्त से शिक्षा लेनी चाहिए। इसीलिए *भगवद्गीता* की (४.३४) संस्तुति है—

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।

उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिन: ॥

''जरा आध्यात्मिक गुरु के समीप जाकर सत्य सीखने का प्रयास तो करो। विनीत भाव से उनसे प्रश्न करो और उनकी सेवा करो। स्वरूपसिद्ध व्यक्ति ही तुम्हें ज्ञान प्रदान कर सकता है क्योंकि उसने सत्य को देखा है।'' वसुदेव ने भगवान् को जन्म दिया फिर भी उन्हें इसका पूर्ण ज्ञान था कि भगवान्

किस तरह प्रकट तथा अप्रकट होते हैं। अतएव वे *तत्त्वदर्शी* थे क्योंकि उन्होंने स्वयं देखा था कि परम सत्य किस तरह उनके पुत्र रूप में प्रकट हुए थे। वसुदेव अज्ञानी न थे जिससे वे यह सोचते कि उनके पुत्र रूप में उत्पन्न होने से भगवान् सीमित हो गए हैं। भगवान् असीम हैं और भीतर-बाहर सर्वव्यापी हैं। अत: उनके प्रकट होने या अदृश्य होने का प्रश्न ही नहीं उठता।

यथेमेऽविकृता भावास्तथा ते विकृतैः सह ।
नानावीर्याः पृथग्भूता विराजं जनयन्ति हि ॥ १५ ॥
सन्निपत्य समुत्पाद्य दृश्यन्तेऽनुगता इव ।
प्रागेव विद्यमानत्वान्न तेषामिह सम्भवः ॥ १६ ॥
एवं भवान्बुद्ध्यनुमेयलक्षणैर्
ग्राह्यैर्गुणैः सन्नपि तद्गुणाग्रहः ।
अनावृतत्वाद्बहिरन्तरं न ते
सर्वस्य सर्वात्मन आत्मवस्तुनः ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

यथा—जिस तरह; इमे—भौतिक शक्ति से बनी ये भौतिक सृष्टियाँ; अविकृता:—छिन्न-भिन्न नहीं; भावा:—ऐसी विचारधारा से; तथा—उसी प्रकार; ते—वे; विकृतैः सह—सम्पूर्ण भौतिकशक्ति से उत्पन्न इन विभिन्न तत्त्वों के साथ; नाना-वीर्या:—प्रत्येक तत्त्व विभिन्न शक्तियों से पूर्ण है; पृथक्—विलग; भूता:—होकर; विराजम्—सम्पूर्ण विश्व को; जनयन्ति—उत्पन्न करते हैं; हि—निस्सन्देह; सन्निपत्य—आध्यात्मिक शक्ति का साथ होने से; समुत्पाद्य—उत्पन्न किए जाने के बाद; दृश्यन्ते—प्रकट होते हैं; अनुगता:—उसके भीतर प्रविष्ट हुए; इव—मानो; प्राक्—शुरू से, इस जगत की सृष्टि के पूर्व से; एव—निस्सन्देह; विद्यमानत्वात्—भगवान् के अस्तित्व के कारण; न—नहीं; तेषाम्—इन भौतिक तत्त्वों का; इह—इस जगत में; सम्भव:—प्रवेश करना सम्भव हुआ होता; एवम्—इस प्रकार; भवान्—हे प्रभु; बुद्धि-अनुमेय-लक्षणै:—असली बुद्धि से तथा ऐसे लक्षणों से; ग्राह्यै:—इन्द्रिय विषयों से; गुणै:—गुणों से; सन् अपि—यद्यपि सम्पर्क में हैं; तत्-गुण-अग्रह:—उन गुणों के द्वारा स्पर्श नहीं किए जाते; अनावृतत्वात्—सर्वत्र उपस्थित होने से; बहि: अन्तरम्—बाहर-भीतर; न ते—ऐसी कोई बात नहीं है; सर्वस्य—हर वस्तु का; सर्व-आत्मन:—सभी वस्तुओं के मूल स्वरूप; आत्म-वस्तुन:—हर वस्तु आपकी है, किन्तु आप हर वस्तु के बाहर तथा भीतर हैं।

सम्पूर्ण भौतिक शक्ति (महत् तत्त्व) अविभाज्य है, किन्तु भौतिक गुणों के कारण यह पृथ्वी जल, अग्नि, वायु तथा आकाश में विलग होती सी प्रतीत होती है। ये विलग हुई शक्तियाँ जीवभूत के कारण मिलकर विराट जगत को दृश्य बनाती हैं, किन्तु तथ्य तो यह है कि विराट जगत की सृष्टि के पहले से ही महत् तत्त्व विद्यमान रहता है। अत: महत् तत्त्व का वास्तव में सृष्टि में प्रवेश नहीं होता है। इसी तरह यद्यपि आप अपनी उपस्थिति के कारण हमारी इन्द्रियों द्वारा अनुभवगम्य हैं, किन्तु आप न तो हमारी इन्द्रियों द्वारा अनुभवगम्य हो पाते हैं न ही हमारे मन या वचनों द्वारा अनुभव किए जाते हैं (*अवाङ्मनसागोचर*)। हम अपनी इन्द्रियों से कुछ ही वस्तुएँ देख पाते हैं, सारी वस्तुएँ नहीं। उदाहरणार्थ, हम अपनी आँखों का प्रयोग देखने के लिए कर

सकते हैं, आस्वाद के लिए नहीं। फलस्वरूप आप इन्द्रियों के परे हैं। यद्यपि आप प्रकृति के तीनों गुणों से संबद्ध हैं, आप उनसे अप्रभावित रहते हैं। आप हर वस्तु के मूल कारण हैं, सर्वव्यापी अविभाज्य परमात्मा हैं। अतएव आपके लिए कुछ भी बाहरी या भीतरी नहीं है। आपने कभी भी देवकी के गर्भ में प्रवेश नहीं किया प्रत्युत आप पहले से वहाँ उपस्थित थे।

तात्पर्य : *भगवद्गीता* (९.४) में स्वयं भगवान् ने यही बात बतलाई है—

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना।

मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः॥

''मेरे अव्यक्त रूप से यह सारा ब्रह्माण्ड परिव्याप्त है। सारे जीव मुझमें हैं, किन्तु मैं उनमें नहीं हूँ।''

भगवान् की अनुभूति स्थूल इन्द्रियों के माध्यम से नहीं हो पाती। कहा गया है कि भगवान् कृष्ण के नाम, यश, लीलाएँ इत्यादि भौतिक इन्द्रियों द्वारा नहीं जाने जा सकते। जो समुचित निर्देशन के अन्तर्गत शुद्ध भक्ति में लगा हुआ है केवल वही उनका साक्षात्कार कर सकता है। *ब्रह्म-संहिता* (५.३८) में कहा गया है—

प्रेमाञ्जनच्छुरितभक्तिविलोचनेन

सन्तः सदैव हृदयेषु विलोकयन्ति।

जिसने भगवान् के प्रति दिव्य प्रेमभाव उत्पन्न कर लिया है, वह सदैव भगवान् गोविंद को अपने भीतर और बाहर देख सकता है। इस तरह वे सर्वसामान्य को दृष्टिगोचर नहीं होते। अतः *भगवद्गीता* के इस श्लोक में यह कहा गया है कि यद्यपि भगवान् सर्वव्यापी हैं, किन्तु भौतिक इन्द्रियों द्वारा वे विचारणीय नहीं हैं। यद्यपि हम उन्हें देख नहीं सकते, किन्तु वास्तव में सारी वस्तुएँ उन्हीं पर टिकी हैं। जैसाकि *भगवद्गीता* के सातवें अध्याय में कहा गया है, यह सम्पूर्ण विराट जगत उनकी दो विभिन्न शक्तियों परा तथा अपरा अर्थात् आध्यात्मिक तथा भौतिक शक्तियों का मेल है। जिस तरह सूर्य का प्रकाश सारे ब्रह्माण्ड के ऊपर फैलता है उसी तरह भगवान् की शक्ति सृष्टि भर में फैली है और सारी वस्तुएँ उसी शक्ति पर टिकी हैं।

किन्तु इसका अर्थ यह भी नहीं है कि वे सर्वव्यापी होने के कारण अपना निजी अस्तित्व खो चुके

हैं। ऐसे तर्कों का खण्डन करने के लिए भगवान् कहते हैं, ''मैं सर्वत्र हूँ और सारी वस्तुएँ मुझमें हैं, फिर भी मैं पृथक् हूँ।'' उदाहरणार्थ, राजा सरकार का मुखिया होता है और यह सरकार राजा की शक्ति की अभिव्यक्ति ही है। सरकार के विविध विभाग राजा की शक्तियाँ होते हैं और हर विभाग राजा की शक्ति पर आश्रित रहता है। इतने पर भी राजा से यह आशा करना कि वह हर विभाग में व्यक्तिगत रूप में उपस्थित हो सकेगा, व्यर्थ है। यह तो भोंडा उदाहरण हुआ। इसी तरह हम जो कुछ भी देखते हैं और जितनी भी वस्तुएँ विद्यमान हैं चाहे वे इस भौतिक जगत में हों या वैकुण्ठ लोक में, वे सब भगवान् की शक्ति पर आश्रित हैं। भगवान् की विभिन्न शक्तियों के विसरण से ही सृष्टि बनती है और जैसाकि *भगवद्गीता* में कहा गया है वे अपने साकार रूप में सर्वत्र उपस्थित हैं, जो उनकी विभिन्न शक्तियों का विसरण है।

यह तर्क दिया जा सकता है कि जो भगवान् केवल अपनी चितवन से सारे ब्रह्माण्ड की सृष्टि करते हैं, वे भला वसुदेव की पत्नी देवकी के गर्भ के भीतर कैसे आ सकते हैं। इस तर्क का खण्डन करने के लिए ही वसुदेव ने कहा, ''हे प्रभु! यह कोई बहुत बड़ा आश्चर्य नहीं है कि आप देवकी के गर्भ के भीतर प्रकट हुए हैं क्योंकि सृष्टि भी तो इसी तरह बनी थी। आप महाविष्णु के रूप में कारणार्णव में लेटे हुए थे और आपकी श्वास से असंख्य ब्रह्माण्ड उत्पन्न हो गए। तब आप हर ब्रह्माण्ड के भीतर गर्भोदकशायी विष्णु के रूप में प्रविष्ट हुए। इसके बाद आपने पुन: अपना विस्तार क्षीरोदकशायी विष्णु के रूप में किया और सारे जीवों के हृदयों में, यहाँ तक कि हर परमाणु के भी भीतर प्रविष्ट कर गए। अत: आपका देवकी के गर्भ में प्रवेश इसी तरह समझ में आ जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि आपने प्रवेश किया है किन्तु इसके साथ साथ आप सर्वव्यापी भी बने रहते हैं। हम भौतिक उदाहरणों से आपके प्रवेश तथा अप्रवेश को समझ सकते हैं। कुल भौतिक शक्ति (महत् तत्त्व) सोलह तत्त्वों में विभाजित होकर भी जैसी की तैसी (अक्षत)बनी रहती है। यह भौतिक शरीर पाँच स्थूल तत्त्वों—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश का मेल ही तो है। जब भी कोई भौतिक शरीर उपस्थित होता है, तो लगता है कि उन तत्त्वों का नए सिरे से सृजन हुआ है, किन्तु ये सारे तत्त्व शरीर के बाहर सदैव विद्यमान रहते हैं। इसी तरह यद्यपि आप देवकी के गर्भ में शिशु रूप में प्रकट हो रहे हैं, आप बाहर भी विद्यमान हैं। आप सदैव अपने धाम में रहते हैं, किन्तु आप एक ही समय लाखों रूपों में अपना

विस्तार कर सकते हैं।

"आपके प्राकट्य को काफी बुद्धि लगाकर समझना पड़ता है क्योंकि आपसे भौतिक शक्ति भी उद्भूत होती रहती है। आप भौतिक शक्ति के उसी प्रकार से मूल स्रोत हैं जिस तरह सूर्य-प्रकाश का स्रोत सूर्य है। न तो सूर्य-प्रकाश सूर्यमण्डल को आच्छादित कर सकता है, न ही आपसे उद्भूत भौतिक शक्ति आपको आच्छादित कर सकती है। आप भौतिक शक्ति के तीन गुणों में प्रतीत होते हैं, किन्तु ये तीनों गुण आपको आच्छादित नहीं कर सकते। अत्यन्त बुद्धिजीवी दार्शनिक इसे समझते हैं। दूसरे शब्दों में, यद्यपि आप भौतिक शक्ति के भीतर प्रतीत होते हैं, किन्तु आप इसके द्वारा कभी आच्छादित नहीं होते।"

वेदों का कथन है कि परब्रह्म का अपना तेज प्रकट होता रहता है, जिससे हर वस्तु प्रकाशित होती है। *ब्रह्म-संहिता* से हमें पता चलता है कि *ब्रह्मज्योति* या ब्रह्मतेज भगवान् के शरीर से उद्भूत होता है। इसी ब्रह्मतेज से सारी सृष्टि उत्पन्न होती है। *भगवद्गीता* में यह भी कहा गया है कि भगवान् ब्रह्मतेज के आश्रय हैं। मूलत: वे ही सारी वस्तुओं के मूल कारण हैं। किन्तु अल्पज्ञ यह सोचते हैं कि जब भगवान् इस भौतिक जगत में आते हैं, तो वे भौतिक गुणों को स्वीकार करते हैं। ऐसा निष्कर्ष परिपक्व नहीं अपितु यह अल्पज्ञ का निष्कर्ष होता है।

य आत्मनो दृश्यगुणेषु सन्निति
व्यवस्यते स्वव्यतिरेकतोऽबुधः ।
विनानुवादं न च तन्मनीषितं
सम्यग्यतस्त्यक्तमुपाददत्पुमान् ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

यः—जो भी; आत्मनः—आत्मा का; दृश्य-गुणेषु—शरीर इत्यादि दृश्य पदार्थों में से; सन्—उस अवस्था को प्राप्त; इति—इस प्रकार; व्यवस्यते—कर्म करता रहता है; स्व-व्यतिरेकतः—मानो शरीर आत्मा से स्वतंत्र है; अबुधः—धूर्त, मूढ़; विना अनुवादम्—समुचित अध्ययन के बिना; न—नहीं; च—भी; तत्—शरीर तथा अन्य दृश्य वस्तुएँ; मनीषितम्—विवेचना किया हुआ; सम्यक्—पूरी तरह; यतः—मूर्ख होने के कारण; त्यक्तम्—तिरस्कृत कर दिए जाते हैं; उपाददत्—इस शरीर को वास्तविकता मान बैठता है; पुमान्—मनुष्य।

जो व्यक्ति प्रकृति के तीन गुणों से बने अपने दृश्य शरीर को आत्मा से स्वतंत्र मानता है, वह अस्तित्व के आधार से ही अनजान होता है और इसलिए वह मूढ़ है। जो विद्वान हैं, वे इस निर्णय को नहीं मानते क्योंकि विवेचना द्वारा यह समझा जा सकता है कि आत्मा से निराश्रित दृश्य

शरीर तथा इन्द्रियाँ सारहीन हैं। यद्यपि इस निर्णय को अस्वीकार कर दिया गया है, किन्तु मूर्ख व्यक्ति इसे सत्य मानता है।

तात्पर्य : आत्मा के मूलाधार के बिना शरीर उत्पन्न नहीं हो सकता। यद्यपि तथाकथित विज्ञानियों ने अपनी-अपनी रासायनिक प्रयोगशालाओं में सजीव प्राणी को उत्पन्न करने के नानाविध प्रयास किए हैं, किन्तु वे ऐसा कर नहीं पाए क्योंकि जब तक आत्मा विद्यमान नहीं होता तब तक भौतिक तत्त्वों से शरीर निर्मित नहीं किया जा सकता। चूँकि विज्ञानी शरीर की रासायनिक रचना के विषय में जो सिद्धान्त प्रस्तुत करते हैं उनके प्रति अब मुग्ध हैं, अत: हमने अनेक विज्ञानियों को ललकारा है कि वे एक छोटा सा अंडा तो बनाकर दिखला दें। अंडे के रासायनिक पदार्थ सरलता से उपलब्ध किए जा सकते हैं। उसमें एक सफेद अंश होता है और एक पीला अंश। ये एक आवरण से ढके रहते हैं और आधुनिक विज्ञानी सरलता से इसकी नकल कर सकते हैं। माना कि वे ऐसा अंडा बना भी लें, किन्तु जब उसे वे इनकुबेटर के भीतर रखते हैं, तो इस मनुष्यनिर्मित रासायनिक अंडे से मुर्गी के चूजे नहीं निकलते। इसमें आत्मा का योग होना ही चाहिए क्योंकि जीव केवल रासायनिक संयोग नहीं है। अत: जो लोग सोचते हैं कि आत्मा के बिना जीवन का अस्तित्व हो सकता है उन्हें *अबुध:* या मूर्ख कहा गया है।

पुन: कुछ लोग ऐसे भी हैं, जो शरीर को अपर्याप्त समझकर शरीर का तिरस्कार करते हैं। वे भी मूर्खों की ही श्रेणी में आते हैं। इस शरीर का न तो तिरस्कार किया जा सकता है न ही इसे पर्याप्त कहकर स्वीकार किया जा सकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि भगवान् तथा शरीर एवं आत्मा, भगवान् की ही शक्तियाँ हैं जिनका वर्णन स्वयं भगवान् ने *भगवद्गीता* (७.४-५) में किया है—

भूमिरापोऽनलोवायु: खं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥
अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्॥

"पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि तथा अहंकार ये मेरी आठ विभिन्न भौतिक शक्तियाँ हैं। किन्तु हे महाबाहु अर्जुन! इस अपरा शक्ति के अतिरिक्त भी मेरी एक पराशक्ति है, जो उन

समस्त जीवों से युक्त है, जो भौतिक प्रकृति से संघर्ष कर रहे हैं और ब्रह्माण्ड को बनाये रखे हुए हैं।''

अतएव शरीर का भगवान् से वैसा ही सम्बन्ध होता है जैसा आत्मा का होता है। चूँकि दोनों ही भगवान् की शक्तियाँ हैं अतएव इनमें से कोई भी मिथ्या नहीं है क्योंकि उनका आगम वास्तव में हुआ होता है। जो जीवन के इस रहस्य को नहीं जानता वह *अबुध:* कहा जाता है। वैदिक आदेशों के अनुसार—*ऐतदात्म्यम् इदं सर्वम्, सर्वं खल्विदं ब्रह्म*—सारी वस्तुएँ परब्रह्म हैं। अतएव शरीर तथा आत्मा दोनों ही ब्रह्म हैं क्योंकि पदार्थ तथा आत्मा ब्रह्म से उद्‌भूत हैं।

वेदों के निर्णयों से ज्ञात न होने के कारण कुछ लोग भौतिक प्रकृति को पदार्थ के रूप में स्वीकार करते हैं और कुछ लोग आत्मा को पदार्थ मानते हैं, किन्तु वास्तव में ब्रह्म ही पदार्थ है। ब्रह्म समस्त कारणों का कारण है। इस जगत के अवयव तथा कारण ब्रह्म है और इस जगत के अवयवों को हम ब्रह्म से स्वतंत्र नहीं रख सकते। साथ ही, चूँकि इस भौतिक जगत के अवयव तथा इसका कारण ब्रह्म ही है अतएव ये दोनों ही *सत्य* हैं अत: *ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या* वक्तव्य की कोई वैधता नहीं है। यह जगत मिथ्या नहीं है।

ज्ञानी लोग इस जगत का निषेध करते हैं और मूर्ख लोग इसे ही सत्य मानते हैं। इस तरह दोनों ही दिग्भ्रमित रहते हैं। यद्यपि आत्मा की तुलना में शरीर महत्त्वपूर्ण नहीं है, किन्तु हम यह तो नहीं कह सकते कि वह मिथ्या है। फिर भी शरीर नश्वर है और जो मूर्ख भौतिकतावादी व्यक्ति हैं, जिन्हें आत्मा का पूरा-पूरा ज्ञान नहीं है, नश्वर शरीर को सत्य मानकर उसको सजाने-सँवारने में लगे रहते हैं। शरीर को मिथ्या मानकर उसका निषेध तथा शरीर को सर्वस्व मानना इन दोनों दोषों से—बचा जा सकता है यदि कृष्णभावनामृत पद को प्राप्त कर लिया जाए। यदि हम इस जगत को मिथ्या मानते हैं, तो *असुरों* की कोटि में आ जाते हैं, जो यह कहते हैं कि यह जगत मिथ्या है, इसका कोई आधार नहीं है और ईश्वर इसका नियंत्रक नहीं है (*असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम्*)। *भगवद्‌गीता* के सोलहवें अध्याय में इसे असुरों का निर्णय कहा गया है।

त्वत्तोऽस्य जन्मस्थितिसंयमान्विभो
वदन्त्यनीहादगुणादविक्रियात् ।
त्वयीश्वरे ब्रह्मणि नो विरुध्यते

त्वदाश्रयत्वादुपचर्यते गुणैः ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

त्वत्तः—आपसे; अस्य—सम्पूर्ण जगत की; जन्म—सृष्टि; स्थिति—पालन; संयमान्—तथा संहार; विभो—हे प्रभु; वदन्ति—विद्वान वैदिक पंडित कहते हैं; अनीहात्—प्रयत्न से मुक्त; अगुणात्—प्रकृति के गुणों से अप्रभावित; अविक्रियात्—आपकी दिव्य स्थिति में स्थिर रहने वाले; त्वयि—आप में; ईश्वरे—भगवान् में; ब्रह्मणि—परब्रह्म में; नो—नहीं; विरुध्यते—विरोध होता है; त्वत्-आश्रयत्वात्—आपके द्वारा नियंत्रित होने से; उपचर्यते—अपने आप चलती हैं; गुणैः—गुणों के कार्यशील होने से।

हे प्रभु, विद्वान वैदिक पंडित कहते हैं कि सम्पूर्ण विश्व का सृजन, पालन एवं संहार आपके द्वारा होता है तथा आप प्रयास से मुक्त, प्रकृति के गुणों से अप्रभावित तथा अपनी दिव्य स्थिति में अपरिवर्तित रहते हैं। आप परब्रह्म हैं और आप में कोई विरोध नहीं है। प्रकृति के तीनों गुण—सतो, रजो तथा तमोगुण आपके नियंत्रण में हैं अतः सारी घटनाएँ स्वतः घटित होती हैं।

तात्पर्य : वेदों में कहा गया है—

न तस्य कार्यं करणं च विद्यते

न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते।

परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते

स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च॥

"भगवान् को न तो कुछ करना होता है और न कोई उनके तुल्य है, न उनसे बढ़कर ही है क्योंकि सारी घटनाएँ उनकी अनेक शक्तियों द्वारा स्वतः सुचारु रूप से घटती रहती हैं।" (*श्वेताश्वतर उपनिषद्* ६.८) सृजन, पालन तथा संहार इन तीनों का संचालन भगवान् स्वयं करते हैं और इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* में की गई है (*मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्*)। अन्ततोगत्वा भगवान् को कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं पड़ती इसीलिए वे *निर्विकार* अर्थात् अपरिवर्तनीय कहलाते हैं। चूँकि हर घटना उनके निर्देशानुसार होती है, अतः वे *सृष्टिकर्ता* कहलाते हैं। इसी तरह वे संहार के स्वामी हैं। जब स्वामी एक स्थान पर आसीन रहता है और उनके नौकर विभिन्न कार्य करते रहते हैं, तो वे जो भी काम करते हैं वह अन्ततः स्वामी का कार्य होता है यद्यपि वह कुछ भी नहीं करता (*न तस्य कार्यं करणं च विद्यते*)। भगवान् की शक्तियाँ असंख्य हैं अतः सारी घटनाएँ सुचारु रूप से घटती रहती हैं। भगवान् स्थिर हैं और इस भौतिक जगत में किसी भी वस्तु के प्रत्यक्ष कर्ता नहीं हैं।

स त्वं त्रिलोकस्थितये स्वमायया

बिभर्षि शुक्लं खलु वर्णमात्मनः ।
सर्गाय रक्तं रजसोपबृंहितं
कृष्णं च वर्णं तमसा जनात्यये ॥ २० ॥

शब्दार्थ

सः त्वम्—आप, जो वही व्यक्ति अर्थात् ब्रह्म हैं; त्रि-लोक-स्थितये—तीनों लोकों उच्च, मध्य तथा अधः लोकों का पालन करने के लिए; स्व-मायया—अपनी निजी शक्ति से (आत्ममायया); बिभर्षि—धारण करते हैं; शुक्लम्—सतोगुणी विष्णु के श्वेत रूप में; खलु—भी; वर्णम्—रंग; आत्मनः—आपकी ही कोटि का (विष्णुतत्त्व); सर्गाय—सम्पूर्ण जगत की सृष्टि के लिए; रक्तम्—रजोगुण के रंग का लाल; रजसा—रजोगुण से युक्त; उपबृंहितम्—आविष्ट; कृष्णम् च—तथा अंधकार का गुण; वर्णम्—रंग; तमसा—अज्ञान से आवृत; जन-अत्यये—सम्पूर्ण सृष्टि के विनाश हेतु।

हे भगवन्, आपका स्वरूप तीनों भौतिक गुणों से परे है फिर भी तीनों लोकों के पालन हेतु आप सतोगुणी विष्णु का श्वेत रंग धारण करते हैं, सृजन के समय जो रजोगुण से आवृत होता है आप लाल प्रतीत होते हैं और अन्त में अज्ञान से आवृत संहार के समय आप श्याम प्रतीत होते हैं।

तात्पर्य : वसुदेव ने भगवान् से प्रार्थना की, ''आप *शुक्लम्* कहलाते हैं। *शुक्लम्* अथवा श्वेत परम सत्य का प्रतीक है क्योंकि यह भौतिक गुणों से अप्रभावित रहता है। ब्रह्माजी *रक्त* कहलाते हैं क्योंकि वे सृष्टि के रजोगुण के द्योतक हैं। तमोगुण (अंधकार) शिवजी के अधिकार में है क्योंकि वे विश्व का संहार करते हैं। इस जगत की सृष्टि, संहार और पालन आपकी शक्तियों द्वारा संचालित हैं, किन्तु आप इन गुणों से सदा अप्रभावित रहते हैं।'' जैसी कि वेदों में पुष्टि हुई है—*हरिर्हि निर्गुणः साक्षात्*—भगवान् सारे भौतिक गुणों से मुक्त होते हैं। यह भी कहा जाता है कि भगवान् के शरीर में रजो तथा तमोगुण नहीं पाए जाते हैं।

हमें अपनी इन्द्रियों के अनुभव के अनुसार में इस श्लोक में उल्लिखित तीन रंगों *शुक्ल, रक्त* तथा *कृष्ण* का शाब्दिक अर्थ नहीं ग्रहण करना चाहिए अपितु ये *सत्त्वगुण, रजोगुण* तथा *तमोगुण* का प्रतिनिधित्व करने वाले हैं। कभी-कभी हमें तमोगुणी बगुला श्वेत दिखता है। *बकान्ध न्याय* के अनुसार मूर्ख बगुला बैलों के अंडकोषों को लटकती मछलियाँ समझकर उसके पीछे दौड़ता है ताकि जैसे ही वे गिरें, उसी समय वह उन्हें पकड़ ले। इस तरह बगुला सदैव अंधकार में रहता है। यद्यपि वैदिक साहित्य के प्रणेता व्यासदेव श्याम रंग के थे, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि वे तमोगुणी थे। वे तो प्रकृति के भौतिक गुणों के परे सत्त्वगुण के सर्वोच्च पद पर प्रतिष्ठित थे। कभी-कभी ये रंग (*शुक्लरक्तस्तथापीतः*) ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों तथा शूद्रों को बतलाने वाले होते हैं। क्षीरोदकशायी भगवान् विष्णु श्याम रंग के हैं, शिवजी श्वेत और ब्रह्मा लाल रंग के, किन्तु श्रील सनातन गोस्वामी ने *वैष्णव तोषणी टीका* में

लिखा है कि इन रंगों का प्रदर्शन इस तरह की अभिव्यक्ति के लिए नहीं होता।

शुक्ल, रक्त तथा कृष्ण का सही ज्ञान इस प्रकार होता है। भगवान् सदैव दिव्य हैं, किन्तु सृष्टि करने के लिए वे ब्रह्मा का रक्त रंग धारण करते हैं। पुन: कभी-कभी भगवान् क्रुद्ध होते हैं। *भगवद्गीता* (१६.१९) में भगवान् कहते हैं—

तानहं द्विषत: क्रूरान् संसारेषु नराधमान्।

क्षिपाम्यजस्रमशुभान् आसुरीष्वेव योनिषु॥

"जो लोग ईर्ष्यालु तथा क्रूर हैं और नराधम हैं उन्हें मैं भवसागर में विविध असुर योनियों में डाल देता हूँ।" इन असुरों का विनाश करने के लिए भगवान् क्रुद्ध होते हैं और तब वे शिवजी का रूप ग्रहण करते हैं। संक्षेप में, भगवान् तीनों गुणों से परे हैं। हमें इन्द्रिय अनुभूति के कारण अन्यथा सोचकर दिग्भ्रमित नहीं होना चाहिए। हमें महाजनों के माध्यम से भगवान् की स्थिति को समझना चाहिए। जैसाकि *श्रीमद्भागवत* (१.३.२८) में कहा गया है—*एते चांश कला: पुंस: कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।*

त्वमस्य लोकस्य विभो रिरक्षिषु-
गृहेऽवतीर्णोऽसि ममाखिलेश्वर ।
राजन्यसंज्ञासुरकोटियूथपै-
र्निर्व्यूह्यमाना निहनिष्यसे चमू: ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

त्वम्—आप; अस्य—इस जगत के; लोकस्य—विशेषतया इस मर्त्यलोक के; विभो—हे परमेश्वर; रिरक्षिषु:—(असुरों के उत्पात से) सुरक्षा के इच्छुक; गृहे—इस घर में; अवतीर्ण: असि—अब प्रकट हुए हो; मम—मेरे; अखिल-ईश्वर—यद्यपि आप सम्पूर्ण सृष्टि के स्वामी हैं; राजन्य-संज्ञ-असुर-कोटि-यूथ-पै:—राजनीतिज्ञों तथा राजाओं के रूप में लाखों असुरों तथा उनके अनुयायियों समेत; निर्व्यूह्यमाना:—सारे संसार में विचरण कर रहे; निहनिष्यसे—मारेगा; चमू:—सेना, साज-सामान, सैनिक।

हे परमेश्वर, हे समस्त सृष्टि के स्वामी, आप इस जगत की रक्षा करने की इच्छा से मेरे घर में प्रकट हुए हैं। मुझे विश्वास है कि आप क्षत्रियों का बाना धारण करने वाले राजनीतिज्ञों के नायकत्व में जो असुरों की सेनाएँ संसार भर में विचरण कर रही हैं उनका वध करेंगे। निर्दोष जनता की सुरक्षा के लिए आपके द्वारा इनका वध होना ही चाहिए।

तात्पर्य : कृष्ण इस जगत में दो कारणों से प्रकट होते हैं—*परित्राणाय साधूनाम् विनाशाय च दुष्कृताम्*—निर्दोष धार्मिक भक्तों की रक्षा करने तथा उन अशिक्षित असभ्य असुरों का वध करने के लिए जो राजनीतिक सत्ता के लिए कुत्तों की तरह भौंकते हैं और परस्पर झगड़ते रहते हैं। कहा गया

है—*कलिकाले नामरूपे कृष्ण अवतार।* हरे कृष्ण आन्दोलन भी नाम रूप में कृष्ण का अवतार ही है। हममें से हर व्यक्ति को जो आसुरी शासकों तथा राजनीतिज्ञों से भयभीत है कृष्ण के इस अवतार हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे/हरे राम, हरे राम, रामराम, हरे हरे का स्वागत करना चाहिए। तभी हम इन आसुरी शासकों के उत्पीड़न से सुरक्षित रह सकेंगे। सम्प्रति ये शासक इतने शक्तिशाली हैं कि येनकेनप्रकारेण सरकार के उच्च पदों को अपने कब्जे में करके असंख्य लोगों को राष्ट्रीय सुरक्षा या किसी आपात्काल के बहाने सताया करते हैं। तब फिर से एक असुर दूसरे असुर को पछाड़ता है, किन्तु इसमें जनता उसी तरह सतायी जाती है। अतः सारा विश्व एक संकटपूर्ण स्थिति में है और एकमात्र आशा बँधी हुई है इस हरे कृष्ण आन्दोलन पर। भगवान् नृसिंहदेव का अवतार तब हुआ जब प्रह्लाद अपने आसुरी पिता द्वारा अत्यधिक सताये जा चुके थे। ऐसे ही आसुरी पिताओं—शासक राजनीतिज्ञों—के कारण ही हरे कृष्ण आन्दोलन को आगे बढ़ा पाना कठिन हो रहा है। किन्तु अब जब कि कृष्ण अपने नाम के रूप में इस आन्दोलन के माध्यम से प्रकट हो चुके हैं, तो हमें आशा करनी चाहिए कि इन आसुरी पिताओं का विनाश होकर रहेगा और सारे विश्व में ईश्वर का साम्राज्य स्थापित होगा। आज सारा विश्व राजनीतिज्ञों, गुरुओं, साधुओं, योगियों तथा अवतारों के भेष में असंख्य असुरों से भरा हुआ है और वे मानव समाज को सही लाभ देने वाले कृष्णभावनामृत के बारे में जनता को भ्रमित कर रहे हैं।

अयं त्वसभ्यस्तव जन्म नौ गृहे
श्रुत्वाग्रजांस्ते न्यवधीत्सुरेश्वर ।
स तेऽवतारं पुरुषैः समर्पितं
श्रुत्वाधुनैवाभिसरत्युदायुधः ॥ २२॥

शब्दार्थ

अयम्—इस (धूर्त) ने; तु—लेकिन; असभ्यः—तनिक भी सभ्य नहीं (असुर का अर्थ ही होता है असभ्य और सुर का सभ्य); तव—आपका; जन्म—जन्म; नौ—हमारे; गृहे—घर में; श्रुत्वा—सुनकर; अग्रजान् ते—आपसे पहले उत्पन्न हुए भाइयों को; न्यवधीत्—मार डाला; सुर-ईश्वर—हे सभ्य पुरुषों अर्थात् देवताओं के ईश्वर; सः—वह (असभ्य कंस); ते—तुम्हारे, आपके; अवतारम्—प्राकट्य को; पुरुषैः—अपने सेनापतियों द्वारा; समर्पितम्—सूचना दिया हुआ; श्रुत्वा—सुनकर; अधुना—अब; एव—निस्सन्देह; अभिसरति—तुरन्त आएगा; उदायुधः—हथियार उठाए हुए।

हे परमेश्वर, हे देवताओं के स्वामी, यह भविष्यवाणी सुनकर कि आप हमारे घर में जन्म लेंगे और उसका वध करेंगे, इस असभ्य कंस ने आपके कई अग्रजों को मार डाला है। वह ज्योंही

अपने सेनानायकों से सुनेगा कि आप प्रकट हुए हैं, वह आपको मारने के लिए हथियार समेत तुरन्त ही आ धमकेगा।

तात्पर्य : यहाँ पर कंस को *असभ्य* कहा गया है, जिसका अर्थ है जंगली "महाक्रूर" क्योंकि वह अपनी बहन की कई सन्तानों को मार चुका था। जब उसने यह भविष्यवाणी सुनी कि उसका वध देवकी के आठवें पुत्र द्वारा होगा तो वह असभ्य पुरुष कंस तुरन्त ही अपनी नवविवाहिता बहन को मार डालने के लिए उद्यत हो गया। असभ्य व्यक्ति अपनी इन्द्रियों की तुष्टि के लिए कुछ भी कर सकता है। वह शिशुओं का, गायों का, ब्राह्मणों का और वृद्धों तक का वध कर सकता है। उसे किसी पर दया नहीं आती। वैदिक सभ्यता के अनुसार यदि गाएँ, स्त्रियाँ, बच्चे, बृद्ध तथा ब्राह्मण दोषी भी हों तो उन्हें क्षमा कर दिया जाना चाहिए। किन्तु असुरगण—असभ्यजन—इसकी परवाह नहीं करते। सम्प्रति गायों का तथा बच्चों का वध बिना रोकटोक के चल रहा है, अत: यह सभ्यता रंचभर भी मानवीय नहीं है और जो लोग इस निंदनीय सभ्यता का संचालन कर रहे हैं, वे असभ्य असुर हैं।

ऐसे असभ्य असुर कृष्णभावनामृत आन्दोलन के पक्ष में नहीं हैं। जन अधिकारी के रूप में वे बेहिचक घोषणा करते हैं कि हरे कृष्ण आन्दोलन का कीर्तन एक ऊधम है, यद्यपि *भगवद्गीता* में स्पष्ट कहा गया है—*सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रता: ।* इस श्लोक के अनुसार महात्माओं का कर्तव्य है कि वे हरे कृष्ण मंत्र का कीर्तन करें और यथाशक्ति सारे विश्व में इसका प्रसार करने का प्रयत्न करें। दुर्भाग्यवश समाज ऐसी असभ्य अवस्था में है कि इसमें ऐसे तथाकथित महात्मा भरे पड़े हैं, जो गायों तथा बच्चों को मारने के लिए तथा हरे कृष्ण आन्दोलन को रोकने के लिए तैयार रहते हैं। ऐसी असभ्य कार्यवाहियाँ हरे कृष्ण आन्दोलन के मुम्बई केन्द्र, हरे कृष्ण धाम के विरोध में वास्तव में प्रदर्शित की गईं। जिस तरह कंस से यह आशा नहीं की जाती थी कि वह देवकी तथा वसुदेव के सुन्दर बालक का वध करे, उसी तरह असभ्य समाज से, भले ही वह कृष्णभावनामृत आंदोलन की प्रगति से अप्रसन्न है, यह आशा नहीं की जाती कि वह इस आन्दोलन को रोके। तो भी हमें अनेक प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना होगा। यद्यपि कृष्ण का वध नहीं किया जा सकता, किन्तु कृष्ण का पिता होने के कारण वसुदेव काँप रहे थे क्योंकि स्नेहवश उन्होंने सोचा कि तुरन्त ही कंस आएगा और उनके पुत्र को मार डालेगा। इसी तरह यद्यपि कृष्णभावनामृत आन्दोलन तथा कृष्ण विलग नहीं और उन्हें असुरगण रोक

नहीं सकते, किन्तु हम भयभीत हैं कि ये असुर किसी भी समय विश्व के किसी भी भाग में इस आन्दोलन को रोक सकते हैं।

श्रीशुक उवाच
अथैनमात्मजं वीक्ष्य महापुरुषलक्षणम् ।
देवकी तमुपाधावत्कंसाद्भीता सुविस्मिता ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; अथ—वसुदेव द्वारा प्रार्थना करने के बाद; एनम्—इस कृष्ण को; आत्मजम्—अपने पुत्र; वीक्ष्य—देखकर; महा-पुरुष-लक्षणम्—भगवान् विष्णु के समस्त लक्षणों से युक्त; देवकी—कृष्ण की माता; तम्—उन (कृष्ण) की; उपाधावत्—प्रार्थना की; कंसात्—कंस से; भीता—भयभीत; सु-विस्मिता—ऐसा अद्भुत बालक देखकर आश्चर्यचकित।.

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : तत्पश्चात् यह देखकर कि उनके पुत्र में भगवान् के सारे लक्षण हैं, कंस से अत्यधिक भयभीत तथा असामान्य रूप से विस्मित देवकी भगवान् से प्रार्थना करने लगीं।

तात्पर्य : इस श्लोक का *सुविस्मिता* शब्द महत्त्वपूर्ण है, जिसका अर्थ है, ''चकित।'' देवकी तथा उनके पति वसुदेव को आश्वासन दिया गया था कि उनका पुत्र भगवान् है अतएव कंस द्वारा अवध्य है, किन्तु स्नेह के वशीभूत होकर तथा कंस की पूर्व नृशंसता को सोचकर वे भयभीत हो रहे थे कि कृष्ण का कहीं वध न हो जाए। इसीलिए *सुविस्मिता* शब्द का प्रयोग हुआ है। इसी प्रकार हम भी यह सोचकर हैरान हो जाते हैं कि यह आन्दोलन असुरों द्वारा कुचल डाला जाएगा या निर्भय होकर आगे बढ़ता जाएगा।

श्रीदेवक्युवाच
रूपं यत्तत्प्राहुरव्यक्तमाद्यं
ब्रह्म ज्योतिर्निर्गुणं निर्विकारम् ।
सत्तामात्रं निर्विशेषं निरीहं
स त्वं साक्षाद्विष्णुरध्यात्मदीपः ॥ २४॥

शब्दार्थ

श्री-देवकी उवाच—श्री देवकी ने कहा; रूपम्—स्वरूप; यत् तत्—क्योंकि आप वही रूप हैं; प्राहुः—कहलाते हैं; अव्यक्तम्—अव्यक्त, भौतिक इन्द्रियों द्वारा अनुभूत न होने वाले (अतः श्रीकृष्णनामादि न भवेद् ग्राह्यमिन्द्रियै); आद्यम्—आदि कारण; ब्रह्म—ब्रह्म; ज्योतिः—प्रकाश; निर्गुणम्—भौतिक गुणों से रहित; निर्विकारम्—बिना परिवर्तन के विष्णु का शाश्वत स्वरूप; सत्ता-मात्रम्—आदि तत्त्व, सबका कारण; निर्विशेषम्—परमात्मा के रूप में सर्वत्र विद्यमान; निरीहम्—इच्छारहित; सः—वह परम पुरुष; त्वम्—आपको; साक्षात्—प्रत्यक्ष; विष्णुः—भगवान् विष्णु; अध्यात्म-दीपः—समस्त दिव्य ज्ञान के लिए दीपक (आपको जान लेने पर सब कुछ जाना जा सकता है.

श्रीदेवकी ने कहा : हे भगवन, वेद अनेक हैं। उसमें से कुछ आपको शब्दों तथा मन द्वारा अव्यक्त बतलाते हैं फिर भी आप सम्पूर्ण विश्व के उद्गम हैं। आप ब्रह्म हैं, सभी वस्तुओं से बड़े और सूर्य के समान तेज से युक्त। आपका कोई भौतिक कारण नहीं, आप परिवर्तन तथा विचलन से मुक्त हैं और आपकी कोई भौतिक इच्छाएँ नहीं हैं। इस तरह वेदों का कथन है कि आप ही सार हैं। अतः हे प्रभु, आप समस्त वैदिक कथनों के उद्गम हैं और आपको समझ लेने पर मनुष्य हर वस्तु धीरे धीरे समझ जाता है। आप ब्रह्मज्योति तथा परमात्मा से भिन्न हैं फिर भी आप उनसे भिन्न नहीं हैं। आपसे ही सब वस्तुएँ उद्भूत हैं। दरअसल आप ही समस्त कारणों के कारण हैं, आप समस्त दिव्य ज्ञान की ज्योति भगवान् विष्णु हैं।

तात्पर्य : हर वस्तु के उद्गम विष्णु हैं और भगवान् विष्णु तथा भगवान् कृष्ण में कोई अन्तर नहीं क्योंकि दोनों ही *विष्णु-तत्त्व* हैं। ऋग्वेद से पता चलता है—*ॐ तद् विष्णोः परमं पदम्*—मूल तत्त्व तो सर्वव्यापी भगवान् विष्णु हैं, जो परमात्मा तथा तेजोमय ब्रह्म हैं। सारे जीव भी उन विष्णु के अंश हैं जिनकी शक्तियाँ विविध हैं (*परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञान-बलक्रिया च*)। इसलिए विष्णु या कृष्ण सर्वस्व हैं। *भगवद्गीता* (.८) में भगवान् कृष्ण कहते हैं— *अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते*—मैं सारे आध्यात्मिक तथा भौतिक जगतों का उद्गम हूँ। सारी वस्तुएँ मुझी से उद्भूत हैं। अतएव कृष्ण हर वस्तु के आदि कारण हैं (*सर्वकारणकारणम्*)। जब विष्णु अपने विश्वव्यापी रूप में विस्तार करते हैं, तो हमें समझना चाहिए कि वे *निराकार निर्विशेष ब्रह्मज्योति* रूप में हैं।

यद्यपि सारी वस्तुएँ कृष्ण से उद्भूत होती हैं, किन्तु अन्ततोगत्वा वे एक पुरुष हैं। *अहं आदिर्हि देवानाम्* वे ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर के उद्गम हैं और उन सबसे अनेक अन्य देवता प्रकट होते हैं। इसीलिए कृष्ण ने *भगवद्गीता* (१४.२७) में कहा है—*ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहम्*—ब्रह्म मुझ पर आश्रित है। भगवान् यह भी कहते हैं (*भगवद्गीता* ९.२३)—

येऽप्यन्यदेवताभक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः ।

तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम् ॥

''हे कुन्तीपुत्र! अन्य देवताओं को मनुष्य चाहे जो कुछ भी अर्पित क्यों न करे, किन्तु वास्तव में वह एकमात्र मेरे निमित्त होता है परन्तु वह असली समझ के बिना सम्पन्न किया जाता है।'' ऐसे अनेक

लोग हैं, जो भिन्न-भिन्न देवताओं की पूजा, उन्हें पृथक् देवता मानकर करते हैं, किन्तु वास्तव में वे पृथक् होते नहीं। यथार्थ तो यह है कि हर देवता तथा हर जीव कृष्ण का अंश है (*ममैवांशो जीवलोके जीवभूत:*)। देवता भी जीव की कोटि में आते हैं, वे पृथक् देवता नहीं होते। किन्तु अपरिपक्व बुद्धि वाले तथा भौतिक प्रकृति के गुणों से कलुषित व्यक्ति अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार विविध देवताओं की पूजा करते हैं। इसीलिए *भगवद्गीता* में इनकी भर्त्सना की गई है (*कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञाना: प्रपद्यन्तेऽन्यदेवता:*)। चूँकि लोग बुद्धिविहीन तथा बहुत कम प्रगत होते हैं और उन्हें सत्य का समुचित ज्ञान नहीं रहता इसलिए वे या तो विविध देवताओं की पूजा करते हैं या विभिन्न दर्शनों के अनुसार यथा मायावादी दर्शन के अनुसार चिन्तन करते हैं।

कृष्ण या विष्णु ही हर वस्तु के वास्तविक उद्गम हैं। वेदों में कहा गया है—*यस्य भाषा सर्वमिदं विभाति।* परम सत्य का वर्णन *श्रीमद्भागवत* (.२८.१५) में *सत्यं ज्ञानमनन्तम् यद्ब्रह्मज्योति सनातनम्* के रूप में हुआ है। यह ब्रह्मज्योति सनातन है फिर भी कृष्ण पर आश्रित है (*ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहम्*)। *ब्रह्म-संहिता* का कथन है कि भगवान् सर्वव्यापी हैं। *अण्डान्तरस्थपरमाणुचयान्तरस्थम्।* वे इस ब्रह्माण्ड के भीतर हैं और परमाणु के भीतर परमात्मा रूप में हैं। *यस्य प्रभा प्रभवतोजगदण्डकोटि-कोटि ष्वशेषवसुधादिविभूतिभिन्नम्*—ब्रह्म भी भगवान् से स्वतंत्र नहीं। अत: दार्शनिक जो कुछ भी वर्णन करता है, वह अन्ततोगत्वा कृष्ण या विष्णु ही है (*सर्वं खल्विदं ब्रह्म, परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान्*)। ज्ञान की विभिन्न अवस्थाओं के अनुसार भगवान् विष्णु का वर्णन भिन्न-भिन्न प्रकार से किया जाता है, किन्तु यथार्थत: वे हर वस्तु के उद्गम हैं।

अनन्य भक्त होने के कारण देवकी जान चुकी थीं कि वही भगवान् विष्णु उनके पुत्र-रूप में प्रकट हुए हैं। इसीलिए वसुदेव की प्रार्थना के बाद देवकी ने प्रार्थना की। वे अपने भाई की क्रूरता के कारण अत्यधिक डरी हुई थीं। देवकी ने कहा, ''हे प्रभु! नारायण, भगवान् राम, शेष, वराह, नृसिंह, वामन, बलदेव तथा विष्णु से उद्भूत ऐसे ही असंख्य अवतार जो आपके नित्य रूप हैं उन्हें वेदों ने मूल रूप माना है। आप मूल रूप हैं क्योंकि अवतार के रूप में आपके सभी स्वरूप इस भौतिक सृष्टि के परे हैं। आपका स्वरूप इस जगत की सृष्टि के पहले भी विद्यमान था। आपके स्वरूप नित्य तथा सर्वव्यापी हैं। ये स्वतोतेजस्वी, परिवर्तनरहित तथा भौतिक गुणों द्वारा अकलुषित हैं। ऐसे नित्य रूप ज्ञान से तथा

आनन्द से पूर्ण हैं—वे सतोगुणी हैं और विभिन्न लीलाओं में लगे रहते हैं। आप किसी एक रूप तक ही सीमित नहीं हैं—ऐसे दिव्य शाश्वत स्वरूप आत्माराम हैं। मैं अब समझ गई हूँ कि आप भगवान् विष्णु हैं।'' इस तरह हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भगवान् विष्णु ही सब कुछ हैं यद्यपि वे सारी वस्तुओं से भिन्न भी हैं। यही *अचिन्त्यभेदाभेदतत्त्व* दर्शन है।

नष्टे लोके द्विपरार्धावसाने
महाभूतेष्वादिभूतं गतेषु ।
व्यक्तेऽव्यक्तं कालवेगेन याते
भवानेकः शिष्यतेऽशेषसंज्ञः ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

नष्टे—संहार के बाद; **लोके**—विश्व के; **द्वि-परार्ध-अवसाने**—लाखों वर्षों के बाद (ब्रह्मा की आयु); **महा-भूतेषु**—पाँच प्रारम्भिक तत्त्वों (क्षिति, जल, पावक, गगन तथा समीर) में; **आदि-भूतम् गतेषु**—इन्द्रिय-बोध के सूक्ष्म तत्त्वों के भीतर प्रवेश करते हैं; **व्यक्ते**—प्रकट होने पर; **अव्यक्तम्**—अव्यक्त में; **काल-वेगेन**—काल के वेग से; **याते**—प्रवेश करता है; **भवान्**—आप; **एकः**—केवल एक; **शिष्यते**—रहता है; **अशेष-संज्ञः**—विभिन्न नामों से युक्त वही एक।

लाखों वर्षों बाद विश्व-संहार के समय जब सारी व्यक्त तथा अव्यक्त वस्तुएँ काल के वेग से नष्ट हो जाती हैं, तो पाँचों स्थूल तत्त्व सूक्ष्म स्वरूप ग्रहण करते हैं और व्यक्त वस्तुएँ अव्यक्त बन जाती हैं। उस समय आप ही रहते हैं और आप अनन्त शेष-नाग कहलाते हैं।

तात्पर्य : संहार के समय पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश ये पाँच स्थूल तत्त्व मन, बुद्धि तथा अहंकार में प्रवेश कर जाते हैं और सारा विश्व उन भगवान् की आध्यात्मिक शक्ति में प्रवेश करता है, जो हर वस्तु के उद्गम होने के कारण, बचे रहते हैं। इसीलिए भगवान् शेष-नाग, आदि पुरुष तथा अन्य अनेक नामों से जाने जाते हैं।

इसलिए देवकी ने प्रार्थना की, ''लाखों वर्षों बाद जब ब्रह्मा की आयु पूरी हो जाती है, तो इस विराट जगत का संहार होता है। उस समय पाँचों तत्त्व—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश *महत् तत्त्व* में प्रवेश करते हैं। यह महत् तत्त्व समय के वेग से अव्यक्त सम्पूर्ण भौतिक शक्ति में प्रवेश करता है और यह सम्पूर्ण भौतिक शक्ति शक्तिमान *प्रधान* में तथा यह प्रधान आप में प्रवेश करता है। इसलिए सम्पूर्ण जगत के संहार के बाद केवल आप अपने दिव्य नाम, रूप, गुण तथा साज-सामान के साथ रहते हैं।

हे प्रभु! मैं आपको नमस्कार करती हूँ क्योंकि आप अव्यक्त सम्पूर्ण शक्ति के निर्देशक हैं और

भौतिक प्रकृति के चरम आगार हैं। हे प्रभु! यह समूचा विराट जगत क्षण से लेकर वर्षपर्यन्त की अवधिकाल के प्रभाव के अन्तर्गत है। सबके सब आपके निर्देशानुसार कार्य करते हैं। आप सभी के आदि निर्देशक हैं और समस्त शक्तियों के आगार हैं।''

योऽयं कालस्तस्य तेऽव्यक्तबन्धो
चेष्टामाहुश्चेष्टते येन विश्वम् ।
निमेषादिर्वत्सरान्तो महीयां-
स्तं त्वेशानं क्षेमधाम प्रपद्ये ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

यः—जो; अयम्—यह; कालः—काल (मिनट, घंटा, सेकंड); तस्य—उसका; ते—तुम्हारा; अव्यक्त-बन्धो—हे प्रभु! आप अव्यक्त के प्रारम्भकर्ता हैं (महत् तत्त्व या प्रकृति); चेष्टाम्—प्रयास या लीलाएँ; आहुः—कहा जाता है; चेष्टते—कार्य करता है; येन—जिससे; विश्वम्—सम्पूर्ण सृष्टि; निमेष-आदिः—काल के सूक्ष्म अंश आदि; वत्सर-अन्तः—वर्ष के अन्त तक; महीयान्—शक्तिशाली; तम्—आपको; त्वा ईशानम्—परम नियंत्रक आपको; क्षेम-धाम—समस्त शुभ के आगार; प्रपद्ये—मैं पूरी तरह आपकी शरणागत में हूँ।.

हे भौतिक शक्ति के प्रारम्भकर्ता, यह अद्भुत सृष्टि शक्तिशाली काल के नियंत्रण में कार्य करती है, जो सेकंड, मिनट, घंटा तथा वर्षों में विभाजित है। यह काल तत्त्व, जो लाखों वर्षों तक फैला हुआ है, भगवान् विष्णु का ही अन्य रूप है। आप अपनी लीलाओं के लिए काल के नियंत्रक की भूमिका अदा करते हैं, किन्तु आप समस्त सौभाग्य के आगार हैं। मैं पूरी तरह आपकी शरणागत हूँ।

तात्पर्य : जैसाकि *ब्रह्म-संहिता* (५.५२) में कहा गया है—

यच्चक्षुरेष सविता सकलग्रहाणां

राजा समस्तसुरमूर्तिरशेषतेजाः ।

यस्याज्ञया भ्रमति संभृतकालचक्रो

गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥

''सूर्य समस्त ग्रहों का राजा है, जिसमें ऊष्मा तथा प्रकाश की असीमित शक्ति रहती है। मैं उन आदि भगवान् गोविंद की पूजा करता हूँ जिनके वशीभूत होकर भगवान् के चक्षुरूप सूर्य भी नित्य काल की स्थिर धुरी में चक्कर लगाता है।'' यद्यपि हम विश्व (प्रकृति) को विराट तथा अद्भुत देखते हैं, किन्तु यह काल की सीमाओं के भीतर है। इस काल पर भी भगवान् का नियंत्रण रहता है, जिसकी

पुष्टि *भगवद्गीता* द्वारा होती है (*मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्*)। प्रकृति काल के अधीन है। असल में हर वस्तु काल के अधीन है और काल पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के वश में है। अतः भगवान् को समय के घातक आक्रमणों से कोई भय नहीं रहता। काल का मापन सूर्य (*सविता*) की गति से किया जाता है। यहाँ तक कि हर मिनट, सेकंड, हर दिन, हर रात, हर मास तथा हर वर्ष की गणना सूर्य की गति से की जा सकती है। किन्तु सूर्य स्वतंत्र नहीं है क्योंकि वह काल के अधीन है। *भ्रमति संभृतकालचक्रः*—सूर्य कालचक्र के भीतर घूमता रहता है। सूर्य काल के नियंत्रण में है और काल भगवान् के द्वारा नियंत्रित होता है। अतः भगवान् को काल का तनिक भी डर नहीं रहता।

यहाँ पर भगवान् को *अव्यक्तबन्धु* अर्थात् सम्पूर्ण जगत की गतियों के प्रारम्भकर्ता कहकर सम्बोधित किया गया है। कभी-कभी प्रकृति की तुलना कुम्हार के चाक से की जाती है। जब चाक घूमता रहता है, तो उसे कौन गति देता है ? उत्तर होगा कुम्हार। यद्यपि कभी-कभी चाक की गति ही दिखती है, किन्तु कुम्हार नहीं दिखता। इसीलिए भगवान् जो विराट जगत की गति के लिए उत्तरदायी हैं *अव्यक्तबन्धु* कहलाते हैं। सारी वस्तुएँ काल की सीमाओं के अन्तर्गत हैं, किन्तु काल भगवान् के निर्देश पर चलता है, अतः भगवान् काल की सीमाओं से बँधे हुए नहीं हैं।

मर्त्यो मृत्युव्यालभीतः पलायन्
लोकान्सर्वान्निर्भयं नाध्यगच्छत् ।
त्वत्पादाब्जं प्राप्य यदृच्छयाद्य
सुस्थः शेते मृत्युरस्मादपैति ॥ २७॥

शब्दार्थ

मर्त्यः—जीव, जिनकी मृत्यु निश्चित है; मृत्यु-व्याल-भीतः—मृत्यु रूपी सर्प से भयभीत; पलायन्—भागते हुए; लोकान्—विभिन्न लोकों को; सर्वान्—सभी; निर्भयम्—निर्भीकता; न अध्यगच्छत्—प्राप्त नहीं करता; त्वत्-पाद-अब्जम्—आपके चरणकमलों की; प्राप्य—शरण पाकर; यदृच्छया—सौभाग्यवश, भगवान् तथा गुरु की कृपा से (गुरुकृपा, कृष्णकृपा); अद्य—इस समय; सु-स्थः—अविचलित तथा शान्त; शेते—सो रहे हैं; मृत्युः—मृत्यु; अस्मात्—उन लोगों से; अपैति—दूर भागता है।

इस भौतिक जगत में कोई भी व्यक्ति जन्म, मृत्यु, बुढ़ापा तथा रोग—इन चार नियमों से छूट नहीं पाया भले ही वह विविध लोकों में क्यों न भाग जाए। किन्तु हे प्रभु, अब चूँकि आप प्रकट हो चुके हैं अतः मृत्यु आपके भय से दूर भाग रही है और सारे जीव आपकी दया से आपके चरणकमलों की शरण प्राप्त करके पूर्ण मानसिक शान्ति की नींद सो रहे हैं।

तात्पर्य : जीवों की विभिन्न कोटियाँ हैं, किन्तु सभी जीव मृत्यु से भयभीत रहते हैं। कर्मियों का सर्वोच्च लक्ष्य स्वर्गलोक को जाना है जहाँ दीर्घायु प्राप्त होती है। जैसाकि *भगवद्गीता* (८.१७) में कहा गया है—*सहस्रयुग पर्यन्तम् अहर्यद् ब्रह्मणो विदु:*—ब्रह्मा का एक दिन ०० युगों के बराबर होता है और प्रत्येक युग में ४३,००,००० वर्ष होते हैं। इसी तरह ब्रह्मा की रात्रि ०० गुणित ४३,००,००० वर्ष के बराबर होती है। इस विधि से हम ब्रह्मा के मास तथा वर्ष की गणना कर सकते हैं, किन्तु करोड़ों वर्षों तक जीवित रहने वाले (*द्विपरार्धकाल*) ब्रह्मा को भी मरना पड़ता है। वैदिक शास्त्र के अनुसार स्वर्गलोक के वासी ००० वर्ष तक जीवित रहते हैं । और जिस तरह ब्रह्मा का एक दिन हमारे ४,३०,००,००,००० सालों के बराबर गिना जाता है, स्वर्गलोक में एक दिन हमारे ६ मास के तुल्य होता है। इसीलिए कर्मीजन स्वर्गलोक जाने की इच्छा रखते हैं, किन्तु इससे वे मृत्यु से मुक्त नहीं हो सकते। इस जगत में ब्रह्मा से लेकर एक क्षुद्र चींटी तक को मरना होता है। इसीलिए यह जगत *मर्त्यलोक* कहलाता है। *भगवद्गीता* (८.१६) में कृष्ण कहते हैं—*आब्रह्मभुवनाल्लोका: पुनरावर्तिनोऽर्जुन*—जब तक मनुष्य इस लोक में या ब्रह्मलोक अथवा इस ब्रह्माण्ड के अन्य किसी लोक में रहता है तब तक उसे जन्म-जन्मांतर *कालचक्र* के वशीभूत होना होता है (*भूत्वा भूत्वा प्रलीयते*)। किन्तु यदि मनुष्य भगवद्धाम वापस लौट जाता है (*यद्गत्वा न निवर्तन्ते*) तो उसे काल की सीमा में फिर से प्रवेश नहीं करना पड़ता। अत: जिन भक्तों ने भगवान् के चरणकमलों में शरण ले रखी है उन्हें भगवान् के इस आश्वासन के अन्तर्गत सुख की नींद सोना चाहिए। *भगवद्गीता* (४.९) में पुष्टि की गई है*त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति* इस शरीर को त्यागने के बाद कृष्ण-भक्त को इस जगत में फिर से आने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

जीव की वैधानिक स्थिति शाश्वत है (*न हन्यते हन्यमाने शरीरे, नित्य: शाश्वतोऽयम्*)। प्रत्येक जीव नित्य है। इस जगत में आ गिरने के कारण ही वह इस ब्रह्माण्ड में घूमता रहता है और लगातार एक के बाद दूसरा शरीर धारण करता रहता है। श्री चैतन्य महाप्रभु कहते हैं—

ब्रह्माण्ड भ्रमिते कोन भाग्यवान् जीव।

गुरु-कृष्ण प्रसादे पाय भक्ति-लता-बीज॥

(*चै.च. मध्य,* १९.१५१)

इस ब्रह्माण्ड में सारे लोग ऊपर-नीचे घूम रहे हैं, किन्तु जो भाग्यशाली होता है, वह गुरु-कृपा से कृष्णभावनामृत के सम्पर्क में आता है और भक्तिमार्ग पर अग्रसर होता है। तब उसे मृत्यु का भय नहीं रह जाता उसका जीवन शाश्वत हो जाता है। जब कृष्ण प्रकट होते हैं, तो प्रत्येक व्यक्ति के मन से मृत्यु का भय जाता रहता है फिर भी देवकी को लगा, ''यद्यपि आप हमारे पुत्र रूप में उत्पन्न हुए हैं, तो भी हम कंस से भयभीत हैं।'' वे थोड़ा-कुछ मोहग्रस्त थीं। उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि ऐसा क्यों हो रहा है, अतः उन्होंने भगवान् से निवेदन किया कि वे उन्हें तथा वसुदेव को इस भय से मुक्त करें।

इस प्रसंग में ध्यान देना होगा कि चन्द्रमा स्वर्ग का एक लोक है। वेदों से ज्ञात होता है कि जो चन्द्रमा को जाता है उसे दस हजार वर्ष की आयु प्राप्त होती है, जिसमें वह अपने पुण्यों के फलों का भोग करता है। यदि हमारे तथाकथित वैज्ञानिक चन्द्रलोक जा रहे हैं, तो उन्हें यहाँ वापस नहीं आना चाहिए। अतः हम निस्संदेह इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वे चन्द्रलोक तक पहुँचे ही नहीं। चन्द्रमा तक जाने के लिए पुण्यकर्मों की योग्यता चाहिए। तभी कोई वहाँ जाकर रह सकता है। यदि कोई व्यक्ति चन्द्रमा तक गया है, तो भला वह इस लोक को फिर से क्यों लौटने लगा जहाँ जीवन-अवधि इतनी कम है?

स त्वं घोरादुग्रसेनात्मजान्न-
स्त्राहि त्रस्तान्भृत्यवित्रासहासि ।
रूपं चेदं पौरुषं ध्यानधिष्ण्यं
मा प्रत्यक्षं मांसदृशां कृषीष्ठाः ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

सः—वह; त्वम्—आप; घोरात्—अत्यन्त क्रूर; उग्रसेन-आत्मजात्—उग्रसेन के पुत्र से; नः—हमारी; त्राहि—रक्षा कीजिए; त्रस्तान्—अत्यधिक भयभीत; भृत्य-वित्रास-हा असि—आप अपने दासों के भय को दूर करने वाले हैं; रूपम्—अपने विष्णु रूप में; च—भी; इदम्—इस; पौरुषम्—भगवान् रूप को; ध्यान-धिष्ण्यम्—ध्यान के द्वारा अनुभव किया गया; मा—नहीं; प्रत्यक्षम्—प्रत्यक्ष; मांस-दृशाम्—अपनी भौतिक आँखों से देखने वालों को; कृषीष्ठाः—होइए।

हे प्रभु, आप अपने भक्तों के भय को दूर करने वाले हैं अतएव आपसे मेरी प्रार्थना है कि आप कंस के विकराल भय से हमें बचाइए और हमें संरक्षण प्रदान कीजिए। योगीजन आपके विष्णु रूप का ध्यान में अनुभव करते हैं। कृपया इस रूप को उनके लिए अदृश्य बना दीजिए जो केवल भौतिक आँखों से देख सकते हैं।''

तात्पर्य : इस श्लोक में *ध्यान-धिष्ण्यम्* शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है क्योंकि भगवान् विष्णु के

स्वरूप का ध्यान योगीजन करते हैं (*ध्यानावस्थित तद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनः*)। देवकी ने विष्णुरूप में प्रकट भगवान् से प्रार्थना की कि वे इस रूप को छिपा लें क्योंकि वे भगवान् को एक सामान्य शिशु के रूप में देखना चाहती हैं—एक शिशु-रूप में जिसे सभी लोग भौतिक आँखों से प्रत्यक्ष देख सकते हैं। देवकी यह देखना चाह रही थीं कि क्या सचमुच भगवान् प्रकट हुए हैं अथवा वे विष्णु स्वरूप का स्वप्न देख रहीं हैं। वे सोचने लगीं कि यदि कंस आ जाए तो वह विष्णु रूप को देखकर तुरन्त ही बालक का वध कर देगा, किन्तु यदि वह मानवी बालक को देखे तो हो सकता है कि कुछ विचार करे। देवकी उग्रसेन आत्मज से भयभीत थीं अर्थात् उग्रसेन तथा उनके अनुचरों से नहीं अपितु उग्रसेन के पुत्र से। इस तरह उन्होंने भगवान् से प्रार्थना की कि वे इस भय को दूर करें क्योंकि वे अपने भक्तों को सदैव संरक्षण प्रदान करने के लिए (*अभयम्*) उद्यत रहते हैं। उन्होंने प्रार्थना की, "हे प्रभु! आप उग्रसेन के पुत्र कंस के क्रूर हाथों से मुझे बचाइए। आपसे मैं इस भयावह स्थिति से उबारने के लिए प्रार्थना कर रही हूँ क्योंकि आप अपने सेवकों को संरक्षण देने के लिए सदैव तैयार रहते हैं।" भगवान् ने *भगवद्गीता* में इस कथन की पुष्टि यह कहकर की है, "हे अर्जुन! तुम संसार को घोषित कर सकते हो कि मेरा भक्त कभी भी विनष्ट नहीं हो सकता।"

भगवान् से रक्षा करने की इस प्रकार प्रार्थना करते हुए देवकी ने अपना मातृ-स्नेह व्यक्त किया, "मैं जानती हूँ कि आपके इस दिव्य रूप की अनुभूति प्राय: बड़े-बड़े ऋषियों के ध्यान में होती है, किन्तु मैं अब भी डर रही हूँ क्योंकि ज्योंही कंस को पता चल जाएगा कि आप प्रकट हो चुके हैं, तो वह आपको क्षति पहुँचा सकता है। इसलिए मेरी प्रार्थना है कि इस समय आप भौतिक आँखों से अदृश्य हो जाँए।" दूसरे शब्दों में, उन्होंने भगवान् से प्रार्थना की कि वे सामान्य बालक का रूप धारण कर लें। "मुझे अपने भाई कंस से डरने का एक ही कारण है और वह है आपका प्राकट्य। हे भगवान् मधुसूदन! कंस को पता चल सकता है कि आप पहले ही जन्म ले चुके हैं। इसलिए मेरी प्रार्थना है कि आप अपने इस चतुर्भुज रूप को छिपा लें जो विष्णु के चार चिह्नों अर्थात् शंख, चक्र, गदा और कमल को धारण किए हुए है। हे प्रभु! विराट जगत के संहार के बाद आप सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को उदरस्थ करने वाले हैं फिर भी आप अपनी अनन्य कृपा से मेरे उदर से उत्पन्न हुए हैं। मुझे आश्चर्य है कि आप अपने भक्त को प्रसन्न करने के लिए सामान्य मनुष्यों जैसा कार्य करते हैं।"

देवकी कंस से इतनी भयभीत थीं कि उन्हें विश्वास ही नहीं हो पा रहा था कि कंस प्रत्यक्ष भगवान् विष्णु को मारने में असमर्थ होगा। इसीलिए मातृस्नेहवश उन्होंने भगवान् से प्रार्थना की कि वे अन्तर्धान हो जाँय। यद्यपि भगवान् के अन्तर्धान होने से कंस यह सोचकर देवकी को अधिक सताएगा कि उसने अपने नवजात शिशु को कहीं छिपा दिया है, किन्तु वे नहीं चाहती थीं कि दिव्य बालक को सताया और मारा जाए। इसीलिए उन्होंने भगवान् विष्णु से प्रार्थना की कि वे अन्तर्धान हो जाँय। बाद में, जब उन्हें सताया जाएगा तो वे अपने मन में उनके विषय में सोचेंगी।

जन्म ते मय्यसौ पापो मा विद्यान्मधुसूदन ।
समुद्विजे भवद्धेतोः कंसादहमधीरधीः ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

जन्म—जन्म; ते—तुम्हारा, भगवान् का; मयि—मेरे (गर्भ) में; असौ—वह कंस; पापः—पापी; मा विद्यात्—हो सकता है कि समझ न पाए; मधुसूदन—हे मधुसूदन; समुद्विजे—चिन्ता से पूर्ण मैं; भवत्-हेतोः—आपके प्रकट होने से; कंसात्—कंस से, जिसका मुझे कटु अनुभव है; अहम्—मैं; अधीर-धीः—अधिकाधिक उद्विग्न हूँ।

हे मधुसूदन, आपके प्रकट होने से मैं कंस के भय से अधिकाधिक अधीर हो रही हूँ। अतः कुछ ऐसा कीजिए कि वह पापी कंस यह न समझ पाए कि आपने मेरे गर्भ से जन्म लिया है।

तात्पर्य : देवकी ने भगवान् को मधुसूदन नाम से सम्बोधित किया। उन्हें ज्ञात था कि भगवान् ने मधु जैसे अनेक असुरों का वध किया है, जो कंस से सैकड़ों-हजारों गुना बलशाली थे तो भी दिव्य बालक के स्नेहवश उन्हें आशंका हो रही थी कि कंस उसका वध कर देगा। भगवान् की असीम शक्ति को न सोचकर वे स्नेहवश भगवान् के विषय में सोच रही थीं इसीलिए उन्होंने दिव्य बालक से अन्तर्धान होने की प्रार्थना की।

उपसंहर विश्वात्मन्नदो रूपमलौकिकम् ।
शङ्खचक्रगदापद्मश्रिया जुष्टं चतुर्भुजम् ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

उपसंहर—वापस ले लीजिए; विश्वात्मन्—हे विश्वव्यापी भगवान्; अदः—उस; रूपम्—स्वरूप को; अलौकिकम्—इस जगत में अप्राकृतिक; शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म—शंख, चक्र, गदा तथा कमल से युक्त; श्रिया—इन ऐश्वर्यों से युक्त; जुष्टम्—अलंकृत; चतुः-भुजम्—चार हाथों वाले।

हे प्रभु, आप सर्वव्यापी भगवान् हैं और आपका यह चतुर्भुज रूप, जिसमें आप शंख, चक्र, गदा तथा पद्म धारण किए हुए हैं, इस जगत के लिए अप्राकृत है। कृपया इस रूप को समेट

लीजिए (और सामान्य मानवी बालक बन जाइए जिससे मैं आपको कहीं छिपाने का प्रयास कर सकूँ)।

तात्पर्य : देवकी भगवान् को छिपाने की सोच रही थीं। वे अन्य बालकों की तरह इन्हें कंस के हाथों सौंपना नहीं चाह रही थीं। यद्यपि वसुदेव ने वचन दिया था कि वे कंस को हर बालक दे दिया करेंगे, किन्तु इस बार वे अपना वचन भंग करके बालक को कहीं छिपा देना चाहते थे। किन्तु इस अद्भुत चतुर्भुज रूप के कारण उन्हें छिपा सकना असम्भव हो रहा था।

विश्वं यदेतत्स्वतनौ निशान्ते
यथावकाशं पुरुषः परो भवान् ।
बिभर्ति सोऽयं मम गर्भगोऽभू-
दहो नृलोकस्य विडम्बनं हि तत् ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

विश्वम्—सम्पूर्ण विश्व को; यत् एतत्—चर तथा अचर सृष्टियों से युक्त; स्व-तनौ—अपने शरीर के भीतर; निशा-अन्ते—संहार के समय; यथा-अवकाशम्—बिना कठिनाई के आपके शरीर में शरण; पुरुषः—भगवान्; परः—दिव्य; भवान्—आप; बिभर्ति—पालन करते हैं; सः—वही (भगवान्); अयम्—वह रूप; मम—मेरा; गर्भ-गः—मेरे गर्भ में आया; अभूत्—हुआ; अहो—ओह; नृ-लोकस्य—जीवों के इस जगत का; विडम्बनम्—सोच पाना कठिन है; हि—निस्सन्देह; तत्—वह (गर्भ)।

संहार के समय चर तथा अचर जीवों से युक्त सारी सृष्टियाँ आपके दिव्य शरीर में प्रवेश कर जाती हैं और बिना कठिनाई के वहीं ठहरी रहती हैं। किन्तु अब वही दिव्य रूप मेरे गर्भ से जन्म ले चुका है। लोग इस पर विश्वास नहीं करेंगे और मैं हँसी की पात्र बन जाऊँगी।

तात्पर्य : *चैतन्य-चरितामृत* में बतलाया गया है कि भगवान् की प्रेमा-भक्ति दो प्रकार की होती है *ऐश्वर्यपूर्ण* तथा *ऐश्वर्य शिथिल*। असली ईशप्रेम ऐश्वर्य शिथिल भक्ति से—शुद्ध प्रेम के बल पर—प्रारम्भ होता है।

प्रेमाञ्जनच्छुरितभक्तिविलोचनेन
सन्तः सदैव हृदयेषु विलोकयन्ति।
यं श्यामसुन्दरमचिन्त्यगुणस्वरूपं
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥

(*ब्रह्म-संहिता* ५.३८)

शुद्ध भक्तजन अपनी आँखों में प्रेम का अंजन लगाकर भगवान् श्यामसुन्दर, मुरलीधर को दोनों

हाथों में बाँसुरी झुलाते हुए देखना चाहते हैं। यह स्वरूप वृन्दावनवासियों के लिए उपलब्ध है, जो भगवान् के उस विष्णु अथवा नारायण रूप से प्रेम नहीं करते जो वैकुण्ठ में पूजित हैं जहाँ भक्तगण उनके ऐश्वर्य की प्रशंसा करते हैं अपितु वे उनके श्यामसुन्दर स्वरूप से प्रेम करते हैं। यद्यपि देवकी को वृन्दावन पद प्राप्त नहीं है, किन्तु वे वृन्दावन पद के निकट हैं। वृन्दावन पद पर कृष्ण की माता यशोदा हैं जबकि मथुरा तथा द्वारका पद पर कृष्ण की माता देवकी हैं। मथुरा तथा द्वारका में भगवान् का प्रेम ऐश्वर्य से मिश्रित रहता है, किन्तु वृन्दावन में भगवान् का ऐश्वर्य प्रदर्शित नहीं होता।

भगवान् की प्रेमाभक्ति की पाँच अवस्थाएँ हैं—शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा माधुर्य। देवकी वात्सल्य पद पर हैं। वे अपने शाश्वत पुत्र कृष्ण के साथ प्रेमव्यापार करना चाहती थीं इसीलिए वे चाहती थीं कि भगवान् अपना विष्णु का ऐश्वर्यशाली स्वरूप समेट लें। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने इस श्लोक की टीका में इस तथ्य पर विशेष प्रकाश डाला है।

भक्ति, भगवान् तथा *भक्त*—ये भौतिक जगत से सम्बद्ध नहीं रहते। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* (१४.२६) में हुई है—

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते।

स गुणान् समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते॥

"जो अनन्य भक्ति के आध्यात्मिक कार्यों में अपने को लगाता है, वह तुरन्त ही प्रकृति के गुणों को लाँघकर आध्यात्मिक पद पर उठ जाता है।" भक्ति में मनुष्य प्रारम्भ से ही दिव्य पद पर स्थित हो जाता है। अतएव वसुदेव तथा देवकी शुद्ध भक्ति पद पर स्थित होने से इस भौतिक जगत से परे हैं और उन्हें भौतिक भय नहीं सताता। किन्तु दिव्य जगत में शुद्ध भक्ति के कारण, गहन प्रेम के फलस्वरूप ऐसा ही भय बना रहता है।

जैसाकि *भगवद्गीता* में कहा गया है (*भक्त्या मामभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्त्वतः*) तथा *श्रीमद्भागवत* में भी पुष्टि हुई है (*भक्त्याहमेकया ग्राह्यः*) भक्ति के बिना भगवान् की आध्यात्मिक स्थिति को समझा नहीं जा सकता। भक्ति की तीन अवस्थाएँ मानी जा सकती हैं—*गुणीभूत, प्रधानीभूत* तथा *केवल* और इनके भी तीन विभेद हैं—*ज्ञान, ज्ञानमयी* तथा *रति* या *प्रेमा* अर्थात् सामान्य ज्ञान, ज्ञान-मिश्रित प्रेम तथा शुद्ध प्रेम। ज्ञान से, बिना किसी परिवर्तन के, केवल दिव्य आनन्द का अनुभव किया

जा सकता है। यह अनुभूति *मानभूति* कहलाती है। ज्ञानमयी अवस्था में भगवान् के दिव्य ऐश्वर्यों का अनुभव होता है। किन्तु शुद्ध प्रेम या रति अवस्था में पहुँच कर भगवान् के कृष्ण या राम रूप की अनुभूति होती है। यही वांछनीय है। माधुर्य रस में तो मनुष्य भगवान् से अनुरक्त हो जाता है (*श्रीविग्रहनिष्ठरूपादि*)। तब भगवान् तथा भक्त में प्रेम-व्यापार चालू होता है।

व्रजभूमि या वृन्दावन में अपने हाथ में बाँसुरी लिए हुए कृष्ण की विशेष महत्ता *माधुरी... विराजते* द्वारा वर्णित है। हाथ में बाँसुरी लिए भगवान् का स्वरूप अत्यन्त आकर्षक है और इस स्वरूप से श्रीमती राधारानी या राधिका विशेष आकृष्ट होती हैं। वे कृष्ण के साथ आनन्दमय सान्निध्य का भोग करती हैं। कभी-कभी लोग यह नहीं समझ पाते कि *श्रीमद्भागवत* में राधिका के नाम का उल्लेख क्यों नहीं हुआ। वास्तव में राधिका को *आराधन* शब्द से समझा जा सकता है, जिसका अर्थ है कि वह कृष्ण के साथ उच्चतम प्रेमालाप का आनन्द भोग करती हैं।

देवकी नहीं चाहती थीं कि विष्णु को जन्म देने के कारण उनका उपहास हो अत: वे दो भुजाओं वाले कृष्ण को चाह रहीं थीं। इसीलिए उन्होंने भगवान् से अपना स्वरूप बदलने के लिए प्रार्थना की।

श्रीभगवानुवाच
त्वमेव पूर्वसर्गेऽभू: पृश्नि: स्वायम्भुवे सति ।
तदायं सुतपा नाम प्रजापतिरकल्मष: ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने देवकी से कहा; **त्वम्**—तुम; **एव**—निस्सन्देह; **पूर्व-सर्गे**—पूर्व युग में; **अभू:**—थीं; **पृश्नि:**—पृश्नि नामक; **स्वायम्भुवे**—स्वायम्भुव मनु के युग में; **सति**—हे सती; **तदा**—उस समय; **अयम्**—यह वसुदेव; **सुतपा**—सुतपा; **नाम**—नामक; **प्रजापति:**—प्रजापति; **अकल्मष:**—निर्मल व्यक्ति।

श्रीभगवान् ने उत्तर दिया: हे सती माता, आप अपने पूर्व जन्म में स्वायंभुव मनु कल्प में पृश्नि नाम से विख्यात थीं और वसुदेव सुतपा नामक अत्यन्त पवित्र प्रजापति थे।

तात्पर्य : भगवान् ने यह स्पष्ट कर दिया कि देवकी पहली बार ही उन की माता नहीं बनीं प्रत्युत वे इसके पूर्व भी उनकी माता थीं। कृष्ण शाश्वत हैं और वे अपने भक्तों में से ही शाश्वत रूप से अपने माता-पिता का चुनाव करते रहते हैं। इसके पूर्व भी देवकी भगवान् की माता और वसुदेव उनके पिता थे। तब उनके नाम क्रमश: पृश्नि तथा सुतपा थे। जब भी पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण प्रकट होते हैं, तो वे माता-पिता का चुनाव करते हैं और वे भी कृष्ण को पुत्र रूप में स्वीकार करते हैं। यह लीला

निरन्तर चलती रहती है इसलिए *नित्यलीला* कहलाती है। इस तरह यह आश्चर्य या उपहास की बात न थी। भगवान् ने स्वयं *भगवद्गीता* (४.९) में स्पष्ट किया है—

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वत: ।

त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ॥

"हे अर्जुन! जो मेरे प्राकट्य तथा कार्यों की दिव्य प्रकृति को जान लेता है, वह इस शरीर को त्यागने के बाद इस भौतिक जगत में फिर से जन्म नहीं लेता अपितु मेरे नित्य धाम को प्राप्त करता है।" मनुष्य को चाहिए कि भगवान् के प्राकट्य तथा तिरोधान को वैदिक महाजनों से समझे, कल्पना से नहीं। जो भगवान् के विषय में कल्पना का अनुसरण करता है, वह निन्दनीय है।

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम् ।

परं भावम् अजानन्तो मम भूतमहेश्वरम् ॥

(*भगवद्गीता* ९.११)

भगवान् अपने *परं भावम्* के द्वारा अपने भक्त के पुत्र रूप में प्रकट होते हैं। *भाव* शब्द शुद्ध प्रेम अवस्था का द्योतक है, जिसका भौतिक व्यापारों से कोई सम्बन्ध नहीं होता।

युवां वै ब्रह्मणादिष्टौ प्रजासर्गे यदा ततः ।
सन्नियम्येन्द्रियग्रामं तेपाथे परमं तपः ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

युवाम्—तुम दोनों (पृश्नि तथा सुतपा); वै—निस्सन्देह; ब्रह्मणा आदिष्टौ—ब्रह्मा (जो पितामह या प्रजापतियों के पिता कहलाते हैं) की आज्ञा से; प्रजा-सर्गे—सन्तान उत्पन्न करने में; यदा—जब; ततः—तत्पश्चात्; सन्नियम्य—पूर्ण नियंत्रण में रखते हुए; इन्द्रिय-ग्रामम्—इन्द्रियों को; तेपाथे—की; परमम्—महान; तपः—तपस्या।

जब भगवान् ब्रह्मा ने तुम दोनों को सन्तान उत्पन्न करने का आदेश दिया तो तुम दोनों ने पहले अपनी इन्द्रियों को वश में रखते हुए कठोर तपस्या की।

तात्पर्य : यहाँ पर यह आदेश है कि सन्तान उत्पत्ति करते समय इन्द्रियों का किस तरह उपयोग किया जाए। वैदिक नियमों के अनुसार संतान उत्पन्न करने से पहले इन्द्रियों का पूर्ण नियंत्रण करना चाहिये। यह नियंत्रण *गर्भाधान संस्कार* के माध्यम से पूरा होता है। भारत में विविध यांत्रिक विधियों से गर्भ निरोध करने पर बड़ा आन्दोलन छिड़ा हुआ है, किन्तु जन्म पर कभी यांत्रिक विधि से नियंत्रण नहीं किया जा सकता। जैसाकि *भगवद्गीता* (१३.९) में कहा गया है—*जन्ममृत्युजराव्याधि*

दुःखदोषानुदर्शनम्—जन्म, मृत्यु, बुढ़ापा तथा रोग ये इस भौतिक जगत के प्रमुख दुख हैं। लोग जन्म को नियंत्रित करना चाह रहे हैं, किन्तु मृत्यु पर नियंत्रण करने में असमर्थ हैं और यदि हम मृत्यु को नियंत्रण में नहीं कर सकते तो जन्म को भी नियंत्रण में नहीं ला सकते। दूसरे शब्दों में, जन्म को कृत्रिम ढंग से नियंत्रित करना मृत्यु पर कृत्रिम नियंत्रण करने से सुलभ नहीं है।

वैदिक सभ्यता के अनुसार गर्भाधान को धार्मिक नियमों के प्रतिकूल नहीं होना चाहिए। तभी जन्म दर पर नियंत्रण हो सकता है। जैसाकि *भगवद्गीता* (७.११) में कहा गया है—*धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि*—जो काम (यौन) धर्म के विरुद्ध नहीं है, वह भगवान् का स्वरूप है। लोगों को शिक्षा दी जानी चाहिए कि किस तरह संस्कारों के द्वारा वे उत्तम सन्तान उत्पन्न करें। गर्भ को कृत्रिम साधनों से नहीं रोका जाना चाहिए क्योंकि इससे पशु-सभ्यता का जन्म होगा। धार्मिक नियमों का पालन करने वाला स्वतः गर्भ-निरोध का पालन करता है क्योंकि आध्यात्मिक शिक्षा प्राप्त व्यक्ति जानता है कि काम का दुष्प्रभाव विविध प्रकार के दुखों के रूप में होता है (*बहुदुःखभाज*)। जो आध्यात्मिक रूप से उन्नत है, वह अनियंत्रित यौन में लिप्त नहीं होता। अतः काम को या अधिक सन्तान के जन्म को बलपूर्वक रोके जाने की बजाय लोगों को आध्यात्मिक शिक्षा दी जानी चाहिए। तभी गर्भ निरोध स्वतः होने लगेगा।

यदि कोई आध्यात्मिक प्रगति करने पर तुल जाए तो वह तब तक सन्तान उत्पन्न नहीं करेगा जब तक वह उस सन्तान को भक्त न बना सके। *श्रीमद्भागवत* (५.५.१८) में कहा गया है—*पिता न स स्यात्*—जब तक मनुष्य अपनी सन्तान को *मृत्यु* से अर्थात् जन्म-मरण के चक्र से बचा पाने में समर्थ न हो तब तक उसे पिता नहीं बनना चाहिए। किन्तु इसकी शिक्षा कहाँ दी जाती है? उत्तरदायी पिता कुत्तों और बिल्लियों की तरह सन्तानें नहीं उत्पन्न करता। लोगों को गर्भनिरोध के कृत्रिम साधनों को अपनाने के स्थान पर उन्हें कृष्णभावनामृत का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए क्योंकि तभी वे अपनी सन्तानों के प्रति अपने उत्तरदायित्व को समझ सकेंगे। यदि ऐसी सन्तानें उत्पन्न की जा सकें जो भक्त बनें और जिन्हें जन्म-मृत्यु के मार्ग से पृथक् रहने की शिक्षा दी जा सके (*मृत्युःसंसारवर्त्मनि*) तो गर्भनिरोध की कोई आवश्यकता नहीं रहती बल्कि संतान उत्पन्न करने के लिए मनुष्य को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। गर्भनिरोध की कृत्रिम विधियाँ निरर्थक हैं। कोई सन्तान उत्पन्न करे या नहीं, किन्तु कुत्तों और

बिल्लियों जैसी जनसंख्या से मानव समाज कभी भी सुखी नहीं रह सकता। इसलिए लोगों को आध्यात्मिक शिक्षा दिए जाने की आवश्यकता है, जिससे कुत्तों-बिल्लियों की तरह सन्तानें उत्पन्न करने के स्थान पर वे तपस्या करके भक्तों को जन्म दें। इससे उनके जीवन सफल हो जाएँगे।

वर्षवातातपहिमघर्मकालगुणाननु ।
सहमानौ श्वासरोधविनिर्धूतमनोमलौ ॥ ३४॥
शीर्णपर्णानिलाहारावुपशान्तेन चेतसा ।
मत्तः कामानभीप्सन्तौ मदाराधनमीहतुः ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

वर्ष—वर्षा; वात—तेज हवा; आतप—तेज धूप; हिम—कड़ाके की ठंड; घर्म—घाम; काल-गुणान् अनु—ऋतु परिवर्तनों के अनुसार; सहमानौ—सहन करके; श्वास-रोध—साँस रोककर, योगाभ्यास द्वारा; विनिर्धूत—मन में जमी मैल धुल जाती है; मनः-मलौ—मन भौतिक कल्मष से मुक्त होकर शुद्ध बन गया; शीर्ण—शुष्क, त्यक्त; पर्ण—पेड़ों के पत्ते; अनिल—तथा वायु; आहारौ—खाकर; उपशान्तेन—शान्त; चेतसा—पूर्ण संयमित मन से; मत्तः—मुझसे; कामान् अभीप्सन्तौ—कुछ वर माँगने की इच्छा से; मत्—मेरी; आराधनम्—पूजा; ईहतुः—तुम दोनों ने सम्पन्न की।

हे माता-पिता, तुम लोगों ने विभिन्न ऋतुओं के अनुसार वर्षा, तूफान, कड़ी धूप तथा कड़ाके की ठंड सभी प्रकार की असुविधाएँ सही थीं। तुमने शरीर के भीतर वायु रोकने के लिए प्राणायाम करके तथा केवल हवा और वृक्षों से गिरे सूखे पत्ते खाकर अपने मन से सारे मैल को साफ कर दिया था। इस तरह मेरे वर की इच्छा से तुम लोगों ने शान्त चित्त से मेरी पूजा की थी।

तात्पर्य : वसुदेव तथा देवकी को पुत्र रूप में भगवान् आसानी से नहीं मिले थे, न ही भगवान् यों ही किसी को अपना माता-पिता बनाते हैं। यहाँ हम देख सकते हैं कि वसुदेव तथा देवकी ने किस तरह अपने दिव्य पुत्र को प्राप्त किया। हमें भी अच्छी सन्तान प्राप्त करने के लिए यहाँ पर दिए गए नियमों का पालन करना चाहिए। हाँ, यह हर एक के लिए सम्भव नहीं कि उसे पुत्र-रूप में कृष्ण प्राप्त हों, किन्तु मानव समाज के लाभ के लिए अच्छे पुत्र तथा पुत्रियाँ तो उत्पन्न किए ही जा सकते हैं। *भगवद्गीता* में कहा गया है कि यदि मनुष्य आध्यात्मिक जीवन-शैली का पालन नहीं करते तो कुत्ते-बिल्लियों की तरह जन्मी *वर्णसंकर* जनसंख्या में वृद्धि होगी और सारा जगत नरक तुल्य बन जाएगा। कृष्णभावनामृत का अभ्यास किए बिना मात्र कृत्रिम ढंग से जनसंख्या की वृद्धि रोकने के प्रयास व्यर्थ होंगे। इससे जनसंख्या बढ़ेगी जो वर्णसंकर होगी, अवांछित सन्तानें होंगी। अतः लोगों को यह शिक्षा देना श्रेयस्कर होगा कि किस तरह संयमपूर्वक सन्तानें उत्पन्न की जाँए न कि कुत्ते-बिल्लियों की तरह।

मानव जीवन शूकर या कूकर जैसा बनने के लिए नहीं अपितु *तपो दिव्यम्* अर्थात् दिव्य तप के लिए है। हर एक को *तपस्या* की शिक्षा दी जानी चाहिए। यद्यपि पृश्नि तथा सुतपा की तरह तपस्या कर पाना सम्भव नहीं रह गया, किन्तु शास्त्र में तपस्या की सरलतम विधि बतलाई गई है और वह है संकीर्तन आन्दोलन। कृष्ण जैसी सन्तान पाने के लिए तपस्या करने की किसी से आशा नहीं की जा सकती, किन्तु हरे कृष्ण महामंत्र के कीर्तन मात्र से (*कीर्तनाद् एव कृष्णस्य*) वह इतना पवित्र बन सकता है कि इस जगत के सारे कल्मष से मुक्त होकर (*मुक्तसंग:*) भगवद्धाम वापस जा सके (*परं व्रजेत*)। अतएव कृष्णभावनामृत आन्दोलन लोगों को सुख के कृत्रिम साधन अपनाने की शिक्षा नहीं देता अपितु शास्त्र द्वारा संस्तुत सुख का असली मार्ग—हरे कृष्ण मंत्र कीर्तन—अपनाने और भौतिक जीवन में हर प्रकार से पूर्ण बनने की शिक्षा देता है।

एवं वां तप्यतोस्तीव्रं तपः परमदुष्करम् ।
दिव्यवर्षसहस्राणि द्वादशेयुर्मदात्मनोः ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस तरह से; वाम्—तुम दोनों को; तप्यतोः—तपस्या करते; तीव्रम्—अत्यन्त कठोर; तपः—तपस्या; परम-दुष्करम्—सम्पन्न करना कठिन; दिव्य-वर्ष—स्वर्गलोक के अनुसार काल गणना; सहस्राणि—हजार; द्वादश—बारह; ईयुः—बीत गए; मत्-आत्मनोः—मेरी चेतना में लगे रहकर।

इस तरह तुम दोनों ने मेरी चेतना (कृष्णभावना) में कठिन तपस्या करते हुए बारह हजार दिव्य वर्ष बिता दिए।

तदा वां परितुष्टोऽहममुना वपुषानघे ।
तपसा श्रद्धया नित्यं भक्त्या च हृदि भावितः ॥ ३७॥
प्रादुरासं वरदराड्युवयोः कामदित्सया ।
व्रियतां वर इत्युक्ते माद‍ृशो वां वृतः सुतः ॥ ३८॥

शब्दार्थ

तदा—तब (बारह हजार दिव्य वर्ष बीत जाने पर); वाम्—तुम दोनों के साथ; परितुष्टः अहम्—मैं संतुष्ट हुआ; अमुना—इससे; वपुषा—कृष्ण के रूप में; अनघे—हे निष्पाप माता; तपसा—तपस्या के द्वारा; श्रद्धया—श्रद्धापूर्वक; नित्यम्—निरन्तर (लगे रहकर); भक्त्या—भक्ति के द्वारा; च—भी; हृदि—हृदय के भीतर; भावितः—स्थिर (संकल्प); प्रादुरासम्—तुम्हारे समक्ष (उसी तरह) प्रकट हुआ; वर-द-राट्—श्रेष्ठ वरदायक; युवयोः—तुम दोनों का; काम-दित्सया—इच्छा पूरी करने के लिए; व्रियताम्—तुमसे मन की बात कहने के लिए पूछा; वरः—वरदान के लिए; इति उक्ते—इस तरह अनुरोध किए जाने वाले; माद‍ृशः—मेरी ही तरह; वाम्—तुम दोनों का; वृतः—पूछा गया था; सुतः—तुम्हारे पुत्र रूप में (तुमने मेरे जैसा पुत्र चाहा था)।

हे निष्पाप माता देवकी, उन बारह हजार दिव्य वर्षों के बीत जाने पर, जिनमें तुम अपने हृदय में परम श्रद्धा, भक्ति तथा तपस्यापूर्वक निरन्तर मेरा ध्यान करती रही, मैं तुम से अत्यन्त प्रसन्न

हुआ था। चूँकि मैं वर देने वालों में सर्वश्रेष्ठ हूँ, अतः मैं इसी कृष्ण रूप में प्रकट हुआ कि तुम मनवाञ्छित वर माँगो। तब तुमने मेरे सदृश पुत्र-प्राप्ति की इच्छा प्रकट की थी।

तात्पर्य : जो लोग स्वर्गलोक में रहते हैं उनके लिए बारह हजार दिव्य वर्ष दीर्घ काल नहीं है भले ही इस लोक के रहने वालों के लिए यह सुदीर्घ अन्तराल लगे। सुतपा ब्रह्मा का पुत्र था। *भगवद्गीता* से (८.१७) ज्ञात है कि ब्रह्मा का एक दिन हमारी गणना के लाखों वर्षों के तुल्य होता है (*सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यद् ब्रह्मणो विदुः*)। हमें ध्यान रखना होगा कि कृष्ण जैसा पुत्र पाने के लिए कितनी महान् तपस्या करनी होती है। यदि हम चाहते हैं कि भगवान् हमारे बीच इस भौतिक जगत में प्रकट हों तो इसके लिए कठिन तपस्या की आवश्यकता होगी, किन्तु यदि हम कृष्ण के पास वापस जाना चाहें (*त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेतिऽर्जुन*) तो हमें केवल कृष्ण को समझना तथा उनसे प्रेम करना होगा। प्रेम के द्वारा ही हम भगवद्धाम वापस जा सकते हैं। इसीलिए श्री चैतन्य महाप्रभु ने घोषित किया—*प्रेमा पुमर्थो महान्*—भगवत्प्रेम किसी के लिए भी सर्वोच्च उपलब्धि है।

जैसाकि बतलाया जा चुका है, भगवान् की पूजा की तीन अवस्थाएँ होती हैं—*ज्ञान, ज्ञानमयी* तथा *रति*। सुतपा तथा उसकी पत्नी पृश्नि ने ज्ञान के आधार पर भक्ति कार्यों का शुभारम्भ किया था। धीरे-धीरे उनमें भगवान् के प्रति प्रेम उत्पन्न हुआ और जब यह प्रेम प्रौढ़ हो चुका तो भगवान् विष्णु रूप में प्रकट हुए। यद्यपि देवकी ने तब उनसे कृष्ण रूप धारण करने की प्रार्थना की थी। भगवान् से अधिक प्रेम करने के लिए हमें कृष्ण या राम रूप में भगवान् की कामना करनी चाहिए। हम कृष्ण के साथ प्रेम का आदान-प्रदान विशेष रूप से कर सकते हैं।

इस युग में हम सभी अधम हैं, किन्तु भगवान्, श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में, हम पर भगवत्प्रेम की वर्षा करने के लिए प्रकट हुए हैं। इसे श्री चैतन्य महाप्रभु के संगी समझते थे। रूप गोस्वामी ने कहा है—

नमो महावदान्याय कृष्णप्रेमप्रदायते।
कृष्णाय कृष्णचैतन्यनाम्ने गौरत्विषे नमः॥

इस श्लोक में श्री चैतन्य महाप्रभु को *महावदान्य* अर्थात् सर्वाधिक दानी व्यक्ति कहा गया है क्योंकि वे इतनी आसानी से कृष्ण का दान देते हैं कि हरे कृष्ण महामंत्र का कीर्तन करने मात्र से मनुष्य

कृष्ण-प्राप्ति कर सकता है। अतएव हमें श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा प्रदत्त वर का लाभ उठाना चाहिए और जब हरे कृष्ण मंत्र का कीर्तन करने से हम सारे मैल से शुद्ध हो जाँय (*चेतोदर्पणमार्जनम्*) तो हम बड़ी आसानी से समझ सकेंगे कि कृष्ण ही एकमात्र प्रेम के लक्ष्य हैं (*कीर्तनाद् एव कृष्णस्य मुक्तसंग: परं व्रजेत्*)।

अत: मनुष्य को हजारों वर्षों तक घोर तपस्या करने की आवश्यकता नहीं रह जाती। उसे कृष्ण से प्रेम करना सीखना होता है और उन्हीं की सेवा में सदा लगे रहना होता है (*सेवोन्मुखे हि जिह्वादौ स्वयमेव स्फुरत्यद:*)। तभी मनुष्य सरलता से भगवद्धाम वापस जा सकता है। यदि पुत्र रूप में या अन्य रूप में किसी वस्तु की प्राप्ति के लिए अपने भौतिक कार्य हेतु भगवान् को यहाँ न बुलाकर हम स्वयं भगवद्धाम वापस चले जाते हैं, तो भगवान् के साथ हमारा असली सम्बन्ध प्रकट हो जाएगा और हम शाश्वत सम्बन्ध बनाए रख सकते हैं। हरे कृष्ण मंत्र का कीर्तन करके हम धीरे-धीरे परम पुरुष के साथ शाश्वत सम्बन्ध स्थापित कर लेते हैं और हमें *स्वरूपसिद्धि* प्राप्त हो जाती है। हमें चाहिए कि इस वर का लाभ उठाकर भगवद्धाम वापस जाँय। इसीलिए श्रील नरोत्तमदास ठाकुर ने गाया है—*पतितपावनहेतु तव अवतार*—श्री चैतन्य महाप्रभु का अवतार हम जैसे पतितात्माओं का उद्धार करने और भगवत्प्रेम प्रदान करने के लिए हुआ। हमें भगवान् के इस महान् वर का लाभ उठाना चाहिए।

अजुष्टग्राम्यविषयावनपत्यौ च दम्पती ।
न वव्राथेऽपवर्गं मे मोहितौ देवमायया ॥ ३९॥

शब्दार्थ

अजुष्ट-ग्राम्य-विषयौ—विषयी जीवन तथा मुझ जैसा बालक उत्पन्न करने के लिए; **अनपत्यौ**—सन्तानविहीन होने के कारण; **च**—भी; **दम्-पती**—पति-पत्नी दोनों; **न**—कभी नहीं; **वव्राथे**—माँगा (कोई वर); **अपवर्गम्**—इस जगत से मोक्ष; **मे**—मुझसे; **मोहितौ**—अत्यधिक आकर्षित होकर; **देव-मायया**—मेरे लिए दिव्य प्रेम के कारण (मुझे अपने पुत्र रूप में चाहकर)।

पति-पत्नी रूप में सन्तानहीन होने से आप लोग विषयी-जीवन के प्रति आकृष्ट हुए क्योंकि देवमाया के प्रभाव अर्थात् दिव्य प्रेम से तुम लोग मुझे अपने पुत्र के रूप में प्राप्त करना चाह रहे थे इसलिए तुम लोगों ने इस जगत से कभी भी मुक्त होना नहीं चाहा।

तात्पर्य : वसुदेव तथा देवकी सुतपा तथा पृश्नि के समय से ही पति-पत्नी (*दम्पति*) थे और वे भगवान् को पुत्र रूप में प्राप्त करने के उद्देश्य से पति-पत्नी बने रहना चाह रहे थे। यह अनुरक्ति *देवमाया* के प्रभाव से उत्पन्न हुई। कृष्ण से पुत्र रूप में प्रेम करना वैदिक सिद्धान्त है। वसुदेव तथा

देवकी ने कृष्ण को पुत्र रूप में पाने के अतिरिक्त कुछ भी नहीं चाहा फिर भी इस उद्देश्य के लिए भोग-विलास करने के लिए वे सामान्य गृहस्थ बने रहना चाहते थे। यद्यपि यह आध्यात्मिक शक्ति का विनिमय था, किन्तु उनकी इच्छा गृहस्थ जीवन में कामवासना के प्रति अनुरक्ति जैसी थी। जो व्यक्ति भगवद्धाम वापस जाना चाहता है उसे ऐसी इच्छाएँ त्याग देनी चाहिए। ऐसा तभी सम्भव है जब वह भगवान् के प्रति प्रगाढ़ प्रेम उत्पन्न कर ले। श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा है—

निष्किञ्चनस्य भगवद्जनोन्मुखस्य

पारं परं जिगमिषोर्भवसागरस्य।

(*चैतन्य-चरितामृत मध्य,* ११.८)

जो भगवद्धाम वापस जाना चाहता है उसे *निष्किंचन* अर्थात् समस्त भौतिक इच्छाओं से मुक्त होना चाहिए। इसलिए यह चाहने के बदले कि भगवान् यहाँ आकर उसके पुत्र बनें, उसे समस्त भौतिक इच्छाओं से मुक्त हो जाने की अभिलाषा करनी चाहिए (*अन्याभिलाषिता शून्यम्*) और भगवद्धाम वापस जाना चाहिए। श्री चैतन्य महाप्रभु ने *शिक्षाष्टक* में हमें शिक्षा दी है—

न धनं न जनं न सुन्दरीं कवितां वा जगदीश कामये।

मम जन्मनि जन्मनीश्वरे भवताद् भक्तिरहैतुकी त्वयि॥

"हे सर्वशक्तिमान! मैं न तो धन एकत्र करना चाहता हूँ, न सुन्दर स्त्रियाँ चाहता हूँ, न ही अनेक अनुयायी चाहता हूँ। मैं तो जन्म-जन्मांतर आपकी केवल अहैतुकी भक्ति चाहता हूँ।" मनुष्य को चाहिए कि वह भौतिकता से रंजित इच्छाओं को पूरी करने के लिए भगवान् से याचना न करे।

गते मयि युवां लब्ध्वा वरं मत्सदृशं सुतम् ।
ग्राम्यान्भोगानभुञ्जाथां युवां प्राप्तमनोरथौ ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

गते मयि—मेरे चले जाने पर; युवाम्—तुम दोनों को (दम्पतियों को); लब्ध्वा—पाकर; वरम्—वरदान (पुत्र प्राप्ति का); मत्-सदृशम्—मेरी ही तरह के; सुतम्—पुत्र को; ग्राम्यान् भोगान्—भोग-विलास में व्यस्त रहना; अभुञ्जाथाम्—भोग किया; युवाम्—तुम दोनों को; प्राप्त—प्राप्त करके; मनोरथौ—अभिलाषाएँ।.

जब तुम वर प्राप्त कर चुके और मैं अन्तर्धान हो गया तो तुम मुझ जैसा पुत्र प्राप्त करने के उद्देश्य से विषयभोग में लग गए और मैंने तुम्हारी इच्छा पूरी कर दी।

तात्पर्य : संस्कृत के शब्दकोश *अमरकोश* के अनुसार विषयी जीवन *ग्राम्य धर्म* कहलाता है

लेकिन आध्यात्मिक जीवन में इस ग्राम्य धर्म को अत्यधिक सराहा नहीं जाता। यदि किसी में भोजन करने, सोने, मैथुन करने तथा रक्षा करने की रंचभर भी लालसा रहती है, तो वह निष्किञ्चन नहीं रहता। किन्तु मनुष्य को निष्किंचन होना चाहिए। अत: संभोग द्वारा कृष्ण जैसा पुत्र उत्पन्न करने के लिए इच्छा से उसे मुक्त होना चाहिए। इस श्लोक में अपरोक्ष रूप में यही इंगित किया गया है।

अदृष्ट्वान्यतमं लोके शीलौदार्यगुणैः समम् ।
अहं सुतो वामभवं पृश्निगर्भ इति श्रुतः ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

अदृष्ट्वा—न पाकर; अन्यतमम्—किसी अन्य को; लोके—इस जगत में; शील-औदार्य-गुणैः—शील तथा उदारता के गुणों से युक्त; समम्—तुम्हारे तुल्य; अहम्—मैं; सुतः—पुत्र; वाम्—तुम दोनों का; अभवम्—बना; पृश्नि-गर्भः—पृश्नि से उत्पन्न हुआ; इति—इस प्रकार; श्रुतः—प्रसिद्ध हुआ।

चूँकि मुझे सरलता तथा शील के दूसरे गुणों में तुम जैसा बढ़ा-चढ़ा अन्य कोई व्यक्ति नहीं मिला अत: मैं पृश्नि-गर्भ के रूप में उत्पन्न हुआ।

तात्पर्य : त्रेतायुग में भगवान् पृश्निगर्भ के रूप में प्रकट हुए। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर कहते हैं— *पृश्निगर्भ इति सोऽयं त्रेतायुगावतारो लक्ष्यते।*

तयोर्वां पुनरेवाहमदित्यामास कश्यपात् ।
उपेन्द्र इति विख्यातो वामनत्वाच्च वामनः ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

तयोः—तुम पति-पत्नी दोनों का; वाम्—दोनों में; पुनः एव—फिर से ही; अहम्—मैं; अदित्याम्—अदिति के गर्भ में; आस—प्रकट हुआ; कश्यपात्—कश्यपमुनि के वीर्य से; उपेन्द्रः—उपेन्द्र नाम से; इति—इस प्रकार; विख्यातः—सुप्रसिद्ध; वामनत्वात् च—तथा बौना बनने से; वामनः—वामन नाम से विख्यात।

मैं अगले युग में तुम दोनों से, माता अदिति तथा पिता कश्यप से पुन: प्रकट हुआ। मैं उपेन्द्र नाम से विख्यात हुआ और बौना होने के कारण मैं वामन भी कहलाया।

तृतीयेऽस्मिन्भवेऽहं वै तेनैव वपुषाथ वाम् ।
जातो भूयस्तयोरेव सत्यं मे व्याहृतं सति ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

तृतीये—तीसरी बार; अस्मिन् भवे—इस रूप में (कृष्ण रूप के); अहम्—मैं; वै—निस्सन्देह; तेन—उसी व्यक्ति से; एव—इस तरह; वपुषा—रूप द्वारा; अथ—जिस तरह; वाम्—तुम दोनों के; जातः—उत्पन्न; भूयः—फिर से; तयोः—तुम दोनों का; एव—निस्सन्देह; सत्यम्—सत्य मानकर; मे—मेरे; व्याहृतम्—शब्द; सति—हे सती।

हे परम सती माता, मैं वही व्यक्ति अब तीसरी बार तुम दोनों के पुत्र रूप में प्रकट हुआ हूँ।

मेरे वचनों को सत्य मानें।

तात्पर्य : भगवान् अपने माता-पिता का चुनाव स्वयं करते हैं जिनसे उन्हें बारम्बार जन्म लेना पड़ता है। सर्वप्रथम भगवान् ने सुतपा तथा पृश्नि से, फिर कश्यप तथा अदिति से और अब उन्हीं माता-पिता वसुदेव-देवकी से जन्म लिया। भगवान् ने कहा, ''अन्य जन्मों में भी मैंने तुम लोगों का पुत्र बनने के लिए ही सामान्य शिशु का रूप धारण किया जिससे हम प्रेम का आदान-प्रदान कर सकें।'' श्रील जीव गोस्वामी ने *कृष्ण सन्दर्भ* (९६.३७) में बतलाया है कि *अमुना वपुषा* का अर्थ है ''उसी रूप के द्वारा।'' दूसरे शब्दों में, भगवान् ने देवकी से कहा, ''इस बार मैं अपने मूल श्रीकृष्ण-रूप में उत्पन्न हुआ हूँ।'' श्रील जीव गोस्वामी कहते हैं कि अन्य रूप तो भगवान् के आदि रूप के अंश थे, किन्तु पृश्नि तथा सुतपा द्वारा जो प्रगाढ़ प्रेम उत्पन्न हुआ था उसके फलस्वरूप कृष्ण-रूप में भगवान् अपने समस्त ऐश्वर्यों समेत देवकी तथा वसुदेव से प्रकट हुए। इस श्लोक में भगवान् पुष्टि करते हैं, ''मैं वही भगवान् हूँ, किन्तु समस्त ऐश्वर्य समेत कृष्ण रूप में प्रकट हुआ हूँ।'' ''तेनैव वपुषा'' का यही तात्पर्य है। जब भगवान् ने पृश्नि-गर्भ का उल्लेख किया, तो उन्होंने—*तेनैव वपुषा* नहीं कहा, किन्तु उन्होंने देवकी को विश्वास दिलाया कि तीसरे जन्म में भगवान् कृष्ण प्रकट हुए हैं, उनका अंश नहीं। पृश्नि-गर्भ तथा वामन कृष्ण के अंशावतार थे, किन्तु तीसरे जन्म में साक्षात् कृष्ण प्रकट हुए। श्रील जीव गोस्वामी ने *कृष्ण सन्दर्भ* में यही व्याख्या दी है।

एतद्वां दर्शितं रूपं प्राग्जन्मस्मरणाय मे ।
नान्यथा मद्भवं ज्ञानं मर्त्यलिङ्गेन जायते ॥ ४४॥

शब्दार्थ

एतत्—विष्णु का यह रूप; वाम्—तुम दोनों को; दर्शितम्—दिखलाया गया; रूपम्—चतुर्भुज भगवान् के रूप में मेरा स्वरूप; प्राक्-जन्म—पूर्व जन्मों का; स्मरणाय—तुमको स्मरण दिलाने के लिए; मे—मेरा; न—नहीं; अन्यथा—अन्यथा; मत्-भवम्—विष्णु का प्राकट्य; ज्ञानम्—यह दिव्य ज्ञान; मर्त्य-लिङ्गेन—मानवी शिशु की तरह जन्म लेकर; जायते—उत्पन्न होता है।

मैंने तुम लोगों को यह विष्णु-रूप मात्र अपने पूर्वजन्मों का स्मरण कराने के लिए दिखलाया है। अन्यथा यदि मैं सामान्य बालक की तरह प्रकट होता तो तुम लोगों को विश्वास न हो पाता कि भगवान् विष्णु सचमुच प्रकट हुए हैं।

तात्पर्य : देवकी को यह बताए जाने की आवश्यकता नहीं थी कि भगवान् विष्णु उनके पुत्र रूप में प्रकट हुए थे, वे इसे पहले से स्वीकार कर चुकी थीं। फिर भी वे चिन्तित थीं कि यदि पड़ोसी सुनेंगे

कि उसके पुत्ररूप में विष्णु प्रकट हुए हैं, तो इस पर कोई विश्वास नहीं करेगा। इसलिए वे चाह रही थीं कि भगवान् विष्णु मानवी बालक का रूप धारण कर लें। दूसरी ओर भगवान् भी चिन्तित थे कि यदि वे सामान्य बालक के रूप में प्रकट हुए तो उनकी माता को विश्वास नहीं होगा कि भगवान् विष्णु प्रकट हुए हैं। भक्त तथा भगवान् के मध्य ऐसे ही व्यापार चलते हैं। भगवान् भक्तों के साथ मनुष्यों जैसा ही व्यवहार करते हैं, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि वे मनुष्य होते हैं क्योंकि ऐसा निर्णय तो अभक्तों का होता है (*अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्*)। भक्तगण भगवान् को हर परिस्थिति में पहचान लेते हैं। भक्त तथा अभक्त में यही अन्तर होता है। भगवान् कहते हैं—*मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु*—अपने मन को मेरे चिन्तन में लगाओ, मेरे भक्त बनो, मुझे ही नमस्कार करो तथा मेरी पूजा करो। अभक्त को यह विश्वास ही नहीं हो पाता कि किसी व्यक्ति का चिन्तन करने मात्र से इस भौतिक संसार से मुक्ति मिल सकती है और वह भगवद्धाम वापस जा सकता है। किन्तु यह यथार्थ है। भगवान् मनुष्य के रूप में आते हैं और यदि कोई भगवान् के साथ प्रेमाभक्ति द्वारा जुड़ जाता है, तो उसका वैकुण्ठ लोक जाना निश्चित हो जाता है।

युवां मां पुत्रभावेन ब्रह्मभावेन चासकृत् ।
चिन्तयन्तौ कृतस्नेहौ यास्येथे मद्गतिं पराम् ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

युवाम्—तुम दोनों (पति-पत्नी); **माम्**—मुझको; **पुत्र-भावेन**—अपने पुत्र रूप में; **ब्रह्म-भावेन**—मुझे भगवान् के रूप में जानते हुए; **च**—तथा; **असकृत्**—निरन्तर; **चिन्तयन्तौ**—इस तरह सोचते हुए; **कृत-स्नेहौ**—प्रेम का बर्ताव करते हुए; **यास्येथे**—दोनों को प्राप्त होगा; **मत्-गतिम्**—मेरा परम धाम; **पराम्**—दिव्य।

तुम पति-पत्नी निरन्तर अपने पुत्र के रूप में मेरा चिन्तन करते हो, किन्तु तुम यह जानते रहते हो कि मैं भगवान् हूँ। इस तरह निरन्तर स्नेहपूर्वक मेरा चिन्तन करते हुए तुम लोग सर्वोच्च सिद्धि प्राप्त करोगे अर्थात् भगवद्धाम वापस जाओगे।

तात्पर्य : भगवान् द्वारा अपने माता-पिता को जो उनसे शाश्वत रूप से सम्बन्धित हैं, दिया गया यह उपदेश विशेष तौर पर उन व्यक्तियों के लिए है, जो भगवद्धाम वापस जाना चाहते हैं। मनुष्य को चाहिए कि भगवान् को कभी भी सामान्य मनुष्य न समझे जैसा अभक्त करते हैं। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण सशरीर प्रकट हुए थे और उन्होंने मानव समाज के लाभ के लिए अपने उपदेश छोड़े, किन्तु मूर्ख तथा मूढ़ उन्हें दुर्भाग्यवश सामान्य मनुष्य मानते हैं और *भगवद्गीता* के उपदेशों को मनमाने ढंग से

अपनी इन्द्रियतृप्ति के लिए तोड़ते मरोड़ते हैं। जो भी *भगवद्गीता* पर भाष्य लिखता है, एक तरह से वह अपनी इन्द्रियतृप्ति के लिए व्याख्या करता है। आजकल आधुनिक विद्वानों तथा राजनीतिज्ञों में यह विशेष रूप से फैशन बन चुका है कि वे *भगवद्गीता* की व्याख्या इस तरह करते हैं मानो वह कपोलकल्पित हो। वे अपनी गलत व्याख्याओं से अपना जीवन तो बिगाड़ते ही हैं अन्यों के भी जीवन को बिगाड़ते हैं। किन्तु कृष्णभावनामृत आन्दोलन इस आरोप के विरुद्ध लड़ रहा है कि कृष्ण काल्पनिक पुरुष हैं और कुरुक्षेत्र का युद्ध नहीं हुआ था; हर बात सांकेतिक है एवं *भगवद्गीता* में कुछ भी सत्य नहीं है। कुछ भी हो, यदि कोई सचमुच सफल बनना चाहता है, तो उसे *भगवद्गीता* यथारूप का पाठ करना चाहिए। श्री चैतन्य महाप्रभु *भगवद्गीता* के उपदेशों पर विशेष बल देते थे—*यारे देख, तारे कह 'कृष्ण'-उपदेश।* यदि कोई व्यक्ति जीवन में सर्वोच्च सफलता चाहता है, तो उसे *भगवद्गीता* को जिस प्रकार से श्रीकृष्ण ने कहा है उसी प्रकार से ग्रहण करना चाहिए। *भगवद्गीता* को इस रूप में स्वीकार करने से सारा मानव समाज पूर्ण तथा सुखी बन सकता है।

इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि चूँकि देवकी तथा वसुदेव कृष्ण को नन्द महाराज के निवासस्थान गोकुल ले जाने पर उनसे विलग हो जाएँगे, इसलिए साक्षात् भगवान् ने उन्हें आदेश दिया कि वे उन्हें अपने पुत्र तथा भगवान् के रूप में स्मरण किया करें। इससे वे उनके सम्पर्क में बने रहेंगे। भगवान् ११ वर्षों के बाद उनके पुत्र रूप में मथुरा लौटेंगे अत: उनके वियुक्त होने का प्रश्न ही नहीं उठता।

श्रीशुक उवाच
इत्युक्त्वासीद्धरिस्तूष्णीं भगवानात्ममायया ।
पित्रोः सम्पश्यतोः सद्यो बभूव प्राकृतः शिशुः ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति उक्त्वा—इस तरह उपदेश देकर; आसीत्—रहे; हरिः—भगवान्; तूष्णीम्—मौन; भगवान्—भगवान् विष्णु; आत्म-मायया—अपनी आध्यात्मिक शक्ति से कार्य करते हुए; पित्रोः सम्पश्यतोः—यथार्थ रूप में माता-पिता द्वारा देखे जाकर; सद्यः—तुरन्त; बभूव—हो गये; प्राकृतः—सामान्य व्यक्ति की तरह; शिशुः—बालक।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : अपने माता-पिता को इस तरह उपदेश देने के बाद भगवान् कृष्ण मौन रहे। तब उन्हीं के सामने अपनी अंतरंगा शक्ति से उन्होंने अपने आप को एक छोटे शिशु के रूप में बदल लिया। (दूसरे शब्दों में, उन्होंने स्वयं को अपने आदि रूप में रूपान्तरित

कर दिया—*कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्*)।

तात्पर्य : जैसाकि *भगवद्गीता* (४.६) में कहा गया है—*सम्भवाम्यात्ममायया*—भगवान् जो भी करते हैं अपनी आध्यात्मिक शक्ति से करते हैं, उन पर भौतिक शक्ति से किसी प्रकार का दबाव नहीं पड़ता। भगवान् तथा सामान्य जीव में यही अन्तर है। वेदों का कथन है (*श्वेताश्वतर उपनिषद्* ६.८) :

परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते

स्वाभाविकी ज्ञान-बल-क्रिया च।

यह स्वाभाविक है कि भगवान् भौतिक गुणों के द्वारा रंजित नहीं होते और चूँकि उनकी आध्यात्मिक शक्ति में हर वस्तु सुचारु ढंग से उपस्थित रहती है अतएव वे जो भी इच्छा करते हैं, वह तुरन्त हो जाता है। भगवान् *प्राकृत शिशु* अर्थात् इस जगत के शिशु नहीं हैं, अपितु अपनी आत्मशक्ति से वे उस रूप में प्रकट हुए। सामान्य लोगों को परम नियन्ता भगवान् को मनुष्य रूप में स्वीकार करने में कठिनाई हो सकती है क्योंकि वे भूल जाते हैं कि भगवान् *आत्ममायया* अर्थात् आध्यात्मिक शक्ति से कुछ भी कर सकते हैं। अविश्वासी लोग कहते हैं ''परम नियन्ता किस तरह सामान्य व्यक्ति के रूप में अवतरित हो सकता है?'' ऐसी विचारधारा भौतिकतावादी सोच है। श्रील जीव गोस्वामी कहते हैं कि भगवान् की शक्ति को हमारे शब्दों और मन की कल्पना के परे अर्थात् अचिन्त्य माने बिना हम उन्हें समझ नहीं सकते। जिन्हें इसमें सन्देह है कि भगवान् अपने को मानव रूप में अवतरित होकर, शिशु के रूप में उपस्थित कर सकते हैं, वे मूर्ख हैं क्योंकि वे कृष्ण के शरीर को भौतिक शरीर मानकर यह सोचते हैं कि वे जन्म लेते हैं और मरते भी हैं।

श्रीमद्भागवत के तृतीय स्कंध के चौथे अध्याय (४.२८-२९) में कृष्ण द्वारा शरीर परित्याग का वर्णन मिलता है। महाराज परीक्षित ने शुकदेव गोस्वामी से पूछा, ''जब यदुवंश के सारे लोगों का अन्त हो गया तो कृष्ण ने भी अपना अन्त कर लिया और उनके परिवार में एकमात्र बचा रहने वाला व्यक्ति उद्धव था। ऐसा किस तरह सम्भव हुआ?'' शुकदेव गोस्वामी ने उत्तर दिया कि कृष्ण ने आत्मशक्ति से सारे परिवार को विनष्ट कर दिया और तब अपने शरीर को अन्तर्धान करने का विचार किया। इस सम्बन्ध में शुकदेव गोस्वामी ने बतलाया है कि भगवान् ने किस तरह अपना शरीर छोड़ा। किन्तु यह कृष्ण के शरीर का विनाश नहीं था प्रत्युत यह भगवान् की आत्मशक्ति द्वारा उनका अन्तर्धान होना था।

वास्तव में भगवान् अपने शरीर का परित्याग नहीं करते क्योंकि वे शाश्वत हैं। जिस तरह वे विष्णु रूप से सामान्य शिशु का रूप धारण कर सकते हैं उसी तरह वे इच्छानुसार अपना शरीर किसी भी रूप में बदल सकते हैं। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं होता कि वे अपने शरीर का परित्याग करते हैं। वे अपनी दिव्य शक्ति से काष्ठ या पत्थर के बने विग्रह में प्रकट हो सकते हैं। वे अपने शरीर को किसी भी वस्तु में बदल सकते हैं क्योंकि हर वस्तु उन्हीं की शक्ति है (*परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते*)। *भगवद्गीता* (७.४) में स्पष्ट कहा गया है—*भिन्ना प्रकृतिरष्टधा*—सारे भौतिक तत्त्व भगवान् की भिन्ना शक्तियाँ हैं। यदि वे अपने शरीर को *अर्चामूर्ति* में परिणत कर देते हैं जिसे हम पत्थर या काष्ठ के रूप में देखते हैं, तो भी वे कृष्ण हैं। इसीलिए शास्त्र आगाह करता है—*अर्च्ये विष्णौ शिलाधीर्गुरुषु नरमतिः।* जो व्यक्ति अर्चाविग्रह को काष्ठ या पत्थर का बना सोचता है, जो वैष्णव गुरु को सामान्य व्यक्ति मानता है या जो वैष्णव को भौतिक रूप में किसी विशेष जाति का मानता है, वह *नारकी* है अर्थात् नरक में वास करता है। भगवान् हमारे समक्ष इच्छानुसार अनेक रूपों में प्रकट हो सकते हैं, किन्तु हमें वास्तविकता जाननी चाहिए—*जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः* (*भगवद्गीता* ४.९)। साधु, गुरु तथा शास्त्र के उपदेशों का पालन करने से ही कृष्ण को समझा जा सकता है और मनुष्य भगवद्धाम वापस जाकर अपने जीवन को सफल बना सकता है।

ततश्च शौरिर्भगवत्प्रचोदितः
सुतं समादाय स सूतिकागृहात् ।
यदा बहिर्गन्तुमियेष तर्ह्यजा
या योगमायाजनि नन्दजायया ॥ ४७॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; च—निस्सन्देह; शौरिः—वसुदेव; भगवत्-प्रचोदितः—भगवान् से आज्ञा पाकर; सुतम्—अपने पुत्र को; समादाय—सावधानी से ले जाकर; सः—उसने; सूतिका-गृहात्—प्रसूतिगृह से, सौरी से; यदा—जब; बहिः गन्तुम्—बाहर जाने के लिए; इयेष—चाहा; तर्हि—तब, उस समय; अजा—न जन्म लेने वाली दिव्य शक्ति; या—जो; योगमाया—योगमाया ने; अजनि—जन्म लिया; नन्द-जायया—नन्द महाराज की पत्नी से।

तत्पश्चात् भगवान् की प्रेरणा से जब वसुदेव नवजात शिशु को सूतिकागृह से ले जाने वाले थे तो बिलकुल उसी क्षण भगवान् की आध्यात्मिक शक्ति योगमाया ने महाराज नन्द की पत्नी की पुत्री के रूप में जन्म लिया।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर कहते हैं कि कृष्ण एक ही समय देवकी के पुत्र तथा

यशोदा के पुत्र के रूप में आत्मशक्ति योगमाया के साथ उत्पन्न हुए। देवकी के पुत्र रूप में वे सर्वप्रथम विष्णु रूप में प्रकट हुए और वसुदेव ने अपने पुत्र की पूजा भगवान् विष्णु के रूप में की क्योंकि वे कृष्ण से शुद्ध स्नेह दिखला पाने की स्थिति में नहीं थे। किन्तु यशोदा अपने पुत्र कृष्ण को ईश्वर माने बिना ही प्रसन्न रखती थीं। यशोदा के पुत्र तथा देवकी के पुत्र कृष्ण में यही अन्तर है। *हरिवंश* के प्रमाण पर विश्वनाथ चक्रवर्ती ने यह व्याख्या की है।

तया हृतप्रत्ययसर्ववृत्तिषु
द्वाःस्थेषु पौरेष्वपि शायितेष्वथ ।
द्वारश्च सर्वाः पिहिता दुरत्यया
बृहत्कपाटायसकीलशृङ्खलैः ॥ ४८ ॥
ताः कृष्णवाहे वसुदेव आगते
स्वयं व्यवर्यन्त यथा तमो रवेः ।
ववर्ष पर्जन्य उपांशुगर्जितः
शेषोऽन्वगाद्वारि निवारयन्फणैः ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ

तया—योगमाया के प्रभाव से; हृत-प्रत्यय—सारी अनुभूति से रहित; सर्व-वृत्तिषु—अपनी समस्त इन्द्रियों सहित; द्वाः-स्थेषु—सारे द्वारपाल; पौरेषु अपि—तथा घर के सारे लोग भी; शायितेषु—गहरी नींद में मग्न; अथ—जब वसुदेव ने अपने पुत्र को बन्दीगृह से बाहर ले जाने का प्रयास किया; द्वारः च—तथा दरवाजे भी; सर्वाः—सारे; पिहिताः—निर्मित; दुरत्यया—अत्यन्त कठोर तथा दृढ़; बृहत्-कपाट—तथा बड़े दरवाजे पर; आयस-कील-शृङ्खलैः—लोहे के काँटों से बने तथा लोहे की जंजीरों से बन्द किए गए; ताः—वे सब; कृष्ण-वाहे—कृष्ण को लिए हुए; वसुदेवे—जब वसुदेव; आगते—प्रकट हुए; स्वयम्—स्वयं; व्यवर्यन्त—खुल गए; यथा—जिस तरह; तमः—अँधेरा; रवेः—सूर्य के उदय होने पर; ववर्ष—पानी बरसे हुए; पर्जन्यः—आकाश में बादल; उपांशु-गर्जितः—मन्द गर्जना करते और रिमझिम बरसते; शेषः—अनन्त नाग; अन्वगात्—पीछे-पीछे चला; वारि—वर्षा की झड़ी; निवारयन्—रोकते हुए; फणैः—अपने फनों को फैलाकर।

योगमाया के प्रभाव से सारे द्वारपाल गहरी नींद में सो गए, उनकी इन्द्रियाँ निष्क्रिय हो गईं और घर के अन्य लोग भी गहरी नींद में सो गए। जिस प्रकार सूर्य के उदय होने पर अंधकार स्वतः छिप जाता है उसी तरह वसुदेव के प्रकट होने पर लोहे की कीलों से जड़े तथा भीतर से लोहे की जंजीरों से जकड़े हुए बंद दरवाजे स्वतः खुल गए। चूँकि आकाश में बादल मन्द गर्जना कर रहे थे और झड़ी लगाए हुए थे अतः भगवान् के अंश अनन्त नाग दरवाजे से ही वसुदेव तथा दिव्य शिशु की रक्षा करने के लिए अपने फण फैलाकर वसुदेव के पीछे लग लिए।

तात्पर्य : शेषनाग भगवान् के अंश हैं और उनका काम है सारे साज-सामान के साथ भगवान् की सेवा करना। जब वसुदेव शिशु को लिए जा रहे थे तो शेषनाग भगवान् की सेवा करने तथा वर्षा की

हल्की-हल्की बूँदों से उन्हें बचाने के लिए प्रकट हुआ।

मघोनि वर्षत्यसकृद्यमानुजा
गम्भीरतोयौघजवोर्मिफेनिला ।
भयानकावर्तशताकुला नदी
मार्गं ददौ सिन्धुरिव श्रियः पतेः ॥५०॥

शब्दार्थ

मघोनि वर्षति—इन्द्र की वर्षा के कारण; असकृत्—निरन्तर; यम-अनुजा—यमुना नदी, जिसे यमराज की बहन माना जाता है; गम्भीर-तोय-ओघ—गहरे जल के; जव—वेग से; ऊर्मि—लहरों से; फेनिला—फेन से पूर्ण; भयानक—भयानक; आवर्त-शत—भँवरों से; आकुला—क्षुब्ध; नदी—नदी ने; मार्गम्—रास्ता; ददौ—दे दिया; सिन्धुः इव—समुद्र के समान; श्रियः पतेः—देवी सीता के पति भगवान् रामचन्द्र को।.

इन्द्र द्वारा बरसायी गयी निरन्तर वर्षा के कारण यमुना नदी में पानी चढ़ आया था और उसमें भयानक भँवरों के साथ फेन उठ रहा था। किन्तु जिस तरह पूर्वकाल में हिन्द महासागर ने भगवान् रामचन्द्र को सेतु बनाने की अनुमति देकर रास्ता प्रदान किया था उसी तरह यमुना नदी ने वसुदेव को रास्ता देकर उन्हें नदी पार करने दी।

नन्दव्रजं शौरिरुपेत्य तत्र तान्
गोपान्प्रसुप्तानुपलभ्य निद्रया ।
सुतं यशोदाशयने निधाय त-
त्सुतामुपादाय पुनर्गृहानगात् ॥५१॥

शब्दार्थ

नन्द-व्रजम्—नन्द महाराज के गाँव या घर तक; शौरिः—वसुदेव; उपेत्य—पहुँचकर; तत्र—वहाँ; तान्—सारे लोगों को; गोपान्—सारे ग्वालों को; प्रसुप्तान्—सोया हुआ; उपलभ्य—जानकर; निद्रया—गहरी निद्रा में; सुतम्—पुत्र को (वसुदेव के पुत्र को); यशोदा-शयने—उस बिस्तर पर जिसमें यशोदा सो रही थीं; निधाय—रखकर; तत्-सुताम्—उसकी पुत्री को; उपादाय—लेकर; पुनः—फिर; गृहान्—अपने घर को; अगात्—लौट आया।.

जब वसुदेव नन्द महाराज के घर पहुँचे तो देखा कि सारे ग्वाले गहरी नींद में सोए हुए थे। उन्होंने अपने पुत्र को यशोदा के पलँग में रख दिया, उसकी पुत्री को, जो योगमाया की अंश थी, उठाया और अपने घर कंस के बंदीगृह वापस लौट आए।

तात्पर्य : वसुदेव जानते थे कि ज्यों ही पुत्री कंस के बन्दीगृह में पहुँचेगी वह तुरन्त उसे मार डालेगा, किन्तु अपने पुत्र की रक्षा करने के लिए उन्हें अपने मित्र की सन्तान का वध कराना पड़ा। यद्यपि नन्द महाराज उनके मित्र थे, किन्तु अपने पुत्र के प्रति गहन स्नेह तथा अनुराग के कारण ही उन्होंने जानबूझ कर ऐसा होने दिया। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर कहते हैं कि किसी अन्य के

बालक की बलि देकर अपने बच्चे की रक्षा करने के लिए किसी को दोषी नहीं ठहराया जा सकता। साथ ही वसुदेव पर निर्दयता का दोष नहीं मढ़ा जा सकता क्योंकि वे जो कुछ कर रहे थे वह सब योगमाया के वशीभूत होकर कर रहे थे।

देवक्याः शयने न्यस्य वसुदेवोऽथ दारिकाम् ।
प्रतिमुच्य पदोर्लोहमास्ते पूर्ववदावृतः ॥ ५२ ॥

शब्दार्थ

देवक्याः—देवकी के; शयने—विस्तर पर; न्यस्य—रखकर; वसुदेवः—वसुदेव ने; अथ—इस प्रकार; दारिकाम्—लड़की को; प्रतिमुच्य—पुनः पहन कर; पदोः लोहम्—पाँवों की बेड़ियाँ; आस्ते—हो गया; पूर्व-वत्—पहले की तरह; आवृतः—बँधा हुआ।.

वसुदेव ने लड़की को देवकी के पलँग पर रख दिया और अपने पाँवों में बेड़ियाँ पहन लीं तथा पहले की तरह बन गए।

यशोदा नन्दपत्नी च जातं परमबुध्यत ।
न तल्लिङ्गं परिश्रान्ता निद्रयापगतस्मृतिः ॥ ५३ ॥

शब्दार्थ

यशोदा—यशोदा, गोकुल में कृष्ण की माता; नन्द-पत्नी—नन्द महाराज की पत्नी; च—भी; जातम्—उत्पन्न शिशु; परम्—परम पुरुष को; अबुध्यत—समझ गई; न—नहीं; तत्-लिङ्गम्—कि बालक नर है या मादा; परिश्रान्ता—अत्यधिक प्रसव पीड़ा के कारण; निद्रया—नींद के वशीभूत; अपगत-स्मृतिः—चेतना खोकर।.

शिशु जनने की पीड़ा से थककर यशोदा नींद के वशीभूत हो गई और यह नहीं समझ पाईं कि उन्हें लड़का हुआ है या लड़की।

तात्पर्य : नन्द महाराज तथा वसुदेव घनिष्ठ मित्र थे तथा उनकी पत्नियाँ यशोदा तथा देवकी भी घनिष्ठ मित्र थीं। यद्यपि उनके नाम भिन्न थे, किन्तु एक तरह से वे अभिन्न थीं। अन्तर था तो इतना ही कि देवकी जानती थीं कि भगवान् उनसे जन्मे हैं और अब कृष्ण बन गए हैं, किन्तु यशोदा को यह भी पता नहीं था कि उसे लड़का हुआ है या लड़की। यशोदा इतनी महान् भक्त थीं कि उन्होंने कृष्ण को कभी भगवान् करके माना ही नहीं। वे तो उन्हें अपने पुत्र की तरह प्यार करती रहीं। किन्तु देवकी शुरू से ही जानती रहीं कि कृष्ण कहने को तो उनके पुत्र हैं, किन्तु हैं भगवान्। वृन्दावन में कृष्ण को कोई भी व्यक्ति भगवान् नहीं मानता था। जब कृष्ण कोई अनहोनी घटना कर बैठते तो वृन्दावन के सारे वासी—ग्वाले, ग्वालबाल, नन्द महाराज, यशोदा इत्यादि आश्चर्यचकित हो उठते, किन्तु उन्होंने अपने

पुत्र को कभी भी भगवान् नहीं माना। कभी–कभी वे यह कहते कि कृष्ण रूप में कोई बड़ा देवता प्रकट हुआ है। भक्ति की ऐसी चरमावस्था में भक्त कृष्ण के पद को भूल जाता है और भगवान् के पद को समझे बिना उनसे प्रगाढ़ प्रेम करता है। यह *केवल भक्ति* कहलाती है और ज्ञान तथा ज्ञानमयी भक्ति अवस्थाओं से सर्वथा भिन्न होती है।

इस तरह श्रीमद्भागवतम् के दसवें स्कंध के अन्तर्गत ''कृष्ण जन्म'' नामक तृतीय अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter चार

राजा कंस के अत्याचार

इस अध्याय में बतलाया गया है कि किस प्रकार कंस अपने असुर मित्रों के कहने पर छोटे–छोटे बच्चों पर अत्याचार करने को ही अत्यन्त व्यवहार–कुशलता समझने लगा।

जब वसुदेव ने पहले की तरह बेड़ी–हथकड़ी पहन लीं तो योगमाया के प्रभाव से बन्दीगृह के सारे दरवाजे बन्द हो गए और योगमाया नवजात शिशु की तरह रोदन करने लगी। उसके रोने से द्वारपाल जाग गए और उन्होंने तुरन्त ही कंस को जानकारी दी कि देवकी के शिशु उत्पन्न हुआ है। यह समाचार सुनकर कंस बड़ी तेजी से सूतिकागृह में चला आया और उस शिशु को बचाने के लिए देवकी के लाख प्रार्थना करने पर भी उस असुर ने बलपूर्वक उस शिशु को देवकी के हाथों से छीनकर शिला पर पटक दिया। कंस का दुर्भाग्य था कि वह शिशु उसके हाथ से छिटककर उसके सिर के ऊपर अष्टभुजा दुर्गा के रूप में प्रकट हो गया। तब दुर्गा ने कंस से कहा, ''तुम जिस शत्रु का मन में ध्यान करते हो वह अन्यत्र जन्म ले चुका है। अतएव सारे शिशुओं को क्रूरतापूर्वक मारने की तुम्हारी योजना व्यर्थ सिद्ध होगी।''

भविष्यवाणी के अनुसार देवकी की आठवीं सन्तान को कंस का वध करना था अत: जब कंस ने देखा कि आठवीं सन्तान कन्या है और जब उसने यह सुना कि उसका तथाकथित शत्रु अन्यत्र जन्म ले चुका है, तो उसे अत्यधिक आश्चर्य हुआ। उसने देवकी तथा वसुदेव को छोड़ देने का निश्चय किया और उनके समक्ष अपनी क्रूरताओं की गलती स्वीकार की। उसने देवकी तथा वसुदेव के चरणों पर

गिरकर क्षमा-याचना की और उन्हें आश्वस्त करने का प्रयास किया कि जो कुछ घट चुका है उसे घटना ही था। अतएव उसके द्वारा वध की गईं अपनी अनेक सन्तानों के लिए वे दुखी न हों। चूँकि देवकी तथा वसुदेव अत्यन्त पवित्र थे अतएव उन्होंने कंस को उसके अत्याचारों के लिए तुरन्त क्षमा कर दिया और यह देखकर कि उसकी बहन तथा बहनोई प्रसन्न थे कंस अपने घर लौट गया।

किन्तु रात बीत जाने पर कंस ने अपने मंत्रियों को बुलाकर उन्हें जो कुछ घटा था कह सुनाया। ये सारे मंत्री असुर थे अत: उन्होंने कंस को सलाह दी कि चूँकि उसका शत्रु अन्यत्र जन्म ले चुका है, अत: विगत दस दिनों में कंस के राज्य के गाँवों में जितने भी बालक उत्पन्न हुए हों उन्हें मार डाला जाए। यद्यपि देवतागण कंस से सदैव भयभीत रहते हैं, किन्तु उनके साथ नर्मी नहीं बरतनी चाहिए। क्योंकि आखिरकार हैं तो वे शत्रु ही, अत: कंस को चाहिए कि वह उनका समूल विनाश करने का भरसक प्रयत्न करे। उन असुर मंत्रियों ने यह भी सलाह दी कि कंस को चाहिए कि वह विष्णु के प्रति अपनी शत्रुता बनाए रखे क्योंकि विष्णु ही सारे देवताओं के आदि पुरुष हैं। ब्राह्मण, गाय, वेद, तपस्या, सच्चाई, इन्द्रियों तथा मन का संयम, आज्ञाकारिता तथा दया विष्णु के शरीर के विभिन्न अंग हैं, जो ब्रह्माजी तथा शिवजी समेत सभी देवताओं के आदिदेव हैं। अत: मंत्रियों ने सलाह दी कि देवताओं, सन्त पुरुषों, गायों तथा ब्राह्मणों को ठीक से दण्डित किया जाए। अपने असुर मित्र-मंत्रीगणों द्वारा इस तरह की कठोर सलाह दिए जाने पर कंस ने उनकी बातों को मान लिया और यही लाभप्रद समझा कि वह ब्राह्मणों से ईर्ष्या बनाए रखे। अत: कंस के आदेशानुसार असुरों ने पूरी व्रजभूमि में अपने अत्याचार शुरू कर दिए।

श्रीशुक उवाच
बहिरन्त:पुरद्वार: सर्वा: पूर्ववदावृता: ।
ततो बालध्वनिं श्रुत्वा गृहपाला: समुत्थिता: ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुक: उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; बहि:-अन्त:-पुर-द्वार:—घर के भीतरी तथा बाहरी दरवाजे; सर्वा:—सारे; पूर्व-वत्—पहले की तरह; आवृता:—बन्द; तत:—तत्पश्चात्; बाल-ध्वनिम्—नवजात शिशु का रोदन; श्रुत्वा—सुनकर; गृह-पाला:—घर के सारे वासी विशेषतया द्वारपाल; समुत्थिता:—जग गए।

श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे राजा परीक्षित, घर के भीतरी तथा बाहरी दरवाजे पूर्ववत् बन्द हो गए। तत्पश्चात् घर के रहने वालों ने, विशेष रूप से द्वारपालों ने, नवजात शिशु का

क्रन्दन सुना और अपने बिस्तरों से उठ खड़े हुए।

तात्पर्य : इस अध्याय में योगमाया के कार्यकलाप प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होते हैं देवकी तथा वसुदेव कंस के भ्रामक नृशंस कार्यों को क्षमा कर देते हैं और कंस पश्चात्ताप करता हुआ उनके चरणों पर गिर पड़ता है। बंदीगृह के द्वारपालों तथा अन्य लोगों के जगने के पूर्व अनेक घटनाएँ घटीं। कृष्ण का जन्म हुआ और वे गोकुल में यशोदा के घर पहुँचा दिए गए, सुदृढ़ दरवाजे खुले और फिर बन्द हो गए और वसुदेव पुनः लोहे की शृंखलाओं में जकड़ गए। किन्तु द्वारपाल यह सब नहीं जान पाए। वे तो तब जगे जब उन्होंने नवजात शिशु योगमाया को चिल्लाते सुना।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने कहा है कि ये द्वारपाल कुत्तों के तुल्य थे। रात में कुत्ते सड़कों पर द्वारपाल जैसा कार्य करते हैं। यदि एक कुत्ता भूँकता है, तो सब कुत्ते उसी समय भूँकने लगते हैं। यद्यपि इन कुत्तों को द्वारपाल का कार्य करने के लिए कोई नियुक्त नहीं करता, किन्तु वे अपने पड़ोस की रक्षा करना अपना कर्तव्य समझते हैं और ज्योंही कोई अज्ञात व्यक्ति प्रवेश करता है, तो वे तुरन्त भूँकने लगते हैं। योगमाया तथा महामाया दोनों ही अनेक भौतिक कार्यकलापों में काम करती हैं (*प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणै कर्माणि सर्वशः*) किन्तु यद्यपि भगवान् की शक्ति उनके अपने निर्देशानुसार कार्य करती है (*मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्*) किन्तु कुत्ते-सदृश राजनीतिज्ञ तथा कूटनीतिज्ञ सोचते हैं कि वे बाह्यजगत के खतरों से अपने पड़ोस को सुरक्षित रखते हैं। ये *माया* के कार्य हैं। किन्तु जो कृष्ण शरण में चला जाता है, वह इस जगत के इन कुत्तों तथा कुत्तों जैसे अभिभावकों द्वारा प्रदत्त संरक्षण से मुक्ति पा लेता है।

ते तु तूर्णमुपव्रज्य देवक्या गर्भजन्म तत् ।
आचख्युर्भोजराजाय यदुद्विग्नः प्रतीक्षते ॥ २॥

शब्दार्थ

ते—वे सारे द्वारपाल; तु—निस्सन्देह; तूर्णम्—शीघ्र; उपव्रज्य—राजा के समक्ष जाकर; देवक्याः—देवकी का; गर्भ-जन्म—गर्भ से बाहर आना; तत्—उस (शिशु); आचख्युः—प्रस्तुत किया; भोज-राजाय—भोजराज कंस को; यत्—जिससे; उद्विग्नः—अत्यधिक चिन्तित; प्रतीक्षते—प्रतीक्षा कर रहा था (शिशु जन्म की)।

तत्पश्चात् सारे द्वारपाल जल्दी से भोजवंश के शासक राजा कंस के पास गये और उसे देवकी से शिशु के जन्म लेने का समाचार बतलाया। अत्यन्त उत्सुकता से इस समाचार की प्रतीक्षा कर रहे कंस ने तुरन्त ही कार्यवाही की।

तात्पर्य : इस भविष्यवाणी के कारण कि देवकी की आठवीं सन्तान कंस का वध करेगी, कंस अत्यन्त उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा कर रहा था। इस बार वह जगकर प्रतीक्षा कर रहा था अत: जब द्वारपाल उसके निकट गए तो वह शिशु को मारने को तुरन्त उद्यत हुआ।

स तल्पात्तूर्णमुत्थाय कालोऽयमिति विह्वलः ।
सूतीगृहमगात्तूर्णं प्रस्खलन्मुक्तमूर्धजः ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

सः—वह (कंस); तल्पात्—बिस्तर से; तूर्णम्—शीघ्र ही; उत्थाय—उठकर; कालः अयम्—यह रही मेरी मृत्यु, परम काल; इति—इस प्रकार; विह्वलः—उद्विग्न; सूती-गृहम्—सौर को; अगात्—गया; तूर्णम्—देरी लगाए बिना; प्रस्खलन्—बिखेरे हुए; मुक्त—खुले; मूर्ध-जः—सिर के बाल।

कंस तुरन्त ही बिस्तर से यह सोचते हुए उठ खड़ा हुआ, ''यह रहा काल, जिसने मेरा वध करने के लिए जन्म लिया है।'' इस तरह उद्विग्न एवं अपने सिर के बाल बिखराए कंस तुरन्त ही उस स्थान पर पहुँचा जहाँ शिशु ने जन्म लिया था।

तात्पर्य : *कालः* शब्द महत्त्वपूर्ण है। यद्यपि यह बालक कंस का वध करने के लिए उत्पन्न हुआ था, किन्तु कंस ने सोचा कि इस बालक का वध करने का यह उपयुक्त समय है, जिससे स्वयं उसका जीवन बच जाए। वास्तव में काल भगवान् का ही दूसरा नाम है जब वे वध करने के उद्देश्य से प्रकट होते हैं। जब अर्जुन ने विराट रूप कृष्ण से पूछा, ''आप कौन हैं ?'' तो भगवान् ने कहा कि मैं साक्षात् काल हूँ। प्रकृति का नियम है कि जब अवांछित रीति से जनसंख्या में वृद्धि होती है, तो *काल* प्रकट होता है और भगवान् की ऐसी व्यवस्था बनती है कि लोग बड़ी संख्या में युद्ध, महामारी, दुर्भिक्ष इत्यादि नाना कारणों से मारे जाते हैं। उस समय नास्तिक राजनीतिक नेता भी गिरिजाघर, मसजिद या मन्दिर जाकर ईश्वर से कृपा माँगते हैं। किन्तु इसके पूर्व वे भगवान् को या उनकी इच्छा को जानने का कोई प्रयास नहीं करते। काल के प्रकट होने पर ही वे कृपा माँगते हैं। मृत्यु परम काल अर्थात् भगवान् का एक दूसरा गुण है। मृत्यु के समय नास्तिक को काल के समक्ष घुटने टेकने पड़ते हैं और तब भगवान् उसकी सारी सम्पत्ति हर लेते हैं (*मृत्युः सर्व हरश्चाहम्*) और उसे दूसरा शरीर धारण करने के लिए बाध्य कर देते हैं (*तथा देहान्तरप्राप्तिः*)। नास्तिक लोग इसे नहीं जानते और यदि जानते भी हैं, तो उपेक्षा करते हैं जिससे वे अपना सामान्य जीवन बिता सकें। कृष्णभावनामृत आन्दोलन उन्हें सिखलाने का प्रयास कर रहा है कि भले ही वे कुछ वर्षों तक महान् रक्षक या प्रहरी बने रहें, किन्तु

काल के प्रकट होते ही उन्हें दूसरा शरीर धारण करना होगा। यही प्रकृति का नियम है। इसे न जानने के कारण वे प्रहरी बनकर अपना समय व्यर्थ गँवाते हैं और भगवान् की कृपा प्राप्त करने का प्रयास नहीं करते। स्पष्ट कहा गया है—*अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि*—कृष्णभावनामृत के बिना मनुष्य को जन्म-मृत्यु में भटकते रहना पड़ता है और इसका पता नहीं चल पाता है कि अगले जन्म में क्या होगा।

तमाह भ्रातरं देवी कृपणा करुणं सती ।
स्नुषेयं तव कल्याण स्त्रियं मा हन्तुमर्हसि ॥ ४॥

शब्दार्थ

तम्—कंस से; आह—कहा; भ्रातरम्—अपने भाई; देवी—माता देवकी ने; कृपणा—असहाय; करुणम्—कातर; सती—सती; स्नुषा इयम् तव—यह शिशु तुम्हारी भावी पुत्र-वधू बनेगी; कल्याण—हे शुभ; स्त्रियम्—स्त्री को; मा—नहीं; हन्तुम्—वध करना; अर्हसि—तुम्हें शोभा देता है।

असहाय तथा कातर भाव से देवकी ने कंस से विनती की : मेरे भाई, तुम्हारा कल्याण हो। तुम इस बालिका को मत मारो। यह तुम्हारी पुत्र-वधू बनेगी। तुम्हें शोभा नहीं देता कि एक कन्या का वध करो।

तात्पर्य : इसके पूर्व कंस ने यह सोचकर देवकी को क्षमा कर दिया था कि स्त्री का वध नहीं करना चाहिए, विशेष रूप से यदि वह गर्भिणी हो। किन्तु अब यही कंस माया के प्रभाव से स्त्री को, न केवल स्त्री, वरन् नवजात असहाय कन्या को मार डालने के लिए उद्यत था। देवकी अपने भाई को इस पापपूर्ण जघन्य कृत्य से बचाना चाह रही थीं अतएव उन्होंने उससे कहा, ''तुम कन्या को मारने का नृशंसता पूर्ण पाप मत करो। तुम्हारा कल्याण हो।'' असुरजन अपने स्वार्थ के लिए पाप-पुण्य का विचार किए बिना कुछ भी कर सकते हैं। किन्तु इसके विपरीत, देवकी यद्यपि सुरक्षित थीं और अपने पुत्र कृष्ण को जन्म दे चुकी थीं, किन्तु वे पराई कन्या को बचाने के लिए चिन्तित थीं। यह उनके लिए स्वाभाविक ही था।

बहवो हिंसिता भ्रातः शिशवः पावकोपमाः ।
त्वया दैवनिसृष्टेन पुत्रिकैका प्रदीयताम् ॥ ५॥

शब्दार्थ

बहवः—अनेक; हिंसिताः—ईर्ष्यावश मारे गए; भ्रातः—हे भाई; शिशवः—अनेक शिशु; पावक-उपमाः—तेज और सौन्दर्य में अग्नि के समान; त्वया—तुम्हारे द्वारा; दैव-निसृष्टेन—भविष्यवाणी से; पुत्रिका—कन्या; एका—एक; प्रदीयताम्—तुम मुझे उपहार स्वरूप दे दो।.

हे भ्राता, तुम दैववश मेरे अनेक सुन्दर तथा अग्नि जैसे तेजस्वी शिशुओं को पहले ही मार चुके हो। किन्तु कृपा करके इस कन्या को छोड़ दो। इसे उपहार स्वरूप मुझे दे दो।

तात्पर्य : यहाँ हम यह देखते हैं कि देवकी ने सर्वप्रथम कंस के क्रूर कर्मों—उसके द्वारा अपने अनेक पुत्रों के वध की ओर ध्यान दिलाया। इसके बाद वे उससे यह कहकर समझौता करना चाहती थीं कि उसने जो भी किया वह उसका दोष न था अपितु विधाता का रचा था। इसके बाद उन्होंने उससे याचना की कि वे उन्हें इस पुत्री को उपहार के रूप में दे दें। देवकी क्षत्रिय की पुत्री थीं अतएव राजनैतिक दावपेंच जानती थीं। राजनीति में सफलता प्राप्त करने की अनेक विधियाँ हैं—दम, साम तथा दान। कंस की क्रूरता द्वारा मारे गए अपने पुत्रों के लिए उस पर सीधा आक्षेप करने की दम नीति का देवकी ने पहले आश्रय लिया। किन्तु इसके बाद यह कहकर समझौता कर लिया कि यह उसका दोष नहीं था और उसी के बाद उन्होंने उससे एक वर माँगा। *महाभारत* के इतिहास से हमें पता चलता है कि क्षत्रियों अर्थात् शासकों की पत्नियाँ तथा पुत्रियाँ राजनीतिक दाँवपेंच जानती थीं, किन्तु हम यह भी जानते हैं कि किसी भी स्त्री को मुख्य शासक का पद प्रदान नहीं हुआ। यह *मनुसंहिता* के आदेश के अनुसार है, किन्तु दुर्भाग्य की बात यह है कि *मनुसंहिता* का भी अब उपहास किया जा रहा है और वैदिक समाज के सदस्य, आर्य लोग कुछ भी नहीं कर सकते। कलियुग की ऐसी स्थिति है। विधि के विधान बिना कुछ भी नहीं हो सकता।

तस्यैव हेतोः प्रयतेत कोविदो
न लभ्यते यद् भ्रमतामुपर्यधः।
तल्लभ्यते दुःखवदन्यतः सुखं
कालेन सर्वत्र गभीररंहसा॥

(*भागवत* १.५.१८)

देवकी अच्छी तरह जानती थीं कि उनके अनेक पुत्रों का वध विधि द्वारा निर्दिष्ट था अतः कंस को दोषी नहीं ठहराया जा सकता था। कंस को अच्छी शिक्षा देना भी व्यर्थ था। *उपदेशो हि मूर्खाणां प्रकोपाय न शान्तये* (चाणक्य पंडित)। मूर्ख व्यक्ति को अच्छा उपदेश देने पर वह अधिकाधिक क्रोध

प्रकट करता है। यही नहीं, क्रूर व्यक्ति साँप से भी अधिक घातक होता है। साँप तथा क्रूर व्यक्ति दोनों ही क्रूर होते हैं, किन्तु क्रूर व्यक्ति अधिक घातक होता है क्योंकि सर्प को तो मंत्रों या औषधियों से मुग्ध जा सकता है, किन्तु क्रूर व्यक्ति का दमन किसी प्रकार नहीं किया जा सकता। कंस का स्वभाव ऐसा ही था।

नन्वहं ते ह्यवरजा दीना हतसुता प्रभो ।
दातुमर्हसि मन्दाया अङ्गेमां चरमां प्रजाम् ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

ननु—किन्तु; अहम्—मैं; ते—तुम्हारी; हि—निश्चय ही; अवरजा—छोटी बहन; दीना—दीन; हत-सुता—सन्तान से विहीन की गई; प्रभो—हे प्रभु; दातुम् अर्हसि—तुम देने में समर्थ हो; मन्दायाः—इस अभागिन को; अङ्ग—मेरे भाई; इमाम्—इस; चरमाम्—अन्तिम; प्रजाम्—बालक को।

हे प्रभु, हे मेरे भाई, मैं अपने सारे बालकों से विरहित होकर अत्यन्त दीन हूँ, फिर भी मैं तुम्हारी छोटी बहन हूँ अतएव यह तुम्हारे अनुरूप ही होगा कि तुम इस अन्तिम शिशु को मुझे भेंट में दे दो।

श्रीशुक उवाच
उपगुह्यात्मजामेवं रुदत्या दीनदीनवत् ।
याचितस्तां विनिर्भर्त्स्य हस्तादाचिच्छिदे खलः ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; उपगुह्य—आलिंगन करके; आत्मजाम्—अपनी पुत्री को; एवम्—इस प्रकार; रुदत्या—रुदन करती देवकी द्वारा; दीन-दीन-वत्—एक गरीब स्त्री की भाँति अत्यन्त दीनतापूर्वक; याचितः—माँगे जाने पर; ताम्—उसे (देवकी को); विनिर्भर्त्स्य—भर्त्सना करके; हस्तात्—हाथ से; आचिच्छिदे—बलपूर्वक छीन लिया; खलः—उस दुष्ट कंस ने।

शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : अपनी पुत्री को दीनतापूर्वक सीने से लगाये हुए तथा बिलखते हुए देवकी ने कंस से अपनी सन्तान के प्राणों की भीख माँगी, किन्तु वह इतना निर्दयी था कि उसने देवकी को फटकारते हुए उसके हाथों से उस बालिका को बलपूर्वक झपट लिया।

तात्पर्य : यद्यपि देवकी एक दीन स्त्री की तरह बिलख रही थीं किन्तु वास्तव में वे दीन नहीं थीं इसीलिए *दीनवत्* शब्द का प्रयोग हुआ है। वे पहले ही कृष्ण को जन्म दे चुकी थीं अतएव उनसे बढ़कर धनवान और कौन हो सकता था? यहाँ तक कि देवतागण भी उनकी स्तुति करने आये थे, किन्तु देवकी ने एक निर्धन सताई हुई स्त्री की भूमिका इसीलिए निभाई क्योंकि वे यशोदा की कन्या को

बचाना चाह रही थीं।

तां गृहीत्वा चरणयोर्जातमात्रां स्वसुः सुताम् ।
अपोथयच्छिलापृष्ठे स्वार्थोन्मूलितसौहृदः ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

ताम्—शिशु को; गृहीत्वा—बलपूर्वक लेकर; चरणयोः—दोनों पाँवों से; जात-मात्राम्—नवजात शिशु को; स्वसुः—अपनी बहन की; सुताम्—कन्या को; अपोथयत्—पछाड़ दिया; शिला-पृष्ठे—पत्थर के ऊपर; स्व-अर्थ-उन्मूलित—विकट स्वार्थ के वशीभूत होकर जड़ से उखाड़ फेंका; सौहृदः—सारे मित्र या पारिवारिक सम्बन्ध।

अपने विकट स्वार्थ के कारण अपनी बहन से सारे सम्बन्ध तोड़ते हुए घुटनों के बल बैठे कंस ने नवजात शिशु के पाँवों को पकड़ा और उसे पत्थर पर पटकना चाहा।

सा तद्धस्तात्समुत्पत्य सद्यो देव्यम्बरं गता ।
अदृश्यतानुजा विष्णोः सायुधाष्टमहाभुजा ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

सा—वह कन्या; तत्-हस्तात्—कंस के हाथ से; सम्-उत्पत्य—छूटकर; सद्यः—तुरन्त; देवी—देवी के रूप में; अम्बरम्—आकाश में; गता—चली गई; अदृश्यत—देखी गई; अनुजा—छोटी बहन; विष्णोः—भगवान् की; स-आयुधा—हथियारों सहित; अष्ट—आठ; महा-भुजा—बड़ी-बड़ी भुजाओं वाली।

वह कन्या, योगमाया देवी जो भगवान् विष्णु की छोटी बहन थी, कंस के हाथ से छूट कर ऊपर की ओर चली गई और आकाश में हथियारों से युक्त आठ भुजाओं वाली देवी—देवी दुर्गा—के रूप में प्रकट हुई।

तात्पर्य : कंस ने कन्या को नीचे पत्थर पर पटकना चाहा, किन्तु वह तो भगवान् विष्णु की छोटी बहन योगमाया थी अत: हाथ से छूटकर ऊपर चली गई और देवी दुर्गा का रूप धारण कर लिया। *अनुजा* शब्द महत्त्वपूर्ण है। इसका अर्थ है, "छोटी बहन।" जब विष्णु या कृष्ण ने देवकी से जन्म लिया तो उसी समय उन्होंने यशोदा के गर्भ से भी जन्म लिया होगा। अन्यथा योगमाया भगवान् की छोटी बहन कैसे बनती?

दिव्यस्रगम्बरालेपरत्नाभरणभूषिता ।
धनुःशूलेषुचर्मासिशङ्खचक्रगदाधरा ॥ ॥
सिद्धचारणगन्धर्वैरप्सरःकिन्नरोरगैः ।
उपाहृतोरुबलिभिः स्तूयमानेदमब्रवीत् ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

दिव्य-स्रक्-अम्बर-आलेप—तब उसने चन्दन लेप, फूल-माला तथा सुन्दर वस्त्रों से आभूषित देवी का रूप धारण कर लिया; रत्न-आभरण-भूषिता—बहुमूल्य रत्नों वाले आभूषणों से सज्जित; धनुः-शूल-इषु-चर्म-असि—धनुष, त्रिशूल, तीर, ढाल तथा तलवार से युक्त; शङ्ख-चक्र-गदा-धरा—तथा शंख, चक्र और गदा धारण किए हुए; सिद्ध-चारण-गन्धर्वैः—सिद्ध, चारण तथा गन्धर्वों के द्वारा; अप्सरः-किन्नर-उरगैः—अप्सराओं, किन्नरों तथा उरगों द्वारा; उपाहृत-उरु-बलिभिः—सभी उसके लिए भेंटें लेकर आए; स्तूयमाना—प्रशंसित होकर; इदम्—ये शब्द; अब्रवीत्—उसने कहे।

देवी दुर्गा फूल की मालाओं से सुशोभित थीं, वे चन्दन का लेप किए थीं और सुन्दर वस्त्र पहने तथा बहुमूल्य रत्नों से जटित आभूषणों से युक्त थीं। वे अपने हाथों में धनुष, त्रिशूल, बाण, ढाल, तलवार, शंख, चक्र तथा गदा धारण किए हुए थीं। अप्सराएँ, किन्नर, उरग, सिद्ध, चारण तथा गन्धर्व तरह-तरह की भेंट अर्पित करते हुए उनकी प्रशंसा और पूजा कर रहे थे। ऐसी देवी दुर्गा इस प्रकार बोलीं।

किं मया हतया मन्द जातः खलु तवान्तकृत् ।
यत्र क्व वा पूर्वशत्रुर्मा हिंसीः कृपणान्वृथा ॥ १२॥

शब्दार्थ

किम्—क्या लाभ; मया—मुझे; हतया—मारने में; मन्द—अरे मूर्ख; जातः—पहले ही जन्म ले चुका है; खलु—निस्सन्देह; तव अन्त-कृत्—जो तुम्हारा वध करेगा; यत्र क्व वा—अन्यत्र कहीं; पूर्व-शत्रुः—तुम्हारा पहले का शत्रु; मा—मत; हिंसीः—मारो; कृपणान्—अन्य बेचारे बालक; वृथा—व्यर्थ ही।

अरे मूर्ख कंस, मुझे मारने से तुझे क्या मिलेगा? तेरा जन्मजात शत्रु तथा वध करने वाला पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् अन्यत्र कहीं जन्म ले चुका है। अतः तू व्यर्थ ही अन्य बालकों का वध मत कर।

इति प्रभाष्य तं देवी माया भगवती भुवि ।
बहुनामनिकेतेषु बहुनामा बभूव ह ॥ १३॥

शब्दार्थ

इति—इस तरह; प्रभाष्य—कहकर; तम्—कंस से; देवी—देवी दुर्गा; माया—योगमाया; भगवती—भगवान् जैसी शक्ति से सम्पन्न; भुवि—पृथ्वी पर; बहु-नाम—अनेक नामों वाले; निकेतेषु—विभिन्न स्थानों में; बहु-नामा—अनेक नामों वाली; बभूव—हुई; ह—निस्सन्देह।

कंस से इस तरह कहकर देवी दुर्गा अर्थात् योगमाया वाराणसी इत्यादि जैसे विभिन्न स्थानों में प्रकट हुईं और अन्नपूर्णा, दुर्गा, काली तथा भद्रा जैसे विभिन्न नामों से विख्यात हुईं।

तात्पर्य : देवी दुर्गा कलकत्ता में काली, मुम्बई में मुम्बादेवी, वाराणसी में अन्नपूर्णा, कटक में भद्रकाली तथा अहमदाबाद में भद्रा कहलाती हैं। इस तरह अलग-अलग जगहों में वे अलग-अलग नामों से जानी जाती हैं। उनके भक्त *शाक्त* अर्थात् भगवान् की शक्ति के उपासक कहलाते हैं जबकि पूर्ण

पुरुषोत्तम भगवान् के भक्त वैष्णव कहलाते हैं। वैष्णवों का दिव्य लोक अर्थात् वैकुण्ठ जाना निश्चित है, जबकि शाक्तों को इसी भौतिक जगत में रहकर तरह-तरह के भोग-विलास करना नियत है। भौतिक जगत में जीव को नाना प्रकार के शरीर धारण करने पड़ते हैं। *भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया* (*भगवद्गीता* १८.६१)। योगमाया या माया दुर्गादेवी जीव की इच्छा के अनुसार उसे विशेष प्रकार का शरीर प्रदान करती हैं, जिसे *यन्त्र* अर्थात् मशीन कहा गया है। किन्तु जो जीव वैकुण्ठलोक चले जाते हैं उन्हें पुनः इस भौतिक शरीर रूपी बन्दीगृह में लौटना नहीं होता (*त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन*)। *जन्म न एति*—ये शब्द सूचित करते हैं कि सारे जीव भगवान् की संगति का आनन्द उठाने के लिए वैकुण्ठ तथा वृन्दावन के दिव्य धामों में अपने मूल आध्यात्मिक शरीरों में रहते हैं।

तयाभिहितमाकर्ण्य कंसः परमविस्मितः ।
देवकीं वसुदेवं च विमुच्य प्रश्रितोऽब्रवीत् ॥ १४॥

शब्दार्थ

तया—दुर्गा देवी द्वारा; **अभिहितम्**—कहे गए शब्दों को; **आकर्ण्य**—सुनकर; **कंसः**—कंस; **परम-विस्मितः**—अत्यधिक आश्चर्यचकित था; **देवकीम्**—देवकी को; **वसुदेवम् च**—तथा वसुदेव को; **विमुच्य**—तुरन्त विमुक्त करके; **प्रश्रितः**—अत्यन्त दीनतापूर्वक; **अब्रवीत्**—इस प्रकार बोला।

देवीदुर्गा के शब्दों को सुनकर कंस अत्यन्त विस्मित हुआ। तब वह अपनी बहन देवकी तथा बहनोई वसुदेव के निकट गया, उन्हें बेड़ियों से विमुक्त कर दिया तथा अति विनीत भाव में इस प्रकार बोला।

तात्पर्य : कंस को आश्चर्य हुआ क्योंकि देवी दुर्गा तो देवकी की कन्या निकलीं। देवकी तो मानव जाति की थी, भला देवी दुर्गा उसकी पुत्री किस तरह हो सकती है? उसके आश्चर्य का यही कारण था। यही नहीं, देवकी की आठवीं सन्तान कन्या कैसे हो गई? इससे भी उसे आश्चर्य हुआ। असुरगण सामान्यतया माता दुर्गा अर्थात् शक्ति या फिर देवताओं के, विशेष रूप से शिवजी के, भक्त होते हैं। अपने आदि अष्टभुजी रूप में हथियार धारण किए हुए दुर्गा के प्राकट्य ने तुरन्त ही कंस की इस धारणा को बदल दिया कि देवकी मानव है। अवश्य ही उसमें कोई न कोई दिव्य गुण होंगे अन्यथा देवी दुर्गा उसके गर्भ से क्यों जन्म लेतीं? ऐसी परिस्थिति में आश्चर्यचकित कंस ने अपनी बहन देवकी के प्रति की गई नृशंसताओं की प्रतिपूर्ति कर देनी चाही।

अहो भगिन्यहो भाम मया वां बत पाप्मना ।
पुरुषाद इवापत्यं बहवो हिंसिताः सुताः ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

अहो—ओह; भगिनि—मेरी बहन; अहो—ओह; भाम—मेरे बहनोई; मया—मेरे द्वारा; वाम्—तुम दोनों को; बत—निस्सन्देह; पाप्मना—पापपूर्ण कार्यों से; पुरुष-अदः—मानव-भक्षी, राक्षस; इव—सदृश; अपत्यम्—शिशु को; बहवः—अनेक; हिंसिताः—मारे गए; सुताः—पुत्रगण।

हाय मेरी बहन! हाय मेरे बहनोई! मैं सचमुच उस मानव-भक्षी (राक्षस) के तुल्य पापी हूँ जो अपने ही शिशु को मारकर खा जाता है क्योंकि मैंने तुमसे उत्पन्न अनेक पुत्रों को मार डाला है।

तात्पर्य : ऐसा माना जाता है कि राक्षसगण अपने ही पुत्रों को खा जाने के आदी होते हैं जिस तरह साँप तथा अन्य अनेक जानवर कभी कभी करते हैं। सम्प्रति कलियुग में राक्षस पिता तथा माता अपने शिशुओं को गर्भ में ही मार रहे हैं और कुछ तो भ्रूण को भी बड़े चाव से खाते हैं। इस तरह तथाकथित सभ्यता राक्षसों को उत्पन्न करके क्रमशः प्रगति कर रही है।

स त्वहं त्यक्तकारुण्यस्त्यक्तज्ञातिसुहृत्खलः ।
कान्लोकान्वै गमिष्यामि ब्रह्महेव मृतः श्वसन् ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

सः—वह व्यक्ति (कंस); तु—निस्सन्देह; अहम्—मैं; त्यक्त-कारुण्यः—सारी दया से विहीन; त्यक्त-ज्ञाति-सुहृत्—जिसने अपने सम्बन्धियों तथा मित्रों का भी परित्याग कर रखा है; खलः—क्रूर; कान् लोकान्—कौन से लोकों में; वै—निस्सन्देह; गमिष्यामि—जाऊँगा; ब्रह्म-हा इव—ब्राह्मण का वध करने वाले के समान; मृतः श्वसन्—मरने के बाद या जीते ही जीते।

मैंने दयाविहीन तथा क्रूर होने के कारण अपने सारे सम्बन्धियों तथा मित्रों का परित्याग कर दिया है। अतः मैं नहीं जानता कि ब्राह्मण का वध करने वाले व्यक्ति के समान मृत्यु के बाद या इस जीवित अवस्था में मैं किस लोक को जाऊँगा?

दैवमप्यनृतं वक्ति न मर्त्या एव केवलम् ।
यद्विश्रम्भादहं पापः स्वसुर्निहतवाञ्छिशून् ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

दैवम्—विधाता; अपि—भी; अनृतम्—झूठ; वक्ति—कहते हैं; न—नहीं; मर्त्याः—मनुष्यगण; एव—निश्चय ही; केवलम्—केवल; यत्-विश्रम्भात्—उस भविष्यवाणी में विश्वास करने के कारण; अहम्—मैंने; पापः—अत्यन्त पापी; स्वसुः—अपनी बहन के; निहतवान्—मार डाले; शिशून्—अनेक बालकों को।

हाय! कभी-कभी न केवल मनुष्य झूठ बोलते हैं अपितु विधाता भी झूठ बोलता है। और मैं इतना पापी हूँ कि मैंने विधाता की भविष्यवाणी को मानते हुए अपनी ही बहन के इतने बच्चों का वध कर दिया।

मा शोचतं महाभागावात्मजान्स्वकृतं भुजः ।
जान्तवो न सदैकत्र दैवाधीनास्तदासते ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

मा शोचतम्—(इसके पहले जो हो गया उसके लिए) अब दुखी न हों; महा-भागौ—हे आत्मज्ञानी तथा भाग्यशालिनी; आत्मजान्—अपने पुत्रों के लिए; स्व-कृतम्—अपने कर्मों के ही कारण; भुजः—भोग कर रहे हैं; जान्तवः—सारे जीव-जन्तु; न—नहीं; सदा—सदैव; एकत्र—एक स्थान में; दैव-अधीनाः—जो भाग्य के वश में है; तदा—अतएव; आसते—जीवित रहते हैं।

हे महान् आत्माओ, तुम दोनों के पुत्रों को अपने ही दुर्भाग्य का फल भोगना पड़ा है। अतः तुम उनके लिए शोक मत करो। सारे जीव परमेश्वर के नियंत्रण में होते हैं और वे सदैव एकसाथ नहीं रह सकते।

तात्पर्य : कंस ने अपनी बहन तथा बहनोई को *महाभागौ* कहकर सम्बोधित किया क्योंकि यद्यपि वह उनके सामान्य बच्चों का वध कर चुका था, किन्तु अब देवी दुर्गा इन दोनों से उत्पन्न हो चुकी थीं। चूँकि देवकी ने दुर्गादेवी को अपने गर्भ में धारण किया इसलिए उसने देवकी तथा उसके पति की प्रशंसा की। असुरगण देवी दुर्गा, काली इत्यादि के प्रति अत्यधिक समर्पित होते हैं। इसीलिए विस्मित कंस ने अपनी बहन तथा बहनोई के उच्च पद की प्रशंसा की। दुर्गा प्रकृति के नियमों के अधीन नहीं क्योंकि वे ही प्रकृति के नियमों की नियंत्रक हैं। किन्तु सामान्य जीव तो इन्हीं नियमों द्वारा विनियमित होते हैं (*प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणै कर्माणि सर्वशः*) फलस्वरूप हममें से किसी को भी अधिक काल तक साथ-साथ रहने नहीं दिया जाता। कंस इस तरह की बातों से अपने बहन तथा बहनोई को सान्त्वना देना चाह रहा था।

भुवि भौमानि भूतानि यथा यान्त्यपयान्ति च ।
नायमात्मा तथैतेषु विपर्येति यथैव भूः ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

भुवि—पृथ्वी पर; भौमानि—पृथ्वी से बने सारे भौतिक पदार्थ यथा घड़े आदि; भूतानि—उत्पन्न; यथा—जिस तरह; यान्ति—प्रकट होते हैं; अपयान्ति—विलीन होते हैं (खंडित होकर मिट्टी में मिल जाते हैं); च—तथा; न—नहीं; अयम् आत्मा—आत्मा या आध्यात्मिक स्वरूप; तथा—उसी तरह; एतेषु—इन सब (भौतिक तत्त्वों से बने पदार्थों) में से; विपर्येति—बदल जाता है या टूट जाता है; यथा—जिस तरह; एव—निश्चय ही; भूः—पृथ्वी।

इस संसार में हम देखते हैं कि बर्तन, खिलौने तथा पृथ्वी के अन्य पदार्थ प्रकट होते हैं, टूटते हैं और फिर पृथ्वी में मिलकर विलुप्त हो जाते हैं। ठीक इसी तरह बद्धजीवों के शरीर

विनष्ट होते रहते हैं, किन्तु पृथ्वी की ही तरह ये जीव अपरिवर्तित रहते हैं और कभी विनष्ट नहीं होते (*न हन्यते हन्यमाने शरीरे*)।

तात्पर्य : यद्यपि कंस को असुर कहा गया है, किन्तु *आत्म-तत्त्व* का उसे अच्छा ज्ञान था। पाँच हजार वर्ष पूर्व, कंस जैसे राजाओं को असुर कहा जाता था, किन्तु कंस आधुनिक राजनीतिज्ञों तथा कूटनीतिज्ञों से कहीं उत्तम था क्योंकि इन्हें *आत्म-तत्त्व* विषयक कोई ज्ञान नहीं है। वेदों में कहा गया है—*असङ्गो ह्ययं पुरुषः*—आत्मा का भौतिक शरीर के परिवर्तनों से कोई नाता नहीं होता। शरीर में छह परिवर्तन होते हैं—जन्म, वृद्धि, स्थिति, उप-जात, ह्रास तथा संहार—किन्तु ये परिवर्तन आत्मा में नहीं देखे जाते। किसी शरीर के विनाश के बाद भी शरीर के तत्त्वों का मूल स्रोत बदलता नहीं। जीव भौतिक शरीर का भोग करता है, जो प्रकट होता है और विलुप्त होता रहता है, किन्तु पंचतत्त्व—क्षिति, जल, पावक, गगन और समीर—वैसे के वैसे रहते हैं। यहाँ पर मिट्टी से बने पात्रों तथा खिलौनों का दृष्टान्त दिया गया है। ये टूटने पर अपने मूल अवयवों में मिल जाते हैं। कुछ भी हो, वस्तुओं का मूल स्रोत वही रहता है।

जैसाकि पहले बतलाया जा चुका है, शरीर का निर्माण आत्मा की इच्छाओं के अनुसार होता है। आत्मा जैसी इच्छा करता है, वैसा शरीर बनता है। इसीलिए *भगवद्गीता* (१८.६१) में कृष्ण कहते हैं—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥

"हे अर्जुन! भगवान् हर प्राणी के हृदय में स्थित हैं और उन सारे जीवों को घुमाते रहते हैं, जो मानो भौतिक शक्ति से बने यंत्र पर आरूढ़ हैं।" न तो परमात्मा, न ही आत्मा अपने मूल आध्यात्मिक स्वरूप को बदलता है। आत्मा का न तो जन्म होता है, न मृत्यु, न शरीर की तरह उसमें परिवर्तन होते हैं। इसीलिए वेदसूक्ति है—*असङ्गो ह्ययं पुरुषः*—यद्यपि आत्मा इस भौतिक जगत में बद्ध है, किन्तु भौतिक शरीरों में होने वाले परिवर्तनों से इसका कोई सम्बन्ध नहीं होता।

यथानेवंविदो भेदो यत आत्मविपर्ययः ।

देहयोगवियोगौ च संसृतिर्न निवर्तते ॥ २० ॥

शब्दार्थ

यथा—जिस तरह; **अन्-एवम्-विदः**—ऐसे व्यक्ति का जिसे (आत्म-तत्त्व तथा आत्मा के स्थायित्व का) शरीर के परिवर्तनों के बावजूद कोई ज्ञान नहीं होता; **भेदः**—शरीर तथा आत्मा का अन्तर; **यतः**—जिससे; **आत्म-विपर्ययः**—यह मूर्खतापूर्ण ज्ञान कि वह शरीर है; **देह-योग-वियोगौ च**—तथा विभिन्न शरीरों में सम्बन्ध तथा वियोगों को उत्पन्न करता है; **संसृतिः**—बद्ध जीवन की निरन्तरता; **न**—नहीं; **निवर्तते**—रुकती है।

जो व्यक्ति शरीर तथा आत्मा की स्वाभाविक स्थिति को नहीं समझता वह देहात्मबुद्धि के प्रति अत्यधिक अनुरक्त रहता है। फलस्वरूप शरीर तथा उसके प्रतिफलों के प्रति अनुरक्ति के कारण वह अपने परिवार, समाज तथा राष्ट्र के साथ संयोग तथा वियोग का अनुभव करता है। जब तक ऐसा बना रहता है तब तक वह भौतिक जीवन बिताता है (अन्यथा मुक्त है)।

तात्पर्य : *श्रीमद्भागवत* (१.२.६) में पुष्टि की गई है—

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे।

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति॥

धर्म का अर्थ है "काम में लगना।" जो व्यक्ति भगवान् की सेवा में अविराम तथा निरवरोध लगा रहता है (*यतो भक्तिरधोक्षजे*) वह अपनी मूल आध्यात्मिक अवस्था को प्राप्त हुआ समझा जाता है। इस अवस्था को प्राप्त कर लेने पर वह सदैव दिव्य आनन्द का अनुभव करता है। अन्यथा देहात्मबुद्धि के कारण उसे भौतिक कष्ट भोगने पड़ते। *जन्ममृत्युजराव्याधि दुःखदोषानुदर्शनम्।* शरीर में जन्म, मृत्यु, जरा तथा रोग लगे ही रहते हैं, किन्तु जिसका जीवन आध्यात्मिक है (*यतो भक्तिरधोक्षजे*) उसे जन्म, मृत्यु, जरा तथा रोग नहीं सताते। कोई यह तर्क कर सकता है कि चौबीसों घण्टे अध्यात्म में लगा रहने वाला व्यक्ति भी रोग से पीड़ित देखा जा सकता है। तथ्य तो यह है कि वह न तो कष्ट भोग रहा होता है, न रोगी होता है अन्यथा वह चौबीसों घण्टे आध्यात्मिक कार्यों में कैसे लगा रह सकता है? उदाहरणार्थ, कभी-कभी गंगा के जल के ऊपर गन्दा फेन या कूड़ा-करकट तैरता दिखता है। यह *नीर धर्म* कहलाता है। किन्तु जो गंगा में स्नान करने आता है, वह जल में तैरती हुई फेन तथा गंदगी की परवाह नहीं करता। वह इन गंदगियों को हाथ से हटाकर गंगा में स्नान करके स्नान का लाभ उठाता है। अतः आध्यात्मिक जीवन बिताने वाला व्यक्ति फेन तथा कूड़ा-करकट या अन्य ऊपरी गन्दी बातों से अप्रभावित रहता है। इसकी पुष्टि श्रील रूप गोवस्वामी ने की है—

ईहा यस्य हरेर्दास्ये कर्मणा मनसा गिरा।

निखिलास्वप्यवस्थासु जीवन्मुक्त: स उच्यते॥

''मनसा, वाचा, कर्मणा कृष्ण की सेवा में लगा हुआ व्यक्ति इस जगत में रहते हुए भी मुक्त होता है।'' (*भक्तिरसामृत सिन्धु* १.२.१८७)। अत: गुरु को कभी भी सामान्य मनुष्य नहीं मानना चाहिए (*गुरुषु नरमतिर्... नारकी स:*)। आध्यात्मिक गुरु या आचार्य जीवन में सदैव आध्यात्मिक पद पर रहता है। उसे जन्म, मृत्यु, जरा तथा व्याधि नहीं सताते। अतएव *हरिभक्तिविलास* के अनुसार आचार्य के तिरोधान होने पर उसके शरीर को भस्मीभूत नहीं किया जाता क्योंकि वह आध्यात्मिक होता है। आध्यात्मिक शरीर भौतिक दशाओं से सदैव अप्रभावित रहता है।

तस्माद्भद्रे स्वतनयान्मया व्यापादितानपि ।
मानुशोच यत: सर्व: स्वकृतं विन्दतेऽवश: ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

तस्मात्—अत:; भद्रे—मेरी बहन (तुम्हारा कल्याण हो); स्व-तनयान्—अपने पुत्रों के लिए; मया—मेरे द्वारा; व्यापादितान्—दुर्भाग्यवश मारे गए; अपि—यद्यपि; मा अनुशोच—दुखी मत होओ; यत:—क्योंकि; सर्व:—हर एक व्यक्ति; स्व-कृतम्—अपने कर्मों के ही सकाम फलों को; विन्दते—भोगता है; अवश:—विधना के वशीभूत होकर।

मेरी बहन देवकी, तुम्हारा कल्याण हो। हर व्यक्ति प्रारब्ध के अधीन अपने ही कर्मों के फल भोगता है। अतएव, दुर्भाग्यवश मेरे द्वारा मारे गए अपने पुत्रों के लिए शोक मत करो।

तात्पर्य : *ब्रह्म-संहिता* (५.५४) में कहा गया है—

यस्त्विन्द्रगोपमथवेन्द्रमहो स्वकर्म-

बन्धानुरूपफलभाजनमातनोति ।

कर्माणि निर्दहति किन्तु च भक्तिभाजां

गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥

इन्द्रगोप नामक क्षुद्र कीट से लेकर स्वर्गलोक के राजा इन्द्र तक सारे प्राणियों को अपने सकाम कर्मों के फल भोगने पड़ते हैं। हमें ऊपर से दिखलाई पड़ सकता है कि कोई व्यक्ति किन्हीं बाह्य कारणों से कष्ट भोग रहा है या सुख उठा रहा है, किन्तु असली कारण तो उसके अपने सकाम कर्म होते हैं। यहाँ तक कि जब कोई किसी को मार डालता है, तो यह माना जाता है कि मारे जाने वाले व्यक्ति को अपने ही कर्म का फल मिला है और मारने वाला व्यक्ति भौतिक प्रकृति का कारण मात्र था। इस तरह कंस ने इस विषय का गंभीरता से विवेचन करते हुए देवकी से क्षमा याचना की। देवकी के पुत्रों

की मृत्यु का कारण कंस नहीं अपितु उन पुत्रों का अपना भाग्य था। ऐसी अवस्था में देवकी को चाहिए था कि कंस को क्षमा कर दे और बिना शोक किए उसकी विगत करतूतों को भूल जाए। कंस ने अपना दोष स्वीकार किया, किन्तु उसने जो कुछ किया था वह प्रारब्ध के अधीन था। भले ही कंस देवकी के पुत्रों की मृत्यु का तत्कालिक प्रत्यक्ष कारण रहा हो, किन्तु सुदूर कारण तो उनके विगत कर्म ही थे। यथार्थ यही था।

यावद्धतोऽस्मि हन्तास्मीत्यात्मानं मन्यतेऽस्वदृक् ।
तावत्तदभिमान्यज्ञो बाध्यबाधकतामियात् ॥ २२॥

शब्दार्थ

यावत्—जब तक; **हतः अस्मि**—(दूसरों द्वारा) मारा जा रहा हूँ; **हन्ता अस्मि**—(अन्यों का) मारने वाला हूँ; **इति**—इस प्रकार; **आत्मानम्**—अपने को; **मन्यते**—मानता है; **अ-स्व-दृक्**—जो अपने आप को नहीं देखता है (देहात्मबुद्धि के अँधेरे के कारण); **तावत्**—तब तक; **तत्-अभिमानी**—अपने को मारा गया या मारने वाला मानते हुए; **अज्ञः**—मूर्ख व्यक्ति; **बाध्य-बाधकताम्**—कुछ उत्तरदायित्व लेने के लिए बाध्य सांसारिक व्यवहार; **इयात्**—रहता है।.

देहात्मबुद्धि होने पर आत्म-साक्षात्कार के अभाव में मनुष्य यह सोचकर अँधेरे में रहता है कि ''मुझे मारा जा रहा है'' अथवा ''मैंने अपने शत्रुओं को मार डाला है।'' जब तक मूर्ख व्यक्ति इस प्रकार अपने को मारने वाला या मारा गया सोचता है तब तक वह भौतिक बन्धनों में रहता है और उसे सुख-दुख भोगना पड़ता है।

तात्पर्य : भगवान् की कृपा से कंस को हार्दिक खेद की अनुभूति हुई कि उसने व्यर्थ ही देवकी तथा वसुदेव जैसे वैष्णवों को सताया और इस तरह वह ज्ञान की दिव्य अवस्था को प्राप्त हुआ। कंस ने कहा, चूँकि मुझे ज्ञान हो चुका है कि मैं तुम दोनों के पुत्रों को मारने वाला (हत्यारा) नहीं हूँ अत: मैं उनकी मृत्यु के लिए उत्तरदायी नहीं हूँ। जब तक मैं यह सोचता रहा कि मैं तुम्हारे पुत्रों द्वारा मारा जाऊँगा तब तक मैं अज्ञान में था, किन्तु अब मैं देहात्मबुद्धि जनित इस अज्ञान से मुक्त हूँ। *भगवद्गीता* (१८.१७) में कहा गया है—

यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते।

हत्वापि स इमाल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते॥

''जो मिथ्या अहंकार से प्रेरित नहीं है, जिसकी बुद्धि उलझी हुई नहीं है, वह इस जगत में मनुष्यों का वध करते हुए भी हत्यारा नहीं है। न ही वह अपने कर्मों से बँधा है।'' इस स्वयंसिद्ध सत्य के

अनुसार कंस ने याचना की कि वह देवकी तथा वसुदेव के पुत्रों का वध करने के लिए उत्तरदायी नहीं है। उसने कहा, ''कृपया ऐसे मिथ्या बाह्य कार्यों के लिए मुझे क्षमा करें और इसी ज्ञान से शान्त हों।''

क्षमध्वं मम दौरात्म्यं साधवो दीनवत्सलाः ।
इत्युक्त्वाश्रुमुखः पादौ श्यालः स्वस्त्रोरथाग्रहीत् ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

क्षमध्वम्—कृपया क्षमा कर दें; मम—मेरे; दौरात्म्यम्—क्रूर कर्मों को; साधवः—तुम दोनों साधु व्यक्ति; दीन-वत्सलाः—गरीबों पर अत्यन्त कृपालु; इति उक्त्वा—ऐसा कहकर; अश्रु-मुखः—आँसुओं से भरा मुख; पादौ—पाँवों को; श्यालः—उसका साला कंस; स्वस्त्रः—अपनी बहन तथा बहनोई के; अथ—इस प्रकार; अग्रहीत्—पकड़ लिया।

कंस ने याचना की, ''हे मेरी बहन तथा मेरे बहनोई, मुझ जैसे क्षुद्र-हृदय व्यक्ति पर कृपालु होयें क्योंकि तुम दोनों ही साधु सदृश व्यक्ति हो। मेरी क्रूरताओं को क्षमा कर दें।'' यह कहकर खेद के साथ आँखों में अश्रु भरकर कंस वसुदेव तथा देवकी के चरणों पर गिर पड़ा।

तात्पर्य : यद्यपि कंस ने असली ज्ञान के विषय में सुन्दर-सुन्दर बातें कहीं, किन्तु उसके विगत कर्म निन्दनीय तथा नृशंस थे इसलिए उसने अपनी बहन और बहनोई के चरणों पर गिरकर उनसे क्षमा माँगी और स्वीकार किया कि वह घोर पापी है।

मोचयामास निगडाद्विश्रब्धः कन्यकागिरा ।
देवकीं वसुदेवं च दर्शयन्नात्मसौहृदम् ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

मोचयाम् आस—कंस ने उन्हें मुक्त कर दिया; निगडात्—लोहे की जंजीरों से; विश्रब्धः—पूर्ण विश्वास के साथ; कन्यका-गिरा—देवी दुर्गा की वाणी में; देवकीम्—अपनी बहन देवकी के प्रति; वसुदेवम् च—तथा वसुदेव को; दर्शयन्—प्रदर्शित करते हुए; आत्म-सौहृदम्—आत्मीयता।

देवी दुर्गा की वाणी में पूरी तरह विश्वास करते हुए कंस ने देवकी तथा वसुदेव को तुरन्त ही लोहे की श्रृंखलाओं से मुक्त करते हुए पारिवारिक स्नेह का प्रदर्शन किया।

भ्रातुः समनुतप्तस्य क्षान्तरोषा च देवकी ।
व्यसृजद्वसुदेवश्च प्रहस्य तमुवाच ह ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

भ्रातुः—अपने भाई कंस के प्रति; समनुतप्तस्य—खेद व्यक्त करने के कारण; क्षान्त-रोषा—क्रोध शान्त हुआ; च—भी; देवकी—कृष्ण की माता, देवकी ने; व्यसृजत्—छोड़ दिया; वसुदेवः च—तथा वसुदेव ने भी; प्रहस्य—हँसकर; तम्—कंस से; उवाच—कहा; ह—विगत में।

जब देवकी ने देखा कि उसका भाई पूर्वनिर्धारित घटनाओं की व्याख्या करते हुए वास्तव में

पश्चात्ताप व्यक्त कर रहा है, तो उनका सारा क्रोध जाता रहा। इसी प्रकार, वसुदेव भी क्रोध मुक्त हो गए। उन्होंने हँसकर कंस से कहा।

तात्पर्य : साधु सदृश व्यक्ति होने के कारण देवकी तथा वसुदेव ने कंस द्वारा प्रस्तुत यह सत्य स्वीकार कर लिया कि प्रारब्ध द्वारा हर बात पूर्व निर्धारित होती है। भविष्यवाणी के अनुसार कंस का वध देवकी के आठवें पुत्र द्वारा होना था। अतएव वसुदेव तथा देवकी को लगा कि इन सारी घटनाओं के पीछे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की बहुत बड़ी योजना थी। चूँकि भगवान् ने पहले ही सामान्य बालक की तरह जन्म ले लिया था और वे यशोदा के संरक्षण में सुरक्षित थे अतएव हर कार्य एक योजना के अनुसार घटित हो रहा था। फलत: कंस के प्रति दुर्भावना बनाए रखने की आवश्यकता नहीं थी। इस तरह उन्होंने कंस की बात मान ली।

एवमेतन्महाभाग यथा वदसि देहिनाम् ।
अज्ञानप्रभवाहंधीः स्वपरेति भिदा यतः ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

एवम्—हाँ, यह ठीक है; एतत्—तुमने जो कहा है; महा-भाग—हे महापुरुष; यथा—जिस तरह; वदसि—तुम बोल रहे हो; देहिनाम्—जीवों के विषय में; अज्ञान-प्रभवा—अज्ञानवश; अहम्-धीः—यह मेरा स्वार्थ (मिथ्या अहंकार) है; स्व-परा इति—यह दूसरे का स्वार्थ है; भिदा—भेद; यतः—ऐसी देहात्मबुद्धि के कारण।

हे महापुरुष कंस, केवल अज्ञान के प्रभाव के ही कारण मनुष्य भौतिक देह तथा अभिमान स्वीकार करता है। आपने इस दर्शन के विषय में जो कुछ कहा वह सही है। आत्म-ज्ञान से रहित देहात्म-बुद्धि वाले व्यक्ति "यह मेरा है," "ये पराया है" के रूप में भेदभाव बरतते हैं।

तात्पर्य : भगवान् के निर्देशानुसार कार्य करने वाली प्रकृति के नियमों के द्वारा हर कार्य स्वत: होता रहता है। स्वतंत्र रूप से किसी द्वारा कुछ किए जाने का प्रश्न ही नहीं उठता क्योंकि इस भौतिक वातावरण में रहने वाला व्यक्ति प्रकृति के नियमों के अधीन है। अतएव हमारा मुख्य कार्य यह होना चाहिये कि हम इस बद्ध जीवन से अपने को छुड़ाएँ और आध्यात्मिक जगत में जाँय। मनुष्य केवल अज्ञानवश यह सोचता है कि "मैं देवता हूँ, मैं मनुष्य हूँ, मैं कुत्ता हूँ, मैं बिल्ली हूँ" या फिर यदि अज्ञान और भी अधिक बढ़ जाता है, तो वह अपने को ईश्वर मानने लगता है। आत्म-साक्षात्कार प्राप्त हुए बिना मनुष्य का तामसी जीवन चलता रहता है।

शोकहर्षभयद्वेषलोभमोहमदान्विताः ।
मिथो घ्नन्तं न पश्यन्ति भावैर्भावं पृथग्दृशः ॥ २७॥

शब्दार्थ

शोक—शोक; हर्ष—प्रसन्नता; भय—डर; द्वेष—ईर्ष्या; लोभ—लालच; मोह—मोह; मद—पागलपन, उन्मत्तता; अन्विताः—से युक्त; मिथः—परस्पर; घ्नन्तम्—मारने में व्यस्त; न पश्यन्ति—नहीं देखते; भावैः—भेदभाव के कारण; भावम्—भगवान् के प्रति अपनी स्थिति को; पृथक्-दृशः—ऐसे व्यक्ति जो हर वस्तु को भगवान् के नियंत्रण से पृथक् मानते हैं।

भेदभाव की दृष्टि रखने वाले व्यक्ति शोक, हर्ष, भय, द्वेष, लोभ, मोह तथा मद जैसे भौतिक गुणों से समन्वित होते हैं। वे उस आसन्न (उपादान) कारण से प्रभावित होते हैं जिसका निराकरण करने में वे लगे रहते हैं क्योंकि उन्हें दूरस्थ परम कारण (निमित्त कारण) अर्थात् भगवान् का कोई ज्ञान नहीं होता।

तात्पर्य : कृष्ण समस्त कारणों के कारण हैं (*सर्वकारणकारणं*), किन्तु जो कृष्ण से कोई सम्बन्ध नहीं बनाये रखता, वह आसन्न कारणों से विचलित हो उठता है और भेद या भिन्नता की अपनी दृष्टि को रोक नहीं पाता। जब कोई निपुण चिकित्सक किसी रोगी का उपचार करता है, तो वह रोग के मूल कारण को खोजने का प्रयत्न करता है और उस मूल कारण के लक्षणों से भ्रमित नहीं होता। इसी तरह एक भक्त जीवन की पराजयों से कभी विचलित नहीं होता। *तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणः* (*भागवत* .१४.८)। भक्त जब किसी विपद ा में होता है, तो वह जानता है कि यह उसके अपने विगत दुष्कर्मों के कारण है, जो अब प्रतिक्रियाओं के रूप में प्रकट हो रहे हैं यद्यपि भगवान् की कृपा से ये मामूली ही हैं। *कर्माणि निर्दहति किन्तु च भक्तिभाजाम्* (*ब्रह्म-संहिता* ५.५४)। जब भगवान् के संरक्षण में रहने वाला भक्त अपने पूर्वकर्मों की त्रुटियों के कारण कष्ट भोगता है, तो भगवत्कृपा से उसे थोड़ा ही कष्ट मिलता है। यद्यपि भक्त का रोग पूर्वजन्म में कभी की गई भूलों के कारण रहता है, किन्तु भक्त ऐसे कष्टों को सहन करता है और भगवान् पर पूरी तरह आश्रित रहता है। इस तरह उसे भौतिक शोक, हर्ष, भय इत्यादि कभी प्रभावित नहीं कर सकते। भक्त किसी भी कार्य को भगवान् से असम्बद्ध नहीं मानता। श्रील मध्वाचार्य ने *भविष्य पुराण* से उद्धरण देते हुए कहा है—

भगवद्दर्शनाद् यस्य विरोधाद्दर्शनं पृथक्।
पृथक् दृष्टिः स विज्ञेयो न तु सद्भेददर्शनः॥

श्रीशुक उवाच

कंस एवं प्रसन्नाभ्यां विशुद्धं प्रतिभाषितः ।
देवकीवसुदेवाभ्यामनुज्ञातोऽविशद्गृहम् ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; कंसः—राजा कंस ने; एवम्—इस प्रकार; प्रसन्नाभ्याम्—अत्यन्त प्रसन्न; विशुद्धम्—विशुद्ध; प्रतिभाषितः—उत्तर दिए जाने पर; देवकी-वसुदेवाभ्याम्—देवकी तथा वसुदेव द्वारा; अनुज्ञातः—अनुमति से; अविशत्—प्रवेश किया; गृहम्—अपने महल में।

शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : शान्तमना देवकी तथा वसुदेव द्वारा शुद्धभाव से इस तरह सम्बोधित किए जाने पर कंस अत्यंत हर्षित हुआ और उनकी अनुमति लेकर वह अपने घर चला गया।

तस्यां रात्र्यां व्यतीतायां कंस आहूय मन्त्रिणः ।
तेभ्य आचष्ट तत्सर्वं यदुक्तं योगनिद्रया ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

तस्याम्—उस; रात्र्याम्—रात को; व्यतीतायाम्—बिताकर; कंसः—कंस ने; आहूय—बुलाकर; मन्त्रिणः—सारे मंत्रियों को; तेभ्यः—उन्हें; आचष्ट—सूचित किया; तत्—वह; सर्वम्—सब; यत् उक्तम्—जो कहा गया था (कि कंस का वध करने वाला अन्यत्र कहीं है); योग-निद्रया—योगमाया, देवी दुर्गा द्वारा।

रात बीत जाने पर कंस ने अपने सारे मंत्रियों को बुलाकर वह सब उन्हें बतलाया जो योगमाया ने कहा था (जिसने यह रहस्य बताया था कि कंस को मारने वाला कहीं अन्यत्र उत्पन्न हो चुका है)।

तात्पर्य : *चंडी* नामक वैदिक शास्त्र में भगवान् की शक्ति *माया* को *निद्रा* कहा गया है—*दुर्गादेवी सर्वभूतेषु निद्रारूपेण समास्थित: ।* योगमाया तथा महामाया की शक्ति जीवों को इस जगत के अज्ञान रूपी गहन अंधकार में सुलाए रखती है। योगमाया अर्थात् देवी दुर्गा ने कंस को कृष्ण के जन्म के विषय में अंधकार में रखा और यह कहकर उसे भ्रान्त किया कि उसका शत्रु कृष्ण अन्यत्र जन्म ले चुका है। कृष्ण तो देवकी के पुत्र रूप में उत्पन्न हुए थे, किन्तु भगवान् की पूर्वयोजना के अनुसार, जिसकी भविष्यवाणी ब्रह्मा को की थी, वे माता यशोदा तथा नन्द महाराज एवं अन्य घनिष्ठ मित्रों तथा भक्तों को ग्यारह वर्षों तक आनन्द प्रदान करने के लिए वृन्दावन गए। इसके बाद वे कंस का वध करने लौटे। चूँकि कंस इसे नहीं जानता था इसीलिए उसने योगमाया के इस कथन पर विश्वास कर लिया कि कृष्ण अन्यत्र जन्म ले चुके हैं, देवकी से उत्पन्न नहीं हुए।

आकर्ण्य भर्तुर्गदितं तमूचुर्देवशत्रवः ।
देवान्प्रति कृतामर्षा दैतेया नातिकोविदाः ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

आकर्ण्य—सुनकर; भर्तुः—अपने स्वामी के; गदितम्—कथन को; तम् ऊचुः—उससे कहा; देव-शत्रवः—देवताओं के शत्रु, सारे असुर; देवान्—देवताओं के; प्रति—प्रति; कृत-अमर्षाः—ईर्ष्यालु; दैतेयाः—असुरगण; न—नहीं; अति-कोविदाः—अत्यन्त कार्यकुशल।

अपने स्वामी की बात सुनकर, देवताओं के शत्रु तथा अपने कामकाज में अकुशल, ईर्ष्यालु असुरों ने कंस को यह सलाह दी।

तात्पर्य : मनुष्यों के दो भिन्न-भिन्न प्रकार हैं—असुर तथा सुर।

द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन् दैव आसुर एव च।

विष्णुभक्त स्मृतो दैव आसुरस्तद् विपर्ययः ॥

(*पद्म पुराण*)

भगवान् विष्णु या कृष्ण के भक्त सुर या देवता हैं और भक्तों के विरोधी लोग असुर हैं। भक्तगण सारे व्यवहारों में पटु होते हैं (*यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्यकिञ्चना सर्वैर्गुणैस्तत्र समासते सुराः*)। इसलिए वे *कोविद* अर्थात् "पटु" कहलाते हैं। किन्तु असुरगण ऊपर से कामुक वृत्तियों में पटुता दिखलाते हुए भी पूरी तरह मूर्ख होते हैं। न तो वे गम्भीर होते हैं, न कोविद। वे जो भी करते हैं वह अपूर्ण होता है। *मोघाशा मोघकर्माणः।* यह विवरण असुरों के विषय में *भगवद्गीता* (९.१२) में पाया जाता है, जिसके अनुसार वे जो भी करते हैं उससे उन्हें निराशा ही मिलती है। कंस को मंत्रणा देने वाले ऐसे ही व्यक्ति थे, जो उनके प्रधान मित्र तथा मंत्री थे।

एवं चेत्तर्हि भोजेन्द्र पुरग्रामव्रजादिषु ।
अनिर्दशान्निर्दशांश्च हनिष्यामोऽद्य वै शिशून् ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस तरह; चेत्—यदि ऐसा है; तर्हि—तो; भोज-इन्द्र—हे भोजराज; पुर-ग्राम-व्रज-आदिषु—सारे नगरों, गाँवों तथा चरागाहों में; अनिर्दशान्—दस दिन से कम आयु वाले; निर्दशान् च—तथा जो दस दिन पूरा कर चुके हैं; हनिष्यामः—हम मार डालेंगे; अद्य—आज से; वै—निस्सन्देह; शिशून्—बच्चों को।

हे भोजराज, यदि ऐसी बात है, तो हम आज से उन सारे बालकों को जो पिछले दस या उससे कुछ अधिक दिनों में सारे गाँवों, नगरों तथा चरागाहों में उत्पन्न हुए हैं, मार डालेंगे।

किमुद्यमैः करिष्यन्ति देवाः समरभीरवः ।
नित्यमुद्विग्नमनसो ज्याघोषैर्धनुषस्तव ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

किम्—क्या; उद्यमैः—अपने प्रयासों से; करिष्यन्ति—करेंगे; देवाः—सारे देवता; समर-भीरवः—लड़ने से भयभीत; नित्यम्—सदैव; उद्विग्न-मनसः—व्याकुल चित्त वाले; ज्या-घोषैः—डोरी की ध्वनि से; धनुषः—धनुष की; तव—तुम्हारी।

सारे देवता आपकी धनुष की डोरी (प्रत्यंचा) की आवाज से सदैव भयभीत रहते हैं। वे सदैव चिन्तित रहते हैं और लड़ने से डरते हैं। अतः वे अपने प्रयत्नों से आपको किस प्रकार हानि पहुँचा सकते हैं?

अस्यतस्ते शरव्रातैर्हन्यमानाः समन्ततः ।
जिजीविषव उत्सृज्य पलायनपरा ययुः ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

अस्यतः—आपके द्वारा छोड़े गए तीरों से छेदे जाने से; ते—आपके; शर-व्रातैः—बाणों के समूह से; हन्यमानाः—मारे गए; समन्ततः—चारों ओर; जिजीविषवः—जीने की कामना करते हुए; उत्सृज्य—युद्धभूमि छोड़कर; पलायन-पराः—बचकर भागने की इच्छा वाले; ययुः—भाग गए।

आपके द्वारा चारों दिशाओं में छोड़े गए बाणों के समूहों से छिदकर कुछ सुरगण जो घायल हो चुके थे, किन्तु जिन्हें जीवित रहने की उत्कण्ठा थी युद्धभूमि छोड़कर अपनी जान लेकर भाग निकले।

केचित्प्राञ्जलयो दीना न्यस्तशस्त्रा दिवौकसः ।
मुक्तकच्छशिखाः केचिद्भीताः स्म इति वादिनः ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

केचित्—उनमें से कुछ; प्राञ्जलयः—आपको प्रसन्न करने के लिए अपने हाथ जोड़े हुए; दीनाः—अत्यन्त निरीह; न्यस्त-शस्त्राः—सारे हथियारों से विहीन; दिवौकसः—देवतागण; मुक्त-कच्छ-शिखाः—अपने वस्त्र तथा बाल खोले और बिखेरे हुए; केचित्—कुछ; भीताः—हम अत्यन्त भयभीत हैं; स्म—हुए थे; इति वादिनः—उन्होंने इस तरह कहा।

हार जाने पर तथा सारे हथियारों से विहीन होकर कुछ देवताओं ने लड़ना छोड़ दिया और हाथ जोड़कर आपकी प्रशंसा करने लगे और उनमें से कुछ अपने वस्त्र तथा केश खोले हुए आपके समक्ष कहने लगे, ''हे प्रभु, हम आपसे अत्यधिक भयभीत हैं।''

न त्वं विस्मृतशस्त्रास्त्रान्विरथान्भयसंवृतान् ।
हंस्यन्यासक्तविमुखान्भग्नचापानयुध्यतः ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; त्वम्—आप; विस्मृत-शस्त्र-अस्त्रान्—जो अपने हथियार चलाना भूल चुके हैं; विरथान्—रथविहीन; भय-संवृतान्—भय से भौंचक्के; हंसि—मारते हो; अन्य-आसक्त-विमुखान्—जो लड़ने में अनुरक्त न रहकर कुछ अन्य कार्य में लगे रहते हैं; भग्न-चापान्—टूटे धनुषों वाले; अयुध्यतः—अतः युद्ध न करते हुए।

जब देवतागण रथविहीन हो जाते हैं, जब वे अपने हथियारों का प्रयोग करना भूल जाते हैं, जब वे भयभीत रहते हैं या लड़ने के अलावा किसी दूसरे काम में लगे रहते हैं या जब अपने धनुषों के टूट जाने के कारण युद्ध करने की शक्ति खो चुके होते हैं, तो आप उनका वध नहीं करते।

तात्पर्य : युद्ध करने के भी कुछ नियम होते हैं। जब शत्रु के पास रथ नहीं होता, वह भय के कारण युद्धकला भूल जाता है या फिर युद्ध नहीं करना चाहता तो उसका वध नहीं करना चाहिए। कंस के मंत्री उसे स्मरण दिला रहे थे कि अपनी शक्ति के बावजूद भी वह युद्ध के नियमों से अवगत था इसीलिए उसने देवताओं को उनकी अक्षमता के कारण क्षमा कर दिया था। मंत्रियों ने कहा, ''किन्तु प्रस्तुत आपत्ति में ऐसी दया या सैन्य शिष्टता दिखाने की घड़ी नहीं रह गई। अब तो आपको हर हालत में लड़ने के लिए तैयार हो जाना चाहिए।'' इस तरह मंत्रियों ने कंस को सलाह दी कि लड़ाई के परम्परागत शिष्टाचार को त्यागकर वह किसी भी मूल्य पर शत्रु को प्रताड़ित करे।

किं क्षेमशूरैर्विबुधैरसंयुगविकत्थनैः ।
रहोजुषा किं हरिणा शम्भुना वा वनौकसा ।
किमिन्द्रेणाल्पवीर्येण ब्रह्मणा वा तपस्यता ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

किम्—किस बात का भय; क्षेम—ऐसे स्थान में जहाँ लड़ने की क्षमता का अभाव है; शूरैः—देवताओं द्वारा; विबुधैः—ऐसे शक्तिशाली पुरुषों द्वारा; असंयुग-विकत्थनैः—वृथा डींग मारने से, लड़ने से दूर रहने; रहः-जुषा—हृदय के कोने में रहने वाला; किम् हरिणा—भगवान् विष्णु से क्या डरना; शम्भुना—शिव से; वा—अथवा; वन-ओकसा—बनवासी; किम् इन्द्रेण—इन्द्र से क्या भय; अल्प-वीर्येण—वह तनिक भी शक्तिशाली नहीं है (कि आपसे लड़ सके); ब्रह्मणा—और ब्रह्मा से डरने की तो कोई बात ही नहीं; वा—अथवा; तपस्यता—जो सदैव ध्यान में मग्न रहता हो।

देवतागण युद्धभूमि से दूर रहकर व्यर्थ ही डींग मारते हैं। वे वहीं अपने पराक्रम का प्रदर्शन कर सकते हैं जहाँ युद्ध नहीं होता। अतएव ऐसे देवताओं से हमें किसी प्रकार का भय नहीं है। जहाँ तक भगवान् विष्णु की बात है, वे तो केवल योगियों के हृदय में एकान्तवास करते हैं और भगवान् शिव, वे तो जंगल चले गये हैं। ब्रह्मा सदैव तपस्या तथा ध्यान में ही लीन रहते हैं। इन्द्र इत्यादि अन्य सारे देवता पराक्रमविहीन हैं। अतः आपको कोई भय नहीं है।

तात्पर्य : कंस के मंत्रियों ने उससे कहा कि सारे बड़े-बड़े देवता उसके भय से भाग गए थे। एक

जंगल को गया, एक हृदय के भीतर चला गया है और एक तपस्या में लगा है। उन्होंने कहा, ''अतएव आप देवताओं से किसी प्रकार भयभीत न हों, बस लड़ने के लिए तैयार हो जाँए।''

तथापि देवाः सापत्न्यान्नोपेक्ष्या इति मन्महे ।
ततस्तन्मूलखनने नियुङ्क्ष्वास्माननुव्रतान् ॥ ३७॥

शब्दार्थ

तथा अपि—फिर भी; देवाः—देवतागण; सापत्न्यात्—शत्रुता के कारण; न उपेक्ष्याः—उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए; इति मन्महे—यह हमारा मत है; ततः—इसलिए; तत्-मूल-खनने—उन्हें समूल नष्ट करने के लिए; नियुङ्क्ष्व—नियुक्त कीजिए; अस्मान्—हमें; अनुव्रतान्—आपका अनुगमन करने के लिए तत्पर।

फिर भी हमारा मत है कि उनकी शत्रुता के कारण देवताओं के साथ लापरवाही नहीं की जानी चाहिए। अतएव उनको समूल नष्ट करने के लिए आप हमें उनके साथ युद्ध में लगाइए क्योंकि हम आपका अनुगमन करने के लिए तैयार हैं।

तात्पर्य : नैतिक उपदेशों के अनुसार अग्नि को पूरी तरह बुझाने में, रोग का पूरा-पूरा निवारण करने तथा ऋण पूरा अदा करने में किसी तरह की लापरवाही नहीं बरतनी चाहिए। अन्यथा ये बढ़ते जाएँगे और बाद में इनका शमन कर पाना कठिन होगा। इसलिए मंत्रियों ने कंस को सलाह दी कि वह अपने शत्रुओं का समूल विनाश कर दे।

यथामयोऽङ्गे समुपेक्षितो नृभि-
र्न शक्यते रूढपदश्चिकित्सितुम् ।
यथेन्द्रियग्राम उपेक्षितस्तथा
रिपुर्महान्बद्धबलो न चाल्यते ॥ ३८॥

शब्दार्थ

यथा—जिस तरह; आमयः—रोग; अङ्गे—शरीर में; समुपेक्षितः—उपेक्षा किए जाने से; नृभिः—मनुष्यों द्वारा; न—नहीं; शक्यते—समर्थ होता है; रूढ-पदः—गम्भीर होने पर; चिकित्सितुम्—उपचार के योग्य; यथा—जिस तरह; इन्द्रिय-ग्रामः—इन्द्रियाँ; उपेक्षितः—प्रारम्भ में वश में न रखने से; तथा—उसी तरह; रिपुः महान्—बड़ा शत्रु; बद्ध-बलः—बलवान हुआ तो; न—नहीं; चाल्यते—वश में किया जा सकता है।

जिस तरह शुरू में रोग की उपेक्षा करने से वह गम्भीर तथा दुःसाध्य हो जाता है या जिस तरह प्रारम्भ में नियंत्रित न करने से, बाद में इन्द्रियाँ वश में नहीं रहतीं उसी तरह यदि आरम्भ में शत्रु की उपेक्षा की जाती है, तो बाद में वह दर्जेय हो जाता है।

मूलं हि विष्णुर्देवानां यत्र धर्मः सनातनः ।

तस्य च ब्रह्मगोविप्रास्तपो यज्ञाः सदक्षिणाः ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

मूलम्—आधार; हि—निस्सन्देह; विष्णुः—भगवान् विष्णु हैं; देवानाम्—देवताओं के; यत्र—जहाँ; धर्मः—धर्म; सनातनः—शाश्वत, परम्परागत; तस्य—उस (आधार) का; च—भी; ब्रह्म—ब्रह्म सभ्यता; गो—गो-रक्षा; विप्राः—ब्राह्मणगण; तपः—तपस्या; यज्ञाः—यज्ञ; स-दक्षिणाः—समुचित पारिश्रमिक (दक्षिणा) समेत।

समस्त देवताओं के आधार भगवान् विष्णु हैं जिनका वास वहीं होता है जहाँ धर्म, परम्परागत संस्कृति, वेद, गौवें, ब्राह्मण, तपस्या तथा दक्षिणायुत यज्ञ होते हैं।

तात्पर्य : यहाँ पर *सनातन* धर्म का वर्णन किया गया है, जिसमें ब्रह्मी संस्कृति, ब्राह्मण, यज्ञ तथा धर्म निहित होते हैं। ये मिलकर विष्णु साम्राज्य की स्थापना करते हैं। विष्णु साम्राज्य के बिना कोई भी सुखी नहीं हो सकता। *न ते विदुः स्वार्थगतिं हि विष्णुम्*—इस आसुरी सभ्यता में दुर्भाग्यवश लोग यह नहीं समझ पाते कि मानव समाज का स्वार्थ विष्णु में निहित है। दुराशया ये बहिरर्थमानिनः—अतः वे निराशापूर्ण आशा में लगे हैं। लोग ईशभावनामृत या कृष्णभावनामृत के बिना ही सुखी रहना चाहते हैं क्योंकि उनका मार्गदर्शन ऐसे अज्ञानी नेता करते हैं, जो मानव समाज में अव्यवस्था उत्पन्न करते हैं। कंस के असुर अनुयायी मानव सुख की परम्परागत स्थिति को भंग करके देवताओं और भक्तों को हराना चाह रहे थे। जब तक देवताओं तथा भक्तों का प्राधान्य नहीं होगा, तब तक असुरगण बढ़ेंगे और मानव समाज अस्त-व्यस्त होता रहेगा।

तस्मात्सर्वात्मना राजन्ब्राह्मणान्ब्रह्मवादिनः ।
तपस्विनो यज्ञशीलान्गाश्च हन्मो हविर्दुघाः ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

तस्मात्—इसलिए; सर्व-आत्मना—हर तरह से; राजन्—हे राजन्; ब्राह्मणान्—ब्राह्मणों को; ब्रह्म-वादिनः—विष्णु-केन्द्रित ब्रह्मी संस्कृति को बनाए रखने वालों; तपस्विनः—तपस्वी जनों; यज्ञ-शीलान्—यज्ञ में लगे रहने वालों को; गाः च—गौवों तथा गौवों की रक्षा करने वालों को; हन्मः—हम वध करेंगे; हविः-दुघाः—जिनके दूध से यज्ञ में डालने के लिए घी मिलता है।

हे राजन्, हम आपके सच्चे अनुयायी हैं, अतः वैदिक ब्राह्मणों, यज्ञ तथा तपस्या में लगे व्यक्तियों तथा उन गायों का, जो अपने दूध से यज्ञ के लिए घी प्रदान करती हैं, वध कर डालेंगे।

विप्रा गावश्च वेदाश्च तपः सत्यं दमः शमः ।
श्रद्धा दया तितिक्षा च क्रतवश्च हरेस्तनूः ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

विप्राः—ब्राह्मण; गावः च—तथा गाएँ; वेदाः च—तथा वैदिक ज्ञान; तपः—तपस्या; सत्यम्—सत्यता; दमः—इन्द्रिय संयम; शमः—मन का संयम; श्रद्धा—श्रद्धा; दया—दया; तितिक्षा—सहिष्णुता; च—भी; क्रतवः च—तथा यज्ञ भी; हरेः तनूः—भगवान् विष्णु के शरीर के विभिन्न अंग हैं।.

ब्राह्मण, गौवें, वैदिक ज्ञान, तपस्या, सत्य, मन तथा इन्द्रियों का संयम, श्रद्धा, दया, सहिष्णुता तथा यज्ञ—ये भगवान् विष्णु के शरीर के विविध अंग हैं और दैवी सभ्यता के ये ही साज-सामान हैं।

तात्पर्य : भगवान् को नमस्कार करते समय हम कहते हैं—

नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च।

जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः॥

जब कृष्ण सामाजिक व्यवस्था में वास्तविक पूर्णता स्थापित करने आते हैं, तो वे गौवों तथा ब्राह्मणों को अपना संरक्षण प्रदान करते हैं (*गोब्राह्मणहिताय च*)। यह उनकी पहली अभिरुचि रहती है क्योंकि ब्राह्मणों तथा गौवों की सुरक्षा के बिना मानव सभ्यता असम्भव है और सुखी शान्त जीवन का प्रश्न ही नहीं उठता। इसीलिए असुरगण सदा ब्राह्मणों तथा गौवों का वध करने की ताक में रहते हैं। विशेष रूप से इस कलियुग में गौवें विश्वभर में मारी जा रही हैं और ज्योंही ब्रह्मी सभ्यता को स्थापित करने के लिए आन्दोलन होता है त्योंही आम जनता से विद्रोह करा दिया जाता है। वे कृष्णभावनामृत आन्दोलन को एक तरह की "दिमागी धुलाई" मानते हैं। ऐसे ईर्ष्यालु लोग ईश्वरविहीन सभ्यता में किस तरह सुखी हो सकते हैं? भगवान् ऐसे लोगों को जन्म-जन्मांतर अंधकार में रखकर दण्ड देते हैं और उन्हें निम्न से निम्नतम नरक के जीवन में धकेल देते हैं। कृष्णभावनामृत आन्दोलन ने ब्रह्मी सभ्यता का शुभारम्भ किया है, किन्तु विशेष रूप से जब पाश्चात्य देशों में इसका सूत्रपात हो रहा है, तो असुरगण अनेक प्रकार से इसे रोकने के प्रयास कर रहे हैं। इतने पर भी मानव समाज के लाभ के लिए हमें इस आन्दोलन को सहिष्णुतापूर्वक आगे बढ़ाना चाहिए।

स हि सर्वसुराध्यक्षो ह्यसुरद्विड्गुहाशयः ।
तन्मूला देवताः सर्वाः सेश्वराः सचतुर्मुखाः ।
अयं वै तद्वधोपायो यदृषीणां विहिंसनम् ॥ ४२॥

शब्दार्थ

सः—वह (विष्णु); हि—निस्सन्देह; सर्व-सुर-अध्यक्षः—सारे देवताओं का अगुवा; हि—निस्सन्देह; असुर-द्विट्—असुरों का शत्रु; गुहा-शयः—हर एक के हृदय के भीतर का परमात्मा; तत्-मूलाः—उसके चरणकमलों में शरण लेकर; देवताः—सारे

देवता जीवित हैं; सर्वा:—वे सभी; स-ईश्वराः—शिव समेत; स-चतुः-मुखाः—तथा चार मुखों वाले ब्रह्मा भी; अयम्—यह है; वै—निस्सन्देह; तत्-वध-उपायः—उसके (विष्णु के) मारने का एकमात्र उपाय; यत्—जो; ऋषीणाम्—ऋषियों-मुनियों अथवा वैष्णवों का; विहिंसनम्—सभी प्रकार के दण्ड द्वारा दमन।

प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में वास करने वाले परमात्मा स्वरूप भगवान् विष्णु असुरों के परम शत्रु हैं और इसीलिए वे असुरद्विट् कहलाते हैं। वे सारे देवताओं के अगुआ हैं क्योंकि भगवान् शिव तथा भगवान् ब्रह्मा समेत सारे देवता उन्हीं के संरक्षण में रह रहे हैं। बड़े-बड़े ऋषि, साधु तथा वैष्णव भी उन्हीं पर आश्रित रहते हैं। अतः वैष्णवों का उत्पीड़न करना ही विष्णु को मारने का एकमात्र उपाय है।

तात्पर्य : विशेष रूप से देवता तथा वैष्णवजन भगवान् विष्णु के अंग हैं क्योंकि वे उनकी आज्ञा का सदैव पालन करते हैं (*ॐ तद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः*)। कंस के असुर अनुयायियों ने सोचा कि यदि वैष्णवों, साधु-पुरुषों तथा ऋषियों को सताया जाएगा तो विष्णु का मूल शरीर सहज ही विनष्ट हो जाएगा। इस तरह उन्होंने वैष्णववाद का दमन करने का निश्चय किया। असुरगण नहीं चाहते कि वैष्णववाद फैले इसलिए वे वैष्णवों को निरन्तर सताते रहने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। वैष्णवजन एकमात्र भक्ति का प्रचार करते हैं। वे कर्मियों, ज्ञानियों तथा योगियों को किसी प्रकार का प्रोत्साहन नहीं देते क्योंकि यदि कोई अपने को भवबन्धन से छुड़ाना चाहता है, तो अन्ततोगत्वा उसे वैष्णव बनना होगा। हमारा कृष्णभावनामृत आन्दोलन इसी ओर उन्मुख है इसीलिए असुरगण इसे दबाने में सदैव लगे रहते हैं।

श्रीशुक उवाच
एवं दुर्मन्त्रिभिः कंसः सह सम्मन्त्र्य दुर्मतिः ।
ब्रह्महिंसां हितं मेने कालपाशावृतोऽसुरः ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; एवम्—इस प्रकार; दुर्मन्त्रिभिः—अपने बुरे मंत्रियों के; कंसः—राजा कंस; सह—साथ; सम्मन्त्र्य—विस्तार से विचार-विमर्श करके; दुर्मतिः—बुद्धिहीन; ब्रह्म-हिंसाम्—ब्राह्मणों के उत्पीड़न को; हितम्—सर्वोत्कृष्ट उपाय के रूप में; मेने—मान लिया; काल-पाश-आवृतः—यमराज के विधि-विधानों से बँधा हुआ; असुरः—असुर होने के कारण।

शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : इस प्रकार अपने बुरे मंत्रियों की सलाह पर विचार करके यमराज के नियमों से बँधा हुआ होने तथा असुर होने से बुद्धिहीन उस कंस ने सौभाग्य प्राप्त करने के उद्देश्य से साधु-पुरुषों तथा ब्राह्मणों को सताने का निश्चय किया।

तात्पर्य : श्रील लोचनदास ठाकुर का गीत है—*आपन करम, भुञ्जाये शमन, कहये लोचनदास।* ईश्वरविहीन अभक्तगण ऋषियों तथा शास्त्रों से सदुपदेश ग्रहण न करके मनमाने ढंग से कार्य करते हैं। किन्तु वास्तव में किसी की अपनी कोई योजना नहीं होती क्योंकि सभी प्रकृति के नियमों से बँधे होने के कारण बद्ध जीवन की अपनी प्रवृत्ति के अनुसार कर्म करेंगे। अत: मनुष्य को अपना निर्णय बदलकर कृष्ण तथा कृष्ण भक्तों के निर्णय का पालन करना होगा। तभी वह यमराज के दण्ड से बच सकता है। कंस अनपढ़ न था। वसुदेव तथा देवकी के साथ उसकी बातों से ऐसा लगता है कि वह प्रकृति के नियमों के बारे में सब जानता था। किन्तु अपने बुरे मंत्रियों की संगति के कारण वह अपने कल्याण के विषय में कोई स्पष्ट निर्णय नहीं ले सका। इसीलिए *श्रीचैतन्य-चरितामृत* (मध्य २२.५४) में कहा गया है—

'साधु-संग' 'साधु-संग'—सर्व-शास्त्रे कय।

लव-मात्र साधु-संगे सर्व-सिद्धि हय॥

यदि कोई अपना असली कल्याण चाहता है, तो उसे चाहिए कि वह साधु पुरुषों तथा भक्तों की संगति करे और इस तरह अपने जीवन की भौतिक दशा को सुधारे।

सन्दिश्य साधुलोकस्य कदने कदनप्रियान् ।
कामरूपधरान्दिक्षु दानवान्गृहमाविशत् ॥ ४४॥

शब्दार्थ

सन्दिश्य—अनुमति देकर; साधु-लोकस्य—साधु पुरुषों के; कदने—सताने में; कदन-प्रियान्—अन्यों को सताने में प्रिय असुरों को; काम-रूप-धरान्—अपनी इच्छानुसार कोई भी रूप धारण करने में समर्थ; दिक्षु—सारी दिशाओं में; दानवान्—असुरों को; गृहम् आविशत्—कंस अपने महल में चला गया।

कंस के अनुयायी ये राक्षसगण अन्यों को, विशेष रूप से वैष्णवों को सताने में दक्ष थे और इच्छानुसार कोई भी रूप धर सकते थे। इन असुरों को सभी दिशाओं में जाकर साधु पुरुषों को सताने की अनुमति देकर कंस अपने महल के भीतर चला गया।

ते वै रज:प्रकृतयस्तमसा मूढचेतस: ।
सतां विद्वेषमाचेरुरारादागतमृत्यव: ॥ ४५॥

शब्दार्थ

ते—वे असुर मंत्रीगण; वै—निस्सन्देह; रजः-प्रकृतयः—रजोगुणी प्रकृति के कारण; तमसा—तमोगुण से परिपूर्ण; मूढ-चेतसः—मूर्ख व्यक्ति; सताम्—साधु पुरुषों को; विद्वेषम्—सताना, उत्पीड़न; आचेरुः—सम्पन्न किया; आरात् आगत-मृत्यवः—मृत्यु पहले से ही जो उनके निकट थी।

रजो तथा तमोगुण से पूरित तथा अपने हित या अहित को न जानते हुए उन असुरों ने, जिनकी मृत्यु उनके सिर पर नाच रही थी, साधु पुरुषों को सताना प्रारम्भ कर दिया।

तात्पर्य : जैसाकि *भगवद्गीता* (२.१३) में कहा गया है—

देहिनोऽस्मिन यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।

तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति॥

''जिस प्रकार इस शरीर में देहधारी जीवात्मा बालपन से युवावस्था तथा फिर वृद्धावस्था को प्राप्त होता है उसी तरह मृत्यु के समय आत्मा दूसरे शरीर में चला जाता है। स्वरुप सिद्ध पुरुष ऐसे परिवर्तन से मोहित नहीं होता।'' रजो तथा तमोगुण से पूर्ण गैरजिम्मेदार व्यक्ति मूर्खता से ऐसे काम करते रहते हैं, जिन्हें नहीं किया जाना चाहिए (*नूनं प्रमत्तः कुरुते विकर्म*)। किन्तु ऐसे गैरजिम्मेदार कर्मों का फल भी जानना चाहिए जैसाकि अगले श्लोक में कहा गया है।

आयुः श्रियं यशो धर्मं लोकानाशिष एव च ।
हन्ति श्रेयांसि सर्वाणि पुंसो महदतिक्रमः ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

आयुः—उम्र; श्रियम्—सौन्दर्य; यशः—यश; धर्मम्—धर्म; लोकान्—स्वर्गलोक को जाना; आशिषः—आशीर्वाद; एव—निस्सन्देह; च—भी; हन्ति—विनष्ट करता है; श्रेयांसि—वर; सर्वाणि—सारे; पुंसः—किसी व्यक्ति के; महत्-अतिक्रमः—महापुरुषों के विरुद्ध जाना।

हे राजन्, जब कोई व्यक्ति महापुरुषों को सताता है, तो उसकी दीर्घायु, सौन्दर्य, यश, धर्म, आशीर्वाद तथा उच्चलोकों को जाने के सारे वर विनष्ट हो जाते हैं।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध के अन्तर्गत ''राजा कंस के अत्याचार'' नामक चौथे अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter पाँच

नन्द महाराज तथा वसुदेव की भेंट

इस अध्याय में बतलाया गया है कि नन्द महाराज ने अपने नवजात शिशु का जन्मोत्सव बड़े ही

धूमधाम के साथ मनाया। इसके बाद वे कंस को कर देने गए तथा अपने घनिष्ठ मित्र वसुदेव से मिले।

कृष्ण-जन्म से सारे वृन्दावन में अत्यधिक उल्लास था। हर व्यक्ति खुशी से फूला नहीं समा रहा था। इसलिए व्रजराज महाराज नन्द ने इस शिशु का जन्मोत्सव मनाना चाहा और उन्होंने इसे मनाया भी। इस महोत्सव में उन्होंने उपस्थित लोगों को मुँहमाँगी भेंटें दीं। उत्सव के बाद नन्द महाराज ग्वालों के ऊपर गोकुल की रक्षा का भार सौंपकर कंस को कर चुकाने के लिए स्वयं मथुरा गए। मथुरा में नन्द महाराज की भेंट वसुदेव से हुई। वे दोनों भाई-भाई थे। वसुदेव ने नन्द महाराज के भाग्य की सराहना की क्योंकि उन्हें ज्ञात था कि कृष्ण ने नन्द महाराज को अपना पिता मान लिया है। जब वसुदेव ने शिशु की कुशलता के विषय में नन्द महाराज से पूछा तो उन्होंने वृन्दावन के विषय में सारी बातें बतलाईं। वसुदेव यह सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए यद्यपि कंस द्वारा देवकी के अनेक शिशुओं के मारे जाने का शोक भी उन्होंने व्यक्त किया। नन्द महाराज ने वसुदेव को यह कहकर ढाढस बँधाया कि हर कार्य प्रारब्ध के अनुसार होता है, अत: जो इसे जानता है, वह दुखी नहीं होता। वसुदेव को गोकुल में अनेक उत्पातों की आशंका थी इसलिए उन्होंने नन्द महाराज को सलाह दी कि वे मथुरा में अधिक न रुकें अपितु जितनी जल्दी हो सके वृन्दावन लौट जाँए। इस प्रकार नन्द महाराज ने वसुदेव से विदा ली और ग्वालों समेत अपनी-अपनी बैल-गाड़ियों में चढ़कर वृन्दावन लौट गए।

श्रीशुक उवाच
नन्दस्त्वात्मज उत्पन्ने जाताह्लादो महामनाः ।
आहूय विप्रान्वेदज्ञान्स्नातः शुचिरलङ्कृतः ॥ १ ॥
वाचयित्वा स्वस्त्ययनं जातकर्मात्मजस्य वै ।
कारयामास विधिवत्पितृदेवार्चनं तथा ॥ २ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; नन्दः—महाराज नन्द; तु—निस्सन्देह; आत्मजे—अपने पुत्र के; उत्पन्ने—उत्पन्न होने में; जात—अभिभूत हुए; आह्लादः—अत्यधिक हर्ष; महा-मनाः—विशाल मन वाले; आहूय—बुलाया; विप्रान्—ब्राह्मणों को; वेद-ज्ञान्—वेदों के ज्ञाता; स्नातः—स्नान करके; शुचिः—अपने को शुद्ध करके; अलङ्कृतः—सुन्दर आभूषणों तथा नए वस्त्रों से सज्जित; वाचयित्वा—पाठ करके; स्वस्ति-अयनम्—(ब्राह्मणों द्वारा) वैदिक मंत्र; जात-कर्म—जन्मोत्सव; आत्मजस्य—अपने लड़के का; वै—निस्सन्देह; कारयाम् आस—सम्पन्न कराया; विधि-वत्—वैदिक विधान के अनुसार; पितृ-देव-अर्चनम्—पूर्वजों तथा देवताओं की पूजा; तथा—साथ ही साथ।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : नन्द महाराज स्वभाव से अत्यन्त उदार थे अतः जब भगवान् श्रीकृष्ण ने उनके पुत्र रूप में जन्म लिया तो वे हर्ष के मारे फूले नहीं समाए। अतएव स्नान द्वारा

अपने को शुद्ध करके तथा समुचित ढंग से वस्त्र धारण करके उन्होंने वैदिक मंत्रों का पाठ करने वाले ब्राह्मणों को बुला भेजा। जब ये योग्य ब्राह्मण शुभ वैदिक स्तोत्रों का पाठ कर चुके तो नन्द ने अपने नवजात शिशु के जात-कर्म को विधिवत् सम्पन्न किए जाने की व्यवस्था की। उन्होंने देवताओं तथा पूर्वजों की पूजा का भी प्रबन्ध किया।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने *नन्दस्तु* शब्दों के महत्त्व की व्याख्या की है। उनका कहना है कि *तु* शब्द वाक्य की पूर्ति के लिए नहीं आया क्योंकि यह वाक्य *तु* शब्द के बिना भी पूर्ण है। अत: *तु* का प्रयोग किसी भिन्न प्रयोजन से किया गया है। यद्यपि कृष्ण देवकी पुत्र के रूप में उत्पन्न हुए, किन्तु वसुदेव तथा देवकी *जातकर्म* का आनन्द नहीं उठा पाए थे। उल्टे, इसका आनन्द लिया नन्द महाराज ने जैसाकि यहाँ बतलाया गया है (*नन्दस्तु आत्मज उत्पन्ने जाताह्लादो महामना:*)। जब नन्द महाराज वसुदेव से मिले तो वसुदेव ने यह प्रकट नहीं किया कि ''तुम्हारा पुत्र कृष्ण तो वास्तव में मेरा पुत्र है। तुम तो आध्यात्मिक रूप से उसके पिता हो।'' कंस के भय के कारण वसुदेव कृष्ण का जातकर्म नहीं मना सके। किन्तु नन्द महाराज ने इस अवसर का पूरा-पूरा लाभ उठाया।

जातकर्म नवजात शिशु के नाल काटते समय का उत्सव है। किन्तु कृष्ण को तो नन्द महाराज के घर ले जाया गया था अतएव इसके लिए कहाँ अवसर था! इस प्रसंग में विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर अनेक शास्त्रों के प्रमाणों से यह सिद्ध करना चाहते हैं कि कृष्ण ने यशोदा की कोख से योगमाया के पहले ही जन्म ले लिया था इसीलिए योगमाया उनकी छोटी बहन कही जाती हैं। भले ही नाल काटने के बारे में कुछ शंकाएँ हों और भले ही कृष्ण का नाल न काटा गया हो किन्तु जब भगवान् प्रकट होते हैं, तो ऐसी घटनाएँ यथार्थ मानी जाती हैं। कृष्ण ब्रह्मा के नथुनों से वराहदेव के रूप में प्रकट हुए तो ब्रह्मा को वराहदेव का पिता कहा जाता है। *कारयाम् आस विधिवत्* शब्द भी महत्त्वपूर्ण हैं। पुत्र-जन्म के हर्षातिरेक के कारण नन्द महाराज ने देखा ही नहीं कि पुत्र का नाल कटा अथवा नहीं। इस तरह उन्होंने बड़ी ही धूमधाम से उत्सव मनाया। कुछ विद्वानों के अनुसार कृष्ण वास्तव में यशोदा के पुत्र रूप में उत्पन्न हुए थे। जो भी हो, हम इस पचड़े में न पड़कर यह मान सकते हैं कि नन्द महाराज द्वारा कृष्ण के जन्म पर किया गया यह उत्सव उचित था। इसीलिए यह उत्सव हर जगह नन्दोत्सव कहलाता है।

धेनूनां नियुते प्रादाद्विप्रेभ्यः समलङ्कृते ।
तिलाद्रीन्सप्त रत्नौघशातकौम्भाम्बरावृतान् ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

धेनूनाम्—दुधारू गायों का; नियुते—बीस लाख; प्रादात्—दान में दिया; विप्रेभ्यः—ब्राह्मणों को; समलङ्कृते—पूरी तरह सज्जित; तिल-अद्रीन्—तिल (अन्न) के पहाड़; सप्त—सात; रत्न-ओघ-शात-कौम्भ-अम्बर-आवृतान्—रत्नों तथा सुनहरे किनारे वाले वस्त्रों से ढके।

नन्द महाराज ने ब्राह्मणों को वस्त्रों तथा रत्नों से अलंकृत बीस लाख गौवें दान में दीं। उन्होंने रत्नों तथा सुनहरे गोटे वाले वस्त्रों से ढके तिल से बनाये गये सात पहाड़ भी दान में दिए।

कालेन स्नानशौचाभ्यां संस्कारैस्तपसेज्यया ।
शुध्यन्ति दानैः सन्तुष्ट्या द्रव्याण्यात्मात्मविद्यया ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

कालेन—समय आने पर (स्थल तथा अन्य वस्तुएँ पवित्र हो जाने पर); स्नान-शौचाभ्याम्—स्नान तथा सफाई के द्वारा (शरीर तथा मलिन वस्तुएँ शुद्ध होती हैं); संस्कारैः—संस्कार द्वारा (जन्म शुद्ध होता है); तपसा—तपस्या द्वारा (इन्द्रियाँ शुद्ध होती हैं); इज्यया—पूजा द्वारा (ब्राह्मण शुद्ध बनते हैं); शुध्यन्ति—शुद्ध बनते हैं; दानैः—दान द्वारा (सम्पत्ति शुद्ध होती है); सन्तुष्ट्या—सन्तोष से (मन शुद्ध होता है); द्रव्याणि—सारी सम्पत्ति यथा गौवें, भूमि तथा सोना; आत्मा—आत्मा (शुद्ध बनता है); आत्म-विद्यया—आत्म-साक्षात्कार द्वारा।

हे राजन्, समय बीतने के साथ ही, धरती तथा अन्य सम्पत्ति शुद्ध हो जाती हैं; स्नान से शरीर शुद्ध होता है और सफाई करने से मलिन वस्तुएँ शुद्ध होती हैं। संस्कार अनुष्ठानों से जन्म शुद्ध होता है, तपस्या से इन्द्रियाँ शुद्ध होती हैं तथा पूजा से और ब्राह्मणों को दान देने से भौतिक सम्पत्ति शुद्ध होती है। सन्तोष से मन शुद्ध होता है और आत्मज्ञान अर्थात् कृष्णभावनामृत से आत्मा शुद्ध होता है।

तात्पर्य : वैदिक सभ्यता के अनुसार वस्तुओं को किस तरह शुद्ध किया जाए, इसके विषय में ही ये आदेश हैं। शुद्ध किए बिना प्रयोग की जाने वाली हर वस्तु हमें कल्मषग्रस्त कर देगी। भारत में पाँच हजार वर्ष पूर्व, गाँवों तक में, यथा नन्द महाराज के गाँव में भी लोग जानते थे कि वस्तुओं को किस तरह शुद्ध किया जाता है, जिसके कारण वे कल्मषरहित जीवन बिताते थे।

सौमङ्गल्यगिरो विप्राः सूतमागधवन्दिनः ।
गायकाश्च जगुर्नेदुर्भेर्यो दुन्दुभयो मुहुः ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

सौमङ्गल्य-गिरः—जिनकी वाणी से निकले मंत्र तथा स्तोत्र वातावरण को शुद्ध करते थे; विप्राः—ब्राह्मणगण; सूत—इतिहास गाने में पटु लोग; मागध—राजपरिवारों के इतिहास गाने में पटु लोग; वन्दिनः—सामान्य वाचक; गायकाः—गवैये; च—भी; जगुः—उच्चारण किया; नेदुः—बजाया; भेर्यः—एक प्रकार का वाद्य यंत्र; दुन्दुभयः—एक प्रकार का बाजा; मुहुः—निरन्तर।

ब्राह्मणों ने मंगलकारी वैदिक स्तोत्र सुनाए जिनकी ध्वनि से वातावरण शुद्ध हो गया। प्राचीन इतिहासों या पुराणों को सुनाने वाले, राजपरिवारों के इतिहास सुनाने वाले तथा सामान्य वाचकों ने गायन किया जबकि गवैयों ने भेरी, दुन्दुभी आदि अनेक प्रकार के वाद्य यंत्रों की संगत में गाया।

व्रजः सम्मृष्टसंसिक्तद्वाराजिरगृहान्तरः ।
चित्रध्वजपताकास्रक्चैलपल्लवतोरणैः ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

व्रजः—नन्द महाराज के अधिकार वाला भू-क्षेत्र; सम्मृष्ट—अत्यन्त स्वच्छ की गई; संसिक्त—अच्छी तरह धोई गई; द्वार—दरवाजे; अजिर—आँगन; गृह-अन्तरः—घर के भीतर की सारी वस्तुएँ; चित्र—रंग-बिरंगी; ध्वज—झंडियाँ; पताका—झंडे; स्रक्—फूलों के हार; चैल—कपड़े के; पल्लव—आम की पत्तियों के; तोरणैः—विभिन्न स्थानों पर बनाए गए द्वारों के द्वारा (अलंकृत)।

नन्द महाराज का निवास व्रजपुर रंग-बिरंगी झंडियों तथा झंडों से पूरी तरह सजाया गया था और विभिन्न स्थानों पर नाना प्रकार के फूलों की मालाओं, वस्त्रों तथा आम की पत्तियों से तोरण बनाए गए थे। आँगन, सड़कों के पास के दरवाजे तथा घरों के कमरों के भीतर की सारी वस्तुएँ अच्छी तरह से झाड़ बुहार कर पानी से धोई गई थीं।

गावो वृषा वत्सतरा हरिद्रातैलरूषिताः ।
विचित्रधातुबर्हस्रग्वस्त्रकाञ्चनमालिनः ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

गावः—गौवें; वृषाः—बैल; वत्सतराः—बछड़े; हरिद्रा—हल्दी; तैल—तेल; रूषिताः—लेप किए गए; विचित्र—तरह-तरह के; धातु—रंगीन खनिज; बर्ह-स्रक्—मोरपंख के हार; वस्त्र—कपड़े; काञ्चन—सुनहरे गहने; मालिनः—मालाओं से सजाए हुए।

गौवों, बैलों तथा बछड़ों के सारे शरीर में हल्दी तथा तेल के साथ नाना प्रकार के खनिजों का लेप किया गया था। उनके मस्तकों को मोर पंखों से सजाया गया था, उन्हें मालाएँ पहनाई गई थीं और ऊपर से वस्त्र तथा सुनहरे गहनों से आच्छादित किया गया था।

तात्पर्य : भगवान् के *भगवद्गीता* (१८.४४) में आदेश दिया है—*कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्मस्वभावजम्*—खेती करना, गो-रक्षा तथा व्यापार वैश्यों के गुण हैं। नन्द महाराज *वैश्य* जाति के—खेतिहर—थे। किस तरह गायों की रक्षा करनी चाहिए और यह वैश्य जाति कितनी सम्पन्न थी

इसी का वर्णन इन श्लोकों में हुआ है। हम कल्पना भी नहीं कर सकते कि गौवें, बैल तथा बछड़ों की इतने सुन्दर ढंग से देखभाल की जाती होगी और उन्हें वस्त्रों तथा बहुमूल्य सुनहरी गहनों से इस तरह सजाया जाता होगा। वे लोग कितने सुखी थे। *श्रीमद्भागवत* में अन्यत्र वर्णन आया है कि महाराज युधिष्ठिर के काल में गौवें इतनी सुखी थीं कि उनके दूध से गोचर भूमि सिक्त हो जाती थी। यह है भारतीय सभ्यता। फिर भी उसी भारतवर्ष में न जाने कितने लोग वैदिक जीवन-शैली छोड़ने तथा *भगवद्गीता* की शिक्षाएँ न समझने के कारण कष्ट भोग रहे हैं।

महार्हवस्त्राभरणकञ्चुकोष्णीषभूषिताः ।
गोपाः समाययू राजन्नानोपायनपाणयः ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

महा-अर्ह—अत्यन्त मूल्यवान; वस्त्र-आभरण—कपड़ों तथा गहनों से; कञ्चुक—वृन्दावन में पहना जाने वाला विशेष वस्त्र, अँगरखा; उष्णीष—पगड़ी से; भूषिताः—अच्छी तरह सजे; गोपाः—सारे ग्वाले; समाययुः—वहाँ आए; राजन्—हे राजन् (महाराज परीक्षित); नाना—अनेक प्रकार की; उपायन—भेंटें; पाणयः—हाथ में लिए हुए।

हे राजा परीक्षित, ग्वाले अत्यन्त मूल्यवान गहने तथा कंचुक और पगड़ी जैसे वस्त्रों से खूब सजे-धजे थे। इस तरह से सजधज कर तथा अपने हाथों में तरह-तरह की भेंटें लेकर वे नन्द महाराज के घर आए।

तात्पर्य : जब हम देहात के खेतिहर की पुरानी दशा पर विचार करते हैं, तो पता चलता है कि मात्र कृषि-उपज तथा गौवों की सुरक्षा के बल पर वह कितना समृद्ध था। किन्तु वर्तमान समय में कृषि की उपेक्षा की जा रही है और गो-रक्षा का परित्याग हो चुका है, जिससे खेतिहर की स्थिति दयनीय है और वह फटे-पुराने वस्त्र पहने रहता है। प्राचीन भारत और वर्तमान-कालीन भारत में यही अन्तर है। *उग्रकर्म* के अन्तर्गत उग्र कार्यकलापों द्वारा हम मानव सभ्यता के सुअवसर को खो रहे हैं।

गोप्यश्चाकर्ण्य मुदिता यशोदायाः सुतोद्भवम् ।
आत्मानं भूषयां चक्रुर्वस्त्राकल्पाञ्जनादिभिः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

गोप्यः—ग्वालों की पत्नियाँ, गोपियाँ; च—भी; आकर्ण्य—सुनकर; मुदिताः—अत्यंत्र प्रसन्न हुए; यशोदायाः—यशोदा माता के; सुत-उद्भवम्—पुत्र जन्म को; आत्मानम्—स्वयं; भूषयाम् चक्रुः—उत्सव में जाने के लिए अच्छी तरह से सज गईं; वस्त्र-आकल्प-अञ्जन-आदिभिः—उपयुक्त वस्त्रों, गहनों, काजल इत्यादि से।

गोपियाँ यह सुनकर अत्यधिक प्रसन्न थीं कि माता यशोदा ने पुत्र को जन्म दिया है, अतः वे

उपयुक्त वस्त्रों, गहनों, काजल आदि से अपने को सजाने लगीं।

नवकुङ्कुमकिञ्जल्कमुखपङ्कजभूतयः ।
बलिभिस्त्वरितं जग्मुः पृथुश्रोण्यश्चलत्कुचाः ॥ ॥

शब्दार्थ

नव-कुङ्कुम-किञ्जल्क—केसर तथा नव-विकसित कुंकुम फूल से; मुख-पङ्कज-भूतयः—अपने कमल जैसे मुखों में असाधारण सौन्दर्य प्रकट करते हुए; बलिभिः—अपने हाथों में भेंटें लिए हुए; त्वरितम्—जल्दी से; जग्मुः—(माता यशोदा के घर) गईं; पृथु-श्रोण्यः—स्त्रीयोचित सौन्दर्य के अनुरूप भारी नितम्बों वाली; चलत्-कुचाः—हिल रहे बड़े-बड़े स्तन।

अपने कमल जैसे असाधारण सुन्दर मुखों को केसर तथा नव-विकसित कुंकुम से अलंकृत करके गोपियाँ अपने हाथों में भेंटें लेकर माता यशोदा के घर के लिए तेजी से चल पड़ीं। प्राकृतिक सौन्दर्य के कारण उनके नितम्ब बड़े-बड़े थे तथा तेजी से चलने के कारण उनके बड़े-बड़े स्तन हिल रहे थे।

तात्पर्य : ग्वाले तथा ग्वालिनें देहातों में प्राकृतिक जीवन बिताते थे और स्त्रियों में सहज स्त्रियोचित सौन्दर्य विकसित होता था जिससे उनके नितम्ब और स्तन बड़े-बड़े होते थे। चूँकि आधुनिक सभ्यता में स्त्रियाँ प्राकृतिक जीवन नहीं बितातीं इसलिए उनके नितम्ब तथा स्तन प्राकृतिक ढंग से परिपुष्ट नहीं होते। बनावटी जीवन बिताने से स्त्रियों ने अपना प्राकृतिक सौन्दर्य खो दिया है भले ही वे अपने को स्वतंत्र तथा भौतिक सभ्यता में पुर:सर क्यों न मानती हों। ग्रामीण स्त्रियों का यह विवरण प्राकृतिक जीवन और गर्हित समाज के कृत्रिम जीवन के अन्तर का एक स्पष्ट उदाहरण है—विशेष रूप से पाश्चात्य देशों में जहाँ नग्न सौन्दर्य को क्लबों तथा दुकानों में तथा आम विज्ञापन के लिए सहज ही खरीदा जा सकता है। *बलिभिः* शब्द बतलाता है कि स्त्रियाँ स्वर्णमुद्राएँ, रत्नजटित मालाएँ, सुन्दर वस्त्र, दूर्वा, चन्दन लेप, पुष्प मालाएँ तथा स्वर्ण की थालों में विविध भेंटें लेकर गई थीं। ऐसी भेंटें *बलि* कहलाती हैं। *त्वरितं जग्मुः* शब्द सूचित करते हैं कि ग्रामीण स्त्रियाँ कितनी जल्दी समझ गईं कि माता यशोदा ने कृष्ण नामक अद्‌भुत बालक को जन्म दिया और वे कितनी प्रसन्न थीं!

गोप्यः सुमृष्टमणिकुण्डलनिष्ककण्ठ्य-
श्चित्राम्बराः पथि शिखाच्युतमाल्यवर्षाः ।
नन्दालयं सवलया व्रजतीर्विरेजु-
र्व्यालोलकुण्डलपयोधरहारशोभाः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

गोप्यः—गोपियाँ; सु-मृष्ट—अत्यन्त चमकीले; मणि—रत्नों से बने; कुण्डल—कान की बालियाँ पहने; निष्क-कण्ठ्यः—गले में पहना गया हार; चित्र-अम्बराः—रंगीन किनारे वाली पोशाकें पहने; पथि—यशोदा माई के घर के रास्ते में; शिखा-च्युत—उनके बालों से गिरे हुए; माल्य-वर्षाः—फूलों की मालाओं की वर्षा; नन्द-आलयम्—महाराज नन्द के घर को; स-वलयाः—हाथों में चूड़ियाँ पहने; व्रजतीः—जाती हुई; विरेजुः—अत्यधिक सुन्दर लग रही थीं; व्यालोल—हिलते; कुण्डल—कान की बालियों से युक्त; पयोधर—स्तन वाली; हार—फूलों के हारों से युक्त; शोभाः—अत्यन्त सुन्दर लगने वाली।.

गोपियों के कानों में चमचमाते रत्नजटित बालियाँ थी और उनके गले में धातुओं के हाँस लटक रहे थे। उनके हाथ चूड़ियों से विभूषित थे, उनकी वेशभूषाएँ विविध रंगों की थीं और उनके बालों में लगे फूल रास्तों पर गिर रहे थे मानो वर्षा हो रही हो। इस प्रकार नन्द महाराज के घर जाते समय गोपियाँ, उनके कुंडल, उनके हिलते स्तन तथा मालाएँ अतीव सुन्दर लग रही थीं।

तात्पर्य : कृष्ण का स्वागत करने के लिए महाराज नन्द के घर जा रही गोपियों का वर्णन विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है। गोपियाँ सामान्य स्त्रियाँ नहीं थीं अपितु वे कृष्ण की ह्लादिनी शक्ति की अंश थीं, जैसाकि *ब्रह्म-संहिता* में कहा गया है—

आनन्दचिन्मयरसप्रतिभाविताभि-
स्ताभिर्य एव निजरूपतया कलाभिः।
गोलोक एव निवसत्यखिलात्मभूतो
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥

(*ब्रह्म-संहिता* ५.३७)

चिन्तामणिप्रकरसद्मसु कल्पवृक्ष-
लक्षावृतेषु सुरभीरभिपालयन्तम्।
लक्ष्मीसहस्रशतसम्भ्रम सेव्यमानं
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥

(*ब्रह्म-संहिता* ५.२९)

कृष्ण जहाँ भी जाते हैं, सदा ही गोपियों द्वारा पूजे जाते हैं। इसीलिए *श्रीमद्भागवत* में कृष्ण का इतना विशद् वर्णन हुआ है। श्री चैतन्य महाप्रभु ने भी कृष्ण का वर्णन इस प्रकार किया है—*रम्या काचिदुपासना व्रजवधूवर्गेण या कल्पिता।* सारी गोपियाँ अपनी-अपनी भेंटें लेकर कृष्ण के पास जा रही थीं क्योंकि वे भगवान् की नित्य संगिनी हैं। अब गोपियाँ वृन्दावन में कृष्ण के आविर्भाव का समाचार

पाकर इतनी अधिक प्रफुल्लित थीं।

ता आशिषः प्रयुञ्जानाश्चिरं पाहीति बालके ।
हरिद्राचूर्णतैलाद्भिः सिञ्चन्त्योऽजनमुज्जगुः ॥ १२॥

शब्दार्थ

ताः—सारी स्त्रियाँ, ग्वालों की पत्नियाँ तथा पुत्रियाँ; आशिषः—आशीर्वाद; प्रयुञ्जानाः—भेंट; चिरम्—दीर्घकाल तक; पाहि—आप व्रज के राजा बनें और इसके सारे निवासियों का पालन करें; इति—इस प्रकार; बालके—नवजात शिशु को; हरिद्रा-चूर्ण—हल्दी का चूर्ण; तैल-अद्भिः—तेल से मिश्रित; सिञ्चन्त्यः—छिड़काव करते हुए; अजनम्—अजन्मा भगवान् की; उज्जगुः—स्तुतियाँ कीं।

ग्वालों की पत्नियों तथा पुत्रियों ने नवजात शिशु, कृष्ण, को आशीर्वाद देते हुए कहा, "आप व्रज के राजा बनें और यहाँ के सारे निवासियों का दीर्घकाल तक पालन करें।" उन्होंने अजन्या भगवान् पर हल्दी, तेल तथा जल का मिश्रण छिड़का और प्रार्थनाएँ कीं।

अवाद्यन्त विचित्राणि वादित्राणि महोत्सवे ।
कृष्णे विश्वेश्वरेऽनन्ते नन्दस्य व्रजमागते ॥ १३॥

शब्दार्थ

अवाद्यन्त—वसुदेव के पुत्रोत्सव पर बजाया; विचित्राणि—विविध प्रकार के; वादित्राणि—वाद्ययंत्र; महा-उत्सवे—महान् उत्सव में; कृष्णे—जब भगवान् कृष्ण; विश्व-ईश्वरे—सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के स्वामी; अनन्ते—असीम; नन्दस्य—महाराज नन्द के; व्रजम्—चरागाह में; आगते—आए हुए।

चूँकि अब सर्वव्यापी, सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के स्वामी, अनन्त भगवान् कृष्ण महाराज नन्द की पुरी में पदार्पण कर चुके थे, अतएव इस महान् उत्सव के उपलक्ष्य में नाना प्रकार के वाद्ययंत्र बजाये गये।

तात्पर्य : *भगवद्गीता* (४.७) में भगवान् कहते हैं—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

"जब-जब धर्म की हानि होती है और अधर्म का प्राधान्य होता है तब-तब हे भरतवंशी! मैं स्वयं अवतरित होता हूँ।" ब्रह्मा के एक दिन में, जब भी कृष्ण अवतरित होते हैं, तो वे वृन्दावन में नन्द महाराज के घर में ही आते हैं। कृष्ण सारी सृष्टि के स्वामी हैं (*सर्वलोकमहेश्वरम्*)। अत: न केवल नंद महाराज के व्रज के पड़ोस में अपितु सारे ब्रह्माण्ड में तथा अन्य सभी ब्रह्माण्डों में भगवान् के शुभ आगमन पर वाद्ययंत्र बज उठे।

गोपाः परस्परं हृष्टा दधिक्षीरघृताम्बुभिः ।
आसिञ्चन्तो विलिम्पन्तो नवनीतैश्च चिक्षिपुः ॥ १४॥

शब्दार्थ

गोपाः—ग्वाले; परस्परम्—एक दूसरे से; हृष्टाः—प्रसन्न होकर; दधि—दही; क्षीर—औंटाया दूध (खीर); घृत-अम्बुभिः—घी के साथ मिले जल से; आसिञ्चन्तः—छिड़कते हुए; विलिम्पन्तः—लेप करके; नवनीतैः च—तथा मक्खन से; चिक्षिपुः—एक दूसरे पर फेंकने लगे।

ग्वालों ने प्रसन्न होकर एक दूसरे के शरीरों में दही, खीर, मक्खन तथा जल का घोल छिड़ककर इस महोत्सव का आनन्द लिया। उन्होंने एक दूसरे पर मक्खन फेंका और एक दूसरे के शरीरों में पोता भी।

तात्पर्य : इस कथन से हम समझ सकते हैं कि पाँच हजार वर्ष पूर्व दूध, दही तथा मक्खन की इतनी प्रचुरता थी कि न केवल खाने, पीने तथा भोजन बनाने के लिए पर्याप्त था अपितु उत्सव के अवसर पर बिना रोकटोक के ऐसे फेंका भी जाता था। मानव समाज में दूध, दही, मक्खन तथा ऐसे दूसरे पदार्थों की चाहे जितनी मात्रा प्रयुक्त की जाए इस पर कोई रोक न थी। हर व्यक्ति के पास दूध का प्रचुर संग्रह होता था और इससे विविध व्यंजन बनाकर लोग प्राकृतिक ढंग से स्वस्थ रहते और कृष्णभावनामृत में जीवन बिताते थे।

नन्दो महामनास्तेभ्यो वासोऽलङ्कारगोधनम् ।
सूतमागधवन्दिभ्यो येऽन्ये विद्योपजीविनः ॥ १५॥
तैस्तैः कामैरदीनात्मा यथोचितमपूजयत् ।
विष्णोराराधनार्थाय स्वपुत्रस्योदयाय च ॥ १६॥

शब्दार्थ

नन्दः—महाराज नन्द; महा-मनाः—जो ग्वालों में सर्वाधिक न्यायशील तथा माननीय पुरुष थे; तेभ्यः—ग्वालों को; वासः—वस्त्र; अलङ्कार—गहने; गो-धनम्—तथा गाएँ; सूत-मागध-वन्दिभ्यः—सूतों (प्राचीन गाथा गाने वालों), मागधों(राजवंशों की गाथा गाने वालों) तथा वन्दीजनों (सामान्य स्तुति गायकों) को; ये अन्ये—तथा अन्यों को; विद्या-उपजीविनः—विद्या के बल पर जीविका चलाने वाले; तैः तैः—उन उन; कामैः—इच्छाओं से; अदीन-आत्मा—महाराज नन्द, जो इतने वदान्य थे; यथा-उचितम्—जो उपयुक्त था; अपूजयत्—उनकी पूजा की अथवा उन्हें तुष्ट किया; विष्णोः आराधन-अर्थाय—भगवान् विष्णु को प्रसन्न करने के उद्देश्य से; स्व-पुत्रस्य—अपने पुत्र के; उदयाय—सर्वतोमुखी प्रगति के लिए; च—तथा।

उदारचेता महाराज नन्द ने भगवान् विष्णु को प्रसन्न करने के लिए ग्वालों को वस्त्र, आभूषण तथा गाएँ दान में दीं। इस तरह उन्होंने अपने पुत्र की दशा को सभी प्रकार से सँवारा। उन्होंने सूतों, मागधों, वन्दीजनों तथा अन्य वृत्ति वाले लोगों को उनकी शैक्षिक योग्यता के अनुसार दान दिया और हर एक की इच्छाओं को तुष्ट किया।

तात्पर्य : यद्यपि *दरिद्रनारायण* की चर्चा चलाना फैशन बन चुका है, किन्तु *विष्णोराराधनार्थाय* शब्दों का अर्थ यह नहीं है कि इस महान् उत्सव में नन्द महाराज ने जितने सारे लोगों को तुष्ट किया वे सब विष्णु थे। वे न तो *दरिद्र* थे न ही नारायण। प्रत्युत वे नारायण के भक्त थे और वे अपनी-अपनी शैक्षिक योग्यताओं द्वारा नारायण को तुष्ट करने वाले थे। अत: उन्हें तुष्ट करना भगवान् विष्णु को तुष्ट करने का अप्रत्यक्ष तरीका था। *मद्भक्तपूजाभ्यधिका* (*भागवत* ११.१९.२१) मेरे भक्तों की पूजा करना मेरी प्रत्यक्ष पूजा से बढ़कर है। वर्णाश्रम प्रणाली *विष्णु आराधना* के ही निमित्त है। *वर्णाश्रमाचारवता पुरुषेण पर: पुमान् विष्णुराराध्यते* (*विष्णुपुराण* ३.८.९)। जीवन का चरम लक्ष्य भगवान् विष्णु या परमेश्वर को तुष्ट करना है। किन्तु असभ्य व्यक्ति या भौतिकवादी व्यक्ति जीवन के इस लक्ष्य को नहीं जानता। *न ते विदु: स्वार्थगतिम् हि विष्णुम्* (*भागवत ७.५.३१*) मनुष्य का असली स्वार्थ भगवान् विष्णु को तुष्ट करने में है। विष्णु को तुष्ट न करके अन्य भौतिक समझौतों द्वारा सुखी बनने का प्रयास (*बहिरर्थमानिन:*) सुख का गलत तरीका है। चूँकि विष्णु हर वस्तु के मूल हैं अत: यदि विष्णु प्रसन्न हो जाते हैं, तो हर व्यक्ति प्रसन्न होता है विशेष कर मनुष्य के बाल-बच्चे तथा कुटुम्बी सभी प्रकार से सुखी रहते हैं। नन्द महाराज अपने नवजात शिशु को सुखी देखना चाहते थे। यही उनका उद्देश्य था। इसीलिए वे विष्णु को प्रसन्न करना चाहते थे और विष्णु को प्रसन्न करने के लिए उनके भक्तों को यथा विद्वान ब्राह्मणों, मागधों और सूतों को प्रसन्न करना आवश्यक था। इस तरह घुमा-फिरा कर उनका उद्देश्य अन्तत: भगवान् विष्णु को ही प्रसन्न करना था।

रोहिणी च महाभागा नन्दगोपाभिनन्दिता ।
व्यचरद्दिव्यवासस्रक्कण्ठाभरणभूषिता ॥ १७॥

शब्दार्थ

रोहिणी—बलदेव की माता, रोहिणी; च—भी; महा-भागा—परम भाग्यशालिनी (कृष्ण तथा बलराम को साथ-साथ पालने के कारण); नन्द-गोपा-अभिनन्दिता—नन्द महाराज तथा माता यशोदा द्वारा सम्मानित; व्यचरत्—इधर-उधर विचरण करने में व्यस्त; दिव्य—सुन्दर; वास—वेशभूषा; स्रक्—माला; कण्ठ-आभरण—गले के गहने से; भूषिता—विभूषित।

बलदेव की माता अति-भाग्यशालिनी रोहिणी नन्द महाराज तथा यशोदा द्वारा अभिनन्दित हुईं। उन्होंने भी शानदार वस्त्र पहन रखे थे और गले के हार, माला तथा अन्य गहनों से अपने को सजा रखा था। वे उस उत्सव में अतिथि-स्त्रियों का स्वागत करने के लिए इधर-उधर आ-जा रही थीं।

तात्पर्य : वसुदेव की दूसरी पत्नी रोहिणी को भी उनके पुत्र बलदेव समेत नन्द महाराज की देखरेख में रखा गया था। चूँकि उनके पति को कंस ने बन्दी बना लिया था अतएव वे अधिक प्रसन्न न थीं, किन्तु कृष्ण जन्माष्टमी अर्थात् नन्दोत्सव पर, जब नन्द महाराज अन्यों को वस्त्र तथा गहने दान में दे रहे थे तो उन्होंने रोहिणी को भी शानदार वस्त्र तथा गहने दिए जिससे वे उत्सव में सम्मिलित हो सकें। इस तरह वे भी अतिथि रूप में आयीं स्त्रियों का स्वागत करने में व्यस्त थीं। कृष्ण तथा बलराम का एकसाथ पालन-पोषण करने का सौभाग्य पाने के कारण उन्हें *महाभागा* कहा गया है।

तत आरभ्य नन्दस्य व्रजः सर्वसमृद्धिमान् ।
हरेर्निवासात्मगुणै रमाक्रीडमभून्नृप ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

ततः आरभ्य—उस समय से लेकर; नन्दस्य—महाराज नन्द का; व्रजः—व्रजभूमि, गौवों को पालने तथा संरक्षण प्रदान करने की भूमि; सर्व-समृद्धिमान्—सभी प्रकार के धन से ऐश्वर्यवान; हरेः निवास—भगवान् के निवास स्थान का; आत्म-गुणैः—दिव्य गुणों से; रमा-आक्रीडम्—लक्ष्मी की लीलास्थली; अभूत्—बनी; नृप—हे राजा (परीक्षित)।

हे महाराज परीक्षित, नन्द महाराज का घर पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् तथा उनके दिव्य गुणों का शाश्वत धाम है फलतः उसमें समस्त सम्पदाओं का ऐश्वर्य सदैव निहित है। फिर भी कृष्ण के आविर्भाव के दिन से ही वह घर देवी लक्ष्मी की क्रीड़ास्थली बन गया।

तात्पर्य : *ब्रह्म-संहिता* (५.२९) में कहा गया है—*लक्ष्मीसहस्रशतसम्भ्रमसेव्यमानं गोविन्दमादि पुरुषं तमहं भजामि।* कृष्ण के धाम में लाखों लक्ष्मियाँ सेवा करती हैं। कृष्ण जहाँ भी जाते हैं, लक्ष्मी जी उनके साथ-साथ रहती हैं। लक्ष्मियों में प्रमुख हैं श्रीमती राधारानी। अतः व्रजभूमि में कृष्ण के आविर्भाव से यह सूचित हुआ कि प्रमुख लक्ष्मी राधारानी भी शीघ्र ही वहाँ प्रकट होंगी। नन्द महाराज का धाम पहले ही ऐश्वर्यवान था और जब से कृष्ण प्रकट हुए थे, वह सभी प्रकार से ऐश्वर्ययुक्त बन गया है।

गोपान्गोकुलरक्षायां निरूप्य मथुरां गतः ।
नन्दः कंसस्य वार्षिक्यं करं दातुं कुरूद्वह ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

गोपान्—ग्वालों को; गोकुल-रक्षायाम्—गोकुल मण्डल की रक्षा के लिए; निरूप्य—नियुक्त करके; मथुराम्—मथुरा; गतः—गए; नन्दः—नन्द महाराज; कंसस्य—कंस का; वार्षिक्यम्—वार्षिक कर; करम्—लाभांश; दातुम्—भुगतान करने के लिए; कुरु-उद्वह—हे कुरु वंश के रक्षक, महाराज परीक्षित।

शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : हे महाराज परीक्षित, हे कुरुवंश के सर्वश्रेष्ठ रक्षक, उसके बाद नन्द महाराज ने स्थानीय ग्वालों को गोकुल की रक्षा के लिए नियुक्त किया और स्वयं राजा कंस को वार्षिक कर देने मथुरा चले गए।

तात्पर्य : चूँकि बालकों का वध किया जा रहा था और यह सबको ज्ञात हो चुका था अत: नन्द महाराज अपने नवजात शिशु के लिए अत्यधिक डरे हुए थे। इसलिए उन्होंने अपने घर तथा शिशु की रक्षा के लिए स्थानीय ग्वालों को नियुक्त कर दिया। वे तुरन्त ही मथुरा जाकर कर भुगतान करना चाह रहे थे और अपने नवजात शिशु के उपलक्ष्य में कुछ भेंट भी देना चाहते थे। वे शिशु के संरक्षण के लिए विभिन्न देवताओं तथा पितरों की पूजा कर चुके थे और सब को जी भर कर दान भी दे चुके थे। इसी तरह नन्द महाराज कंस को न केवल वार्षिक कर चुकता करना चाह रहे थे अपितु कुछ भेंट भी देना चाह रहे थे जिससे कंस भी तुष्ट हो जाए। उनकी एकमात्र चिन्ता यही थी कि अपने दिव्य शिशु कृष्ण की किस तरह रक्षा करें।

वसुदेव उपश्रुत्य भ्रातरं नन्दमागतम् ।
ज्ञात्वा दत्तकरं राज्ञे ययौ तदवमोचनम् ॥ २० ॥

शब्दार्थ

वसुदेवः—**वसुदेव**; **उपश्रुत्य**—**सुनकर**; **भ्रातरम्**—**अपने मित्र तथा भाई**; **नन्दम्**—**नन्द महाराज को**; **आगतम्**—**मथुरा आया हुआ**; **ज्ञात्वा**—**जानकर**; **दत्त-करम्**—**पहले ही कर चुकता किया जा चुका था**; **राज्ञे**—**राजा के पास**; **ययौ**—**गया**; **तत्-अवमोचनम्**—**नन्द महाराज के डेरे तक**।

जब वसुदेव ने सुना कि उनके अत्यन्त प्रिय मित्र तथा भाई नन्द महाराज मथुरा पधारे हैं और वे कंस को कर भुगतान कर चुके हैं, तो वे नन्द महाराज के डेरे में गए।

तात्पर्य : वसुदेव तथा नन्द महाराज का सम्बन्ध इतना घनिष्ठ था कि वे भाइयों की तरह रहते थे। यही नहीं, श्रीपाद मध्वाचार्य की टिप्पणियों से ज्ञात होता है कि वसुदेव तथा नन्द महाराज सौतेले भाई थे। वसुदेव के पिता शूरसेन ने एक वैश्य लड़की से शादी की जिससे नन्द महाराज उत्पन्न हुए। बाद में स्वयं नन्द महाराज ने एक वैश्य लड़की यशोदा से शादी की। इसलिए उनका परिवार वैश्य परिवार के नाम से विख्यात है। कृष्ण ने उनके पुत्र के रूप में वैश्य कर्मों को सँभाला (*कृषि गोरक्ष्य वाणिज्यम्*)। बलराम कृषि के लिए भूमि जोतने का प्रतिनिधित्व करते हैं इसीलिए वे अपने हाथ में सदैव हल लिए रहते हैं। कृष्ण गौवें चराते हैं अतएव वे अपने हाथ में बाँसुरी लिए रहते हैं। इस तरह दोनों भाई

कृषिरक्ष्य तथा *गोरक्ष्य* का प्रतिनिधित्व करते हैं।

तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय देहः प्राणमिवागतम् ।
प्रीतः प्रियतमं दोर्भ्यां सस्वजे प्रेमविह्वलः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

तम्—उसको (वसुदेव को); दृष्ट्वा—देखकर; सहसा—अचानक; उत्थाय—उठकर; देहः—वही शरीर; प्राणम्—प्राण; इव—मानो; आगतम्—लौट आया हो; प्रीतः—इतना प्रसन्न; प्रिय-तमम्—अपने प्रिय मित्र तथा भाई; दोर्भ्याम्—अपनी दोनों बाहुओं द्वारा; सस्वजे—गले मिले; प्रेम-विह्वलः—प्रेम तथा स्नेह से अभिभूत।

जब नन्द महाराज ने सुना कि वसुदेव आए हैं, तो वे प्रेम तथा स्नेह से अभिभूत हो उठे और इतने प्रसन्न हुए मानो उन्हें पुनः जीवन पा लिया हो। वसुदेव को अचानक उपस्थित देखकर वे उठ खड़े हुए और अपनी दोनों भुजाओं में लेकर गले लगा लिया।

तात्पर्य : नन्द महाराज वसुदेव से बड़े थे। इसीलिए उन्होंने वसुदेव को गले लगा लिया और वसुदेव ने उन्हें नमस्कार किया।

पूजितः सुखमासीनः पृष्ट्वानामयमादृतः ।
प्रसक्तधीः स्वात्मजयोरिदमाह विशाम्पते ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

पूजितः—इस तरह प्रेम पूर्वक स्वागत किए गए वसुदेव; सुखम् आसीनः—सुखपूर्वक बैठने के लिए स्थान दिए गए; पृष्ट्वा—पूछकर; अनामयम्—शुभ प्रश्न; आदृतः—समादरित; प्रसक्त-धीः—अत्यन्त आसक्त होने के कारण; स्व-आत्मजयोः—अपने दोनों पुत्रों (कृष्ण तथा बलराम); इदम्—इस प्रकार; आह—पूछा; विशाम्-पते—हे महाराज परीक्षित।

हे महाराज परीक्षित, नन्द महाराज द्वारा, इस प्रकार आदरपूर्वक सत्कार एवं स्वागत किए जाने पर वसुदेव बड़ी ही शान्ति से बैठ गए और अपने दोनों पुत्रों के प्रति अगाध-प्रेम के कारण उनके विषय में पूछा।

दिष्ट्या भ्रातः प्रवयस इदानीमप्रजस्य ते ।
प्रजाशाया निवृत्तस्य प्रजा यत्समपद्यत ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

दिष्ट्या—सौभाग्यवश; भ्रातः—हे भाई; प्रवयसः—अधिक आयु वाले आपका; इदानीम्—इस समय; अप्रजस्य—सन्तानहीन का; ते—आपका; प्रजा-आशायाः निवृत्तस्य—जिसे इस अवस्था में पुत्र प्राप्ति की आशा न रह गई हो, उसका; प्रजा—पुत्र; यत्—जो भी; समपद्यत—भाग्यवश प्राप्त हो गया।

मेरे भाई नन्द महाराज, इस वृद्धावस्था में भी आपका कोई पुत्र न था और आप निराश हो चुके थे। अतः अब जबकि आपको पुत्र प्राप्त हुआ है, तो यह अत्यधिक सौभाग्य का लक्षण है।

तात्पर्य : सामान्यतया वृद्धावस्था में पुत्र उत्पन्न नहीं किया जा सकता। यदि भाग्यवश कोई सन्तान उत्पन्न भी हो तो वह लड़की होती है। इस तरह वसुदेव ने अप्रत्यक्ष रूप से नन्द महाराज से पूछा कि उन्हें पुत्र उत्पन्न हुआ है या पुत्री। वसुदेव जानते थे कि यशोदा को कन्या उत्पन्न हुई है, जिसे वे चुरा लाए थे और उसके स्थान में पुत्र छोड़ आए थे। यह एक बहुत बड़ा रहस्य था और वसुदेव जानना चाहते थे कि नन्द महाराज को पहले से इसका भान है अथवा नहीं। किन्तु पूछने पर उन्हें पूर्ण विश्वास हो गया कि कृष्ण-जन्म तथा यशोदा की देखरेख में उनके छोड़े जाने का रहस्य अब भी गुप्त है। इससे किसी प्रकार का खतरा न था क्योंकि कंस को पता नहीं था कि इससे पहले क्या हो चुका है।

दिष्ट्या संसारचक्रेऽस्मिन्वर्तमानः पुनर्भवः ।
उपलब्धो भवानद्य दुर्लभं प्रियदर्शनम् ॥ २४॥

शब्दार्थ

दिष्ट्या—सौभाग्य से ही; संसार-चक्रे अस्मिन्—इस जन्म-मृत्यु वाले जगत में; वर्तमानः—विद्यमान होकर; पुनः-भवः—आपकी मेरी भेंट दूसरे जन्म की तरह है; उपलब्धः—मेरे द्वारा प्राप्त होकर; भवान्—आप; अद्य—आज; दुर्लभम्—यद्यपि इसे कभी घटित नहीं होना था; प्रिय-दर्शनम्—हे मित्र, आपको पुनः देखने के लिए।

यह मेरा सौभाग्य ही है कि मैं आपके दर्शन कर रहा हूँ। इस अवसर को प्राप्त करके मुझे ऐसा लग रहा है मानो मैंने फिर से जन्म लिया हो। इस जगत में उपस्थित रह कर भी मनुष्य के लिए अपने घनिष्ठ मित्रों तथा प्रिय सम्बन्धियों से मिल पाना अत्यन्त कठिन होता है।

तात्पर्य : चूँकि कंस ने वसुदेव को बंदी बना कर रखा था इसलिए मथुरा में होते हुए भी वे अनेक वर्षों तक नन्द महाराज का दर्शन नहीं कर सके थे। अतः जब वे फिर से मिले तो वसुदेव ने इस मिलन को दूसरा जन्म माना।

नैकत्र प्रियसंवासः सुहृदां चित्रकर्मणाम् ।
ओघेन व्यूह्यमानानां प्लवानां स्त्रोतसो यथा ॥ २५॥

शब्दार्थ

न—नहीं; एकत्र—एक स्थान में; प्रिय-संवासः—अपने प्रिय मित्रों तथा सम्बन्धियों के साथ रहना; सुहृदाम्—मित्रों का; चित्र-कर्मणाम्—हम सबका जिन्हें अपने विगत कर्म के कारण नाना प्रकार के फल भोगने होते हैं; ओघेन—बल के द्वारा; व्यूह्यमानानाम्—ले जाया जाकर; प्लवानाम्—जल में तैरने वाले तिनके तथा अन्य पदार्थों का; स्त्रोतसः—लहरों का; यथा—जिस तरह।

लकड़ी के फट्टे और छड़ियाँ एकसाथ रुकने में असमर्थ होने से नदी की लहरों के वेग से बहा लिए जाते हैं। इसी तरह हम अपने मित्रों तथा सम्बन्धियों से घनिष्ठ सम्बन्ध रखते हुए भी

अपने नाना प्रकार के विगत कर्मों तथा काल की लहरों के कारण एकसाथ रहने में असमर्थ होते हैं।

तात्पर्य : वसुदेव दुख जता रहे थे क्योंकि वे तथा नन्द महाराज कभी एक-साथ नहीं रह पाये। फिर भी वे एकसाथ कैसे रह सकते थे? वसुदेव सावधान करते हैं कि घनिष्ठ सम्बन्ध होने पर भी हम सभी काल की लहरों के द्वारा अपने विगत कर्म-फलों के अनुसार दूर बहा लिए जाते हैं।

कच्चित्पशव्यं निरुजं भूर्यम्बुतृणवीरुधम् ।
बृहद्वनं तदधुना यत्रास्से त्वं सुहृद्वृतः ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

कच्चित्—चाहे; **पशव्यम्**—गौवों की सुरक्षा; **निरुजम्**—बिना कष्ट या रोग के; **भूरि**—पर्याप्त; **अम्बु**—जल; **तृण**—घास; **वीरुधम्**—पौधे; **बृहत् वनम्**—विशाल जंगल; **तत्**—ये सारे प्रबन्ध वहाँ हैं; **अधुना**—अब; **यत्र**—जहाँ; **आस्से**—रह रहे हैं; **त्वम्**—तुम, आप; **सुहृत्-वृतः**—मित्रों से घिरे हुए।.

हे मित्र नन्द महाराज, आप जिस स्थान में रह रहे हैं क्या वहाँ का जंगल पशुओं-गौवों के लिए अनुकूल है? आशा है कि वहाँ रोग या कोई असुविधा नहीं होगी। वह स्थान जल, घास तथा अन्य पौधों से भरा-पुरा होगा।

तात्पर्य : मानव सुख के लिए पशुओं, विशेष रूप से गौवों की देखभाल करनी चाहिए। इसीलिए वसुदेव ने पूछा कि क्या जहाँ नन्द महाराज रहते हैं वहाँ पशुओं के लिए अच्छा प्रबन्ध है? समुचित मानव सुख के लिए गौवों की रक्षा का प्रबन्ध होना चाहिए। इसका अर्थ हुआ कि जंगल तथा घास और जल से पूर्ण पर्याप्त चरागाह होने चाहिए। यदि जानवर सुखी रहेंगे तो प्रचुर दूध मिलेगा जिससे मनुष्यों को तरह-तरह की वस्तुएँ प्राप्त हो सकेंगी जिनसे वे सुखपूर्वक जीवन बिता सकेंगे। *भगवद्गीता* (१८.४४) में आदेश है—*कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्।* भला पशुओं को समुचित सुविधाएँ प्रदान किए बिना मानव समाज किस तरह सुखी बन सकता है? यह बहुत बड़ा पाप है कि लोग कसाईघर चलाने के लिए पशु-पालन कर रहे हैं। इस आसुरी कृत्य से लोग वास्तविक मानव जीवन का अपना अवसर विनष्ट कर रहे हैं। चूँकि वे कृष्ण के उपदेशों को कोई महत्त्व नहीं दे रहे इसलिए उनकी तथाकथित सभ्यता की प्रगति पागलखाने के लोगों के पागलपूर्ण प्रयासों की तरह है।

**भ्रातर्मम सुतः कच्चिन्मात्रा सह भवद्व्रजे ।
तातं भवन्तं मन्वानो भवद्भ्यामुपलालितः ॥ २७॥**

शब्दार्थ

भ्रातः—मेरे भाई; मम—मेरे; सुतः—पुत्र (रोहिणी पुत्र बलदेव); कच्चित्—क्या; मात्रा सह—अपनी माता रोहिणी के साथ; भवत्-व्रजे—अपने घर में; तातम्—पिता तुल्य; भवन्तम्—आपको; मन्वानः—सोचते हुए; भवद्भ्याम्—आप तथा आपकी पत्नी यशोदा द्वारा; उपलालितः—ठीक से पाले जाने से।

आप तथा यशोदा देवी के द्वारा पाले जाने के कारण मेरा पुत्र बलदेव आप दोनों को अपना माता-पिता मानता तो है न, वह आपके घर में अपनी असली माता रोहिणी के साथ शान्तिपूर्वक रह रहा है न!

**पुंसस्त्रिवर्गो विहितः सुहृदो ह्यनुभावितः ।
न तेषु क्लिश्यमानेषु त्रिवर्गोऽर्थाय कल्पते ॥ २८ ॥**

शब्दार्थ

पुंसः—मनुष्य का; त्रि-वर्गः—जीवन के तीन उद्देश्य (धर्म, अर्थ और काम); विहितः—वैदिक संस्कारों के अनुसार आदिष्ट; सुहृदः—सम्बन्धियों तथा मित्रों के प्रति; हि—निस्सन्देह; अनुभावितः—सही मार्ग में होने पर; न—नहीं; तेषु—उनमें; क्लिश्यमानेषु—क्लेश में पड़े हुए; त्रि-वर्गः—जीवन के तीन उद्देश्य; अर्थाय—किसी प्रयोजन के लिए; कल्पते—ऐसा हो जाता है।

जब किसी के मित्र तथा सम्बन्धीगण अपने-अपने पदों पर ठीक तरह से बने रहते हैं, तो वैदिक साहित्य में उल्लिखित उनके धर्म, अर्थ तथा काम लाभप्रद होते हैं। अन्यथा, मित्रों तथा सम्बन्धियों के क्लेशग्रस्त होने पर इन तीनों से कोई सुख नहीं मिल पाता।

तात्पर्य : वसुदेव ने नन्द महाराज से खेद व्यक्त किया कि पत्नी तथा सन्तानें होने पर भी वे उनका पालन करने का अपना कर्तव्य नहीं निभा पा रहे हैं अतएव वे दुखी हैं।

**श्रीनन्द उवाच
अहो ते देवकीपुत्राः कंसेन बहवो हताः ।
एकावशिष्टावरजा कन्या सापि दिवं गता ॥ २९ ॥**

शब्दार्थ

श्री-नन्दः उवाच—नन्द महाराज ने कहा; अहो—हाय; ते—तुम्हारे; देवकी-पुत्राः—तुम्हारी पत्नी के सारे पुत्र; कंसेन—कंस द्वारा; बहवः—अनेक; हताः—मारे गए; एका—एक; अवशिष्टा—बची हुई; अवरजा—सबसे छोटी; कन्या—कन्या; सा अपि—वह भी; दिवम् गता—स्वर्गलोक को चली गई।

नन्द महाराज ने कहा : हाय! राजा कंस ने देवकी से उत्पन्न तुम्हारे अनेक बालकों को मार डाला। और तुम्हारी सन्तानों में सबसे छोटी एक कन्या स्वर्गलोक को चली गई।

तात्पर्य : जब वसुदेव ने नन्द महाराज से यह जान लिया कि कृष्ण के जन्म तथा यशोदा की कन्या

से उनके बदले जाने का रहस्य अब भी खुला नहीं है, तो वे प्रसन्न थे कि सब कुछ ठीक से चल रहा है। यह कहकर कि वसुदेव की सबसे छोटी सन्तान उनकी पुत्री स्वर्गलोक चली गई, नन्द महाराज ने यह इंगित किया कि उन्हें यह ज्ञात नहीं कि यह कन्या यशोदा से जन्मी है और वसुदेव ने उसे कृष्ण से बदल लिया है। इस तरह वसुदेव की शंकाओं का निराकरण हो गया।

नूनं ह्यदृष्टनिष्ठोऽयमदृष्टपरमो जनः ।
अदृष्टमात्मनस्तत्त्वं यो वेद न स मुह्यति ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

नूनम्—निश्चय ही; हि—निस्सन्देह; अदृष्ट—अनदेखा; निष्ठः अयम्—यही अन्त है; अदृष्ट—अदृष्ट प्रारब्ध; परमः—परम; जनः—संसार का हर जीव; अदृष्टम्—वही प्रारब्ध; आत्मनः—अपना ही; तत्त्वम्—परम सत्य; यः—जो; वेद—जानता है; न—नहीं; सः—वह; मुह्यति—मोहग्रस्त होता है।

प्रत्येक व्यक्ति निश्चय ही प्रारब्ध द्वारा नियंत्रित होता है क्योंकि उसी से मनुष्य के सकाम कर्मों के फल निर्धारित होते हैं। दूसरे शब्दों में, अदृष्ट प्रारब्ध के कारण ही मनुष्य को पुत्र या पुत्री प्राप्त होती है और जब पुत्र या पुत्री नहीं रहते, तो वह भी अदृष्ट प्रारब्ध के ही कारण होता है। प्रारब्ध ही हर एक का अनन्तिम नियंत्रक है। जो इसे जानता है, वह कभी मोहग्रस्त नहीं होता।

तात्पर्य : नन्द महाराज ने अपने छोटे भाई वसुदेव को यह कहकर ढाढस बंधाया कि अंततोगत्वा प्रारब्ध ही प्रत्येक बात के लिए उत्तरदायी है। वसुदेव को इस बात से दुखी नहीं होना चाहिए कि उसकी अनेक संतानें कंस द्वारा मार दी गई हैं अथवा इसलिए कि उनकी अन्तिम संतान जो एक कन्या थी, स्वर्गलोक को चली गई है।

श्रीवसुदेव उवाच
करो वै वार्षिको दत्तो राज्ञे दृष्टा वयं च वः ।
नेह स्थेयं बहुतिथं सन्त्युत्पाताश्च गोकुले ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

श्री-वसुदेवः उवाच—श्री वसुदेव ने उत्तर दिया; करः—कर; वै—निस्सन्देह; वार्षिकः—वार्षिक (सालाना); दत्तः—दिया हुआ; राज्ञे—राजा को; दृष्टाः—देखा गया; वयम् च—हम दोनों; वः—तुम्हारा; न—नहीं; इह—इस स्थान में; स्थेयम्—रुकना, ठहरना; बहु-तिथम्—बहुत दिनों तक; सन्ति—हो सकते हैं; उत्पाताः च—अनेक उपद्रव; गोकुले—आपके घर गोकुल में।

वसुदेव ने नन्द महाराज से कहा : मेरे भाई, अब तो आपने कंस को वार्षिक कर चुका दिया है और मुझसे भी भेंट कर ली है, अतः इस स्थान पर अब अधिक दिन मत रुको। गोकुल लौट

जाना बेहतर है क्योंकि मैं जानता हूँ कि वहाँ कुछ उपद्रव हो सकते हैं।

श्रीशुक उवाच
इति नन्दादयो गोपाः प्रोक्तास्ते शौरिणा ययुः ।
अनोभिरनडुद्युक्तैस्तमनुज्ञाप्य गोकुलम् ॥ ३२॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार; नन्द-आदयः—नन्द महाराज तथा उनके साथी; गोपाः—ग्वाले; प्रोक्ताः—सलाह दिए जाने पर; ते—वे; शौरिणा—वसुदेव द्वारा; ययुः—उस स्थान से रवाना हो गए; अनोभिः—बैलगाड़ियों द्वारा; अनडुत्-युक्तैः—बैलों से जुती; तम् अनुज्ञाप्य—वसुदेव से अनुमति लेकर; गोकुलम्—गोकुल के लिए।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : जब वसुदेव ने नन्द महाराज को इस प्रकार सलाह दी तो नन्द महाराज तथा उनके संगी ग्वालों ने वसुदेव से अनुमति ली, अपनी-अपनी गाड़ियों में बैल जोते और सवार होकर गोकुल के लिए प्रस्थान कर गये।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत ''नन्द महाराज तथा वसुदेव की भेंट'' नामक पाँचवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter छह

पूतना वध

छठे अध्याय का सारांश इस प्रकार है—

जब नन्द महाराज वसुदेव के आदेशानुसार घर लौट रहे थे तो उन्होंने मार्ग पर एक विशाल राक्षसी को पड़े देखा और बाद में उसकी मृत्यु के बारे में भी सुना।

जब व्रज के राजा नन्द महाराज गोकुल में होने वाले उत्पातों के बारे में वसुदेव के शब्दों पर विचार कर रहे थे तो वे कुछ भयभीत थे और उन्होंने श्री हरि के चरणकमलों में शरण ग्रहण की। उसी बीच कंस ने गोकुल गाँव में पूतना नाम की एक राक्षसी भेजी जो इधर-उधर घूम-घूमकर छोटे-छोटे बच्चों को मार डालती थी। निस्सन्देह जहाँ कृष्णभावनामृत नहीं है, वहाँ ऐसी राक्षसिनियों का खतरा रहता है, किन्तु जिस गोकुल में साक्षात् भगवान् हों वहाँ पूतना को अपनी ही मृत्यु के अतिरिक्त और क्या मिल सकता था!

एक दिन पूतना बाह्य आकाश से नन्द महाराज के घर गोकुल में पहुँची और अपनी योगशक्ति से

अति सुन्दर स्त्री का रूप धारण कर लिया। वह साहस करके बिना किसी की अनुमति लिए सीधे कृष्ण के शयन–कक्ष में घुस गई। कृष्णकृपा से उसे किसी ने घर में या कमरे में घुसने से मना नहीं किया क्योंकि कृष्ण की ऐसी ही इच्छा थी। बालक कृष्ण ने जो राख से ढकी अग्नि के समान थे, पूतना को देखा और सोचा कि मुझे इस सुन्दर स्त्री के रूप वाली राक्षसिनी का वध करना होगा। योगमाया तथा भगवान् के प्रभाव से मोहित होकर पूतना ने कृष्ण को अपनी गोद में ले लिया तो न तो रोहिणी ने मना किया, न ही यशोदा ने। तब पूतना कृष्ण को अपने स्तन पिलाने लगी, किन्तु उनमें विष चुपड़ा हुआ था। इसलिए बालक कृष्ण ने उसके स्तन इतनी जोर–जोर से चूसे कि उसे असह्य पीड़ा हुई जिससे वह अपना असली रूप में आकर भूमि पर गिर पड़ी। तब कृष्ण उसके स्तन पर एक छोटे शिशु की तरह खेलने लगे। उन्हें खेलता हुआ देखकर गोपियों को राहत हुई और उन्होंने बच्चे को अपनी गोद में उठा लिया। इस घटना के बाद गोपियाँ चौकन्नी रहने लगीं जिससे कोई राक्षसिनी आक्रमण न करे। तब माता यशोदा ने बालक को अपना दूध पिलाया और बिस्तर पर लिटा दिया।

तब तक नन्द तथा उनके संगी ग्वाले मथुरा से लौट आए थे और जब उन्होंने पूतना के विशाल मृत शरीर को देखा तो वे हक्के–बक्के रह गए। हर एक को आश्चर्य हो रहा था कि वसुदेव ने इस दुर्घटना का पूर्वानुमान लगा लिया था। अत: सारे लोग वसुदेव की दूरदृष्टि की प्रशंसा करने लगे। व्रजवासियों ने पूतना के शरीर के खंड–खंड कर डाले, किन्तु कृष्ण द्वारा स्तनपान किए जाने से उसके सारे पाप दूर हो चुके थे अत: जब ग्वालों ने उन टुकड़ों का अग्निदाह किया, तो उससे उठे धुएँ से चारों ओर की वायु आनंदमय सुगंध से भर गई। इस तरह यद्यपि पूतना ने कृष्ण को मार डालना चाहा था वह भगवद्धाम पहुँच गई। इस घटना से हमें यह शिक्षा मिलती है कि यदि कोई व्यक्ति कृष्ण से थोड़ा–बहुत भी लगाव रखता है, चाहे वह शत्रुभाव से क्यों न हो, तो उसे सफलता अवश्य मिलती है। भला उन भक्तों के विषय में क्या कहा जाए जो कृष्ण प्रेम में सहज ही अनुरक्त रहते हैं? जब व्रजवासियों ने पूतना–वध तथा शिशु की कुशलता का समाचार सुना तो वे अत्यधिक प्रसन्न हुए। नन्द महाराज ने बालक को अपनी गोद में उठा लिया और सन्तोष की साँस ली।

श्रीशुक उवाच

नन्दः पथि वचः शौरेर्न मृषेति विचिन्तयन् ।

हरिं जगाम शरणमुत्पातागमशङ्कितः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; नन्दः—नन्द महाराज ने; पथि—घर आते हुए, रास्ते में; वचः—शब्द; शौरेः—वसुदेव के; न—नहीं; मृषा—निरर्थक; इति—इस प्रकार; विचिन्तयन्—अपने पुत्र के अशुभ के विषय में सोच कर; हरिम्—भगवान्, नियन्ता की; जगाम—ग्रहण की; शरणम्—शरण; उत्पात—उपद्रवों की; आगम—आशा से; शङ्कितः—भयभीत हुए।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे राजन्! जब नन्द महाराज घर वापस आ रहे थे तो उन्होंने विचार किया कि वसुदेव ने जो कुछ कहा था वह असत्य या निरर्थक नहीं हो सकता। अवश्य ही गोकुल में उत्पातों के होने का कुछ खतरा रहा होगा। ज्योंही नन्द महाराज ने अपने सुन्दर पुत्र कृष्ण के लिए खतरे के विषय में सोचा त्योंही वे भयभीत हो उठे और उन्होंने परम नियन्ता के चरणकमलों में शरण ली।

तात्पर्य : जब कभी कोई संकट आ पड़ता है, तो शुद्ध भक्त सदैव भगवान् द्वारा दी जाने वाली संरक्षण तथा आश्रया के विषय में सोचता है। *भगवद्गीता* में भी (९.३३) इसी का उपदेश है—*अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्।* इस जगत में पग पग पर संकट (विपदा) है (*पदं पदं यद्विपदाम्*)। अतएव भक्त के लिए पद-पद पर भगवान् की शरण में जाने के अतिरिक्त कोई अन्य उपाय नहीं रहता।

कंसेन प्रहिता घोरा पूतना बालघातिनी ।
शिशूंश्चचार निघ्नन्ती पुरग्रामव्रजादिषु ॥ २ ॥

शब्दार्थ

कंसेन—कंस द्वारा; प्रहिता—पहले से लगाई गई; घोरा—अत्यन्त भयानक; पूतना—पूतना नामक; बाल-घातिनी—राक्षसी; शिशून्—छोटे छोटे बच्चों को; चचार—घूमती रहती थी; निघ्नन्ती—मारती हुई; पुर-ग्राम-व्रज-आदिषु—नगरों, गाँवों में इधर उधर।

जब नन्द महाराज गोकुल लौट रहे थे तो वही विकराल पूतना, जिसे कंस ने बच्चों को मारने के लिए पहले से नियुक्त कर रखा था, नगरों तथा गाँवों में घूम घूम कर अपना नृशंस कृत्य कर रही थी।

न यत्र श्रवणादीनि रक्षोघ्नानि स्वकर्मसु ।
कुर्वन्ति सात्वतां भर्तुर्यातुधान्यश्च तत्र हि ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; यत्र—जहाँ; श्रवण-आदीनि—श्रवण, कीर्तन इत्यादि भक्तियोग के कार्य; रक्षः-घ्नानि—समस्त विपदाओं तथा अशुभों को मारने की ध्वनि; स्व-कर्मसु—अपने काम में लगी; कुर्वन्ति—ऐसे कार्य किये जाते हैं; सात्वताम् भर्तुः—भक्तों के रक्षक के; यातुधान्यः—बुरे लोग, उत्पाती; च—भी; तत्र हि—हो न हो।

हे राजन्! जहाँ भी लोग कीर्तन तथा श्रवण द्वारा भक्तिकार्यों की अपनी वृत्तियों में लगे रहते हैं (*श्रवणं कीर्तनं विष्णोः*) वहाँ बुरे लोगों से किसी प्रकार का खतरा नहीं रहता। जब साक्षात् भगवान् वहाँ विद्यमान हों तो गोकुल के विषय में किसी प्रकार की चिन्ता की आवश्यकता नहीं थी।

तात्पर्य : शुकदेव गोस्वामी ने महाराज परीक्षित की चिन्ता दूर करने के लिए ही यह श्लोक कहा। चूँकि महाराज परीक्षित कृष्णभक्त थे अतएव जब उन्होंने समझा कि गोकुल में पूतना उत्पात मचा रही थी तो वे कुछ कुछ उद्विग्न हो उठे। इसलिए शुकदेव गोस्वामी ने उन्हें आश्वस्त किया कि गोकुल में कोई खतरा नहीं था। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर का गीत है : *नामाश्रय करिऽ यतने तुमि, थाकह आपन काजे।* इसलिए हर एक को सलाह दी जाती है कि वह हरे कृष्ण महामंत्र कीर्तन का आश्रय ग्रहण करे और अपने कार्य में लगा रहे। इसमें कोई हानि नहीं किन्तु लाभ अथाह है। यहाँ तक कि भौतिक दृष्टि से भी सभी प्रकार के खतरों से बचने के लिए हरे कृष्ण मंत्र का कीर्तन करना चाहिए। यह जगत खतरे से पूर्ण है (*पदं पदं यद्विपदाम्*)। इसलिए हमें हरे कृष्ण महामंत्र का कीर्तन करने के लिए प्रोत्साहित होना चाहिए जिससे हमारे परिवार, समाज, पड़ोस तथा देश के सारे काम आसानी से चलें और कोई खतरा न रहे।

सा खेचर्येकदोत्पत्य पूतना नन्दगोकुलम् ।
योषित्वा माययात्मानं प्राविशत्कामचारिणी ॥ ४॥

शब्दार्थ

सा—वह (पूतना); खे-चरी—आकाश मार्ग में यात्रा करने वाली; एकदा—एक बार; उत्पत्य—उड़ते हुए; पूतना—पूतना; नन्द-गोकुलम्—नन्द महाराज के स्थान, गोकुल में; योषित्वा—सुन्दर स्त्री का वेश धारण करके; मायया—योगशक्ति से; आत्मानम्—अपने आपको; प्राविशत्—प्रवेश किया; काम-चारिणी—इच्छानुसार विचरण करने वाली।

एक बार स्वेच्छा से विचरण करने वाली पूतना राक्षसी बाह्य आकाश (अन्तरिक्ष) में घूम रही थी तो वह अपनी योगशक्ति से अपने को अति सुन्दर स्त्री के रूप में बदलकर नन्द महाराज के स्थान गोकुल में प्रविष्ट हुई।

तात्पर्य : राक्षसी याँ ऐसी योगशक्ति जानती हैं जिनसे वे यंत्रों के बिना ही बाह्य आकाश में यात्रा

कर सकती हैं। आज भी भारत के कुछ भागों में ऐसी डाइनें (जादूगरनियाँ) हैं, जो डंडे पर बैठकर पलक मारते एक स्थान से दूसरे स्थान पहुँच जाती हैं। पूतना को यह कला आती थी। उसने सुन्दर स्त्री का वेश धारण कर नन्द महाराज के धाम गोकुल में प्रवेश किया।

तां केशबन्धव्यतिषक्तमल्लिकां
बृहन्नितम्बस्तनकृच्छ्रमध्यमाम् ।
सुवाससं कल्पितकर्णभूषण-
त्विषोल्लसत्कुन्तलमण्डिताननाम् ॥ ५ ॥
वल्गुस्मितापाङ्गविसर्गवीक्षितै-
र्मनो हरन्तीं वनितां व्रजौकसाम् ।
अमंसताम्भोजकरेण रूपिणीं
गोप्यः श्रियं द्रष्टुमिवागतां पतिम् ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

ताम्—उसको; केश-बन्ध-व्यतिषक्त-मल्लिकाम्—जिसके जूड़े मल्लिका के फूलों की मालाओं से सजाये गये थे; बृहत्—बहुत बड़े; नितम्ब-स्तन—अपने कूल्हों तथा दृढ़ स्तनों से; कृच्छ्र-मध्यमाम्—पतली कमर के भार से नत; सु-वाससम्—अच्छे वस्त्रों से सज्जित; कल्पित-कर्ण-भूषण—कानों में पहने कुण्डलों की; त्विषा—चमक से; उल्लसत्—अत्यन्त आकर्षक; कुन्तल-मण्डित-आननाम्—काले बालों से घिरे सुन्दर मुखमण्डल वाली; वल्गु-स्मित-अपाङ्ग-विसर्ग-वीक्षितैः—हास्ययुक्त चितवन से; मनः हरन्तीम्—मन को हरती हुई; वनिताम्—अत्यन्त आकर्षक स्त्री ने; व्रज-ओकसाम्—गोकुलवासियों को; अमंसत—सोचा; अम्भोज—कमल लिये हुए; करेण—हाथ से; रूपिणीम्—अत्यन्त सुन्दर; गोप्यः—गोकुल की रहने वाली गोपियाँ; श्रियम्—लक्ष्मी; द्रष्टुम्—देखने के लिए; इव—मानो; आगताम्—आई हो; पतिम्—पति को।

उसके नितम्ब भारी थे, उसके स्तन सुदृढ़ तथा विशाल थे जिससे उसकी पतली कमर पर अधिक बोझ पड़ता प्रतीत हो रहा था। वह अत्यन्त सुन्दर वस्त्र धारण किये थी। उसके केश मल्लिका फूल की माला से सुसज्जित थे जो उसके सुन्दर मुख पर बिखरे हुए थे। उसके कान के कुण्डल चमकीले थे। वह हर व्यक्ति पर दृष्टि डालते हुए आकर्षक ढंग से मुसका रही थी। उसकी सुन्दरता ने व्रज के सारे निवासियों का विशेष रूप से पुरुषों का ध्यान आकृष्ट कर रखा था। जब गोपियों ने उसे देखा तो उन्होंने सोचा कि हाथ में कमल का फूल लिए लक्ष्मी जी अपने पति कृष्ण को देखने आई हैं।

बालग्रहस्तत्र विचिन्वती शिशून्
यदृच्छया नन्दगृहेऽसदन्तकम् ।
बालं प्रतिच्छन्ननिजोरुतेजसं
ददर्श तल्पेऽग्निमिवाहितं भसि ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

बाल-ग्रहः—डाइन, जिसका काम छोटे-छोटे बच्चों को मारना है; तत्र—वहाँ खड़ी; विचिन्वती—सोचती हुई, ढूँढती हुई; शिशून्—बालकों के; यदृच्छया—स्वतंत्र रूप से; नन्द-गृहे—नन्द महाराज के घर में; असत्-अन्तकम्—सारे असुरों को मारने में समर्थ; बालम्—बालक को; प्रतिच्छन्न—ढकी; निज-उरु-तेजसम्—अपनी असीम शक्ति को; ददर्श—देखा; तल्पे—बिस्तर पर (लेटा); अग्निम्—अग्नि को; इव—सदृश्य; आहितम्—ढकी; भसि—राख के भीतर।

छोटे छोटे बालकों को ढूँढती हुई बच्चों का वध करने वाली पूतना बिना किसी रोकटोक के नन्द महाराज के घर में घुस गई क्योंकि वह भगवान् की परा शक्ति द्वारा भेजी गई थी। वह किसी से पूछे बिना नन्द महाराज के उस कमरे में घुस गई जहाँ उसने बालक को बिस्तरे पर सोते देखा जो राख में ढकी अग्नि के समान असीम शक्ति-सम्पन्न था। वह समझ गई कि यह बालक कोई साधारण बालक नहीं है, अपितु सारे असुरों का वध करने के हेतु आया है।

तात्पर्य : असुरगण सदैव उत्पात मचाते और हत्या करते रहते हैं, किन्तु नन्द महाराज के घर में बिस्तर पर लेटा बालक असुरों का वध करने के लिए उत्पन्न हुआ था।

विबुध्य तां बालकमारिकाग्रहं
चराचरात्मा स निमीलितेक्षणः ।
अनन्तमारोपयदङ्कमन्तकं
यथोरगं सुप्तमबुद्धिरज्जुधीः ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

विबुध्य—समझ कर; ताम्—उसको (पूतना को); बालक-मारिका-ग्रहम्—बालकों को मारने में पटु डाइन को; चर-अचर-आत्मा—सर्वव्यापक परमात्मा कृष्ण; सः—उसने; निमीलित-ईक्षणः—अपनी आँखें बन्द कर लीं; अनन्तम्—असीम; आरोपयत्—रख लिया; अङ्कम्—अपनी गोद में; अन्तकम्—अपने विनाश के लिए; यथा—जिस तरह; उरगम्—साँप को; सुप्तम्—सोये हुए; अबुद्धि—बुद्धिहीन व्यक्ति; रज्जु-धीः—साँप को रस्सी समझने वाला।

बिस्तर पर लेटे सर्वव्यापी परमात्मा कृष्ण ने समझ लिया कि छोटे बालकों को मारने में पटु यह डाइन पूतना मुझे मारने आई है। अतएव उन्होंने अपनी आँखें बन्द कर लीं मानो उससे डर गये हों। तब पूतना ने अपने विनाश-रूप कृष्ण को अपनी गोद में ले लिया जिस तरह कि बुद्धिहीन मनुष्य सोते साँप को रस्सी समझ कर अपनी गोद में ले लेता है।

तात्पर्य : इस श्लोक में दो जटिलताएँ हैं। जब कृष्ण ने देखा कि पूतना मुझे मारने आई है, तो उन्होंने सोचा कि क्योंकि यह स्त्री मातृ-स्नेह दिखाने आई है भले ही वह कृत्रिम ही क्यों न हो अत: उसे वर देना चाहिए। फलत: उन्होंने कुछ चिन्ता से उसे देखा और फिर अपनी आँखें बन्द कर लीं। पूतना राक्षसी भी सकपकाई थी। वह इतनी बुद्धिमान न थी जो समझ पाती कि वह सोते सर्प को अपनी

गोद में ले रही है; उसने सर्प को सामान्य रस्सी समझा। *अन्तकम्* तथा *अनन्तम्*—ये दोनों शब्द परस्पर विरोधी हैं। बुद्धिमान न होने के कारण पूतना ने सोचा कि वह अपने *अन्तकम्* अर्थात् काल को मार सकती है किन्तु *अनन्त* होने से उस बालक को कोई नहीं मार सकता था।

तां तीक्ष्णचित्तामतिवामचेष्टितां
वीक्ष्यान्तरा कोषपरिच्छदासिवत् ।
वरस्त्रियं तत्प्रभया च धर्षिते
निरीक्ष्यमाणे जननी ह्यतिष्ठताम् ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

ताम्—उस (पूतना राक्षसी को); **तीक्ष्ण-चित्ताम्**—बच्चों का वध करने के लिए अत्यन्त पाषाण हृदय वाली; **अति-वाम-चेष्टिताम्**—यद्यपि वह बच्चे के साथ माता से भी अधिक अच्छा बर्ताव करने का प्रयास कर रही थी; **वीक्ष्य अन्तरा**—कमरे के भीतर उसे देख कर; **कोष-परिच्छद-असि-वत्**—मुलायम म्यान के भीतर तेज तलवार की तरह; **वर-स्त्रियम्**—सुन्दर स्त्री के; **तत्-प्रभया**—उसके प्रभाव से; **च**—भी; **धर्षिते**—अभिभूत, विह्वल; **निरीक्ष्यमाणे**—देख रही थीं; **जननी**—दोनों माताएँ; **हि**—निश्चय ही; **अतिष्ठताम्**—वे मौन रह गईं।

पूतना राक्षसी का हृदय कठोर एवं क्रूर था किन्तु ऊपर से वह अत्यन्त स्नेहमयी माता सदृश लग रही थी। वह मुलायम म्यान के भीतर तेज तलवार जैसी थी। यद्यपि यशोदा तथा रोहिणी ने उसे कमरे के भीतर देखा किन्तु उसके सौन्दर्य से अभिभूत होने के कारण उन्होंने उसे रोका नहीं अपितु वे मौन रह गईं क्योंकि वह बच्चे के साथ मातृवत् व्यवहार कर रही थी।

तात्पर्य : यद्यपि पूतना बाहरी स्त्री थी और साक्षात् भयानक काल थी क्योंकि उसके हृदय में बालक को मार डालने का संकल्प था किन्तु जब वह आई और उसने बालक को अपनी गोद में ले लिया तो बालक की माताएँ उसके सौन्दर्य पर इतनी मुग्ध हो गईं कि उन्होंने उसे ऐसा करने से रोका भी नहीं। कभी-कभी सुन्दर स्त्री अत्यन्त घातक होती है क्योंकि लोग उसकी ब्राह्य सुन्दरता पर मोहित होकर (*मायामोहित*) यह नहीं समझ पाते कि उसके मन में आखिर है क्या! जो लोग बहिरंगा शक्ति के सौन्दर्य द्वारा मुग्ध हो जाते हैं, वे *मायामोहित* कहलाते हैं। *मोहितं नाभिजानाति मामेभ्य: परमव्ययम्* (*भगवद्गीता* ७.१३)। *न ते विदु:स्वार्थगतिं हि विष्णुंदुराशया ये बहिरर्थमानिन:* (*श्रीमद्भागवत* ७.५.३१)। यहाँ पर रोहिणी तथा यशोदा दोनों माताएँ बाह्य शक्ति से मुग्ध अर्थात् मायामोहित न थीं अपितु भगवान् की लीला के विकास हेतु योगमाया द्वारा वे मुग्ध कर दी गईं। योगमाया का कार्य ही है ऐसा *मायामोह*।

तस्मिन्स्तनं दुर्जरवीर्यमुल्बणं
घोराङ्कमादाय शिशोर्ददावथ ।
गाढं कराभ्यां भगवान्प्रपीड्य तत्-
प्राणैः समं रोषसमन्वितोऽपिबत् ॥ ॥

शब्दार्थ

तस्मिन्—उस स्थान में; स्तनम्—स्तन; दुर्जर-वीर्यम्—विष से मिश्रित अत्यन्त शक्तिशाली हथियार; उल्बणम्—भयंकर; घोरा—अत्यन्त खूँखार पूतना; अङ्कम्—अपनी गोद में; आदाय—रखकर; शिशोः—बालक के मुख में; ददौ—दिया; अथ—तत्पश्चात्; गाढम्—अत्यन्त कठोर; कराभ्याम्—दोनों हाथों से; भगवान्—भगवान्; प्रपीड्य—पीड़ा पहुँचाते हुए; तत्-प्राणैः—उसके प्राण; समम्—के साथ; रोष-समन्वितः—उस पर क्रुद्ध होकर; अपिबत्—स्तनपान किया।

उसी जगह भयानक तथा खूँख्वार राक्षसी ने कृष्ण को अपनी गोद में ले लिया और उनके मुँह में अपना स्तन दे दिया। उसके स्तन के चूँचुक में घातक एवं तुरन्त प्रभाव दिखाने वाला विष चुपड़ा हुआ था किन्तु भगवान् कृष्ण उस पर अत्यन्त क्रुद्ध हुए और उसके स्तन को पकड़ कर अपने हाथों से कड़ाई से निचोड़ा और विष तथा उसके प्राण दोनों चूस डाले।

तात्पर्य : भगवान् कृष्ण पूतना पर अपने लिए क्रुद्ध नहीं थे प्रत्युत इसलिए कि उस राक्षसी ने व्रजभूमि के अनेक नन्हें बालकों को मार डाला था। इसलिए उन्होंने निश्चय किया कि उसके प्राण लेकर उसे दण्ड दिया जाय।

सा मुञ्च मुञ्चालमिति प्रभाषिणी
निष्पीड्यमानाखिलजीवमर्मणि ।
विवृत्य नेत्रे चरणौ भुजौ मुहुः
प्रस्विन्नगात्रा क्षिपती रुरोद ह ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

सा—वह (पूतना); मुञ्च—छोड़ो; मुञ्च—छोड़ो; अलम्—बस! बस!; इति—इस प्रकार; प्रभाषिणी—चिल्लाती; निष्पीड्यमाना—बुरी तरह दबाई जाकर; अखिल-जीव-मर्मणि—सारे मर्मस्थलों में; विवृत्य—खोल कर; नेत्रे—दोनों आँखें; चरणौ—दोनों पाँव; भुजौ—दोनों हाथ; मुहुः—पुनः पुनः; प्रस्विन्न-गात्रा—पसीने से तर शरीर; क्षिपती—फेंकते हुए; रुरोद—जोर से चिल्लाई; ह—निस्सन्देह।

प्रत्येक मर्मस्थल में असह्य दबाव से पूतना चिल्ला उठी, ''मुझे छोड़ दो, मुझे छोड़ दो! अब मेरा स्तनपान मत करो।'' पसीने से तर, फटी हुई आँखें तथा हाथ और पैर पटकती हुई वह बार-बार जोर जोर से चिल्लाने लगी।

तात्पर्य : कृष्ण ने इस राक्षसी को बुरी तरह दण्ड दिया। वह हाथ-पैर इधर-उधर पटकने लगी और अपने दुष्कर्मों का दण्ड देने के लिए कृष्ण भी उसे लतियाने लगे।

तस्याः स्वनेनातिगभीररंहसा
साद्रिर्मही द्यौश्च चचाल सग्रहा ।
रसा दिशश्च प्रतिनेदिरे जनाः
पेतुः क्षितौ वज्रनिपातशङ्कया ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

तस्याः—विकट राक्षसी पूतना की; स्वनेन—ध्वनि से; अति—अत्यन्त; गभीर—गहन; रंहसा—शक्तिशाली; स-अद्रिः—पर्वतों समेत; मही—पृथ्वी; द्यौः च—तथा आकाश; चचाल—हिलने लगे; स-ग्रहा—तारों समेत; रसा—पृथ्वी लोक के नीचे; दिशः च—तथा सारी दिशाएँ; प्रतिनेदिरे—गूँजने लगीं; जनाः—लोग; पेतुः—गिर पड़े; क्षितौ—पृथ्वी पर; वज्र-निपात-शङ्कया—इस आशंका से कि वज्रपात हुआ है।.

पूतना की गहन तथा जोरदार चीत्कार से पर्वतों समेत पृथ्वी तथा ग्रहों समेत आकाश डगमगाने लगा। नीचे के लोक तथा सारी दिशाएँ थरथरा उठीं और लोग इस आशंका से गिर पड़े कि उन पर बिजली गिर रही हो।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती की टिप्पणी है कि इस श्लोक में *रसा* शब्द पृथ्वी के नीचे के लोकों का—रसातल, अतल, वितल, सुतल तथा तलातल का द्योतक है।

इशाचरीत्थं व्यथितस्तना व्यसुर्
व्यादाय केशांश्चरणौ भुजावपि ।
प्रसार्य गोष्ठे निजरूपमास्थिता
वज्राहतो वृत्र इवापतन्नृप ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

निशा-चरी—राक्षसी ने; इत्थम्—इस तरह; व्यथित-स्तना—स्तन पर दबाब पड़ने से दुखी; व्यसुः—प्राण छोड़ दिया; व्यादाय—मुँह फैला कर; केशान्—बालों का गुच्छा; चरणौ—दोनों पाँव; भुजौ—दोनों हाथ; अपि—भी; प्रसार्य—पसार कर; गोष्ठे—गोचर में; निज-रूपम् आस्थिता—अपने मूल आसुरी रूप में स्थित; वज्र-आहतः—इन्द्र के वज्र से मरा हुआ; वृत्रः—वृत्रासुर; इव—सदृश; अपतत्—गिर पड़ी; नृप—हे राजन्।.

इस तरह कृष्ण द्वारा स्तन पर दबाव डालने से अत्यन्त व्यथित पूतना ने अपने प्राण त्याग दिये। हे राजा परीक्षित, वह अपना मुँह फैलाये तथा अपने हाथ, पाँव पसारे और बाल फैलाये अपने मूल राक्षसी रूप में गोचर में गिर पड़ी मानो इन्द्र के वज्र से आहत वृत्रासुर गिरा हो।

तात्पर्य : पूतना दुर्दांत राक्षसी थी जिसे योगशक्ति द्वारा अपने मूल रूप को छिपाने की कला ज्ञात थी किन्तु जब वह मर गई तो उसकी योगशक्ति उसे छिपा न पाई जिससे वह अपने मूल रूप में प्रकट हो गई।

अतमानोऽपि तद्देहस्त्रिगव्यूत्यन्तरद्रुमान् ।
चूर्णयामास राजेन्द्र महदासीत्तदद्भुतम् ॥ १४॥

शब्दार्थ

पतमानः अपि—गिरते हुए भी; तत्-देहः—उसका विशाल शरीर; त्रि-गव्यूति-अन्तर—बारह मील की सीमा के भीतर; द्रुमान्—सारे वृक्षों को; चूर्णयाम् आस—चूर चूर कर दिये; राजेन्द्र—हे राजा परीक्षित; महत् आसीत्—बहुत विशाल था; तत्—वह शरीर; अद्भुतम्—तथा अत्यन्त विचित्र।

हे राजा परीक्षित, जब पूतना का विशाल शरीर भूमि पर गिरा तो उससे बारह मील के दायरे के सारे वृक्ष चूर चूर हो गये। अपने विशाल शरीर में प्रकट होने से वह सचमुच असामान्य थी।

तात्पर्य : कृष्ण द्वारा स्तनपान किये जाने से जो पीड़ा हुई उससे मरते समय पूतना ने न केवल मकान छोड़ दिया अपितु उसने वह गाँव भी छोड़ दिया और उसका विशाल शरीर चरागाह में गिर पड़ा।

ईषामात्रोग्रदंष्ट्रास्यं गिरिकन्दरनासिकम् ।
गण्डशैलस्तनं रौद्रं प्रकीर्णारुणमूर्धजम् ॥ १५॥
अन्धकूपगभीराक्षं पुलिनारोहभीषणम् ।
बद्धसेतुभुजोर्वङ्घ्रि शून्यतोयह्रदोदरम् ॥ १६॥
सन्तत्रसुः स्म तद्वीक्ष्य गोपा गोप्यः कलेवरम् ।
पूर्वं तु तन्निःस्वनितभिन्नहृत्कर्णमस्तकाः ॥ १७॥

शब्दार्थ

ईषा-मात्र—हल के फाल की तरह; उग्र—भयानक; दंष्ट्र—दाँत; आस्यम्—मुँह के भीतर; गिरि-कन्दर—पर्वत की गुफा के समान; नासिकम्—नाक के छेद; गण्ड-शैल—पत्थर की बड़ी शिला की तरह; स्तनम्—स्तन; रौद्रम्—अत्यन्त विकराल; प्रकीर्ण—बिखरे हुए; अरुण-मूर्ध-जम्—ताम्र रंग के बालों वाली; अन्ध-कूप—भूपट्ट कुओं की तरह; गभीर—गहरे; अक्षम्—आँख के गड्ढे; पुलिन-आरोह-भीषणम्—जिसकी जाँघें नदी के किनारों की तरह भयावनी थीं; बद्ध-सेतु-भुज-उरु-अङ्घ्रि—जिसकी भुजाएँ, जाँघें तथा पैर मजबूत बने पुलों के समान थे; शून्य-तोय-ह्रद-उदरम्—जिसका पेट जलविहीन झील की तरह था; सन्तत्रसुः स्म—डर गये; तत्—उस; वीक्ष्य—देखकर; गोपाः—सारे ग्वाले; गोप्यः—तथा ग्वालिनें; कलेवरम्—ऐसे विशाल शरीर को; पूर्वम् तु—इसके पहले; तत्-निःस्वनित—उसकी पुकार से; भिन्न—दहले हुए, कटे; हृत्—जिनके हृदय; कर्ण—कान; मस्तकाः—तथा सिर।

राक्षसी के मुँह में दाँत हल के फाल (कुशी) जैसे थे; उसके नथुने पर्वत-गुफाओं की तरह गहरे थे और उसके स्तन पर्वत से गिरे हुए बड़े बड़े शिलाखण्डों के समान थे। उसके बिखरे बाल ताम्र रंग के थे। उसकी आँखों के गड्ढे गहरे अंधे (भूपट्ट) कुँओं जैसे थे, उसकी भयानक जाँघें नदी के किनारों जैसी थीं; उसके बाजू, टाँगें तथा पाँव बड़े बड़े पुलों की तरह थीं तथा उसका पेट सूखी झील की तरह लग रहा था। राक्षसी की चीख से ग्वालों तथा उनकी पत्नियों के हृदय, कान तथा सिर पहले ही दहल चुके थे और जब उन्होंने उसके अद्भुत शरीर को देखा तो वे और

भी ज्यादा सहम गये।

बालं च तस्या उरसि क्रीडन्तमकुतोभयम् ।
गोप्यस्तूर्णं समभ्येत्य जगृहुर्जातसम्भ्रमाः ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

बालम् च—बालक भी; तस्याः—उस (पूतना) के; उरसि—छाती पर; क्रीडन्तम्—खेलने में व्यस्त; अकुतोभयम्—निडर होकर; गोप्यः—सारी गोपियाँ; तूर्णम्—तुरन्त; समभ्येत्य—पास आकर; जगृहुः—उठा लिया; जात-सम्भ्रमाः—उसी स्नेह के साथ।

बालक कृष्ण भी निडर होकर पूतना की छाती के ऊपरी भाग पर खेल रहा था और जब गोपियों ने बालक के अद्भुत कार्यकलाप को देखा तो उन्होंने अत्यन्त हर्षित होकर आगे बढ़ते हुए उसे उठा लिया।

तात्पर्य : ये हैं पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण। यद्यपि योगशक्ति से पूतना अपने शरीर को घटा-बढ़ा सकती थी और उसी के अनुसार शक्ति प्राप्त करती थी किन्तु भगवान् चाहे जिस भी रूप में क्यों न हों, समान रूप से शक्तिशाली रहते हैं। कृष्ण असली भगवान् हैं क्योंकि चाहे वे बालक हों या युवक, वे रहते हैं वही पुरुष, उन्हें ध्यान या किसी अन्य बाह्य प्रयास से शक्तिशाली बनने की आवश्यकता नहीं होती। इसलिए जब बिकट शक्तिशालिनी पूतना ने अपना शरीर बढ़ाया तो कृष्ण वैसे ही नन्हें बालक बने रहे और निडर होकर उसकी छाती के ऊपरी भाग पर खेलते रहे। *षडैश्वर्य-पूर्ण।* भगवान् चाहे जिस रूप में हों अपनी समस्त शक्तियों से सदैव पूर्ण रहते हैं। उनकी शक्तियाँ सदैव पूर्ण रहती हैं। *परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते।* वे किसी भी परिस्थिति में अपनी सारी शक्तियों का प्रदर्शन कर सकते हैं।

यशोदारोहिणीभ्यां ताः समं बालस्य सर्वतः ।
रक्षां विदधिरे सम्यग्गोपुच्छभ्रमणादिभिः ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

यशोदा-रोहिणीभ्याम्—यशोदा तथा रोहिणी माताओं के साथ जिन्होंने मुख्यतः बालक की चिम्मेदारी ली; ताः—अन्य गोपियाँ; समम्—यशोदा तथा रोहिणी की ही तरह महत्त्वपूर्ण; बालस्य—बालक के; सर्वतः—सारे खतरों से; रक्षाम्—रक्षा; विदधिरे—सम्पन्न किया; सम्यक्—भलीभाँति; गो-पुच्छ-भ्रमण-आदिभिः—चँवर डुला कर ।

तत्पश्चात् माता यशोदा तथा रोहिणी ने अन्य प्रौढ़ गोपियों समेत बालक श्रीकृष्ण की पूर्ण संरक्षण देने के लिए चँवर डुलाया।

तात्पर्य : जब कृष्ण इतने बड़े खतरे से बच गये तो माता यशोदा तथा रोहिणी को मुख्य रूप से

चिन्ता हो गई। अन्य वृद्धा गोपियों ने भी जो उन्हीं की तरह व्याकुल थीं, माता यशोदा तथा रोहिणी का अनुकरण किया। यहाँ हम पाते हैं कि घरेलू कार्यों में स्त्रियाँ बालक की रक्षा गाय की सहायता से ही करती थीं। वे जानती थीं कि बच्चे को सभी प्रकार के खतरों से बचाने के लिए किस प्रकार चँवर डुलायी जाती है। गोरक्षा से अनेक सुविधाएँ प्राप्त होती हैं किन्तु लोग इन बातों को भूल चुके हैं। इसीलिए कृष्ण *भगवद्गीता* में गायों की सुरक्षा पर बल देते हैं (*कृषिगोरक्ष्य वाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्*)। आज भी वृन्दावन के आसपास के गाँवों के निवासी गाय की रक्षा करके सुखपूर्वक जीवन बिताते हैं। वे गोबर को अच्छे से सँभालकर रखते हैं और सुखा कर ईंधन की तरह उसका प्रयोग करते हैं। उनके पास पर्याप्त अन्न-भण्डार रहता है और गायों की रक्षा करने से उनके पास पर्याप्त दूध तथा दूध से बनने वाले पदार्थ होते हैं जिनसे सारी आर्थिक समस्याएँ हल हो जाती हैं। मात्र गोरक्षा से ग्रामीण लोग बड़ी शान्ति से रहते हैं। यहाँ तक कि गोमूत्र तथा गोबर के औषधीय उपयोग भी हैं।

गोमूत्रेण स्नापयित्वा पुनर्गोरजसार्भकम् ।
रक्षां चक्रुश्च शकृता द्वादशाङ्गेषु नामभिः ॥ २० ॥

शब्दार्थ

गो-मूत्रेण—गायों के पेशाब से; स्नापयित्वा—नहला कर; पुनः—फिर से; गो-रजसा—गोधूलि से; अर्भकम्—छोटे बालक को; रक्षाम्—रक्षा; चक्रुः—सम्पन्न किया; च—भी; शकृता—गोबर से; द्वादश-अङ्गेषु—बारह जगहों में (द्वादश तिलक); नामभीः—भगवान् का नाम अंकित करके।

बालक को गोमूत्र से अच्छी तरह नहलाया गया और फिर गोधूलि से उसको लेप किया गया। फिर उनके शरीर में बारह अंगों पर, तिलक लगाने की भाँति माथे से शुरु करके, गोबर से भगवान् के विभिन्न नाम अंकित किये गये। इस तरह बालक को सुरक्षा प्रदान की गई।

गोप्यः संस्पृष्टसलिला अङ्गेषु करयोः पृथक् ।
न्यस्यात्मन्यथ बालस्य बीजन्यासमकुर्वत ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

गोप्यः—गोपियों ने; संस्पृष्ट-सलिलाः—जल के प्याले को छूकर तथा पीकर (आचमन करके); अङ्गेषु—अपने शरीरों पर; करयोः—दोनों हाथों पर; पृथक्—अलग अलग; न्यस्य—मंत्र के अक्षरों को रख कर; आत्मनि—अपने ऊपर; अथ—तब; बालस्य—बालक के; बीज-न्यासम्—मंत्रन्यास की विधि; अकुर्वत—सम्पन्न की।

गोपियों ने सर्वप्रथम अपने दाहिने हाथ से जल का एक घूँट पी कर आचमन किया। उन्होंने अपने शरीरों तथा हाथों को न्यास-मंत्र से शुद्ध बनाया और तब उन्होंने बालक के शरीर को भी

उसी मंत्र से परिशुद्ध किया।

तात्पर्य : *न्यासमन्त्र* में दाहिने हाथ में जल लेकर उसे पी कर आचमन किया जाता है। शरीर को शुद्ध करने के लिए भिन्न-भिन्न *विष्णुमन्त्र* हैं। गोपियाँ तथा वास्तव में सारे गृहस्थ वैदिक मंत्रों का उच्चारण करके शुद्ध बनने की विधि जानते थे। इस विधि से गोपियों ने सर्वप्रथम स्वयं को शुद्ध बनाया और फिर बालक कृष्ण को। *अंगन्यास* तथा *करन्यास* की विधि में थोड़ा जल पी कर मंत्र पढ़ा जाता है। मंत्र के पूर्व *ॐ नमः* उच्चारण किया जाता है—*ॐ नमोऽजस्तवाङ्घ्री अव्यात्, मं मनो मणिमांस्तव जानुनी अव्यात्।* भारतीय संस्कृति खो देने से भारतीय गृहस्थ यह भूल चुके हैं कि किस तरह अंगन्यास किया जाता है। वे एकमात्र इन्द्रियतृप्ति में लगे रहते हैं। उन्हें मानव सभ्यता का किसी तरह का उन्नत ज्ञान नहीं है।

अव्यादजोऽङ्घ्रि मणिमांस्तव जान्वथोरू
यज्ञोऽच्युतः कटितटं जठरं हयास्यः ।
हृत्केशवस्त्वदुर ईश इनस्तु कण्ठं
विष्णुर्भुजं मुखमुरुक्रम ईश्वरः कम् ॥ २२॥
चक्र्यग्रतः सहगदो हरिरस्तु पश्चात्
त्वत्पार्श्वयोर्धनुरसी मधुहाजनश्च ।
कोणेषु शङ्ख उरुगाय उपर्युपेन्द्रस्
तार्क्ष्यः क्षितौ हलधरः पुरुषः समन्तात् ॥ २३॥

शब्दार्थ

अव्यात्—रक्षा करे; अजः—भगवान् अज; अङ्घ्रि—पाँव; मणिमान्—भगवान् मणिमान; तव—तुम्हारे; जानु—घुटने; अथ—तत्पश्चात्; उरू—जाँघें; यज्ञः—यज्ञदेव; अच्युतः—भगवान् अच्युत; कटि-तटम्—कमर का ऊपरी हिस्सा; जठरम्—उदर; हयास्यः—भगवान् हयग्रीव; हृत्—हृदय; केशवः—भगवान् केशव; त्वत्—तुम्हारा; उरः—वक्षस्थल, सीना; ईशः—परमनियन्ता, भगवान् ईश; इनः—सूर्य देव; तु—लेकिन; कण्ठम्—गला; विष्णुः—भगवान् विष्णु; भुजम्—बाहें; मुखम्—मुँह; उरुक्रमः—भगवान् उरुक्रम; ईश्वरः—भगवान् ईश्वर; कम्—सिर; चक्री—चक्र धारण करने वाला; अग्रतः—सामने; सह-गदः—गदाधारी; हरिः—भगवान् हरि; अस्तु—रहता रहे; पश्चात्—पीछे, पीठ पर; त्वत्-पार्श्वयोः—तुम्हारी दोनों बगलों में; धनुः-असी—धनुष तथा तलवार धारण करने वाला; मधु-हा—मधु असुर का वध करने वाला; अजनः—विष्णु; च—तथा; कोणेषु—कोनों में; शङ्खः—शंखधारी; उरुगायः—पूजित; उपरि—ऊपर; उपेन्द्रः—भगवान् उपेन्द्र; तार्क्ष्यः—गरुड़; क्षितौ—पृथ्वी पर; हलधरः—भगवान् हलधर; पुरुषः—परम पुरुष; समन्तात्—सभी दिशाओं में।

(शुकदेव गोस्वामी ने महाराज परीक्षित को बतलाया कि गोपियों ने कृष्ण की रक्षा उपयुक्त विधि के अनुसार निम्नलिखित मंत्र द्वारा की)—अज तुम्हारी पाँवों की, मणिमान तुम्हारे घुटनों की, यज्ञ तुम्हारी जाँघों की, अच्युत तुम्हारी कमर के ऊपरी भाग की तथा हयग्रीव तुम्हारे उदर की रक्षा करें। केशव तुम्हारे हृदय की, ईश तुम्हारे वक्षस्थल की, सूर्यदेव तुम्हारे गले की, विष्णु

तुम्हारे भुजाओं की, उरुक्रम तुम्हारे मुँह की तथा ईश्वर तुम्हारे सिर की रक्षा करें। चक्री आगे से, गदाधारी हरि पीछे से तथा धनुर्धर मधुहा एवं खड्ग् भगवान् विष्णु दोनों ओर से तुम्हारी रक्षा करें। शंखधारी उरुगाय समस्त कोणों से तुम्हारी रक्षा करें। उपेन्द्र ऊपर से, गरुड़ धरती पर तथा परम पुरुष हलधर चारों ओर से तुम्हारी रक्षा करें।

तात्पर्य : खेतिहरों के घरों में भी जो सभ्यता की आधुनिक विधियों में बढ़े-चढ़े नहीं थे, स्त्रियाँ गोबर तथा गोमूत्र के द्वारा मंत्र पढ़कर बच्चों की रक्षा करना जानती थी। बड़े से बड़े खतरों से महती सुरक्षा प्रदान करने की यह एक सरल तथा व्यावहारिक विधि थी। इसे कैसे करना है लोगों को जानना चाहिए क्योंकि यह वैदिक सभ्यता का अंग है।

इन्द्रियाणि हृषीकेशः प्राणान्नारायणोऽवतु ।
श्वेतद्वीपपतिश्चित्तं मनो योगेश्वरोऽवतु ॥ २४॥

शब्दार्थ

इन्द्रियाणि—सारी इन्द्रियों को; हृषीकेशः—सभी इन्द्रियों के रक्षक भगवान् हृषीकेश; प्राणान्—सारे प्राणों को; नारायणः—भगवान् नारायण; अवतु—रक्षा करें; श्वेतद्वीप-पतिः—श्वेतद्वीप के स्वामी, विष्णु; चित्तम्—हृदय को; मनः—मन को; योगेश्वरः—भगवान् योगेश्वर; अवतु—संरक्षण प्रदान करें।

हृषीकेश तुम्हारी इन्द्रियों की तथा नारायण तुम्हारे प्राणवायु की रक्षा करें। श्वेतद्वीप के स्वामी तुम्हारे चित्त की तथा योगेश्वर तुम्हारे मन की रक्षा करें।

पृश्निगर्भस्तु ते बुद्धिमात्मानं भगवान्परः ।
क्रीडन्तं पातु गोविन्दः शयानं पातु माधवः ॥ २५॥
व्रजन्तमव्याद्वैकुण्ठ आसीनं त्वां श्रियः पतिः ।
भुञ्जानं यज्ञभुक्पातु सर्वग्रहभयङ्करः ॥ २६॥

शब्दार्थ

पृश्निगर्भः—भगवान् पृश्निगर्भ; तु—निस्सन्देह; ते—तुम्हारी; बुद्धिम्—बुद्धि को; आत्मानम्—आत्मा को; भगवान्—भगवान; परः—दिव्य; क्रीडन्तम्—खेलते हुए; पातु—रक्षा करें; गोविन्दः—गोविन्द; शयानम्—सोते समय; पातु—रक्षा करें; माधवः—भगवान् माधव; व्रजन्तम्—चलते हुए; अव्यात्—रक्षा करें; वैकुण्ठः—भगवान् वैकुण्ठ; आसीनम्—बैठे हुए; त्वाम्—तुमको; श्रियः पतिः—लक्ष्मीपति, नारायण; भुञ्जानम्—जीवन का भोग करते हुए; यज्ञभुक्—यज्ञभुक; पातु—रक्षा करें; सर्व-ग्रह-भयम्-करः—जो सारे दुष्ट ग्रहों को भय देने वाले।

भगवान् प्रश्निगर्भ तुम्हारी बुद्धि की तथा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् तुम्हारे आत्मा की रक्षा करें। तुम्हारे खेलते समय गोविन्द तथा तुम्हारे सोते समय माधव तुम्हारी रक्षा करें। भगवान् वैकुण्ठ तुम्हारे चलते समय तथा लक्ष्मीपति नारायण तुम्हारे बैठते समय तुम्हारी रक्षा करें। इसी

तरह भगवान् यज्ञभुक, जिनसे सारे दुष्टग्रह भयभीत रहते हैं तुम्हारे भोग के समय सदैव तुम्हारी रक्षा करें।

डाकिन्यो यातुधान्यश्च कुष्माण्डा येऽर्भकग्रहाः ।
भूतप्रेतपिशाचाश्च यक्षरक्षोविनायकाः ॥ २७॥
कोटरा रेवती ज्येष्ठा पूतना मातृकादयः ।
उन्मादा ये ह्यपस्मारा देहप्राणेन्द्रियद्रुहः ॥ २८॥
स्वप्नदृष्टा महोत्पाता वृद्धा बालग्रहाश्च ये ।
सर्वे नश्यन्तु ते विष्णोर्नामग्रहणभीरवः ॥ २९॥

शब्दार्थ

डाकिन्यः यातुधान्यः च कुष्माण्डाः—डाइनें, चुडैलें, बच्चों की दुश्मनें; ये—जो हैं; अर्भक-ग्रहाः—बच्चों के लिए अशुभ नक्षत्रों तुल्य; भूत—दुष्टात्माएँ; प्रेत—प्रेत; पिशाचाः—भूतों के ही तुल्य दुष्टात्माएँ; च—भी; यक्ष—यक्षगण; रक्षः—राक्षसगण; विनायकाः—विनायक नाम के; कोटरा—कोटरा नामक; रेवती—रेवती नामक; ज्येष्ठा—ज्येष्ठा नामक; पूतना—पूतना नामक; मातृका-आदयः—मातृका इत्यादि दुष्टिनें; उन्मादाः—उन्माद उत्पन्न करने वाली; ये—जो अन्य; हि—निस्सन्देह; अपस्माराः—स्मृति हानि करने वाली; देह-प्राण-इन्द्रिय—शरीर, प्राण तथा इन्द्रियों को; द्रुहः—कष्ट देने वाली; स्वप्न-दृष्टाः—बुरे सपने लाने वाले, दुष्टात्मा; महा-उत्पाताः—महान् उत्पात मचाने वाले; वृद्धाः—अनुभवी; बाल-ग्रहाः च—तथा बालकों पर आक्रमण करने वाले; ये—जो; सर्वे—सभी; नश्यन्तु—विनष्ट हों; ते—वे; विष्णोः—भगवान् विष्णु के; नाम-ग्रहण—नाम लेने से; भीरवः—डर जाते हैं।.

डाकिनी, यातुधानी तथा कुष्माण्ड नामक दुष्ट डाइनें बच्चों की सबसे बड़ी शत्रु हैं तथा भूत, प्रेत, पिशाच, यक्ष, राक्षस तथा विनायक जैसे दुष्टात्माओं के साथ कोटरा, रेवती, ज्येष्ठा, पूतना तथा मातृका जैसी डाइनें भी सदैव शरीर, प्राण तथा इन्द्रियों को कष्ट पहुँचाने के लिए तैयार रहती हैं जिससे स्मृति की हानि, उन्माद तथा बुरे स्वप्न उत्पन्न होते हैं। वे दुष्ट अनुभवी वृद्धों की तरह बच्चों के लिए विशेष रूप से भारी उत्पात खड़ा करते हैं। किन्तु भगवान् विष्णु के नामोच्चार से ही उन्हें नष्ट किया जा सकता है क्योंकि जब भगवान् विष्णु का नाम प्रतिध्वनित होता है, तो वे सब डर जाते हैं और दूर भाग जाते हैं।

तात्पर्य : *ब्रह्म-संहिता* (५.३३) में कहा गया है—

अद्वैतमच्युतमनादिमनन्तरूपम्

आद्यं पुराणपुरुषं नव यौवनं च।

वेदेषु दुर्लभमदुर्लभमात्मभक्तौ

गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥

“मैं उन भगवान् गोविन्द की पूजा करता हूँ जो आदि पुरुष हैं, अद्वैत हैं, अच्युत हैं और अनादि

हैं। यद्यपि वे अनन्त रूपों में विस्तार करते हैं फिर भी वे भौतिक हैं और सबसे वृद्ध पुरुष होकर भी वे सदैव युवक लगते हैं। ऐसे नित्य, आनन्दमय तथा सर्व रूपों वाले भगवान् को वेदों के पुस्तकीय ज्ञान से नहीं जाना जा सकता अपितु वे स्वत: शुद्ध अनन्य भक्तों के समक्ष प्रकट होते हैं।''

हम शरीर को तिलक से सजाते समय विष्णु के बारह नामों का उच्चारण करके शरीर को सुरक्षा प्रदान करते हैं। यद्यपि गोविन्द या भगवान् विष्णु एक हैं किन्तु उनके विभिन्न नाम तथा रूप हैं जिनसे वे भिन्न भिन्न कार्य करते हैं। किन्तु यदि किसी को एकसाथ सारे नाम स्मरण नहीं रहते तो वह एकमात्र 'भगवान् विष्णु' 'भगवान् विष्णु' 'भगवान् विष्णु' नामोच्चारण और भगवान् विष्णु का सदैव चिन्तन कर सकता है। *विष्णोराराधनं परम्*—पूजा का यही सर्वोच्च रूप है। यदि कोई निरन्तर विष्णु का स्मरण करे तो भले ही उसे दुष्टात्माएँ सताती हों किन्तु उसकी रक्षा निस्सन्देह हो सकती है। *आयुर्वेदशास्त्र* की संस्तुति है—*औषधि चिन्तयेत् विष्णुम्*—यहाँ तक कि दवा खाते समय भी विष्णु का स्मरण करे क्योंकि दवा ही सब कुछ नहीं। भगवान् विष्णु असली रक्षक हैं। यह भौतिक जगत विपदाओं से भरा हुआ है (*पदं पदं यद् विपदाम्*)। अत: मनुष्य को वैष्णव बनकर निरन्तर विष्णु का चिन्तन करना चाहिए। हरे कृष्ण महामंत्र का कीर्तन करने से यह अधिक सुगम हो जाता है। इसीलिए श्री चैतन्य महाप्रभु ने संस्तुति की है—*कीर्तनीय:सदा हरि:, परं विजयते श्रीकृष्णसङ्कीर्तनम् तथा कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसंग: परं व्रजेत्।*

श्रीशुक उवाच
इति प्रणयबद्धाभिर्गोपीभि: कृतरक्षणम् ।
पाययित्वा स्तनं माता सन्न्यवेशयदात्मजम् ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

श्री-शुक: उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; **इति**—इस तरह; **प्रणय-बद्धाभि:**—मातृस्नेह से बँधे हुए; **गोपीभि:**—यशोदा आदि प्रौढ़ गोपियों के द्वारा; **कृत-रक्षणम्**—बालक की रक्षा करने के लिए सभी उपाय किये गये; **पाययित्वा**—इसके बाद बालक को पिला कर; **स्तनम्**—स्तन; **माता**—माता यशोदा ने; **सन्न्यवेशयत्**—बिस्तर पर लिटा दिया; **आत्मजम्**—अपने बेटे को।

श्रील शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : माता यशोदा समेत सारी गोपियाँ मातृस्नेह से बँधी हुई थीं। इस तरह बालक की रक्षा के लिए मंत्रोच्चारण के बाद माता यशोदा ने बच्चे को अपना दूध पिलाया और उसे बिस्तर पर लिटा दिया।

तात्पर्य : जब बालक अपनी माता के स्तनों का दूध पीता है, तो यह स्वस्थता का शुभ लक्षण है।

इसलिए वृद्धा गोपियाँ कृष्ण को सुरक्षा प्रदान करने के लिए केवल मंत्रोच्चारण से ही संतुष्ट नहीं हुईं अपितु उन्होंने इसकी भी परीक्षा की कि उनके बालक का स्वास्थ्य ठीक है कि नहीं। जब बालक ने स्तन से दूध चूसा तो इससे पुष्टि हो गई कि बालक स्वस्थ है और जब गोपियाँ पूरी तरह तुष्ट हो गईं तो उन्होंने बालक को उसके बिस्तरे पर लिटा दिया।

तावन्नन्दादयो गोपा मथुराया व्रजं गताः ।
विलोक्य पूतनादेहं बभूवुरतिविस्मिताः ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

तावत्—तब तक, इस बीच; नन्द-आदयः—नन्द महाराज इत्यादि; गोपाः—सारे ग्वाले; मथुरायाः—मथुरा से; व्रजम्—वृन्दावन; गताः—वापस आ गये; विलोक्य—देखकर; पूतना-देहम्—पूतना के मृत विशाल शरीर को; बभूवुः—हो गये; अति—अत्यन्त; विस्मिताः—आश्चर्यचकित।

तब तक नन्द महाराज समेत सारे ग्वाले मथुरा से लौट आये और जब उन्होंने रास्ते में पूतना के विशाल काम शरीर को मृत पड़ा देखा तो वे अत्यन्त आश्चर्यचकित हुए।

तात्पर्य : नन्द महाराज के आश्चर्य को कई प्रकार से समझा जा सकता है। पहला तो यह कि ग्वालों ने इसके पूर्व वृन्दावन में इतना विशाल शरीर नहीं देखा था इसलिए सभी लोग आश्चर्यचकित थे। फिर वे विचार करने लगे कि आखिर इतना विशाल शरीर आया कहाँ से? क्या यह आकाश से गिरा था या क्या किसी भूल से या किसी योगिनी की शक्ति से वे वृन्दावन की बजाय किसी दूसरे स्थान पहुँच गये हैं? वे ठीक से अनुमान नहीं लगा सके कि क्या हुआ इसीलिए वे आश्चर्यचकित थे।

नूनं बतर्षिः सञ्जातो योगेशो वा समास सः ।
स एव दृष्टो ह्युत्पातो यदाहानकदुन्दुभिः ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

नूनम्—निश्चय ही; बत—मेरे दोस्तो; ऋषिः—सन्त पुरुष; सञ्जातः—बन गया है; योग-ईशः—योग शक्ति का स्वामी; वा—अथवा; समास—बन गया है; सः—उसने (वसुदेव ने); सः—वही; एव—निस्सन्देह; दृष्टः—देखा गया; हि—क्योंकि; उत्पातः—उत्पात; यत्—जो; आह—भविष्यवाणी की गई; आनकदुन्दुभिः—वसुदेव द्वारा।

नन्द महाराज तथा अन्य ग्वाले चिल्ला पड़े: मित्रो, जान लो कि आनकदुन्दुभि अर्थात् वसुदेव बहुत बड़ा सन्त या योगेश्वर बन चुका है। अन्यथा वह इस उत्पात को पहले से कैसे देख सकता था और हमसे इसकी भविष्य वाणी कैसे कर सकता था?

तात्पर्य : इस श्लोक से क्षत्रियों तथा बेचारे वैश्यों का अन्तर प्रकट होता है। वसुदेव राजनीतिक

स्थिति का अध्ययन करके देख सकते थे कि क्या होने वाला है जबकि खेतिहरों के राजा नन्द महाराज इतना ही अनुमान लगा सकते थे कि वसुदेव महाराज परम सन्त हैं और उन्हें योगशक्ति प्राप्त हो चुकी है। वास्तव में वसुदेव के अधीन सारी योगशक्तियाँ थीं अन्यथा वे कृष्ण के पिता कैसे बनते? किन्तु वास्तविकता तो यह थी कि कंस की राजनैतिक हलचलों का अध्ययन करके ही उन्होंने उत्पातों को पहले ही देख लिया था और नन्द महाराज को सतर्कता बरतने के लिए सावधान किया था। नन्द महाराज इस घटना की भविष्यवाणी को वसुदेव की आश्चर्यजनक योगशक्ति से सम्भव मान रह थे। हठयोग के अभ्यास द्वारा प्राप्त योगशक्ति से मनुष्य भविष्य को जान सकता है।

कलेवरं परशुभिश्छित्त्वा तत्ते व्रजौकसः ।
दूरे क्षिप्त्वावयवशो न्यदहन्काष्ठवेष्टितम् ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

कलेवरम्—पूतना के विशाल शरीर को; **परशुभिः**—कुल्हाड़ियों या फरसों से; **छित्त्वा**—खण्ड खण्ड करके; **तत्**—उस (शरीर को); **ते**—वे सभी; **व्रज-ओकसः**—व्रजवासी; **दूरे**—बहुत दूर; **क्षिप्त्वा**—फेंक कर; **अवयवशः**—शरीर के विभिन्न खंड; **न्यदहन्**—जला दिया; **काष्ठ-वेष्टितम्**—लकड़ी से ढका हुआ।

व्रजवासियों ने पूतना के शरीर को फरसों से खण्ड खण्ड कर डाला। फिर उन खण्डों को दूर फेंक दिया और उन्हें लकड़ी से ढक कर भस्मीभूत कर डाला।

तात्पर्य : यह प्रथा है कि साँप को मारने के बाद उसके शरीर को खंड खंड कर दिया जाता है कि कहीं हवा के संसर्ग से वह पुन: जीवित न हो उठे। साँप को मार देना ही काफी नहीं है, मारने के बाद इसे खंड खंड करके जला देना चाहिए। इससे खतरा जाता रहेगा। पूतना एक विशाल सर्प की तरह थी इसलिए ग्वालों ने इन्हीं सावधानियों को ध्यान में रखकर उसके शरीर को जला कर क्षार कर डाला।

दह्यमानस्य देहस्य धूमश्चागुरुसौरभः ।
उत्थितः कृष्णनिर्भुक्तसपद्याहतपाप्मनः ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

दह्यमानस्य—जलाकर क्षार करते समय; **देहस्य**—पूतना के शरीर का; **धूमः**—धुँआ; **च**—तथा; **अगुरु-सौरभः**—अगुरु जैसा सुगन्धित धुँआ; **उत्थितः**—शरीर से उठा हुआ; **कृष्ण-निर्भुक्त**—कृष्ण द्वारा स्तन चूसे जाने से; **सपदि**—तुरन्त; **आहत-पाप्मनः**—उसका भौतिक शरीर आध्यात्मिक बन गया अथवा वह भवबन्धन से छूट गया।

चूँकि कृष्ण ने उस राक्षसी पूतना का स्तनपान किया था, इसतरह जब कृष्ण ने उसे मारा तो वह तुरन्त समस्त भौतिक कल्मष से मुक्त हो गई। उसके सारे पाप स्वतः ही दूर हो गये अतएव

जब उसके विशाल शरीर को जलाया जा रहा था, तो उसके शरीर से निकलने वाला धुँआ अगुरु की सुगन्ध सा महक रहा था।

तात्पर्य : कृष्णभावनामृत का ऐसा ही प्रभाव होता है। यदि कोई व्यक्ति अपनी इन्द्रियों को भगवान् की सेवा में लगा कर किसी तरह कृष्णभावनाभावित हो जाता है, तो वह सारे भौतिक कल्मष से तुरन्त मुक्त हो जाता है। *शृण्वतां स्वकथा: कृष्ण: पुण्यश्रवणकीर्तन:* (*भागवत* १.२.१७)। कृष्ण की लीलाओं को सुनना शुद्ध जीवन की शुरुआत है। *पुण्यश्रवणकीर्तन:*—केवल सुनने तथा कीर्तन करने से मनुष्य शुद्ध बन जाता है। अत: भक्ति करते समय *श्रवणकीर्तन* अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। तब मनुष्य शुद्ध इन्द्रियों से भगवान् की सेवा करना शुरू करता है (*हृषीकेण हृषीकेशसेवनम्*)। *भक्तिरुच्यते*—यह भक्ति कहलाती है। जब येन केन प्रकारेण, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रीति से पूतना से स्तनपान करा कर भगवान् की सेवा में उसे लगाया गया तो वह तुरन्त शुद्ध बन गई, यहाँ तक कि जब उसका दुष्ट भौतिक शरीर जलकर क्षार हो गया तो उससे अगुरु की सी सुगन्ध निकली जो कि अत्यन्त अच्छी लगने वाली सुगंधित जड़ी-बूटी है।

पूतना लोकबालघ्नी राक्षसी रुधिराशना ।
जिघांसयापि हरये स्तनं दत्त्वाप सद्गतिम् ॥ ३५ ॥
किं पुन: श्रद्धया भक्त्या कृष्णाय परमात्मने ।
यच्छन्प्रियतमं किं नु रक्तास्तन्मातरो यथा ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

पूतना—पेशेवर राक्षसी पूतना; लोक-बाल-घ्नी—जो मनुष्यों के बालकों को मार डालती थी; राक्षसी—राक्षसी; रुधिर-अशना—खून की प्यासी; जिघांसया—कृष्ण को मार डालने की इच्छा से (कृष्ण से ईर्ष्या करने तथा कंस द्वारा आदेश दिये जाने से); अपि—भी; हरये—भगवान् को; स्तनम्—अपने स्तन; दत्त्वा—प्रदान करके; आप—प्राप्त किया; सत्-गतिम्—वैकुण्ठ का सर्वोच्च पद; किम्—क्या कहा जाय; पुन:—फिर; श्रद्धया—श्रद्धायुत; भक्त्या—भक्तिपूर्वक; कृष्णाय—कृष्ण को; परमात्मने—परम पुरुष; यच्छन्—भेंट करते हुए; प्रिय-तमम्—अत्यन्त प्रिय; किम्—कुछ; नु—निस्सन्देह; रक्ता:—सम्बन्धी; तत्-मातर:—कृष्ण की स्नेहमयी माताएँ; यथा—जिस तरह।

पूतना सदा ही मानव शिशुओं के खून की प्यासी रहती थी और इसी अभिलाषा से वह कृष्ण को मारने आई थी। किन्तु कृष्ण को स्तनपान कराने से उसे सर्वोच्च पद प्राप्त हो गया। तो भला उनके विषय में क्या कहा जाय जिनमें माताओं के रूप में कृष्ण के लिए सहज भक्ति तथा स्नेह था और जिन्होंने अपना स्तनपान कराया या कोई अत्यन्त प्रिय वस्तु भेंट की थी जैसा कि माताएँ करती रहती हैं।

तात्पर्य : पूतना को कृष्ण से कोई स्नेह न था, प्रत्युत वह उनसे ईर्ष्या करती थी और उन्हें मार डालना चाहती थी। फिर भी जाने-अनजाने उसने उन्हें स्तनपान करा कर परमगति प्राप्त की। किन्तु वात्सल्य प्रेम में अनुरक्त भक्तों की भेंट अत्यन्त निष्ठायुक्त होती है। माता अपने पुत्र को स्नेह तथा प्रेम से कोई वस्तु भेंट करना चाहती है, तो उसमें ईर्ष्या का लेशमात्र भी नहीं रहता। अत: हम यहाँ तुलनात्मक अध्ययन कर सकते हैं। यदि पूतना उपेक्षा भाव से ईर्ष्यापूर्वक स्तनपान करा कर आध्यात्मिक जीवन का ऐसा सर्वोच्च पद प्राप्त कर सकती है, तो भला माता यशोदा तथा अन्य गोपियों के विषय में क्या कहा जाय जिन्होंने कृष्ण की सेवा लाड़-प्यार के साथ की और कृष्ण की तुष्टि के लिए हर वस्तु अर्पित कर दी? गोपियों को स्वत: परम पद प्राप्त हुआ। इसीलिए श्री चैतन्य महाप्रभु ने वात्सल्य प्रेम या माधुर्य प्रेम में गोपियों के स्नेह को ही जीवन की सर्वोच्च सिद्धि बतलाया (*रम्या काचिदुपासना व्रजवधूवर्गेण या कल्पिता*)।

पद्भ्यां भक्तहृदिस्थाभ्यां वन्द्याभ्यां लोकवन्दितैः ।
अङ्गं यस्याः समाक्रम्य भगवानपि तत्स्तनम् ॥ ३७॥
यातुधान्यपि सा स्वर्गमवाप जननीगतिम् ।
कृष्णभुक्तस्तनक्षीराः किमु गावोऽनुमातरः ॥ ३८॥

शब्दार्थ

पद्भ्याम्—दोनों चरणकमलों से; भक्त-हृदि-स्थाभ्याम्—जिनके हृदय में भगवान् निरन्तर स्थित रहते हैं; वन्द्याभ्याम्—जिनकी सदैव वन्दना की जानी चाहिए; लोक-वन्दितैः—ब्रह्मा तथा शिव द्वारा, जो तीनों लोकों के वासियों द्वारा प्रशंसित हैं; अङ्गम्—शरीर को; यस्याः—जिस (पूतना) का; समाक्रम्य—आलिंगन करके; भगवान्—भगवान्; अपि—भी; तत्-स्तनम्—उस स्तन को; यातुधानी अपि—यद्यपि वह भूतनी थी; सा—उसने; स्वर्गम्—दिव्य धाम को; अवाप—प्राप्त किया; जननी-गतिम्—माता के पद को; कृष्ण-भुक्त-स्तन-क्षीराः—चूँकि उनके स्तनों का पान कृष्ण ने किया था; किम् उ—क्या कहा जाय; गावः—गौवें; अनुमातरः—माताओं की ही तरह जिन्होंने कृष्ण को अपना स्तन-पान कराया।

भगवान् कृष्ण शुद्ध भक्तों के हृदय में सदैव स्थित रहते हैं और ब्रह्माजी तथा भगवान् शिवजी जैसे पूज्य पुरूषों द्वारा सदैव वन्दनीय हैं। चूँकि कृष्ण ने पूतना के शरीर का आलिंगन अत्यन्त प्रेमपूर्वक किया था और भूतनी होते हुए भी उन्होंने उसका स्तनपान किया था इसलिए उसे दिव्य लोक में माता की गति और सर्वोच्च सिद्धि मिली। तो भला उन गौवों के विषय में क्या कहा जाय जिनका स्तनपान कृष्ण बड़े ही आनन्द से करते थे और जो बड़े ही प्यार से माता के ही समान कृष्ण को अपना दूध देती थीं?

तात्पर्य : ये श्लोक बतलाते हैं कि भगवान् की भक्ति चाहे प्रत्यक्ष की जाय या अप्रत्यक्ष, ज्ञान से

की जाय या अनजाने, वह सफल होती है। पूतना न भक्त थी न ही अभक्त, वह तो कृष्ण को मारने के लिए कंस द्वारा भेजी गई राक्षसी थी। फिर भी पहले उसने अत्यन्त सुन्दर स्त्री का वेश धारण किया और कृष्ण के पास उसी तरह पहुँची जैसे स्नेहमयी माता जाती है, जिससे माता यशोदा और रोहिणी ने उसकी निष्कपटता पर सन्देह नहीं किया। भगवान् ने इन सब बातों को ध्यान में रखा। अत: उसे माता यशोदा जैसा ही पद प्राप्त हुआ। जैसाकि श्रील विश्वाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने बतलाया है, ऐसी स्थिति में कोई व्यक्ति अनेक भूमिकाएँ निभा सकता है। पूतना को तुरन्त वैकुण्ठ लोक भेज दिया गया जिसे कभी कभी स्वर्ग भी कह दिया जाता है। इस श्लोक में वर्णित स्वर्ग कोई भौतिक लोक नहीं अपितु दिव्य लोक है। वैकुण्ठ लोक में पूतना को धाय का पद प्राप्त हुआ (*धात्र्युचिताम्*) जैसाकि उद्धव ने बतलाया है। गोलोक वृन्दावन में माता यशोदा की सहायता करने के लिए उसे धाय तथा दासी का पद दिया गया।

पयांसि यासामपिबत्पुत्रस्नेहस्नुतान्यलम् ।
भगवान्देवकीपुत्रः कैवल्याद्यखिलप्रदः ॥ ३९ ॥
तासामविरतं कृष्णे कुर्वतीनां सुतेक्षणम् ।
न पुनः कल्पते राजन्संसारोऽज्ञानसम्भवः ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

पयांसि—दूध (शरीर से निकला); यासाम्—उन सबों का; अपिबत्—कृष्ण ने पिया; पुत्र-स्नेह-स्नुतानि—मातृ स्नेह के कारण, न कि बनावटी ढंग से, गोपियों के शरीर से निकला दूध; अलम्—पर्याप्त; भगवान्—भगवान्; देवकी-पुत्रः—देवकी के पुत्र रूप में प्रकट हुए; कैवल्य-आदि—यथा मुक्ति या ब्रह्म तेज में लीन होना; अखिल-प्रदः—ऐसे समस्त वरों के प्रदाता; तासाम्—उन सारी गोपियों का; अविरतम्—निरन्तर; कृष्णे—कृष्ण में; कुर्वतीनाम्—करते हुए; सुत-ईक्षणम्—माता द्वारा अपने शिशु को निहारना; न—कभी नहीं; पुनः—फिर; कल्पते—कल्पना की जा सकती है; राजन्—हे राजा परीक्षित; संसारः—जन्म-मृत्यु का भौतिक बन्धन; अज्ञान-सम्भवः—सुखी बनने की कामना करने वाले मूर्ख व्यक्तियों द्वारा अनजाने में स्वीकृत किया गया।.

भगवान् कृष्ण अनेक वरों के प्रदाता हैं जिनमें कैवल्य अर्थात् ब्रह्म तेज में तादात्म्य भी सम्मिलित है। उन भगवान् के लिए गोपियों ने सदैव मातृ-प्रेम का अनुभव किया और कृष्ण ने पूर्ण संतोष के साथ उनका स्तन-पान किया। अतएव अपने माता-पुत्र के सम्बन्ध के कारण विविध पारिवारिक कार्यों में संलग्न रहने पर भी किसी को यह नहीं सोचना चाहिए कि अपना शरीर त्यागने पर वे इस भौतिक जगत में लौट आईं।

तात्पर्य : यहाँ कृष्णभावनामृत के लाभ का वर्णन हुआ है। कृष्णभावनामृत क्रमश: दिव्य स्तर पर

विकसित होता है। मनुष्य परम पुरुष, परम स्वामी, परम मित्र, परम पुत्र या परम युगल प्रेमी के रूप में कृष्ण का चिन्तन कर सकता है। यदि कृष्ण से किसी का इनमें से किसी रूप में दिव्य सम्बन्ध होता है, तो समझिये कि उसके भौतिक जीवन का अन्त हो गया है। जैसाकि *भगवद्गीता* (४.९) में पुष्टि हुई है—*त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति*—ऐसे भक्तों के लिए भगवद्धाम वापस जाना सुनिश्चित है। *न पुन: कल्पते राजन् संसारोऽज्ञानसम्भव: ।* यह श्लोक इस बात की भी पुष्टि होती है कि जो भक्त कृष्ण से किसी विशेष सम्बन्ध में बँध कर निरन्तर ध्यान करते हैं, वे इस जगत में फिर नहीं लौटते। इस संसार में भी वही सम्बन्ध हैं। मनुष्य सोचता हैं 'यह मेरा पुत्र है', 'यह मेरी पत्नी है' 'यह मेरा प्रेमी है' या 'यह मेरा मित्र है।' किन्तु ये सम्बन्ध क्षणिक माया हैं। *अज्ञानसम्भव:*—ऐसी चेतना अज्ञान के कारण उत्पन्न होती है। किन्तु जब यही चेतना कृष्णभावनामृत में जागृत होती है, तो उसे पुन: आध्यात्मिक जीवन प्राप्त होता है और वह निश्चित रूप से भगवद्धाम वापस जाता है। यद्यपि गोपियाँ रोहिणी तथा माता यशोदा की सखियाँ थीं और कृष्ण को अपना स्तनपान कराती थीं परन्तु प्रत्यक्षत: कृष्ण की माताएँ न थीं। किन्तु उन्हें भगवद्धाम जाने का तथा कृष्ण की सासें, दासियाँ आदि बनने का वैसा ही अवसर प्राप्त हुआ जैसाकि रोहिणी तथा यशोदा को मिला। *संसार* शब्द अपने शरीर, घर, पति या पत्नी तथा बच्चों के प्रति अनुरक्ति का द्योतक है, किन्तु गोपियाँ तथा वृन्दावन के अन्य वासी अपने पति तथा घर के प्रति वैसा ही स्नेह तथा अनुरक्ति रखते हुए भी कृष्ण को अपने स्नेह का केन्द्र बनाये हुए थे। इसीलिए अगले जन्म में उन्हें गोलोक वृन्दावन जाने तथा कृष्ण के साथ रहकर शाश्वत दिव्य सुख-भोग की प्राप्ति निश्चित है। इस भौतिक जगत से छूट कर दिव्य पद को प्राप्त करने और भगवद्धाम जाने का सरलतम मार्ग भक्तिविनोद ठाकुर ने सुझाया है—*कृष्णेर संसार कर छाडिऽअनाचार*—सारे पाप कर्मों को त्याग कर कृष्ण के परिवार में रहना चाहिए। तभी मुक्ति निश्चित है।

कटधूमस्य सौरभ्यमवघ्राय व्रजौकस: ।
किमिदं कुत एवेति वदन्तो व्रजमाययु: ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

कट-धूमस्य—पूतना के शरीर के विभिन्न अंगों के जलने से उत्पन्न धुँए की; **सौरभ्यम्**—सुगन्धि; **अवघ्राय**—सूँघ कर; **व्रज-ओकस:**—दूर दूर के व्रजवासी; **किम् इदम्**—यह सुगन्धि कैसी है; **कुत:**—कहाँ से आ रही है; **एव**—निस्सन्देह; **इति**—इस तरह; **वदन्त:**—बातें करते; **व्रजम्**—व्रजभूमि में; **आययु:**—पहुँचे।

पूतना के जलते शरीर से निकले धुँए की सुगन्ध को सूँघ कर दूर दूर के अनेक व्रजवासी

आश्चर्यचकित थे और पूछ रहे थे, "यह सुगन्धि कहाँ से आ रही है?" इस तरह वे उस स्थान तक गये जहाँ पर पूतना का शरीर जलाया जा रहा था।

तात्पर्य : शव के जलने से निकले धुँए की गन्ध रुचिकर नहीं होती। इसीलिए ऐसी अद्‍भुत सुगंधि से व्रज के निवासी चकित थे।

ते तत्र वर्णितं गोपैः पूतनागमनादिकम् ।
श्रुत्वा तन्निधनं स्वस्ति शिशोश्चासन्सुविस्मिताः ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

ते—आये हुए सारे लोग; तत्र—वहाँ (नन्द महाराज के राज्य के पड़ोस में); वर्णितम्—वर्णित; गोपैः—ग्वालों द्वारा; पूतना-आगमन-आदिकम्—किस तरह पूतना आई तथा उसने उत्पात मचाया इन सबके विषय में; श्रुत्वा—सुनकर; तत्-निधनम्—तथा उसके मरने के विषय में; स्वस्ति—मंगल हो; शिशोः—बालक का; च—तथा; आसन्—अर्पित किया; सु-विस्मिताः—जो कुछ घटा था उससे आश्चर्यचकित होकर।

जब दूर दूर से आये व्रजवासियों ने पूरी कथा सुनी कि किस तरह पूतना आई और फिर कृष्ण द्वारा मारी गई तो वे हत्‌प्रभ रह गये और उन्होंने पूतना के मारने के अद्‍भुत कार्य के लिए उस बालक को आशीर्वाद दिया। निस्सन्देह नन्द महाराज वसुदेव के अत्यन्त कृतज्ञ थे जिन्होंने इस घटना को पहले ही देख लिया था। उन्होंने यह सोचकर वसुदेव को धन्यवाद दिया कि वे कितने अद्‍भुत हैं।

नन्दः स्वपुत्रमादाय प्रेत्यागतमुदारधीः ।
मूर्ध्न्युपाघ्राय परमां मुदं लेभे कुरूद्वह ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

नन्दः—महाराज नन्द; स्व-पुत्रम् आदाय—अपने पुत्र कृष्ण को अपनी गोद में लेकर; प्रेत्य-आगतम्—मानो कृष्ण मृत्यु के मुख से लौट आये हों (कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था कि बालक ऐसे संकट से बच जाएगा); उदार-धीः—उदार तथा सरल होने से; मूर्ध्नि—कृष्ण के सिर पर; उपाघ्राय—सूँघ कर; परमाम्—सर्वोच्च; मुदम्—शान्ति; लेभे—प्राप्त किया; कुरु-उद्वह—हे महाराज परीक्षित।

हे कुरुश्रेष्ठ महाराज परीक्षित, नन्द महाराज अत्यन्त उदार एवं सरल स्वभाव के थे। उन्होंने तुरन्त अपने पुत्र कृष्ण को अपनी गोद में उठा लिया मानो कृष्ण मृत्यु के मुख से लौटे हों और अपने पुत्र के सिर को सूँघ कर निस्सन्देह दिव्य आनन्द का अनुभव किया।

तात्पर्य : नन्द महाराज यह नहीं समझ पाये कि उनके घर के लोगों ने किस तरह पूतना को घर में घुसने दिया, न ही वे इस स्थिति की गम्भीरता का अनुमान लगा सके। वे यह नहीं समझ पाये कि कृष्ण

ने पूतना को मारना चाहा था और उनकी लीलाएँ योगमाया द्वारा सम्पन्न की गईं। नन्द महाराज ने तो केवल इतना ही सोचा कि किसी ने उनके घर में घुस कर उत्पात मचा दिया है। यही नन्द महाराज का भोलापन था।

य एतत्पूतनामोक्षं कृष्णस्यार्भकमद्भुतम् ।
शृणुयाच्छ्रद्धया मर्त्यो गोविन्दे लभते रतिम् ॥ ४४॥

शब्दार्थ

यः—जो कोई; एतत्—यह; पूतना-मोक्षम्—पूतना का मोक्ष; कृष्णस्य—कृष्ण का; आर्भकम्—बाल-लीला; अद्भुतम्—अद्‌भुत; शृणुयात्—सुने; श्रद्धया—श्रद्धा तथा भक्ति पूर्वक; मर्त्यः—इस लोक का कोई भी व्यक्ति; गोविन्दे—आदि पुरुष गोविन्द के प्रति; लभते—पाता है; रतिम्—अनुरक्ति।

जो कोई भी भगवान् कृष्ण द्वारा पूतना के मारे जाने के विषय में श्रद्धा तथा भक्तिपूर्वक श्रवण करता है और कृष्ण की ऐसी बाल लीलाओं के सुनने में अपने को लगाता है उसे निश्चय ही आदि पुरुष रूप गोविन्द के प्रति अनुरक्ति प्राप्त होती है।

तात्पर्य : यह घटना, जिसमें उस डाइन ने बच्चे को मारने का प्रयास किया किन्तु स्वयं मारी गई, निश्चय ही अद्‌भुत है। इसीलिए इस श्लोक में *अद्‌भुतम्* शब्द प्रयुक्त हुआ है, जिसका अर्थ है विशेष रूप से आश्चर्यजनक। कृष्ण अपने विषय में अनेक अद्‌भुत कथाएँ छोड़ गये हैं। 'कृष्ण' नामक ग्रन्थ में इन कथाओं को पढ़ने मात्र से मनुष्य को इस भौतिक जगत से मुक्ति प्राप्त हो जाती है और वह आदि पुरुष गोविन्द के प्रति क्रमशः अनुरक्ति तथा भक्ति उत्पन्न कर लेता है।

इस तरह श्रीमद्‌भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत 'पूतना वध' नामक छठे अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter सात

तृणावर्त का वध

इस अध्याय में शकट भंजन, तृणावर्त असुर का वध तथा श्रीकृष्ण द्वारा अपने मुख के भीतर सारे ब्रह्माण्ड का प्रदर्शन नामक श्रीकृष्ण लीलाओं का वर्णन किया गया है।

जब शुकदेव गोस्वामी ने देखा कि महाराज परीक्षित भगवान् कृष्ण की बाल-लीलाओं को सुनने के लिए उत्सुक हैं, तो वे परम प्रसन्न हुए और उनका वर्णन करते रहे। जब कृष्ण केवल तीन मास के

थे और पलटने का प्रयत्न कर रहे थे तथा अभी घुटनों के बल में भी असमर्थ थे तो माता यशोदा ने अपनी सखियों के साथ बच्चे के सौभाग्य के लिए अनुष्ठान करना चाहा। ऐसा अनुष्ठान प्राय: बच्चों वाली स्त्रियों के साथ मिल कर किया जाता है। जब माता यशोदा ने देखा कि बालक कृष्ण सोने वाला है, तो अन्य कार्यों में व्यस्त होने के कारण वे उसे घरेलू छकड़े (*शकट*) के नीचे सुलाकर शुभ अनुष्ठान विषयक कार्य करने लगीं। इस छकड़े के नीचे एक पालना था और यशोदा ने इसी पालने में कृष्ण को सुलाया था। बालक सो रहा था किन्तु सहसा जग जाने से वह अपने नन्हें-नन्हें पाँव चलाने लगा। इससे छकड़ा हिल गया और बड़े धमाके के साथ टूट कर चूर चूर हो गया और इसमें रखी सभी वस्तुएँ बिखर गईं। पास ही खेल रहे बालकों ने माता यशोदा को फौरन बतलाया कि छकड़ा टूट गया है, अत: माता यशोदा अन्य गोपियों के साथ अत्यन्त चिन्तित होकर वहाँ पहुँचीं। माता यशोदा ने तुरन्त बच्चे को अपनी गोद में उठा लिया और उसे अपना स्तन-पान कराया। इसके बाद ब्राह्मणों ने अनेक प्रकार के वैदिक अनुष्ठान कराये। उन ब्राह्मणों ने बच्चे की असली पहचान न जानते हुए भी बच्चे को आशीर्वाद दिया।

एक अन्य दिन, जब माता यशोदा बच्चे को गोद में लिए बैठी थीं तो उन्हें सहसा लगा कि बच्चे में सारे ब्रह्माण्ड का भार समा गया है। वे इतनी अचम्भित हुईं कि बच्चे को नीचे बैठाना पड़ा। तभी कंस का एक दास तृणावर्त चक्रवात (अंधड़) के रूप में वहाँ आया और बच्चे को उड़ा ले गया। गोकुल का सारा प्रदेश धूल से भर गया और कोई भी यह न देख पाया कि बालक कहाँ ले जाया गया। सारी गोपियाँ विह्वल थीं क्योंकि बालक धूलभरी आँधी द्वारा उड़ा ले जाया गया था लेकिन वह असुर बालक के भार के कारण आकाश में उसे दूर तक नहीं ले जा सका। वह बालक को नीचे गिरा भी नहीं पा रहा था क्योंकि बालक ने उसे मजबूती से पकड़ रखा था। अत: स्वयं तृणावर्त काफी ऊँचाई से नीचे गिर पड़ा और तुरन्त मर गया। बालक उसके कन्धे को मजबूती से पकड़े हुए था। जब वह असुर गिर पड़ा तो गोपियों ने बच्चे को उठा लिया और उसे माता यशोदा की गोद में लाकर दे दिया। यशोदा माता आश्चर्यचकित थीं किन्तु योगमाया के प्रभाव से कोई यह नहीं जान पाया कि आखिर कृष्ण है कौन और असल में घटना क्या घटी। प्रत्युत प्रत्येक व्यक्ति बच्चे के भाग्य की सराहना करने लगा कि वह ऐसी विपदा से बच गया है। हाँ, नन्द महाराज तो वसुदेव की अद्‌भुत भविष्यवाणी के विषय में ही सोच रहे

थे और वे उस महान् योगी की प्रशंसा करने लगे। बाद में जब बालक माता यशोदा की गोद में अँगड़ाई लेने लगा तो माता यशोदा ने उसके मुख के भीतर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड देखा।

श्रीराजोवाच

येन येनावतारेण भगवान्हरिरीश्वरः ।
करोति कर्णरम्याणि मनोज्ञानि च नः प्रभो ॥ १ ॥
यच्छृण्वतोऽपैत्यरतिर्वितृष्णा
सत्त्वं च शुद्ध्यत्यचिरेण पुंसः ।
भक्तिर्हरौ तत्पुरुषे च सख्यं
तदेव हारं वद मन्यसे चेत् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

श्री-राजा उवाच—राजा ने (शुकदेव गोस्वामी से) पूछा; येन येन अवतारेण—जिन जिन अवतारों के द्वारा प्रदर्शित लीलाएँ; भगवान्—भगवान्; हरिः—हरि; ईश्वरः—नियन्ता; करोति—प्रस्तुत करता है; कर्ण-रम्याणि—कानों को सुनने में सुखद; मनः-ज्ञानि—मन के लिए आकर्षक; च—भी; नः—हम सबों के; प्रभो—हे प्रभु, शुकदेव गोस्वामी; यत्-शृण्वतः—इन कथाओं को सुनने वाले का; अपैति—दूर हो जाता है; अरतिः—अनाकर्षण; वितृष्णा—मन के भीतर का मैल जो हमें कृष्णभावनामृत में अरुचि उत्पन्न कराता है; सत्त्वम् च—हृदय के भीतर अस्तित्व; शुद्ध्यति—शुद्ध बनाता है; अचिरेण—तुरन्त; पुंसः—किसी भी व्यक्ति का; भक्तिः हरौ—भगवान् के प्रति भक्ति; तत्-पुरुषे—वैष्णवों के साथ; च—भी; सख्यम्—संगति के लिए आकर्षण; तत् एव—केवल वह; हारम्—भगवान् के कार्यकलाप जिन्हें सुनना चाहिये और गले में माला के समान रखना चाहिए; वद—कृपा करके कहें; मन्यसे—आप उचित समझते हैं; चेत्—यदि।

राजा परीक्षित ने कहा : हे प्रभु शुकदेव गोस्वामी, भगवान् के अवतारों द्वारा प्रदर्शित विविध लीलाएँ निश्चित रूप से कानों को तथा मन को सुहावनी लगने वाली हैं। इन लीलाओं के श्रवणमात्र से मनुष्य के मन का मैल तत्क्षण धुल जाता है। सामान्यतया हम भगवान् की लीलाओं को सुनने में आनाकानी करते हैं किन्तु कृष्ण की बाल-लीलाएँ इतनी आकर्षक हैं कि वे स्वतःही मन तथा कानों को सुहावनी लगती हैं। इस तरह भौतिक वस्तुओं के विषय में सुनने की अनुरक्ति, जो भवबन्धन का मूल कारण है, समाप्त हो जाती है। मनुष्य में धीरे धीरे भगवान् के प्रति भक्ति एवं अनुरक्ति उत्पन्न होती है और भक्तों के साथ जो हमें कृष्णभावनामृत का योगदान देते हैं, मैत्री बढ़ती है। यदि आप उचित समझते हैं, तो कृपा करके भगवान् की इन लीलाओं के विषय में कहें।

तात्पर्य : जैसाकि *प्रेम-विवर्त* में कहा गया है—

कृष्ण-बहिर्मुख हैया भोग-वाञ्छा करे।

निकटस्थ माया तारे जापटिया धरे॥

हमारा भौतिक जगत माया है, जिसमें हम तरह तरह के भौतिक भोगों की अभिलाषा करते हैं इसलिए हम तरह तरह के शरीर धारण करते रहते हैं (*भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया*)।*असन्नपि क्लेशद आस देह:*—जब तक हमारी यह नश्वर देह रहेगी तब तक अनेक प्रकार के—आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक—क्लेश मिलते रहते हैं। सारे कष्टों का मूल कारण यही है, जिसे कृष्णभावनामृत को जागृत करके ही दूर किया जा सकता है। इसलिये व्यासदेव तथा अन्य मुनियों द्वारा प्रस्तुत सारा वैदिक साहित्य हममें कृष्णभावनामृत को जागृत करने के उद्देश्य से लिखा गया है। यह *श्रवणं कीर्तनं* के जागरण से प्रारम्भ होता है। *शृण्वतां स्वकथा: कृष्ण:* (*भागवत* १.२.१७)। *श्रीमद्भागवत* तथा अन्य वैदिक ग्रंथ केवल कृष्ण के विषय में श्रवण करने के लिए अवसर प्रदान करने के निमित्त हैं। कृष्ण के विभिन्न अवतार हैं। वे सभी अद्‌भुत हैं अतएव वे हमारी उत्कंठा को जागृत करने वाले हैं किन्तु मत्स्य, कूर्म तथा वराह जैसे अवतार कृष्ण के समान आकर्षक नहीं हैं। चूँकि सर्वप्रथम, हममें कृष्ण के विषय में सुनने के लिए कोई आकर्षण नहीं होता इसीलिए यह हमारे कष्टों की जड़ बन जाता है।

किन्तु परीक्षित महाराज विशेष रूप से उल्लेख करते हैं कि बाल कृष्ण की अद्‌भुत लीलाएँ, जो माता यशोदा तथा अन्य व्रजवासियों को विस्मित करने वाली थीं, विशेष रूप से आकर्षक हैं। कृष्ण ने अपने बाल्यकाल से ही पूतना, तृणावर्त तथा शकटासुर का वध किया और अपने मुख के भीतर समूचा ब्रह्माण्ड दिखलाया। इस तरह एक एक करके कृष्ण की लीलाएँ माता यशोदा तथा समस्त व्रजवासियों को अत्यन्त आश्चर्यचकित करती रहीं। कृष्णभावनामृत को जगाने की विधि है—*आदौ श्रद्धा तत: साधुसंग:* (*भक्तिरसामृतसिंधु* १.४.१५)। कृष्ण की लीलाएँ भक्तों से उचित रूप से सुनी जा सकती हैं। यदि वैष्णवों से कृष्ण-लीलाओं के विषय में श्रवण करके थोड़ी-सी भी कृष्ण-भक्ति उत्पन्न की जा सके तो वैष्णवों के प्रति अनुरक्त हुआ जा सकता है क्योंकि वे कृष्णभावनामृत में ही रुचि रखते हैं। इसीलिए परीक्षित महाराज मनुष्यों के लिए संस्तुति करते हैं कि वे कृष्ण की बाल-लीलाओं को सुनें क्योंकि ये लीलाएँ मत्स्य, कूर्म, वराह आदि अवतारों की लीलाओं की अपेक्षा अधिक आकर्षक हैं। शुकदेव गोस्वामी से अधिकाधिक सुनने की इच्छा से महाराज परीक्षित ने उनसे अनुरोध किया कि वे कृष्ण की बाल-लीलाओं का आगे वर्णन करें क्योंकि वे सुनने में सरल हैं तथा अधिकाधिक उत्सुकता

जागृत करने वाली हैं।

अथान्यदपि कृष्णस्य तोकाचरितमद्भुतम् ।
मानुषं लोकमासाद्य तज्जातिमनुरुन्धतः ॥ ३॥

शब्दार्थ

अथ—भी; अन्यत् अपि—अन्य लीलाएँ भी; कृष्णस्य—बालक कृष्ण की; तोक-आचरितम् अद्भुतम्—वे भी अद्भुत बाल-लीलाएँ; मानुषम्—मानो मानवी बालक हों; लोकम् आसाद्य—इस पृथ्वीलोक में मानव समाज में प्रकट होकर; तत्-जातिम्—मानवी बालक की ही तरह; अनुरुन्धतः—अनुकरण किया।

कृपया भगवान् कृष्ण की अन्य लीलाओं का वर्णन करें जो मानवी बालक का अनुकरण करके और पूतना वध जैसे अद्भुत कार्यकलाप करते हुए इस पृथ्वी-लोक में प्रकट हुए।

तात्पर्य : महाराज परीक्षित ने शुकदेव गोस्वामी से विनती की कि वे मानवी बालक के रूप में कृष्ण द्वारा प्रदर्शित बाल्यकाल की लीलाएँ कह सुनायें। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् भिन्न भिन्न कालों में विभिन्न लोकों तथा विभिन्न ब्रह्माण्डों में अवतरित होते हैं और उन स्थानों की प्रकृति के अनुसार वे अपनी असीम शक्ति प्रदर्शित करते हैं। अपनी माता की गोद में बैठने वाला बालक विशालकाय पूतना का वध कर सकता है, यह इस लोक के वासियों के लिए अत्यन्त अद्भुत लगने वाला है किन्तु अन्य लोकों के लोग और भी उन्नत हैं अतएव उन लोकों में कृष्ण इनसे भी अधिक अद्भुत लीलाएँ करते हैं। इस लोक में मानव रूप में कृष्ण का प्राकट्य हमें उच्च लोकें के देवताओं से भी अधिक भाग्यशाली बनाने वाला है। इसीलिए महाराज परीक्षित उनके विषय में सुनने के लिए अधिक उत्सुक थे।

श्रीशुक उवाच
कदाचिदौत्थानिककौतुकाप्लवे
जन्मर्क्षयोगे समवेतयोषिताम् ।
वादित्रगीतद्विजमन्त्रवाचकै-
श्चकार सूनोरभिषेचनं सती ॥ ४॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी आगे बोलते गये; कदाचित्—उस समय (जब कृष्ण तीन मास के थे); औत्थानिक-कौतुक-आप्लवे—जब कृष्ण ३-४ मास के थे तो उनका शरीर बढ़ रहा था और वे इधर-उधर पलटने का प्रयास कर रहे थे तो इस अवसर पर स्नानोत्सव मनाया गया; जन्म-ऋक्ष-योगे—उस समय चन्द्रमा तथा शुभ नक्षत्र रोहिणी का संयोग था; समवेत-योषिताम्—एकत्र स्त्रियों के बीच (यह उत्सव मनाया गया); वादित्र-गीत—नाना प्रकार का संगीत तथा गायन; द्विज-मन्त्र-वाचकैः—योग्य ब्राह्मणों द्वारा वैदिक स्तोत्रों के उच्चारण के साथ; चकार—सम्पन्न किया; सूनोः—अपने पुत्र का; अभिषेचनम्—स्नान उत्सव; सती—माता यशोदा ने।

शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : जब यशोदा का नन्हा शिशु उठने तथा करवट बदलने का प्रयत्न करने लगा तो वैदिक उत्सव मनाया गया। ऐसे उत्सव में, जिसे उत्थान कहा जाता है और जो बालक द्वारा घर से पहली बार बाहर निकलने के अवसर पर मनाया जाता है, बालक को ठीक से नहलाया जाता है। जब कृष्ण तीन मास के पूरे हुए तो माता यशोदा ने पड़ोस की अन्य औरतों के साथ इस उत्सव को मनाया। उस दिन चन्द्रमा तथा रोहिणी नक्षत्र का योग था। इस महोत्सव को माता यशोदा ने ब्राह्मणों द्वारा वैदिक मन्त्र के उच्चारण तथा पेशेवर गायकों के सहयोग से सम्पन्न किया।

तात्पर्य : वैदिक समाज में जनसंख्या की बाढ़ या बच्चे का अपने माता-पिता पर भार बनने का प्रश्न ही नहीं था। ऐसा समाज इतना सुव्यवस्थित होता है और लोग आध्यात्मिक दिशा में इतने उन्नत होते हैं कि शिशु-जन्म को कभी बोझ या चिन्ता नहीं माना जाता। शिशु ज्यों ज्यों बढ़ता जाता है, त्यों त्यों माता-पिता अधिक हर्षित होते हैं और शिशु द्वारा करवट लेना भी हर्ष का स्रोत बनता है। शिशु के जन्म के पूर्व भी जब माता गर्भिणी रहती है, तो अनेक अनुष्ठान सम्पन्न करने की संस्तुति की गई है। उदाहरणार्थ, जब शिशु माता के गर्भ में तीन महीने तथा सात महीने का हो जाता है, तो माता पड़ोस के बालकों के साथ भोजन करके उत्सव मनाती है। इसे *स्वादभक्षण* कहते हैं। इसी प्रकार शिशु-जन्म के पूर्व *गर्भाधान* उत्सव होता है। वैदिक सभ्यता में शिशु-जन्म या गर्भधारण कभी भार नहीं माना जाता प्रत्युत यह हर्ष का कारण बनता है। इसके विपरीत आधुनिक सभ्यता को गर्भधारण या शिशु-जन्म पसन्द नहीं है और यदि शिशु जन्म लेता है, तो कभी कभी लोग उसे मार भी डालते हैं। इससे हम सोच सकते हैं कि कलियुग के आगमन से मानव समाज कितना पतित हुआ है। यद्यपि वर्तमान समय में भी लोग अपने को सभ्य घोषित करते हैं किन्तु यथार्थतः अब मानव सभ्यता नहीं रही—केवल दो पाँव वाले पशुओं की भीड़ रह गई है।

नन्दस्य पत्नी कृतमज्जनादिकं
विप्रैः कृतस्वस्त्ययनं सुपूजितैः ।
अन्नाद्यवासःस्रगभीष्टधेनुभिः
सञ्जातनिद्राक्षमशीशयच्छनैः ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

नन्दस्य—नन्द महाराज की; पत्नी—पत्नी (यशोदा); कृत-मज्जन-आदिकम्—जब वे तथा घर के अन्य लोग नहा चुके और बालक को भी नहला दिया गया उसके बाद; विप्रैः—ब्राह्मणों के द्वारा; कृत-स्वस्त्ययनम्—शुभ वैदिक मंत्रों के पाठ करने में लगाकर; सु-पूजितैः—जिनका ठीक से स्वागत तथा पूजन किया गया; अन्न-आद्य—उन्हें पर्याप्त अनाज तथा अन्य भोज्य वस्तुएँ देकर; वासः—वस्त्र; स्रक्-अभीष्ट-धेनुभिः—फूलों की मालाएँ तथा उपयुक्त गौवें भेंट करके; सञ्जात-निद्रा—उनींदी; अक्षम्—आँखें; अशीशयत्—बच्चे को लिटा दिया; शनैः—उस समय।

बच्चे का स्नान उत्सव पूरा हो जाने के बाद माता यशोदा ने ब्राह्मणों का स्वागत किया और उनको प्रचुर अन्न तथा अन्य भोज्य पदार्थ, वस्त्र, वांछित गौवें तथा मालाएँ भेंट करके उनकी उचित सम्मान के साथ पूजा की। ब्राह्मणों ने इस शुभ उत्सव पर उचित रीति से वैदिक मंत्र पढ़े। जब मंत्रोच्चार समाप्त हुआ और माता यशोदा ने देखा कि बालक उनींदा हो रहा है, तो वे उसे लेकर बिस्तर पर तब तक लेटी रहीं जब तक वह शान्त होकर सो नहीं गया।

तात्पर्य : स्नेहमयी माता अपने बच्चे का काफी ध्यान रखती है और यह देखती रहती है कि उसका बच्चा क्षण-भर भी विचलित न हो। बच्चा जब तक माता के पास रहना चाहता है, माता उसके पास रहती है और बच्चा अपने को काफी आरामदेह अनुभव करता है। माता यशोदा ने देखा कि उनका बच्चा उनींदा हो रहा है, तो उसे सोने की पूरी सुविधाएँ देने के लिए वे स्वयं बालक के साथ लेट गईं और जब वह शान्त हो गया तो वे उठ कर घर के दूसरे काम-काज करने लगीं।

औत्थानिकौत्सुक्यमना मनस्विनी
समागतान्पूजयती व्रजौकसः ।
नैवाशृणोद्वै रुदितं सुतस्य सा
रुदन्स्तनार्थी चरणावुदक्षिपत् ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

औत्थानिक-औत्सुक्य-मनाः—माता यशोदा बच्चे का उत्थान उत्सव मनाने में अत्यधिक व्यस्त थीं; मनस्विनी—भोजन, वस्त्र, आभूषण तथा गौवें बाँटने में अत्यन्त उदार; समागतान्—एकत्र मेहमानों को; पूजयती—उन्हें तुष्ट करने के लिए; व्रज-ओकसः—व्रजवासियों को; न—नहीं; एव—निश्चय ही; अशृणोत्—सुना; वै—निस्सन्देह; रुदितम्—रोना; सुतस्य—बच्चे का; सा—यशोदा; रुदन्—रोना; स्तन-अर्थी—कृष्ण जो माता के स्तन का दूध पीना चाह रहे थे; चरणौ उदक्षिपत्—क्रोध के मारे अपने दोनों पाँव इधर-उधर उछाल रहे थे।

उत्थान उत्सव मनाने में मग्न उदार माता यशोदा मेहमानों का स्वागत करने, आदर-सहित उनकी पूजा करने तथा उन्हें वस्त्र, गौवें, मालाएँ और अन्न भेंट करने में अत्यधिक व्यस्त थीं। अतः वे बालक के रोने को नहीं सुन पाईं। उस समय बालक कृष्ण अपनी माता का दूध पीना चाहता था अतः क्रोध में आकर वह अपने पाँव ऊपर की ओर उछालने लगा।

तात्पर्य : कृष्ण घरेलू छकड़े के नीचे लिटाये गये थे किन्तु यह छकड़ा वास्तव में शकटासुर का

अन्य रूप था—यह असुर बालक को मारने के लिए वहाँ आया था। कृष्ण ने अपनी माता का स्तनपान करने के बहाने इस असुर का वध करने का अवसर प्राप्त किया। उन्होंने शकटासुर को लात मारी जिससे सारा भेद खुल जाये। यद्यपि कृष्ण की माता मेहमानों के स्वागत में लगी थीं किन्तु भगवान् कृष्ण शकटासुर को मार कर उनका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करना चाहते थे इसलिए उन्होंने छकड़े के आकार वाले असुर को लात से मारा। कृष्ण की लीलाएँ ऐसी ही हैं। वे अपनी माता का ध्यान आकृष्ट करना चाह रहे थे किन्तु ऐसा करते समय उन्होंने ऐसा उत्पात खड़ा कर दिया जिसे सामान्य लोग समझ नहीं सके। ये कथाएँ अद्भुत एवं आनन्द देने वाली हैं और जो भाग्यशाली हैं, वे भगवान् की इन असाधारण लीलाओं को सुनकर आश्चर्यचकित रह जाते हैं। यद्यपि अल्पज्ञ इन्हें मिथ्या कथाएँ मानते हैं क्योंकि उनकी बुद्धि में भूसा भरा रहता है किन्तु ये कथाएँ वास्तविक हैं। ये कथाएँ इतनी रोचक तथा प्रबुद्ध करने वाली हैं कि महाराज परीक्षित तथा शुकदेव गोस्वामी को इनमें आनन्द आया और उनके चरणचिह्नों में चलने वाले अन्य मुक्त पुरुष भी भगवान् की अद्भुत लीलाओं को सुनकर अत्यन्त हर्षित होते हैं।

अध:शयानस्य शिशोरनोऽल्पक-
प्रवालमृद्वङ्घ्रिहतं व्यवर्तत ।
विध्वस्तनानारसकुप्यभाजनं
व्यत्यस्तचक्राक्षविभिन्नकूबरम् ॥ ७॥

शब्दार्थ

अध:-शयानस्य—गाड़ी (छकड़े) के नीचे सोये; शिशो:—बालक का; अन:—गाड़ी; अल्पक—अधिक बड़ा नहीं; प्रवाल—नई पत्ती की तरह; मृदु-अङ्घ्रि-हतम्—उनके सुन्दर मुलायम पाँवों से मारी गई; व्यवर्तत—उलट कर गिर गई; विध्वस्त—बिखर गई; नाना-रस-कुप्य-भाजनम्—धातुओं के बने बर्तन-भांडे; व्यत्यस्त—इधर-उधर हटे हुए; चक्र-अक्ष—दोनों पहिये तथा धुरी; विभिन्न—टूटे हुए; कूबरम्—शकट का कूबर (लट्ठा), जिसमें जुआ लगा रहता है।

श्रीकृष्ण आँगन के एक कोने में छकड़े के नीचे लेटे हुए थे और यद्यपि उनके पाँव कोंपलों की तरह कोमल थे किन्तु जब उन्होंने अपने पाँवों से छकड़े पर लात मारी तो वह भड़भड़ा कर उलटने से टूट-फूट गया। पहिए धुरे से विलग हो गये और बिखर गये और गाड़ी का लट्ठा टूट गया। इस गाड़ी पर रखे सब छोटे-छोटे धातु के बर्तन-भांडे इधर-उधर छितरा गये।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने इस श्लोक की टीका इस प्रकार की है—जब कृष्ण अत्यन्त सुकुमार थे तो उनके हाथ-पाँव कोंपलों के समान थे फिर भी उनके पाँवों के छूने से ही गाड़ी

खण्ड-खण्ड हो गई। ऐसा उनके लिए बिलकुल सम्भव था और इसमें उन्हें अधिक परिश्रम भी नहीं करना पड़ा। अपने वामन अवतार में भगवान् को अपने पाँव को इतनी ऊँचाई तक बढ़ाना पड़ा था जिससे वह ब्रह्माण्ड के आवरण में प्रवेश कर सके। इसी तरह जब भगवान् ने हिरण्यकशिपु को मारा तो उन्हें नृसिंहदेव के रूप में विशेष स्वरूप धारण करना पड़ा था। किन्तु कृष्ण अवतार में भगवान् को इतनी शक्ति व्यय नहीं करनी पड़ी। इसीलिए—*कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्*—कृष्ण स्वयं भगवान् हैं। अन्य अवतारों में भगवान् को देश तथा काल के अनुसार कुछ शक्ति व्यय करनी पड़ी किन्तु इस अवतार में उन्होंने असीम शक्ति का प्रदर्शन किया। इसीलिए छकड़ा चूर चूर हो गया, उसके जोड़ टूट गये और उसके ऊपर रखे धातु के बर्तन-भांडे छितरा गये।

वैष्णव-तोषणी की टीका में लिखा है कि यद्यपि छकड़ा बच्चे से ऊँचा था किन्तु बालक आसानी से पहिए छू सकता था और इतना ही पर्याप्त था असुर को पृथ्वी पर नीचे फेंकने के लिए। भगवान् ने एक ही साथ असुर को पृथ्वी पर फेंका और छकड़े को तोड़ डाला।

दृष्ट्वा यशोदाप्रमुखा व्रजस्त्रिय
औत्थानिके कर्मणि याः समागताः ।
नन्दादयश्चाद्भुतदर्शनाकुलाः
कथं स्वयं वै शकटं विपर्यगात् ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

दृष्ट्वा—देखकर; यशोदा-प्रमुखाः—माता यशोदा इत्यादि; व्रज-स्त्रियः—व्रज की सारी स्त्रियाँ; औत्थानिके कर्मणि—उत्थान उत्सव मनाते समय; याः—जो; समागताः—वहाँ एकत्र हुए; नन्द-आदयः च—तथा नन्द महाराज इत्यादि सारे पुरुष; अद्भुत-दर्शन—अद्‌भुत विपत्ति देखकर (कि लदी हुई गाड़ी बच्चे के ऊपर टूट कर गिर गई थी फिर भी बालक के चोट नहीं आई थी); आकुलाः—अत्यन्त विचलित थे कि यह सब कैसे घटित हो गया; कथम्—कैसे; स्वयम्—अपने से; वै—निस्सन्देह; शकटम्—छकड़ा; विपर्यगात्—बुरी तरह क्षत-विक्षत हो गया।

जब यशोदा तथा उत्थान उत्सव के अवसर पर जुटी स्त्रियों तथा नन्द महाराज इत्यादि सभी पुरुषों ने यह अद्‌भुत दृश्य देखा तो वे आश्चर्य करने लगे कि यह छकड़ा किस तरह अपने आप चूर चूर हो गया है। वे इसका कारण ढूँढने के लिए इधर-उधर घूमने लगे किन्तु कुछ भी तय न कर पाये।

ऊचुरव्यवसितमतीन्गोपान्गोपीश्च बालकाः ।
रुदतानेन पादेन क्षिप्तमेतन्न संशयः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

ऊचुः—कहा; **अव्यवसित-मतीन्**—वर्तमान स्थिति में जिनकी बुद्धि काम नहीं कर रही थी; **गोपान्**—ग्वालों को; **गोपीः च**—तथा गोपियों को; **बालकाः**—बच्चे; **रुदता अनेन**—ज्योंही बच्चा रोया; **पादेन**—एक पाँव से; **क्षिप्तम् एतत्**—यह गाड़ी दूर जा गिरी और छितर-बितर हो गई; **न संशयः**—इसमें कोई सन्देह नहीं है।.

वहाँ पर जुटे ग्वाले तथा गोपियाँ सोचने लगे कि यह घटना कैसे घटी? वे पूछने लगे, ''कहीं यह किसी असुर या अशुभ ग्रह का काम तो नहीं है?'' उस समय वहाँ पर उपस्थित बालकों ने स्पष्ट कहा कि बालक कृष्ण ने ही इस छकड़े को लात से मार कर दूर फेंका है। रोते बालक ने ज्योंही छकड़े के पहिये पर अपने पाँव मारे त्योंही पहिये सहित छकड़ा ध्वस्त हो गया। इसमें कोई सन्देह नहीं है।

तात्पर्य : हमने यह सुना है कि लोगों को भूत-प्रेत सताते हैं। स्थूल शरीर प्राप्त न होने से भूत स्थूल शरीर को ढूँढ़ कर उसी में अड्डा जमाता है। शकटासुर ऐसा ही भूत था जिसने छकड़े में शरण ले रखी थी और कृष्ण को क्षति पहुँचाने की ताक में था। जब कृष्ण ने अपने छोटे-छोटे मुलायम पैरों से छकड़े पर प्रहार किया, तो जैसा वर्णन किया जा चुका है भूत पृथ्वी पर नीचे आ पड़ा और उसका आश्रय भंग हो गया। पूर्ण शक्तिमान होने के कारण ही कृष्ण ऐसा कर सके, जिसकी पुष्टि *ब्रह्म-संहिता* से (५.३२) होती है—

अङ्गानि यस्य सकलेन्द्रियवृत्तिमन्ति

पश्यन्ति पान्ति कलयन्ति चिरं जगन्ति।

आनन्दचिन्मयसदुज्ज्वलविग्रहस्य

गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥

''कृष्ण का शरीर *सच्चिदानन्द विग्रह* या *आनन्द चिन्मय रसविग्रह* है। अर्थात् उनके आनन्द चिन्मय शरीर का कोई भी अंग किसी अन्य अंग की तरह कार्य कर सकता है। भगवान् की अचिन्त्य शक्तियाँ ऐसी हैं। भगवान् को ये शक्तियाँ अर्जित नहीं करनी होतीं, वे उनके पास ही रहती हैं। इस तरह कृष्ण ने अपने नन्हें-नन्हें पाँवों से प्रहार किया, तो सारा कार्य सम्पन्न हो गया। यही नहीं, यदि कोई सामान्य बालक होता तो छकड़े के टूटने से उसे बुरी तरह चोट खा जाता किन्तु कृष्ण तो भगवान् हैं। अतएव उन्हें छकड़े के टूटने में आनंद मिला और उनका बाल भी बाँका नहीं हुआ। उनके द्वारा किया गया प्रत्येक कार्य *आनन्द चिन्मय रस*—अर्थात् दिव्य आनन्द से पूर्ण होता है। इसमें कृष्ण को बड़ा आनन्द

आया।

पास खेल रहे बालकों ने देखा था कि कृष्ण ने ही छकड़े के पहिये पर लात मारी थी जिससे यह दुर्घटना घटी थी। योगमाया की योजना से सारे गोप-गोपियों ने सोचा कि यह घटना किसी अशुभ ग्रह या असुर की करामात है किन्तु वास्तव में यह सब कृष्ण द्वारा किया गया था और उन्होंने इसका आनन्द लिया था। जो कृष्ण की लीलाओं का रस लेते हैं, वे भी आनन्द चिन्मय रस पद को प्राप्त होते हैं—वे भौतिक पद से मुक्त हो जाते हैं। जब कोई व्यक्ति *कृष्णकथा* सुनने की आदत बना लेता है, तो निश्चय ही वह इस भौतिक जगत से परे चला जाता है, जिसकी पुष्टि *भगवद्गीता* द्वारा होती है (*स गुणान् समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते*)। आध्यात्मिक पद को प्राप्त किये बिना भगवान् की दिव्य लीलाओं का आनन्द नहीं उठाया जा सकता। अथवा दूसरे शब्दों मे, जो कोई भी कृष्ण की दिव्य लीलाओं का श्रवण करता है, वह भौतिक पद पर स्थित नहीं होता वरन् दिव्य आध्यात्मिक पद पर स्थित होता है।

न ते श्रद्दधिरे गोपा बालभाषितमित्युत ।
अप्रमेयं बलं तस्य बालकस्य न ते विदुः ॥ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; ते—उन; श्रद्दधिरे—विश्वास किया; गोपाः—ग्वाले तथा गोपियों ने; बाल-भाषितम्—एकत्र बालकों की बचकाना बात पर; इति उत—इस तरह कहा गया; अप्रमेयम्—असीम, अचिन्त्य; बलम्—शक्ति; तस्य बालकस्य—उस छोटे-से बालक कृष्ण की; न—नहीं; ते—वे, गोप तथा गोपियाँ; विदुः—अवगत थे।.

वहाँ एकत्र गोपियों तथा गोपों को यह विश्वास नहीं हुआ कि बालक कृष्ण में इतनी अचिन्त्य शक्ति हो सकती है क्योंकि वे इस तथ्य से अवगत नहीं थे कि कृष्ण सदैव असीम हैं। उन्हें बालकों की बातों पर विश्वास नहीं हुआ अतएव उन्हें बच्चों की भोली-भाली बातें जानकर, उन्होंने उनकी उपेक्षा की।

रुदन्तं सुतमादाय यशोदा ग्रहशङ्किता ।
कृतस्वस्त्ययनं विप्रैः सूक्तैः स्तनमपाययत् ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

रुदन्तम्—रोता हुआ; सुतम्—पुत्र को; आदाय—उठाकर; यशोदा—माता यशोदा ने; ग्रह-शङ्किता—बुरे ग्रह से भयभीत; कृत-स्वस्त्ययनम्—तुरन्त ही सौभाग्य के लिए अनुष्ठान किया; विप्रैः—ब्राह्मणों को बुलाकर; सूक्तैः—वैदिक स्तुतियों द्वारा; स्तनम्—अपना स्तन; अपाययत्—बच्चे को पिलाया।.

यह सोच कर कि कृष्ण पर किसी अशुभ ग्रह का आक्रमण हुआ है, माता यशोदा ने रोते बालक को उठा लिया और उसे अपना स्तन-पान कराया। तब उन्होंने वैदिक स्तुतियों का उच्चारण करने के लिए तथा शुभ अनुष्ठान सम्पन्न करने के लिए अनुभवी ब्राह्मणों को बुला भेजा।

तात्पर्य : जब भी कोई संकट आ पड़ता है या कोई अशुभ घटना घट जाती है, तो वैदिक सभ्यता की यह प्रथा है कि उसके प्रतिकार के लिए वैदिक स्तुतियाँ कराने हेतु योग्य ब्राह्मण बुलाये जाते हैं। माता यशोदा ने इसे ठीक प्रकार से किया और अपने बच्चे को स्तन-पान कराने लगीं।

पूर्ववत्स्थापितं गोपैर्बलिभिः सपरिच्छदम् ।
विप्रा हुत्वार्चयां चक्रुर्दध्यक्षतकुशाम्बुभिः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

पूर्व-वत्—जिस तरह छकड़ा पहले रखा था; स्थापितम्—फिर से बर्तन-भांडे सजा कर; गोपैः—ग्वालों द्वारा; बलिभिः—बली, बलवान; स-परिच्छदम्—सारे साज-सामान सहित; विप्राः—ब्राह्मणों ने; हुत्वा—अग्नि उत्सव करके; अर्चयाम् चक्रुः—अनुष्ठान सम्पन्न किया; दधि—दही; अक्षत—चावल; कुश—कुश घास; अम्बुभिः—जल से।

जब बलिष्ठ गठीले ग्वालों ने बर्तन-भांडे तथा अन्य सामग्री को छकड़े के ऊपर पहले की भाँति व्यवस्थित कर दिया, तो ब्राह्मणों ने बुरे ग्रह को शान्त करने के लिए अग्नि-यज्ञ का अनुष्ठान किया और तब चावल, कुश, जल तथा दही से भगवान् की पूजा की।

तात्पर्य : छकड़े पर भारी भारी बर्तन-भांडे तथा अन्य सामग्री रखी हुई थी। इस छकड़े को पूर्व स्थिति में लाने के लिए काफी बल की आवश्यकता थी किन्तु ग्वालों ने इसे सरलता से सम्पन्न कर लिया। फिर गोप-जाति की प्रथा के अनुसार संकटमयी स्थिति के शमन हेतु विविध वैदिक अनुष्ठान किये गये।

येऽसूयानृतदम्भेर्षाहिंसामानविवर्जिताः ।
न तेषां सत्यशीलानामाशिषो विफलाः कृताः ॥ १३ ॥
इति बालकमादाय सामग्र्यजुरुपाकृतैः ।
जलैः पवित्रौषधिभिरभिषिच्य द्विजोत्तमैः ॥ १४ ॥
वाचयित्वा स्वस्त्ययनं नन्दगोपः समाहितः ।
हुत्वा चाग्निं द्विजातिभ्यः प्रादादन्नं महागुणम् ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

ये—जो ब्राह्मण; असूय—असूया; अनृत—झूठ; दम्भ—मिथ्या अहंकार; ईर्षा—ईर्ष्या; हिंसा—अन्यों के वैभव को देखकर विचलित होना; मान—मिथ्या प्रतिष्ठा; विवर्जिताः—से पूर्णतया रहित; न—नहीं; तेषाम्—ऐसे ब्राह्मणों का; सत्य-शीलानाम्—ब्राह्मण योग्यताओं (सत्य, शम, दम इत्यादि) से युक्त; आशिषः—आशीर्वाद; विफलाः—व्यर्थ; कृताः—किये गये; इति—इन बातों पर विचार करते हुए; बालकम्—बालक को; आदाय—लाकर; साम—सामवेद के अनुसार; ऋक्—ऋग्वेद के अनुसार; यजुः—तथा यजुर्वेद के अनुसार; उपाकृतैः—ऐसे उपायों से शुद्ध किया हुआ; जलैः—जल से; पवित्र-औषधिभिः—शुद्ध जड़ी-बूटियाँ मिलाकर; अभिषिच्य—(बालक को) नहलाने के बाद; द्विज-उत्तमैः—उच्च कोटि के योग्य ब्राह्मणों द्वारा; वाचयित्वा—उच्चारण करने के लिए प्रार्थना किये गये; स्वस्ति-अयनम्—शुभ स्तुतियाँ; नन्द-गोपः—गोपों के मुखिया नन्द महाराज ने; समाहितः—उदार तथा उत्तम; हुत्वा—आहुति करके; च—भी; अग्निम्—अग्नि में; द्विजातिभ्यः—उन उच्च कोटि के ब्राह्मणों को; प्रादात्—दान में दिया; अन्नम्—अन्न; महा-गुणम्—सर्वोत्तम।

जब ब्राह्मणजन ईर्ष्या, झूठ, मिथ्या अहंकार, द्वेष, अन्यों के वैभव को देखकर मचलने तथा मिथ्या प्रतिष्ठा से मुक्त होते हैं, तो उनके आशीर्वाद व्यर्थ नहीं जाते। यह सोचकर नन्द महाराज ने गम्भीर होकर कृष्ण को अपनी गोद में ले लिया और इन सत्यनिष्ठ ब्राह्मणों को साम, ऋग् तथा यजुर्वेद के पवित्र स्तोत्रों के अनुसार अनुष्ठान सम्पन्न करने के लिए आमंत्रित किया। जब मंत्रोच्चार हो रहा था, तो नन्द ने बच्चे को शुद्ध जड़ी-बूटियों से मिश्रित जल से स्नान कराया और अग्नि-यज्ञ करने के बाद सभी ब्राह्मणों को उत्तम अन्न तथा अन्य प्रकार के पदार्थों का स्वादिष्ट भोजन कराया।

तात्पर्य : नन्द महाराज को ब्राह्मणों की योग्यता एवं उनके आशीर्वाद पर पूरा-पूरा भरोसा था। उन्हें पूरा विश्वास था कि यदि उत्तम ब्राह्मण केवल अपना आशीर्वाद दें तो बालक कृष्ण सुखी रहेगा। योग्य ब्राह्मणों के आशीर्वाद न केवल भगवान् कृष्ण को, अपितु हर एक को सुख प्रदान करने वाले होते हैं। पूर्ण स्वावलम्बी होने के कारण कृष्ण को किसी के आशीर्वाद की आवश्यकता नहीं है फिर भी नन्द महाराज ने सोचा कि कृष्ण को ब्राह्मणों के आशीर्वाद की जरूरत है। तो फिर अन्यों के लिए क्या कहा जाय? अतः मानव समाज में पुरुषों का एक आदर्श वर्ग, ब्राह्मण वर्ग, होना चाहिए जो अन्यों को अर्थात् क्षत्रियों, वैश्यों तथा शूद्रों को—आशीर्वाद दे सके जिससे हर कोई सुखी हो सके। इसीलिए *भगवद्गीता* (४.१३) में कृष्ण कहते हैं कि मानव समाज में चार वर्ग होने चाहिए (*चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः*)। ऐसा नहीं है कि हर कोई शूद्र या वैश्य बन जाय तो मानव समाज समृद्ध होगा। जैसाकि *भगवद्गीता* में स्थापना की गई है सत्य, शम, दम तथा तितिक्षा जैसे गुणों से युक्त ब्राह्मणों का एक वर्ग होना चाहिए।

यहाँ *भागवत* में भी नन्द महाराज योग्य ब्राह्मणों को बुलवाते हैं। कोई जाति से ब्राह्मण हो सकते हैं

और हमारे मन में ब्राह्मण जाति के लिए आदर है किन्तु ब्राह्मण परिवारों में जन्म लेने से ही वे मानव समाज के अन्य सदस्यों को आशीर्वाद देने के योग्य नहीं बन जाते। यह शास्त्रों का निर्णय है। कलियुग में ब्राह्मण जाति में जन्मे मानव को ही ब्राह्मण मान लिया गया है। *विप्रत्वे सूत्रमेव हि* (भागवत १२.२.३)। कलियुग में दो पैसे का जनेऊ धारण करके कोई भी व्यक्ति ब्राह्मण बन जाता है। नन्द महाराज ने ऐसे ब्राह्मणों को नहीं बुलवाया था। जैसाकि नारदमुनि ने कहा है (भागवत ७.११.३५)—*यस्य यल्लक्षणं प्रोक्तम्।* शास्त्र में ब्राह्मण के लक्षण दिये हुए हैं और उसे इन लक्षणों से सम्पन्न होना चाहिए।

ऐसे ब्राह्मण जो ईर्ष्यालु नहीं हैं, गर्व से फूले नहीं रहते तथा अहंकार और मिथ्या प्रतिष्ठा नहीं दिखलाते और सतोगुण से युक्त होते हैं, वे ही उपयोगी होते हैं। इसलिए मनुष्यों के एक वर्ग को शुरू से ही ब्राह्मण बनने की शिक्षा दी जानी चाहिए। *ब्रह्मचारी गुरुकुले वसन् दान्तो गुरोर्हितम्* (भागवत ७.१२.१)। *दान्तः* शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यह ऐसे व्यक्ति का सूचक है, जो ईर्ष्यालु नहीं होता और झूठी प्रतिष्ठा के बल पर इतराता नहीं। हम कृष्णभावनामृत आन्दोलन के द्वारा समाज में ऐसे ब्राह्मणों का समावेश करने का प्रयास कर रहे हैं। ब्राह्मणों को अन्ततः वैष्णव हो जाना चाहिए और यदि कोई वैष्णव है, तो उसने पहले ही ब्राह्मण के गुण अर्जित कर लिये हैं। *ब्रह्म-भूतः प्रसन्नात्मा* (भगवद्गीता १८.५४)। *ब्रह्मभूतः* शब्द ब्राह्मण बनने या ब्रह्म क्या है उसे समझने का सूचक है (*ब्रह्म जानातीति ब्राह्मणः*)। जो ब्रह्मभूत है, वह सदैव प्रसन्न रहता है (*प्रसन्नात्मा*)। *न शोचति न कांक्षति*—वह कभी भौतिक आवश्यकताओं से विचलित नहीं होता। *समः सर्वेषु भूतेषुः*—वह हर एक को समान रूप से आशीर्वाद देने को तैयार रहता है। *मद्-भक्तिं लभते पराम्*—तब वह वैष्णव बनता है। इस युग में श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ने अपने वैष्णव शिष्यों के लिए यज्ञोपवीत संस्कार का सूत्रपात इस विचार से किया कि लोग समझें कि जब कोई वैष्णव बनता है, तो वह पहले से ही ब्राह्मण के गुणों को अर्जित कर चुका होता है। इसलिए जो लोग अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ में हैं और जो ब्राह्मण बनने के लिए दो बार दीक्षा प्राप्त करते हैं उन्हें सत्य, मन तथा इन्द्रियदमन, सहिष्णुता इत्यादि से युक्त होने के परम उत्तरदायित्व को सदैव ध्यान में रखना चाहिए। तभी उनका जीवन सफल होगा। ऐसे ही ब्राह्मणों को नन्द महाराज ने वैदिक स्तोत्रों का उच्चारण करने के लिए बुलाया था, सामान्य ब्राह्मणों को नहीं।

श्लोक १३ में *हिंसामान* का स्पष्ट उल्लेख हुआ है। *मान* शब्द मिथ्या प्रतिष्ठा या मिथ्या अहंकार का द्योतक है। जिन्हें ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होने के कारण अपने को ब्राह्मण मानने का मिथ्या अहंकार था, नन्द महाराज ने उन्हें ऐसे अवसरों पर नहीं बुलाया।

श्लोक १४ में *पवित्रौषधि* का उल्लेख हुआ है। किसी भी संस्कार के अवसर पर अनेक जड़ी-बूटियों तथा पत्तियों की आवश्यकता पड़ती थी। ये *पवित्र पत्र* कहलाती थीं। कभी नीम की पत्तियाँ, कभी बेल पत्र, आम की पत्तियाँ, अश्वत्थ की या आँवले की पत्तियाँ काम में आती थीं। इसी तरह *पञ्च गव्य, पञ्च शस्य* तथा *पञ्च रत्न* थे। वैश्य जाति के होते हुए भी नन्द महाराज को यह सब पता था।

इन श्लोकों का सबसे महत्त्वपूर्ण शब्द है *महा-गुणम्* जो सूचित करता है कि ब्राह्मणों को उच्च कोटि का स्वादिष्ट भोजन प्रदान किया जाता था। ऐसे स्वादिष्ट व्यंजन प्राय: अन्न तथा दुग्ध इन दो वस्तुओं से तैयार किये जाते थे। इसीलिए *भगवद्गीता* का (१८.४४) आदेश है कि मानव समाज को गौओं को संरक्षण प्रदान करना चाहिए और कृषि को प्रोत्साहन देना चाहिए (*कृषि गोरक्ष्य वाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्*)। केवल पटु पाकविद्या द्वारा कृषि उपज तथा दुग्ध उत्पादनों से हजारों प्रकार के व्यंजन तैयार किये जा सकते हैं। इसे *अन्नं महागुणम्* शब्दों से व्यक्त किया गया है। आज भी भारत में दूध और अन्न से हजारों प्रकार के व्यंजन तैयार करके भगवान् को अर्पित किये जाते हैं (*चतुर्विधश्रीभगवत्प्रसाद। पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति*)। तब प्रसाद वितरित किया जाता है। आज भी जगन्नाथ-क्षेत्र तथा अन्य बड़े बड़े मन्दिरों में अर्चाविग्रह को अत्यन्त स्वादिष्ट व्यंजन भेंट किये जाते हैं और प्रचुर मात्रा में प्रसाद वितरित किया जाता है। उच्च कोटि के ब्राह्मणों द्वारा दक्षता के साथ पकाया गया और फिर जनता में बाँटा जाने वाला यह प्रसाद भी ब्राह्मणों या वैष्णवों से प्राप्त आशीर्वाद होता है। प्रसाद चार प्रकार का होता है (*चतुर्विध*)। नमकीन, मीठा, चटपटा तथा खट्टा स्वाद विभिन्न प्रकार के मसालों से प्राप्त किया जाता है और भोजन चार विभागों में तैयार होता है—*चर्व्य, चूष्य, लेह्य तथा पेय*—अर्थात् चबाकर खाये जाने वाले, चाटने वाले, जीभ से स्वाद लिये जाने वाले तथा पिये जाने वाले प्रसाद। इस तरह अन्न तथा घी से नाना प्रकार के प्रसाद तैयार किये जाते हैं, फिर अर्चाविग्रह पर भेंट किये जाते हैं और तब ब्राह्मणों तथा वैष्णवों में और अन्त में सामान्य जनता में वितरित किये जाते हैं। मानव समाज का यह तरीका है। गो-वध तथा भूमि के विनाश से भोजन-

समस्या हल होने वाली नहीं। यह सभ्यता नहीं है। असभ्य जंगली लोग कृषि द्वारा अन्न उत्पादन तथा गो-रक्षा से अनजान होने के कारण पशुओं को खा सकते हैं किन्तु ज्ञान में अग्रणी पूर्ण मानव समाज को कृषि से तथा गो-रक्षा से उत्तम कोटि का भोजन बनाना अवश्य सीखना चाहिए।

गावः सर्वगुणोपेता वासःस्रग्रुक्ममालिनीः ।
आत्मजाभ्युदयार्थाय प्रादात्ते चान्वयुञ्जत ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

गावः—गौवें; सर्व-गुण-उपेताः—पर्याप्त दूध देने से अत्यन्त गुणी होने; वासः—अच्छे वस्त्र पहने; स्रक्—माला से युक्त; रुक्म-मालिनीः—तथा सोने के हार पहने; आत्मज-अभ्युदय-अर्थाय—अपने पुत्र के अभ्युदय हेतु; प्रादात्—दान में दिया; ते—उन ब्राह्मणों ने; च—भी; अन्वयुञ्जत—उन्हें स्वीकार किया।

नन्द महाराज ने अपने पुत्र के धन-वैभव हेतु ब्राह्मणों को गौवें दान में दीं जो वस्त्रों, फूल-मालाओं तथा सुनहरे हारों से सजाई गई थीं। ये गौवें जो प्रचुर दूध देने वाली थीं ब्राह्मणों को दान में दी गई थीं और ब्राह्मणों ने उन्हें स्वीकार किया। बदले में उन्होंने समूचे परिवार को तथा विशेष रूप से कृष्ण को आशीर्वाद दिया।

तात्पर्य : नन्द महाराज ने पहले ब्राह्मणों को भव्य दावत दी और तब सुनहरे हारों, वस्त्रों और फूल की मालाओं से सजी उत्तम कोटि की गौवें दान में दीं।

विप्रा मन्त्रविदो युक्तास्तैर्याः प्रोक्तास्तथाशिषः ।
ता निष्फला भविष्यन्ति न कदाचिदपि स्फुटम् ॥ १७॥

शब्दार्थ

विप्राः—ब्राह्मणगण; मन्त्र-विदः—वैदिक मंत्रोच्चारण में पटु; युक्ताः—पूर्ण योगी; तैः—उनके द्वारा; याः—जो; प्रोक्ताः—कहा गया; तथा—वैसा ही हो जाता है; आशिषः—सारे आशीर्वाद; ताः—ऐसे शब्द; निष्फलाः—व्यर्थ, विफल; भविष्यन्ति न—कभी नहीं होंगे; कदाचित्—किसी समय; अपि—निस्सन्देह; स्फुटम्—यथार्थ।

वैदिक मंत्रों के उच्चारण में पूरी तरह से पटु ब्राह्मण योगशक्तियों से सम्पन्न योगी थे। वे जो भी आशीर्वाद देते वह कभी निष्फल नहीं जाता था।

तात्पर्य : ब्रह्मी गुणों से युक्त ब्राह्मण सदा योगशक्ति-सम्पन्न योगी होते हैं। उनके शब्द व्यर्थ नहीं जाते। समाज के अन्य सदस्यों के साथ अपने प्रत्येक व्यवहार में ब्राह्मण निश्चित रूप से विश्वसनीय होते हैं। किन्तु इस युग में ध्यान रखना चाहिए कि ब्राह्मण अपनी योग्यताओं के विषय में अनिश्चित हैं। याज्ञिक ब्राह्मणों के न होने से सारे यज्ञ वर्जित हैं। इस युग में एकमात्र संकीर्तन यज्ञ की संस्तुति की गई

है। *यज्ञै सङ्कीर्तन प्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः* (*भागवत* ११.५.३२)। यज्ञ विष्णु को तुष्ट करने के निमित्त किया जाता है (*यज्ञार्थात् कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः*)। इस युग में योग्य ब्राह्मणों के न होने से मनुष्यों को चाहिए कि हरे कृष्ण-मंत्र के कीर्तन द्वारा यज्ञ करें (*यज्ञै सङ्कीर्तन प्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः*)। यह जीवन यज्ञ के निमित्त है और यज्ञ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे कीर्तन द्वारा सम्पन्न किया जाता है।

एकदारोहमारूढं लालयन्ती सुतं सती ।
गरिमाणं शिशोर्वोढुं न सेहे गिरिकूटवत् ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

एकदा—एक बार (सम्भवतः जब कृष्ण एक साल के थे); आरोहम्—अपनी माता की गोद में; आरूढम्—बैठे हुए; लालयन्ती—लाड़-प्यार करती हुई, दुलारती हुई; सुतम्—अपने पुत्र को; सती—माता यशोदा; गरिमाणम्—भार बढ़ने से; शिशोः—बालक के; वोढुम्—सहन कर पाने; न—नहीं; सेहे—समर्थ थी; गिरि-कूट-वत्—पर्वत की चोटी के भार जैसा लगने वाला।

एक दिन, कृष्ण के आविर्भाव के एक वर्ष बाद, माता यशोदा अपने पुत्र को अपनी गोद में दुलार रही थीं। तभी सहसा उन्हें वह बालक पर्वत की चोटी से भी भारी लगने लगा, जिससे वे उसका भार सहन नहीं कर पाईं।

तात्पर्य : *लालयन्ती*—कभी कभी माता अपने बच्चे को उछालती है और जब वह उसके हाथ में गिरता है, तो हँसता है। इससे माता को भी आनन्द आता है। यशोदा ऐसा ही करती थीं किन्तु इस बार कृष्ण बहुत भारी हो गये जिससे वे उनका भार नहीं सह सकीं। ऐसी परिस्थिति में हमें यह समझना चाहिए कि कृष्ण उस तृणावर्त के आगमन से अवगत थे, जो उन्हें उनकी माता से दूर उड़ा ले जाने वाला था। कृष्ण जानते थे कि जब तृणावर्त आकर उन्हें माता की गोद से ले जायेगा तो माता यशोदा अत्यन्त विरहाकुल होंगी। वे नहीं चाहते थे कि माता को असुर के कारण कोई कष्ट सहना पड़े। चूँकि वे प्रत्येक वस्तु के उद्गम हैं (*जन्माद्यस्य यतः*) अतएव उन्होंने सारे ब्रह्माण्ड का भार अपने में धारण कर लिया। बालक यशोदा की गोद में था जिसका संसार की हर वस्तु पर स्वामित्व था, किन्तु जब बालक भारी हो गया तो यशोदा को उसे गोद से नीचे रखना पड़ा जिससे तृणावर्त को अवसर मिले कि वह उसे ले जाय और बालक के माता की गोद में लौटने तक कुछ काल तक उनके साथ खेले।

भूमौ निधाय तं गोपी विस्मिता भारपीडिता ।
महापुरुषमादध्यौ जगतामास कर्मसु ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

भूमौ—जमीन पर; निधाय—रख कर; तम्—उस बालक को; गोपी—माता यशोदा; विस्मिता—चकित; भार-पीडिता—बच्चे के भार से दुखित; महा-पुरुषम्—विष्णु या नारायण को; आदध्यौ—शरण ली; जगताम्—मानो सारे जगत का भार हो; आस—अपने को व्यस्त किया; कर्मसु—घर के अन्य कामों में।

बालक को सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के बराबर भारी अनुभव करते हुए अतएव यह सोचते हुए कि बालक को कोई दूसरा भूत-प्रेत या असुर सता रहा है, चकित माता यशोदा ने बालक को जमीन पर रख दिया और नारायण का चिंतन करने लगीं। उत्पात की आशंका से उन्होंने इस भारीपन के शमन हेतु ब्राह्मणों को बुला भेजा और फिर घर के कामकाज में लग गईं। उनके पास नारायण के चरणकमलों को स्मरण करने के अतिरिक्त कोई अन्य विकल्प न था क्योंकि वे यह नहीं समझ पाईं कि कृष्ण ही हर वस्तु के मूल स्रोत हैं।

तात्पर्य : माता यशोदा यह नहीं समझ पाईं कि कृष्ण वस्तुओं में से सबसे भारी हैं और वे सबों के भीतर निवास करते हैं (*मत्स्थानि सर्वभूतानि*)। *भगवद्गीता* (९.४) में पुष्टि की गई है—*मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना*—कृष्ण अपने निर्विशेष रूप में सर्वत्र विद्यमान हैं और सारी वस्तुएँ उन्हीं पर टिकी हैं। फिर भी—*न चाहं तेष्ववस्थितः*—कृष्ण सर्वत्र नहीं रहते। माता यशोदा इस दर्शन को नहीं समझती थीं क्योंकि योगमाया की योजनानुसार वे कृष्ण की माता के रूप में उनके साथ व्यवहार कर रही थीं। कृष्ण की महत्ता को न समझ सकने से वे कृष्ण की सुरक्षा के लिए केवल नारायण की शरण ले सकती थीं और इस दशा के शमन हेतु ब्राह्मणों को बुला सकती थीं।

दैत्यो नाम्ना तृणावर्तः कंसभृत्यः प्रणोदितः ।
चक्रवातस्वरूपेण जहारासीनमर्भकम् ॥ २० ॥

शब्दार्थ

दैत्यः—दूसरा असुर; नाम्ना—नाम वाला; तृणावर्तः—तृणावर्त; कंस-भृत्यः—कंस का दास; प्रणोदितः—उसके द्वारा प्रेरित; चक्रवात-स्वरूपेण—बवंडर के रूप में; जहार—उड़ा ले गया; आसीनम्—बैठे हुए; अर्भकम्—बालक को।

जब बालक जमीन पर बैठा हुआ था, तो तृणावर्त नामक असुर, जो कंस का दास था, वहाँ पर कंस के बहकाने पर बवंडर के रूप में आया और बड़ी आसानी से बालक को अपने साथ उड़ाकर आकाश में ले गया।

तात्पर्य : कृष्ण का भारीपन माता के लिए असह्य था किन्तु जब तृणावर्तासुर आया तो वह उन्हें

तुरन्त उड़ा ले गया। यह कृष्ण की अचिन्त्य शक्ति का दूसरा प्रदर्शन था। जब तृणावर्त आया तो कृष्ण तिनके से भी अधिक हल्के हो गये जिससे वह उन्हें उड़ा ले जा सके। यह उनका *आनन्दचिन्मय रस* था।

गोकुलं सर्वमावृण्वन्मुष्णंश्चक्षूंषि रेणुभिः ।
ईरयन्सुमहाघोरशब्देन प्रदिशो दिशः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

गोकुलम्—गोकुल मंडल को; सर्वम्—समूचे; आवृण्वन्—प्रच्छन्न करते हुए; मुष्णन्—हरते हुए; चक्षूंषि—देखने की शक्ति; रेणुभिः—धूल के कणों से; ईरयन्—कँपाते हुए; सु-महा-घोर—अत्यन्त भयानक तथा भारी; शब्देन—आवाज से; प्रदिशः दिशः—सारी दिशाओं में घुस गया।

उस असुर ने प्रबल बवंडर के रूप में सारे गोकुल प्रदेश को धूल के कणों से ढकते हुए सभी लोगों की दृष्टि ढक ही ली और भयावनी आवाज करता हुआ सारी दिशाओं को कँपाने लगा।

तात्पर्य : तृणावर्त ने बवंडर का रूप धारण कर लिया और समूचे गोकुल प्रदेश को धूल भरे अंधड़ से ढक दिया जिससे निकट की भी वस्तु नहीं दिखती थी।

मुहूर्तमभवद्गोष्ठं रजसा तमसावृतम् ।
सुतं यशोदा नापश्यत्तस्मिन्न्यस्तवती यतः ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

मुहूर्तम्—क्षण-भर के लिए; अभवत्—हो गया; गोष्ठम्—समूचे चरागाह में; रजसा—धूल-कणों से; तमसा आवृतम्—अंधकार से प्रच्छन्न; सुतम्—अपने पुत्र को; यशोदा—माता यशोदा ने; न अपश्यत्—नहीं देखा; तस्मिन्—उसी स्थान में; न्यस्तवती—रखा था; यतः—जहाँ।

क्षण-भर के लिए समूचा चरागाह धूल भरी अंधड़ के घने अंधकार से ढक गया और माता यशोदा अपने पुत्र को उस स्थान में न पा सकीं जहाँ उसे बिठाया था।

नापश्यत्कश्चनात्मानं परं चापि विमोहितः ।
तृणावर्तनिसृष्टाभिः शर्कराभिरुपद्रुतः ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; अपश्यत्—देखा; कश्चन—किसी को; आत्मानम्—अपने को; परम् च अपि—या दूसरे को; विमोहितः—मोहित होकर; तृणावर्त-निसृष्टाभिः—तृणावर्त द्वारा फेंके गये; शर्कराभिः—बालू के कणों से; उपद्रुतः—और विचलित किया जाकर।

तृणावर्त द्वारा फेंके गये बालू के कणों के कारण लोग न तो स्वयं को देख सकते थे न

अन्य किसी और को। इस तरह वे मोहित तथा विचलित थे।

इति खरपवनचक्रपांशुवर्षे
सुतपदवीमबलाविलक्ष्य माता ।
अतिकरुणमनुस्मरन्त्यशोचद्
भुवि पतिता मृतवत्सका यथा गौः ॥ २४॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; खर—अत्यन्त प्रचंड; पवन-चक्र—बवंडर से; पांशु-वर्षे—धूल-कणों की वर्षा होने पर; सुत-पदवीम्—अपने पुत्र के स्थान को; अबला—बेचारी स्त्री; अविलक्ष्य—न देखकर; माता—उसकी माता होने से; अति-करुणम्—अत्यन्त कारुणिक; अनुस्मरन्ती—अपने पुत्र का चिन्तन करती हुई; अशोचत्—अत्यधिक विलाप किया; भुवि—भूमि पर; पतिता—गिर गई; मृत-वत्सका—अपने बछड़े को खोकर; यथा—जिस तरह; गौः—गाय।

प्रबल बवंडर से उठे अंधड़ के कारण माता यशोदा न तो अपने पुत्र का कोई पता लगा सकीं, न ही कोई कारण समझ पाईं। वे जमीन पर इस तरह गिर पड़ीं मानों किसी गाय ने अपना बछड़ा खो दिया हो। वे अत्यन्त करुण-भाव से विलाप करने लगीं।

रुदितमनुनिशम्य तत्र गोप्यो
भृशमनुतप्तधियोऽश्रुपूर्णमुख्यः ।
रुरुदुरनुपलभ्य नन्दसूनुं
पवन उपारतपांशुवर्षवेगे ॥ २५॥

शब्दार्थ

रुदितम्—करुणापूर्वक रोती हुई माता यशोदा; अनुनिशम्य—सुनकर; तत्र—वहाँ; गोप्यः—अन्य गोपियाँ; भृशम्—अत्यधिक; अनुतप्त—माता यशोदा के साथ विलाप करती; धियः—ऐसी भावनाओं से; अश्रु-पूर्ण-मुख्यः—तथा आँसुओं से पूरित मुखों वाली अन्य गोपियाँ; रुरुदुः—रो रही थीं; अनुपलभ्य—न पाकर; नन्द-सूनुम्—नन्द महाराज के पुत्र, कृष्ण को; पवने—बवंडर के; उपारत—बन्द हो जाने पर; पांशु-वर्ष-वेगे—धूल की वर्षा के वेग से।

जब अंधड़ तथा बवंडर का वेग घट गया, तो यशोदा का करुण क्रन्दन सुनकर उनकी सखियाँ—गोपियाँ—उनके पास आईं। किन्तु वे भी कृष्ण को वहाँ न देखकर अत्यन्त उद्विग्न हुईं और आँखों में आँसू भर कर माता यशोदा के साथ वे भी रोने लगीं।

तात्पर्य : कृष्ण के प्रति गोपियों की अनुरक्ति विलक्षण तथा दिव्य है। गोपियों के सारे कार्यकलापों के केन्द्र कृष्ण थे। कृष्ण के रहने पर वे सुखी रहती थीं किन्तु उनके पास न होने पर वे दुखी थीं। इस तरह जब माता यशोदा कृष्ण के जाने से विलाप कर रही थीं तो अन्य स्त्रियाँ भी रोने लगीं।

तृणावर्तः शान्तरयो वात्यारूपधरो हरन् ।

कृष्णं नभोगतो गन्तुं नाशक्नोद्भूरिभारभृत् ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

तृणावर्त:—तृणावर्त असुर; शान्त-रय:—झोंके का वेग घट गया; वात्या-रूप-धर:—जिसने प्रबल बवंडर का रूप धारण कर लिया था; हरन्—तथा ले गया था; कृष्णम्—कृष्ण को; नभ:-गत:—आकाश में ऊँचे चला गया; गन्तुम्—आगे जाने के लिए; न अशक्नोत्—समर्थ न था; भूरि-भार-भृत्—क्योंकि कृष्ण असुर से भी अधिक शक्तिशाली तथा भारी थे।

तृणावर्त असुर वेगवान बवंडर का रूप धारण करके कृष्ण को आकाश में बहुत ऊँचाई तक ले गया किन्तु जब कृष्ण असुर से भारी हो गये तो असुर का वेग रुक गया जिससे वह और आगे नहीं जा सका।

तात्पर्य : यहाँ पर कृष्ण तथा तृणावर्त की योगशक्ति में प्रतियोगिता दिखाई गई है। योगाभ्यास द्वारा असुरगण सामान्यतया आठ सिद्धियाँ प्राप्त करते हैं—ये हैं अणिमा, लघिमा, महिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व तथा कामावसायिता। यद्यपि असुर कुछ हद तक ऐसी शक्तियाँ प्राप्त कर सकते हैं किन्तु वे कृष्ण की योगशक्ति से स्पर्धा नहीं कर सकते क्योंकि कृष्ण योगेश्वर हैं (*यत्र योगेश्वरो हरि:*)। कृष्ण से कोई होड़ नहीं ले सकता। निस्सन्देह, कभी कभी कृष्ण की योगशक्ति का एक अंश पाकर ये असुर अपनी शक्ति का प्रदर्शन मूर्ख जनता के समक्ष करते हैं और अपने को ईश्वर बतलाते हैं। वे यह नहीं जानते कि ईश्वर तो परम योगेश्वर हैं। यहाँ भी हम देखते हैं कि तृणावर्त *महिमा सिद्धि* प्राप्त करके कृष्ण को सामान्य बालक के रूप में उड़ा ले गया। किन्तु कृष्ण भी *महिमासिद्ध* योगी बन गये। जब माता यशोदा उन्हें लिये थीं तो वे इतने भारी हो गये कि माता जिन्हें कृष्ण को गोद में उठाने का अभ्यास था, यह भार सहन नहीं कर पाईं जिससे उन्हें नीचे जमीन पर रखना पड़ा। इस तरह तृणावर्त माता यशोदा की उपस्थिति में कृष्ण को ले जा सका। किन्तु जब कृष्ण ने आकाश में ऊँचाई पर महिमासिद्धि धारण की तो वह असुर आगे न जा सका अत: उसे अपनी शक्ति रोकनी ही पड़ी और कृष्ण की इच्छा के अनुसार नीचे आना पड़ा। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि वह कृष्ण की योगशक्ति की बराबरी न करे।

भक्तों में सारी योगशक्ति स्वत: रहती है किन्तु वे कृष्ण से बराबरी नहीं करना चाहते। बल्कि वे कृष्ण को पूर्ण समर्पण कर देते हैं और उनकी योगशक्ति कृष्ण की कृपा से प्रदर्शित होती है। भक्तगण इतनी प्रबल योगशक्ति प्रदर्शित कर सकते हैं जिसकी कोई असुर कल्पना भी नहीं कर सकता। किन्तु वे अपनी इन्द्रिय-तृप्ति के लिए कभी प्रदर्शन नहीं करना चाहते। वे जो कुछ भी करते हैं, भगवान् की

सेवा के लिए करते हैं फलतः वे असुरों से श्रेष्ठतर पद पर होते हैं। ऐसे अनेक कर्मी, योगी तथा ज्ञानी होते हैं, जो बनावटी तौर पर कृष्ण की बराबरी करना चाहते हैं अतः ऐसे सामान्य मूर्ख लोग जो विद्वानों से *श्रीमद्भागवत* सुनने की परवाह नहीं करते, किसी धूर्त योगी को भगवान् मानने लगते हैं। सम्प्रति ऐसे अनेक तथाकथित बाबा हैं, जो कोई तुच्छ योगशक्ति दिखाकर अपने को ईश्वर का अवतार बतलाते हैं। मूर्ख लोग कृष्ण विषयक ज्ञान के अभाव में इन बाबाओं को ईश्वर मान लेते हैं।

तमश्मानं मन्यमान आत्मनो गुरुमत्तया ।
गले गृहीत उत्स्त्रष्टुं नाशक्नोदद्भुतार्भकम् ॥ २७॥

शब्दार्थ

तम्—कृष्ण को; अश्मानम्—लोहे की तरह के भारी पत्थर; मन्यमानः—इस तरह सोचते हुए; आत्मनः गुरु-मत्तया—अनुमान से भी अधिक भारी होने के कारण; गले—उसकी गर्दन में; गृहीते—अपनी बाँहों से बँधा या आलिंगन किया जाकर; उत्स्त्रष्टुम्—छोड़ने के लिए; न अशक्नोत्—समर्थ नहीं था; अद्भुत-अर्भकम्—अद्भुत बालक को जो सामान्य बालक से भिन्न था।

कृष्ण के भार के कारण तृणावर्त उन्हें विशाल पर्वत या लोह का पिंड मान रहा था। किन्तु कृष्ण ने असुर की गर्दन पकड़ रखी थी इसलिए वह उन्हें फेंक नहीं पा रहा था। इसलिए उसने सोचा कि यह बालक अद्भुत है, जिसके कारण मैं न तो उसे ले जा सकता हूँ न ही इस भार को दूर फेंक सकता हूँ।

तात्पर्य : तृणावर्त कृष्ण को आकाश में ले जाकर मारना चाहता था किन्तु कृष्ण को तृणावर्त के शरीर पर सवारी करने और कुछ देर तक आकाश में यात्रा करने में आनन्द आ रहा था। इस तरह कृष्ण को मारने का उसका प्रयास असफल रहा किन्तु *आनन्दचिन्मय रस विग्रह* कृष्ण को इस लीला में खूब आनन्द आया। अब जबकि तृणावर्त कृष्ण के भार से नीचे गिरने लगा तो उसने अपने आप को बचाने के लिए कृष्ण को अपने गले से छुड़ाकर नीचे पटकना चाहा किन्तु वह ऐसा न कर पाया क्योंकि कृष्ण उसे बड़ी मजबूती से पकड़े थे। फलस्वरूप यह तृणावर्त की योगशक्ति की अन्तिम घड़ी थी। अब वह कृष्ण की योजना से मृत्यु के मुख में जा रहा था।

गलग्रहणनिश्चेष्टो दैत्यो निर्गतलोचनः ।
अव्यक्तरावो न्यपतत्सहबालो व्यसुर्व्रजे ॥ २८॥

शब्दार्थ

गल-ग्रहण-निश्चेष्टः—कृष्ण द्वारा गला पकड़े रहने से तृणावर्त का गला घुट रहा था और वह कुछ भी नहीं कर सका; दैत्यः—असुर; निर्गत-लोचनः—दबाव से आँखें बाहर निकल आईं; अव्यक्त-रावः—गला घुटने से उसकी कराह भी नहीं निकल पायी; न्यपतत्—गिर पड़ा; सह-बालः—बालक सहित; व्यसुः व्रजे—व्रज की भूमि पर निर्जीव।

कृष्ण ने तृणावर्त को गले से पकड़ रखा था इसलिए उसका दम घुट रहा था जिससे वह न तो कराह सकता था, न ही अपने हाथ-पैर हिला-डुला सकता था। उसकी आँखें बाहर निकल आईं थी, उसके प्राण निकल गये और वह उस छोटे बालक सहित व्रज की भूमि पर नीचे आ गिरा।

तमन्तरिक्षात्पतितं शिलायां
विशीर्णसर्वावयवं करालम् ।
पुरं यथा रुद्रशरेण विद्धं
स्त्रियो रुदत्यो ददृशुः समेताः ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

तम्—उस असुर को; अन्तरिक्षात्—आकाश से; पतितम्—गिरा हुआ; शिलायाम्—चट्टान पर; विशीर्ण—बिखरा, छिन्न-भिन्न; सर्व-अवयवम्—शरीर के सारे अंग; करालम्—अत्यन्त विकराल हाथ-पाँव; पुरम्—त्रिपुरासुर का स्थान; यथा—जिस तरह; रुद्र-शरेण—शिवजी के बाण से; विद्धम्—बेधा गया; स्त्रियः—सारी स्त्रियाँ, गोपियाँ; रुदत्यः—कृष्ण वियोग के कारण रोती हुईं; ददृशुः—अपने सामने ही देखा; समेताः—एकसाथ।

जब वहाँ एकत्र गोपियाँ कृष्ण के लिए रो रही थीं तो वह असुर आकाश से पत्थर की एक बड़ी चट्टान पर आ गिरा, जिससे उसके सारे अंग छिन्न-भिन्न हो गये मानो भगवान् शिवजी के बाण से बेधा गया त्रिपुरासुर हो।

तात्पर्य : दिव्य भक्ति में ज्योंही भगवद्भक्त शोकाकुल हो जाते हैं, तो उन्हें भगवान् के दिव्य कार्यकलापों का अनुभव होने लगता है और वे दिव्य आनन्द में मग्न हो जाते हैं। वास्तव में ऐसे भक्त सदैव दिव्य आनन्द को प्राप्त रहते हैं और ऐसी ऊपरी विपदाएँ उस आनन्द को और अधिक वर्धित करती हैं।

प्रादाय मात्रे प्रतिहृत्य विस्मिताः
कृष्णं च तस्योरसि लम्बमानम् ।
तं स्वस्तिमन्तं पुरुषादनीतं
विहायसा मृत्युमुखात्प्रमुक्तम् ।
गोप्यश्च गोपाः किल नन्दमुख्या
लब्ध्वा पुनः प्रापुरतीव मोदम् ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

प्रादाय—उठाकर; मात्रे—उनकी माता को; प्रतिहृत्य—हाथों में सौंप दिया; विस्मिताः—सारे लोग अचंभित थे; कृष्णम् च—तथा कृष्ण को; तस्य—असुर की; उरसि—छाती पर; लम्बमानम्—स्थित; तम्—कृष्ण को; स्वस्तिमन्तम्—समस्त कल्याण से युक्त; पुरुषाद-नीतम्—मानवभक्षी असुर द्वारा ले जाया गया; विहायसा—आकाश में; मृत्यु-मुखात्—मृत्यु के मुँह से; प्रमुक्तम्—अब मुक्त हुए; गोप्यः—गोपियाँ; च—तथा; गोपाः—ग्वाले; किल—निस्सन्देह; नन्द-मुख्याः—नन्द महाराज इत्यादि; लब्ध्वा—पाकर; पुनः—फिर (उनका पुत्र); प्रापुः—प्राप्त किया; अतीव—अत्यधिक; मोदम्—आनन्द।

गोपियों ने तुरन्त ही कृष्ण को असुर की छाती से उठाकर माता यशोदा को लाकर सौंप दिया। वे समस्त अशुभों से मुक्त थे। चूँकि बालक को असुर द्वारा आकाश में ले जाये जाने पर भी किसी प्रकार की चोट नहीं आई थी और वह अब सारे खतरों तथा दुर्भाग्य से मुक्त था इसलिए नन्द महाराज समेत सारे ग्वाले तथा गोपियाँ अत्यन्त प्रसन्न थे।

तात्पर्य : असुर आकाश से पीठ के बल गिरा और कृष्ण उसकी छाती पर बिना चोट खाये और किसी दुर्घटना से ग्रस्त हुए बिना खेल रहे थे। आकाश में असुर द्वारा दूर तक ले जाये जाने पर भी कृष्ण तनिक भी विचलित नहीं थे। कृष्ण से खेल रहे थे और आनंद ले रहे थे। यही है *आनन्दचिन्मय रस विग्रह।* वे हर हालत में *सच्चिदानन्द विग्रह* हैं। उन्हें कोई दुख नहीं सताता। अन्यों ने भले ही सोचा हो कि वे संकट में थे लेकिन असुर की छाती इतनी चौड़ी थी कि वे प्रसन्नतापूर्वक उसी पर खेल रहे थे। यह सबसे अधिक आश्चर्य की बात थी कि यद्यपि असुर आकाश में बहुत ऊँचाई तक उन्हें ले गया था किन्तु वे गिरे नहीं। इस तरह बालक कृष्ण एक तरह से मृत्यु के मुँह से बाल-बाल बचे थे। उनके सुरक्षित रहने से वृन्दावन के सारे निवासी अत्यन्त प्रसन्न थे।

अहो बतात्यद्भुतमेष रक्षसा
बालो निवृत्तिं गमितोऽभ्यगात्पुनः ।
हिंस्रः स्वपापेन विहिंसितः खलः
साधुः समत्वेन भयाद्विमुच्यते ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

अहो—ओह; बत—निस्सन्देह; अति—अत्यन्त; अद्भुतम्—यह घटना बड़ी अद्भुत है; एषः—यह (बालक); रक्षसा—मानवभक्षी असुर के द्वारा; बालः—अबोध बालक कृष्ण; निवृत्तिम्—मार कर खाये जाने के लिए ले जाया गया; गमितः—दूर चला गया; अभ्यगात् पुनः—किन्तु वह बिना चोट लगे वापस आ गया; हिंस्रः—ईर्ष्यालु; स्व-पापेन—अपने ही पापपूर्ण कार्यों से; विहिंसितः—अब (वही असुर) मारा जा चुका है; खलः—दुष्ट होने के कारण; साधुः—पाप से रहित तथा निर्दोष व्यक्ति; समत्वेन—समान होने से; भयात्—सभी प्रकार के भय से; विमुच्यते—छूट जाता है।

यह सबसे अधिक आश्चर्य की बात है कि यह अबोध बालक इस राक्षस द्वारा खाये जाने के लिए दूर ले जाया जाकर भी बिना मारे या चोट खाये वापस लौट आया। चूँकि राक्षस ईर्ष्यालु, क्रूर तथा पापी था, इसलिए वह अपने पापपूर्ण कृत्यों के लिए मारा गया। यही प्रकृति का नियम

है। निर्दोष भक्त की रक्षा सदैव भगवान् द्वारा की जाती है और पापी व्यक्ति को अपने पापमय जीवन के लिए दण्ड दिया जाता है।

तात्पर्य : कृष्णभावनाभावित जीवन का अर्थ है निष्पाप भक्तिमय जीवन। *साधु* वह है, जो पूरी तरह कृष्ण में अनुरक्त हो। कृष्ण ने *भगवद्गीता* (९.३०) में पुष्टि की है—*भजते मां अनन्य-भाक् साधुरेव स मन्तव्यः*—कृष्ण के प्रति पूर्णरूपेण अनुरक्त व्यक्ति *साधु* है। नन्द महाराज, गोपियाँ तथा अन्य ग्वाले यह समझ ही नहीं सके कि कृष्ण भगवान् होकर मानवी बालक की भूमिका अदा कर रहे हैं और उनका जीवन किसी भी परिस्थिति में खतरे में नहीं था। प्रत्युत कृष्ण के प्रति उत्कट वात्सल्य-प्रेम के कारण वे कृष्ण को अबोध बालक मान रहे थे जिसे भगवान् ने बचा लिया था।

इस भौतिक जगत में अतीव काम तथा भोगेच्छा के कारण मनुष्य अधिकाधिक पापपूर्ण जीवन में फँसता जाता है (*काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः*)। इसलिए भौतिक जीवन के पक्षों में से भय एक है (*आहारनिद्राभयमैथुनं च*)। किन्तु कृष्णभावनाभावित होने पर भक्ति की विधि अर्थात् *श्रवणं कीर्तनं* इस जगत के कलुषित जीवन को घटा देते हैं। इससे वह शुद्ध बनकर भगवान् द्वारा संरक्षित हो जाता है। *शृण्वतां स्वकथाः कृष्णः पुण्यश्रवणकीर्तनः।* भक्तिमय जीवन में मनुष्य की इस विधि में श्रद्धा रहती है। ऐसी श्रद्धा छः प्रकार की शरणागतियों में से एक है। *रक्षिष्यतीति विश्वासः* (*हरि भक्ति* ११.६७६)। शरणागति की एक विधि यह भी है कि मनुष्य इस विश्वास से एकमात्र कृष्ण पर आश्रित रहे कि वे उसकी सभी प्रकार से रक्षा करेंगे। कृष्ण अपने भक्त की रक्षा करते हैं—यह तथ्य है और नन्द महाराज तथा वृन्दावन के अन्य निवासियों ने इसे सहज ही स्वीकार कर लिया, यद्यपि उन्हें ज्ञात न था कि साक्षात् भगवान् उनके समक्ष हैं। ऐसे अनेक दृष्टान्त हैं जिनमें प्रह्लाद महाराज या ध्रुव महाराज जैसे भक्त को उसके पिता ने सताया किन्तु तो भी सभी परिस्थितियों में उसकी रक्षा हुई। अतः हमारा एकमात्र यह धर्म है कि हम कृष्णभावनाभावित होकर रक्षा के लिए कृष्ण पर पूरी तरह से आश्रित रहें।

किं नस्तपश्चीर्णमधोक्षजार्चनं
पूर्तेष्टदत्तमुत भूतसौहृदम् ।
यत्सम्परेतः पुनरेव बालको
दिष्ट्या स्वबन्धून्प्रणयन्नुपस्थितः ॥ ३२॥

शब्दार्थ

किम्—किस तरह की; नः—हमारे द्वारा; तपः—तपस्या; चीर्णम्—दीर्घकाल तक की गई; अधोक्षज—भगवान् की; अर्चनम्—पूजा; पूर्त—सड़कें बनवाना इत्यादि.; इष्ट—जनकल्याण कार्य; दत्तम्—दान देना; उत—अथवा और कुछ; भूत-सौहृदम्—जनता के प्रति प्रेम होने से; यत्—जिसके कारण; सम्परेतः—मृत्यु को प्राप्त होने पर भी; पुनः एव—फिर से, अपने पुण्यों के कारण; बालकः—बालक; दिष्ट्या—भाग्य द्वारा; स्व-बन्धून्—निजी सम्बन्धियों को; प्रणयन्—प्रसन्न करने के लिए; उपस्थितः—यहाँ उपस्थित है।

नन्द महाराज तथा अन्य लोगों ने कहा : हमने अवश्य ही पूर्वजन्म में दीर्घकाल तक तपस्या की होगी, भगवान् की पूजा की होगी, जनता के लिए सड़कें तथा कुएँ बनवाकर पुण्य कर्म किये होंगे और दान भी दिया होगा जिसके फलस्वरूप मृत्यु के मुख में गया हुआ यह बालक अपने सम्बन्धियों को आनन्द प्रदान करने के लिए लौट आया है।

तात्पर्य : नन्द महाराज ने पुष्टि की कि पुण्य कर्मों से मनुष्य साधु बन सकता है, जिससे वह घर में सुखी रह सकता है और उसके बाल-बच्चे सुरक्षित रह सकते हैं। शास्त्र में कर्मियों तथा ज्ञानियों के लिए, विशेष रूप से कर्मियों के लिए अनेक आदेश हैं जिनसे वह पवित्र बन सकते हैं और भौतिक जीवन में भी सुखी हो सकते हैं। वैदिक सभ्यता के अनुसार मनुष्य को चाहिए कि जनता के लाभ के लिए कार्य करे—यथा सड़कें बनवाये, सड़कों के दोनों ओर वृक्ष लगवाये जिससे लोग छाया में चल सकें, सार्वजनिक कुँए खुदवाये जिससे हर एक को बिना किसी कठिनाई के जल मिल सके। अपनी इच्छाओं को वश में रखने के लिए मनुष्य को तपस्या करनी चाहिए और उसी के साथ साथ भगवान् की पूजा करनी चाहिए। इस तरह वह पवित्र बन जाता है और उसी के फलस्वरूप वह भौतिक जीवन में भी सुखी हो सकता है।

दृष्ट्वाद्भुतानि बहुशो नन्दगोपो बृहद्वने ।
वसुदेववचो भूयो मानयामास विस्मितः ॥ ३३॥

शब्दार्थ

दृष्ट्वा—देखकर; अद्भुतानि—अतीव अद्‌भुत घटनाओं को; बहुशः—अनेक बार; नन्द-गोपः—गोपों के मुखिया नन्द महाराज; बृहद्वने—बृहद्वन में; वसुदेव-वचः—वसुदेव के वचन, जो उन्होंने मथुरा में नन्द से कहे थे; भूयः—बारम्बार; मानयाम् आस—मान लिया कि कितने सच थे; विस्मितः—अतीव विस्मय में।

बृहद्वन में इन सारी घटनाओं को देखकर नन्द महाराज अधिकाधिक आश्चर्यचकित हुए और उन्हें वसुदेव के वे शब्द स्मरण हो आये जो उन्होंने मथुरा में कहे थे।

एकदार्भकमादाय स्वाङ्कमारोप्य भामिनी ।
प्रस्नुतं पाययामास स्तनं स्नेहपरिप्लुता ॥ ३४॥

शब्दार्थ

एकदा—एक बार; अर्भकम्—बालक को; आदाय—लेकर; स्व-अङ्कम्—अपनी गोद में; आरोप्य—तथा बैठाकर; भामिनी—माता यशोदा ने; प्रस्नुतम्—स्तनों से दूध बहता हुआ; पाययाम् आस—बच्चे को पिलाया; स्तनम्—अपने स्तन; स्नेह-परिप्लुता—अतीव स्नेह तथा प्रेम से युक्त।

एक दिन माता यशोदा कृष्ण को अपनी गोद में बैठाकर उन्हें मातृ-स्नेह के कारण अपने स्तन से दूध पिला रही थीं। दूध उनके स्तन से चू रहा था और बालक उसे पी रहा था।

पीतप्रायस्य जननी सुतस्य रुचिरस्मितम् ।
मुखं लालयती राजञ्जृम्भतो ददृशे इदम् ॥ ३५ ॥
खं रोदसी ज्योतिरनीकमाशाः
सूर्येन्दुवह्निश्वसनाम्बुधींश्च ।
द्वीपान्नगांस्तद्दुहितॄर्वनानि
भूतानि यानि स्थिरजङ्गमानि ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

पीत-प्रायस्य—स्तन-पान करते तथा संतुष्ट बालक कृष्ण की; जननी—माता यशोदा; सुतस्य—अपने पुत्र की; रुचिर-स्मितम्—तुष्ट मुसकान को देखती; मुखम्—मुँह को; लालयती—दुलारती हुई; राजन्—हे राजा; जृम्भतः—बच्चे को अँगड़ाई लेते; ददृशे—उसने देखा; इदम्—यह; खम्—आकाश; रोदसी—स्वर्ग तथा पृथ्वी दोनों; ज्योतिः-अनीकम्—ज्योतिपुंज; आशाः—दिशाएँ; सूर्य—सूर्य; इन्दु—चंद्रमा; वह्नि—अग्नि; श्वसन—वायु; अम्बुधीन्—समुद्र; च—तथा; द्वीपान्—द्वीप; नगान्—पर्वत; तत्-दुहितृः—पर्वतों की पुत्रियाँ (नदियाँ); वनानि—जंगल; भूतानि—सारे जीव; यानि—जो हैं; स्थिर-जङ्गमानि—अचर तथा चर।

हे राजा परीक्षित, जब बालक कृष्ण अपनी माता का दूध पीना लगभग बन्द कर चुके थे और माता यशोदा उनके सुन्दर कान्तिमान हँसते मुख को छू रही थीं और निहार रही थीं तो बालक ने जम्हाई ली और माता यशोदा ने देखा कि उनके मुँह में पूरा आकाश, उच्च लोक तथा पृथ्वी, सभी दिशाओं के तारे, सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, वायु, समुद्र, द्वीप, पर्वत, नदी, जंगल तथा चर-अचर सभी प्रकार के जीव समाये हुए हैं।

तात्पर्य : योगमाया की व्यवस्था से माता यशोदा के साथ कृष्ण की लीलाएँ सामान्य मानी जाती थीं। इसलिए कृष्ण के हाथ अच्छा अवसर आया कि वे अपनी माता को दिखा दें कि सारा ब्रह्माण्ड उनके भीतर स्थित है। कृष्ण ने अपने नन्हें रूप में ही अपनी माता को *विराट् रूप* का दर्शन कराना चाहा जिससे उन्हें यह देखकर आनन्द आ सके कि जिस बालक को वे गोद में लिये हैं वह किस तरह का बालक है। यहाँ पर नदियों को पर्वतों की पुत्रियाँ (*नगांश्च तद्दुहितृ*) कहा गया है। नदियों के बहने से ही विशाल जंगल बनते हैं। जीव सर्वत्र हैं जिनमें से कुछ चर हैं और कुछ अचर। कोई भी स्थान शून्य नहीं। ईश्वर की सृष्टि की यह एक विशेषता है।

सा वीक्ष्य विश्वं सहसा राजन्सञ्जातवेपथुः ।
सम्मील्य मृगशावाक्षी नेत्रे आसीत्सुविस्मिता ॥ ३७॥

शब्दार्थ

सा—माता यशोदा; वीक्ष्य—देखकर; विश्वम्—सम्पूर्ण विश्व को; सहसा—अचानक अपने पुत्र के मुँह के भीतर; राजन्—हे राजा (महाराज परीक्षित); सञ्जात-वेपथुः—उनका हृदय धक् धक् करने लगा; सम्मील्य—खोल कर; मृगशाव-अक्षी—मृगनैनी; नेत्रे—उसकी दोनों आँखें; आसीत्—हो गईं; सु-विस्मिता—आश्चर्यचकित।

जब यशोदा माता ने अपने पुत्र के मुखारविन्द में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड देखा तो उनका हृदय धक् धक् करने लगा तथा आश्चर्यचकित होकर वे अपने अधीर नेत्र बन्द करना चाह रहती थीं।

तात्पर्य : माता यशोदा ने शुद्ध मातृ-प्रेम के कारण सोचा कि यह अद्‌भुत बालक जो तरह-तरह के खेल कर रहा है अवश्य ही रोगग्रस्त है। उन्होंने बालक द्वारा प्रदर्शित आश्चर्यों की प्रशंसा नहीं की प्रत्युत वे अपनी आँखें मूँद लेना चाहती थीं। उन्हें अन्य खतरे की सम्भावना थी इसलिए उनकी आँखें मृगी के बच्चे की आँखों के समान अधीर हो रही थीं। यह सब योगमाया की व्यवस्था थी। माता यशोदा तथा कृष्ण के बीच शुद्ध मातृ-प्रेम का सम्बन्ध है। इसी प्रेम के कारण माता यशोदा भगवान् के ऐश्वर्य-प्रदर्शन को ठीक से समझ नहीं पाईं।

इस अध्याय के प्रारम्भ में कहीं कहीं दो अतिरिक्त श्लोक प्रकट होते हैं—

एवं बहूनि कर्माणि गोपानां शं सयोषिताम्।

नन्दस्य गेहे ववृधे कुर्वन् विष्णुजनार्दनः॥

"इस तरह असुरों को दण्ड देने और उनका वध करने के लिए बालक कृष्ण ने नन्द महाराज के घर में अनेक लीलाएँ प्रदर्शित कीं और व्रजवासियों ने इन घटनाओं का आनन्द लिया।"

एवं स ववृधे विष्णुर्नन्दगेहे जनार्दनः।

कुर्वन् अनिशमानन्दं गोपालानां स-योषिताम्॥

"गोपों तथा गोपियों के दिव्य आनन्दवर्धन के लिए समस्त असुरों के वधकर्ता कृष्ण अपने पिता तथा माता, नन्द एवं यशोदा द्वारा इस तरह पाले गये।"

श्रीपाद विजयध्वज तीर्थ ने इस अध्याय के तीसरे श्लोक के बाद एक अन्य श्लोक जोड़ दिया है :

विस्तरेणेह कारुण्यात् सर्वपापप्रणाशनम्।

वक्तुमर्हसि धर्मज्ञ दयालुस्त्वमिति प्रभो॥

''तब परीक्षित महाराज ने शुकदेव गोस्वामी से कृष्ण-लीलाओं से सम्बन्धित ऐसी कथाएँ कहते रहने का अनुरोध किया जिससे राजा उनसे दिव्य आनन्द प्राप्त कर सकें।''

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत ''तृणावर्त का वध'' नामक सातवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter आठ

भगवान् कृष्ण द्वारा अपने मुख के भीतर विराट रूप का प्रदर्शन

आठवें अध्याय का सारांश निम्नवत् है—

इस अध्याय में कृष्ण के नामकरण-संस्कार का वर्णन हुआ है। इसमें उनका घुटनों के बल सरकना, गौवों के साथ खेलना, मिट्टी खाना तथा एक बार फिर अपनी माता को विराट रूप दिखलाने का भी वर्णन मिलता है।

एक दिन वसुदेव ने यदुवंश के कुल-पुरोहित गर्गमुनि को बुलावा भेजा और जब गर्गमुनि नन्द महाराज के घर पहुँचे तो उन्होंने उनकी भलीभाँति आवभगत की और उनसे प्रार्थना की कि वे कृष्ण तथा बलराम का नामकरण कर दें। गर्गमुनि ने नन्द महाराज को याद दिलाया कि कंस देवकी के पुत्र की ताक में है, अत: यदि यह नामकरण संस्कार धूमधाम से मनाया जायेगा तो कंस का ध्यान इधर जायेगा और उसे सन्देह हो सकता है कि कृष्ण देवकी के पुत्र हैं। फलत: नन्द महाराज ने गर्गमुनि से प्रार्थना की कि वे किसी के जाने बिना यह संस्कार सम्पन्न करें और उन्होंने वैसा ही किया गया। चूँकि रोहिणी-पुत्र बलराम अन्यों के दिव्य आनन्द में वृद्धि करने वाला है इसलिए उसका नाम राम है और अपने असाधारण बल के कारण वह बलदेव कहलाता है। चूँकि वह यदुओं को अपने आदेशों का पालन करने के लिए आकृष्ट करता है इसलिए उसका नाम संकर्षण है। यशोदा-पुत्र कृष्ण इसके पूर्व कई रंगों में—यथा श्वेत, लाल तथा पीले रंगों में प्रकट हो चुका है और अब उसने श्याम रंग धारण किया है। चूँकि कभी वह वसुदेव का पुत्र था अतएव उसका नाम वासुदेव है। अपने विविध कार्यों तथा गुणों के अनुसार उसके अन्य कई नाम हैं। इस तरह नन्द को सूचित करके तथा नामकरण-संस्कार पूरा

करके गर्गमुनि ने उन्हें अपने पुत्र की सावधानीपूर्वक रक्षा करने की सलाह दी और विदा ली।

इसके बाद शुकदेव गोस्वामी ने वर्णन किया है कि किस तरह दोनों बालक अपने नन्हें-नन्हें पाँवों पर रेंगने, गौवों तथा बछड़ों के साथ खेलने, मक्खन तथा अन्य दुग्ध-पदार्थ चुराने और भांडे तोड़ने लगे। इस तरह उन्होंने कृष्ण तथा बलराम के अनेक नटखटतापूर्ण कार्यकलापों का वर्णन किया है। इनमें सबसे अद्भुत लीला वह है जब कृष्ण के साथियों ने माता यशोदा से यह शिकायत की कि कृष्ण मिट्टी खा रहा है। माता यशोदा इसके प्रमाण के लिए कृष्ण का मुँह खोलना चाहती थीं जिससे वे उन्हें दण्ड दे सकें। कभी वे दण्ड देने वाली माता का रूप धारण कर लेती थीं, तो अगले ही क्षण मातृ-प्रेम से विह्वल हो उठती थीं। इन सबका वर्णन कर चुकने के बाद शुकदेव गोस्वामी ने महाराज परीक्षित के अनुरोध पर माता यशोदा तथा नन्द के भाग्य की सराहना की। पूर्व जन्म में नन्द तथा यशोदा क्रमशः द्रोण तथा धरा थे और ब्रह्मा के आदेश से वे पृथ्वीलोक पर आये थे और उन्हें पुत्र रूप में भगवान् प्राप्त हुए।

श्रीशुक उवाच

गर्गः पुरोहितो राजन्यदूनां सुमहातपाः ।
व्रजं जगाम नन्दस्य वसुदेवप्रचोदितः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; गर्गः—गर्गमुनि; पुरोहितः—पुरोहित; राजन्—हे राजा परीक्षित; यदूनाम्—यदुकुल के; सु-महा-तपाः—तपस्या में बढ़े चढ़े; व्रजम्—व्रजभूमि में; जगाम—गये; नन्दस्य—नन्द महाराज के; वसुदेव-प्रचोदितः—वसुदेव की प्रेरणा से।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे महाराज परीक्षित, तब यदुकुल के पुरोहित एवं तपस्या में बढ़े चढ़े गर्गमुनि को वसुदेव ने प्रेरित किया कि वे नन्द महाराज के घर जाकर उन्हें मिलें।

तं दृष्ट्वा परमप्रीतः प्रत्युत्थाय कृताञ्जलिः ।
आनर्चाधोक्षजधिया प्रणिपातपुरःसरम् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

तम्—उन्हें (गर्गमुनि को); दृष्ट्वा—देखकर; परम-प्रीतः—नन्द महाराज अत्यन्त प्रसन्न हुए; प्रत्युत्थाय—स्वागत करने के लिए खड़े होकर; कृत-अञ्जलिः—हाथ जोड़े हुए; आनर्च—पूजा की; अधोक्षज-धिया—यद्यपि गर्गमुनि इन्द्रियों द्वारा दृष्टिगोचर थे किन्तु नन्द महाराज उनके प्रति अपार सम्मान रखते थे; प्रणिपात-पुरःसरम्—नन्द महाराज ने उनके सामने गिर कर नमस्कार किया।

जब नन्द महाराज ने गर्गमुनि को अपने घर में उपस्थित देखा तो वे इतने प्रसन्न हुए कि उनके

स्वागत में दोनों हाथ जोड़े उठ खड़े हुए। यद्यपि गर्गमुनि को नन्द महाराज अपनी आँखों से देख रहे थे किन्तु वे उन्हें अधोक्षज मान रहे थे अर्थात् वे भौतिक इन्द्रियों से दिखाई पड़ने वाले सामान्य पुरुष न थे।

सूपविष्टं कृतातिथ्यं गिरा सूनृतया मुनिम् ।
नन्दयित्वाब्रवीद्ब्रह्मन्पूर्णस्य करवाम किम् ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

सु-उपविष्टम्—जब गर्गमुनि ठीक से बैठ गये; कृत-आतिथ्यम्—तथा अतिथि के रूप में उनका स्वागत हो जाने पर; गिरा—शब्दों से; सूनृतया—अत्यन्त मधुर; मुनिम्—गर्गमुनि को; नन्दयित्वा—इस तरह प्रसन्न करके; अब्रवीत्—कहा; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण; पूर्णस्य—सभी प्रकार से पूर्ण; करवाम किम्—मैं आपके लिए क्या कर सकता हूँ (कृपया आज्ञा दें)।

जब अतिथि रूप में गर्गमुनि का स्वागत हो चुका और वे ठीक से आसन ग्रहण कर चुके तो नन्द महाराज ने भद्र तथा विनीत शब्दों में निवेदन किया: महोदय, भक्त होने के कारण आप सभी प्रकार से परिपूर्ण हैं। फिर भी आपकी सेवा करना मेरा कर्तव्य है। कृपा करके आज्ञा दें कि मैं आपके लिए क्या करूँ?

महद्विचलनं नृणां गृहिणां दीनचेतसाम् ।
निःश्रेयसाय भगवन्कल्पते नान्यथा क्वचित् ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

महत्-विचलनम्—महापुरुषों की गति; नृणाम्—सामान्य पुरुषों के घरों में; गृहिणाम्—विशेषतया गृहस्थों की; दीन-चेतसाम्—जो परिवार के भरण में लगे रहने के कारण सरल चित्त हैं; निःश्रेयसाय—महापुरुष को गृहस्थ के घर जाने का कारण केवल उसे लाभ पहुँचाना है; भगवन्—हे शक्तिशाली भक्त; कल्पते—इस तरह समझना चाहिए; न अन्यथा—और किसी प्रयोजन के लिए नहीं; क्वचित्—किसी भी समय।

हे महानुभाव, हे महान् भक्त, आप जैसे पुरुष अपने स्वार्थ के लिए नहीं अपितु दीनचित्त गृहस्थों के लिए ही स्थान-स्थान पर जाते रहते हैं। अन्यथा इस तरह जगह-जगह घूमने में उन्हें कोई रुचि नहीं रहती।

तात्पर्य : नन्द महाराज ने यथार्थ बात कही है कि भक्त होने के कारण गर्गमुनि को किसी प्रकार की कोई आवश्यकता नहीं थी। इसी तरह जब कृष्ण आते हैं, तो उन्हें कोई आवश्यकता नहीं होती क्योंकि वे *पूर्ण, आत्माराम* हैं। फिर भी वे भक्तों की रक्षा करने तथा दुष्टों का विनाश करने के लिए इस भौतिक जगत में अवतरित होते हैं (*परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्*)। भगवान् का यही व्रत है और भक्तों का भी यही सेवाव्रत होता है। *पर-उपकार* का यह कार्य जो कोई पूरा करता है, वह

भगवान् कृष्ण को अत्यधिक प्रिय होता है (*नच तस्मान् मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः*)। इसी तरह चैतन्य महाप्रभु ने इस पर-उपकार का उपदेश दिया है विशेष रूप से भारतवासियों को—

भारत-भूमिते हैल मनुष्य-जन्म यार।

जन्म सार्थक करिऽकर पर-उपकार॥

''जिसने भारतभूमि में मनुष्य के रूप में जन्म लिया है उसे अपना जीवन सफल बनाना चाहिए और अन्यों के लाभ के लिए (पर-उपकार) कार्य करना चाहिए।'' (*चैतन्यचरितामृत, आदि* ९.४१)। कुल मिलाकर शुद्ध वैष्णव भक्त का कर्तव्य है कि दूसरों के कल्याण के लिए कार्य करे।

नन्द महाराज समझ गये थे कि गर्गमुनि इसी काम के लिए आये हुए हैं अतः अब उनका कर्तव्य था कि वे गर्गमुनि के उपदेश के अनुसार कार्य करें। अतः उन्होंने कहा, ''कृपा करके मुझे मेरा कर्तव्य बतलायें।'' हर एक की, विशेष रूप से हर गृहस्थ की, ऐसी ही मनोवृत्ति होनी चाहिए। वर्णाश्रम समाज आठ विभागों में संगठित है—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यास। नन्द महाराज स्वयं *गृहिणाम्* अर्थात् गृहस्थ का प्रतिनिधित्व करते थे। वस्तुतः ब्रह्मचारी को किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं होती किन्तु *गृही* तो इन्द्रिय-तृप्ति में लगे रहते हैं। *भगवद्गीता* (२.४४) में कहा गया है— *भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम्।* हर व्यक्ति इस जगत में अपनी इन्द्रिय-तृप्ति के लिए आया है, अतः जो लोग इन्द्रिय-तृप्ति में बहुत अधिक लिप्त हैं और जिन्होंने *गृहस्थ आश्रम* स्वीकार किया है उनकी स्थिति बड़ी गम्भीर है। चूँकि इस जगत में हर व्यक्ति इन्द्रिय-तृप्ति की खोज में लगा रहता है, अतः गृहस्थों को *महत्* अर्थात् *महात्मा* बनने का प्रशिक्षण मिलना चाहिए। इसलिए नन्द महाराज ने विशेष रूप से *महद्-विचलनम्* शब्द का प्रयोग किया है। गर्गमुनि को नन्द महाराज के यहाँ जाने में कोई स्वार्थ न था अपितु गृहस्थ होने के कारण नन्द महाराज जीवन का असली लाभ उठाने के लिए किसी भी महात्मा से उपदेश ग्रहण करने के लिए सदैव तैयार रहते थे। इस तरह वे गर्गमुनि के आदेश को पूरा करने के लिए तैयार थे।

ज्योतिषामयनं साक्षाद्यत्तज्ज्ञानमतीन्द्रियम् ।
प्रणीतं भवता येन पुमान्वेद परावरम् ॥५॥

शब्दार्थ

ज्योतिषाम्—ज्योतिष ज्ञान (मानव समाज में संस्कृति के अन्य पक्षों के साथ साथ ज्योतिष ज्ञान भी आवश्यक है); **अयनम्**—नक्षत्रों तथा ग्रहों की गतियाँ; **साक्षात्**—प्रत्यक्ष; **यत् तत् ज्ञानम्**—ऐसा ज्ञान; **अति-इन्द्रियम्**—सामान्य व्यक्ति की दृष्टि से परे; **प्रणीतम् भवता**—आपके द्वारा रचित ज्ञान का सम्यक ग्रंथ; **येन**—जिससे; **पुमान्**—कोई भी व्यक्ति; **वेद**—समझ सकता है; **पर-अवरम्**—अपने भाग्य का कारण तथा कार्य।

हे सन्त पुरुष, आपने ज्योतिष ज्ञान को संकलित किया है, जिससे कोई भी मनुष्य अदृश्य भूत और वर्तमान बातों को समझ सकता है। इस ज्ञान के बल पर कोई भी मनुष्य यह समझ सकता है कि पिछले जीवन में उसने क्या किया और वर्तमान जीवन पर उसका कैसा प्रभाव पड़ेगा। आप इसे जानते हैं।

तात्पर्य : अब ''भाग्य'' की परिभाषा दी जाती है। ऐसे बुद्धिहीन व्यक्ति जो जीवन का अर्थ नहीं समझते वे पशुतुल्य हैं। पशु न तो जीवन के भूत, वर्तमान तथा भविष्य को जानते हैं न ही इसे समझ सकते हैं। किन्तु धीर मनुष्य इसे समझ सकता है। इसलिए जैसाकि *भगवद्गीता* (२.१३) में कहा गया है— *धीरस्तत्र न मुह्यति*—धीर व्यक्ति मोहित नहीं होता। सचाई तो यह है कि जीवन शाश्वत है फिर भी इस भौतिक जगत में मनुष्य को एक शरीर बदलकर दूसरा शरीर धारण करना पड़ता है। इस युग में तो मूर्ख लोग इस सचाई को भी नहीं समझ पाते। कृष्ण कहते हैं (*भगवद्गीता* २.१३)।

देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।

तथा देहान्तर प्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति॥

''जिस तरह देहधारी आत्मा इस शरीर में निरन्तर बालपन से युवावस्था और फिर वृद्धावस्था से होकर गुजरता है उसी तरह मृत्यु के समय आत्मा दूसरे शरीर में चला जाता है। जो स्वरूपसिद्ध है, वह ऐसे परिवर्तन से मोहग्रस्त नहीं होता।'' परम अधिकारी कृष्ण कहते हैं कि शरीर परिवर्तनशील है और ज्योंही शरीर बदलता है मनुष्य के सारे कार्यक्रम भी बदल जाते हैं। आज मैं एक मनुष्य हैं या कोई महान् व्यक्ति हूँ किन्तु प्रकृति के नियमों में थोड़े से भी परिवर्तन से मुझे भिन्न प्रकार का शरीर स्वीकार करना होगा। आज मैं मनुष्य हूँ किन्तु कल मैं कुत्ता बन सकता हूँ और तब इस जीवन में मैंने जो भी कार्य किये होंगे वे सब विफल हो जायेंगे। इस सचाई को विरले ही समझ पाते हैं किन्तु जो *धीर* है, वह इसे समझ सकता है। जो लोग इस भौतिक जगत में भौतिक भोग के लिए आये हैं उन्हें समझ लेना चाहिए कि क्योंकि उनका वर्तमान पद समाप्त होकर ही रहेगा अत: उन्हें अपने कर्म करने के प्रति सावधान रहना चाहिए। यही बात ऋषभदेव ने भी कही है। *न साधु मन्ये यत आत्मनोऽयमसन्नपि*

क्लेशद आसं देहः (*भागवत* ५.५.४)। यद्यपि यह शरीर नश्वर है किन्तु जब तक हम जीवित रहते हैं तब तक कष्ट सहना ही पड़ता है। चाहे जीवन अल्प हो या दीर्घ, हर एक को भौतिक जीवन के तीन ताप सहने ही होंगे। इसलिए *धीर* पुरुष को ज्योतिष में रुचि लेनी चाहिए।

नन्द महाराज गर्गमुनि की उपस्थिति का लाभ उठाना चाह रहे थे क्योंकि गर्गमुनि ज्योतिष ज्ञान के प्रकाण्ड पंडित थे जिससे मनुष्य भूत, वर्तमान और भविष्य की अदृश्य घटनाएँ देख सकता है। पिता का कर्तव्य है कि वह अपनी सन्तानों की ज्योतिष-दशा जाने और उनके सुख के लिए जो भी आवश्यक हो करे। फलतः गर्गमुनि की उपस्थिति का लाभ उठाने की दृष्टि से नन्द महाराज ने सुझाव रखा कि गर्गमुनि उनके दोनों पुत्रों, कृष्ण तथा बलराम, की जन्मकुण्डली तैयार कर दें।

त्वं हि ब्रह्मविदां श्रेष्ठः संस्कारान्कर्तुमर्हसि ।
बालयोरनयोर्नृणां जन्मना ब्राह्मणो गुरुः ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

त्वम्—आप; हि—निस्सन्देह; ब्रह्म-विदाम्—ब्रह्म को जानने वाले समस्त ब्राह्मणों में; श्रेष्ठः—श्रेष्ठ; संस्कारान्—शुद्धि के लिए किये गये उत्सव (इन संस्कारों से मनुष्य को दूसरा जन्म मिलता है, संस्काराद्भवेद् द्विजः); कर्तुम् अर्हसि—आप कृपा करके पधारे हैं, तो सम्पन्न करें; बालयोः—इन दोनों पुत्रों (कृष्ण तथा बलराम) का; अनयोः—इन दोनों का; नृणाम्—न केवल उनका अपितु सारे मानव समाज का; जन्मना—जन्म ग्रहण करते ही; ब्राह्मणः—तुरन्त ब्राह्मण बन जाता है; गुरुः—मार्गदर्शक।*.

हे प्रभु, आप ब्राह्मणों में श्रेष्ठ हैं विशेषतया, क्योंकि आप ज्योतिष शास्त्र से भलीभाँति अवगत हैं। अतएव आप सहज ही हर व्यक्ति के आध्यात्मिक गुरु हैं। ऐसा होते हुए चूँकि आप कृपा करके मेरे घर आये हैं अतएव आप मेरे दोनों पुत्रों का संस्कार सम्पन्न करें।

तात्पर्य : *भगवद्गीता* (४.१३) में भगवान् कृष्ण कहते हैं—*चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुण-कर्मविभागशः*—समाज में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र—इन चारों वर्णों को होना ही चाहिए। सारे समाज के मार्गदर्शन के लिए ब्राह्मणों की आवश्यकता पड़ती है। यदि वर्णाश्रम धर्म जैसा कोई संस्थान नहीं होता है और यदि मानव समाज में ब्राह्मण जैसा कोई मार्गदर्शक नहीं होता है, तो वह मानव समाज नरक बन जाता है। कलियुग में, विशेष रूप से वर्तमान समय में, असली ब्राह्मण जैसा कोई रह ही नहीं गया है, अतः समाज अस्त-व्यस्त है। पहले योग्य ब्राह्मण होते थे किन्तु वर्तमान समय में यद्यपि अपने को ब्राह्मण कहलाने वाले लोग तो हैं किन्तु उनमें समाज का मार्गदर्शन करने की क्षमता नहीं है। इसीलिए कृष्णभावनामृत आन्दोलन मानव समाज में वर्णाश्रम प्रणाली का पुनः सूत्रपात कराने

के लिए उत्सुक है, जिससे जो लोग मोहग्रस्त हैं अथवा कम बुद्धिमान हैं, वे योग्य ब्राह्मणों से मार्गदर्शन प्राप्त कर सकें।

footnote starts here

*शास्त्रों का आदेश है, *तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्* (*मुण्डक उपनिषद १.२.१२*)। हर एक का कर्तव्य है कि ब्राह्मण को गुरु मान कर उसके पास पहुँचे।

footnote ends here

ब्राह्मण का अर्थ है वैष्णव। ब्राह्मण बनने के बाद मानव समाज में विकास की अगली अवस्था वैष्णव बनने की है। जीवन-लक्ष्य तक पहुँचने के लिए सामान्य लोगों का मार्गदर्शन किया जाना चाहिए अतएव उन्हें विष्णु या भगवान् को समझना चाहिए। वैदिक ज्ञान की समूची पद्धति इसी सिद्धान्त पर आधारित है किन्तु अब लोग लक्ष्य खो चुके हैं (*न ते विदुः स्वार्थगतिं हि विष्णुम्*) और वे एकमात्र इन्द्रिय-तृप्ति में लगे रहते हैं जिसमें उन्हें जीवन के निम्न स्तर में चले जाने का भय बना रहता है (*मृत्युसंसारवर्त्मनि*)। इससे अन्तर नहीं पड़ता कि कोई ब्राह्मण के रूप में जन्मा है अथवा नहीं। कोई भी व्यक्ति ब्राह्मण के रूप में जन्म नहीं लेता, वह शूद्र के रूप में जन्मता है। लेकिन ब्राह्मण द्वारा मार्गदर्शन से तथा संस्कार से वह *द्विज* बनता है और धीरे-धीरे ब्राह्मण बन जाता है। ब्राह्मणवाद कोई प्रणाली नहीं जिससे किसी वर्ग विशेष का एकाधिपत्य स्थापित हो सके। हर एक को शिक्षा दी जानी चाहिए जिससे वह ब्राह्मण बन सके। हर व्यक्ति को इतना तो अवसर मिलना ही चाहिए कि वह जीवन के लक्ष्य को प्राप्त कर सके। कोई चाहे ब्राह्मण कुल में जन्म ले या क्षत्रिय अथवा शूद्र परिवार में, उसे उचित ब्राह्मण का मार्गदर्शन मिलना चाहिए और उसे वैष्णव के सर्वोच्च पद तक पहुँचना चाहिए। इस तरह कृष्णभावनामृत आन्दोलन मानव समाज के सही भाग्य को विकसित करने का अवसर प्रदान करता है। नन्द महाराज ने गर्गमुनि की उपस्थिति का लाभ उठाते हुए उनसे प्रार्थना की कि वे उनके दोनों पुत्रों का संस्कार सम्पन्न करके उन्हें जीवन-लक्ष्य की ओर अग्रसर कराने में मार्गदर्शन करें।

श्रीगर्ग उवाच

यदूनामहमाचार्यः ख्यातश्च भुवि सर्वदा ।

सुतं मया संस्कृतं ते मन्यते देवकीसुतम् ॥ ७॥

शब्दार्थ

श्री-गर्गः उवाच—गर्गमुनि ने कहा; यदूनाम्—यदुकुल का; अहम्—मैं हूँ; आचार्यः—पुरोहित; ख्यातः च—पहले से यह ज्ञात है; भुवि—सर्वत्र; सर्वदा—सदैव; सुतम्—पुत्र को; मया—मेरे द्वारा; संस्कृतम्—संस्कार सम्पन्न; ते—तुम्हारे; मन्यते—माना जायेगा; देवकी-सुतम्—देवकी-पुत्र।

गर्गमुनि ने कहा : हे नन्द महाराज, मैं यदुकुल का पुरोहित हूँ। यह सर्वविदित है। अतः यदि मैं आपके पुत्रों का संस्कार सम्पन्न कराता हूँ तो कंस समझेगा कि वे देवकी के पुत्र हैं।

तात्पर्य : गर्गमुनि ने अप्रत्यक्ष रूप से बतला दिया कि कृष्ण यशोदा के नहीं बल्कि देवकी के पुत्र हैं। चूँकि कंस पहले से ही कृष्ण की खोज में था, अतः यदि गर्गमुनि संस्कार कराते तो कंस को पता चल सकता था और इससे महान् संकट उत्पन्न हो जाता। यह तर्क किया जा सकता है कि यद्यपि गर्गमुनि यदुवंश के पुरोहित थे और नन्द महाराज भी यदुवंशी थे किन्तु नन्द महाराज क्षत्रिय कर्म नहीं कर रहे थे। इसीलिए गर्गमुनि ने कहा, ''यदि मैं आपके पुरोहित के रूप में कर्म करूँ तो इससे पुष्टि होगी कि कृष्ण देवकी-पुत्र हैं।''

कंसः पापमतिः सख्यं तव चानकदुन्दुभेः ।
देवक्या अष्टमो गर्भो न स्त्री भवितुमर्हति ॥ ८॥
इति सञ्चिन्तयञ्छ्रुत्वा देवक्या दारिकावचः ।
अपि हन्ता गताशङ्कस्तर्हि तन्नोऽनयो भवेत् ॥ ९॥

शब्दार्थ

कंसः—राजा कंस; पाप-मतिः—दूषित मन वाला, अत्यन्त पापी; सख्यम्—मित्रता; तव—तुम्हारी; च—भी; आनक-दुन्दुभेः—वसुदेव की; देवक्याः—देवकी का; अष्टमः गर्भः—आठवाँ गर्भ; न—नहीं; स्त्री—औरत; भवितुम् अर्हति—होना सम्भव है; इति—इस तरह; सञ्चिन्तयन्—विचार करते हुए; श्रुत्वा—(यह समाचार) सुनकर; देवक्याः—देवकी की; दारिका-वचः—पुत्री की वाणी; अपि—यद्यपि थी; हन्ता गत-आशङ्कः—हो सकता है कंस इस बालक को मार डालने का प्रयत्न करे; तर्हि—इसलिए; तत्—वह घटना; नः—हमारे लिए; अनयः भवेत्—बहुत अच्छा न हो।

''कंस बहुत बड़ा कूटनीतिज्ञ होने के साथ ही अत्यन्त पापी है। अतः देवकी की पुत्री योगमाया से यह सुनने के बाद कि उसके मारने वाला बालक अन्यत्र कहीं जन्म ले चुका है और यह सुन चुकने पर कि देवकी के आठवें गर्भ से पुत्री उत्पन्न नहीं हो सकती और यह जानते हुए कि वसुदेव से आपकी मित्रता है जब कंस यह सुनेगा कि यदुकुल के पुरोहित मेरे द्वारा संस्कार कराया गया है, तो इन सब बातों से उसे निश्चित रूप से सन्देह हो जायेगा कि कृष्ण देवकी तथा वसुदेव का पुत्र है। तब वह कृष्ण को मार डालने के उपाय करेगा और यह महान् विपत्ति सिद्ध होगी।

तात्पर्य : कंस जानता था कि योगमाया आखिर कृष्ण तथा विष्णु की दासी है, अत: भले ही वह देवकी की पुत्री रूप में उत्पन्न हुई हो किन्तु हो सकता है उसे यह तथ्य प्रकट करने के लिए मना किया गया हो। वस्तुत: ऐसा ही हुआ था। गर्गमुनि ने बड़ी ही गम्भीरतापूर्वक तर्क किया कि कृष्ण का संस्कार उनके द्वारा कराने से बहुत से सन्देह उठ सकते हैं जिससे कंस इस बालक को मार डालने के लिए अत्यन्त कठोर कदम उठा सकता है। कंस पहले ही इस बालक को जान से मार डालने के लिए कई असुर भेज चुका था किन्तु उनमें से कोई भी जीवित नहीं बचा। यदि गर्गमुनि यह संस्कार कराते तो कंस के सन्देह की पूरी तरह पुष्टि हो जाती और वह अधिक कड़े कदम उठाता। गर्गमुनि ने नन्द महाराज को यह चेतावनी दी।

श्रीनन्द उवाच
अलक्षितोऽस्मिन्रहसि मामकैरपि गोव्रजे ।
कुरु द्विजातिसंस्कारं स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ॥ ॥

शब्दार्थ

श्री-नन्द: उवाच—नन्द महाराज ने (गर्गमुनि से) कहा; **अलक्षित:**—कंस के जाने बिना; **अस्मिन्**—इस; **रहसि**—एकान्त स्थान में; **मामकै:**—यहाँ तक कि मेरे सम्बन्धियों द्वारा; **अपि**—इससे भी एकान्त स्थान; **गो-व्रजे**—गोशाला में; **कुरु**—सम्पन्न कीजिये; **द्विजाति-संस्कारम्**—द्विज बनने का संस्कार (संस्काराद् भवेद् द्विज:); **स्वस्ति-वाचन-पूर्वकम्**—संस्कार कराने के लिए वैदिक स्तोत्र के उच्चारण द्वारा।.

नन्द महाराज ने कहा : हे महामुनि, यदि आप सोचते हैं कि आपके द्वारा संस्कार विधि सम्पन्न कराये जाने से कंस सशंकित होगा तो चुपके से वैदिक मंत्रोच्चार करें और मेरे घर की इस गोशाला में ही यह द्विज संस्कार पूरा करें जिससे और तो और मेरे सम्बन्धी तक न जान पायें क्योंकि यह संस्कार अत्यावश्यक है।

तात्पर्य : नन्द महाराज को संस्कार टालने की बात अच्छी नहीं लगी। अनेक अवरोधों के बावजूद वे चाहते थे कि गर्गमुनि की उपस्थिति का लाभ उठाया जाय और जो आवश्यक हो उसे किया जाय। यह संस्कार ब्राह्मणों, क्षत्रियों तथा वैश्यों के लिए विशेष रूप से अनिवार्य है। और चूँकि नन्द महाराज वैश्य थे इसलिए यह संस्कार अनिवार्य था। पूर्वकाल में ऐसे कर्म अनिवार्य थे। *चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागश:* (*भगवद्गीता* ४.१३)। इन संस्कारों के बिना समाज पशुओं का समाज माना जायेगा। गर्गमुनि की उपस्थिति से लाभ उठाने के लिए नन्द महाराज नामकरण संस्कार को बिना तड़क-भड़क के गुप्त रूप से ही सम्पन्न कराना चाह रहे थे। अत: संस्कार के अवसर को मानव समाज का अनिवार्य

कर्तव्य मानना चाहिये। किन्तु कलियुग में लोग इस अनिवार्यता को भूल चुके हैं। *मन्दा: सुमन्दमतयो मन्दभाग्या ह्युपद्रुता:* (*भागवत* १.१.)। इस युग में लोग बुरे और अभागे हैं। वे अपने जीवन को सफल बनाने के लिए वैदिक आदेशों को स्वीकार नहीं करते। किन्तु नन्द महाराज किसी बात की उपेक्षा नहीं करना चाहते थे। उन्होंने सुखी समाज को आध्यात्मिक ज्ञान में उन्नत बनाये रखने के लिए गर्गमुनि की उपस्थिति का पूरा लाभ आवश्यक कार्य सम्पन्न करने के लिए उठाया। पाँच हजार वर्षों के भीतर समाज कितना पतित हुआ है! *मन्दा: सुमन्दमतयो मन्दभाग्या:।* मनुष्य जीवन लाखों जन्मों के बाद मिलता है और यह शुद्धि (संस्कार) के निमित्त होता है। प्राचीन काल में पिता अपनी सन्तानों को उच्च पद पर उठाने के लिए सभी प्रकार से सहायता करने में उत्सुक रहता था। किन्तु वर्तमान में दिग्भ्रमित होने से लोग अपने बच्चों तक का वध करने के लिए तैयार रहते हैं जिससे उन्हें बच्चों के पालन-पोषण के उत्तरदायित्व से बच जाएँ।

श्रीशुक उवाच

एवं सम्प्रार्थितो विप्रः स्वचिकीर्षितमेव तत् ।
चकार नामकरणं गूढो रहसि बालयोः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; एवम्—इस प्रकार; सम्प्रार्थितः—प्रार्थना किये जाने पर; विप्रः—ब्राह्मण, गर्गमुनि, ने; स्व-चिकीर्षितम् एव—जिसे वे पहले से करना चाह रहे थे और जिसके लिए वहाँ गये थे; तत्—वह; चकार—सम्पन्न किया; नाम-करणम्—नामकरण उत्सव; गूढः—गुप्त रूप से; रहसि—एकान्त में; बालयोः—दोनों बालकों (कृष्ण तथा बलराम) का।.

शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : जब नन्द महाराज ने गर्गमुनि से विशेष प्रार्थना की कि वे जो कुछ पहले से करना चाहते थे उसे करें, तो उन्होंने एकान्त स्थान में कृष्ण तथा बलराम का नामकरण संस्कार सम्पन्न किया।

श्रीगर्ग उवाच

अयं हि रोहिणीपुत्रो रमयन्सुहृदो गुणैः ।
आख्यास्यते राम इति बलाधिक्याद्बलं विदुः ।
यदूनामपृथग्भावात्सङ्कर्षणमुशन्त्यपि ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

श्री-गर्गः उवाच—गर्गमुनि ने कहा; अयम्—यह; हि—निस्सन्देह; रोहिणी-पुत्रः—रोहिणी का पुत्र; रमयन्—प्रसन्न करते हुए; सुहृदः—अपने सारे मित्रों तथा सम्बन्धियों को; गुणैः—दिव्य गुणों से; आख्यास्यते—कहलायेगा; रामः—परम भोक्ता, राम नाम से; इति—इस तरह; बल-आधिक्यात्—असाधारण बल होने से; बलम् विदुः—बलराम नाम से विख्यात होगा; यदूनाम्—

यदुवंश का; अपृथक्-भावात्—आपसे पृथक् न हो सकने के कारण; सङ्कर्षणम्—संकर्षण नाम से अथवा दो परिवारों को जोड़ने वाला; उशन्ति—आकर्षित करता है; अपि—भी।.

गर्गमुनि ने कहा : यह रोहिणी-पुत्र अपने दिव्य गुणों से अपने सम्बन्धियों तथा मित्रों को सभी तरह का सुख प्रदान करेगा। अतः यह राम कहलायेगा। और असाधारण शारीरिक बल का प्रदर्शन करने के कारण यह बलराम भी कहलायेगा। चूँकि यह दो परिवारों—वसुदेव तथा नन्द महाराज के परिवारों—को जोड़ने वाला है, अतः यह संकर्षण भी कहलायेगा।

तात्पर्य : बलदेव वस्तुतः देवकी-पुत्र थे किन्तु उन्हें देवकी के गर्भ से रोहिणी के गर्भ में स्थानान्तरित कर दिया गया था। यह तथ्य प्रकट नहीं किया गया था। *हरिवंश* के अनुसार—

प्रत्युवाच ततो रामः सर्वांस्तानभितः स्थितान्।

यादवेष्वपि सर्वेषु भवन्तो मम वल्लभाः॥

गर्गमुनि ने तो नन्द महाराज के सामने यह प्रकट कर दिया कि बलराम संकर्षण कहलायेगा क्योंकि वह दो परिवारों—यदुवंश तथा नन्दवंश—को जोड़ने वाला है जिनमें से एक क्षत्रिय वंश है और दूसरा वैश्य वंश। दोनों परिवारों के पूर्वज एक थे, अन्तर इतना ही था कि नन्द वैश्य पत्नी से उत्पन्न हुए थे और वसुदेव क्षत्रिय पत्नी से। बाद में नन्द महाराज ने वैश्य कन्या से विवाह किया और वसुदेव ने क्षत्रिय कन्या से। इस तरह एक ही पिता से दोनों उत्पन्न थे किन्तु वे क्षत्रिय तथा वैश्य परिवारों में बँट गये। अब बलदेव ने उन दोनों को जोड़ दिया, इसलिए वे संकर्षण कहलाये।

आसन्वर्णास्त्रयो ह्यस्य गृह्णतोऽनुयुगं तनूः ।
शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गतः ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

आसन्—थे; वर्णाः त्रयः—तीन रंग; हि—निस्सन्देह; अस्य—तुम्हारे पुत्र कृष्ण के; गृह्णतः—स्वीकार करते हुए; अनुयुगम् तनूः—विभिन्न युगों के अनुसार दिव्य शरीर; शुक्लः—कभी गौर (श्वेत); रक्तः—कभी लाल; तथा—और; पीतः—कभी पीला; इदानीम् कृष्णताम् गतः—सम्प्रति उन्होंने श्याम (काला) रंग धारण किया है।.

आपका यह पुत्र कृष्ण हर युग में अवतार के रूप में प्रकट होता है। भूतकाल में उसने तीन विभिन्न रंग—गौर, लाल तथा पीला—धारण किये और अब वह श्याम (काले) रंग में उत्पन्न हुआ है [अन्य द्वापर युग में वह शुक (तोता) के रंग में (भगवान् रामचन्द्र के रूप में) उत्पन्न हुआ। अब ऐसे सारे अवतार कृष्ण में एकत्र हो गये हैं]।

तात्पर्य : गर्गमुनि ने कृष्ण की स्थिति कुछ-कुछ बतलाते हुए और कुछ-कुछ छिपाते हुए संकेत

किया, ''आपका पुत्र महापुरुष है और वह विभिन्न युगों में अपने शरीर का रंग बदल सकता है।'' *गृह्णत:* शब्द सूचित करता है कि कृष्ण स्वेच्छानुसार चुनाव कर सकते हैं। दूसरे शब्दों में, वे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं अतएव जो चाहें सो कर सकते हैं। वैदिक साहित्य में विभिन्न युगों में भगवान् द्वारा धारण किये जाने वाले रंगों की व्याख्या की गई है अतएव जब गर्गमुनि ने यह कहा कि ''आपका पुत्र ये रंग धारण कर चुका है'' तो अप्रत्यक्ष रूप से उन्होंने यह कहा, ''वह भगवान् है।'' कंस के अत्याचारों के कारण गर्गमुनि यह तथ्य प्रकट नहीं करना चाहते थे किन्तु परोक्ष रूप में उन्होंने नन्द महाराज को बतला दिया कि उनका पुत्र कृष्ण वास्तव में भगवान् है।

श्रील जीव गोस्वामी ने *क्रमसन्दर्भ* नामक पुस्तक में इस श्लोक का तात्पर्य दिया है। प्रत्येक युग में भगवान् या तो श्वेत (शुक्ल), या लाल या पीले रंग में प्रकट होते हैं किन्तु इस बार वे अपने मूल काले (श्याम) रूप में साक्षात् प्रकट हुए हैं और जैसाकि गर्गमुनि ने भविष्यवाणी की है उन्होंने नारायण की शक्ति प्रदर्शित की। चूँकि इस रूप में भगवान् पूर्णरूपेण स्वयं का प्रदर्शन करते हैं अतएव उनका नाम श्रीकृष्ण अर्थात् सर्व-आकर्षक है।

वस्तुत: कृष्ण सारे अवतारों के स्रोत हैं अतएव विभिन्न अवतारों के भिन्न भिन्न स्वरूप कृष्ण में निहित रहते हैं। जब कृष्ण अवतरित होते हैं, तो अन्य अवतारों के सारे गुण उनमें पहले से वर्तमान रहते हैं। अन्य अवतार कृष्ण के आंशिक स्वरूप होते हैं किन्तु कृष्ण स्वयं परम पुरुष के पूर्ण अवतार हैं। यह समझ लेना चाहिए कि परम पुरुष चाहे शुक्ल रूप में प्रकट हों चाहे रक्त या पीत रूप में, वे रहते वही पुरुष हैं। जब वे विभिन्न अवतारों में प्रकट होते हैं, तो वे विभिन्न रंग धारण करते हैं, जिस तरह कि सूर्य प्रकाश में सात रंग होते हैं। कभी कभी ये रंग पृथक्-पृथक् प्रकट होते हैं अन्यथा सूर्य प्रकाश चमकीले प्रकाश जैसा दिखता है। कृष्ण अवतार में विभिन्न अवतार—यथा मन्वन्तर अवतार, लीला अवतार तथा दश अवतार—सम्मिलित रहते हैं। जब कृष्ण प्रकट होते हैं, तो अन्य सारे अवतार उनके साथ साथ प्रकट होते हैं। जैसाकि *श्रीमद्भागवत* (१.३.२६) में वर्णन आया है—

अवतार ह्यसंख्येय हरे: सत्त्वनिधेर्द्विजा:।

यथाविदासिन: कुल्या: सरस: स्यु: सहस्रश:॥

विभिन्न अवतार सतत प्रवाहित जल की तरह लगातार प्रकट होते रहते हैं। जिस तरह प्रवाहित जल

में लहरों की संख्या की गणना नहीं की जा सकती उसी तरह अवतारों की कोई सीमा नहीं है। और कृष्ण सभी अवतारों का पूर्ण प्रतिनिधित्व करते हैं क्योंकि वे समस्त अवतारों के स्रोत हैं। कृष्ण *अंशी* हैं और अन्य *अंश* हैं। सारे जीव जिसमें हम सभी सम्मिलित है; *अंश* हैं (*ममैवांशो जीवलोके जीवभूत: सनातन:*)। ये अंश विभिन्न माप के हैं। मनुष्य (जो क्षुद्र अंश हैं) तथा देवता, *विष्णुतत्त्व* तथा अन्य सारे जीव परमेश्वर के अंश हैं। *नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानाम्* (*कठ उपनिषद* २.२.१३)। कृष्ण सारे जीवों का पूर्ण प्रतिनिधित्व करते हैं और जब कृष्ण विद्यमान रहते हैं, तो सारे अवतार उनमें निहित रहते हैं।

श्रीमद्भागवत के ग्यारहवें स्कंध में प्रत्येक युग के अवतारों का क्रमानुसार वर्णन हुआ है। भागवत का कथन है—*कृते शुक्लश्चतुर्बाहु, त्रेतायां रक्तवर्णोऽसौ, द्वापरे भगवान् श्याम: तथा कृष्णवर्णं त्विषाकृष्णम्।* हम देखते हैं कि कलियुग में भगवान् पीतवर्ण में गौर-सुन्दर के रूप में प्रकट हुए यद्यपि भागवत में उन्हें कृष्णवर्णम् कहा गया है। इन सब कथनों में समन्वय स्थापित करने के लिए यह समझना चाहिए कि यद्यपि कुछ युगों में कुछ रंगों का प्राधान्य रहता है किन्तु प्रत्येक युग में, जब जब कृष्ण प्रकट होते हैं, तो सारे रंग उपस्थित रहते हैं। कृष्णवर्णं त्विषाकृष्णम्—यद्यपि चैतन्य महाप्रभु कृष्ण या काले रंग से रहित प्रकट होते हैं किन्तु उन्हें साक्षात् कृष्ण माना जाता है। इदानीं कृष्णतां गत:। विभिन्न वर्णों में प्रकट होने वाला वही आदि कृष्ण अब प्रकट हुआ है। आसन् शब्द बतलाता है कि वे सदैव विद्यमान रहते हैं। जब भी भगवान् अपने पूर्ण स्वरूप में प्रकट होते हैं, तो वे कृष्ण-वर्ण के रहते हैं यद्यपि वे विभिन्न रंगों में प्रकट होते हैं। प्रह्लाद महाराज कहते हैं कि चैतन्य महाप्रभु छन्न हैं अर्थात् वे कृष्ण होकर भी पीले रंग से आवृत रहते हैं। इसलिए गौड़ीय वैष्णव इस निष्कर्ष को मानते हैं कि यद्यपि चैतन्य महाप्रभु पीत रंग में प्रकट हुए किन्तु वे कृष्ण हैं।

कृष्णवर्णं त्विषाकृष्णं साङ्गोपाङ्गास्त्रपार्षदम्।
यज्ञै संकीतर्नप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधस:॥

(*भागवत* ११.५.३२)

प्रागयं वसुदेवस्य क्वचिज्जातस्तवात्मज: ।

वासुदेव इति श्रीमानभिज्ञाः सम्प्रचक्षते ॥ १४॥

शब्दार्थ

प्राक्—पहले; अयम्—यह बालक; वसुदेवस्य—वसुदेव का; क्वचित्—कभी कभी; जातः—उत्पन्न हुआ था; तव—तुम्हारा; आत्मजः—पुत्र कृष्ण; वासुदेवः—अतएव उसका नाम वासुदेव रखा जा सकता है; इति—इस प्रकार; श्रीमान्—अत्यन्त सुन्दर; अभिज्ञाः—विद्वान; सम्प्रचक्षते—कृष्ण को वासुदेव भी कहते हैं।

अनेक कारणों से आपका यह सुन्दर पुत्र पहले कभी वसुदेव के पुत्र रूप में प्रकट हुआ था। अतएव जो विद्वान हैं, वे इस बालक को कभी कभी वासुदेव कहते हैं।

तात्पर्य : गर्गमुनि ने अप्रत्यक्ष रीति से यह बतला दिया, ''मूलतः यह बालक वसुदेव के पुत्र के रूप में उत्पन्न हुआ था, यद्यपि अब यह आपके पुत्र की भाँति कार्य कर रहा है। सामान्यतया यह आपका पुत्र है किन्तु कभी कभी यह वसुदेव का पुत्र रहता है।''

बहूनि सन्ति नामानि रूपाणि च सुतस्य ते ।
गुणकर्मानुरूपाणि तान्यहं वेद नो जनाः ॥ १५॥

शब्दार्थ

बहूनि—विविध; सन्ति—हैं; नामानि—नाम; रूपाणि—रूप; च—भी; सुतस्य—पुत्र के; ते—तुम्हारे; गुण-कर्म-अनु-रूपाणि—उसके गुणों तथा कर्मों के अनुसार; तानि—उनको; अहम्—मैं; वेद—जानता हूँ; नो जनाः—सामान्य व्यक्ति नहीं।

तुम्हारे इस पुत्र के अपने दिव्य गुणों एवं कर्मों के अनुसार विविध रूप तथा नाम हैं। ये सब मुझे ज्ञात हैं किन्तु सामान्य लोग उन्हें नहीं जानते।

तात्पर्य : *बहूनि*—भगवान् के अनेक नाम हैं। *अद्वैतम् अच्युतम् अनादिम् अनन्तरूपम् आद्यं पुराणपुरुषं नवयौवनं च। ब्रह्म-संहिता* (५.३३) में कहा गया है कि भगवान् एक हैं किन्तु उनके रूप तथा नाम अनेक हैं। ऐसा नहीं है कि गर्गमुनि ने बालक का जो नाम कृष्ण रखा वही उनका एकमात्र नाम था। उनके अन्य नाम भी हैं। यथा—भक्तवत्सल, गिरिधारी, गोविन्द तथा गोपाल। यदि हम कृष्ण शब्द की निरुक्ति पर ध्यान दें तो *न* सूचित करता है कि वे जन्म तथा मृत्यु के चक्र को रोकने वाले हैं और *कृष्* का अर्थ है *सत्तार्थ* अर्थात् जगत (कृष्ण सम्पूर्ण जगत हैं)। *कृष्* का अर्थ ''आकर्षण'' तथा *न* का अर्थ *आनन्द* भी होता है। कृष्ण को मुकुन्द कहते हैं क्योंकि वे हर एक को आध्यात्मिक, नित्य तथा आनन्दपूर्ण जीवन प्रदान करने वाले हैं। दुर्भाग्य की बात तो यह है कि जीव को जो थोड़ी-सी स्वतंत्रता मिली है उससे वह कृष्ण के कार्यक्रम को ध्वस्त करना चाहता है। यही ''भौतिक रोग'' है। इतने पर भी कृष्ण सारे जीवों को दिव्य आनन्द प्रदान करने के लिए इच्छुक रहते हैं फलतः वे विभिन्न

रूपों में प्रकट होते हैं। इसीलिए वे कृष्ण कहलाते हैं। चूँकि गर्गमुनि ज्योतिषाचार्य थे अतएव वे वह सब जानते थे, जो अन्य लोग नहीं जानते थे। फिर भी कृष्ण के इतने नाम हैं कि गर्गमुनि भी उन सबों को नहीं जानते थे। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि कृष्ण के दिव्य कार्यकलापों के अनुसार उनके अनेक नाम तथा रूप हैं।

एष वः श्रेय आधास्यद्गोपगोकुलनन्दनः ।
अनेन सर्वदुर्गाणि यूयमञ्जस्तरिष्यथ ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

एषः—यह बालक; वः—तुम सबों के लिए; श्रेयः—अत्यन्त शुभ; आधास्यत्—शुभ कार्य करेगा; गोप-गोकुल-नन्दनः—जैसे एक ग्वालबाल ग्वालों के परिवार में गोकुल के पुत्र रूप में पैदा हुआ हो; अनेन—इसके द्वारा; सर्व-दुर्गाणि—सभी प्रकार के कष्ट; यूयम्—तुम सभी; अञ्जः—सरलता से; तरिष्यथ—पार कर लोगे, लाँघ लोगे।

यह बालक गोकुल के ग्वालों के दिव्य आनन्द को बढ़ाने हेतु तुम्हारे लिए सदैव शुभ कर्म करेगा। इसकी ही कृपा से तुम लोग सारी कठिनाइयों को पार कर सकोगे।

तात्पर्य : कृष्ण ग्वाल-समूहों तथा गौंवों के परम मित्र हैं इसीलिए उनकी स्तुति *नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च* की प्रार्थना के रूप में की जाती है। उनके धाम गोकुल में उनकी लीलाएँ ब्राह्मणों तथा गौवों के अनुकूल होती हैं। उनका सर्वोपरि कार्य है गौवों तथा ब्राह्मणों को सारे सुख देना। वस्तुत: ब्राह्मणों के निमित्त सुखभी गौण है, गौवें ही सर्वोपरि हैं। उनकी उपस्थिति से सारे लोगों की कठिनाइयाँ दूर होंगी और वे दिव्य आनन्द प्राप्त करेंगे।

पुरानेन व्रजपते साधवो दस्युपीडिताः ।
अराजके रक्ष्यमाणा जिग्युर्दस्यून्समेधिताः ॥ १७॥

शब्दार्थ

पुरा—पूर्वकाल में; अनेन—इसके (कृष्ण) द्वारा; व्रज-पते—हे व्रजराज; साधवः—ईमानदार; दस्यु-पीडिताः—चोर-उचक्कों द्वारा सताये हुए; अराजके—अनियमित सरकार होने पर; रक्ष्यमाणाः—सुरक्षित थे; जिग्युः—जीत लिया; दस्यून्—चोर-उचक्कों को; समेधिताः—उन्नति की।

हे नन्द महाराज, जैसा कि इतिहास बतलाता है जब अनियमित अशक्त शासन था और इन्द्र को अपदस्थ कर दिया गया था और लोग चोरों द्वारा सताये जा रहे थे उस समय लोगों की रक्षा करने तथा उनकी समृद्धि के लिए यह बालक प्रकट हुआ और इसने चोर-उचक्कों का दमन कर दिया।

तात्पर्य : इन्द्र ब्रह्माण्ड का राजा है। असुर, चोर तथा उचक्के सदैव इन्द्र को सताते हैं (*इन्द्रारिव्याकुलं लोकम्*) किन्तु जब इन्द्र के शत्रुओं (*इन्द्रारि*) का प्राधान्य हो जाता है, तो कृष्ण प्रकट होते हैं। *कृष्णस्तु भगवान् स्वयं। इन्दारिव्याकुलं लोकं मृडयन्ति युगे युगे* (*भागवत* १.३.२८)।

य एतस्मिन्महाभागाः प्रीतिं कुर्वन्ति मानवाः ।
नारयोऽभिभवन्त्येतान्विष्णुपक्षानिवासुराः ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

ये—जो लोग; एतस्मिन्—इस बालक से; महा-भागाः—अत्यन्त भाग्यशाली; प्रीतिम्—स्नेह; कुर्वन्ति—करते हैं; मानवाः—ऐसे व्यक्ति; न—नहीं; अरयः—शत्रुगण; अभिभवन्ति—जीत पाते हैं; एतान्—कृष्ण के प्रति अनुरक्त लोगों को; विष्णु-पक्षान्—विष्णु के पक्ष वाले देवताओं को; इव—सदृश; असुराः—असुरगण।

देवताओं के पक्ष में सदैव भगवान् विष्णु के रहने से असुरगण देवताओं को हानि नहीं पहुँचा सकते। इसी तरह कोई भी व्यक्ति या समुदाय जो कृष्ण के प्रति अनुरक्त है अत्यन्त भाग्यशाली है। चूँकि ऐसे लोग कृष्ण से अत्यधिक स्नेह रखते हैं अतएव वे कंस के संगियों यथा असुरों (या आन्तरिक शत्रु तथा इन्द्रियों) द्वारा कभी परास्त नहीं किये जा सकते।

तस्मान्नन्दात्मजोऽयं ते नारायणसमो गुणैः ।
श्रिया कीर्त्यानुभावेन गोपायस्व समाहितः ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

तस्मात्—इसलिए; नन्द—हे नन्द महाराज; आत्मजः—आपका पुत्र; अयम्—यह; ते—तुम्हारा; नारायण-समः—नारायण के सदृश (जो दिव्य गुण वाला है); गुणैः—गुणों से; श्रिया—ऐश्वर्य से; कीर्त्या—अपने नाम और यश से; अनुभावेन—तथा अपने प्रभाव से; गोपायस्व—इस बालक का पालन करो; समाहितः—अत्यन्त ध्यानपूर्वक तथा सावधानी से।

अतएव हे नन्द महाराज, निष्कर्ष यह है कि आपका यह पुत्र नारायण के सदृश है। यह अपने दिव्य गुण, ऐश्वर्य, नाम, यश तथा प्रभाव से नारायण के ही समान है। आप इस बालक का बड़े ध्यान से और सावधानी से पालन करें।

तात्पर्य : इस श्लोक में *नारायण-समः* शब्द महत्त्वपूर्ण है। नारायण की कोई समता नहीं। वे *असमौर्ध्व* हैं—कोई न तो उनके समान है और न उनसे बढ़कर। शास्त्र में कहा गया है—

यस्तु नारायणं देवं ब्रह्मरुद्रादिदैवतै।

समत्वेनैव वीक्षेत स पाषण्डी भवेद् ध्रुवम्॥

जो कोई नारायण की समता बड़े से बड़े देवता यहाँ तक कि शिवजी या ब्रह्माजी से भी करता है,

वह *पाषण्डी* है। नारायण की समता कोई नहीं कर सकता। फिर भी गर्गमुनि ने *सम* शब्द का प्रयोग किया क्योंकि वे कृष्ण को भगवान् बतलाना चाह रहे थे, जो नन्द महाराज के पुत्र बन चुके थे। वे नन्द महाराज के मन में इस बात पर जोर देना चाहते थे कि ''आपका आराध्य देव नारायण आप पर इतना प्रसन्न है कि उसने आपके लिए ऐसा पुत्र भेजा है, जो गुणों में लगभग उन्हीं के समान है। इसलिए आप उसका नाम उनसे मिलता-जुलता जैसे मुकुन्द या मधुसूदन रख सकते हैं। किन्तु सदा याद रखें कि जब भी आप कोई उत्तम कार्य करना चाहेंगे तो अनेक बाधाएँ आयेंगी। अतएव आप इस बालक का पालन तथा रक्षा बड़ी ही सावधानी से करें। यदि आप इस बालक की रक्षा सावधानी के साथ करेंगे तो जिस तरह नारायण सदैव आपकी रक्षा करता है उसी तरह यह बालक नारायण जैसा ही होगा।'' गर्गमुनि ने यह भी इंगित किया कि यद्यपि यह बालक नारायण के समान ही गुणवान है, किन्तु यह *रास विहारी* के रूप में नारायण से भी बढ़कर आनन्द भोगेगा। *ब्रह्म-संहिता* में कहा गया है—*लक्ष्मीसहस्रशतसम्भ्रमसेव्यमानम्*—उनकी सेवा अनेक गोपियाँ करेंगी जो लक्ष्मी के ही समान होंगी।

श्रीशुक उवाच
इत्यात्मानं समादिश्य गर्गे च स्वगृहं गते ।
नन्दः प्रमुदितो मेने आत्मानं पूर्णमाशिषाम् ॥ २० ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार; आत्मानम्—परम सत्य परमात्मा को; समादिश्य—पूर्णतया आदेश देकर; गर्गे—जब गर्गमुनि; च—भी; स्व-गृहम्—अपने घर; गते—चले गये; नन्दः—नन्द महाराज ने; प्रमुदितः—अत्यन्त प्रसन्न; मेने—विचार किया; आत्मानम्—अपने आपको; पूर्णम् आशिषाम्—परम भाग्यशाली।

श्रील शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : जब नन्द महाराज को कृष्ण के विषय में उपदेश देकर गर्गमुनि अपने घर चले गये तो नन्द महाराज अत्यधिक प्रसन्न हुए और अपने को परम भाग्यशाली समझने लगे।

तात्पर्य : कृष्ण परमात्मा हैं और नन्द महाराज जीवात्मा। गर्गमुनि के उपदेश से दोनों ही धन्य हो गये। नन्द महाराज पूतना तथा शकटासुर जैसे असुरों से कृष्ण की सुरक्षा की बात सोचते रहते थे और चूँकि उन्हें ऐसा पुत्र प्राप्त हुआ था इसलिए उन्होंने अपने को परम भाग्यशाली माना।

कालेन व्रजताल्पेन गोकुले रामकेशवौ ।
जानुभ्यां सह पाणिभ्यां रिङ्गमाणौ विजह्रतुः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

कालेन—समय के; व्रजता—बीतने पर; अल्पेन—अल्प अवधि; गोकुले—गोकुल या व्रजधाम में; राम-केशवौ—बलराम तथा कृष्ण ने; जानुभ्याम्—घुटनों के बल; सह पाणिभ्याम्—हाथों के सहारे; रिङ्गमाणौ—रेंगते हुए; विजह्रतुः—खिलवाड़ किया।.

कुछ समय बीतने के बाद राम तथा कृष्ण दोनों भाई अपने घुटनों तथा हाथों के बल व्रज के आँगन में रेंगने लगे और इस तरह बालपन के खेल का आनंद उठाने लगे।

तात्पर्य : एक ब्राह्मण भक्त कहता है—

श्रुतिं अपरे स्मृतिं इतरे भारतम् अन्ये भजन्तु भवभीतः अहं इह नन्दं वन्दे यस्यालिन्दे परं ब्रह्म।

''भले ही अन्य लोग भवसागर से डर कर वेदों, पुराणों तथा महाभारत की पूजा करें किन्तु मैं नन्द महाराज की पूजा करूँगा जिनके आँगन में परब्रह्म रेंगते हैं।'' महाभागवत को *कैवल्य* अर्थात् भगवान् ब्रह्मज्योति में समा जाना नरक के समान लगता है (*नरकायते*)। किन्तु यहाँ पर मनुष्य नन्द महाराज के आँगन में कृष्ण तथा बलराम के रेंगने का चिन्तन मात्र करके ही दिव्य आनन्द में लीन रह सकता है। जब तक कोई कृष्ण-लीला के, विशेष रूप से कृष्ण की बाल-लीलाओं के विचार में मग्न रहता है जैसाकि महाराज परीक्षित चाह रहे थे तब तक वह वास्तविक कैवल्य में लीन रहता है। इसीलिए व्यासदेव ने *श्रीमद्भागवत* की रचना की। *लोकस्याजानतो विद्वांश्चक्रे सात्वतसंहिताम्* (*भागवत* १.७.६)। व्यासदेव ने नारदमुनि के आदेशानुसार श्रीमद्भागवत की रचना की जिससे कोई भी इस ग्रंथ का लाभ उठा सके, कृष्ण की लीलाओं का चिन्तन कर सके और सदा-सदा के लिए मुक्त हो जाय।

श्रुतिं अपरे स्मृतिं इतरे भारतं अन्ये भजन्तु भवभीतः अहम् इह नन्दं वन्दे यस्यालिन्दे परं ब्रह्म।

तावङ्घ्रियुग्ममनुकृष्य सरीसृपन्तौ
घोषप्रघोषरुचिरं व्रजकर्दमेषु ।
तन्नादहृष्टमनसावनुसृत्य लोकं
मुग्धप्रभीतवदुपेयतुरन्ति मात्रोः ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

तौ—कृष्ण तथा बलराम दोनों; अङ्घ्रि-युग्मम् अनुकृष्य—अपने दोनों पाँवों को घसीटते हुए; सरीसृपन्तौ—सरी सृपों की तरह रेंगते; घोष-प्रघोष-रुचिरम्—अपने घुंघरुओं से आवाज करते जो अत्यन्त मधुर थी; व्रज-कर्दमेषु—व्रजभूमि की धरती पर गोबर तथा गोमूत्र से उत्पन्न कीचड़ में; तत्-नाद—उन घुंघरुओं की आवाज से; हृष्ट-मनसौ—अत्यन्त प्रसन्न होकर; अनुसृत्य—पीछे पीछे चलते हुए; लोकम्—अन्य लोगों को; मुग्ध—मोहित होकर; प्रभीत-वत्—उनसे बारम्बार डरते हुए; उपेयतुः—तुरन्त लौट आये; अन्ति मात्रोः—अपनी माताओं की ओर।.

जब कृष्ण तथा बलराम अपने पैरों के बल व्रजभूमि में गोबर तथा गोमूत्र से उत्पन्न कीचड़ वाली जगहों में रेंगते थे तो उनका रेंगना सरी सृपों के रेंगने जैसा लगता था और उनके पैरों के

घुंघरुओं की आवाज अत्यन्त मनोहर लगती थी। वे अन्य लोगों के घुंघरुओं की आवाज से अत्यधिक प्रसन्न होकर उनके पीछे पीछे चल देते मानो अपनी माताओं के पास जा रहे हों। किन्तु जब वे यह देखते कि वे दूसरे लोग हैं, तो भयभीत होकर अपनी असली माताओं, यशोदा तथा रोहिणी, के पास लौट आते।

तात्पर्य : व्रजभूमि में रेंगते हुए कृष्ण तथा बलराम घुंघरुओं की आवाज से मुग्ध हो जाते थे। इससे कभी कभी अन्य लोगों के पीछे-पीछे लगते। उन लोगों को कृष्ण तथा बलराम का रेंगना अत्यधिक आनन्द देता अत: वे चिल्ला पड़ते, "ओह! देखो न! कृष्ण तथा बलराम किस तरह रेंग रहे हैं!" यह सुनकर कृष्ण तथा बलराम समझ जाते कि वे लोग, जिनके पीछे वे जा रहे हैं, उनकी माताएँ नहीं हैं अत: वे अपनी असली माताओं के पास लौट आते। इस तरह कृष्ण तथा बलराम का रेंगना पड़ोस के लोगों के साथ साथ माता यशोदा तथा रोहिणी और दोनों बालकों को भी आनन्द प्रदान करता।

तन्मातरौ निजसुतौ घृणया स्नुवन्त्यौ
पङ्काङ्गरागरुचिरावुपगृह्य दोर्भ्याम् ।
दत्त्वा स्तनं प्रपिबतोः स्म मुखं निरीक्ष्य
मुग्धस्मिताल्पदशनं ययतुः प्रमोदम् ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

तत्-मातरौ—उनकी माताएँ (रोहिणी तथा यशोदा); निज-सुतौ—अपने अपने पुत्रों को; घृणया—अत्यन्त प्रेमपूर्वक; स्नुवन्त्यौ—अपने स्तनों का दूध पिलातीं; पङ्क-अङ्ग-राग-रुचिरौ—जिनके दिव्य शरीर गोबर तथा गोमूत्र के कीचड़ से सने हुए थे; उपगृह्य—रखवाली करते हुए; दोर्भ्याम्—अपनी भुजाओं से; दत्त्वा—देकर; स्तनम्—स्तन; प्रपिबतोः—दूध पीते हुए; स्म—निस्सन्देह; मुखम्—मुँह को; निरीक्ष्य—देखकर; मुग्ध-स्मित-अल्प-दशनम्—मुखों से बाहर निकली दँतुलियों से हँसते; ययतुः—प्राप्त किया; प्रमोदम्—दिव्य आनन्द।

दोनों बालक गोबर तथा गोमूत्र मिले कीचड़ से सने हुए अत्यन्त सुन्दर लग रहे थे और जब वे दोनों अपनी माताओं के पास गये तो यशोदा तथा रोहिणी दोनों ने बड़े प्यार से उन्हें उठा लिया, छाती से लगाया और अपने स्तनों से बहता दूध पिलाया। स्तन-पान करते हुए दोनों बालक मुसका रहे थे और उनकी दँतुलियाँ दिख रही थीं। उनके सुन्दर छोटे-छोटे दाँत देखकर उनकी माताओं को परम आनन्द हुआ।

तात्पर्य : चूँकि माताएँ अपने अपने बच्चों की देखरेख करती थीं इसलिए योगमाया की

व्यवस्थानुसार बच्चों ने सोचा, ''ये रहीं हमारी माताएँ'' और माताएँ सोचतीं, ''ये रहे हमारे पुत्र।'' स्नेह के कारण स्वभावत: माताओं के स्तन से स्वत: दूध निकलने लगा और बच्चे उसे पीने लगे। जब माताओं ने बच्चों के दाँत आते देखे तो वे उन्हें गिनतीं और प्रसन्न होतीं। जब बच्चों ने देखा कि माताएँ उन्हें दूध पीने दे रही हैं, तो उन्हें भी दिव्य आनन्द की अनुभूति हुई। ज्यों ज्यों रोहिणी तथा बलराम के और यशोदा तथा कृष्ण के बीच यह स्नेह बढ़ता गया त्यों त्यों उनका दिव्य आनन्द भी बढ़ता रहा।

यर्ह्यङ्गनादर्शनीयकुमारलीला-
वन्तर्व्रजे तदबला: प्रगृहीतपुच्छै: ।
वत्सैरितस्तत उभावनुकृष्यमाणौ
प्रेक्षन्त्य उज्झितगृहा जहृषुर्हसन्त्य: ॥ २४॥

शब्दार्थ

यर्हि—जब; अङ्गना-दर्शनीय—घर के भीतर की स्त्रियों के द्वारा ही दृश्य; कुमार-लीलौ—कृष्ण तथा बलराम द्वारा प्रदर्शित बाल-लीलाएँ; अन्त:-व्रजे—व्रज के भीतर, नन्द के घर में; तत्—उस समय; अबला:—सारी स्त्रियाँ; प्रगृहीत-पुच्छै:—कृष्ण तथा बलराम द्वारा गौवों की पूँछ पकड़ने पर; वत्सै:—बछड़ों द्वारा; इत: तत:—यहाँ वहाँ; उभौ—कृष्ण तथा बलराम दोनों; अनुकृष्यमाणौ—खींच जाने पर; प्रेक्षन्त्य:—ऐसी दृश्य देखती हुई; उज्झित—छोड़ा हुआ; गृहा:—घर के कामकाज; जहृषु:—अत्यन्त हर्षित हुईं; हसन्त्य:—हँसती हुई।

ग्वालबालाएँ नन्द महाराज के घर के भीतर राम तथा कृष्ण दोनों बालकों की लीलाएँ देखकर हर्षित होतीं। बच्चे बछड़ों की पूछों के पिछले भाग पकड़ लेते तो बछड़े उन्हें इधर-उधर घसीटते। जब स्त्रियाँ ये लीलाएँ देखतीं, तो निश्चय ही अपना कामकाज करना बन्द कर देतीं और हँसने लगतीं तथा इन घटनाओं का आनन्द लूटतीं।

तात्पर्य : उत्सुकतावश रेंगते हुए कृष्ण तथा बलराम कभी कभी बछड़ों की पूँछों के सिरे पकड़ लेते। तब बछड़े यह अनुभव करके कि किसी ने उन्हें पकड़ लिया है इधर-उधर भागने लगते तब बच्चे बछड़ों के भागने से डर कर और दृढ़ता से उन्हें पकड़े रहते। बछड़े भी यह देखकर कि बच्चे पूँछ दृढ़ता से पकड़े हैं, भयभीत हो उठते। तब स्त्रियाँ बच्चों को बचाने आ जातीं और प्रसन्न होकर हँसतीं। यही उनका मनोरंजन था।

शृङ्ग्यग्निदंष्ट्र्यसिजलद्विजकण्टकेभ्य:
क्रीडापरावतिचलौ स्वसुतौ निषेद्धुम् ।
गृह्याणि कर्तुमपि यत्र न तज्जनन्यौ
शेकात आपतुरलं मनसोऽनवस्थाम् ॥ २५॥

शब्दार्थ

शृङ्गी—गाय; अग्नि—आग; दंष्ट्री—बन्दर तथा कुत्ते; असि—तलवार; जल—पानी; द्विज—पक्षी; कण्टकेभ्यः—तथा काँटों के साथ; क्रीडा-परौ अति-चलौ—दोनों बच्चे खेल में व्यस्त तथा अतीव चंचल; स्व-सुतौ—अपने दोनों पुत्रों को; निषेद्धुम्—रोकने के लिए; गृह्याणि—घर के कामकाज; कर्तुम् अपि—करके; यत्र—जब; न—नहीं; तत्-जनन्यौ—उनकी माताएँ (रोहिणी तथा यशोदा); शेकाते—समर्थ; आपतुः—प्राप्त किया; अलम्—निस्सन्देह; मनसः—मन का; अनवस्थाम्—सन्तुलन।

जब माता यशोदा तथा रोहिणी बच्चों को सींग वाली गायों से, आग से, पंजे तथा दाँत वाले पशुओं यथा बन्दरों, कुत्तों तथा बिल्लियों से एवं काँटों से, जमीन पर रखी तलवारों तथा अन्य हथियारों से होने वाली दुर्घटनाओं से रक्षा करने में अपने को असमर्थ पातीं तो वे सदा चिन्ताग्रस्त हो जातीं जिससे उनके घरेलू कामकाज में बाधा पहुँचती। उस समय वे भौतिक स्नेह के कष्ट नामक दिव्य भाव से सन्तुलन प्राप्त करतीं क्योंकि यह उनके मनों के भीतर से उठता था।

तात्पर्य : कृष्ण की ये सारी लीलाएँ तथा माताओं द्वारा प्रदर्शित खुशियाँ दिव्य हैं, उनमें कुछ भी भौतिक नहीं है। *ब्रह्म-संहिता* में इन्हें *आनन्दचिन्मय रस* कहा गया है। आध्यात्मिक जगत में भी भौतिक जगत की ही तरह चिंता, रोदन तथा अन्य भावनाएँ पाई जाती हैं किन्तु इनकी यथार्थता दिव्य जगत में ही होती है, जिसकी यह जगत अनुकृति ही है इसलिए माता यशोदा तथा रोहिणी को इनमें दिव्य आनन्द मिलता था।

कालेनाल्पेन राजर्षे रामः कृष्णश्च गोकुले ।
अघृष्टजानुभिः पद्भिर्विचक्रमतुरञ्जसा ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

कालेन अल्पेन—थोड़े समय में ही; राजर्षे—हे राजा (महाराज परीक्षित); रामः कृष्णः च—राम तथा कृष्ण दोनों; गोकुले—गोकुल गाँव में; अघृष्ट-जानुभिः—घुटने के बल रेंगे बिना ही; पद्भिः—अपने पाँवों के बल; विचक्रमतुः—चलने लगे; अञ्जसा—आसानी से।

हे राजा परीक्षित, थोड़े समय में ही राम तथा कृष्ण दोनों अपने पाँवों के बल, रेंगे बिना ही अपने आप गोकुल में सरलता से चलने-फिरने लगे।

तात्पर्य : अब दोनों बालक घुटनों के बल न रेंग कर किसी चीज को पकड़ कर खड़े होने लगे और बिना कठिनाई के अपने पाँवों के बल थोड़ा-थोड़ा चलने-फिरने लगे।

ततस्तु भगवान्कृष्णो वयस्यैर्व्रजबालकैः ।
सहरामो व्रजस्त्रीणां चिक्रीडे जनयन्मुदम् ॥ २७॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; तु—लेकिन; भगवान्—भगवान्; कृष्णः—कृष्ण; वयस्यैः—अपने साथियों के साथ; व्रज-बालकैः—व्रज के छोटे-छोटे बालकों के साथ; सह-रामः—बलराम के साथ; व्रज-स्त्रीणाम्—व्रज की सारी स्त्रियों के; चिक्रीडे—प्रसन्नतापूर्वक खेलने लगे; जनयन्—उत्पन्न करते हुए; मुदम्—दिव्य आनन्द।

तत्पश्चात् भगवान् कृष्ण, बलराम सहित, ग्वालों के अन्य बच्चों के साथ खेलने लगे और इस तरह ग्वालों की स्त्रियों में दिव्य आनन्द उत्पन्न करने लगे।

तात्पर्य : *सह-रामः* शब्द महत्त्वपूर्ण है, जिसका अर्थ है "बलराम के साथ"। ऐसी दिव्य-लीलाओं में कृष्ण ही मुख्य नायक हैं और बलराम उनके सहायक होते हैं।

कृष्णस्य गोप्यो रुचिरं वीक्ष्य कौमारचापलम् ।
शृण्वन्त्याः किल तन्मातुरिति होचुः समागताः ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

कृष्णस्य—कृष्ण का; गोप्यः—सारी गोपियों ने; रुचिरम्—अत्यन्त आकर्षक; वीक्ष्य—देखकर; कौमार-चापलम्—बाल-लीलाओं की चपलता; शृण्वन्त्याः—बारम्बार सुनने के लिए; किल—निस्सन्देह; तत्-मातुः—माता की उपस्थिति में; इति—इस प्रकार; ह—निस्सन्देह; ऊचुः—कहा; समागताः—एकत्र हुईं।

कृष्ण की अति आकर्षक बाल-सुलभ चञ्चलता को देखकर पड़ोस की सारी गोपियाँ कृष्ण की क्रीड़ाओं के विषय में बारम्बार सुनने के लिए माता यशोदा के पास पहुँचतीं और उनसे इस प्रकार कहतीं।

तात्पर्य : कृष्ण की क्रीड़ाएँ भक्तों को सदैव अत्यधिक आकर्षक लगती हैं। अतः यशोदा की पड़ोसी सखियाँ माता यशोदा को वे सारी बातें बतलातीं जिन्हें वे पड़ोस में कृष्ण को करते देखतीं। माता यशोदा अपने पुत्र की क्रीड़ाएँ सुनने के लिए अपने घर के कामकाज बन्द कर देतीं और पड़ोसी सखियों द्वारा दी गई जानकारी का आनन्द लेतीं।

वत्सान्मुञ्चन्क्वचिदसमये क्रोशसञ्जातहासः
स्तेयं स्वाद्वत्त्यथ दधिपयः कल्पितैः स्तेययोगैः ।
मर्कान्भोक्ष्यन्विभजति स चेन्नात्ति भाण्डं भिनत्ति
द्रव्यालाभे सगृहकुपितो यात्युपक्रोश्य तोकान् ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

वत्सान्—बछड़ों को; मुञ्चन्—खाले देने; क्वचित्—कभी; असमये—विषम अवसरों पर; क्रोश-सञ्जात-हासः—इसके बाद जब घर का मुखिया अप्रसन्न होता तो कृष्ण हँसने लगता है; स्तेयम्—चोरी करने से प्राप्त; स्वादु—स्वादिष्ट; अत्ति—खाता है; अथ—इस प्रकार; दधि-पयः—दही तथा दूध के बर्तन (मटकी); कल्पितैः—ढूँढ़ निकाली गई; स्तेय-योगैः—चोरी करने की विधि के द्वारा; मर्कान्—बन्दरों को; भोक्ष्यन्—खिलाते हुए; विभजति—बाँट-बाँट कर देता है; सः—वह बन्दर; चेत्—यदि; न—नहीं; अत्ति—खाता है; भाण्डम्—बर्तन; भिनत्ति—तोड़ डालता है; द्रव्य-अलाभे—खाने को कुछ न मिलने पर; स-गृह-

कुपितः—वह घर के रहने वालों पर गुस्साता है; याति—चला जाता है; उपक्रोश्य—चिढ़ाते हुए; तोकान्—छोटे-छोटे बच्चों को।

''हे सखी यशोदा, आपका बेटा कभी कभी हमारे घरों में गौवें दुहने के पहले आ जाता है और बछड़ों को खोल देता है और जब घर का मालिक क्रोध करता है, तो आपका बेटा केवल मुसका देता है। कभी कभी वह कोई ऐसी युक्ति निकालता है, जिससे वह स्वादिष्ट दही, मक्खन तथा दूध चुरा लेता है और तब उन्हें खाता-पीता है। जब बन्दर एकत्र होते हैं, तो वह उनमें ये सब बाँट देता है और जब उनके पेट भर जाते हैं और वे अधिक नहीं खा पाते तो वह बर्तनों को तोड़ जाता है। कभी कभी, यदि उसे घर से मक्खन या दूध चुराने का अवसर नहीं मिलता तो वह घरवालों पर क्रोधित होता है और बदला लेने के लिए वह छोटे-छोटे बच्चों को चिकुटी काट कर भड़का जाता है। और जब बच्चे रोने लगते हैं, तो कृष्ण भाग लेता है।

तात्पर्य : कृष्ण के बचपन के उपद्रवों का वर्णन माता यशोदा के सामने शिकायत के रूप में किया जाता था। कृष्ण कभी कभी अपने किसी पड़ोसी के घर में घुस जाते और यदि वहाँ किसी को न देखते तो गायों के दुहे जाने के समय से पहले ही उनके बछड़ों को खोल देते। वस्तुत: बछड़े तब खोले जाते हैं जब उनकी माताओं को दुहना होता है किन्तु कृष्ण उससे पहले ही बछड़े खोल देते जिससे वे अपनी माताओं का सारा दूध पी जाते। जब ग्वाले इसे देखते तो वे कृष्ण का पीछा करते और उन्हें पकड़ने का प्रयत्न यह कहते हुए करते, ''यह रहा उत्पाती कृष्ण'' किन्तु वे भाग कर दूसरे घर में घुस जाते जहाँ वे मक्खन तथा दही चुराने की कोई तरकीब ढूँढ निकालते। तब ग्वाले पुन: उन्हें पकड़ने का प्रयास यह कहते हुए करते, ''यह रहा माखन चोर। पकड़ो इसे।'' और वे क्रोधित होते। किन्तु कृष्ण केवल हँस देते और वे सारी बातें भूल जाते। कभी कभी कृष्ण उनकी उपस्थिति में दही तथा मक्खन खाने लगते। कृष्ण को दही-मक्खन खाने की आवश्यकता नहीं रहती थी क्योंकि पेट भरा रहता था फिर भी वे खाने का प्रयास करते अथवा बर्तन तोड़ देते और उनके भीतर जो कुछ रहता उसे बन्दरों में बाँट देते। इस तरह कृष्ण हमेशा ऊधम मचाने में लगे रहते। यदि उन्हें किसी घर में चुराने के लिए मक्खन या दही नहीं मिलता था, तो वे कमरे में घुस कर सोते हुए बालकों को चिकोटी काटते और जब बच्चे रोने लगते तो स्वयं भाग लेते।

हस्ताग्राह्ये रचयति विधिं पीठकोलूखलाद्यै-
छिद्रं ह्यन्तर्निहितवयुनः शिक्यभाण्डेषु तद्वित् ।
ध्वान्तागारे धृतमणिगणं स्वाङ्गमर्थप्रदीपं
काले गोप्यो यर्हि गृहकृत्येषु सुव्यग्रचित्ताः ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

हस्त-अग्राह्ये—हाथ न पहुँचने पर; रचयति—बनाता है; विधिम्—उपाय; पीठक—पीढ़ा, लकड़ी की चौकी; उलूखल-आद्यैः—तथा ओखली इत्यादि से; छिद्रम्—छेद; हि—निस्सन्देह; अन्तः-निहित—बर्तन के भीतर की वस्तुएँ; वयुनः—ऐसे ज्ञान से; शिक्य—शिकहरा, छींका से टांग कर; भाण्डेषु—बर्तनों के भीतर; तत्-वित्—उस ज्ञान में दक्ष; ध्वान्त-आगारे—अँधेरे कमरे में; धृत-मणि-गणम्—मूल्यवान मोतियों से सजाया होने के कारण; स्व-अङ्गम्—अपने शरीर को; अर्थ-प्रदीपम्—अँधेरे में देखने के लिए आवश्यक प्रकाश में; काले—उसके बाद; गोप्यः—वृद्धा गोपियाँ; यर्हि—ज्योंही; गृह-कृत्येषु—घर के कामकाज करने में; सु-व्यग्र-चित्ताः—बुरी तरह लगी रहने से।.

''जब दूध तथा दही की मटकी को छत से लटकते छींके में ऊँचा रख दिया जाता है और कृष्ण तथा बलराम उस छींके तक नहीं पहुँच पाते तो वे पीढ़ों को जुटाकर तथा मसाले पीसने की ओखली को उलट कर उस पर चढ़ कर उस तक पहुँच जाते हैं। बर्तन के भीतर क्या है, वे अच्छी तरह जानते हैं अतः उसमें छेद कर देते हैं। जब सयानी गोपिकाएँ कामकाज में लगी रहती हैं, तो कभी कभी कृष्ण तथा बलराम अँधेरी कोठरी में चले जाते हैं और अपने शरीर में पहने हुए मूल्यवान आभूषणों की मणियों की चमक से उस स्थान को प्रकाशित करके चोरी कर ले जाते हैं।

तात्पर्य : पुराने समय में घर घर में दही तथा मक्खन रखा रहता था ताकि आवश्यकता पड़ने पर काम आ सके। किन्तु कृष्ण तथा बलराम इतने पीढ़े एक के ऊपर एक रख लेते कि बर्तनों तक पहुँच सकें और तब अपने हाथों से बर्तनों में छेद कर लेते जिससे उनके भीतर की सामग्री चू कर नीचे आये और वे उसे पी सकें। मक्खन तथा दूध चुराने की यह दूसरी विधि थी। यदि मक्खन तथा दूध किसी अँधेरे कमरे में रखा होता तो कृष्ण और बलराम वहाँ जाते और अपने शरीरों में धारण किये गये बहुमूल्य मणियों से उस स्थान को प्रकाशित कर लेते। कहने का तात्पर्य यह कि कृष्ण तथा बलराम पड़ोस के घरों से दूध तथा मक्खन कई विधियों से चुराया करते थे।

एवं धार्ष्ट्यान्युशति कुरुते मेहनादीनि वास्तौ
स्तेयोपायैर्विरचितकृतिः सुप्रतीको यथास्ते ।
इत्थं स्त्रीभिः सभयनयनश्रीमुखालोकिनीभि-
र्व्याख्यातार्था प्रहसितमुखी न ह्युपालब्धुमैच्छत् ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; धाष्टर्यानि—उपद्रव; उशति—स्वच्छ स्थान में; कुरुते—कभी कभी करता है; मेहन-आदीनि—टट्टी पेशाब करना; वास्तौ—घरों में; स्तेय-उपायै:—दूध तथा मक्खन चुराने की विविध युक्तियाँ ढूँढ़कर; विरचित-कृति:—अत्यन्त दक्ष है; सु-प्रतीक:—अब अच्छे, शिष्ट बालक की तरह बैठा हुआ है; यथा आस्ते—यहाँ रहते हुए; इत्थम्—ये बातें; स्त्रीभि:—गोपियों के द्वारा; स-भय-नयन—अब डरी हुई आँखों से बैठा; श्री-मुख—ऐसा सुन्दर चेहरा; आलोकिनीभि:—गोपियाँ देखने का आनन्द ले रही थीं; व्याख्यात-अर्था—माता यशोदा से उसकी शिकायत करते हुए; प्रहसित-मुखी—हँसती और आनन्द लूटतीं; न—नहीं; हि—निस्सन्देह; उपालब्धुम्—डराने-धमकाने के लिए; ऐच्छत्—उसकी इच्छा हुई, चाहा।

''जब कृष्ण नटखटपन करते पकड़े जाते हैं, तो घर के मालिक उससे कहते, ''अरे चोर'' और उस पर बनावटी क्रोध प्रकट करते। तब कृष्ण उत्तर देते, ''मैं चोर नहीं हूँ। चोर तुम हो।'' कभी कभी कृष्ण क्रोध में आकर हमारे साफ-सुथरे घरों में मल-मूत्र विसर्जन कर देता है। किन्तु हे सखी यशोदा, अब वही दक्ष चोर तुम्हारे सामने अच्छे लड़के की तरह बैठा है।'' कभी कभी सभी गोपियाँ कृष्ण को भयातुर आँखों किए बैठे देखती थीं, ताकि माता डांटे फटकारे नहीं और जब वे कृष्ण का सुन्दर मुखड़ा देखतीं तो उसे डाँटने की बजाय वे उनके मुखड़े को देखती ही रह जातीं और दिव्य आनन्द का अनुभव करतीं। माता यशोदा इस खिलवाड़ पर मन्द-मन्द मुसकातीं और उनका मन अपने भाग्यशाली दिव्य बालक को डाँटने को करता ही नहीं था।

तात्पर्य : कृष्ण अपने पड़ोस में चोरी ही नहीं करते थे अपितु कभी कभी स्वच्छ घरों में मल-मूत्र विसर्जित कर दिया करते थे। जब घर का कोई मालिक पकड़ता तो कृष्ण ''तुम्हीं चोर हो'' कह कर उसे डाँटते। अपनी बाल-लीलाओं में चोर होने के अतिरिक्त भी कृष्ण युवावस्था में युवतियों को आकृष्ट करके उनके साथ रास-नृत्य करने की चोरी भी करते थे। यही कृष्ण के कार्य हैं। वे अनेक असुरों के वध करने वाले हिंसक भी हैं। यद्यपि संसारी लोगों को अहिंसा तथा अन्य सद्गुण पसन्द आते हैं किन्तु ईश्वर सदा एकसा होते हुए कुछ तथाकथित अनैतिक कार्यों में—यथा चुराने, मारने तथा हिंसा में भी पटु होते हैं। कृष्ण सदैव शुद्ध हैं और परम सत्य हैं। वे भौतिक जीवन का निन्दनीय से निन्दनीय समझा जाने वाला काम कर सकते हैं फिर भी वे आकर्षक हैं। इसलिए उनका नाम कृष्ण है। ऐसे ही स्तर पर दिव्य प्रेम-व्यवहार तथा सेवा का विनिमय होता है। कृष्ण के मुखमण्डल से माताएँ इतनी आकृष्ट होतीं कि वे उन्हें डाँट नहीं सकती थीं प्रत्युत वे हँसतीं और कृष्ण की करतूतों को सुन-सुन कर आनन्दित होतीं। इस तरह गोपियाँ तुष्ट रहती रहीं और कृष्ण उनकी प्रसन्नता का आनन्द लूटते। इसीलिए उनका दूसरा नाम गोपी-जन-वल्लभ है क्योंकि वे गोपियों को प्रसन्न करने के लिए ऐसी

क्रीड़ाओं को खोज लेते थे।

एकदा क्रीडमानास्ते रामाद्या गोपदारकाः ।
कृष्णो मृदं भक्षितवानिति मात्रे न्यवेदयन् ॥ ३२॥

शब्दार्थ

एकदा—एक बार; क्रीडमानाः—बड़े होकर भी अपनी उम्र वाले अन्य बालकों के साथ खेलते; ते—वे; राम-आद्याः—बलराम तथा अन्य; गोप-दारकाः—ग्वालों के पड़ोस में पैदा हुए अन्य बालक; कृष्णः मृदम् भक्षितवान्—हे माता! कृष्ण ने मिट्टी खाई है; इति—इस प्रकार; मात्रे—माता यशोदा से; न्यवेदयन्—निवेदन किया।

एक दिन जब कृष्ण अपने छोटे साथियों के साथ बलराम तथा अन्य गोप-पुत्रों सहित खेल रहे थे तो उनके सारे साथियों ने एकत्र होकर माता यशोदा से शिकायत की कि ''कृष्ण ने मिट्टी खाई है।''

तात्पर्य : यहाँ पर कृष्ण की एक अन्य दिव्य क्रीड़ा है, जिसे गोपियों को प्रसन्न करने के लिए ढूँढ़ निकाला गया। पहले तो कृष्ण द्वारा चोरी करने की शिकायत माता यशोदा से की गई किन्तु उन्होंने कृष्ण को नहीं डाँटा। अब एक और प्रयास में जिससे माता यशोदा क्रोध करें और उसे डाँटें, दूसरी शिकायत ढूँढ़ निकाली गई—कि कृष्ण ने मिट्टी खाई है।

सा गृहीत्वा करे कृष्णमुपालभ्य हितैषिणी ।
यशोदा भयसम्भ्रान्तप्रेक्षणाक्षमभाषत ॥ ३३॥

शब्दार्थ

सा—माता यशोदा; गृहीत्वा—पकड़ कर; करे—हाथ में; कृष्णम्—कृष्ण को; उपालभ्य—डाँटना चाहा; हित-एषिणी—कृष्ण का कल्याण चाहने के कारण वे क्षुब्ध थीं कि इस कृष्ण ने मिट्टी कैसे खाई?; यशोदा—माता यशोदा ने; भय-सम्भ्रान्त-प्रेक्षण-अक्षम्—कृष्ण के मुँह के भीतर सावधानी से देखने लगी, यह देखने के लिए कि कोई खतरनाक वस्तु तो नहीं भर ली; अभाषत—कृष्ण से कहा।

कृष्ण के साथियों से यह सुनकर, हितैषिणी माता यशोदा ने कृष्ण के मुख के भीतर देखने तथा डाँटने के लिए उन्हें अपने हाथों से ऊपर उठा लिया। वे डरी डरी आँखों से अपने पुत्र से इस प्रकार बोलीं।

कस्मान्मृदमदान्तात्मन्भवान्भक्षितवान्रहः ।
वदन्ति तावका ह्येते कुमारास्तेऽग्रजोऽप्ययम् ॥ ३४॥

शब्दार्थ

कस्मात्—क्यों; मृदम्—मिट्टी; अदान्त-आत्मन्—अरे चंचल बालक; भवान्—तुमने; भक्षितवान्—खाई है; रहः—एकान्त स्थान में; वदन्ति—यह शिकायत कर रहे हैं; तावकाः—तुम्हारे दोस्त; हि—निस्सन्देह; एते—वे सभी; कुमाराः—बालक; ते—तुम्हारे; अग्रजः—बड़ा भाई; अपि—भी (पुष्टि करता है); अयम्—यह।

हे कृष्ण, तुम इतने चंचल क्यों हो कि एकान्त स्थान में तुमने मिट्टी खा ली? यह शिकायत तुम्हारे बड़े भाई बलराम समेत तुम्हारे संगी-साथियों ने की है। यह क्योंकर हुआ?

तात्पर्य : माता यशोदा कृष्ण के चंचल स्वभाव से क्षुब्ध थीं। उनका घर मिठाइयों से भरा पड़ा था, तो फिर चंचल बालक ने एकान्त स्थान में मिट्टी क्यों खाई? कृष्ण ने उत्तर दिया, ''हे माता! सबों ने षड्यंत्र करके मेरे विरुद्ध शिकायत की है, जिससे आप मुझे दण्ड दें। मेरे बड़े भइया बलराम उनसे मिल गये हैं। वास्तव में मैंने यह काम नहीं किया। मेरी बात सत्य मानें। मुझ पर नाराज न हों और मुझे डाँटे नहीं।''

नाहं भक्षितवानम्ब सर्वे मिथ्याभिशंसिनः ।
यदि सत्यगिरस्तर्हि समक्षं पश्य मे मुखम् ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; अहम्—मैंने; भक्षितवान्—मिट्टी खाई है; अम्ब—हे माता; सर्वे—वे सभी; मिथ्य-अभिशंसिनः—सभी झूठे हैं, केवल मेरी शिकायत करते हैं कि आप मुझे डाँटें; यदि—यदि यह यथार्थ है; सत्य-गिरः—कि उन्होंने सच बोला है; तर्हि—तो; समक्षम्—प्रत्यक्ष; पश्य—देखिये; मे—मेरा; मुखम्—मुँह।

श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया, ''हे माता, मैंने मिट्टी कभी नहीं खाई। मेरी शिकायत करने वाले मेरे सारे मित्र झूठे हैं। यदि आप सोचती हैं कि वे सच बोल रहे हैं, तो आप मेरे मुँह के भीतर प्रत्यक्ष देख सकती हैं।

तात्पर्य : मातृ-स्नेह के दिव्य आनन्द को बढ़ाने के लिए कृष्ण ने अपने आप को निर्दोष रूप में प्रस्तुत किया। शास्त्र में वर्णन हुआ है—*ताडनभयान् मिथ्योक्तिर्वात्सल्यरसपोषिका।* इसका अर्थ है कि छोटा बालक कभी कभी झूठ बोलता है। उदाहरणार्थ, वह किसी वस्तु को चुराने पर या कुछ खाने पर भी इनकार करता है कि उसने ऐसा नहीं किया। सामान्यतया भौतिक जगत में ऐसा देखा जाता है किन्तु कृष्ण के साथ बात और ही है। ऐसी क्रीड़ाएँ भक्तों को दिव्य आनन्द प्रदान करने के निमित्त हैं। भगवान् झूठे की भूमिका अदा कर रहे थे और अन्य भक्तों पर झूठा होने का आरोप लगा रहे थे। *श्रीमद्भागवत* (.१२.११) में कहा गया है— *कृतपुण्यपुञ्जाः*—अनेकानेक जन्मों तक भक्ति करने के बाद भक्त को ऐसी आनन्दानुभूति हो सकती है। जिन लोगों ने प्रचुर पुण्यकर्मों के फल संचित कर रखे

हैं उन्हें ही कृष्ण का सान्निध्य और उनके साथ सामान्य खिलाड़ियों की तरह खेलने का अवसर प्राप्त होता है। इन दिव्य सेवा-कार्यकलापों को झूठे आरोप नहीं समझना चाहिए। ऐसे भक्तों पर सामान्य बालकों की तरह झूठ बोलने का कभी आरोप नहीं लगाना चाहिए क्योंकि कृष्ण का ऐसा सान्निध्य प्राप्त करने के लिए उन्होंने बड़ी तपस्या की है (*तपसा ब्रह्मचर्येण शमेन च दमेन च*)।

यद्येवं तर्हि व्यादेहीत्युक्तः स भगवान्हरिः ।
व्यादत्ताव्याहतैश्वर्यः क्रीडामनुजबालकः ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

यदि—यदि; एवम्—ऐसा है; तर्हि—तो; व्यादेहि—अपना मुख खोलो (मैं देखना चाहती हूँ); इति उक्तः—माता यशोदा द्वारा ऐसा आदेश दिये जाने पर; सः—उस; भगवान्—भगवान्; हरिः—परमेश्वर ने; व्यादत्त—अपना मुँह खोल दिया; अव्याहत-ऐश्वर्यः—ऐश्वर्य भक्ति में बिना किसी कमी के (ऐश्वर्यस्य समग्रस्य); क्रीडा—लीला या खिलवाड़; मनुज-बालकः—मनुष्य के लड़के की तरह।

माता यशोदा ने कृष्ण को धमकाया : ''यदि तुमने मिट्टी नहीं खाई है, तो अपना मुँह पूरी तरह खोलो।'' इस पर नन्द तथा यशोदा के पुत्र कृष्ण ने मानवी बालक की तरह लीला करने के लिए अपना मुँह खोला। यद्यपि समस्त ऐश्वर्यों के स्वामी भगवान् कृष्ण ने अपनी माता के वात्सल्य-प्रेम को ठेस नहीं लगाई, फिर भी उनका ऐश्वर्य स्वतः प्रदर्शित हो गया क्योंकि कृष्ण का ऐश्वर्य किसी भी स्थिति में विनष्ट नहीं होता अपितु उचित समय पर प्रकट होता है।

तात्पर्य : अपनी माता के स्नेह भाव को डिगाये बिना ही कृष्ण ने अपना मुँह खोल दिया और अपने प्राकृतिक ऐश्वर्यों को प्रदर्शित कर दिया। जब किसी व्यक्ति को भाँति-भाँति का भोजन परोसा जाता है, तो उसमें सैकड़ों व्यंजन हो सकते हैं किन्तु यदि किसी को साधारण शाक पालक ही पसन्द है, तो वह उसी को खाना चाहेगा। इसी तरह यद्यपि कृष्ण समस्त ऐश्वर्यों से पूर्ण थे किन्तु अब जब उन्हें अपनी माता के आदेश से बालक की तरह अपना मुँह खोलना पड़ा तो उन्होंने वात्सल्य रस के दिव्य विनोद की उपेक्षा नहीं की।

सा तत्र ददृशे विश्वं जगत्स्थास्नु च खं दिशः ।
साद्रिद्वीपाब्धिभूगोलं सवाय्वग्नीन्दुतारकम् ॥ ३७ ॥
ज्योतिश्चक्रं जलं तेजो नभस्वान्वियदेव च ।
वैकारिकाणीन्द्रियाणि मनो मात्रा गुणास्त्रयः ॥ ३८ ॥
एतद्विचित्रं सहजीवकाल-

स्वभावकर्माशयलिङ्गभेदम् ।
सूनोस्तनौ वीक्ष्य विदारितास्ये
व्रजं सहात्मानमवाप शङ्काम् ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

सा—माता यशोदा ने; तत्र—कृष्ण के खुले मुख के भीतर; ददृशे—देखा; विश्वम्—सारे ब्रह्माण्ड को; जगत्—चर-प्राणी; स्थास्नु—अचर, जड़ प्राणी; च—तथा; खम्—आकाश; दिशः—दिशाएँ; स-अद्रि—पर्वतों सहित; द्वीप—द्वीप; अब्धि—समुद्र; भू-गोलम्—पृथ्वी की सतह; स-वायु—बहती हवा के समेत; अग्नि—आग; इन्दु—चन्द्रमा; तारकम्—तारे; ज्योतिः-चक्रम्—ग्रह नक्षत्र; जलम्—जल; तेजः—प्रकाश; नभस्वान्—अन्तरिक्ष; वियत्—आकाश; एव—भी; च—तथा; वैकारिकाणि—अहंकार के रूपांतर से बनी सृष्टि; इन्द्रियाणि—इन्द्रियाँ; मनः—मन; मात्राः—तन्मात्रा; गुणाः त्रयः—तीनों गुण (सत्त्व, रजस् तथा तमस); एतत्—ये सारे; विचित्रम्—तरह तरह के; सह—समेत; जीव-काल—सारे जीवों की आयु; स्वभाव—स्वभाव; कर्म-आशय—कर्म तथा भौतिक भोग की इच्छा (वासना); लिङ्ग-भेदम्—इच्छानुसार शरीरों के भेद; सूनोः तनौ—अपने पुत्र के शरीर में; वीक्ष्य—देखकर; विदारित-आस्ये—खुले मुँह के भीतर; व्रजम्—व्रज-धाम को; सह-आत्मानम्—अपने समेत; अवाप—हतप्रभ रह गई; शङ्काम्—शंका तथा आश्चर्य से युक्त।

जब कृष्ण ने माता यशोदा के आदेश से अपना पूरा मुँह खोला तो उन्होंने कृष्ण के मुख के भीतर सभी चर-अचर प्राणी, बाह्य आकाश, सभी दिशाएँ, पर्वत, द्वीप, समुद्र, पृथ्वीतल, बहती हवा, अग्नि, चन्द्रमा तथा तारे देखे। उन्होंने ग्रह, जल, प्रकाश, वायु, आकाश तथा अहंकार के रूपान्तर द्वारा सृष्टि देखी। उन्होंने इन्द्रियाँ, मन, तन्मात्राएँ, तीनों गुण (सतो, रजो तथा तमो) भी देखे। उन्होंने जीवों की आयु, प्राकृतिक स्वभाव तथा कर्मफल देखे। उन्होंने इच्छाएँ और विभिन्न प्रकार के चर-अचर शरीर देखे। विराट जगत के इन विविध पक्षों के साथ ही स्वयं को तथा वृन्दावन-धाम को देखकर वे अपने पुत्र के स्वभाव से सशंकित तथा भयभीत हो उठीं।

तात्पर्य : स्थूल तथा सूक्ष्म तत्त्वों पर स्थित सारे विराट जगत, उनकी उत्तेजना के साधन, तीनों गुण, जीव, सृष्टि, पालन, संहार तथा भगवान् की बहिरंगा शक्ति से चल रही सारी क्रियाएँ—ये सभी पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् गोविन्द से उद्भूत हैं। सारी वस्तुएँ उनके नियंत्रण में हैं। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* से भी (९.) होती है। *मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते स-चराचरम्*—भौतिक प्रकृति की सारी वस्तुएँ उनके नियंत्रण में हैं। चूँकि ये सारी अभिव्यक्तियाँ गोविन्द से उद्भूत हैं अतएव वे सब की सब गोविन्द के मुख में दिख सकती थीं। आश्चर्य की बात तो यह है कि माता यशोदा गहन मातृ-स्नेह के कारण भयभीत थीं। उन्हें विश्वास ही नहीं हो पा रहा था कि उनके पुत्र के मुख में ऐसी वस्तुएँ दिख सकती हैं। फिर भी उन्होंने देखा और इसीलिए वे भय तथा आश्चर्य से हक्की-बक्की रह गईं।

किं स्वप्न एतदुत देवमाया

किं वा मदीयो बत बुद्धिमोहः ।
अथो अमुष्यैव ममार्भकस्य
यः कश्चनौत्पत्तिक आत्मयोगः ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

किम्—क्या; स्वप्नः—सपना; एतत्—यह; उत—अथवा; देव-माया—बहिरंगा शक्ति द्वारा मोहमयी अभिव्यक्ति; किम् वा—अथवा; मदीयः—मेरा निजी; बत—निस्सन्देह; बुद्धि-मोहः—बुद्धि का मोह; अथो—अन्यथा; अमुष्य—ऐसे; एव—निस्सन्देह; मम अर्भकस्य—मेरे बालक का; यः—जो; कश्चन—कोई; औत्पत्तिकः—प्राकृतिक; आत्म-योगः—निजी योगशक्ति।

[माता यशोदा अपने में ही तर्क करने लगीं]: क्या यह सपना है या बहिरंगा शक्ति की मोहमयी सृष्टि है? कहीं यह मेरी ही बुद्धि से तो प्रकट नहीं हुआ? अथवा यह मेरे बालक की कोई योगशक्ति है?

तात्पर्य : जब माता यशोदा ने अपने बालक के मुख के भीतर यह अद्भुत दृश्य देखा तो वे अपने मन में तर्क करने लगीं कि कहीं यह स्वप्न तो नहीं। तब उन्होंने विचार किया, "मैं स्वप्न नहीं देख रही क्योंकि मेरी आँखें खुली हैं। जो कुछ हो रहा है मैं वही देख रही हूँ। न तो मैं सो रही हूँ, न ही मैं सपना देख रही हूँ। तो फिर यह *देवमाया* से उत्पन्न मोह हो सकता है। किन्तु यह भी सम्भव नहीं। ऐसी वस्तुएँ देवतागण मुझे क्यों दिखला रहे हैं? मैं तो साधारण सी स्त्री हूँ जिसका देवताओं से कोई सम्बन्ध नहीं। वे देवमाया में मुझे क्यों डालना चाहते हैं? ऐसा सम्भव नहीं।" तब माता यशोदा ने सोचा कि यह दृश्य मोह (माया) के कारण है, "मैं ठीक-ठाक हूँ, मुझे कोई रोग नहीं। तो फिर मोह क्यों? ऐसा नहीं कि मेरा मस्तिष्क विकृत हो क्योंकि मैं सामान्य रूप से सोच सकती हूँ। अवश्य ही यह दृश्य मेरे पुत्र की योगशक्ति के कारण है जैसाकि गर्गमुनि ने भविष्यवाणी की है।" इस तरह वे इस निष्कर्ष पर पहुँचीं कि यह दृश्य उन्हीं के पुत्र की ही रचना है, यह और कुछ भी नहीं है।

अथो यथावन्न वितर्कगोचरं
चेतोमनःकर्मवचोभिरञ्जसा ।
यदाश्रयं येन यतः प्रतीयते
सुदुर्विभाव्यं प्रणतास्मि तत्पदम् ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

अथो—इसलिए उसने भगवान् की शरण में जाने का निश्चय किया; यथा-वत्—जितनी पूर्णता से कोई अनुभव कर सकती है; न—नहीं; वितर्क-गोचरम्—समस्त तर्क, इन्द्रिय बोध से परे; चेतः—चेतना से; मनः—मन से; कर्म—कर्म से; वचोभिः—अथवा शब्दों से; अञ्जसा—सबको मिलकर भी हम उन्हें नहीं समझ सकते; यत्-आश्रयम्—जिसके नियंत्रण में; येन—जिसके द्वारा; यतः—जिससे; प्रतीयते—अनुभव किया जा सकता है कि हर वस्तु उन्हीं से उद्भूत है; सु-दुर्विभाव्यम्—हमारी चेतना से परे; प्रणता अस्मि—शरणागत हूँ; तत्-पदम्—उनके चरणों में।

अतएव मैं उन भगवान् की शरण ग्रहण करती हूँ और उन्हें नमस्कार करती हूँ जो मनुष्य की कल्पना, मन, कर्म, विचार तथा तर्क से परे हैं, जो इस विराट जगत के आदि-कारण हैं, जिनसे यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड पालित है और जिनसे हम इस जगत के अस्तित्व का अनुभव करते हैं। मैं उन्हें सादर नमस्कार ही कर सकती हूँ क्योंकि वे मेरे चिन्तन, अनुमान तथा ध्यान से परे हैं। वे मेरे समस्त भौतिक कर्मों से भी परे हैं।

तात्पर्य : मनुष्य को भगवान् की महानता का केवल अनुभव करना होता है। उसे स्थूल या सूक्ष्म किसी भी भौतिक उपाय से उन्हें समझने का प्रयास नहीं करना चाहिए। सरल स्वभाव की स्त्री होने के कारण माता यशोदा इस दृश्य का असली कारण नहीं समझ पाईं अतएव मातृ-स्नेहवश उन्होंने भगवान् को केवल नमस्कार किया कि वे उनके बालक की रक्षा करें। वे उन्हें नमस्कार करने के अतिरिक्त कर ही क्या सकती थीं? कहा गया है—*अचिन्त्याः खलु ये भावा न तांस्तर्केण योजयेत्* (*महाभारत भीष्म पर्व* ५.२२)। तर्क से परम कारण को समझने का प्रयास नहीं करना चाहिए। जब हम किसी ऐसी समस्या से घिर जाते हैं जिसका कोई कारण ढूँढे नहीं मिलता तो हमारे पास भगवान् की शरण में जाने और उन्हें सादर नमस्कार करने के अतिरिक्त कोई दूसरा विकल्प नहीं रह जाता। तभी हम सुरक्षित रह सकते हैं। इस स्थिति में माता यशोदा ने भी यही विधि अपनाई। जो कुछ घटता है उसका मूल कारण भगवान् होता है (*सर्वकारण कारणम्*)। जब कारण का पता न चले तो हमें भगवान् के चरणकमलों पर नमस्कार मात्र करना चाहिए। माता यशोदा इसी निष्कर्ष पर पहुँचीं कि अपने पुत्र के मुख में जो अद्भुत वस्तुएँ उन्होंने देखीं वे उसी बालक के कारण थीं, भले ही वे कारण सुनिश्चित नहीं कर पाईं। अतएव जब भक्त को किसी कष्ट का कारण निश्चित नहीं हो पाता तो वह इसी निष्कर्ष पर पहुँचता है—

तत्तेऽनुकम्पा सुसमीक्षसमाणो

भुञ्जन एवात्मकृतं विपाकम्।

हृद्वाग्वपुर्भिर्विदधन्नमस्ते

जीवेत यो मुक्ति पदे स दायभाक्॥

(*भागवत* .१४.८)

भक्त यह स्वीकार करता है कि उसे अपने विगत दुष्कर्मों के कारण ही भगवान् ने यह किञ्चित कष्ट

दिया है। इस तरह वह भगवान् को बारम्बार नमस्कार करता है। ऐसा भक्त *मुक्ति पदे स दायभाक्* कहलाता है अर्थात् इस भौतिक जगत से उसकी मुक्ति सुनिश्चित है। *भगवद्गीता* (२.१४) में कहा गया है—

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदु:खदा:।

आगमापायिनो नित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत॥

हमें जानना चाहिए कि भौतिक शरीर से उत्पन्न भौतिक कष्ट आते-जाते रहते हैं अतएव हमें चाहिए कि कष्ट सहन करें और आध्यात्मिक गुरु द्वारा आदिष्ट अपना कर्तव्य निबाहें।

अहं ममासौ पतिरेष मे सुतो
व्रजेश्वरस्याखिलवित्तपा सती ।
गोप्यश्च गोपा: सहगोधनाश्च मे
यन्माययेत्थं कुमति: स मे गति: ॥ ४२॥

शब्दार्थ

अहम्—मेरा अस्तित्व (मैं कुछ हूँ); मम—मेरा; असौ—नन्द महाराज; पति:—पति; एष:—यह (कृष्ण); मे सुत:—मेरा पुत्र है; व्रज-ईश्वरस्य—मेरे पति नन्द महाराज का; अखिल-वित्त-पा—मैं असीम ऐश्वर्य और सम्पत्ति की मालकिन हूँ; सती—उनकी पत्नी होने से; गोप्य: च—तथा सारी गोपियाँ; गोपा:—सारे ग्वाले (जो मेरे अधीन हैं); सह-गोधना: च—गौवों तथा बछड़ों समेत; मे—मेरा; यत्-मायया—ऐसी सारी वस्तुएँ जिन्हें मैं कहती हूँ आखिर भगवान् की कृपा से प्राप्त हैं; इत्थम्—इस प्रकार; कुमति:—मैं झूठे ही सोचती हूँ कि मेरी सम्पत्ति हैं; स: मे गति:—अतएव वे ही मेरी एकमात्र शरण हैं (मैं तो निमित्त मात्र हूँ)।

यह तो भगवान् की माया का प्रभाव है, जो मैं मिथ्या ही सोचती हूँ कि नन्द महाराज मेरे पति हैं, कृष्ण मेरा पुत्र है और चूँकि मैं नन्द महाराज की महारानी हूँ इसलिए गौवों तथा बछड़ों की सम्पत्ति मेरे अधिकार में है और सारे ग्वाले तथा उनकी पत्नियाँ मेरी प्रजा हैं। वस्तुत: मैं भी भगवान् के नित्य अधीन हूँ। वे ही मेरे अनन्तिम आश्रय हैं।

तात्पर्य : माता यशोदा के चरणचिह्नों का अनुसरण करते हुए हर व्यक्ति को इस त्याग-वृत्ति का पालन करना चाहिए। हमारे पास जितनी भी सम्पत्ति, ऐश्वर्य अथवा जो कुछ भी होता है, वह हमारा नहीं अपितु भगवान् का है, जो हर एक का अनन्तिम आश्रय तथा स्वामी है। *भगवद्गीता* (५.२९) में स्वयं भगवान् कहते हैं—

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।

सुहृदं सर्वभूतानाम् ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति॥

''साधु जन मुझे ही समस्त यज्ञों तथा तपस्याओं का चरम कारण, समस्त लोकों तथा देवताओं का परमेश्वर तथा समस्त जीवों का शुभचिन्तक जान कर भौतिक दुखों से शान्ति प्राप्त करते हैं।''

हमें अपनी सम्पत्ति पर गर्वित नहीं होना चाहिए। जैसाकि माता यशोदा ने यहाँ पर कहा है, ''मैं न तो सम्पत्ति की स्वामिनी हूँ न नन्द महाराज की ऐश्वर्यवान् पत्नी। राज्य, सम्पत्ति, गौवें, बछड़े तथा गोपियों जैसी प्रजा एवं ग्वाले मुझे दिये गये हैं।'' मनुष्य को ''मेरी सम्पत्ति, मेरा पुत्र तथा मेरा पति'' इस प्रकार का विचार त्याग देना चाहिए (*जनस्यमोहोऽयमहं ममेति*)।

हर वस्तु भगवान् की है और किसी की नहीं। केवल मोहवश हम गलत सोचते हैं ''मैं हूँ या हर वस्तु मेरी है।'' इस तरह माता यशोदा पूर्णरूपेण भगवान् की शरणागत हो गईं। क्षण-भर के लिए वे निराश होकर सोचने लगीं, ''दान तथा अन्य पुण्यकर्मों द्वारा अपने पुत्र की रक्षा करने के मेरे सारे प्रयास व्यर्थ हैं। भगवान् ने मुझे बहुत सारी वस्तुएँ प्रदान की हैं किन्तु जब तक वे हर वस्तु का भार अपने ऊपर नहीं ले लेते तब तक सुरक्षा की कोई गारंटी नहीं है इसलिए अन्ततोगत्वा मुझे भगवान् की शरण लेनी चाहिए।'' जैसाकि प्रह्लाद महाराज ने (*भागवत* ७.९.१९) कहा है—*बालस्य नेह शरणं पितरौ नृसिंह*—माता-पिता, अन्ततः अपने बच्चों की रक्षा नहीं कर सकते। *अतो गृहक्षेत्र सुताप्तवित्तैर्जनस्य मोहोऽयमहं ममेति* (*भागवत* ५.५.८)। मनुष्य की भूमि, घर, सम्पत्ति तथा उसके पास जो कुछ भी है, वह सब भगवान् का है यद्यपि हम भूलवश सोचते हैं कि ''यह मैं हूँ'' और ''ये सारी वस्तुएँ मेरी हैं।''

इत्थं विदिततत्त्वायां गोपिकायां स ईश्वरः ।
वैष्णवीं व्यतनोन्मायां पुत्रस्नेहमयीं विभुः ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

इत्थम्—इस तरह; विदित-तत्त्वायाम्—हर वस्तु के सत्य को दार्शनिक रूप से समझ जाने पर; गोपिकायाम्—माता यशोदा के प्रति; सः—उस, भगवान् ने; ईश्वरः—परम नियन्ता; वैष्णवीम्—विष्णु-माया या योगमाया का; व्यतनोत्—विस्तार किया; मायाम्—योगमाया की; पुत्र-स्नेह-मयीम्—अपने पुत्र-स्नेह के कारण अत्यन्त अनुरक्त; विभुः—परमेश्वर ने।

माता यशोदा भगवान् की कृपा से असली सत्य को समझ गईं। लेकिन अन्तरंगा शक्ति, योगमाया के प्रभाव से परम प्रभु ने उन्हें प्रेरित किया कि वे अपने पुत्र के गहन मातृ-प्रेम में लीन हो जाँय।

तात्पर्य : यद्यपि माता यशोदा को समस्त जीवन-दर्शन समझ में आ गया था किन्तु दूसरे ही क्षण

वे योगमाया के प्रभाव से स्नेहवश अभिभूत हो गईं। उन्होंने सोचा कि जब तक वे अपने पुत्र की देखरेख नहीं करेंगीं तब तक वह सुरक्षित कैसे रह सकता है? वे अन्यथा न सोच पाईं और अपना सारा दर्शन भूल गईं। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने इस विस्मृति को योगमाया का प्रभाव बतलाया है (*मोहनसाधर्म्यान् मायाम्*)। भौतिकतावादी व्यक्ति महामाया द्वारा मुग्ध हो जाते हैं किन्तु भक्तगण दिव्य-शक्ति की व्यवस्था के अन्तर्गत योगमाया द्वारा मुग्ध होते हैं।

सद्यो नष्टस्मृतिर्गोपी सारोप्यारोहमात्मजम् ।
प्रवृद्धस्नेहकलिलहृदयासीद्यथा पुरा ॥ ४४॥

शब्दार्थ

सद्यः—इन सारे दार्शनिक चिन्तनों के बाद माता यशोदा ने भगवान् की शरण ग्रहण की; नष्ट-स्मृतिः—कृष्ण के मुँह के भीतर विश्व रूप देखने से नष्ट हुई स्मरणशक्ति; गोपी—माता यशोदा; सा—वह; आरोप्य—बैठाकर; आरोहम्—गोद में; आत्मजम्—अपने पुत्र को; प्रवृद्ध—बढ़ा हुआ; स्नेह—स्नेह से; कलिल—प्रभावित; हृदया—हृदय से; आसीत्—हो गई; यथा पुरा—जैसी पहले थी।.

कृष्ण ने अपने मुँह के भीतर जिस विराट रूप को दिखलाया था योगमाया के उस भ्रम को तुरन्त ही भूलकर माता यशोदा ने अपने पुत्र को पूर्ववत् अपनी गोद में ले लिया और अपने दिव्य बालक के प्रति उनके हृदय में और अधिक स्नेह उमड़ आया।

तात्पर्य : माता यशोदा ने कृष्ण के मुँह के भीतर विराट रूप के दृश्य को योगमाया की व्यवस्था माना जो स्वप्न के समान थी। जिस प्रकार स्वप्न के बाद सारी बातें भूल जाती हैं वैसे ही माता यशोदा तुरन्त ही पूरी घटना भूल गईं। ज्योंही स्नेह का प्राकृतिक भाव बढ़ा त्योंही उन्होंने निश्चय किया, "अब इस घटना को भुलाये देती हूँ। यह मेरा पुत्र है। मैं इसको चुम लूँ।"

त्रय्या चोपनिषद्भिश्च साङ्ख्ययोगैश्च सात्वतैः ।
उपगीयमानमाहात्म्यं हरिं सामन्यतात्मजम् ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

त्रय्या—तीन वेदों (साम, यजुर् तथा अथर्व) के अध्ययन से; च—भी; उपनिषद्भिः च—तथा उपनिषदों के अध्ययन से; साङ्ख्य-योगैः—तथा सांख्य योग विषयक साहित्य के अध्ययन से; च—तथा; सात्वतैः—बड़े बड़े ऋषियों-मुनियों द्वारा अथवा वैष्णव तंत्र पञ्चरात्र का अध्ययन करने से; उपगीयमान-माहात्म्यम्—जिनकी महिमा की पूजा (इन वैदिक ग्रंथों द्वारा) की जाती है; हरिम्—भगवान् को; सा—उसने; अमन्यत—(सामान्य) मान लिया; आत्मजम्—अपना पुत्र।.

भगवान् की महिमा का अध्ययन तीनों वेदों, उपनिषदों, सांख्य योग के ग्रंथों तथा अन्य वैष्णव साहित्य के माध्यम से किया जाता है। फिर भी माता यशोदा परम पुरुष को अपना

सामान्य बालक मानती रहीं।

तात्पर्य : जैसाकि भगवान् कृष्ण ने *भगवद्गीता* (१५.१५) में कहा है वेदों के अध्ययन का उद्देश्य भगवान् को समझना है (*वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः*)। श्री चैतन्य महाप्रभु ने सनातन गोस्वामी को बतलाया कि वेदों के तीन उद्देश्य हैं। पहला—कृष्ण के साथ अपने सम्बन्ध को समझना (*सम्बन्ध*), दूसरा—उस सम्बन्ध के अनुसार कार्य करना (*अभिधेय*) और तीसरा चरम लक्ष्य तक पहुँचना (*प्रयोजन*)। *प्रयोजन* का अर्थ है ''आवश्यकताएँ'' और परम आवश्यकता की व्याख्या श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा की गई है। *प्रेमा पुमर्थो महान्*—मनुष्य की सबसे बड़ी आवश्यकता है भगवान् के लिए प्रेम की प्राप्ति। यहाँ हम देखते हैं कि माता यशोदा आवश्यकता के सर्वोच्च पद पर हैं क्योंकि वे कृष्ण के प्रेम में पूर्णतया लीन हैं।

प्रारम्भ में वैदिक उद्देश्य का पालन तीन प्रकार से (*त्रयी*) किया जाता है—कर्म-काण्ड, ज्ञान-काण्ड तथा उपासना-काण्ड द्वारा। जब कोई व्यक्ति उपासना-काण्ड की पूर्णावस्था को प्राप्त होता है, तो वह नारायण या भगवान् विष्णु की पूजा करने लगता है। जब पार्वती ने भगवान् महादेव से पूछा कि *उपासना* की सर्वोत्तम विधि क्या है, तो शिवजी ने उत्तर दिया—*आराधनानां सर्वेषां विष्णोराराधनं परम्।* *विष्णूपासना* या *विष्ण्वाराधन* सिद्धि की सर्वोच्च अवस्था है, जिसका अनुभव देवकी ने किया। किन्तु यशोदा यहाँ पर कोई उपासना नहीं करतीं क्योंकि उनमें कृष्ण के प्रति दिव्य प्रेम भाव उत्पन्न हो चुका है। अतएव उनकी दशा देवकी की दशा से श्रेष्ठतर है। यह दिखाने के लिए श्रील व्यासदेव लिखते हैं—*त्रय्या चोपनिषद्भिः... ।*

जब कोई व्यक्ति वेदों का अध्ययन *विद्या* (ज्ञान) प्राप्त करने के लिए करता है, तो वह मानव सभ्यता में भाग लेने लगता है। इसके बाद वह *ब्रह्मज्ञान* प्राप्त करने के लिए उपनिषदों का अध्ययन करता है और तब परम नियन्ता को समझने के लिए सांख्य योग की ओर अग्रसर होता है जिन्हें भगवद्गीता में बताया गया है (*परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान्। पुरुषं शाश्वतं...*)। जब मनुष्य उस पुरुष को परम नियंता परमात्मा के रूप में समझ लेता है, तो वह योग विधि में लग जाता है (*ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनः*)। लेकिन माता यशोदा इन सारी अवस्थाओं को पार कर चुकी हैं। वे कृष्ण को अपने प्रिय पुत्र के रूप में मान चुकी हैं इसलिए उन्हें आत्म-साक्षात्कार की

सर्वोच्च अवस्था पर स्थित माना जाता है। परम सत्य की अनुभूति तीन रूपों में होती है (*ब्रह्मेति परमात्मेति भगवान् इति शब्द्यते*) किन्तु वे ऐसे भाव को प्राप्त हैं कि वे ब्रह्म, परमात्मा या भगवान् को समझने की परवाह भी नहीं करतीं। भगवान् उनका प्रिय पुत्र बनने के लिए स्वयं अवतरित हुए हैं। अतएव माता यशोदा के सौभाग्य की कोई बराबरी नहीं की जा सकती जैसाकि श्री चैतन्य महाप्रभु ने् कहा है (*रम्या काचिद् उपासना व्रजवधूवर्गेण या कल्पिता*)। परम सत्य अर्थात् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की अनुभूति विभिन्न अवस्थाओं में की जा सकती है। *भगवद्गीता* (४.११) में भगवान् कहते हैं—

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।

मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥

''मनुष्य जिस तरह मेरी शरण में आते हैं उन्हें मैं उसी तरह से पुरस्कृत करता हूँ। हे पृथा-पुत्र! हर व्यक्ति मेरे मार्ग का सभी प्रकार से अनुसरण करता है''। मनुष्य पहले कर्मी, फिर ज्ञानी, फिर योगी और तब भक्त या प्रेम-भक्त होता है। किन्तु साक्षात्कार की चरम अवस्था *प्रेम-भक्ति* है, जो वास्तविक अर्थों में माता यशोदा द्वारा प्रदर्शित की गई है।

श्रीराजोवाच
नन्दः किमकरोद्ब्रह्मन्श्रेय एवं महोदयम् ।
यशोदा च महाभागा पपौ यस्याः स्तनं हरिः ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

श्री-राजा उवाच—महाराज परीक्षित ने और आगे पूछा; **नन्दः**—महराज नन्द ने; **किम्**—क्या; **अकरोत्**—किया; **ब्रह्मन्**—हे विद्वान ब्राह्मण; **श्रेयः**—पुण्यकर्म यथा तपस्या; **एवम्**—जिस तरह उन्होंने प्रकट किया; **महा-उदयम्**—जिससे उन्हें सर्वोच्च सिद्धि प्राप्त हुई; **यशोदा**—माता यशोदा; **च**—भी; **महा-भागा**—अत्यन्त भाग्यशालिनी; **पपौ**—पिया; **यस्याः**—जिसका; **स्तनम्**—स्तन का दूध; **हरिः**—भगवान् ने।

माता यशोदा के परम सौभाग्य को सुनकर परीक्षित महाराज ने शुकदेव गोस्वामी से पूछा : हे विद्वान ब्राह्मण, भगवान् द्वारा माता यशोदा का स्तन-पान किया गया। उन्होंने तथा नन्द महाराज ने भूतकाल में कौन-से पुण्यकर्म किये जिनसे उन्हें ऐसी प्रेममयी सिद्धि प्राप्त हुई?

तात्पर्य : *भगवद्गीता* (७.१६) में कहा गया है—*चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन। सुकृति* अर्थात् पुण्यकर्मों के बिना कोई भी व्यक्ति भगवान् की शरण में नहीं आ सकता। भगवान् के पास चार प्रकार के पुण्यात्मा पहुँचते हैं (*आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च*) किन्तु यहाँ हम देखते हैं कि नन्द महाराज तथा यशोदा इन सबों से बढ़कर थे। इसीलिए परीक्षित महाराज ने पूछा, ''उन्होंने पूर्वजन्म

में किस तरह के पुण्यकर्म किये थे जिसके कारण उन्हें ऐसी सिद्धि-अवस्था प्राप्त हो सकी?'' यद्यपि नन्द महाराज तथा यशोदा को कृष्ण के माता-पिता के रूप में स्वीकार किया गया है फिर भी माता यशोदा कृष्ण के पिता नन्द महाराज से अधिक भाग्यशालिनी थीं क्योंकि नन्द महाराज कभी कभी कृष्ण से बिछुड़ते भी हैं जबकि कृष्ण की माता यशोदा क्षण-भर के लिए भी कृष्ण से विलग नहीं हुईं। कृष्ण के शिशुकाल से बाल्यकाल तथा बाल्यकाल से युवावस्था तक माता यशोदा कृष्ण की संगति में ही रहीं। जब कृष्ण बड़े हो गये थे तब भी वे वृन्दावन जाते थे और माता यशोदा की गोद में बैठ जाया करते थे। अत: माता यशोदा के भाग्य की कोई तुलना नहीं की जा सकती। इसीलिए परीक्षित महाराज ने सहज में पूछा—*यशोदा च महाभागा।*

पितरौ नान्वविन्देतां कृष्णोदारार्भकेहितम् ।
गायन्त्यद्यापि कवयो यल्लोकशमलापहम् ॥ ४७॥

शब्दार्थ

पितरौ—कृष्ण के असली पिता तथा माता ने; न—नहीं; अन्वविन्देताम्—आनन्द प्राप्त किया; कृष्ण—कृष्ण का; उदार—वदान्य; अर्भक-ईहितम्—उसके द्वारा सम्पन्न बाल-लीलाएँ; गायन्ति—महिमा का गान करते हैं; अद्य अपि—आज भी; कवय:—बड़े बड़े ऋषि-मुनि; यत्—जो; लोक-शमल-अपहम्—जिसके सुनने से सारे जगत का कल्मष दूर हो जाता है।

यद्यपि कृष्ण वसुदेव तथा देवकी से इतने प्रसन्न थे कि वे उनके पुत्र रूप में अवतरित हुए किन्तु वे दोनों ही कृष्ण की उदार बाल-लीलाओं का आनन्द नहीं उठा पाये। ये लीलाएँ इतनी महान् हैं कि इनका उच्चार करने मात्र से संसार का कल्मष दूर हो जाता है। किन्तु नन्द महाराज तथा यशोदा ने इन लीलाओं का पूर्ण आनन्द प्राप्त किया अतएव उनकी स्थिति वसुदेव तथा देवकी से सदैव श्रेष्ठतर है।

तात्पर्य : कृष्ण का जन्म वस्तुत: देवकी की कोख से हुआ था किन्तु जन्म होते ही उन्हें माता यशोदा के घर पहुँचा दिया गया। यहाँ तक कि देवकी कृष्ण को अपना स्तन-पान तक न करा पाईं। इसलिए परीक्षित महाराज आश्चर्यचकित थे कि यशोदा तथा नन्द महाराज किस तरह इतने भाग्यशाली बन सके कि उन्होंने कृष्ण की उन पूर्ण बाल-लीलाओं का आनन्द प्राप्त किया जिनकी महिमा का गान आज भी सन्त पुरुष करते हैं? उन्होंने पूर्वजन्म में आखिर क्या किया था जिससे उन्हें इतना उच्च पद प्राप्त हो सका।

श्रीशुक उवाच

द्रोणो वसूनां प्रवरो धरया भार्यया सह ।
करिष्यमाण आदेशान्ब्रह्मणस्तमुवाच ह ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; द्रोणः—द्रोण नामक; वसूनाम्—आठ वसुओं में; प्रवरः—सर्वश्रेष्ठ; धरया—धरा के; भार्यया—अपनी पत्नी; सह—साथ; करिष्यमाणः—सम्पन्न करने के लिए; आदेशान्—आदेश; ब्रह्मणः—ब्रह्मा का; तम्—उससे; उवाच—कहा; ह—भूतकाल में।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : भगवान् ब्रह्माजी के आदेश का पालन करने के लिए वसुओं में श्रेष्ठ द्रोण ने अपनी पत्नी धरा समेत ब्रह्मा से इस प्रकार कहा।

तात्पर्य : *ब्रह्म-संहिता* (५.३७) में कहा गया है—

आनन्दचिन्मय रस प्रतिभाविताभि-

स्ताभिर्य एव निजरूपतया कलाभिः ।

गोलोक एव निवसत्यखिलात्मभूतो

गोविन्दमादिपुरुषंतमहं भजामि ॥

जब कृष्ण कहीं भी अवतरित होते हैं, तो वे अपने पार्षदों समेत आते हैं। ये पार्षद सामान्य जीव नहीं होते। कृष्ण की लीलाएँ नित्य हैं और जब वे अवतरित होते हैं, तो अपने पार्षदों समेत आते हैं। इसलिए नन्द तथा माता यशोदा कृष्ण के नित्य पिता तथा माता हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि जब कभी कृष्ण अवतरित होते हैं, तो नन्द तथा यशोदा के साथ-साथ वसुदेव तथा देवकी भी भगवान् के माता-पिता के रूप में अवतरित होते हैं। ये व्यक्ति भगवान् कृष्ण के निजी शरीर के अंश होते हैं। ये सामान्य जीव नहीं होते। महाराज परीक्षित इसे जानते थे किन्तु वे शुकदेव गोस्वामी से जानने के लिए इच्छुक थे कि क्या सामान्य व्यक्ति *साधनसिद्धि* के द्वारा इस अवस्था को प्राप्त हो सकते हैं? सिद्धि दो प्रकार की होती है—*नित्यसिद्धि* तथा *साधनसिद्धि*। *नित्यसिद्ध* वह है, जो कृष्ण का नित्य पार्षद है—कृष्ण के शरीर का अंश है, जबकि *साधनसिद्ध* सामान्य मनुष्य होता है, जो पुण्यकर्म करके तथा भक्ति के नियमों का पालन करके इसी अवस्था को प्राप्त करता है। इस तरह महाराज परीक्षित के पूछने का उद्देश्य यह था कि क्या सामान्य व्यक्ति माता यशोदा तथा नन्द महाराज के पद को प्राप्त कर सकते हैं? शुकदेव गोस्वामी ने इस प्रश्न का उत्तर इस प्रकार दिया।

जातयोर्नौ महादेवे भुवि विश्वेश्वरे हरौ ।
भक्तिः स्यात्परमा लोके ययाञ्जो दुर्गतिं तरेत् ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ

जातयोः—जन्म लेकर; नौ—पति-पत्नी दोनों, द्रोण तथा धरा; महादेवे—परम पुरुष, भगवान् में; भुवि—पृथ्वी पर; विश्व-ईश्वरे—सभी लोकों के स्वामी में; हरौ—हरि में; भक्तिः—भक्ति; स्यात्—फैलेगी; परमा—जीवन का चरम लक्ष्य; लोके—संसार में; यया—जिससे; अञ्जः—आसानी से; दुर्गतिम्—दुखमय जीवन से; तरेत्—बच सकता है और उद्धार हो सकता है।

द्रोण तथा धरा ने कहा : कृपा करके हमें अनुमति दें कि हम पृथ्वी पर जन्म लें जिससे परब्रह्म परम नियन्ता तथा समस्त लोकों के स्वामी भगवान् भी प्रकट हों और भक्ति का प्रसार करें जो जीवन का चरम लक्ष्य है और जिसे ग्रहण करके इस भौतिक जगत में उत्पन्न होने वाले लोग सरलता से भौतिकतावादी जीवन की दुखमय स्थिति से उबर सकें।

तात्पर्य : द्रोण के इस कथन से स्पष्टतया इंगित होता है कि द्रोण तथा धरा कृष्ण के नित्य पिता तथा माता हैं। जब भी कृष्ण के आविर्भाव की आवश्यकता होती है, तो पहले द्रोण तथा धरा प्रकट होते हैं और तब कृष्ण प्रकट होते हैं। *भगवद्गीता* (४.६) में कृष्ण कहते हैं कि उनका जन्म सामान्य नहीं होता (*जन्म कर्म च मे दिव्यम्*)

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।

प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥

"यद्यपि मैं अजन्मा हूँ और मेरा दिव्य शरीर कभी विनष्ट नहीं होता और समस्त जीवों का स्वामी मैं ही हूँ किन्तु फिर भी मैं प्रत्येक युग में अपने आदि दिव्य-शरीर में प्रकट होता हूँ।" कृष्ण के प्रकट होने के पूर्व द्रोण तथा धरा उत्पन्न होते हैं जिससे वे उनके पिता-माता बन सकें। ये ही नन्द महाराज और उनकी पत्नी यशोदा के रूप में प्रकट हुए। दूसरे शब्दों में, *साधनसिद्ध* जीव कभी भी कृष्ण के पिता या माता नहीं बन सकते क्योंकि कृष्ण के माता-पिता पहले से निर्दिष्ट हैं। किन्तु नन्द महाराज तथा माता यशोदा और उनके संगियों के द्वारा प्रदर्शित नियमों का अनुसरण करके वृन्दावनवासी, जो कि सामान्य जीव हैं, उन्हीं जैसा स्नेह प्राप्त कर सकते हैं।

जब द्रोण तथा धरा से सन्तान उत्पन्न करने के लिए कहा गया तो उन्होंने इस संसार में आने और भगवान् कृष्ण को पुत्र रूप पाने के लिए चुना। कृष्ण के प्राकट्य का अर्थ है—*परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।* अर्थात् भक्तों की रक्षा तथा दुष्टों का विनाश जब भी कृष्ण आते हैं, तो वे जीवन के परम लक्ष्य, भक्ति का वितरण करते हैं। वे इस कार्य के लिए चैतन्य महाप्रभु के रूप में प्रकट होते

हैं क्योंकि भक्ति को प्राप्त किये बिना कोई भी व्यक्ति भौतिक जगत (*दु:खालयम् अशाश्वतम्*) के कष्टों से छुटकारा नहीं पा सकता जहाँ जीव अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करते हैं। भगवान् *भगवद्गीता* (१५.७) में कहते हैं—

ममैवांशो जीवलोके जीवभूत सनातन:।

मन: षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति॥

''इस बद्ध जगत के सारे जीव मेरे नित्य अंश हैं। बद्ध जीवन के कारण वे मन समेत छहों इन्द्रियों के साथ कठिन संघर्ष करते रहते हैं।'' सारे जीव सुखी बनने के लिए संघर्ष करते रहते हैं किन्तु भक्ति ग्रहण किये बिना यह सुख सम्भव नहीं। कृष्ण ने *भगवद्गीता* (९.३) में स्पष्ट कहा है :

अश्रद्दधाना: पुरुषा धर्मस्यास्य परन्तप।

अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि॥

''हे शत्रुओं के विजेता! जो भक्ति के मार्ग में श्रद्धावान नहीं हैं, वे मुझे प्राप्त नहीं कर सकते बल्कि इस भौतिक जगत में जन्म और मृत्यु के लिए लौट आते हैं।''

मूर्ख लोगों को पता नहीं रहता कि यदि कृष्ण के उपदेशों का पालन नहीं किया गया तो यहाँ पर जीवन कितना खतरनाक है। इसलिए कृष्णभावनामृत आन्दोलन का शुभारम्भ किया गया है, जिससे लोग कृष्णभावनामृत का अभ्यास करके इस भौतिक जगत के खतरनाक जीवन से बच सकें। कृष्णभावनामृत को मानने या न मानने का प्रश्न ही नहीं उठता। यह ऐच्छिक नहीं है अपितु अनिवार्य है। यदि हम कृष्णभावनामृत स्वीकार नहीं करते तो हमारा जीवन अत्यन्त संकटमय है। *भगवद्गीता* में हर बात ठीक से बतलाई गई है। अत: संसार की दुखमय अवस्था से छूटने के लिए *भगवद्गीता यथारूप* का प्राथमिक अध्ययन करना होगा। *भगवद्गीता* समझ लेने के बाद *श्रीमद्भागवत* और तब *श्रीचैतन्य-चरितामृत* का अध्ययन करना चाहिए। इसीलिए हम इन अमूल्य ग्रंथों को सारे जगत के समक्ष प्रस्तुत कर रहे हैं जिससे लोग इन्हें पढ़कर दुखमय बद्ध जीवन से छुटकारा पाकर सुखी बनें।

अस्त्वित्युक्त: स भगवान्व्रजे द्रोणो महायशा: ।
जज्ञे नन्द इति ख्यातो यशोदा सा धराभवत् ॥५०॥

शब्दार्थ

अस्तु—ब्रह्मा ने स्वीकार किया, ''हाँ, ठीक है''; इति उक्तः—उनसे ऐसा आदेश पाकर; सः—उसने (द्रोण ने); भगवान्—कृष्ण के पिता (भगवान् का पिता भगवान् होता है); व्रजे—व्रजभूमि वृन्दावन में; द्रोणः—द्रोण, अत्यन्त शक्तिशाली वसु ने; महा-यशाः—परम प्रसिद्ध अध्यात्मवादी; जज्ञे—प्रकट हुआ; नन्दः—नन्द महाराज के रूप में; इति—इस प्रकार; ख्यातः—विख्यात है; यशोदा—माता यशोदा के रूप में; सा—वह; धरा—धरा; अभवत्—प्रकट हुई।

जब ब्रह्मा ने कहा, ''हाँ, ऐसा ही हो'' तो परम भाग्यशाली द्रोण जो भगवान् के समान था, व्रजपुर वृन्दावन में विख्यात नन्द महाराज के रूप में और उनकी पत्नी धरा माता यशोदा के रूप में प्रकट हुए।

तात्पर्य : क्योंकि जब भी इस धरा में कृष्ण प्रकट होते हैं उन्हें पिता-माता—द्रोण तथा धरा उनके शाश्वत पिता-माता—तो चाहिए ही जो नन्द तथा यशोदा के रूप में हों। इन्हें सुतपा तथा पृश्निगर्भ की तरह कृष्ण के माता-पिता बनने के लिए कठिन तपस्या नहीं करनी पड़ी। नित्यसिद्ध तथा साधनसिद्ध में यही अन्तर होता है।

ततो भक्तिर्भगवति पुत्रीभूते जनार्दने ।
दम्पत्योर्नितरामासीद्गोपगोपीषु भारत ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; भक्तिः भगवति—भगवान् की भक्ति, भक्ति सम्प्रदाय; पुत्री-भूते—भगवान् के रूप में जो माता यशोदा के पुत्र रूप में उत्पन्न हुए; जनार्दने—भगवान् कृष्ण में; दम्-पत्योः—पति-पत्नी दोनों का; नितराम्—निरन्तर; आसीत्—था; गोप-गोपीषु—गोप तथा गोपियाँ, जो वृन्दावन के वासी तथा नन्द महाराज तथा यशोदा के सान्निध्य में थे; भारत—हे महाराज परीक्षित।

हे भारत श्रेष्ठ महाराज परीक्षित, तत्पश्चात् जब भगवान् कृष्ण नन्द महाराज तथा यशोदा के पुत्र बने तो उन दोनों ने निरन्तर, अचल दिव्य वात्सल्य-प्रेम बनाये रखा तथा उनके सान्निध्य में वृन्दावन के अन्य सभी निवासी, गोप तथा गोपियों ने कृष्ण-भक्ति-संस्कृति का विकास किया।

तात्पर्य : यद्यपि पड़ोसी गोपों तथा गोपियों के यहाँ से कृष्ण द्वारा मक्खन, दही, दूध का चुराना ऊपर ऊपर से दुखदायी प्रतीत होता था किन्तु वस्तुतः यह भक्तिभाव में स्नेह का आदान-प्रदान था। गोप तथा गोपियाँ भगवान् के साथ जितना ही अधिक स्नेह-विनिमय करतीं उनकी भक्ति उतनी ही बढ़ती जाती। कभी कभी हम बाहरी तौर से देखते हैं कि भक्ति में लगा हुआ होने के कारण भक्त कष्ट में रहता है किन्तु तथ्य इससे भिन्न होता है। जब भक्त कृष्ण के लिए कष्ट उठाता है, तो यह कष्ट दिव्य आनन्द होता है। इसे भक्त बने बिना नहीं समझा जा सकता। जब कृष्ण अपनी बाल-लीला प्रकट करते तो न केवल नन्द महाराज तथा माता यशोदा की भक्ति बढ़ती अपितु उनके साथ रहने वालों में भी

भक्ति बढ़ती। दूसरे शब्दों में, जो लोग वृन्दावन के कार्यकलापों का अनुसरण करते हैं, वे सर्वोच्च सिद्धि में भक्ति भी विकसित करेंगे।

कृष्णो ब्रह्मण आदेशं सत्यं कर्तुं व्रजे विभुः ।
सहरामो वसंश्चक्रे तेषां प्रीतिं स्वलीलया ॥ ५२ ॥

शब्दार्थ

कृष्णः—भगवान् कृष्ण ने; ब्रह्मणः—ब्रह्माजी का; आदेशम्—आदेश; सत्यम्—सच; कर्तुम्—बनाने के लिए; व्रजे—व्रजभूमि वृन्दावन में; विभुः—परम शक्तिशाली; सह-रामः—बलराम के साथ; वसन्—निवास करते हुए; चक्रे—बढ़ाया; तेषाम्—वृन्दावनवासियों का; प्रीतिम्—आनन्द; स्व-लीलया—अपनी दिव्य लीलाओं से।

इस तरह ब्रह्मा के वर को सत्य करने के लिए भगवान् कृष्ण बलराम समेत व्रजभूमि वृन्दावन में रहे। उन्होंने विभिन्न बाल-लीलाएँ प्रदर्शित करते हुए नन्द तथा वृन्दावन के अन्य वासियों के दिव्य आनन्द को वर्धित किया।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत ''कृष्ण द्वारा अपने मुख के भीतर विराट रूप का प्रदर्शन'' नामक आठवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter नौ

माता यशोदा द्वारा कृष्ण का बाँधा जाना

माता यशोदा कृष्ण को स्तन-पान करा रहीं थीं किन्तु उन्होंने देखा कि आग के ऊपर दूध उबल रहा है। चूँकि दासियाँ अन्य कार्य में व्यस्त थीं, अत: दूध पिलाना बन्द करके माता यशोदा तुरन्त बाहर गिरते हुए दूध के पास गईं। इस पर कृष्ण क्रुद्ध हो गये और उन्होंने दही की मटकी तोड़ने का उपाय निकाला। जब कृष्ण ने यह उत्पात मचाया तो यशोदा ने उन्हें बाँधना चाहा। इस अध्याय में इन्हीं घटनाओं का वर्णन किया गया है।

एक दिन, जब दासियाँ कुछ अन्य काम कर रही थीं तब माता यशोदा दही मथ कर मक्खन निकाल रही थीं। तभी कृष्ण वहाँ आये और अपनी माता को स्तन-पान कराने के लिए आग्रह किया। माता ने तुरन्त दूध पिलाना शुरू तो कर दिया किन्तु जब उन्होंने देखा कि आग के ऊपर रखा दूध उफनकर बाहर गिर रहा है, तो तुरन्त कृष्ण को दूध पिलाना बन्द करके दूध को गिरने से बचाने के लिए चली गईं। दूध पीना बन्द हो जाने से कृष्ण बहुत क्रुद्ध हुए। उन्होंने एक कंकड़ उठाया, मटकी

तोड़ डाली और कमरे में घुस कर ताजा मक्खन खाने लगे। जब माता यशोदा उफनते दूध को सँभालने के पश्चात् लौटीं और उन्होंने देखा कि मटकी टूट गई है, तो उन्हें समझते देर न लगी कि यह तो कृष्ण की करतूत है। अत: वे उन्हें खोजने लगीं। जब वे कमरे में घुसीं तो देखा कि कृष्ण *उलूखल* (ओखली) के ऊपर खड़े हैं। वे ओखली को उलटा खड़ा करके छींके से टँगा मक्खन निकाल निकाल कर बन्दरों को बाँटते जा रहे थे। ज्योंही कृष्ण ने माता को आते देखा वे तुरन्त भागने लगे और माता यशोदा उनका पीछा करने लगीं। थोड़ी दूर जाकर यशोदा कृष्ण को पकड़ पाईं तो वे अपने अपराध के कारण रोने लगे। माता यशोदा ने डराया-धमकाया कि यदि ऐसा फिर से किया, तो वे उसे दण्ड देंगीं। फिर उन्होंने कृष्ण को रस्सी से बाँधने का निश्चय किया। दुर्भाग्यवश जब रस्सी में गाँठ लगाने का समय आया तो बाँधने वाली रस्सी दो अंगुल छोटी पड़ गई। इस पर उन्होंने दूसरी रस्सी उसमें जोड़ दी किन्तु वह भी दो अंगुल छोटी पड़ गई। उन्होंने बारम्बार गाँठ लगाने का प्रयास किया किन्तु रस्सी हर बार छोटी पड़ती रही। जब वे थक गईं और कृष्ण ने अपनी स्नेहमयी माता को काफी थका देखा तो उन्होंने अपने को रस्सी से बँधवा लिया। दयावश उन्होंने अपनी असीम शक्ति उन्हें नहीं दिखलाई। जब यशोदा ने कृष्ण को बाँध दिया और पुन: किसी घरेलू काम में लग गईं, तब कृष्ण ने दो यमल-अर्जुन वृक्ष देखे जो वास्तव में कुवेर के पुत्र नलकूवर तथा मणिग्रीव थे किन्तु नारद मुनि के शाप से वृक्ष बन गये थे। अब कृष्ण दयावश इन दोनों वृक्षों की ओर बढ़े जिससे नारदमुनि की इच्छा पूरी हो सके।

श्रीशुक उवाच
एकदा गृहदासीषु यशोदा नन्दगेहिनी ।
कर्मान्तरनियुक्तासु निर्ममन्थ स्वयं दधि ॥ १ ॥
यानि यानीह गीतानि तद्बालचरितानि च ।
दधिनिर्मन्थने काले स्मरन्ती तान्यगायत ॥ २ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुक: उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; एकदा—एक दिन; गृह-दासीषु—जब घर की नौकरानियाँ काम में लगी हुई थीं; यशोदा—माता यशोदा; नन्द-गेहिनी—नन्द महाराज की रानी; कर्म-अन्तर—अन्य कामकाजों में; नियुक्तासु—लगी हुई; निर्ममन्थ—मथने लगी; स्वयम्—स्वयं, खुद; दधि—दही; यानि—जो; यानि—जो; इह—इस सम्बन्ध में; गीतानि—गीत; तत्-बाल-चरितानि—जिसमें अपने बालक के कार्यकलापों का वर्णन था; च—तथा; दधि-निर्मन्थने—दही मथने के; काले—समय; स्मरन्ती—स्मरण करती; तानि—उन्हें; अगायत—गाने लगीं।

श्रीशुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : एक दिन जब माता यशोदा ने देखा कि सारी नौकरानियाँ अन्य घरेलू कामकाजों में व्यस्त हैं, तो वे स्वयं दही मथने लगीं। दही मथते समय

उन्होंने कृष्ण की बाल-क्रीड़ाओं का स्मरण किया और स्वयं उन क्रीड़ाओं के विषय में गीत बनाते हुए उन्हें गुनगुनाकर आनन्द लेने लगीं।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर श्रील सनातन गोस्वामी कृत *वैष्णव तोषणी* से उद्धरण देते हुए कहते हैं कि कृष्ण द्वारा दही की मटकी तोड़ना और माता यशोदा द्वारा उनका बाँधा जाना दीपावली या दीपमालिका के दिन घटित हुआ। आज भी भारत में विशेषतया मुम्बई में यह त्यौहार बड़ी ही धूमधाम से कार्तिक के महीने में फुलझड़ियों तथा दीपों को जलाकर मनाया जाता है। यह माना जाता है कि नन्द महाराज की सारी गायों में से माता यशोदा की कुछ गौवें ऐसी सुगन्धित घासें खाती थीं जिससे उनका दूध भी सुगन्धित हो जाता था। माता यशोदा इन्हीं गायों का दूध एकत्र करके दही बनाकर स्वयं मक्खन निकालना चाहती थीं क्योंकि उन्होंने सोचा कि यह बालक कृष्ण पड़ोसी गोपों तथा गोपियों के घरों में जाकर मक्खन चुराता है क्योंकि उसे दूध तथा सामान्य रीति से तैयार किया गया दही अच्छा नहीं लगता था।

दही मथते समय माता यशोदा कृष्ण की बाल-लीलाओं के विषय में गीत गाते जा रही थीं। पुराने जमाने में यह प्रथा थी कि यदि कोई किसी बात को लगातार स्मरण रखना चाहता है, तो वह या तो उसे स्वयं कविता में ढाल दे या पेशेवर कवि से ऐसा करवा ले। ऐसा लगता है कि माता यशोदा कृष्ण की लीलाओं को किसी भी समय भूलना नहीं चाहती थीं। इसलिए उन्होंने कृष्ण के बाल्यकाल की सारी क्रीड़ाओं को—यथा पूतना, अघासुर, शकटासुर तथा तृणावर्त वध को—कविता में ढाल लिया था और दही मथते समय वे कवित्व-मय गीतों को गाती रहती थीं। जो लोग चौबीसों घंटे कृष्णभावनाभावित रहना चाहते हैं उन्हें ऐसा ही करना चाहिए। यह घटना बतलाती है कि यशोदा कितनी अधिक कृष्णभावनाभावित थीं। कृष्णभावनामृत में रहने के लिए ऐसे ही व्यक्तियों का अनुसरण किया जाना चाहिए।

क्षौमं वासः पृथुकटितटे बिभ्रती सूत्रनद्धं
पुत्रस्नेहस्नुतकुचयुगं जातकम्पं च सुभ्रूः ।
रज्वाकर्षश्रमभुजचलत्कङ्कणौ कुण्डले च
स्विन्नं वक्त्रं कबरविगलन्मालती निर्ममन्थ ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

क्षौमम्—केसरिया तथा पीला मिश्रित; वासः—माता यशोदा की साड़ी; पृथु-कटि-तटे—चौड़ी कमर के चारों ओर; बिभ्रती—हिलती हुई; सूत्र-नद्धम्—पेटी से बँधी; पुत्र-स्नेह-स्नुत—प्रगाढ़ पुत्र-प्रेम के कारण दूध से तर; कुच-युगम्—उसके दोनों स्तन; जात-कम्पम् च—क्योंकि वे सुन्दर ढंग से हिल-डुल रहे थे; सु-भ्रूः—सुन्दर भौंहों वाली; रज्जु-आकर्ष—मथानी की रस्सी को खींचने से; श्रम—परिश्रम के कारण; भुज—हाथों पर; चलत्-कङ्कणौ—हिलते हुए दोनों कड़े; कुण्डले—कान के दोनों कुण्डल; च—भी; स्विन्नम्—बादल जैसे काले बालों से वर्षा की तरह चूता हुआ पसीना; वक्त्रम्—पूरे मुखमण्डल में; कबर-विगलत्-मालती—उसके बालों से मालती के फूल गिर रहे थे; निर्ममन्थ—माता यशोदा दही मथ रही थीं।

केसरिया-पीली साड़ी पहने, अपनी स्थूल कमर में करधनी बाँधे, माता यशोदा मथानी की रस्सी खींचने में काफी परिश्रम कर रही थीं, उनकी चूड़ियाँ तथा कान के कुण्डल हिल-डुल रहे थे और उनका पूरा शरीर हिल रहा था। अपने पुत्र के प्रति प्रगाढ़ प्रेम के कारण उनके स्तन दूध से गीले थे। उनकी भौंहें अत्यन्त सुन्दर थीं और उनका मुखमण्डल पसीने से तर था। उनके बालों से मालती के फूल गिर रहे थे।

तात्पर्य : जो कोई मातृ या पितृ-स्नेह में कृष्णभावनाभावित होने का इच्छुक हो उसे माता यशोदा के शारीरिक स्वरूप का चिन्तन करना चाहिए। हाँ, उसे यशोदा जैसा बनने की कामना नहीं करनी चाहिए क्योंकि ऐसा करना मायावाद है। हमें वात्सल्य-प्रेम या माधुर्य-प्रेम, सख्य या दास्य—किसी रूप में वृन्दावनवासियों के पदचिह्नों का अनुसरण करना चाहिए, उनके समान बनने का प्रयास नहीं करना चाहिये। इसीलिए यह विवरण यहाँ दिया गया है। उन्नत हो चुके भक्तों को इस वर्णन का स्मरण करना चाहिए और सदैव माता यशोदा के स्वरूप का, कि वे क्या पहने थीं, कैसे काम कर रही थीं तो पसीना निकल रहा था, किस तरह फूलों से उनके बाल सजे थे आदि आदि का चिन्तन करना चाहिए। कृष्ण के लिए मातृ-स्नेह में माता यशोदा का चिन्तन करते हुए इस विवरण का लाभ उठाना चाहिए।

तां स्तन्यकाम आसाद्य मथ्नन्तीं जननीं हरिः ।
गृहीत्वा दधिमन्थानं न्यषेधत्प्रीतिमावहन् ॥ ४॥

शब्दार्थ

ताम्—माता यशोदा को; स्तन्य-कामः—स्तन-पान के अभिलाषी कृष्ण; आसाद्य—उनके समक्ष प्रकट होकर; मथ्नन्तीम्—मथती हुई; जननीम्—माता को; हरिः—कृष्ण ने; गृहीत्वा—पकड़ कर; दधि-मन्थानम्—मथानी; न्यषेधत्—मना किया, रोक दिया; प्रीतिम् आवहन्—प्रेम की परिस्थिति उत्पन्न करते हुए।

जब यशोदा दही मथ रही थीं तो उनका स्तन-पान करने की इच्छा से कृष्ण उनके सामने प्रकट हुए और उनके दिव्य आनन्द को बढ़ाने के लिए उन्होंने मथानी पकड़ ली और दही मथने से उन्हें रोकने लगे।

तात्पर्य : कृष्ण कमरे के भीतर सो रहे थे और ज्योंही वे जगे तो उन्हें भूख लगी अत: वे अपनी

माता के पास गये। उन्होंने माता को दही मथने से रोकने तथा उनका स्तन-पान करने के लिए उन्हें मथानी चलाने से रोका।

तमङ्कमारूढमपाययत्स्तनं
स्नेहस्नुतं सस्मितमीक्षती मुखम् ।
अतृप्तमुत्सृज्य जवेन सा यया-
वुत्सिच्यमाने पयसि त्वधिश्रिते ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

तम्—कृष्ण को; अङ्कम् आरूढम्—बड़े ही स्नेह से उन्हें अपनी गोद में बैठाकर; अपाययत्—पिलाया; स्तनम्—अपना स्तन; स्नेह-स्नुतम्—अगाध स्नेह के कारण दूध बहता हुआ; स-स्मितम् ईक्षती मुखम्—यशोदा ने हँसते हुए एवं कृष्ण के हँसते मुख को देखते हुए; अतृप्तम्—माता का दूध पीकर भी अतृप्त थे; उत्सृज्य—एक तरफ बैठाकर; जवेन—जल्दी में; सा—माता यशोदा ने; ययौ—वह स्थान छोड़ दिया; उत्सिच्यमाने पयसि—दूध बहते देखकर; तु—लेकिन; अधिश्रिते—आग पर चढ़ी दुधहंडी में।.

तब माता यशोदा ने कृष्ण को सीने से लगाया, उन्हें अपनी गोद में बैठाया और बड़े स्नेह से भगवान् का मुँह देखने लगीं। अगाध स्नेह के कारण उनके स्तन से दूध बह रहा था। किन्तु जब उन्होंने देखा कि आग के ऊपर रखी कड़ाही से दूध उबल कर बाहर गिर रहा है, तो वे बच्चे को दूध पिलाना छोड़ कर उफनते दूध को बचाने के लिए तुरन्त चली गईं यद्यपि बच्चा अपनी माता के स्तनपान से अभी तृप्त नहीं हुआ था।

तात्पर्य : माता यशोदा घर का हर कामकाज कृष्ण के निमित्त था। यद्यपि कृष्ण अपनी माता का स्तन-पान कर रहे थे किन्तु जब माता ने देखा कि रसोईघर में दूध उफन रहा है, तो तुरन्त उसे सँभालने के लिए उन्हें वहाँ जाना पड़ा। इस तरह वे अपने पुत्र को छोड़ गईं जो जी भर कर स्तन-पान न कर सकने से क्रुद्ध हो गया। कभी कभी एक ही साथ एक से अधिक महत्त्वपूर्ण कार्यों को देखना पड़ता है। इसीलिए माता यशोदा अपने पुत्र को छोड़ कर यदि दूध बचाने चली गईं तो कुछ अनुचित नहीं किया। प्रेम के स्तर पर भक्त का कर्तव्य है कि पहले वह एक काम करे और तब दूसरा। जिस उचित विवेक से ऐसा किया जाना चाहिए उसे कृष्ण ने *भगवद्गीता* (.) में इस प्रकार बतलाया है—

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।

ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥

कृष्णभावनामृत में हर वस्तु गतिशील है। भक्त का मार्गदर्शन करने वाले कृष्ण हैं कि परम सत्य के

स्तर पर क्या पहले किया जाय और क्या बाद में।

सञ्जातकोपः स्फुरितारुणाधरं
सन्दश्य दद्भिर्दधिमन्थभाजनम् ।
भित्त्वा मृषाश्रुर्दृषदश्मना रहो
जघास हैयङ्गवमन्तरं गतः ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

सञ्जात-कोपः—इस तरह कृष्ण अत्यन्त क्रुद्ध होकर; स्फुरित-अरुण-अधरम्—सूजे हुए लाल-लाल होंठ; सन्दश्य—काटते हुए; दद्भिः—अपने दाँतों से; दधि-मन्थ-भाजनम्—मटकी को; भित्त्वा—तोड़ते हुए; मृषा-अश्रुः—आँखों में नकली आँसू भर कर; दृषत्-अश्मना—कंकड़ से; रहः—एकान्त स्थान में; जघास—खाने लगे; हैयङ्गवम्—ताजा मक्खन; अन्तरम्—कमरे के भीतर; गतः—जाकर।

अत्यधिक क्रुद्ध होकर तथा अपने लाल-लाल होंठों को अपने दाँतों से काटते हुए और आँखों में नकली आँसू भरते हुए कृष्ण ने एक कंकड़ मार कर मटकी तोड़ दी। इसके बाद वे एक कमरे में घुस गये और एकान्त स्थान में ताजा मक्खन खाने लगे।

तात्पर्य : यह स्वाभाविक है कि जब कोई बच्चा क्रुद्ध होता है, तो वह आँखों में नकली आँसू भर कर चिल्लाने लगता है। कृष्ण ने भी वही किया और अपने लाल-लाल होंठों को अपने दाँतों से काटते हुए उन्होंने कंकड़ से मटकी तोड़ डाली और कमरे में घुस कर ताजा मक्खन खाने लगे।

उत्तार्य गोपी सुशृतं पयः पुनः
प्रविश्य संदृश्य च दध्यमत्रकम् ।
भग्नं विलोक्य स्वसुतस्य कर्म त-
ज्जहास तं चापि न तत्र पश्यती ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

उत्तार्य—अँगीठी से उतार कर; गोपी—माता यशोदा; सु-शृतम्—अत्यन्त गर्म; पयः—दूध; पुनः—फिर से; प्रविश्य—मथने के स्थान में घुस कर; संदृश्य—देख कर; च—भी; दधि-अमत्रकम्—दहेंड़ी; भग्नम्—टूटी हुई; विलोक्य—देख कर; स्व-सुतस्य—अपने बालक की; कर्म—करतूत; तत्—वह; जहास—हँसने लगीं; तम् च—कृष्ण को भी; अपि—साथ ही; न—नहीं; तत्र—वहाँ; पश्यती—ढूँढ़ती हुई।

गर्म दूध को अँगीठी से उतार कर माता यशोदा मथने के स्थान पर लौटीं और जब देखा कि मटकी टूटी पड़ी है और कृष्ण वहाँ नहीं हैं, तो वे जान गईं कि यह कृष्ण की ही करतूत है।

तात्पर्य : बिलोवनी को टूटी हुई तथा कृष्ण को अनुपस्थित देखकर यशोदा बिल्कुल समझ गईं कि मटकी फोड़ना कृष्ण की ही करतूत है। इसमें कोई सन्देह नहीं है।

उलूखलाङ्घ्रेरुपरि व्यवस्थितं
मर्काय कामं ददतं शिचि स्थितम् ।
हैयङ्गवं चौर्यविशङ्कितेक्षणं
निरीक्ष्य पश्चात्सुतमागमच्छनैः ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

उलूखल-अङ्घ्रेः—उलटी रखी ओखली के; उपरि—ऊपर; व्यवस्थितम्—बैठे हुए कृष्ण; मर्काय—बन्दरों को; कामम्—जी-भरकर; ददतम्—बाँटते हुए; शिचि स्थितम्—छींके में रखी; हैयङ्गवम्—मक्खन तथा दूध से बनी अन्य वस्तुएँ; चौर्य-विशङ्कित—चुराने के कारण सशंकित; ईक्षणम्—जिसकी आँखें; निरीक्ष्य—इन कार्यों को देखकर; पश्चात्—पीछे से; सुतम्—अपने पुत्र को; आगमत्—आ गई; शनैः—धीरे-धीरे, सावधानी से।

कृष्ण उस समय मसाला पीसने वाली लकड़ी की ओखली को उलटा करके उस पर बैठे हुए थे और मक्खन तथा दही जैसी दूध की बनी वस्तुएँ अपनी इच्छानुसार बन्दरों को बाँट रहे थे। चोरी करने के कारण वे चिन्तित होकर चारों ओर देख रहे थे कि कहीं उनकी माता आकर उन्हें डाँटें नहीं। माता यशोदा ने उन्हें देखा तो वे पीछे से चुपके से उनके पास पहुँचीं।

तात्पर्य : माता यशोदा ने कृष्ण के मक्खन सने पदचिह्नों के सहारे उनका पता लगाया। उन्होंने देखा कि कृष्ण मक्खन चुरा रहा है, अत: वे हँसने लगीं। तभी कौवे भी कमरे के भीतर घुसे किन्तु डर के मारे बाहर निकल गये। इस तरह माता यशोदा ने कृष्ण को मक्खन चुराते तथा सहमे-सहमे इधर-उधर ताकते देखा।

तामात्तयष्टिं प्रसमीक्ष्य सत्वर-
स्ततोऽवरुह्यापससार भीतवत् ।
गोप्यन्वधावन्न यमाप योगिनां
क्षमं प्रवेष्टुं तपसेरितं मनः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

ताम्—माता यशोदा को; आत्त-यष्टिम्—हाथ में छड़ी लिए; प्रसमीक्ष्य—इस मुद्रा में उन्हें देखकर कृष्ण; सत्वरः—तेजी से; ततः—वहाँ से; अवरुह्य—उतर कर; अपससार—भगने लगा; भीत-वत्—मानो डरा हुआ हो; गोपी—माता यशोदा; अन्वधावत्—उनका पीछा करने लगीं; न—नहीं; यम्—जिसको; आप—पहुँच पाने में असफल; योगिनाम्—बड़े बड़े योगियों का; क्षमम्—उन तक पहुँचने में समर्थ; प्रवेष्टुम्—ब्रह्म तेज या परमात्मा में प्रवेश करने के लिए प्रयत्नशील; तपसा—तपस्या से; ईरितम्—उस कार्य के लिए प्रयत्नशील; मनः—ध्यान से।

जब भगवान् श्रीकृष्ण ने अपनी माता को छड़ी लिए हुए देखा तो वे तेजी से ओखली के ऊपर से नीचे उतर आये और इस तरह भागने लगे मानो अत्यधिक भयभीत हों। जिन्हें योगीजन बड़ी बड़ी तपस्याएँ करके ब्रह्म-तेज में प्रवेश करने की इच्छा से परमात्मा के रूप में ध्यान के द्वारा पकड़ने का प्रयत्न करने पर भी उन तक नहीं पहुँच पाते उन्हीं भगवान् कृष्ण को अपना पुत्र

समझ कर पकड़ने के लिए यशोदा उनका पीछा करने लगीं।

तात्पर्य : योगीजन कृष्ण को परमात्मा रूप में पा लेना चाहते हैं और बड़ी बड़ी तपस्याओं द्वारा उन तक पहुँचना चाहते हैं किन्तु वे ऐसा कर नहीं पाते। किन्तु यहाँ हम देख रहे हैं कि कृष्ण यशोदा द्वारा पकड़े जाने वाले हैं और वे भय के मारे दूर भाग रहे हैं। इससे भक्त तथा योगी का अन्तर पता चलता है। योगी कृष्ण तक नहीं पहुँच सकता किन्तु माता यशोदा जैसे भक्तों द्वारा कृष्ण पहले से ही पकड़े हुए हैं। कृष्ण तो यशोदा जी की छड़ी तक से भयभीत थे। इसका उल्लेख महारानी कुन्ती ने अपनी स्तुति में किया है (*भागवत* १.८.३१)—*भयभावनया स्थितस्य।* कृष्ण अपनी माता यशोदा से भयभीत हैं और योगीजन कृष्ण से। योगीजन ज्ञानयोग तथा अन्य योगों द्वारा कृष्ण तक पहुँचने का प्रयास करते हैं किन्तु उन तक पहुँच नहीं पाते। माता यशोदा के स्त्री होते हुए भी कृष्ण उनसे भयभीत हैं, जैसाकि इस श्लोक में स्पष्ट कहा गया है।

अन्वञ्चमाना जननी बृहच्चल-
च्छ्रोणीभराक्रान्तगतिः सुमध्यमा ।
जवेन विस्रंसितकेशबन्धन
च्युतप्रसूनानुगतिः परामृशत् ॥ ॥

शब्दार्थ

अन्वञ्चमाना—तेजी से कृष्ण का पीछा करती हुई; जननी—माता यशोदा; बृहत्-चलत्-श्रोणी-भर-आक्रान्त-गतिः—अपने बड़े बड़े स्तनों के भार से बोझिल होने से वे थक गईं जिससे उनकी चाल मन्द पड़ गई; सु-मध्यमा—अपनी पतली कमर के कारण; जवेन—तेजी से जाने के कारण; विस्रंसित-केश-बन्धन—ढीले हुए केश-सज्जा से; च्युत-प्रसून-अनुगतिः—उनके पीछे पीछे फूल गिर रहे थे; परामृशत्—अन्त में कृष्ण को पकड़ ही लिया।

कृष्ण का पीछा करते हुए भारी स्तनों के भार से बोझिल पतली कमर वाली माता यशोदा को अपनी चाल मन्द करनी ही पड़ी। तेजी से कृष्ण का पीछा करने के कारण उनके बाल शिथिल पड़ गये थे और उनमें लगे फूल उनके पीछे पीछे गिर रहे थे। फिर भी वे अपने पुत्र कृष्ण को पकड़ने में सफल हुईं।

तात्पर्य : यद्यपि योगीजन कठिन तपस्या द्वारा कृष्ण को पकड़ नहीं पाते किन्तु इतने अवरोधों के बावजूद माता यशोदा अन्ततः कृष्ण को पकड़ पाने में समर्थ हो गईं। योगी तथा भक्त में यही अन्तर है। योगीजन कृष्ण के तेज तक में प्रवेश नहीं कर पाते। *यस्य प्रभा प्रभवतो जगदण्डकोटिकोटिषु* (*ब्रह्म-संहिता* ५.४०)। उस तेज में लाखों ब्रह्माण्ड रहते हैं किन्तु योगी तथा ज्ञानीजन अनेकानेक वर्षों तक

कठिन तपस्या करने पर भी उस तेज में प्रविष्ट नहीं हो पाते जबकि भक्तजन मात्र प्रेम तथा स्नेह द्वारा कृष्ण को बन्दी बना सकते हैं। माता यशोदा यहाँ ऐसा ही उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। अत: कृष्ण इसकी पुष्टि करते हैं कि जो उन्हें पकड़ना चाहता है उसे भक्ति करनी चाहिए।

भक्त्या मामभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्त्वत: ।

ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम् ॥

(*भगवद्गीता* १८.५५)

भक्तजन तो कृष्ण-लोक में भी आसानी से प्रवेश कर जाते हैं किन्तु अल्पज्ञ योगी तथा ज्ञानीजन अपने ध्यान के द्वारा कृष्ण के पीछे पीछे दौड़ते रहते हैं। यदि वे कृष्ण तेज में प्रवेश भी करते हैं, तो भी नीचे गिर पड़ते हैं।

कृतागसं तं प्ररुदन्तमक्षिणी
कषन्तमञ्जन्मषिणी स्वपाणिना ।
उद्वीक्षमाणं भयविह्वलेक्षणं
हस्ते गृहीत्वा भिषयन्त्यवागुरत् ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

कृत-आगसम्—अपराधी; तम्—कृष्ण को; प्ररुदन्तम्—रोते हुए; अक्षिणी—उनकी आँखें; कषन्तम्—मलते हुए; अञ्जत्-मषिणी—जिसकी आँखों में लगा काजल आँसुओं के साथ सारे मुँह में फैल गया; स्व-पाणिना—अपने हाथ से; उद्वीक्षमाणम्—जो माता यशोदा द्वारा इस मुद्रा में देखे गये; भय-विह्वल-ईक्षणम्—अपनी माता के भय से जिसकी आँखें भयभीत दिखाई दीं; हस्ते—हाथ से; गृहीत्वा—पकड़ कर; भिषयन्ती—धमकाती हुई; अवागुरत्—बहुत धीमे से डाँटा।

माता यशोदा द्वारा पकड़े जाने पर कृष्ण और अधिक डर गये और उन्होंने अपनी गलती स्वीकार कर ली। ज्योंही माता यशोदा ने कृष्ण पर दृष्टि डाली तो देखा कि वे रो रहे थे। उनके आँसू आँखों के काजल से मिल गये और हाथों से आँखें मलने के कारण उनके पूरे मुखमण्डल में वह काजल पुत गया। माता यशोदा ने अपने सलोने पुत्र का हाथ पकड़ते हुए धीरे से डाँटना शुरू किया।

तात्पर्य : माता यशोदा तथा कृष्ण के इन व्यवहारों से हम भगवान् की प्रेमाभक्ति में लगे शुद्ध भक्त की उच्च स्थिति को समझ सकते हैं। योगी, ज्ञानी, कर्मी तथा वेदान्तीजन कृष्ण के पास फटक भी नहीं पाते, उन्हें उनसे बहुत दूर दूर रह कर उनके शारीरिक तेज में प्रवेश करने का प्रयास करना होता है। किन्तु वे ऐसा भी कर पाने में असमर्थ रहते हैं। ब्रह्माजी तथा शिवजी जैसे बड़े बड़े देवता हमेशा ध्यान

तथा सेवा द्वारा भगवान् की पूजा करते हैं। यहाँ तक कि सर्वाधिक शक्तिशाली यमराज भी कृष्ण से डरता है। अत:, जैसाकि अजामिल की कथा से ज्ञात है कि यमराज ने अपने सेवकों को भक्तों के पास तक न फटकने का आदेश दिया, उन्हें पकड़ने की बात तो दूर रही। दूसरे शब्दों में, यमराज भी कृष्ण तथा कृष्ण-भक्तों से डरता है। फिर भी वही कृष्ण अपनी माता यशोदा पर इतने आश्रित हो गये कि उनके हाथ में सोटी देखकर उन्होंने अपने को अपराधी मान लिया और सामान्य बालक की तरह रोने लगे। माता यशोदा अपने प्रिय पुत्र को अधिक डाँटना भी नहीं चाह रही थीं अतएव तुरन्त ही छड़ी फेंकते हुए उन्होंने केवल इतना ही डाँटा, ''अब मैं तुम्हें बाँध दूँगी जिससे तुम और उपद्रव न कर सको। न ही तुम अपने संगियों के साथ कुछ समय के लिए खेल पाओ।'' इससे ज्ञानियों, योगियों तथा वैदिक अनुष्ठान के अनुयायियों से विपरीत शुद्ध भक्त की परम सत्य में दिव्य स्थिति प्रदर्शित होती है।

त्यक्त्वा यष्टिं सुतं भीतं विज्ञायार्भकवत्सला ।
इयेष किल तं बद्धुं दाम्नातद्वीर्यकोविदा ॥ १२॥

शब्दार्थ

त्यक्त्वा—फेंकते हुए; यष्टिम्—अपने हाथ की छड़ी (सोटी) को; सुतम्—पुत्र को; भीतम्—अपने पुत्र के भय पर विचार करते हुए; विज्ञाय—समझते हुए; अर्भक-वत्सला—कृष्ण की स्नेहमयी माता ने; इयेष—इच्छा की; किल—निश्चय ही; तम्—उसको; बद्धुम्—बाँधने के लिए; दाम्ना—रस्सी से; अ-तत्-वीर्य-कोविदा—अत्यन्त शक्तिमान भगवान् को जाने बिना (कृष्ण के तीव्र प्रेम के कारण)।

यह जाने बिना कि कृष्ण कौन हैं या वे कितने शक्तिमान हैं, माता यशोदा कृष्ण के अगाध प्रेम में सदैव विह्वल रहती थीं। कृष्ण के लिए मातृ-स्नेह के कारण उन्हें इतना तक जानने की परवाह नहीं रहती थी कि कृष्ण हैं कौन? अतएव जब उन्होंने देखा कि उनका पुत्र अत्यधिक डर गया है, तो अपने हाथ से छड़ी फेंक कर उन्होंने उसे बाँधना चाहा जिससे और आगे उद्दण्डता न कर सके।

तात्पर्य : माता यशोदा कृष्ण को इसलिए नहीं बाँधना चाहती थीं कि वे उन्हें डाँटें अपितु इस भय से कि इतना नटखट होने से यह बालक डर कर कहीं घर न छोड़ दे। तब यह दूसरा ही उत्पात होगा। अत: स्नेह से पूरित होने और कृष्ण को घर छोड़ने से रोकने के लिए उन्होंने उसे रस्सी से बाँधना चाहा। माता यशोदा कृष्ण को बता देना चाहती थीं कि यदि वह उनकी छड़ी देखने मात्र से इतना भयभीत है, तो उसे दही तथा मक्खन के पात्र तोड़ने और उनमें रखी वस्तुओं को बन्दरों में बाँटने जैसे

ऊधम नहीं करना चाहिए। माता यशोदा ने यह समझने की परवाह ही नहीं की कि कृष्ण कौन हैं और उनकी शक्ति किस तरह सर्वत्र फैलती है। कृष्ण के प्रति शुद्ध प्रेम का यह एक उदाहरण है।

न चान्तर्न बहिर्यस्य न पूर्वं नापि चापरम् ।
पूर्वापरं बहिश्चान्तर्जगतो यो जगच्च यः ॥ १३ ॥
तं मत्वात्मजमव्यक्तं मर्त्यलिङ्गमधोक्षजम् ।
गोपिकोलूखले दाम्ना बबन्ध प्राकृतं यथा ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; च—भी; अन्तः—भीतरी; न—न तो; बहिः—बाह्य; यस्य—जिसका; न—न तो; पूर्वम्—आदि; न—न; अपि—निस्सन्देह; च—भी; अपरम्—अन्त; पूर्व-अपरम्—आदि तथा अन्त; बहिः च अन्तः—बाहरी तथा भीतरी; जगतः—सम्पूर्ण विश्व का; यः—जो है; जगत् च यः—तथा जो समग्र सृष्टि में सर्वस्व है; तम्—उसको; मत्वा—मान कर; आत्मजम्—अपना पुत्र; अव्यक्तम्—अव्यक्त; मर्त्य-लिङ्गम्—मनुष्य रूप में प्रकट; अधोक्षजम्—इन्द्रिय बोध से परे; गोपिका—यशोदा ने; उलूखले—ओखली में; दाम्ना—रस्सी से; बबन्ध—बाँध दिया; प्राकृतम् यथा—जैसे सामान्य मानवी बालक के साथ किया जाता है।

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का न आदि है, न अन्त, न बाह्य है न भीतर, न आगा है न पीछा। दूसरे शब्दों में, वे सर्वव्यापी हैं। चूँकि वे काल तत्त्व के वशीभूत नहीं हैं अतएव उनके लिए भूत, वर्तमान तथा भविष्य में कोई अन्तर नहीं है। वे सदा-सर्वदा अपने दिव्य स्वरूप में रहते हैं। सर्वोपरि तथा परम होने के कारण सभी वस्तुओं के कारण-कार्य होते हुए भी वे कारण-कार्य के अन्तरों से मुक्त रहते हैं। वही अव्यक्त पुरुष, जो इन्द्रियातीत हैं, अब मानवीय बालक के रूप में प्रकट हुए थे और माता यशोदा ने उन्हें सामान्यसा अपना ही बालक समझ कर रस्सी के द्वारा ओखली से बाँध दिया।

तात्पर्य : *भगवद्गीता* (.१२) में कृष्ण को पर ब्रह्म कहा गया है (*परं ब्रह्म परं धाम*)। *ब्रह्म* शब्द का अर्थ है "सबसे बड़ा।" कृष्ण महानतम से भी महान् हैं क्योंकि वे असीम तथा सर्वव्यापक हैं। अतः ऐसे सर्वव्यापक को किस तरह मापा या बाँधा जा सकता है? यही नहीं, कृष्ण साक्षात् काल हैं। अतएव वे न केवल देश में अपितु काल में भी सर्वव्याप्त हैं। काल की भी माप है और हम भूत, वर्तमान तथा भविष्य द्वारा सीमित हैं किन्तु कृष्ण के लिए ऐसा कुछ नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति की माप हो सकती है किन्तु कृष्ण पहले ही प्रदर्शित कर चुके हैं कि व्यक्ति होकर भी वे अपने मुख के भीतर सम्पूर्ण विश्व को समाहित कर सकते हैं। इन सब बातों पर विचार करते हुए यह कहा जा सकता है कि कृष्ण को मापा नहीं जा सकता। तो फिर यशोदा ने किस तरह उन्हें मापना और बाँधना चाहा? हमें यह

निष्कर्ष निकालना होगा कि यह सब दिव्य शुद्ध प्रेम के स्तर पर हुआ। यही एकमात्र कारण था।

अद्वैतमच्युतमनादिमनन्तरूपम्

आद्यं पुराणपुरुषं नवयौवनं च।

वेदेषु दुर्लभमदुर्लभमात्मभक्तौ

गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥

(*ब्रह्म-संहिता* ५.३३)

सारी वस्तुएँ अद्वैत हैं क्योंकि कृष्ण ही सभी वस्तुओं के परम कारण हैं। वैदिक ज्ञान द्वारा न तो कृष्ण की माप की जा सकती है, न गणना (*वेदेषु दुर्लभम्*)। वे एकमात्र भक्तों को उपलब्ध होते हैं (*अदुर्लभमात्मभक्तौ*)। भक्त ही उन्हें सँभाल सकते हैं क्योंकि वे प्रेमाभक्ति के आधार पर कर्म करते हैं (*भक्त्या मामभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्त्वत:*)। इसीलिए माता यशोदा उन्हें बाँधना चाह रही थीं।

तद्दाम बध्यमानस्य स्वार्भकस्य कृतागसः ।
द्व्यङ्गुलोनमभूत्तेन सन्दधेऽन्यच्च गोपिका ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

तत् दाम—बाँधने की वह रस्सी; बध्यमानस्य—माता यशोदा द्वारा बाँधा जाने वाला; स्व-अर्भकस्य—अपने पुत्र का; कृत-आगस:—अपराध करने वाले; द्वि-अङ्गुल—दो अंगुल; ऊनम्—छोटी, कम; अभूत्—हो गई; तेन—उस रस्सी से; सन्दधे—जोड़ दिया; अन्यत् च—दूसरी रस्सी; गोपिका—माता यशोदा ने।

जब माता यशोदा उत्पाती बालक को बाँधने का प्रयास कर रही थीं तो उन्होंने देखा कि बाँधने की रस्सी दो अंगुल छोटी पड़ रही थी। अत: उसमें जोड़ने के लिए वे दूसरी रस्सी ले आईं।

तात्पर्य : कृष्ण द्वारा माता यशोदा को अपनी अनन्त शक्ति प्रदर्शित करने का यह पहली शुरुआत है, जब माता यशोदा कृष्ण को बाँधने का प्रयास कर रही थीं तो रस्सी छोटी पड़ गई। वे पहले ही पूतना, शकटासुर तथा तृणावर्त का वध करके अपनी असीम शक्ति का प्रदर्शन कर चुके थे। अब कृष्ण अपनी माता यशोदा को अन्य *विभूति* या शक्ति का प्रदर्शन दिखला रहे थे। वे यह दिखला देना चाहते थे कि "जब तक मैं नहीं चाहूँगा आप मुझे बाँध नहीं सकतीं।" इस तरह कृष्ण को बाँधने के प्रयास में माता यशोदा ने एक के बाद दूसरी रस्सी लाकर जोड़ी किन्तु अंत तक वे असफल ही रहीं। किन्तु जब कृष्ण सहमत हो गये तो वे सफल हो गईं। दूसरे शब्दों में, मनुष्य को कृष्ण से दिव्य प्रेम करना चाहिए किन्तु इसका अर्थ यह नहीं होता कि वह कृष्ण को वश में कर सकता है। जब कृष्ण किसी की भक्ति

से तुष्ट हो जाते हैं, तो वे सारा कार्य स्वयं कर देते हैं। *सेवोन्मुखे हि जिह्वादौ स्वयमेव स्फुरत्यदः।* ज्यों ज्यों भक्त सेवा में आगे बढ़ता रहता है त्यों त्यों वे अपने को प्रकट करते रहते हैं। *जिह्वादौ:* यह सेवा जीभ से—कीर्तन से तथा प्रसाद प्राप्त करने से—शुरू होती है।

अतः श्रीकृष्णनामादि न भवेद् ग्राह्यमिन्द्रियैः।

सेवोन्मुखे हि जिह्वादौ स्वयमेव स्फुरत्यदः॥

(*भक्तिरसामृत सिन्धु* १.२.२३४)

यदासीत्तदपि न्यूनं तेनान्यदपि सन्दधे ।
तदपि द्व्यङ्गुलं न्यूनं यद्यदादत्त बन्धनम् ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

यदा—जब; आसीत्—हो गया; तत् अपि—नई रस्सी जोड़ने पर भी; न्यूनम्—तब भी छोटी; तेन—तब दूसरी रस्सी से; अन्यत् अपि—और दूसरी रस्सी भी; सन्दधे—जोड़ी; तत् अपि—वह भी; द्वि-अङ्गुलम्—दो अंगुल; न्यूनम्—छोटी होती जाती; यत् यत् आदत्त—इस तरह उन्होंने एक के बाद एक जितनी भी रस्सियाँ जोड़ीं; बन्धनम्—कृष्ण को बाँधने के लिए।

यह नई रस्सी भी दो अंगुल छोटी पड़ गई और जब इसमें दूसरी रस्सी लाकर जोड़ दी गई तब भी वह दो अंगुल छोटी ही पड़ी। उन्होंने जितनी भी रस्सियाँ जोड़ीं, वे व्यर्थ गईं—वे छोटी की छोटी पड़ती गईं।

एवं स्वगेहदामानि यशोदा सन्दधत्यपि ।
गोपीनां सुस्मयन्तीनां स्मयन्ती विस्मिताभवत् ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; स्व-गेह-दामानि—अपने घर की सारी रस्सियाँ; यशोदा—माता यशोदा; सन्दधति अपि—जोड़ती रहने पर भी; गोपीनाम्—जब माता यशोदा की अन्य सारी बुजुर्ग गोपी सखियाँ; सु-स्मयन्तीनाम्—इस तमाशे में आनन्द ले रही थीं; स्मयन्ती—माता यशोदा भी मुसका रही थीं; विस्मिता अभवत्—वे सारी की सारी आश्चर्यचकित थीं।

इस तरह माता यशोदा ने घर-भर की सारी रस्सियों को जोड़ डाला किन्तु तब भी वे कृष्ण को बाँध न पाईं। पड़ोस की वृद्धा गोपिकाएँ, जो माता यशोदा की सखियाँ थीं मुसका रही थीं और इस तमाशे का आनन्द ले रही थीं। इसी तरह माता यशोदा श्रम करते हुए भी मुसका रही थीं। वे सभी आश्चर्यचकित थीं।

तात्पर्य : वास्तव में यह विचित्र घटना थी क्योंकि कृष्ण छोटे छोटे हाथों वाले बालक मात्र थे। उन्हें बाँधने के लिए दो फुट से अधिक लम्बी रस्सी की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए थी। घर-भर

की सारी रस्सियाँ मिल कर सैकड़ों फुट लम्बी रही होंगी फिर भी सारी रस्सियाँ मिलाकर छोटी पड़ गईं और कृष्ण बाँधे नहीं जा सके। स्वाभाविक था कि माता यशोदा तथा उनकी सखी गोपियाँ सोचतीं, "यह कैसे हो सकता है?" यह तमाशा देख कर वे सभी मुसका रही थीं। पहली रस्सी दो अंगुल कम पड़ी थी और जब इसमें दूसरी रस्सी जोड़ दी गई तो भी वह दो अंगुल छोटी पड़ गई। यदि सभी रस्सियों की छोटाई की गणना की जाय तो यह कई सौ अंगुल हो जाती है। यह निश्चय ही आश्चर्यजनक बात थी। अपनी माता तथा उनकी सखियों के सम्मुख यह कृष्ण की अचिन्त्य शक्ति का एक और प्रदर्शन था।

स्वमातुः स्विन्नगात्राया विस्रस्तकबरस्रजः ।
दृष्ट्वा परिश्रमं कृष्णः कृपयासीत्स्वबन्धने ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

स्व-मातुः—अपनी माता (यशोदादेवी) का; स्विन्न-गात्रायाः—वृथा श्रम के कारण पसीने से लथपथ शरीर; विस्रस्त—गिर रहे; कबर—उनके बालों से; स्रजः—फूल; दृष्ट्वा—देखकर; परिश्रमम्—अधिक काम करने से थकी का अनुभव करती हुई अपनी माता को; कृष्णः—भगवान् ने; कृपया—अपने भक्त तथा माता पर अहैतुकी कृपा द्वारा; आसीत्—राजी हो गये; स्व-बन्धने—अपने को बँधाने के लिए।

माता यशोदा द्वारा कठिन परिश्रम किये जाने से उनका सारा शरीर पसीने से लथपथ हो गया और उनके केशों में लगी कंघी और गूँथे हुए फूल गिरे जा रहे थे। जब बालक कृष्ण ने अपनी माता को इतना थका-हारा देखा तो वे दयार्द्र हो उठे और अपने को बँधाने के लिए राजी हो गये।

तात्पर्य : जब अंत में माता यशोदा तथा अन्य स्त्रियों ने देखा कि अनेक कंगनों तथा रत्नजटित आभूषणों से सज्जित कृष्ण को घर-भर की रस्सियों से भी नहीं बाँधा जा सका तो उन्होंने निर्णय लिया कि कृष्ण इतना भाग्यशाली है कि उसे किसी भौतिक वस्तु से बाँधा नहीं जा सकता। अतएव उन्होंने उन्हें बाँधने का विचार त्याग दिया। किन्तु कभी कभी कृष्ण अपने भक्तों से प्रतियोगिता करते हुए हारने के लिए राजी हो जाते हैं। इस तरह कृष्ण की अन्तरंगा शक्ति योगमाया काम कर गई और कृष्ण ने माता यशोदा के हाथों से बाँधा जाना स्वीकार कर लिया।

एवं सन्दर्शिता ह्यङ्ग हरिणा भृत्यवश्यता ।
स्ववशेनापि कृष्णेन यस्येदं सेश्वरं वशे ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; सन्दर्शिता—प्रदर्शित किया गया; हि—निस्सन्देह; अङ्ग—हे महाराज परीक्षित; हरिणा—भगवान् द्वारा; भृत्य-वश्यता—अपने सेवक या भक्त की अधीनता स्वीकार करने का गुण; स्व-वशेन—जो केवल अपने वश में रहे; अपि—निस्सन्देह; कृष्णेन—कृष्ण द्वारा; यस्य—जिसके; इदम्—सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड; स-ईश्वरम्—शिव तथा ब्रह्मा जैसे शक्तिशाली देवताओं सहित; वशे—वश में।

हे महाराज परीक्षित, शिवजी, ब्रह्माजी तथा इन्द्र जैसे महान् एवं उच्चस्थ देवताओं समेत यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड भगवान् के वश में हैं। फिर भी भगवान् का एक दिव्य गुण यह है कि वे अपने भक्तों के वश में हो जाते हैं। यही बात इस लीला में कृष्ण द्वारा दिखलाई गई है।

तात्पर्य : कृष्ण की इस लीला को समझ पाना दुष्कर है किन्तु भक्तगण इसे समझ सकते हैं। इसीलिए कहा गया है—*दर्शयंस्तद्विदां लोक आत्मनो भक्तवश्यताम्* (भागवत .११.९)—भगवान् अपने भक्तों के वश में होने का गुण प्रदर्शित करते हैं। *ब्रह्म-संहिता* (५.३५) में कहा गया है—

एकोऽप्यसौ रचयितुं जगदण्डकोटिं

यच्छक्तिरस्ति जगदण्डचया यदन्तः।

अण्डान्तरस्थपरमाणुचयान्तरस्थं

गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥

अपने एक अंश परमात्मा से भगवान् असंख्य ब्रह्माण्डों एवं उनके देवताओं को नियंत्रित करते हैं फिर भी वे अपने भक्त द्वारा नियंत्रित होने के लिए राजी हो जाते हैं। उपनिषदों में कहा गया है कि भगवान् मन से भी अधिक वेग से दौड़ सकते हैं किन्तु यहाँ हम देखते हैं कि अपनी माता द्वारा पकड़े जाने से बचने की इच्छा रखते हुए भी कृष्ण पराजित हुए और माता यशोदा द्वारा पकड़ लिये गये। *लक्ष्मीसहस्रशतसम्भ्रमसेव्यमानम्*—कृष्ण की सेवा लाखों लक्ष्मियाँ करती हैं। फिर भी वे मक्खन की चोरी इस तरह करते हैं जैसे कि कोई भूख का मारा हो। यद्यपि सारे जीवों का नियंत्रक यमराज कृष्ण से भयभीत रहता है फिर भी कृष्ण अपनी माता की सोटी से भयभीत हैं। इन विरोधाभासों को अभक्त नहीं समझ सकता किन्तु भक्त समझ सकता है कि कृष्ण की अनन्य भक्ति कितनी बलवान है। यह इतनी बलवान् है कि कृष्ण को एक शुद्ध भक्त द्वारा नियंत्रण में रखा जा सकता है। इस *भृत्यवश्यता* का अर्थ यह नहीं है कि वे अपने दास के वश में हैं प्रत्युत वे दास के शुद्ध प्रेम के वश में रहते हैं। *भगवद्गीता* (१.२१) में कहा गया है कि कृष्ण अर्जुन के सारथी बने। अर्जुन ने उन्हें आदेश दिया—

सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत—हे कृष्ण! आपने मेरा सारथी बनना और मेरे आदेशों का पालन करना स्वीकार किया है। अत: मेरे रथ को दोनों सेनाओं के मध्य खड़ा करो। कृष्ण ने तुरन्त इस आदेश का पालन किया। अतएव यह तर्क दिया जा सकता है कि कृष्ण भी सदैव पूर्ण स्वतंत्र नहीं रहते। किन्तु यह तो मनुष्य का अपना *अज्ञान* है। कृष्ण सदा ही पूर्ण स्वतंत्र हैं। जब वे अपने भक्तों के वशीभूत हो जाते हैं, तो यह *आनन्दचिन्मय-रस* का प्रदर्शन होता है, जो उनके दिव्य आनन्द को बढ़ाने वाला होता है। हर व्यक्ति कृष्ण की पूजा भगवान् के रूप में करता है अतएव कभी कभी वे किसी अन्य द्वारा नियंत्रित होने की इच्छा करते हैं। ऐसा नियंत्रक एक शुद्ध भक्त के अतिरिक्त भला अन्य कोई कैसे हो सकता है?

नेमं विरिञ्चो न भवो न श्रीरप्यङ्गसंश्रया ।
प्रसादं लेभिरे गोपी यत्तत्प्राप विमुक्तिदात् ॥ २० ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; इमम्—यह उच्च पद; विरिञ्चः—ब्रह्मा; न—न तो; भवः—शिव; न—न तो; श्रीः—लक्ष्मी; अपि—निस्सन्देह; अङ्ग-संश्रया—भगवान् की अर्धांगिनी होकर भी; प्रसादम्—कृपा; लेभिरे—प्राप्त किया; गोपी—माता यशोदा; यत् तत्—जो जैसा है; प्राप—प्राप्त किया; विमुक्ति-दात्—इस जगत से मुक्ति दिलाने वाले कृष्ण से।

इस भौतिक जगत से मोक्ष दिलाने वाले भगवान् की ऐसी कृपा न तो कभी ब्रह्माजी, न शिवजी, न ही भगवान् की अर्धांगिनी लक्ष्मी ही प्राप्त कर सकती हैं, जैसी माता यशोदा ने प्राप्त की।

तात्पर्य : यह माता यशोदा तथा अन्य भगवद्भक्तों का एक तुलनात्मक अध्ययन है। *चैतन्य-चरितामृत* (आदि ५.१४२) में कहा गया है—*एकले ईश्वर कृष्ण, आर सब भृत्य*—कृष्ण ही एकमात्र ईश्वर हैं, शेष सब उनके दास हैं। कृष्ण में *भृत्यवश्यता* अर्थात् अपने भृत्य या दास के अधीन होने का दिव्य गुण पाया जाता है। यद्यपि सभी भृत्य हैं और कृष्ण में भृत्यवश्यता का गुण पाया जाता है किन्तु माता यशोदा का पद सर्वोच्च है। ब्रह्माजी कृष्ण के *भृत्य* तथा *आदि कवि* हैं (*तेने ब्रह्म हृदा य आदि कवये*)। फिर भी उन्हें माता यशोदा जैसी कृपा प्राप्त नहीं हो पाई। शिवजी तो सर्वश्रेष्ठ वैष्णव हैं (*वैष्णवानां यथा शम्भुः*)। ब्रह्माजी तथा शिवजी की कौन कहे, भगवान् की नित्य संगिनी लक्ष्मी को भी जो सदैव उनके शरीर के साथ रहती हैं, ऐसी कृपा प्राप्त नहीं हो सकी। इसीलिए महाराज परीक्षित यह सोच कर चकित थे कि, "आखिर माता यशोदा तथा नन्द महाराज ने अपने पूर्वजन्मों में क्या किया

जिससे उन्हें कृष्ण के वत्सल माता-पिता बनने का सौभाग्य प्राप्त हो सका?''

इसी श्लोक में तीन *न* आये हैं। जब किसी बात को तीन बार कहा जाय तो समझना चाहिए कि उस पर बल दिया जा रहा है। इस श्लोक में तीन बार *न लेभिरे, न लेभिरे, न लेभिरे* आया है। फिर भी माता यशोदा को सर्वोच्च पद प्राप्त है और इसीलिए कृष्ण पूरी तरह उनके वश में हो गये हैं।

विमुक्तिदात् शब्द भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। मुक्ति कई प्रकार की होती है—*सायुज्य, सालोक्य, सारूप्य, सार्ष्टि* तथा *सामीप्य*। किन्तु *विमुक्ति* का अर्थ है ''विशेष मुक्ति।'' जब कोई व्यक्ति मुक्ति पाप्त करके *प्रेमभक्ति* के पद पर होता है, तो वह *विमुक्ति* प्राप्त कहा जाता है। इसीलिए *न* शब्द आया है। *प्रेमा* के उस उच्च पद को श्री चैतन्य महाप्रभु ने *प्रेमा पुमर्थो महान्* कहा है और माता यशोदा प्रेम-व्यापार में ऐसे ही उच्च पद पर कार्य करती हैं। इसीलिए वे *नित्यसिद्ध* भक्त हैं—कृष्ण की ह्लादिनी शक्ति की अंशरूप अर्थात् अपने विशेष भक्त रूपी अंशों द्वारा अपने दिव्य आनंद को भोगने की शक्ति (*आनन्दचिन्मयरसप्रतिभाविताभिः*)। ऐसे भक्त *साधनसिद्ध* नहीं होते।

नायं सुखापो भगवान्देहिनां गोपिकासुतः ।
ज्ञानिनां चात्मभूतानां यथा भक्तिमतामिह ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; अयम्—यह; सुख-आपः—सरलता से प्राप्य अथवा सुख का लक्ष्य; भगवान्—भगवान्; देहिनाम्—देहात्मबुद्धि को प्राप्त पुरुषों का, विशेषतया कर्मियों का; गोपिका-सुतः—माता यशोदा का पुत्र कृष्ण (वसुदेव-पुत्र होने से कृष्ण वासुदेव और यशोदा-पुत्र होने से कृष्ण कहलाते हैं); ज्ञानिनाम् च—तथा भवबन्धन से मुक्त होने के लिए प्रयत्नशील ज्ञानियों का; आत्म-भूतानाम्—आत्मनिर्भर योगियों का; यथा—जैसे; भक्ति-मताम्—भक्तों का; इह—इस जगत में।

माता यशोदा के पुत्र भगवान् कृष्ण स्वतः स्फूर्त प्रेमाभक्ति में लगे भक्तों के लिए सुलभ हैं किन्तु वे मनोधर्मियों, घोर तपों द्वारा आत्म-साक्षात्कार के लिये प्रयास करने वालों अथवा शरीर को ही आत्मा मानने वालों के लिए सुलभ नहीं होते।

तात्पर्य : माता यशोदा के पुत्र रूप में कृष्ण भक्तों के लिए सरलता से उपलब्ध होते हैं किन्तु तपस्वियों, योगियों, ज्ञानियों तथा देहात्मबुद्धि वालों को नहीं। यद्यपि इन्हें कभी कभी *शान्त* भक्त कहा जाता है किन्तु असली भक्ति तो *दास्य रस* से प्रारम्भ होती है। *भगवद्गीता* (४.११) में कृष्ण कहते हैं—

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।

मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥

''हे पार्थ! सारे जीव जिस तरह से मेरी शरण में आते हैं मैं उन्हें उसी तरह पुरस्कृत करता हूँ। हर व्यक्ति सभी तरह से मेरे पथ का अनुसरण करता है।'' हर व्यक्ति कृष्ण को खोजता है क्योंकि वे सारे जीवात्माओं के परमात्मा हैं। हर व्यक्ति को अपना शरीर प्रिय है और वह उसकी रक्षा करना चाहता है क्योंकि वह शरीर के भीतर आत्मा रूप में रहता है और हर व्यक्ति आत्मा से प्रेम करता है क्योंकि यह आत्मा परमात्मा का अंश है। अतएव हर व्यक्ति परमात्मा के साथ अपने सम्बन्ध को पुनरुज्जीवित करके सुख की खोज में लगा हुआ है। जैसाकि *भगवद्गीता* (१५.१५) में भगवान् कहते हैं—*वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः*—सारे वेदों के द्वारा मुझे ही जाना जाता है। इसीलिए सारे कर्मी, ज्ञानी, योगी तथा सन्त पुरुष कृष्ण की खोज करते हैं। किन्तु कृष्ण से प्रत्यक्ष सम्बन्ध रखने वाले भक्तों के चरणचिह्नों का, विशेष रूप से वृन्दावनवासियों का, अनुसरण करते हुए मनुष्य कृष्ण के सान्निध्य के परम पद तक पहुँच सकता है। जैसाकि कहा गया है—*वृन्दावनं परित्यज्य पदमेकं न गच्छति*—कृष्ण वृन्दावन को क्षण-भर के लिए भी नहीं छोड़ते। वृन्दावनवासी—माता यशोदा, कृष्ण के मित्र तथा कृष्ण की युगल प्रेमिकाएँ—वे तरुण गोपियाँ जिनके साथ वे नाचते हैं—कृष्ण के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध रखने वाले हैं और यदि कोई व्यक्ति इन भक्तों के चरणचिह्नों का अनुसरण करता है, तो उसे कृष्ण अवश्य प्राप्त होते हैं। यद्यपि कृष्ण के नित्यसिद्ध अंश सदैव कृष्ण के साथ रहते हैं किन्तु यदि साधनसिद्धि में लगे लोग कृष्ण के इन नित्यसिद्ध संगियों के चरणचिह्नों का अनुसरण करते हैं, तो वे भी बिना किसी कठिनाई के कृष्ण को प्राप्त कर सकते हैं। किन्तु ऐसे भी लोग हैं, जो देहात्मबुद्धि में लिप्त रहते हैं। उदाहरणार्थ, ब्रह्माजी तथा शिवजी को अत्यन्त प्रतिष्ठित पद प्राप्त हैं और इस तरह वे परम पूज्य ईश्वर हैं। दूसरे शब्दों में, ब्रह्माजी तथा शिवजी *गुण अवतार* होने तथा उच्च पद प्राप्त होने से अपने को कुछ कुछ कृष्ण जैसा अनुभव करते हैं, किन्तु वृन्दावन में रहने वाले शुद्ध भक्तों में देहात्मबुद्धि नहीं रहती। वे भगवान् की शुद्ध प्रेमाभक्ति में समर्पित रहते हैं। इसीलिए श्री चैतन्य महाप्रभु ने संस्तुति की है कि *प्रेमा पुमर्थो महान्*—जीवन की सर्वोच्च सिद्धि *प्रेमा* अर्थात् कृष्ण के प्रति शुद्ध प्रेम है। और माता यशोदा उन सर्वोच्च भक्तों में से हैं जिन्होंने यह सिद्धि प्राप्त कर ली है।

कृष्णस्तु गृहकृत्येषु व्यग्रायां मातरि प्रभुः ।
अद्राक्षीदर्जुनौ पूर्वं गुह्यकौ धनदात्मजौ ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

कृष्णः तु—इस बीच; गृह-कृत्येषु—गृहकार्य में लगी; व्यग्रायाम्—अत्यन्त व्यस्त; मातरि—जब उनकी माता; प्रभुः—भगवान्; अद्राक्षीत्—देखा; अर्जुनौ—यमल अर्जुन वृक्ष; पूर्वम्—उसके पूर्व; गुह्यकौ—जो पूर्वजन्म में देवता थे; धनद-आत्मजौ—देवताओं के कोषाध्यक्ष कुवेर के पुत्र।

जब माता यशोदा घरेलू कार्यों में अत्यधिक व्यस्त थीं तभी भगवान् कृष्ण ने दो जुड़वाँ वृक्ष देखे, जिन्हें यमलार्जुन कहा जाता था। ये पूर्व युग में कुवेर के देव-पुत्र थे।

पुरा नारदशापेन वृक्षतां प्रापितौ मदात् ।
नलकूवरमणिग्रीवाविति ख्यातौ श्रियान्वितौ ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

पुरा—पूर्वकाल में; नारद-शापेन—नारदमुनि के शाप द्वारा; वृक्षताम्—वृक्षों का रूप; प्रापितौ—प्राप्त किया; मदात्—पागलपन के कारण; नलकूवर—इनमें एक नलकूवर था; मणिग्रीवौ—दूसरा मणिग्रीव था; इति—इस प्रकार; ख्यातौ—विख्यात; श्रिया अन्वितौ—अत्यन्त ऐश्वर्यवान्।

पूर्वजन्म में नलकूवर तथा मणिग्रीव नामक ये दोनों पुत्र अत्यन्त ऐश्वर्यवान तथा भाग्यशाली थे। किन्तु गर्व तथा मिथ्या प्रतिष्ठा के कारण उन्होंने किसी की परवाह नहीं की इसलिए नारदमुनि ने उन्हें वृक्ष बन जाने का शाप दे डाला।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत "माता यशोदा द्वारा कृष्ण का बाँधा जाना" नामक नवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter दस

यमलार्जुन वृक्षों का उद्धार

इस अध्याय में बतलाया गया है कि किस प्रकार कृष्ण ने यमलार्जुन वृक्षों को गिरा दिया जिनसे नलकूवर तथा मणिग्रीव नामक कुवेर के दो पुत्र प्रकट हुए।

नलकूवर तथा मणिग्रीव शिवजी के महान् भक्त थे किन्तु भौतिक ऐश्वर्य के कारण वे इतने बहुव्ययी तथा विवेकहीन हो गये कि एक दिन वे सरोवर में नग्न युवतियों के साथ किलोलें कर रहे थे और निर्लज्जतापूर्वक इधर-उधर विचरण करने लगे। सहसा नारदमुनि उधर से निकले किन्तु वे दोनों अपने ऐश्वर्य और मिथ्या प्रतिष्ठा से इतने मदान्ध हो चुके थे कि नारदमुनि को देखकर भी वे नंगे ही रहे और तनिक भी नहीं लजाये। दूसरे शब्दों में, वे ऐश्वर्य तथा झूठी प्रतिष्ठा के कारण सामान्य शिष्टाचार भी

भूल गये। वस्तुतः भौतिक गुणों की प्रकृति ही ऐसी होती है कि जब मनुष्य धन और प्रतिष्ठा की दृष्टि से अत्यन्त ऐश्वर्यवान हो जाता है, तब वह शिष्टाचार भूल जाता है और नारदमुनि जैसे मुनियों की भी परवाह नहीं करता। ऐसे मोहग्रस्त व्यक्तियों के लिए (*अहंकार विमूढात्मा*), विशेष रूप से जो भक्तों का उपहास करते हैं, उचित दण्ड यही है कि वे फिर से दरिद्र बन जाँय। वैदिक विधि-विधान बतलाते हैं कि किस प्रकार यम, नियम इत्यादि के अभ्यास से मिथ्या प्रतिष्ठा के भाव पर नियंत्रण प्राप्त किया जा सकता है (*तपसा ब्रह्मचर्येण शमेन च दमेन च*)। एक निर्धन व्यक्ति को आसानी से आश्वस्त किया जा सकता है कि इस भौतिक जगत में ऐश्वर्यशाली पद क्षणिक होता है किन्तु धनी व्यक्ति को नहीं। अतः नारदमुनि ने इन दोनों व्यक्तियों—नलकूवर तथा मणिग्रीव—को वृक्षों की तरह अचेतन बनने का शाप देकर एक दृष्टान्त प्रस्तुत किया। यह बहुत ही उपयुक्त दण्ड था। किन्तु कृष्ण अतीव कृपालु हैं। अतः दण्डित होने पर भी दोनों भाई इतने भाग्यशाली निकले कि उन्हें भगवान् का साक्षात्कार हो सका। अतः वैष्णवों द्वारा दिया गया दण्ड, दण्ड नहीं प्रत्युत दया का अन्य रूप होता है। देवर्षि के शाप से नलकूवर तथा मणिग्रीव यमल अर्जुन वृक्ष बन गये और माता यशोदा तथा नन्द महाराज के आँगन में कृष्ण का प्रत्यक्ष दर्शन करने की प्रतीक्षा करते रहे। भगवान् कृष्ण ने अपने भक्त की इच्छा से इन यमलार्जुन वृक्षों को गिरा दिया और जब ० वर्षों के बाद नलकूवर तथा मणिग्रीव का इस तरह उद्धार हो गया तो उनकी पुरानी चेतना जागृत हो उठी और उन्होंने देवोचित विधि से स्तुति की। इस प्रकार कृष्ण का साक्षात्कार करने का अवसर पाकर ही वे यह समझ सके कि नारदमुनि कितने कृपालु थे। फलतः उन्होंने उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट की और उन्हें धन्यवाद दिया। इसके बाद भगवान् कृष्ण की परिक्रमा करके वे अपने अपने धाम चले गये।

श्रीराजोवाच
कथ्यतां भगवन्नेतत्तयोः शापस्य कारणम् ।
यत्तद्विगर्हितं कर्म येन वा देवर्षेस्तमः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-राजा उवाच—राजा ने आगे पूछा; कथ्यताम्—कृपया कहें; भगवन्—हे परम शक्तिमान; एतत्—यह; तयोः—उन दोनों के; शापस्य—शाप का; कारणम्—कारण; यत्—जो; तत्—वह; विगर्हितम्—निन्दनीय; कर्म—कर्म; येन—जिससे; वा—अथवा; देवर्षेः तमः—नारदमुनि इतने क्रुद्ध हो उठे।

राजा परीक्षित ने शुकदेव गोस्वामी से पूछाः हे महान् एवं शक्तिशाली सन्त, नारदमुनि द्वारा

नलकूवर तथा मणिग्रीव को शाप दिये जाने का क्या कारण था? उन्होंने ऐसा कौन-सा निन्दनीय कार्य किया कि देवर्षि नारद तक उन पर क्रुद्ध हो उठे? कृपया मुझे कह सुनायें।

श्रीशुक उवाच
रुद्रस्यानुचरौ भूत्वा सुदृप्तौ धनदात्मजौ ।
कैलासोपवने रम्ये मन्दाकिन्यां मदोत्कटौ ॥ २॥
वारुणीं मदिरां पीत्वा मदाघूर्णितलोचनौ ।
स्त्रीजनैरनुगायद्भिश्चेरतुः पुष्पिते वने ॥ ३॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने उत्तर दिया; रुद्रस्य—शिवजी के; अनुचरौ—दो भक्त या पार्षद; भूत्वा—बन कर; सु-दृप्तौ—अपने पद तथा अपने सुन्दर रूप-रंग से गर्वित होकर; धनद-आत्मजौ—देवों के कोषाध्यक्ष कुवेर के दोनों पुत्र; कैलास-उपवने—शिवजी के निवास कैलाश पर्वत से लगे एक छोटे बाग में; रम्ये—सुन्दर स्थान में; मन्दाकिन्याम्—मन्दाकिनी नदी के तट पर; मद-उत्कटौ—अत्यधिक गर्वित तथा उन्मत्त; वारुणीम्—वारुणी को; मदिराम्—नशीले द्रव को; पीत्वा—पी पी कर; मद-आघूर्णित-लोचनौ—नशे से आँखें घुमाते हुए; स्त्री-जनैः—स्त्रियों के साथ; अनुगायद्भिः—उनके द्वारा गाये गये गीतों से गुञ्जरित; चेरतुः—घूम रहे थे; पुष्पिते वने—सुन्दर फूल के बाग में।.

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे राजा परीक्षित, चूँकि कुवेर के दोनों पुत्रों को भगवान् शिवजी के पार्षद होने का गौरव प्राप्त था, फलतः वे अत्यधिक गर्वित हो उठे थे। उन्हें मन्दाकिनी नदी के तट पर कैलाश पर्वत से सटे हुए बाग में विचरण करने की अनुमति प्राप्त थी। इसका लाभ उठाकर वे दोनों वारुणी नाम की मदिरा पिया करते थे। वे अपने साथ गायन करती स्त्रियों को लेकर उस फूलों के बाग में घूमा करते थे। उनकी आँखें नशे से सदैव घूमती रहती थीं।

तात्पर्य : इस श्लोक में शिवजी के भक्तों या पार्षदों को प्राप्त कतिपय भौतिक सुविधाओं का उल्लेख हुआ है। यदि कोई व्यक्ति शिवजी के अतिरिक्त किसी अन्य देवता का भी भक्त होता है, तो उसे कुछ भौतिक सुविधाएँ मिलती हैं। इसलिए मूर्ख लोग देवताओं के भक्त बन जाते हैं। भगवान् कृष्ण ने *भगवद्गीता* (७.२०) में इसका संकेत करते हुए इसकी आलोचना की है—*कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः*)। जो कृष्णभक्त नहीं हैं उन्हें स्त्रियों, मदिरा इत्यादि का व्यसन लग जाता है इसलिए उन्हें *हृतज्ञान* अर्थात् विवेकशून्य कहा गया है। कृष्णभावनामृत आन्दोलन ऐसे मूर्ख लोगों को तुरन्त पहचान लेता है क्योंकि *भगवद्गीता* (७.१५) में उनका संकेत किया गया है जहाँ कृष्ण कहते हैं—

न माम् दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः ।

माययापहृतज्ञाना आसुरं भावं आश्रित: ॥

"ऐसे दुष्ट जो निपट मूर्ख हैं, मनुष्यों में अधम हैं, जिनका ज्ञान मोह द्वारा अपहृत हो चुका है और जो आसुरी नास्तिक प्रकृति वाले हैं, वे मेरी शरण में नहीं आते।" जो व्यक्ति कृष्णभक्त नहीं है और उनकी शरण में नहीं जाता उसे *नराधम* अर्थात् मनुष्यों में सबसे नीच तथा *दुष्कृती* अर्थात् पापकर्मों को करने वाला माना जाना चाहिए। अधम व्यक्ति को ढूँढ लेना कोई कठिन काम नहीं है क्योंकि उसकी स्थिति का पता केवल इसी एक कसौटी से लग जाता है कि वह कृष्ण का भक्त है अथवा नहीं।

आखिर देवताओं के भक्तों की संख्या वैष्णवों से अधिक क्यों है? इसका उत्तर यहाँ दिया गया है। वैष्णवजन न तो वारुणी तथा स्त्रियों जैसी निम्न कोटि के मनोरंजनों में रुचि लेते हैं, न ही कृष्ण ऐसी सुविधाओं की अनुमति देते हैं।

अन्त: प्रविश्य गङ्गायामम्भोजवनराजिनि ।
चिक्रीडतुर्युवतिभिर्गजाविव करेणुभि: ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

अन्त:—भीतर; प्रविश्य—घुस कर; गङ्गायाम्—गंगा अर्थात् मन्दाकिनी में; अम्भोज—कमलों का; वन-राजिनि—जहाँ घना जंगल था; चिक्रीडतु:—दोनों क्रीड़ा किया करते थे; युवतिभि:—युवतियों के साथ में; गजौ—दो हाथी; इव—सदृश; करेणुभि:—हथिनियों के साथ।

कमल के फूलों के उद्यानों से आवृत मन्दाकिनी गंगा के जल के भीतर कुवेर के ये दोनों पुत्र युवतियों के साथ उसी तरह क्रीड़ा करते थे जिस तरह पानी के भीतर दो हाथी हथिनियों के साथ क्रीड़ा करते हैं।

तात्पर्य : सामान्यतया लोग अपने पापों से शुद्ध होने के लिए गंगा में स्नान करने जाते हैं किन्तु यहाँ पर इसका दृष्टान्त प्रस्तुत हुआ है कि किस तरह मूर्ख लोग पापमय कार्य करने के लिए गंगा में प्रवेश करते हैं। ऐसा नहीं है कि गंगा में प्रवेश करने से हर कोई शुद्ध होता हो। आध्यात्मिक अथवा भौतिक कार्य तो मनुष्य की मानसिक दशा पर निर्भर करता है।

यदृच्छया च देवर्षिर्भगवांस्तत्र कौरव ।
अपश्यन्नारदो देवौ क्षीबाणौ समबुध्यत ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

यद्दच्छया—संयोगवश, सारे ब्रह्माण्ड का भ्रमण करते हुए; च—तथा; देव-ऋषिः—देवताओं में परम सन्त-पुरुष; भगवान्—अत्यन्त शक्तिशाली; तत्र—वहाँ (जहाँ कुवेर के पुत्र क्रीड़ा कर रहे थे); कौरव—हे महराज परीक्षित; अपश्यत्—देखा; नारदः—परम सन्त ने; देवौ—देवताओं के दोनों बालकों को; क्षीबाणौ—नशे से उन्मत्त आँखों वाले; समबुध्यत—समझ गये।

हे महाराज परीक्षित, उन दोनों बालकों के सौभाग्य से एक बार देवर्षि नारद संयोगवश वहाँ प्रकट हो गये। उन्हें नशे में उन्मत्त तथा आँखें घुमाते हुए देख कर नारद उनकी दशा समझ गये।

तात्पर्य : कहा गया है (*चैतन्य-चरितामृत मध्य* २२.५४)

'साधुसंग' 'साधुसंग'—सर्वशास्त्रे कय।

लवमात्र साधुसंगे सर्वसिद्धि हय॥

नारदमुनि जहाँ भी जाते हैं और जिस मुहूर्त में वे प्रकट होते हैं उसे अत्यन्त शुभ माना जाता है। कहा भी गया है (*चैतन्य-चरितामृत मध्य* (१९.१५१)

ब्रह्माण्ड भ्रमिते कोन भाग्यवान जीव।

गुरु-कृष्ण-प्रसादे पाय भक्तिलता-बीज॥

''सारे जीव अपने अपने कर्मों के अनुसार सारे ब्रह्माण्ड में भटकते रहते हैं। इनमें से कुछ स्वर्ग जाते हैं, तो कुछ नरक जाते हैं। भटकने वाले ऐसे लाखों जीवों में से जो अत्यन्त भाग्यशाली होता है उसे ही कृष्ण की कृपा से प्रामाणिक आध्यात्मिक गुरु का सान्निध्य प्राप्त हो पाता है। कृष्ण तथा गुरु दोनों की कृपा से ऐसे व्यक्ति को भक्तिलता का बीज प्राप्त हो पाता है।'' उस बाग में कुवेर के दोनों पुत्रों को भक्ति का बीज प्रदान करने के लिए ही नारद प्रकट हुए, यद्यपि वे दोनों नशे में उन्मत्त थे। सन्त-पुरुष जानते हैं कि पतितात्माओं पर किस तरह कृपा की जाती है।

तं दृष्ट्वा व्रीडिता देव्यो विवस्त्राः शापशङ्किताः ।
वासांसि पर्यधुः शीघ्रं विवस्त्रौ नैव गुह्यकौ ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

तम्—नारदमुनि को; दृष्ट्वा—देखकर; व्रीडिताः—लज्जित; देव्यः—देव कुमारियाँ; विवस्त्राः—नंगी; शाप-शङ्किताः—शापित होने से भयभीत; वासांसि—वस्त्र; पर्यधुः—अपना शरीर ढक लिया; शीघ्रम्—तुरन्त; विवस्त्रौ—वे भी नंगे थे; न—नहीं; एव—निस्सन्देह; गुह्यकौ—कुवेर के दोनों पुत्र।

नारद को देखकर नग्न देव-कुमारियाँ अत्यन्त लज्जित हुईं। उन्होंने शापित होने से भयभीत होकर अपने शरीर को अपने-अपने वस्त्रों से ढक लिया। किन्तु कुवेर के दोनों पुत्रों ने ऐसा नहीं किया। उलटे, नारद की परवाह न करते हुए वे नंगे ही रहे।

तौ दृष्ट्वा मदिरामत्तौ श्रीमदान्धौ सुरात्मजौ ।
तयोरनुग्रहार्थाय शापं दास्यन्निदं जगौ ॥ ७॥

शब्दार्थ

तौ—देवताओं के दोनों बालकों को; दृष्ट्वा—देखकर; मदिरा-मत्तौ—शराब पीने के कारण नशे में मस्त उन्मत्त; श्री-मद-अन्धौ—झूठी प्रतिष्ठा तथा ऐश्वर्य के कारण अन्धे हुए; सुर-आत्मजौ—देवताओं के दोनों पुत्र; तयोः—उनके; अनुग्रह-अर्थाय—विशेष कृपा करने के प्रयोजन से; शापम्—श्राप; दास्यन्—देने की इच्छा से; इदम्—यह; जगौ—उच्चारित किया।

देवताओं के दोनों पुत्रों को नंगा तथा ऐश्वर्य और झूठी प्रतिष्ठा गर्व के नशे में उन्मत्त देखकर देवर्षि नारद ने उन पर विशेष कृपा करने हेतु उन्हें विशेष शाप देना चाहा। अतः वे इस प्रकार बोले।

तात्पर्य : यद्यपि प्रारम्भ में अत्यन्त क्रुद्ध होने के कारण नारद ने शाप दे डाला किन्तु अन्त में नलकूवर तथा मणिग्रीव दोनों को भगवान् कृष्ण का साक्षात् दर्शन हो सका। इस तरह शाप अन्ततोगत्वा शुभ सिद्ध हुआ। हमें यह देखना होगा कि नारद ने उन्हें किस तरह का शाप दिया। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने एक सुन्दर उदाहरण दिया है। जब पिता देखता है कि बच्चा गहरी नींद में सोया हुआ है किन्तु उसे किसी बीमारी के इलाज के लिए कोई दवा पीनी है, तो पिता चिकोटी काट कर बच्चे को उठाता है, जिससे वह दवा पी सके। इसी तरह नारदमुनि ने नलकूवर तथा मणिग्रीव के भौतिक-अन्धता के रोग को ठीक करने के लिए उन्हें शाप दिया।

श्रीनारद उवाच
न ह्यन्यो जुषतो जोष्यान्बुद्धिभ्रंशो रजोगुणः ।
श्रीमदादाभिजात्यादिर्यत्र स्त्री द्यूतमासवः ॥ ८॥

शब्दार्थ

श्री-नारदः उवाच—नारदमुनि ने कहा; न—नहीं है; हि—निस्सन्देह; अन्यः—दूसरा भोग; जुषतः—भोगने वाले का; जोष्यान्—भौतिक जगत की आकर्षक वस्तुएँ (खाने, सोने, मैथुन करने इत्यादि की विभिन्न किस्में); बुद्धि-भ्रंशः—बुद्धि को आकर्षित करने वाले ऐसे भोग; रजः-गुणः—रजोगुण द्वारा नियंत्रित; श्री-मदात्—सम्पत्ति की अपेक्षा; आभिजात्य-आदिः—चार भौतिक नियमों में से (सुन्दर स्वरूप, राजसी परिवार में जन्म, विद्वत्ता तथा धन-धान्य); यत्र—जहाँ; स्त्री—स्त्रियाँ; द्यूतम्—जुआ खेलना; आसवः—शराब।

नारदमुनि ने कहा : भौतिक भोग के समस्त आकर्षणों में से एक धन के प्रति आकर्षण सुन्दर शारीरिक रूप, उच्च कुल में जन्म तथा विद्वत्ता इन सब में से धन का आकर्षण, बुद्धि को अधिक भ्रमित करने वाला है। यदि कोई अशिक्षित व्यक्ति धन से गर्वित हो जाता है, तो वह अपना सारा धन शराब, स्त्रियों तथा जुआ खेलने के आनन्द में लगा देता है।

तात्पर्य : प्रकृति के तीनों गुणों—सतो, रजो तथा तमो गुणों—में से लोग रजो तथा तमो गुणों द्वारा और विशेष रूप से रजोगुण द्वारा संचालित होते हैं। रजोगुण से संचालित होने पर मनुष्य इस भौतिक जगत में अधिकाधिक लिप्त होता जाता है। इसीलिए मानव जीवन रजो तथा तमो गुणों का दमन करने और सतो गुण को वर्धित करने के लिए मिला है।

तदा रजस्तमोभावा: कामलोभादयश्च ये।

चेत एतैरनाविद्धं स्थितं सत्त्वे प्रसीदति॥

(*भागवत* १.२.१९)

यही संस्कृति है कि रजो तथा तमो गुणों का दमन किया जाय। रजोगुण में जब मनुष्य को अपने धन का झूठा गर्व हो आता है, तो वह अपना धन केवल तीन चीजों में लगाता है—शराब में, स्त्रियों में तथा जुआ खेलने में। इस युग में विशेष रूप से देखा जा सकता है कि जिनके पास अनावश्यक धन है वे इन्हीं तीन वस्तुओं में उसे खर्चते हैं। पाश्चात्य सभ्यता में धन में अनावश्यक वृद्धि के कारण ये तीनों वस्तुएँ अत्यन्त प्रधान हैं। नारदमुनि ने मणिग्रीव तथा नलकूवर के विषय में इन सभी बातों पर विचार किया क्योंकि उन्होंने देखा कि वे अपने पिता कुवेर के धन पर इतना इतरा रहे हैं।

हन्यन्ते पशवो यत्र निर्दयैरजितात्मभि: ।
मन्यमानैरिमं देहमजरामृत्यु नश्वरम् ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

हन्यन्ते—कई प्रकार से मारे जाते हैं (विशेषतया कसाईखानों में); पशव:—पशु, जानवर (चार पैर वाले); यत्र—जहाँ; निर्दयै:—रजोगुण वाले निर्दय व्यक्तियों द्वारा; अजित-आत्मभि:—अपनी इन्द्रियों को वश में न कर पाने वालों द्वारा; मन्यमानै:—सोचते हैं; इमम्—इस; देहम्—शरीर को; अजर—जो न तो कभी बूढ़ा होगा, न रोगी होगा; अमृत्यु—कभी मृत्यु नहीं होगी; नश्वरम्—नाशवान शरीर को।

अपनी इन्द्रियों को वश में करने में असमर्थ धूर्त लोग, जिन्हें अपने धन पर मिथ्या गर्व रहता है या जो राजसी परिवार में जन्म लिये रहते हैं इतने निष्ठुर होते हैं कि वे अपने नश्वर शरीरों को बनाये रखने के लिए, उन्हें अजर-अमर सोचते हुए, बेचारे पशुओं का निर्दयतापूर्वक वध करते हैं। कभी कभी वे केवल अपनी मौज-मस्ती के लिए पशुओं को मार डालते हैं।

तात्पर्य : जब मानव समाज में रजो तथा तमो गुणों की वृद्धि होती है, तो अनावश्यक आर्थिक विकास होता है, जिसका परिणाम होता है लोगों का मदिरा, स्त्रियों तथा जुए में आसक्त होना। तब वे

मदोन्मत्त होकर बड़े बड़े कसाईखाने चलाते हैं या फिर पशुओं का वध करने के लिए पर्यटन पर जाते हैं। वे भूल जाते हैं कि शरीर को बनाये रखने के लिए चाहे जो भी प्रयास किये जाँय, यह शरीर जन्म, मृत्यु, जरा तथा रोग से पीड़ित होता रहेगा। वे मूर्ख एक के बाद एक पापकर्म करते जाते हैं। *दुष्कृती* होने के कारण वे प्रत्येक हृदय में वास करने वाले परमनियन्ता के अस्तित्व को पूरी तरह से भूल जाते हैं (*ईश्वर: सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति*)। परम नियन्ता उनकी हर गतिविधि को देखता रहता है और हर एक को प्रकृति द्वारा निर्मित उपयुक्त शरीर प्रदान करके पुरस्कृत या दंडित करता है (*भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया*)। इस तरह पापी व्यक्ति विभिन्न शरीरों में स्वत: दण्ड पाते रहते हैं। इस दण्ड का मूल कारण यह है कि जब मनुष्य अनावश्यक रीति से धन का संचय करता है, तो वह अधिक पतित हो जाता है और उसे यह ज्ञान नहीं रह जाता है कि उसका धन अगले जन्म अर्थात् मृत्यु के साथ ही समाप्त हो जायेगा।

न साधुमन्ये यत आत्मनोऽयम्

असन्नपि क्लेशद आस देह:।

(*भागवत* ५.५.४)

पशु-हत्या वर्जित है। किन्तु हर व्यक्ति को कुछ न कुछ खाना पड़ता है (*जीवो जीवस्य जीवनम्*)। इसीलिए उसे यह शिक्षा मिलनी चाहिए कि वह किस तरह का भोजन करे। ईशोपनिषद का आदेश है—*तेन त्यक्तेन भुञ्जीथ*—मनुष्यों के लिए जो भी नियत है, वही खाना चाहिए। *भगवद्गीता* (९.२६) में कृष्ण कहते हैं—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।

तदहं भक्त्युपहृतम् अश्नामि प्रयतात्मन:॥

"यदि कोई मुझे भक्ति तथा प्रेम से एक पत्ती, फूल, फल या जल अर्पित करता है, तो मैं उसे स्वीकार करता हूँ।" इसलिए भक्त कभी ऐसी कोई भी वस्तु नहीं खाता जिसके लिए बेचारे पशुओं के लिए कसाईघर स्थापित करने पड़ें। प्रत्युत भक्तगण कृष्ण का *प्रसाद* ग्रहण करते हैं (*तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा:*)। कृष्ण कहते हैं कि उन्हें *पत्रं पुष्पं फलं तोयं* प्रदान किया जाय। मनुष्यों के लिए पशु-भोजन की संस्तुति कभी नहीं की जाती, प्रत्युत मनुष्य को कृष्ण-प्रसाद लेने की संस्तुति की जाती है। *यज्ञ*

शिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः (*भगवद्गीता* ३.१३)। यदि प्रसाद खाना प्रारम्भ कर दिया जाय तो थोड़े-बहुत पापकर्म करने पर भी मनुष्य पापकर्मों के फल से छूट जाता है।

देवसंज्ञितमप्यन्ते कृमिविड्भस्मसंज्ञितम् ।
भूतध्रुक्तत्कृते स्वार्थं किं वेद निरयो यतः ॥ ॥

शब्दार्थ

देव-संज्ञितम्—शरीर जो अब अत्यन्त महान् पुरुष यथा राष्ट्रपति, मंत्री या देवता कहलाता है; अपि—इतना महान् होते हुए भी; अन्ते—मृत्यु के बाद; कृमि—कीड़ा बन जाता है; विट्—या मल में परिणत हो जाता है; भस्म-संज्ञितम्—या राख में बदल जाता है; भूत-ध्रुक्—शास्त्रों के आदेशों को न मानने वाला तथा अन्य जीवों से ईर्ष्या करने वाला व्यक्ति; तत्-कृते—इस तरह कर्म करते हुए; स्व-अर्थम्—स्वार्थ; किम्—क्या है; वेद—जो जानता है; निरयः यतः—क्योंकि ऐसे पापकर्मों से नारकीय दशा भोगनी होगी।.

जीवित रहते हुए मनुष्य अपने को बड़ा आदमी, मंत्री, राष्ट्रपति या देवता सोचते हुए अपने शरीर पर गर्व कर सकता है किन्तु वह चाहे जो भी हो, मृत्यु के बाद उसका शरीर कीट, मल या राख में परिणत हो जाता है। यदि कोई व्यक्ति अपने शरीर की क्षणिक इच्छाओं की तुष्टि के लिए निरीह पशुओं का वध करता है, तो वह यह नहीं जानता कि उसे अगले जीवन में कष्ट भोगना होगा क्योंकि ऐसे पापी को नरक जाना पड़ेगा और अपने कर्मफल भोगने पड़ेंगे।

तात्पर्य : इस श्लोक में *कृमि-विड्-भस्म*—ये तीन शब्द महत्त्वपूर्ण हैं। यदि मृत्यु के बाद शरीर को जलाया नहीं जाता तो वह *कृमि* बन जाता है अर्थात् उसे कीड़े खा जाते हैं या फिर उसे चील तथा गीदड़ जैसे पशु खाकर मल बना देते हैं। जो अधिक सभ्य हैं, वे मृत शरीर को जलाते हैं जिससे वह भस्म बन जाता है (*भस्म संज्ञितम्*)। भले ही यह शरीर कृमि, मल या राख में क्यों न बदल जाय, मूर्ख व्यक्ति उसे बनाये रखने के लिए अनेक पापकर्म करते हैं। यह निश्चय ही शोचनीय है। मनुष्य का शरीर *जीवस्य तत्त्व जिज्ञासा* के लिए अर्थात् आध्यात्मिक मूल्यों के ज्ञान का प्रकाश पाने के लिए मिला है। अतः मनुष्य को चाहिए कि प्रामाणिक आध्यात्मिक गुरु की शरण में जाये। *तस्माद् गुरुं प्रपद्येत*—वह गुरु के पास जाये। गुरु कौन है? *शाब्दे परे च निष्णातम्* (*भागवत* ११.३.२१)—गुरु वह है, जिसे पूर्ण दिव्य ज्ञान हो। आध्यात्मिक गुरु के पास गये बिना मनुष्य अज्ञान में रहता जाता है। *आचार्यवान् पुरुषो वेद* (*छान्दोग्य उपनिषद* ६.१४.२)—जब कोई आचार्य द्वारा नियंत्रित होता है अर्थात् *आचार्यवान्* होता है, तो उसे जीवन विषयक पूरा-पूरा ज्ञान रहता है। किन्तु जब वह रजोगुण तथा तमोगुण द्वारा संचालित होता है, तो वह किसी बात की परवाह नहीं करता, उलटे वह मूर्ख पशु की भाँति अपने

जीवन को संकट में डाल कर कर्म करता है (*मृत्युसंसारवर्त्मनि*)। फलतः वह एक न एक कष्ट भोगता रहता है। *न ते विदुः स्वार्थगतिं हि विष्णुम्* (*भागवत* ७.५.३१)। ऐसा मूर्ख व्यक्ति यह नहीं जानता कि इस शरीर को पाकर किस प्रकार अपने आपको ऊपर उठाया जाये। उलटे वह पापकर्मों में लिप्त होकर नीचे- नीचे की ओर नारकीय जीवन में फँसता जाता है।

देहः किमन्नदातुः स्वं निषेक्तुर्मातुरेव च ।
मातुः पितुर्वा बलिनः क्रेतुरग्नेः शुनोऽपि वा ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

देहः—यह शरीर; किम् अन्न-दातुः—क्या यह मेरे स्वामी का है, जो मुझे इसके पालन के लिए धन देता है; स्वम्—या यह स्वयं मेरा है; निषेक्तुः—(या यह) वीर्य स्खलित करने वाले का है; मातुः एव—या (इसे) गर्भ में धारण करने वाली माता का है; च—तथा; मातुः पितुः वा—यह माता के पिता अर्थात् नाना का है क्योंकि कभी कभी नाना अपने नाती को गोद ले लेता है; बलिनः—या उसका है, जो बलपूर्वक इस शरीर को छीन लेता है; क्रेतुः—या इस शरीर को बँधुए मजदूर की तरह खरीद लेता है; अग्नेः—या अग्नि में (जला देता है); शुनः—या कुत्तों तथा गीधों का है, जो उसे खा जाते हैं; अपि—भी; वा—अथवा।

जीवित रहते हुए यह शरीर उसके अन्नदाता का होता है, या स्वयं का, अथवा पिता, माता या नाना का? क्या यह बलपूर्वक ले जाने वाले का, इसे खरीदने वाले स्वामी का या उन पुत्रों का होता है, जो इसे अग्नि में जला देते हैं? और यदि शरीर जलाया नहीं जाता तो क्या यह उन कुत्तों का होता है, जो इसे खाते हैं? आखिर इतने सारे दावेदारों में असली दावेदार कौन है? इसका पता लगाने के बजाय, पापकर्मों द्वारा इस शरीर का पालन करना अच्छा नहीं है।

एवं साधारणं देहमव्यक्तप्रभवाप्ययम् ।
को विद्वानात्मसात्कृत्वा हन्ति जन्तूनृतेऽसतः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; साधारणम्—सामान्य सम्पत्ति; देहम्—शरीर को; अव्यक्त—अव्यक्त प्रकृति से; प्रभव—इस प्रकार से व्यक्त; अप्ययम्—पुनः अव्यक्त में लीन होकर ("क्योंकि, तू मिट्टी है और तुम्हें मिट्टी में ही वापस मिल जाना है"); कः—कौन है; विद्वान्—ज्ञानी; आत्मसात् कृत्वा—अपना कहते हुए; हन्ति—मारता है; जन्तून्—बेचारे पशुओं को; ऋते—सिवाय; असतः—धूर्त तथा मूढ़ जिन्हें कोई ज्ञान नहीं है।

यह शरीर आखिर अव्यक्त प्रकृति द्वारा उत्पन्न किया जाता है और नष्ट होकर पुनः प्राकृतिक तत्त्वों में विलीन हो जाता है। अतएव यह सबों का सर्वसामान्य गुण है। ऐसी परिस्थितियों में जो धूर्त होगा वही इस सम्पत्ति को अपनी होने का दावा करेगा और उसे बनाये रखते हुए अपनी इच्छाओं की तुष्टि के लिए पशुओं की हत्या जैसे पापकर्म करता रहता है। केवल मूढ़ ही ऐसे पापकर्म कर सकता है।

तात्पर्य : नास्तिक लोग आत्मा में विश्वास नहीं करते। तो भी, जब तक कोई निष्ठुर नहीं हो तब तक वह पशुओं की व्यर्थ हत्या क्यों करेगा? शरीर पदार्थ के संयोग की अभिव्यक्ति है। प्रारम्भ में यह कुछ नहीं था किन्तु पदार्थ के संयोग से इसका अस्तित्व हुआ। पुनः जब यह संयोग छिन्न-भिन्न होगा तो इस शरीर का अस्तित्व नहीं रहेगा। आदि में यह शरीर कुछ नहीं था और अन्त में भी यह कुछ नहीं रह जायेगा। तो फिर जब वह व्यक्त रूप में आता है, तो कोई पापकर्म क्यों करे? जब तक कोई धूर्त न हो तब तक ऐसा कर पाना सम्भव नहीं।

असतः श्रीमदान्धस्य दारिद्र्यं परमञ्जनम् ।
आत्मौपम्येन भूतानि दरिद्रः परमीक्षते ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

असतः—ऐसे मूर्ख धूर्त व्यक्ति का; श्री-मद-अन्धस्य—धन तथा ऐश्वर्य के कारण अन्धा हुआ; दारिद्र्यम्—गरीबी; परम् अञ्जनम्—आँखों का सर्वोत्तम अंजन है, जिससे वस्तुएँ यथारूप में देखी जा सकती हैं; आत्म-औपम्येन—अपने से तुलना करके; भूतानि—जीवों को; दरिद्रः—गरीब व्यक्ति; परम्—पूर्णतया; ईक्षते—देख सकता है।

नास्तिक मूर्ख तथा धूर्त धन के मद के कारण वस्तुओं को यथारूप में नहीं देख पाते। अतएव उन्हें दरिद्र बनाना ही सर्वोत्तम काजल है, जिसे वे आँखों में लगा कर वस्तुओं को उनके वास्तविक रूप में देख सकते हैं। और कुछ नहीं तो, जो दरिद्र है, वह इसका तो अनुभव कर ही सकता है कि दरिद्रता कितनी दुखद होती है। अतएव वह कभी नहीं चाहेगा कि अन्य लोग उसकी तरह दुखमय स्थिति में रहें।

तात्पर्य : आज भी वे लोग जो पहले दरिद्र थे अपने धन का सदुपयोग परोपकार के कार्यों में—यथा अशिक्षितों के लिए स्कूल खोलने तथा रोगियों के लिए अस्पताल खोलने में—करना चाहते हैं। इस सम्बन्ध में एक शिक्षाप्रद कथा है, जो *पुनर्मूषिको भव* "फिर से चूहा बन जाओ" नाम से प्रसिद्ध है। एक चूहा बिल्ली से अत्यंत तंग आ चुका था अतः वह एक साधु के पास पहुँचा कि उसे बिल्ली बना दे। जब वह चूहा बिल्ली बन गया तो उसे कुत्ता सताने लगा और जब कुत्ता बन गया तो शेर सताने लगा। किन्तु जब वह शेर बन गया तो उसने साधु की ओर घूरने लगा घूरा और जब साधु ने पूछा कि तुम क्या चाहते हो तो उस शेर ने कहा, "मैं तुम्हें खाना चाहता हूँ।" तब उस साधु ने उसे शाप दिया, "तुम फिर से चूहा बन जाओ।" ऐसी ही बात सारे विश्व में चल रही है। मनुष्य कभी ऊपर जाता है, तो कभी नीचे, कभी चूहा बनता है, तो कभी शेर। श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा है (*चैतन्य-*

चरितामृत मध्य १९.१५१)—

ब्रह्माण्ड भ्रमिते कोन भाग्यवान् जीव।

गुरु-कृष्ण-प्रसादे पाय भक्ति-लता-बीज॥

जीवों का उत्कर्ष-अपकर्ष प्रकृति के नियमों द्वारा होता है किन्तु अगर कोई बहुत ही भाग्यशाली होता है, तो उसे साधु की संगति में रहने से भक्ति का बीज मिल जाता है और उसका जीवन सफल हो जाता है। नारदमुनि दरिद्रता के माध्यम से नलकूवर तथा मणिग्रीव को भक्ति के मार्ग पर लाना चाहते थे इसीलिए उन्हें शाप दिया। वैष्णवों की कृपा ऐसी ही होती है। वैष्णव पद को प्राप्त किये बिना मनुष्य नेक नहीं बन सकता। *हरावभक्तस्य कुतो महद्गुणाः* (*भागवत* ५.१८.१२)। किन्तु अवैष्णव को कितना ही दण्ड क्यों न दिया जाय वह कभी नेक व्यक्ति नहीं बन सकता।

यथा कण्टकविद्धाङ्गो जन्तोर्नेच्छति तां व्यथाम् ।
जीवसाम्यं गतो लिङ्गैर्न तथाविद्धकण्टकः ॥ १४॥

शब्दार्थ

यथा—जिस प्रकार; **कण्टक-विद्ध-अङ्गः**—वह पुरुष जिसका शरीर काँटों से बिंध चुका हो; **जन्तोः**—ऐसे पशु को; **न**—नहीं; **इच्छति**—चाहता है; **ताम्**—उस; **व्यथाम्**—पीड़ा को; **जीव-साम्यम् गतः**—जब वह समझ लेता है कि हर एक की दशा एकसी है; **लिङ्गैः**—विशेष प्रकार का शरीर धारण करने से; **न**—नहीं; **तथा**—उसी तरह; **अविद्ध-कण्टकः**—जो व्यक्ति काँटों से नहीं बिंधा।

जिसके शरीर में काँटे चुभ चुके हैं वह दूसरों के चेहरों को ही देखकर उनकी पीड़ा समझ सकता है कि उन्हें काँटे चुभ रहे हैं। वह यह अनुभव करते हुए कि यह पीड़ा सबों के लिए एकसमान है, यह नहीं चाहता कि अन्य लोग इस तरह से कष्ट भोगें। किन्तु जिसे कभी काँटे गड़े ही नहीं वह इस पीड़ा को नहीं समझ सकता।

तात्पर्य : कहावत है कि "जिसने गरीबी का कष्ट झेला है, वही सम्पत्ति के सुख को भोग सकता है।" एक अन्य कहावत भी है *बन्ध्या कि बुझिबे प्रसव-वेदना*—"बाँझ क्या जाने प्रसव की पीड़ा"। वास्तविक अनुभव किये बिना मनुष्य को इस भौतिक जगत में दुख और सुख की अनुभूति नहीं हो पाती। प्रकृति के नियम इसी प्रकार से कार्य करते हैं। यदि किसी ने किसी पशु का वध किया है, तो वह उसी पशु के द्वारा मारा जायेगा। यह *मांस* कहलाता है। *माम्* का अर्थ है "मुझको" तथा *स* का अर्थ है "वह।" जिस तरह मैं पशु को खाता हूँ उसी तरह वह पशु मुझको खाने का अवसर पायेगा।

इसीलिए प्रत्येक राज सत्ता में हत्या करने वाले को फाँसी देने का विधान है।

दरिद्रो निरहंस्तम्भो मुक्तः सर्वमदैरिह ।
कृच्छ्रं यदृच्छयाप्नोति तद्धि तस्य परं तपः ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

दरिद्रः—गरीब; निर्-अहम्-स्तम्भः—सारी झूठी प्रतिष्ठा से स्वयमेव छूट जाता है; मुक्तः—मुक्त; सर्व—सभी; मदैः—मिथ्या अहंकार से; इह—इस संसार में; कृच्छ्रम्—मुश्किल से; यदृच्छया आप्नोति—भाग्यवश जो उसे प्राप्त होता है; तत्—वह; हि—निस्सन्देह; तस्य—उसकी; परम्—पूर्ण; तपः—तपस्या।.

दरिद्र व्यक्ति को स्वतः तपस्या करनी पड़ती है क्योंकि उसके पास अपना कहने के नाम पर कोई सम्पत्ति नहीं होती। इस तरह उसकी मिथ्या प्रतिष्ठा समाप्त हो जाती है। वह सदैव भोजन, आश्रय तथा वस्त्र की आवश्यकता अनुभव करता रहता है, अतः दैव-कृपा से जो भी उसे मिल जाता है उसी से उसे सन्तुष्ट रहना पड़ता है। अनिवार्यतः इस तरह की तपस्या करते रहना उसके लिए अच्छा है क्योंकि इससे उसकी शुद्धि हो जाती है और वह मिथ्या अहंकार से मुक्त हो जाता है।

तात्पर्य : सन्त-पुरुष भौतिक मिथ्या प्रतिष्ठा से छुटकारा पाने के लिए स्वेच्छा से गरीबी स्वीकार कर लेता है। अनेक बड़े बड़े राजा लोग अपना राजसी ठाट-बाट छोड़कर वैदिक संस्कृति के अनुसार तपस्या करने के लिए वन में इसलिए चले गये कि वे शुद्ध हो सकें। किन्तु जो स्वेच्छा से ऐसा नहीं करता वह यदि दरिद्र बन जाता है, तो स्वतः तपस्या करने लगता है। तपस्या हर एक के लिए श्रेयस्कर है क्योंकि इससे भव-बंधन से छुटकारा मिल जाता है। अतः जिसे अपनी भौतिक स्थिति का बहुत गर्व हो तो उसकी मूर्खता ठीक करने के लिए सर्वोत्तम उपाय है कि उसे दरिद्र बना दिया जाय। *दारिद्र्य-दोषो गुण-राशि-नाशि*—जब मनुष्य दरिद्र होता है, तो धन, शिक्षा तथा सौन्दर्य में उसका मिथ्या अहंकार चूर-चूर हो जाता है। इस तरह राह में लाने पर वह मुक्ति के योग्य बन जाता है।

नित्यं क्षुत्क्षामदेहस्य दरिद्रस्यान्नकाङ्क्षिणः ।
इन्द्रियाण्यनुशुष्यन्ति हिंसापि विनिवर्तते ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

नित्यम्—सदैव; क्षुत्—भूख से; क्षाम—निर्बल; देहस्य—शरीर का; दरिद्रस्य—गरीब व्यक्ति के; अन्न-काङ्क्षिणः—सदैव पर्याप्त भोजन की इच्छा रखने वाला; इन्द्रियाणि—इन्द्रियों को, जिनकी उपमा सर्पों से दी जाती है; अनुशुष्यन्ति—धीरे धीरे क्षीण से क्षीणतर होती जाती हैं; हिंसा अपि—अन्यों से ईर्ष्या करने की प्रवृत्ति भी; विनिवर्तते—कम हो जाती है।.

दरिद्र व्यक्ति सदैव भूखा रहने और पर्याप्त भोजन की चाह करने के कारण धीरे धीरे क्षीण होता जाता है। अतिरिक्त बल न रहने से उसकी इन्द्रियाँ स्वतः शान्त पड़ जाती हैं। इसलिए दरिद्र मनुष्य हानिप्रद ईर्ष्यापूर्ण कार्य करने में अशक्त होता है। दूसरे शब्दों में, ऐसे व्यक्ति को उन तपस्याओं का फल स्वतः प्राप्त हो जाता है, जिसे सन्त-पुरुष स्वेच्छा से करते हैं।

तात्पर्य : अनुभवी डाक्टरों का मत है कि मधुमेह रोग अत्यधिक खाने से और क्षय रोग अत्यल्प खाने से होता है। हमें न तो मधुमेही बनने, न ही यक्ष्माग्रस्त होने की कामना करनी चाहिए। *यादव् अर्थ-प्रयोजनम्।* हमें कम खाना चाहिए और इस शरीर को कृष्णभावनामृत में अग्रसर होने के लिए दुरुस्त रखना चाहिए। *श्रीमद्भागवत* में अन्यत्र (१.२.) कहा गया है—

कामस्य नेन्द्रियप्रीतिर्लाभो जीवेत यावता।

जीवस्य तत्त्वजिज्ञासा नार्थो यश्चेह कर्मभिः॥

मानव जीवन का असली कार्य अपने को आत्म-साक्षात्कार के लिए स्वस्थ रखना है। मानव जीवन इन्द्रियों को वृथा हट्टा-कट्टा बनाने के लिए नहीं है, जिससे वह रोगग्रस्त हो और लड़ाई-झगड़े की भावना लेकर ईर्ष्यालु बने। किन्तु इस कलियुग में मानव सभ्यता का इतना विपथन हुआ है कि लोग व्यर्थ ही अर्थ-विकास में वृद्धि करके अधिकाधिक कसाईघर, मदिरालय तथा वेश्यालय खोल रहे हैं। इस तरह सारी सभ्यता चौपट हो रही है।

दरिद्रस्यैव युज्यन्ते साधवः समदर्शिनः ।
सद्भिः क्षिणोति तं तर्षं तत आराद्विशुद्ध्यति ॥१७॥

शब्दार्थ

दरिद्रस्य—दरिद्र व्यक्ति का; एव—निस्सन्देह; युज्यन्ते—सरलता से संगति कर सकते हैं; साधवः—साधु पुरुष; सम-दर्शिनः—यद्यपि साधु पुरुष दरिद्र तथा धनी दोनों पर समान दृष्टि रखने वाले हैं किन्तु दरिद्र व्यक्ति उनकी संगति का लाभ उठा सकते हैं; सद्भिः—ऐसे साधु पुरुषों की संगति से; क्षिणोति—कम करता है; तम्—भौतिक कष्ट के मूल कारण; तर्षम्—भौतिक मोक्ष की अभिलाषा को; ततः—तत्पश्चात्; आरात्—शीघ्र ही; विशुद्ध्यति—उसका भौतिक कल्मष धुल जाता है।

सन्त-पुरुष दरिद्रों के साथ बिना रोकटोक के घुलमिल सकते हैं किन्तु धनी व्यक्तियों के साथ नहीं। दरिद्र व्यक्ति ऐसे साधु पुरुषों की संगति से तुरन्त ही भौतिक इच्छाओं से विमुख हो जाता है और उसके मन का सारा मैल धुल जाता है।

तात्पर्य : कहा गया है—*महद्विचलनं नणां गृहिणां दीनचेतसाम्* (*भागवत* .८.४)। साधु-पुरुष

या संन्यासी का एकमात्र कार्य है कि वह कृष्णभावनामृत का प्रचार करे। यद्यपि साधु-पुरुष निर्धन तथा धनी दोनों को उपदेश देना चाहते हैं किन्तु निर्धन लोग उनके उपदेशों से धनी लोगों की अपेक्षा अधिक लाभ उठाते हैं। निर्धन व्यक्ति साधुओं का तुरन्त स्वागत करता है, उन्हें नमस्कार करता है और उनकी उपस्थिति का लाभ उठाना चाहता है किन्तु धनी व्यक्ति अपने दरवाजे पर एक बड़ा शिकारी कुत्ता रखता है, जिससे कोई उसके घर में घुस न सके। वह दरवाजे पर "कुत्ते से सावधान" लिखी तख्ती टाँग देता है और साधु-पुरुषों की संगति से कतराता है, जबकि निर्धन उनके लिए अपना द्वार खुला रखता है। इस तरह निर्धन लोग धनी लोगों की अपेक्षा उनसे अधिक लाभ उठाते हैं। नारद मुनि पूर्वजन्म में दासी के निर्धन पुत्र थे किन्तु सन्त-पुरुषों की संगति से बाद में स्वयं सुप्रतिष्ठित नारदमुनि बन गये। यह उनका वास्तविक अनुभव था। इसलिए वे अब निर्धन व्यक्ति की अवस्था की तुलना धनी व्यक्ति की अवस्था से कर रहे हैं।

सतां प्रसङ्गान् मम वीर्यसंविदो
भवन्ति हृत्कर्णरसायनाः कथाः।
तज्जोषनादाश्वपवर्गवर्त्मनि
श्रद्धा रतिर्भक्तिरनुक्रमिष्यति॥

(*भागवत* ३.२५.२५)

यदि किसी को सन्त-पुरुषों की संगति का लाभ हो सके तो वह उनके उपदेशों से भौतिक इच्छाओं से अधिकाधिक रहित हो जाता है।

कृष्णबहिर्मुख हैया भोग-वाञ्छा करे।
निकटस्थ माया तारे जापटिया धरे॥

(*प्रेमविवर्त*)

भौतिक जीवन का अर्थ ही है कि कृष्ण को भूल कर इन्द्रिय-तृप्ति की अधिकाधिक इच्छा करना। किन्तु यदि मनुष्य को सन्त-पुरुषों के उपदेशों का लाभ प्राप्त हो जाता है और वह भौतिक इच्छाओं की महत्ता को भूल जाता है, तो वह अपने आप शुद्ध हो जाता है। *चेतोदर्पणमार्जनं भवमहादावाग्नि निर्वापनम्* (*शिक्षाष्टक* १)। जब तक भौतिकवादी व्यक्ति का हृदय शुद्ध नहीं हो जाता वह

भवमहादावाग्नि के कष्ट से छुटकारा नहीं पा सकता।

साधूनां समचित्तानां मुकुन्दचरणैषिणाम् ।
उपेक्ष्यैः किं धनस्तम्भैरसद्भिरसदाश्रयैः ॥ १८॥

शब्दार्थ

साधूनाम्—साधु-पुरुषों का; सम-चित्तानाम्—उनका जो सबों को समान रूप में देखते हैं; मुकुन्द-चरण-एषिणाम्—जिनका एकमात्र कार्य है भगवान् मुकुन्द की सेवा करना और जो उसी सेवा की आंकाक्षा करते हैं; उपेक्ष्यैः—संगति की उपेक्षा करके; किम्—क्या; धन-स्तम्भैः—धनी तथा गर्वित; असद्भिः—अवांछित व्यक्तियों की संगति से; असत्-आश्रयैः—असतों अर्थात् अभक्तों की शरण लेकर।

सन्त-पुरुष (साधुजन) चौबीसों घण्टे कृष्ण का चिन्तन करते रहते हैं। उनकी और कोई रूचि नहीं रहती। तो फिर लोग ऐसे आध्यात्मिक पुरुषों की संगति की उपेक्षा करके क्यों उन भौतिकतावादियों की संगति करने का प्रयास करते हैं तथा उन अभक्तों की शरण लेते हैं जिनमें से अधिकांश अभिमानी तथा धनी हैं?

तात्पर्य : *साधु* वह है, जो विचलित हुए बिना भगवद्भक्ति में लगा रहता है (*भजते माम् अनन्यभाक्*)

तितिक्षस्व: कारुणिका: सुहृद: सर्वदेहिनाम्।

अजातशत्रव: शान्ता: साधव: साधु-भूषणा: ॥

''साधु के लक्षण हैं—वह सभी जीवों के प्रति सहिष्णु, दयालु तथा मित्र-भाव रखने वाला होता है। उसका कोई शत्रु नहीं होता। वह शान्त रहता है, शास्त्रों का पालन करता है और उसके सारे गुण उदात्त होते हैं। (*भागवत* ३.२५.२१)। साधु सबों का मित्र होता है(*सुहृद: सर्वदेहिनाम्*), तो फिर धनी लोग साधुओं की संगति न करके उन अन्य धनी व्यक्तियों की संगति में अपना बहुमूल्य समय क्यों गँवाते हैं, जिन्हें आध्यात्मिक जीवन से वितृष्णा है? निर्धन तथा धनी दोनों ही प्रकार के लोग कृष्णभावनामृत आन्दोलन का लाभ उठा सकते हैं अत: सबों को यही सलाह दी जाती है कि वे ऐसा करें। कृष्णभावनामृत आन्दोलन के सदस्यों की संगति से आनाकानी से कोई लाभ नहीं होगा। नरोत्तम दास ठाकुर ने कहा है—

सत्संग छाडिऽकैनु असते विलास।

ते-कारणे लागिल ये कर्म-बन्ध-फांस॥

यदि हम कृष्णभावनाभावित साधुओं की संगति छोड़कर इन्द्रिय-तृप्ति में व्यस्त रहने वाले तथा इसी कार्य के लिए धन संचय करने वाले लोगों से संगति करेंगे तो हमारा जीवन चौपट हो जायेगा। *असत्* शब्द *अवैष्णव* अर्थात् जो कृष्ण-भक्त नहीं है, का द्योतक है तथा *सत्* शब्द *वैष्णव* अर्थात् कृष्ण-भक्त का। मनुष्य को चाहिए कि वैष्णवों की संगति करे और अवैष्णवों के साथ मेल-जोल कर के अपना जीवन बर्बाद न करे। *भगवद्गीता* (७.१५) में वैष्णव तथा अवैष्णव का अन्तर बतलाया गया है—

न मां दुष्कृतिनो मूढा: प्रपद्यन्ते नराधमा:।

माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिता: ॥

जो कृष्ण की शरण में नहीं गया वह सर्वाधिक पापी (*दुष्कृती*), धूर्त (*मूढ*) तथा सबसे नीच (*नराधम*) व्यक्ति है। अत: मनुष्यों को चाहिए कि कृष्णभावनामृत आन्दोलन के रूप में विश्व-भर में प्राप्य वैष्णवों की संगति से कतरायें नहीं।

तदहं मत्तयोर्माध्व्या वारुण्या श्रीमदान्धयो: ।
तमोमदं हरिष्यामि स्त्रैणयोरजितात्मनो: ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

तत्—अतएव; अहम्—मैं; मत्तयो:—इन दोनों उन्मत्त पुरुषों के; माध्व्या—शराब पीने के कारण; वारुण्या—वारुणी नामक; श्री-मद-अन्धयो:—जो दैवी सम्पदा से अन्धे हो चुके हैं; तम:-मदम्—तमोगुण के कारण इस मिथ्या प्रतिष्ठा को; हरिष्यामि—छीन लूँगा; स्त्रैणयो:—स्त्रियों पर अनुरक्त होने के कारण; अजित-आत्मनो:—इन्द्रियों को वश में न कर पाने के कारण।

इसलिए ये दोनों व्यक्ति वारुणी या माध्वी नामक शराब पीकर तथा अपनी इन्द्रियों को वश में न रख सकने के कारण स्वर्ग के ऐश्वर्य-गर्व से अन्धे और स्त्रियों के प्रति अनुरक्त हो चुके हैं। मैं उनको इस झूठी प्रतिष्ठा से विहीन कर दूँगा।

तात्पर्य : जब कोई साधु किसी को डाँटता या दंड देता है, तो वह बदले की भावना से ऐसा नहीं करता। महाराज परीक्षित ने पूछा था कि नारदमुनि में किस तरह बदले की भावना (*तम:*) उठी। किन्तु यह *तम:* नहीं था क्योंकि नारदमुनि को पूर्ण ज्ञान था कि इन दोनों भाइयों का हित किसमें हैं इसलिए उन्होंने विचार किया कि उन्हें किस तरह मार्ग पर लाया जाय। वैष्णवजन अच्छे वैद्य होते हैं। वे जानते हैं कि भवरोग से मनुष्यों को कैसे बचाया जाय। अत: वे कभी भी *तमोगुणी* नहीं होते। *स गुणान् समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते* (*भगवद्गीता* १४.२६)। वैष्णवजन सदा ही ब्रह्म-पद पर स्थित होते

हैं। वे न तो कभी कोई गलती करते हैं, न ही भौतिक गुणों के वशीभूत होते हैं। पूरी तरह सोच-विचार कर वे जो भी करते हैं वह सबों को भगवद्धाम ले जाने के लिए मार्गदर्शक होता है।

यदिमौ लोकपालस्य पुत्रौ भूत्वा तमःप्लुतौ ।
न विवाससमात्मानं विजानीतः सुदुर्मदौ ॥ २० ॥
अतोऽर्हतः स्थावरतां स्यातां नैवं यथा पुनः ।
स्मृतिः स्यान्मत्प्रसादेन तत्रापि मदनुग्रहात् ॥ २१ ॥
वासुदेवस्य सान्निध्यं लब्ध्वा दिव्यशरच्छते ।
वृत्ते स्वर्लोकतां भूयो लब्धभक्ती भविष्यतः ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

यत्—चूँकि; इमौ—ये दोनों तरुण देवता; लोक-पालस्य—महान् देवता कुवेर के; पुत्रौ—पुत्र; भूत्वा—होकर; तमः-प्लुतौ—तमोगुण में बुरी तरह से मग्न; न—नहीं; विवाससम्—बिना किसी वस्त्र के, पूरी तरह नंगे; आत्मानम्—अपने शरीरों को; विजानीतः—जानते हुए कि नंगे हैं; सु-दुर्मदौ—मिथ्या अहंकार के कारण अत्यन्त पतित; अतः—इसलिए; अर्हतः—पात्र हैं; स्थावरताम्—वृक्ष जैसी गतिहीनता; स्याताम्—हो जायें; न—नहीं; एवम्—इस तरह; यथा—जिस तरह; पुनः—फिर; स्मृतिः—याद; स्यात्—बनी रहे; मत्-प्रसादेन—मेरी कृपा से; तत्र अपि—इसके अतिरिक्त; मत्-अनुग्रहात्—मेरे विशेष अनुग्रह से; वासुदेवस्य—भगवान् का; सान्निध्यम्—संगति, साक्षात्कार; लब्ध्वा—प्राप्त कर; दिव्य-शरत्-शते वृत्ते—देवताओं के एक सौ वर्ष बीतने के बाद; स्वर्लोकताम्—स्वर्गलोक में रहने की इच्छा; भूयः—पुनः; लब्ध-भक्ती—अपनी भक्ति को पुनः प्राप्त करके; भविष्यतः—हो जायेंगे।

ये दोनों युवक, नलकूवर तथा मणिग्रीव, भाग्यवश महान् देवता कुवेर के पुत्र हैं किन्तु मिथ्या प्रतिष्ठा तथा शराब पीने से उत्पन्न उन्मत्तता के कारण ये इतने पतित हो चुके हैं कि नंगे होकर भी यह नहीं समझ पा रहे कि वे नंगे हैं। अतः वृक्षों की तरह रहने वाले (वृक्ष नंगे होते हैं किन्तु चेतन नहीं होते) इन दोनों युवकों को वृक्षों का शरीर मिलना चाहिए। यही इनके लिए समुचित दण्ड होगा। फिर भी वृक्ष बनने से लेकर अपने उद्धार के समय तक इन्हें मेरी कृपा से अपने विगत पापकर्मों की याद बनी रहेगी। यही नहीं, मेरी विशेष कृपा से, देवताओं के सौ वर्ष बीतने के बाद ये भगवान् वासुदेव का दर्शन कर सकेंगे और भक्तों के रूप में अपना असली स्वरूप प्राप्त कर सकेंगे।

तात्पर्य : वृक्ष में चेतना नहीं होती क्योंकि जब काटा जाता है, तो उसे पीड़ा का अनुभव नहीं होता। परन्तु नारदमुनि चाहते थे कि नलकूवर तथा मणिग्रीव की चेतना (स्मृति) बनी रहे जिससे वृक्ष-जीवन से मुक्ति पाने के बाद भी वे उस परिस्थिति को न भूल सकें जिसके कारण उन्हें दण्डित होना पड़ा था। अतः उन पर विशेष कृपा करने के लिए नारदमुनि ने ऐसा किया कि मुक्त होने के बाद वे वृन्दावन में कृष्ण का दर्शन कर सकें और अपनी सुप्त भक्ति को फिर से प्राप्त कर सकें।

स्वर्गलोक का एक दिन हमारे छह महीनों के बराबर होता है। यद्यपि स्वर्ग के देवता भोगी हैं किन्तु वे सब भक्त हैं इसीलिए देवता कहलाते हैं। व्यक्ति दो प्रकार के होते हैं—देव तथा असुर। असुरगण कृष्ण के साथ अपने सम्बन्ध को भूल जाते हैं (*आसुरं भावमाश्रिताः*) किन्तु देवता नहीं भूलते।

द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन् दैव आसुर एव च।

विष्णुभक्तः स्मृतो दैव आसुरस्तद्विपर्ययः॥

(*पद्म पुराण*)

शुद्ध भक्त तथा *कर्ममिश्र* भक्त का अन्तर इस प्रकार है—शुद्ध भक्त भौतिक भोग के लिए किसी वस्तु की कामना नहीं करता जबकि कर्ममिश्र भक्त इस जगत का सर्वोपरि भोक्ता बनने के लिए भक्त बनता है। भगवान् की भक्ति के कारण प्रत्यक्ष सम्पर्क में रहने से भक्त शुद्ध तथा भौतिक इच्छाओं से अकलुषित रहता है (*अन्याभिलाषिता शून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्*)।

कर्ममिश्र भक्ति से मनुष्य स्वर्गलोक जाता है, *ज्ञानमिश्र भक्ति* से ब्रह्मतेज को प्राप्त होता है और *योगमिश्र भक्ति* से वह भगवान् की सर्वशक्तिमत्ता से परिचित होता है। किन्तु शुद्ध भक्ति कर्म, ज्ञान या योग पर आश्रित नहीं रहती क्योंकि यह एकमात्र प्रेम-व्यापार से युक्त होती है। इसलिए भक्त की मुक्ति मात्र *मुक्ति* नहीं अपितु *विमुक्ति* कहलाती है और पाँचों प्रकार की मुक्तियों—सायुज्य, सारूप्य, सालोक्य, सार्ष्टि तथा सामीप्य को पार कर जाती है। शुद्ध भक्त सदैव शुद्ध सेवा में अपने को लगाता है (*आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा*)। देवता के रूप में स्वर्ग में जन्म लेने से अधिकाधिक शुद्ध भक्त बनने का तथा भगवद्धाम जाने का अवसर प्राप्त होता है। नारदमुनि ने प्रकारान्तर से मणिग्रीव तथा नलकूवर को अपने तथाकथित शाप से बहुत बड़ा अवसर प्रदान किया।

श्रीशुक उवाच

एवमुक्त्वा स देवर्षिर्गतो नारायणाश्रमम् ।
नलकूवरमणिग्रीवावासतुर्यमलार्जुनौ ॥ २३॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; **एवम् उक्त्वा**—ऐसा कह कर; **सः**—वह; **देवर्षिः**—परम सन्त-पुरुष नारद; **गतः**—वहाँ से चला गया; **नारायण-आश्रमम्**—अपने आश्रम, जिसे नारायण-आश्रम कहते हैं; **नलकूवर**—नलकूवर; **मणिग्रीवौ**—तथा मणिग्रीव; **आसतुः**—वहाँ रह रहे; **यमल-अर्जुनौ**—जुड़वाँ अर्जुन वृक्ष बनने के लिए।

शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : इस तरह कह कर देवर्षि नारद अपने आश्रम, नारायण-आश्रम को लौट गये और नलकूवर तथा मणिग्रीव जुड़वाँ अर्जुन वृक्ष (यमलार्जुन) बन गये।

तात्पर्य : आज भी अनेक जंगलों में अर्जुन वृक्ष पाये जाते हैं जिनकी छाल हृदय-व्यथा होने पर डाक्टरों द्वारा दवाई तैयार करने के काम आती है। इसका अर्थ यह हुआ कि वृक्ष होने पर भी चिकित्सा-विज्ञान के लिए छाल निकालने पर उन्हें सताया जाता है।

ऋषेर्भागवतमुख्यस्य सत्यं कर्तुं वचो हरिः ।
जगाम शनकैस्तत्र यत्रास्तां यमलार्जुनौ ॥ २४॥

शब्दार्थ

ऋषेः—ऋषि नारद का; भागवत-मुख्यस्य—भक्तों में प्रमुख; सत्यम्—सत्य, सही; कर्तुम्—सिद्ध करने के लिए; वचः—शब्द; हरिः—भगवान् कृष्ण; जगाम—गये; शनकैः—धीरे-धीरे; तत्र—वहाँ; यत्र—जहाँ; आस्ताम्—थे; यमल-अर्जुनौ—दोनों अर्जुन वृक्ष।

सर्वोच्च भक्त नारद के वचनों को सत्य बनाने के लिए भगवान् श्रीकृष्ण धीरे धीरे उस स्थान पर गये जहाँ दोनों अर्जुन वृक्ष खड़े थे।

देवर्षिर्मे प्रियतमो यदिमौ धनदात्मजौ ।
तत्तथा साधयिष्यामि यद्गीतं तन्महात्मना ॥ २५॥

शब्दार्थ

देवर्षिः—परम सन्त देवर्षि नारद; मे—मेरा; प्रिय-तमः—सर्वाधिक प्रिय भक्त; यत्—यद्यपि; इमौ—ये दोनों (नलकूवर तथा मणिग्रीव); धनद-आत्मजौ—धनी पिता की सन्तान तथा अभक्त; तत्—देवर्षि के वचन; तथा—जिस प्रकार; साधयिष्यामि—सम्पन्न करूँगा (वे चाहते थे कि मैं यमलार्जुन के समक्ष आऊँ तो मैं ऐसा ही करूँगा); यत् गीतम्—जैसा कहा जा चुका है; तत्—वैसा; महात्मना—नारदमुनि द्वारा।

''यद्यपि ये दोनों युवक अत्यन्त धनी कुवेर के पुत्र हैं और उनसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है परन्तु देवर्षि नारद मेरा अत्यन्त प्रिय तथा वत्सल भक्त है और क्योंकि उसने चाहा था कि मैं इनके समक्ष आऊँ अतएव इनकी मुक्ति के लिए मुझे ऐसा करना चाहिए।''

तात्पर्य : नलकूवर तथा मणिग्रीव को वास्तव में न तो भक्ति से, न ही भगवान् के साक्षात्कार से कोई प्रयोजन था, क्योंकि यह कोई ऐसा-वैसा साधारण अवसर नहीं था। ऐसा नहीं है कि यदि कोई धनी हो, या विद्वान या उच्च कुल में जन्मा हो तो उसे भगवान् का साक्षात्कार हो ही जायगा। ऐसा असम्भव है। किन्तु, इस मामले में नारदमुनि की इच्छा थी कि नलकूवर तथा मणिग्रीव वासुदेव का प्रत्यक्ष दर्शन करें अतएव भगवान् ने अपने प्रिय भक्त नारदमुनि के वचनों को पूरा करना चाहा। यदि

सीधे भगवान् से वर माँगने की बजाय किसी भक्त की कृपा प्राप्त की जाय तो बड़ी आसानी से सफलता प्राप्त हो सकती है। इसीलिए श्रील भक्तिविनोद ठाकुर की संस्तुति है—*वैष्णव ठाकुर तोमार कुक्कुर भुलिया जानह मोरे, कृष्ण से तोमार कृष्ण दिते पार।* मनुष्य को चाहिए कि भक्त के पीछे निरन्तर कुत्ते के समान चलने की कामना करे। कृष्ण तो भक्त के हाथ बिके हुए हैं। *अदुर्लभम् आत्मभक्तौ।* अत: भक्त की कृपा के बिना कृष्ण तक सीधे पहुँचा भी नहीं जा सकता, उनकी सेवा करना तो दूर रहा। इसीलिए नरोत्तम दास ठाकुर ने गाया है—*छाडिया वैष्णव-सेवा निस्तार पायेछे केबा*—शुद्ध भक्त का दास बने बिना भवसागर से उद्धार नहीं हो सकता। हमारे गौड़ीय वैष्णव समाज में, रूप गोस्वामी का अनुसरण करते हुए हमारा पहला कार्य होता है प्रामाणिक आध्यात्मिक गुरु की शरण में जाना (*आदौ गुर्वाश्रय:*)।

इत्यन्तरेणार्जुनयो: कृष्णस्तु यमयोर्ययौ ।
आत्मनिर्वेशमात्रेण तिर्यग्गतमुलूखलम् ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

इति—ऐसा निश्चय करके; अन्तरेण—बीच में; अर्जुनयो:—दोनों अर्जुन वृक्षों के; कृष्ण: तु—भगवान् कृष्ण; यमयो: ययौ—दोनों वृक्षों के बीच प्रविष्ट हुए; आत्म-निर्वेश-मात्रेण—घुसते ही; तिर्यक्—तिरछी; गतम्—हो गई; उलूखलम्—ओखली।

इस तरह कह कर कृष्ण तुरन्त ही दो अर्जुन वृक्षों के बीच प्रविष्ट हुए जिससे वह बड़ी ओखली जिससे वे बाँधे गये थे तिरछी हो गई और उनके बीच फँस गई।

बालेन निष्कर्षयतान्वगुलूखलं तद्
दामोदरेण तरसोत्कलिताङ्घ्रिबन्धौ ।
निष्पेततु: परमविक्रमितातिवेप-
स्कन्धप्रवालविटपौ कृतचण्डशब्दौ ॥ २७॥

शब्दार्थ

बालेन—बालक कृष्ण द्वारा; निष्कर्षयता—घसीटते हुए; अन्वक्—पीछा करती; उलूखलम्—ओखली; तत्—वह; दाम-उदरेण—पेट से बँधे कृष्ण द्वारा; तरसा—बलपूर्वक; उत्कलित—उखड़ आईं; अङ्घ्रि-बन्धौ—दोनों वृक्षों की जड़ें; निष्पेततु:—गिर पड़े; परम-विक्रमित—परम शक्ति द्वारा; अति-वेप—बुरी तरह हिलते-डुलते हुए; स्कन्ध—तना; प्रवाल—पत्तियों के गुच्छे; विटपौ—दोनों वृक्ष; कृत—करते हुए; चण्ड-शब्दौ—भयानक शब्द।

अपने पेट से बँधी ओखली को बलपूर्वक अपने पीछे घसीटते हुए बालक कृष्ण ने दोनों वृक्षों को उखाड़ दिया। परम पुरुष की महान् शक्ति से दोनों वृक्ष अपने तनों, पत्तों तथा टहनियों समेत बुरी तरह से हिले और तड़तड़ाते हुए भूमि पर गिर पड़े।

तात्पर्य : कृष्ण की यह लीला *दामोदर लीला* कहलाती है। इसीलिए कृष्ण का एक अन्य नाम दामोदर है। *हरिवंश* में कहा गया है—

स च तेनैव नाम्ना तु कृष्णो वै दामबन्धनात्।

गोष्ठे दामोदर इति गोपीभिः परिगीयते॥

तत्र श्रिया परमया ककुभः स्फुरन्तौ
सिद्धावुपेत्य कुजयोरिव जातवेदाः ।
कृष्णं प्रणम्य शिरसाखिललोकनाथं
बद्धाञ्जली विरजसाविदमूचतुः स्म ॥ २८॥

शब्दार्थ

तत्र—वहाँ, जहाँ अर्जुन वृक्ष गिरे थे; श्रिया—सजायी गयी; परमया—अत्यधिक; ककुभः—सारी दिशाएँ; स्फुरन्तौ—तेज से प्रकाशित; सिद्धौ—दो सिद्ध पुरुष; उपेत्य—निकल कर; कुजयोः—दोनों वृक्षों के बीच से; इव—सदृश; जात-वेदाः—साक्षात् अग्नि; कृष्णम्—भगवान् कृष्ण को; प्रणम्य—प्रणाम करके; शिरसा—सिर के बल; अखिल-लोक-नाथम्—परम पुरुष को, जो सबों के स्वामी हैं; बद्ध-अञ्जली—हाथ जोड़े हुए; विरजसौ—तमोगुण धुल जाने पर; इदम्—यह; ऊचतुः स्म—कहा।

तत्पश्चात् जिस स्थान पर दोनों अर्जुन वृक्ष गिरे थे वहीं पर दोनों वृक्षों से दो महान् सिद्ध पुरुष, जो साक्षात् अग्नि जैसे लग रहे थे, बाहर निकल आये। उनके सौन्दर्य का तेज चारों ओर प्रकाशित हो रहा था। उन्होंने नतमस्तक होकर कृष्ण को नमस्कार किया और हाथ जोड़ कर निम्नलिखित शब्द कहे।

कृष्ण कृष्ण महायोगिंस्त्वमाद्यः पुरुषः परः ।
व्यक्ताव्यक्तमिदं विश्वं रूपं ते ब्राह्मणा विदुः ॥ २९॥

शब्दार्थ

कृष्ण कृष्ण—हे कृष्ण, हे कृष्ण; महा-योगिन्—हे योगेश्वर; त्वम्—तुम; आद्यः—मूल कारण; पुरुषः—परम पुरुष; परः—इस सृष्टि से परे; व्यक्त-अव्यक्तम्—यह विराट जगत जो कार्य-कारण अथवा स्थूल-सूक्ष्म रूपों से बना है; इदम्—यह; विश्वम्—सारा जगत; रूपम्—रूप; ते—तुम्हारा; ब्राह्मणाः—विद्वान ब्राह्मण; विदुः—जानते हैं।

हे कृष्ण, हे कृष्ण, आपकी योगशक्ति अचिन्त्य है। आप सर्वोच्च आदि-पुरुष हैं, आप समस्त कारणों के कारण हैं, आप पास रह कर भी दूर हैं और इस भौतिक सृष्टि से परे हैं। विद्वान ब्राह्मण जानते हैं (सर्वं खल्विदं ब्रह्म—इस वैदिक कथन के आधार पर) कि आप सर्वेसर्वा हैं और यह विराट विश्व अपने स्थूल तथा सूक्ष्म रूपों में आपका ही स्वरूप है।

तात्पर्य : नलकूवर तथा मणिग्रीव नामक दोनों देवता अपनी निरन्तर स्मृति के कारण नारद की कृपा से कृष्ण की श्रेष्ठता को समझ सके। अब उन्होंने स्वीकार किया, ''यह आपकी योजना थी कि

नारदमुनि के आशीर्वाद से हमारा उद्धार हो। अतः आप परम योगी हैं। आप भूत, वर्तमान तथा भविष्य—सबके जानने वाले हैं। आपने ऐसी सुन्दर योजना बनाई थी कि यद्यपि हम यहाँ पर जुड़वाँ अर्जुन वृक्ष के रूप में खड़े रहे किन्तु हमारे उद्धार के लिए छोटे बालक के रूप में आप प्रकट हुए हैं। यह आपकी ही अचिन्त्य योजना थी। आप परम पुरुष होने के कारण कुछ भी कर सकते हैं।''

त्वमेकः सर्वभूतानां देहास्वात्मेन्द्रियेश्वरः ।
त्वमेव कालो भगवान्विष्णुरव्यय ईश्वरः ॥ ३० ॥
त्वं महान्प्रकृतिः सूक्ष्मा रजःसत्त्वतमोमयी ।
त्वमेव पुरुषोऽध्यक्षः सर्वक्षेत्रविकारवित् ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

त्वम्—आप; एकः—एक; सर्व-भूतानाम्—सारे जीवों के; देह—शरीर के; असु—प्राण के; आत्म—आत्मा के; इन्द्रिय—इन्द्रियों के; ईश्वरः—परमात्मा, नियंत्रक; त्वम्—आप; एव—निस्सन्देह; कालः—काल; भगवान्—भगवान्; विष्णुः—सर्वव्यापी; अव्ययः—अनश्वर; ईश्वरः—नियन्ता; त्वम्—आप; महान्—सबसे बड़े; प्रकृतिः—भौतिक जगत; सूक्ष्मा—सूक्ष्म; रजः-सत्त्व-तमः-मयी—प्रकृति के तीन गुणों (रजो, सतो तथा तमो (गुणों) से युक्त; त्वम् एव—आप सचमुच हैं; पुरुषः—परम पुरुष; अध्यक्षः—स्वामी; सर्व-क्षेत्र—सारे जीवों के; विकार-वित्—चंचल मन को जानने वाले।

आप हर वस्तु के नियन्ता भगवान् हैं। आप ही हर जीव का शरीर, प्राण, अहंकार तथा इन्द्रियाँ हैं। आप परम पुरुष, अक्षय नियन्ता विष्णु हैं। आप काल, तात्कालिक कारण और तीन गुणों—सतो, रजो तथा तमो गुणों—वाली भौतिक प्रकृति हैं। आप इस भौतिक जगत के आदि कारण हैं। आप परमात्मा हैं। अतएव आप हर एक जीव के हृदय की बात को जानने वाले हैं।

तात्पर्य : श्रीपाद मध्वाचार्य ने *वामन पुराण* से निम्नलिखित श्लोक उद्धृत किया है—

रूप्यत्वात् तु जगद् रूपं विष्णोः साक्षात् सुखात्मकम् ।

नित्यपूर्णं समुद्दिष्टं स्वरूपं परमात्मनः ॥

गृह्यमाणैस्त्वमग्राह्यो विकारैः प्राकृतैर्गुणैः ।
को न्विहार्हति विज्ञातुं प्राक्सिद्धं गुणसंवृतः ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

गृह्यमाणैः—दृश्य होने के कारण प्रकृति से बने शरीर को स्वीकार करने से; त्वम्—आप; अग्राह्यः—प्रकृति से निर्मित शरीर में ही सीमित न रह कर; विकारैः—मन द्वारा विचलित; प्राकृतैः गुणैः—प्रकृति के गुणों द्वारा (सत्त्व गुण, रजोगुण तथा तमो गुण); कः—कौन है; नु—उसके बाद; इह—इस जगत में; अर्हति—योग्य होता है; विज्ञातुम्—जानने के लिए; प्राक् सिद्धम्—सृष्टि के पूर्व उपस्थित; गुण-संवृतः—भौतिक गुणों से आच्छन्न होने के कारण।

हे प्रभु, आप सृष्टि के पूर्व से विद्यमान हैं। अतः इस जगत में भौतिक गुणों वाले शरीर में बन्दी रहने वाला ऐसा कौन है, जो आपको समझ सके?

तात्पर्य : कहा गया है (*भक्तिरसामृत सिन्धु* १.२.२३४)

अत: श्रीकृष्णनामादि न भवेद् ग्राह्यमिन्द्रियै।

सेवोन्मुखे हि जिह्वादौ स्वयमेव स्फुरत्यद: ॥

कृष्ण के नाम, गुण तथा रूप परम सत्य हैं, जो सृष्टि के प्रारम्भ से विद्यमान हैं। अत: जो सृजित किये गये हैं—जो भौतिक तत्त्वों से बने शरीरों में बन्दी हैं—भला वे कृष्ण को किस तरह भलीभाँति समझ सकते हैं? ऐसा सम्भव नहीं। किन्तु, *सेवोन्मुखे हि जिह्वादौ स्वयमेव स्फुरत्यद:*—जो भक्ति में लगे हैं उनके समक्ष कृष्ण प्रकट होते हैं। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* (१८.१५) में भी स्वयं भगवान् ने की है— *भक्त्या मामभिजानाति।* कभी कभी *श्रीमद्भागवत* में दिये गये कृष्ण विषयक विवरणों का मन्द बुद्धि वाले अल्पज्ञ लोग गलत अर्थ लगाते हैं। अत: उन्हें जानने का सर्वोत्तम उपाय है कि शुद्ध भक्ति में प्रवृत्त हुआ जाय। भक्ति में जो जितनी प्रगति करता है, वह उन्हें यथार्थ रूप में उतना ही अधिक समझ सकता है। यदि भौतिक पद से कृष्ण को समझा जा सकता तो क्योंकि कृष्णा ही सबकुछ है (सर्वं खलु इदं ब्रह्म) इस संसार की किसी भी वस्तु को देखकर कृष्ण को समझा जा सकता था। किन्तु ऐसा सम्भव नहीं है।

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना।

मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थित: ॥

(*भगवद्गीता* ८.४)

सारी वस्तुएँ कृष्ण पर टिकी हैं और सारी वस्तुएँ कृष्ण हैं किन्तु भौतिक पद पर स्थित व्यक्तियों को इसकी अनुभूति नहीं हो पाती।

तस्मै तुभ्यं भगवते वासुदेवाय वेधसे ।
आत्मद्योतगुणैश्छन्नमहिम्ने ब्रह्मणे नमः ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

तस्मै—उसको; तुभ्यम्—आपको; भगवते—भगवान् को; वासुदेवाय—संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध के उद्गम वासुदेव को; वेधसे—सृष्टि के उद्गम को; आत्म-द्योत-गुणैः छन्न-महिम्ने—आपको, जिसका यश अपनी ही शक्ति से आच्छादित है; ब्रह्मणे—परब्रह्म को; नमः—हमारा नमस्कार।

अपनी ही शक्ति से आच्छादित महिमा वाले हे प्रभु, आप भगवान् हैं। आप सृष्टि के उद्गम, संकर्षण, हैं और चतुर्व्यूह के उद्गम, वासुदेव, हैं। आप सर्वस्व होने से परब्रह्म हैं अतएव हम

आपको सादर नमस्कार करते हैं।

तात्पर्य : कृष्ण को विस्तार से जानने का प्रयास करने की अपेक्षा श्रेयस्कर यही होगा कि हम उन्हें सादर नमस्कार करें क्योंकि वे हर वस्तु के उद्‌गम हैं और सर्वस्व हैं। चूँकि हम प्रकृति के गुणों से प्रच्छन्न हैं अतएव जब तक वे हमारे समक्ष प्रकट न हों तब तक हमारे लिए उन्हें समझ पाना अत्यन्त कठिन है। इसलिए यह स्वीकार करना श्रेयस्कर है कि वे ही सर्वस्व हैं और हम उनके चरणकमलों में नमस्कार करें।

यस्यावतारा ज्ञायन्ते शरीरेष्वशरीरिणः ।
तैस्तैरतुल्यातिशयैर्वीर्यैर्देहिष्वसङ्गतैः ॥ ३४॥
स भवान्सर्वलोकस्य भवाय विभवाय च ।
अवतीर्णोऽंशभागेन साम्प्रतं पतिराशिषाम् ॥ ३५॥

शब्दार्थ

यस्य—जिसका; अवताराः—विभिन्न अवतार यथा मत्स्य, कूर्म, वराह; ज्ञायन्ते—कल्पित किये जाते हैं; शरीरेषु—भिन्न भिन्न प्रकार से दृश्य विभिन्न शरीरों में; अशरीरिणः—सामान्य शरीर नहीं अपितु दिव्य हैं; तैः तैः—उन्हीं उन्हीं कर्मों द्वारा; अतुल्य—अतुलनीय; अति-शयैः—असीम; वीर्यैः—बल द्वारा; देहिषु—शरीरधारियों द्वारा; असङ्गतैः—विभिन्न अवतारों में जो कार्य कर पाना असम्भव है; सः—वही परमेश्वर; भवान्—आप; सर्व-लोकस्य—हर एक की; भवाय—उन्नति के लिए; विभवाय—मुक्ति के लिए; च—तथा; अवतीर्णः—अवतरित हुए हैं; अंश-भागेन—अंश समेत पूर्ण शक्ति में; साम्प्रतम्—इस क्षण; पतिः आशिषाम्—आप समस्त शुभ के स्वामी भगवान् हैं।

आप मत्स्य, कूर्म, वराह जैसे शरीरों में प्रकट होकर ऐसे प्राणियों द्वारा सम्पन्न न हो सकने वाले कार्यकलाप—असामान्य, अतुलनीय, असीम शक्ति वाले दिव्य कार्य—प्रदर्शित करते हैं। अतएव आपके ये शरीर भौतिक तत्त्वों से नहीं बने होते अपितु आपके अवतार होते हैं। आप वही भगवान् हैं, जो अब अपनी पूर्ण शक्ति के साथ इस जगत के सारे जीवों के लाभ के लिए प्रकट हुए हैं।

तात्पर्य : *भगवद्‌गीता* (४.७-८) में कहा गया है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।

धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

जब असली आध्यात्मिक जीवन का ह्रास होता है और जब संसार में उत्पात मचाने के लिए धूर्तों

तथा चोरों की वृद्धि होती है, तो कृष्ण प्रकट होते हैं। अभागे, अल्पज्ञ, भक्तिहीन लोग भगवान् के कार्यकलापों को नहीं समझ सकते अत: ऐसे व्यक्ति ऐसे कार्यों को *कल्पना* बतलाते हैं क्योंकि वे धूर्त तथा अधम होते हैं (*न मां दुष्कृतिनो मूढा: प्रपद्यन्ते नराधमा:*)। ऐसे लोग यह नहीं समझ पाते कि पुराणों तथा अन्य शास्त्रों में व्यासदेव ने जिन घटनाओं का वर्णन किया है वे काल्पनिक नहीं अपितु यथार्थ हैं।

कृष्ण अपनी असीमपूर्ण शक्ति से प्रदर्शित करते हैं कि वे भगवान् हैं क्योंकि दोनों वृक्ष इतने विशाल तथा सुदृढ़ थे कि कई हाथी मिल कर भी उन्हें हिला नहीं सकते थे। पर बालकरूप कृष्ण ने ऐसी असामान्य शक्ति दिखलाई कि वे धमाके के साथ भूमि पर गिर पड़े। प्रारम्भ से ही पूतना, शकटासुर तथा तृणावर्त को मार कर, वृक्षों को गिराकर तथा अपने मुख के भीतर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड दिखलाकर कृष्ण ने सिद्ध कर दिया था कि वे भगवान् हैं। पापकर्मों के कारण अधमाधम (*मूढ*) इसे नहीं समझ सकता किन्तु भक्तगण इसे किसी शंका के बिना स्वीकार कर लेते हैं। इस तरह भक्त का स्थान अभक्त से भिन्न है।

नमः परमकल्याण नमः परममङ्गल ।
वासुदेवाय शान्ताय यदूनां पतये नमः ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

नमः—हम नमस्कार करते हैं; **परम-कल्याण**—आप परम कल्याण हैं; **नमः**—हमारा आपको नमस्कार; **परम-मङ्गल**—आप जो भी करते हैं वह उत्तम है; **वासुदेवाय**—वासुदेव को; **शान्ताय**—अत्यन्त शान्त को; **यदूनाम्**—यदुवंश के; **पतये**—नियन्ता को; **नमः**—हमारा नमस्कार है।

हे परम कल्याण, हम आपको सादर नमस्कार करते हैं क्योंकि आप परम शुभ हैं। हे यदुवंश के प्रसिद्ध वंशज तथा नियन्ता, हे वसुदेव-पुत्र, हे परम शान्त, हम आपके चरणकमलों में सादर नमस्कार करते हैं।

तात्पर्य : *परम-कल्याण* शब्द महत्त्वपूर्ण है क्योंकि कृष्ण अपने किसी भी अवतार में साधुओं की रक्षा करने के लिए ही प्रकट होते हैं (*परित्राणाय साधूनाम्*)। साधुगण अर्थात् सन्त-पुरुष या भक्तगण सदैव असुरों द्वारा सताये जाते हैं और कृष्ण विविध अवतारों में प्रकट होकर उन्हें राहत दिलाते हैं। उनका यह पहला कार्य है। यदि हम कृष्ण के जीवन का इतिहास पढ़ें तो पायेंगे कि अधिकांश जीवन में वे एक एक करके असुरों का वध करने में ही लगे रहे।

अनुजानीहि नौ भूमंस्तवानुचरकिङ्करौ ।
दर्शनं नौ भगवत ऋषेरासीदनुग्रहात् ॥ ३७॥

शब्दार्थ

अनुजानीहि—आप अनुमति दें; नौ—हमें; भूमन्—हे विराट रूप; तव अनुचर-किङ्करौ—हम आपके विश्वस्त भक्त नारदमुनि के दास हैं; दर्शनम्—साक्षात् देखने के लिए; नौ—हमारा; भगवतः—आपका; ऋषेः—नारद ऋषि का; आसीत्—था (शाप के रूप में); अनुग्रहात्—कृपा से।

हे परम रूप, हम सदैव आपके दासों के, विशेष रूप से नारदमुनि के दास हैं। अब आप हमें अपने घर जाने की अनुमति दें। यह तो नारदमुनि की कृपा है कि हम आपका साक्षात् दर्शन कर सके।

तात्पर्य : भक्त का आशीर्वाद पाये बिना मनुष्य को अनुभूति नहीं हो पाती कि कृष्ण भगवान् हैं। *मनुष्याणां सहस्रेषु, कश्चिद् यतति सिद्धये। भगवद्गीता* के इस श्लोक (७.३) के अनुसार, ऐसे अनेक सिद्ध या योगी हैं, जो कृष्ण को नहीं समझ पाते। उल्टे वे उनका गलत अर्थ लगाते हैं। किन्तु यदि नारद की परम्परा से चले आ रहे (*स्वयम्भूर्नारदः शम्भुः*) भक्त की शरण ग्रहण की जाय तो यह समझ में आ सकता है कि कौन व्यक्ति भगवान् का अवतार है। इस युग में अनेक छद्म अवतार इसलिए विज्ञापित किये जाते हैं कि वे कुछ जादूगरी दिखला चुके हैं किन्तु नारद के दासों तथा कृष्ण के अन्य दासों के अतिरिक्त अन्य कोई भी यह नहीं समझ सकता कि कौन ईश्वर है और कौन नहीं है। इसकी पुष्टि नरोत्तम दास ठाकुर ने की है। *छाडिया वैष्णवसेवा निस्तार पायेछे केबा*—जब तक किसी वैष्णव की कृपा नहीं होती तब तक जीवन के भौतिक बोध से कोई छुटकारा नहीं पाता। अन्य लोग न तो कल्पना से न ही शारीरिक या मानसिक आसनों से कभी समझ सकेंगे।

वाणी गुणानुकथने श्रवणौ कथायां
हस्तौ च कर्मसु मनस्तव पादयोर्नः ।
स्मृत्यां शिरस्तव निवासजगत्प्रणामे
दृष्टिः सतां दर्शनेऽस्तु भवत्तनूनाम् ॥ ३८॥

शब्दार्थ

वाणी—शब्द, बोलने की शक्ति; गुण-अनुकथने—सदैव आपकी लीलाओं के विषय में बातें करने में व्यस्त; श्रवणौ—कान; कथायाम्—आपकी तथा आपकी लीलाओं के विषय में बातें करने में; हस्तौ—हाथ, पैर तथा अन्य इन्द्रियाँ; च—भी; कर्मसु—आपका आदेश पालन करने में लगाकर; मनः—मन; तव—आपका; पादयोः—चरणकमलों का; नः—हमारी; स्मृत्याम्—ध्यान में लगी स्मृति में; शिरः—सिर; तव—आपका; निवास-जगत्-प्रणामे—चूँकि आप सर्वव्यापी हैं और सर्वस्व हैं तथा हमारे

सिरों को नत होना चाहिए, भोग के लिए नहीं; दृष्टिः—देखने की शक्ति; सताम्—वैष्णवों के; दर्शने—दर्शन करने में; अस्तु—इसी तरह लगे रहें; भवत्-तनूनाम्—जो आपसे अभिन्न हैं।

अब से हमारे सभी शब्द आपकी लीलाओं का वर्णन करें, हमारे कान आपकी महिमा का श्रवण करें, हमारे हाथ, पाँव तथा अन्य इन्द्रियाँ आपको प्रसन्न करने के कार्यों में लगें तथा हमारे मन सदैव आपके चरणकमलों का चिन्तन करें। हमारे सिर इस संसार की हर वस्तु को नमस्कार करें क्योंकि सारी वस्तुएँ आपके ही विभिन्न रूप हैं और हमारी आँखें आपसे अभिन्न वैष्णवों के रूपों का दर्शन करें।

तात्पर्य : यहाँ पर भगवान् को समझने की विधि दी गई है। यह विधि *भक्ति* है।

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।

अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥

(*भागवत* ७.५.२३)

हर वस्तु को भगवान् की सेवा में लगाना चाहिए। *हृषीकेण हृषीकेशसेवनं भक्तिरुच्यते* (नारद पञ्चरात्र)। भगवान् कृष्ण की सेवा में हर वस्तु को—मन, शरीर तथा सारी इन्द्रियों को—लगाना चाहिए। इसे नारद, स्वयम्भू तथा शम्भु जैसे दक्ष भक्तों से सीखना होगा। यही विधि है। हम भगवान् को समझने की अपनी विधि नहीं गढ़ सकते क्योंकि ऐसा नहीं है कि हम जो भी कल्पना कर लें या मन से गढ़ लें उससे भगवान् का ज्ञान हो जायेगा। ऐसा विचार—*यत मत, तत पथ*—मूर्खतापूर्ण होता है। कृष्ण कहते हैं—*भक्त्याहमेकया ग्राह्यः*—केवल भक्ति के कार्यों द्वारा मुझे समझा जा सकता है (*भागवत* ११.१४.२१)। यह *आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनम्* अर्थात् भगवान् की सेवा में अनुकूल भाव से लगे रहना कहलाता है।

श्रीशुक उवाच

इत्थं सङ्कीर्तितस्ताभ्यां भगवान्गोकुलेश्वरः ।
दाम्ना चोलूखले बद्धः प्रहसन्नाह गुह्यकौ ॥ ३९॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; इत्थम्—इस प्रकार, जैसाकि पहले कहा जा चुका है; सङ्कीर्तितः—महिमा का गायन किये जाने तथा प्रशंसित होने पर; ताभ्याम्—दोनों देवताओं द्वारा; भगवान्—भगवान्; गोकुल-ईश्वरः—गोकुल के स्वामी (क्योंकि वे सर्व-लोक-महेश्वर हैं); दाम्ना—रस्सी से; च—भी; उलूखले—ओखली में; बद्धः—बँधे हुए; प्रहसन्—हँसते हुए; आह—कहा; गुह्यकौ—दोनों देवताओं से।

शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : इस तरह दोनों देवताओं ने भगवान् की स्तुति की। यद्यपि

भगवान् कृष्ण सबों के स्वामी हैं और गोकुलेश्वर थे किन्तु वे गोपियों की रस्सियों द्वारा लकड़ी की ओखली से बाँध दिये गये थे इसलिए उन्होंने हँसते हुए कुवेर के पुत्रों से ये शब्द कहे।

तात्पर्य : कृष्ण इसलिए मुसका रहे थे क्योंकि वे सोच रहे थे, "ये दोनों युवा देवता स्वर्गलोक से इस लोक में गिरे हैं और यद्यपि दीर्घकाल से वृक्षों के रूप में खड़े इन दोनों को मैंने बन्धन से छुटकारा दिला दिया है किन्तु मैं स्वयं गोपियों की रस्सियों से बँधा हुआ हूँ और उनकी डाँटे सह रहा हूँ।" दूसरे शब्दों में, कृष्ण शुद्ध प्रेमवश जो भक्त द्वारा कई विधियों से प्रशंसनीय है, गोपियों द्वारा डाँटे तथा बाँधे जाने को अंगीकार करते हैं।

श्रीभगवानुवाच
ज्ञातं मम पुरैवैतदृषिणा करुणात्मना ।
यच्छ्रीमदान्धयोर्वाग्भिर्विभ्रंशोऽनुग्रहः कृतः ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—श्रीभगवान् ने कहा; ज्ञातम्—ज्ञात है; मम—मुझको; पुरा—भूतकाल में; एव—निस्सन्देह; एतत्—यह घटना; ऋषिणा—नारद ऋषि से; करुणा-आत्मना—तुम पर अत्यधिक कृपालु होने के कारण; यत्—जो; श्री-मद-अन्धयोः—जो भौतिक ऐश्वर्य के पीछे उन्मत्त हो चुके थे फलतः अंधे बन गये थे; वाग्भिः—वाणी से या शाप से; विभ्रंशः—स्वर्गलोक से गिर कर यहाँ पर अर्जुन वृक्ष बनने के लिए; अनुग्रहः कृतः—तुम पर उन्होंने बहुत अनुग्रह किया है।

भगवान् ने कहा : परम सन्त नारदमुनि अत्यन्त कृपालु हैं। उन्होंने अपने शाप से तुम दोनों पर बहुत बड़ा अनुग्रह किया है क्योंकि तुम दोनों भौतिक ऐश्वर्य के पीछे उन्मत्त होकर अन्धे बन चुके थे। यद्यपि तुम दोनों स्वर्गलोक से गिर कर वृक्ष बने थे किन्तु उन्होंने तुम दोनों पर सर्वाधिक कृपा की। मैं प्रारम्भ से ही इन घटनाओं को जानता था।

तात्पर्य : अब भगवान् द्वारा इसकी पुष्टि हो जाती है कि भक्त का शाप अनुग्रह भी माना जाता है। जिस तरह कृष्ण अर्थात् ईश्वर सर्वमंगल रूप हैं उसी तरह वैष्णव भी होता है। वह जो भी करता है, वह हर एक के लिए शुभ होता है। इसकी व्याख्या अगले श्लोक में की गई है।

साधूनां समचित्तानां सुतरां मत्कृतात्मनाम् ।
दर्शनान्नो भवेद्बन्धः पुंसोऽक्ष्णोः सवितुर्यथा ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

साधूनाम्—सारे भक्तों का; सम-चित्तानाम्—जो हर एक के प्रति समभाव रखते हैं; सुतराम्—पूर्णतया; मत्-कृत-आत्मनाम्—उन व्यक्तियों का जो पूर्ण शरणागत हैं या मेरी सेवा करने के लिए कृतसंकल्प हैं; दर्शनात्—मात्र दर्शन करने से; नो भवेत् बन्धः—सारे भौतिक बन्धन से मुक्ति; पुंसः—व्यक्ति का; अक्ष्णोः—आँखों का; सवितुः यथा—मानो सूर्य के समक्ष हो।

जब कोई व्यक्ति सूर्य के समक्ष होता है, तो उसकी आँखों में अँधेरा नहीं रह जाता। इसी तरह जब कोई व्यक्ति ऐसे साधु या भक्त के समक्ष होता है, जो पूर्णतया दृढ़ तथा भगवान् के शरणागत होता है, तो उसका भव-बन्धन छूट जाता है।

तात्पर्य : चैतन्य महाप्रभु ने (*चैतन्य-चरितामृ, मध्य* २२.५४) कहा है—

'साधु-संग' 'साधु-संग'—सर्व-शास्त्रे कय।

लव-मात्र साधु-संगे सर्वसिद्धि हय॥

यदि संयोगवश किसी की साधु अर्थात् भक्त से भेंट हो जाती है, तो उसका जीवन तत्क्षण सफल हो जाता है और वह भव-बन्धन से छूट जाता है। यह तर्क किया जा सकता है कि जहाँ एक व्यक्ति साधु का अत्यधिक आदर करता है, वहाँ दूसरा व्यक्ति साधु का उतना आदर नहीं कर पाता। किन्तु साधु हर व्यक्ति पर सम-दृष्टि रखता है। शुद्ध भक्त होने से साधु सदैव भेदभाव भूल कर कृष्णभावनामृत प्रदान करने के लिए उद्यत रहता है। साधु का दर्शन करने से ही मनुष्य मुक्त हो जाता है। तो भी जो लोग अत्यधिक अपराधी हैं, जो *वैष्णव अपराध* करते हैं या साधु अपराध करते हैं, उन्हें सुधरने में कुछ समय लगता है। इसका भी इसमें संकेत है।

तद्गच्छतं मत्परमौ नलकूवर सादनम् ।
सञ्जातो मयि भावो वामीप्सितः परमोऽभवः ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

तत् गच्छतम्—अब तुम दोनों जा सकते हो; मत्-परमौ—मुझे अपने जीवन का परम लक्ष्य मान कर; नलकूवर—हे नलकूवर तथा मणिग्रीव; सादनम्—अपने घर; सञ्जातः—सम्पृक्त; मयि—मुझमें; भावः—भक्ति; वाम्—तुम्हारे द्वारा; ईप्सितः—अभिलषित; परमः—सर्वोच्च, सारी इन्द्रियों से सदैव संलग्न; अभवः—जिससे जगत में आना न हो।.

हे नलकूवर तथा मणिग्रीव, अब तुम दोनों अपने घर वापस जा सकते हो। चूँकि तुम मेरी भक्ति में सदैव लीन रहना चाहते हो अतः मेरे प्रति प्रेम उत्पन्न करने की तुम दोनों की इच्छा पूरी होगी और अब तुम उस पद से कभी भी नीचे नहीं गिरोगे।

तात्पर्य : जीवन की सर्वोच्च सिद्धि है भक्ति-पद को प्राप्त करना और भक्ति कार्यों में सदैव लगे रहना। ऐसा जान कर ही नलकूवर तथा मणिग्रीव ने उस पद को प्राप्त करना चाहा और भगवान् ने उनकी वह दिव्य अभिलाषा पूरी होने का आशीर्वाद दिया।

श्रीशुक उवाच
इत्युक्तौ तौ परिक्रम्य प्रणम्य च पुनः पुनः ।
बद्धोलूखलमामन्त्र्य जग्मतुर्दिशमुत्तराम् ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति उक्तौ—इस तरह भगवान् द्वारा आदेश दिये जाने पर; तौ—नलकूवर तथा मणिग्रीव; परिक्रम्य—परिक्रमा करके; प्रणम्य—नमस्कार करके; च—भी; पुनः पुनः—फिर फिर, बारम्बार; बद्ध-उलूखलम् आमन्त्र्य—ओखली से बँधे भगवान् से अनुमति लेकर; जग्मतुः—विदा हो गये; दिशम् उत्तराम्—अपने अपने गन्तव्यों को।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : इस प्रकार कहे जाने पर, उन दोनों देवताओं ने लकड़ी की ओखली से बँधे भगवान् की परिक्रमा की और उनको नमस्कार किया। भगवान् कृष्ण से अनुमति लेने के बाद वे अपने अपने धामों को वापस चले गये।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध के अन्तर्गत ''यमलार्जुन वृक्षों का उद्धार'' नामक दसवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter ग्यारह

कृष्ण की बाल-लीलाएँ

इस अध्याय में बतलाया गया है कि किस तरह गोकुलवासी गोकुल छोड़ कर वृन्दावन चले गये और किस तरह कृष्ण ने वत्सासुर तथा बकासुर का वध किया।

जब यमल अर्जुन वृक्ष धम्म से गिरे तो वज्रपात की भाँति जोरदार शोर हुआ। चकित हुए कृष्ण के पिता नन्द तथा गोकुल के अन्य वृद्ध निवासी उस स्थान पर गये जहाँ उन्होंने वृक्षों को गिरे हुए तथा लकड़ी की उलूखल से बँधे कृष्ण को उनके बीच खड़ा पाया। उन्हें वृक्षों के गिरने तथा वहाँ पर कृष्ण के होने का कोई कारण नहीं दिखा। उन्होंने सोचा कि यह किसी अन्य असुर की करतूत हो सकती है, जो कृष्ण से वहाँ पर मिला होगा। उन्होंने कृष्ण के संगियों से पूछा कि यह घटना किस तरह घटी? बालकों ने पूरी घटना ठीक तरह कह सुनाई किन्तु वृद्धजनों को इस कथा पर विश्वास नहीं हुआ। कुछ लोगों ने सोचा कि यह घटना सच हो सकती है क्योंकि इसके पूर्व वे कृष्ण के साथ अनेक अद्भुत घटनाएँ देख चुके थे। खैर, नन्द महाराज ने तुरन्त ही कृष्ण की रस्सियाँ खोल दीं।

इस तरह कृष्ण प्रतिदिन और प्रतिक्षण नन्द महाराज तथा यशोदा के वात्सल्य-प्रेम को बढ़ाने के लिए एक से एक अद्भुत घटनाओं का प्रदर्शन करते रहे जिससे उनको आश्चर्य तथा हर्ष का अनुभव

होता रहा। यमलार्जुन का गिराना ऐसी अद्भुत लीलाओं में से एक थी।

एक दिन एक फल बेचने वाली स्त्री नन्द महाराज के घर के निकट आयी तो कृष्ण घर से अपनी छोटी-सी अंजुली में थोड़ा अन्न लेकर उसके बदले में फल लेने के लिए उसके पास पहुँचे। रास्ते में उनकी हथेली से लगभग सारा अन्न गिर गया था केवल एक या दो दाने मुश्किल से बचे होंगे। किन्तु फल बेचने वाली स्त्री ने स्नेहवश इन दानों के बदले कृष्ण की इच्छानुसार फल दे दिये। ज्योंही उसने ऐसा किया, उसकी डलिया सोने तथा रत्नों से भर गई।

तत्पश्चात् सारे गोपों ने गोकुल छोड़ने का निश्चय कर लिया क्योंकि उन्होंने देखा कि गोकुल में नित्य ही उपद्रव होते रहते थे। उन्होंने वृन्दावन अथवा व्रजधाम जाने का निश्चय किया और अगले ही दिन वे वहाँ से रवाना हो गये। कृष्ण तथा बलराम ने अपनी बाल-लीलाएँ समाप्त करके वृन्दावन में बछड़ों का भार सँभाल लिया और उन्हें चरागाहों (गो चरण) तक चराने ले जाने लगे। इस अवधि में वत्सासुर नामक राक्षस बछड़ों के बीच में घुस आया जिसका कृष्ण ने वध कर दिया। एक अन्य असुर जो बड़े बगुले की आकृति का था (बकासुर), मारा गया। जब कृष्ण के साथियों ने ये कथाएँ अपनी अपनी माताओं को सुनाईं तो वे इन पर विश्वास नहीं कर पाईं किन्तु स्नेह से पूर्ण होने के कारण उन्होंने कृष्ण के कार्यकलापों की इन कथाओं का आनन्द अवश्य लिया।

श्रीशुक उवाच
गोपा नन्दादयः श्रुत्वा द्रुमयोः पततो रवम् ।
तत्राजग्मुः कुरुश्रेष्ठ निर्घातभयशङ्किताः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; गोपाः—सारे ग्वाले; नन्द-आदयः—नन्द महाराज इत्यादि; श्रुत्वा—सुन कर; द्रुमयोः—दोनों वृक्षों के; पततोः—गिरने की; रवम्—तेज आवाज, वज्रपात जैसी; तत्र—वहाँ, उस स्थान पर; आजग्मुः—गये; कुरु-श्रेष्ठ—हे महाराज परीक्षित; निर्घात-भय-शङ्किताः—वज्रपात होने से भयभीत।

शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : हे महाराज परीक्षित, जब यमलार्जुन वृक्ष गिर पड़े तो आसपास के सारे ग्वाले भयानक शब्द सुन कर वज्रपात की आशंका से उस स्थान पर गये।

भूम्यां निपतितौ तत्र ददृशुर्यमलार्जुनौ ।
बभ्रमुस्तदविज्ञाय लक्ष्यं पतनकारणम् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

भूम्याम्—भूमि पर; निपतितौ—गिरे हुए; तत्र—वहाँ; ददृशुः—सबों ने देखा; यमल-अर्जुनौ—अर्जुन वृक्ष के जोड़े को; बभ्रमुः—मोहग्रस्त हो गये; तत्—वह; अविज्ञाय—पता न लगा सके; लक्ष्यम्—यह देखते हुए भी कि वृक्ष गिरे हैं; पतन-कारणम्—गिरने का कारण (सहसा ऐसा कैसे हुआ?)।

वहाँ उन सबों ने यमलार्जुन वृक्षों को जमीन पर गिरे हुए तो देखा किन्तु वे विमोहित थे क्योंकि वे आँखों के सामने वृक्षों को गिरे हुए तो देख रहे थे किन्तु उनके गिरने के कारण का पता नहीं लगा पा रहे थे।

तात्पर्य : सभी परिस्थितियों पर विचार करने पर प्रश्न उठता है कि क्या यह कृष्ण की करतूत है? वे तो उसी स्थान पर खड़े थे और उनके साथियों ने कह सुनाया कि यह सब कुछ कृष्ण ने किया था। क्या सचमुच कृष्ण ने ऐसा किया था या वह मनगढंत कहानी थी? विमोहित होने का कारण यही था।

उलूखलं विकर्षन्तं दाम्ना बद्धं च बालकम् ।
कस्येदं कुत आश्चर्यमुत्पात इति कातराः ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

उलूखलम्—ओखली को; विकर्षन्तम्—खींचते हुए; दाम्ना—रस्सी से; बद्धम् च—तथा उदर से बँधी; बालकम्—कृष्ण को; कस्य—किसका; इदम्—यह; कुतः—कहाँ से; आश्चर्यम्—ये अद्भुत घटनाएँ; उत्पातः—उपद्रव; इति—इस प्रकार; कातराः—अत्यधिक क्षुब्ध।

कृष्ण रस्सी द्वारा ओखली से बँधे थे जिसे वे खींच रहे थे। किन्तु उन्होंने वृक्षों को किस तरह गिरा लिया? वास्तव में किसने यह किया? इस घटना का स्रोत कहाँ है? इन आश्चर्यजनक बातों को सोच सोच कर सारे ग्वाले सशंकित तथा मोहग्रस्त थे।

तात्पर्य : सारे ग्वाले अत्यन्त क्षुब्ध थे क्योंकि बालक कृष्ण दोनों वृक्षों के बीच खड़ा था और यदि संयोगवश ये वृक्ष उस पर गिर जाते तो वह चटनी हो जाता। किन्तु वह जैसे का तैसा खड़ा था और फिर भी घटना घट गई। तो फिर यह सब किसने किया? ये सारी घटनाएँ इस आश्चर्यमय ढंग से कैसे घटीं? उनके क्षुब्ध तथा मोहित होने का कारण यही शंकाएँ थीं। किन्तु उन्होंने सोचा कि दैववश कृष्ण सुरक्षित है, अतः उसे कुछ भी नहीं हुआ।

बाला ऊचुरनेनेति तिर्यग्गतमुलूखलम् ।
विकर्षता मध्यगेन पुरुषावप्यचक्ष्महि ॥ ४॥

शब्दार्थ

बालाः—सारे बालकों ने; ऊचुः—कहा; अनेन—उसके (कृष्ण) द्वारा; इति—इस प्रकार; तिर्यक्—टेढ़ी; गतम्—हुई; उलूखलम्—ओखली; विकर्षता—कृष्ण द्वारा खींचे जाने से; मध्य-गेन—दोनों वृक्षों के बीच जाकर; पुरुषौ—दो सुन्दर व्यक्ति; अपि—भी; अचक्ष्महि—हमने अपनी आँखों से देखा है।

तब सारे ग्वालबालों ने कहा : इसे तो कृष्ण ने ही किया है। जब यह दो वृक्षों के बीच में था, तो ओखली तिरछी हो गई। कृष्ण ने ओखली को खींचा तो दोनों वृक्ष गिर गये। इसके बाद इन वृक्षों से दो सुन्दर व्यक्ति निकल आये। हमने इसे अपनी आँखों से देखा है।

तात्पर्य : कृष्ण के साथी कृष्ण के पिता को यह कह कर पूरी स्थिति बताना चाह रहे थे कि न केवल वृक्ष ही टूट कर गिरे अपितु इन टूटे वृक्षों से दो सुन्दर व्यक्ति निकल आये। उन्होंने बतलाया, ''ये सारी बातें घटीं हैं और इन्हें हमने आँखों से देखा है।''

न ते तदुक्तं जगृहुर्न घटेतेति तस्य तत् ।
बालस्योत्पाटनं तर्वोः केचित्सन्दिग्धचेतसः ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; ते—सारे गोप; तत्-उक्तम्—बालकों द्वारा कहे गये; जगृहुः—स्वीकार करेंगे; न घटेत—ऐसा नहीं हो सकता; इति—इस प्रकार; तस्य—कृष्ण का; तत्—काम; बालस्य—कृष्ण जैसे बालक का; उत्पाटनम्—जड़ समेत उखाड़ना; तर्वोः—दोनों वृक्षों का; केचित्—किसी ने; सन्दिग्ध-चेतसः—क्या किया जा सकता है इसके विषय में सशंकित (क्योंकि गर्गमुनि ने भविष्यवाणी की थी कि यह बालक नारायण के समान होगा)।

तीव्र पितृ-स्नेह के कारण नन्द इत्यादि ग्वालों को विश्वास ही नहीं हुआ कि कृष्ण ने इतने आश्चर्यमय ढंग से वृक्षों को उखाड़ा है। अतएव उन्हें बच्चों के कहने पर विश्वास नहीं हुआ। किन्तु उनमें से कुछ को सन्देह था। वे सोच रहे थे, ''चूँकि कृष्ण के लिए भविष्यवाणी की गई थी कि वह नारायण के तुल्य है अतएव हो सकता है कि उसी ने यह किया हो।''

तात्पर्य : एक विचार यह था कि वृक्षों को गिराने जैसा कार्य ऐसे छोटे बालक के लिए असम्भव था। किन्तु कुछेक को सन्देह था कि कृष्ण को नारायण के तुल्य बतलाया जा चुका है। अतएव ग्वाले दुविधा में थे।

उलूखलं विकर्षन्तं दाम्ना बद्धं स्वमात्मजम् ।
विलोक्य नन्दः प्रहसद्वदनो विमुमोच ह ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

उलूखलम्—ओखली को; विकर्षन्तम्—खींचते हुए; दाम्ना—रस्सी से; बद्धम्—बँधा हुआ; स्वम् आत्मजम्—अपने पुत्र कृष्ण को; विलोक्य—देख कर; नन्दः—नन्द महाराज; प्रहसत्-वदनः—इस अद्‌भुत बालक को देखकर मुसकाते चेहरे से; विमुमोच ह—उसे बन्धन से मुक्त कर दिया।

जब नन्द महाराज ने अपने पुत्र को रस्सी द्वारा लकड़ी की ओखली से बँधा और ओखली को घसीटते देखा तो वे मुसकाने लगे और उन्होंने कृष्ण को बन्धन से मुक्त कर दिया।

तात्पर्य : नन्द महाराज को आश्चर्य हो रहा था कि कृष्ण की माता यशोदा ने अपने प्यारे बेटे को इस तरह से बाँधा हो। कृष्ण तो उससे प्रेम का आदान-प्रदान करता है, तो फिर वह इतनी क्रूर कैसे बन गई कि उसे लकड़ी की ओखली से बाँध दिया? इस प्रेम-व्यापार को समझ कर नन्द हँस पड़े और उन्होंने कृष्ण को मुक्त कर दिया। दूसरे शब्दों में, जिस तरह भगवान् कृष्ण जीव को सकाम कर्मों से बाँधते हैं उसी तरह वे माता यशोदा तथा नन्द महाराज को वात्सल्य-प्रेम में बाँधते हैं। यही उनकी लीला है।

गोपीभिः स्तोभितोऽनृत्यद्भगवान्बालवत्क्वचित् ।
उद्गायति क्वचिन्मुग्धस्तद्वशो दारुयन्त्रवत् ॥ ७॥

शब्दार्थ

गोपीभिः—गोपियों के द्वारा; स्तोभितः—प्रोत्साहित, प्रेरित; अनृत्यत्—बालक कृष्ण नाचता; भगवान्—भगवान् होकर के भी; बाल-वत्—मानवी बालक के ही समान; क्वचित्—कभी; उद्गायति—जोर से गाता है; क्वचित्—कभी; मुग्धः—चकित होकर; तत्-वशः—उनके वशीभूत होकर; दारु-यन्त्र-वत्—कठपुतली की तरह।

गोपियाँ कहतीं, ''हे कृष्ण, यदि तुम नाचोगे तो तुम्हें आधी मिठाई मिलेगी। ऐसे शब्द कह कर या तालियाँ बजा-बजा कर सारी गोपियाँ कृष्ण को तरह-तरह से प्रेरित करतीं। ऐसे अवसरों पर वे परम शक्तिशाली भगवान् होते हुए भी मुसका देते और उनकी इच्छानुसार नाचते मानों वे उनके हाथ की कठपुतली हों। कभी कभी वे उनके कहने पर जोर-जोर से गाते। इस तरह कृष्ण पूरी तरह से गोपियों के वश में आ गये।''

बिभर्ति क्वचिदाज्ञप्तः पीठकोन्मानपादुकम् ।
बाहुक्षेपं च कुरुते स्वानां च प्रीतिमावहन् ॥ ८॥

शब्दार्थ

बिभर्ति—कृष्ण खड़े हो जाते और वस्तुओं को इस तरह छूते मानों उठा नहीं पाते; क्वचित्—कभी; आज्ञप्तः—आदेश दिये जाने पर; पीठक-उन्मान—पीढ़ा (लकड़ी का) तथा काठ का नपना; पादुकम्—खड़ाऊँ को; बाहु-क्षेपम् च—तथा शरीर पर हाथ मारते, ताल ठोंकते; कुरुते—करता है; स्वानाम् च—तथा अपने सम्बन्धियों, गोपियों तथा अन्य मित्रों का; प्रीतिम्—आनन्द; आवहन्—बुलाते हुए।

कभी कभी माता यशोदा तथा उनकी गोपी सखियाँ कृष्ण से कहतीं, ''जरा यह वस्तु लाना, जरा वह वस्तु लाना।'' कभी वे उनको पीढ़ा लाने, तो कभी खड़ाऊँ या काठ का नपना लाने के

लिए आदेश देतीं और कृष्ण माताओं द्वारा इस तरह आदेश दिये जाने पर उन वस्तुओं को लाने का प्रयास करते। किन्तु कभी कभी वे उन वस्तुओं को इस तरह छूते मानो उठाने में असमर्थ हों और वहीं खड़े रहते। अपने सम्बन्धियों का हर्ष बढ़ाने के लिए वे दोनों हाथों से ताल ठोंक कर दिखाते कि वे काफी बलवान् हैं।

दर्शयंस्तद्विदां लोक आत्मनो भृत्यवश्यताम् ।
व्रजस्योवाह वै हर्षं भगवान्बालचेष्टितैः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

दर्शयन्—दिखलाते हुए; तत्-विदाम्—कृष्ण के कार्यों को समझने वाले पुरुषों को; लोके—सारे जगत में; आत्मनः—अपने आप को; भृत्य-वश्यताम्—अपने दासों या भक्तों के आदेशों का पालन करने के लिए तैयार रहने वाले; व्रजस्य—व्रजभूमि के; उवाह—सम्पन्न किया; वै—निस्सन्देह; हर्षम्—आनन्द; भगवान्—भगवान्; बाल-चेष्टितैः—बच्चों के जैसे कार्यों द्वारा।

भगवान् कृष्ण ने अपने कार्यकलापों को समझने वाले संसार-भर के शुद्ध भक्तों को दिखला दिया कि किस तरह वे अपने भक्तों अर्थात् दासों द्वारा वश में किये जा सकते हैं। इस तरह अपनी बाल-लीलाओं से उन्होंने व्रजवासियों के हर्ष में वृद्धि की।

तात्पर्य : यह एक अन्य दिव्य हास्य-रस है कि कृष्ण अपने भक्तों के आनन्द-वर्धन के लिए बाल-लीलाएँ करते थे। वे इन लीलाओं को न केवल व्रजभूमि के निवासियों को दिखलाते थे अपितु अन्यों को भी जो उनकी बहिरंगा शक्ति तथा ऐश्वर्य पर मुग्ध हो जाते थे। किन्तु अन्तरंगी भक्तों को जो केवल कृष्ण-प्रेम में निमग्न रहते थे तथा बाह्य भक्तों को जो उनकी असीम शक्ति पर मुग्ध रहते थे कृष्ण की अपने दासों के वश में रहने की इच्छा का पता चला।

क्रीणीहि भोः फलानीति श्रुत्वा सत्वरमच्युतः ।
फलार्थी धान्यमादाय ययौ सर्वफलप्रदः ॥ ॥

शब्दार्थ

क्रीणीहि—आकर खरीदें; भोः—हे पड़ोसियो; फलानि—पके फलों को; इति—इस प्रकार; श्रुत्वा—सुन कर; सत्वरम्—शीघ्र; अच्युतः—कृष्ण; फल-अर्थी—मानो उन्हें फल चाहिए; धान्यम् आदाय—कुछ धान लाकर; ययौ—फल बेचने वाली के पास गये; सर्व-फल-प्रदः—हर एक को सभी फल प्रदान करने वाले भगवान् को अब फल चाहिए थे।

एक बार एक फल बेचने वाली स्त्री पुकार रही थी, ''हे व्रजभूमिवासियो, यदि तुम लोगों को फल खरीदने हैं, तो मेरे पास आओ।'' यह सुन कर तुरन्त ही कृष्ण ने कुछ अन्न लिया और सौदा करने पहुँच गये मानो उन्हें कुछ फल चाहिए थे।

तात्पर्य : सामान्यतया आदिवासी लोग गाँवों में फल बेचने जाते हैं। यहाँ पर बताया गया है कि आदिवासी कृष्ण से कितने अनुरक्त थे। आदिवासियों पर अनुग्रह करने के लिए वे तुरन्त अंजुरी में धान लेकर फल खरीदने चले आये क्योंकि अन्यों को ऐसा करते उन्होंने देखा था।

फलविक्रयिणी तस्य च्युतधान्यकरद्वयम् ।
फलैरपूरयद्रत्नैः फलभाण्डमपूरि च ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

फल-विक्रयिणी—फल बेचने वाली आदिवासिनी; **तस्य**—कृष्ण का; **च्युत-धान्य**—बदलने के लिए जो धान लाये थे वह गिर गया; **कर-द्वयम्**—अँजुली; **फलैः अपूरयत्**—फलवाली ने उनकी छोटी हथेलियों को फलों से भर दिया; **रत्नैः**—रत्नों तथा सोने के बदले में; **फल-भाण्डम्**—फल की टोकरी; **अपूरि च**—भर गई।

जब कृष्ण तेजी से फलवाली के पास जा रहे थे तो उनकी अँजुली में भरा बहुत-सा अन्न गिर गया। फिर भी फलवाली ने उनके दोनों हाथों को फलों से भर दिया। उधर उसकी फल की टोकरी तुरन्त रत्नों तथा सोने से भर गई।

तात्पर्य : *भगवद्गीता* (९.२६) में कृष्ण कहते हैं—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।

तदहं भक्त्युपहृतम् अश्नामि प्रयतात्मनः ॥

कृष्ण इतने कृपालु हैं कि यदि कोई उन्हें एक पत्ती, एक फल, एक फूल या थोड़ा जल भी अर्पित करता है, तो वे उसे तुरन्त स्वीकार कर लेते हैं। शर्त केवल इतनी ही है कि ये चीजें भक्तिपूर्वक समर्पित की जाँय (*यो मे भक्त्या प्रयच्छति*)। अन्यथा यदि कोई यह सोच कर मिथ्या प्रतिष्ठा से फूल कर कुप्पा हुआ रहे कि मेरे पास इतना ऐश्वर्य है और मैं कृष्ण को थोड़ा दे रहा हूँ तो कृष्ण इस भेंट को स्वीकार नहीं करते। फल बेचने वाली ने, निर्धन आदिवासी होते हुए भी कृष्ण से बहुत ही स्नेहपूर्ण बर्ताव किया और कहा, "कृष्ण! तुम अन्न के बदले मुझसे फल लेने आये हो। तुमने सारा अन्न गिरा दिया है फिर भी तुम जो चाहो सो ले लो।" इस तरह उसने कृष्ण की हथेली में उतने फल रख दिये जितने उसमें आ सकते थे। बदले में कृष्ण ने उसकी सारी डलिया को रत्नों तथा सोने से भर दिया।

इस घटना से हमें यह सीख लेनी चाहिए कि कृष्ण को स्नेह के साथ अर्पित की गई वस्तु के बदले वे भौतिक तथा आध्यात्मिक रूप में लाखों गुना बढ़ाकर दे सकते हैं। मूल बात है प्रेम का विनिमय। इसीलिए *भगवद्गीता* (९.२७) में कृष्ण शिक्षा देते हैं—

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।

यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥

"हे कुन्ती-पुत्र! तुम जो भी करते हो, जितना खाते हो, जितना भी होम करते हो, या दान में देते हो तथा जितनी भी तपस्या करते हो वह सब मुझे भेंट स्वरूप दो।" मनुष्य को चाहिए कि अपनी आमदनी में से कुछ कुछ कृष्ण को प्रेमपूर्वक अर्पित करे। तभी मनुष्य का जीवन सफल होगा। कृष्ण समस्त ऐश्वर्यों से पूर्ण हैं, उन्हें किसी से कुछ भी नहीं चाहिए। किन्तु यदि कोई कृष्ण को कुछ देना चाहता है, तो इसमें उसी का लाभ है। इस सम्बन्ध में यह दृष्टान्त दिया जाता है कि जब किसी का मुख सजा होता है, तो उसके मुख का प्रतिबिम्ब स्वत: सजा होता है। इसी प्रकार यदि हम अपने ऐश्वर्य से कृष्ण की सेवा करें तो बदले में कृष्ण के अंश या प्रतिबिम्ब रूप हम सुखी होंगे। कृष्ण सदा सुखी रहते हैं क्योंकि वे *आत्माराम* हैं अर्थात् अपने ही ऐश्वर्य से पूरी तरह संतुष्ट।

सरित्तीरगतं कृष्णं भग्नार्जुनमथाह्वयत् ।
रामं च रोहिणी देवी क्रीडन्तं बालकैर्भृशम् ॥ १२॥

शब्दार्थ

सरित्-तीर—नदी के किनारे; गतम्—गये हुए; कृष्णम्—कृष्ण को; भग्न-अर्जुनम्—यमलार्जुन खंडित करने की लीला के बाद; अथ—तब; आह्वयत्—बुलाया; रामम् च—तथा बलराम को; रोहिणी—बलराम की माता ने; देवी—लक्ष्मी; क्रीडन्तम्—खेल में व्यस्त; बालकैः—अनेक बालकों के साथ; भृशम्—अत्यन्त मनोयोग से।

यमलार्जुन वृक्षों के उखड़ जाने के बाद एक बार रोहिणीदेवी राम तथा कृष्ण को, जो नदी के किनारे गये हुए थे और अन्य बालकों के साथ बड़े ध्यान से खेल रहे थे, बुलाने गईं।

तात्पर्य : यद्यपि रोहिणीदेवी बलराम की माता थीं किन्तु माता यशोदा रोहिणी की अपेक्षा कृष्ण तथा बलराम से अधिक अनुरक्त थीं। माता यशोदा ने रोहिणी को भेजा कि वे राम तथा कृष्ण को उनके खेल से बुला लायें क्योंकि दोपहर के भोजन का समय हो चुका था। अत: रोहिणीदेवी उन्हें अपना खेलना छोड़ कर आने के लिए बुलाने गईं।

नोपेयातां यदाहूतौ क्रीडासङ्गेन पुत्रकौ ।
यशोदां प्रेषयामास रोहिणी पुत्रवत्सलाम् ॥ १३॥

शब्दार्थ

न उपेयाताम्—लौटे नहीं; यदा—जब; आहूतौ—खेल से बुला भेजे गये; क्रीडा-सङ्गेन—अन्य बालकों के साथ खेलने में इतना अनुरक्त होने के कारण; पुत्रकौ—दोनों पुत्र (कृष्ण तथा बलराम); यशोदाम् प्रेषयाम् आस—उन्हें बुलाने के लिए यशोदा को भेजा; रोहिणी—माता रोहिणी ने; पुत्र-वत्सलाम्—क्योंकि माता यशोदा कृष्ण तथा बलराम के प्रति अधिक वत्सल थीं।

अन्य बालकों के साथ खेलने में अत्यधिक अनुरक्त होने के कारण वे रोहिणी के बुलाने पर वापस नहीं आये। अत: रोहिणी ने उन्हें वापस बुलाने के लिए माता यशोदा को भेजा क्योंकि वे कृष्ण तथा बलराम के प्रति अत्यधिक स्नेहिल थीं।

तात्पर्य : *यशोदां प्रेषयाम् आस*—ये शब्द यह दिखलाते हैं कि जब रोहिणी के आदेश पर कृष्ण तथा बलराम ने लौटने की परवाह नहीं की तो रोहिणी ने सोचा कि यदि यशोदा बुलातीं तो वे लौट आये होते क्योंकि यशोदा उन दोनों को अधिक चाहती हैं।

क्रीडन्तं सा सुतं बालैरतिवेलं सहाग्रजम् ।
यशोदाजोहवीत्कृष्णं पुत्रस्नेहस्नुतस्तनी ॥ १४॥

शब्दार्थ

क्रीडन्तम्—खेल में व्यस्त; सा—उस; सुतम्—अपने पुत्र को; बालै:—अन्य बालकों के साथ; अति-वेलम्—विलम्ब से; सह-अग्रजम्—अपने बड़े भाई बलराम के साथ खेल रहे; यशोदा—माता यशोदा ने; अजोहवीत्—बुलाया (अरे कृष्ण तथा बलराम आओ!); कृष्णम्—कृष्ण को; पुत्र-स्नेह-स्नुत-स्तनी—उन्हें बुलाते हुए स्नेह के कारण उनके स्तनों से दूध बहने लगा।

यद्यपि बहुत देर हो चुकी थी किन्तु कृष्ण तथा बलराम अपने खेल में अनुरक्त होने के कारण अन्य बालकों के साथ खेलते रहे। इसलिए अब माता यशोदा ने भोजन करने के लिए उन्हें बुलाया। कृष्ण तथा बलराम के प्रति उत्कट प्रेम तथा स्नेह होने से उनके स्तनों से दूध बहने लगा।

तात्पर्य : *अजोहवीत्* शब्द का अर्थ है ''बारम्बार पुकारना।'' उन्होंने पुकारा, ''कृष्ण तथा बलराम! वापस आ जाओ। खाने को देर हो रही है। अब बहुत खेल चुके हो। वापस आओ।''

कृष्ण कृष्णारविन्दाक्ष तात एहि स्तनं पिब ।
अलं विहारै: क्षुत्क्षान्त: क्रीडाश्रान्तोऽसि पुत्रक ॥ १५॥

शब्दार्थ

कृष्ण कृष्ण अरविन्द-अक्ष—हे कृष्ण, मेरे बेटे, कमल जैसे नेत्रों वाले कृष्ण; तात—हे प्रिय; एहि—यहाँ आओ; स्तनम्—मेरे स्तन के दूध को; पिब—पियो; अलम् विहारै:—इसके बाद खेलने की कोई आवश्यकता नहीं है; क्षुत्-क्षान्त:—भूख से थका; क्रीडा-श्रान्त:—खेलने से थका हुआ; असि—तुम हो; पुत्रक—हे पुत्र।

माता यशोदा ने कहा : हे प्रिय पुत्र कृष्ण, कमलनयन कृष्ण, यहाँ आओ और मेरा दूध पियो। हे प्यारे, तुम भूख से तथा इतनी देर तक खेलने से बहुत थक गये होगे। अब और अधिक

खेलना जरूरी नहीं।

हे रामागच्छ ताताशु सानुजः कुलनन्दन ।
प्रातरेव कृताहारस्तद्भवान्भोक्तुमर्हति ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

हे राम—मेरे प्यारे बलराम; आगच्छ—आओ; तात—मेरे प्रिय; आशु—शीघ्र; स-अनुजः—अपने छोटे भाई सहित; कुल-नन्दन—हमारे परिवार की महान् आशा; प्रातः एव—सुबह के ही; कृत-आहारः—कलेवा किये हुए; तत्—इसलिए; भवान्—तुम; भोक्तुम्—अधिक खाने के लिए; अर्हति—योग्य हो।

हमारे परिवार के सर्वश्रेष्ठ मेरे प्यारे बलदेव, तुरन्त अपने छोटे भाई कृष्ण सहित आ जाओ। तुम दोनों ने सुबह ही खाया था और अब तुम्हें कुछ और खाना चाहिए।

प्रतीक्षते त्वां दाशार्ह भोक्ष्यमाणो व्रजाधिपः ।
एह्यावयोः प्रियं धेहि स्वगृहान्यात बालकाः ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

प्रतीक्षते—प्रतीक्षा कर रही है; त्वाम्—तुम दोनों की; दाशार्ह—हे बलराम; भोक्ष्यमाणः—खाने की इच्छा रखते हुए; व्रज-अधिपः—व्रज का राजा, नन्द महाराज; एहि—यहाँ आओ; आवयोः—हमारा; प्रियम्—हर्ष; धेहि—जरा विचार करो; स्व-गृहान्—अपने अपने घरों को; यात—जाने दो; बालकाः—अन्य बालक।

अब व्रज के राजा नन्द महाराज खाने के लिए तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। हे मेरे बेटे बलराम, वे तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं अतः हमारी प्रसन्नता के लिए तुम वापस आ जाओ। तुम्हारे साथ तथा कृष्ण के साथ खेल रहे सारे बालकों को अपने अपने घर जाना चाहिए।

तात्पर्य : ऐसा लगता है कि नन्द महाराज नियमित रूप से अपने दोनों पुत्रों, कृष्ण तथा बलराम के साथ भोजन करते थे। यशोदा ने अन्य बालकों से कहा, ''अब तुम सब अपने अपने घर जाओ।'' सामान्यतया पिता तथा पुत्र साथ साथ बैठते हैं इसलिए माता यशोदा ने कृष्ण तथा बलराम से लौट आने की विनती की। उन्होंने अन्य बालकों को सलाह दी कि वे भी अपने अपने घर जाँय जिससे उनके माता-पिता को उनकी प्रतीक्षा न करनी पड़े।

धूलिधूसरिताङ्गस्त्वं पुत्र मज्जनमावह ।
जन्मर्क्षं तेऽद्य भवति विप्रेभ्यो देहि गाः शुचिः ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

धूलि-धूसरित-अङ्गः त्वम्—तुम्हारा पूरा शरीर धूल से ढक गया है; पुत्र—मेरे बेटे; मज्जनम् आवह—आओ, स्नान करो तथा अपनी सफाई करो; जन्म-ऋक्षम्—जन्म का शुभ नक्षत्र; ते—तुम्हारे; अद्य—आज; भवति—है; विप्रेभ्यः—शुद्ध ब्राह्मणों को; देहि—दान में दो; गाः—गाएँ; शुचिः—शुद्ध होकर।

माता यशोदा ने आगे भी कृष्ण से कहा : हे पुत्र, दिन-भर खेलते रहने से तुम्हारा सारा शरीर धूल तथा रेत से भर गया है। अतः वापस आ जाओ, स्नान करो और अपनी सफाई करो। आज तुम्हारे जन्म के शुभ नक्षत्र से चाँद मेल खा रहा है, अतः शुद्ध होकर ब्राह्मणों को गौवों का दान करो।

तात्पर्य : वैदिक संस्कृति की यह एक प्रथा है कि जब भी कोई शुभ उत्सव होता है, तो ब्राह्मणों को दान में बहुमूल्य गौवें दी जाती हैं। इसलिए माता यशोदा ने कृष्ण से प्रार्थना की कि खेलने में अधिक मन न लगा कर अब घर आकर दान देने में मन लगायें। *यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।* जैसाकि *भगवद्गीता* (१८.५) में सलाह दी गई है यज्ञ, दान तथा तपस्या का कभी भी परित्याग नहीं करना चाहिए। *यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्*—आध्यात्मिक जीवन में अत्यधिक बढ़े-चढ़े व्यक्ति को भी ये तीन कर्म नहीं छोड़ने चाहिए। अपना जन्मोत्सव मनाने के लिए इन तीनों (यज्ञ, दान या तप) में से एक या तीनों करना चाहिए।

पश्य पश्य वयस्यांस्ते मातृमृष्टान्स्वलङ्कृतान् ।
त्वं च स्नातः कृताहारो विहरस्व स्वलङ्कृतः ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

पश्य पश्य—जरा देखो तो; वयस्यान्—समान उम्र के बालक; ते—तुम्हारी; मातृ-मृष्टान्—अपनी माताओं द्वारा नहलाये-धुलाये गये; सु-अलङ्कृतान्—सुन्दर आभूषणों से सज्जित; त्वम् च—तुम भी; स्नातः—नहाकर; कृत-आहारः—तथा भोजन करने के बाद; विहरस्व—उनके साथ खेलो-कूदो; सु-अलङ्कृतः—अच्छी तरह सजधज कर।

जरा अपनी उम्र वाले अपने सारे साथियों को तो देखो कि वे किस तरह अपनी माताओं द्वारा नहलाये-धुलाये तथा सुन्दर आभूषणों से सजाये गये हैं। तुम यहाँ आओ और स्नान करने, भोजन खाने तथा आभूषणों से अलंकृत होने के बाद फिर अपने सखाओं के साथ खेल सकते हो।

तात्पर्य : सामान्यतया बालकों में स्पर्धा होती है। यदि एक मित्र कुछ कर लेता है, तो दूसरा भी कुछ करना चाहता है। इसलिए माता यशोदा ने कृष्ण से कहा कि तुम्हारे साथी सजेधजे हैं जिससे वे भी अपने को उन्हीं की तरह सजा सकें।

इत्थं यशोदा तमशेषशेखरं

मत्वा सुतं स्नेहनिबद्धधीर्नृप ।
हस्ते गृहीत्वा सहराममच्युतं
नीत्वा स्ववाटं कृतवत्यथोदयम् ॥ २० ॥

शब्दार्थ

इत्थम्—इस तरह; यशोदा—यशोदा; तम् अशेष-शेखरम्—कृष्ण को, जो हर शुभ वस्तु की पराकाष्ठा थे, जिनमें गंदगी या अशुद्धता का प्रश्न ही नहीं था; मत्वा—मान कर; सुतम्—अपने पुत्र; स्नेह-निबद्ध-धीः—अत्यधिक प्रेम-भाव के कारण; नृप—हे राजा (महाराज परीक्षित); हस्ते—हाथ में; गृहीत्वा—लेकर; सह-रामम्—बलराम समेत; अच्युतम्—कृष्ण को; नीत्वा—लाकर; स्व-वाटम्—अपने घर; कृतवती—किया; अथ—अब; उदयम्—नहलाने-धुलाने, वस्त्र पहनाने और आभूषणों से अलंकृत करने के बाद की चमक।

हे महाराज परीक्षित, अत्यधिक प्रेमवश माता यशोदा ने समस्त ऐश्वर्यों के शिखर पर आसीन कृष्ण को अपना पुत्र माना। इस तरह वे बलराम के साथ कृष्ण को हाथ से पकड़ कर घर ले आईं जहाँ उन्हें नहलाने-धुलाने, वस्त्र पहनाने तथा भोजन खिलाने का उन्होंने अपना काम पूरा किया।

तात्पर्य : कृष्ण सदैव स्वच्छ तथा ऐश्वर्यवान हैं। उन्हें नहाने-धोने, सजने-धजने की कोई आवश्यकता नहीं है फिर भी माता यशोदा ने स्नेहवश उन्हें सामान्य बालक समझा और अपने पुत्र को साफ-सुथरा और चमकीला रखने का अपना काम पूरा किया।

श्रीशुक उवाच
गोपवृद्धा महोत्पाताननुभूय बृहद्वने ।
नन्दादयः समागम्य व्रजकार्यममन्त्रयन् ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; गोप-वृद्धाः—बूढ़े ग्वालों ने; महा-उत्पातान्—बड़े बड़े उपद्रव; अनुभूय—अनुभव करके; बृहद्वने—बृहद्वन नामक स्थान में; नन्द-आदयः—नन्द महाराज तथा अन्य ग्वाले; समागम्य—एकत्र हुए; व्रज-कार्यम्—व्रजभूमि का कार्य; अमन्त्रयन्—महावन में लगातार होने वाले उत्पातों को रोकने पर विचार-विमर्श किया।

श्रीशुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : तब एक बार बृहद्वन में बड़े बड़े उपद्रव देख कर नन्द महाराज तथा वृद्ध ग्वाले एकत्र हुए और विचार करने लगे कि व्रज में लगातार होने वाले उपद्रवों को रोकने के लिए क्या किया जाय।

तत्रोपानन्दनामाह गोपो ज्ञानवयोऽधिकः ।
देशकालार्थतत्त्वज्ञः प्रियकृद्रामकृष्णयोः ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

तत्र—उस सभा में; उपनन्द-नामा—उपानन्द नामक (नन्द महाराज का बड़ा भाई) ने; आह—कहा; गोपः—ग्वाला; ज्ञान-वयः-अधिकः—जो ज्ञान तथा आयु में सबसे बड़ा था; देश-काल-अर्थ-तत्त्व-ज्ञः—देश, काल तथा परिस्थितियों के अनुसार अत्यन्त अनुभवी; प्रिय-कृत्—लाभ के लिए; राम-कृष्णयोः—भगवान् बलराम तथा भगवान् कृष्ण के।

गोकुलवासियों की इस सभा में, उपानन्द नामक एक ग्वाले ने, जो आयु तथा ज्ञान में सर्वाधिक प्रौढ़ था और देश, काल तथा परिस्थिति के अनुसार अत्यधिक अनुभवी था, राम तथा कृष्ण के लाभ हेतु यह प्रस्ताव रखा।

उत्थातव्यमितोऽस्माभिर्गोकुलस्य हितैषिभिः ।
आयान्त्यत्र महोत्पाता बालानां नाशहेतवः ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

उत्थातव्यम्—इस स्थान को छोड़ देना चाहिए; इतः—यहाँ (गोकुल) से; अस्माभिः—हम सबों के द्वारा; गोकुलस्य—गोकुल के; हित-एषिभिः—इस स्थान के हितैषियों द्वारा; आयान्ति—हो रहे हैं; अत्र—यहाँ पर; महा-उत्पाताः—अनेक बड़े बड़े उपद्रव; बालानाम्—राम तथा कृष्ण जैसे बालकों के; नाश-हेतवः—विनष्ट करने के उद्देश्य से।

उसने कहा : मेरे ग्वालमित्रो, इस गोकुल नामक स्थान की भलाई के लिए हमें इसे छोड़ देना चाहिए क्योंकि यहाँ पर राम तथा कृष्ण को मारने के उद्देश्य से सदैव अनेकानेक उपद्रव होते ही रहते हैं।

मुक्तः कथञ्चिद्राक्षस्या बालघ्न्या बालको ह्यसौ ।
हरेरनुग्रहान्नूनमनश्चोपरि नापतत् ॥ २४॥

शब्दार्थ

मुक्तः—छूटा था; कथञ्चित्—किसी तरह; राक्षस्याः—राक्षसी पूतना के हाथों से; बाल-घ्न्याः—बालकों को मारने पर तुली; बालकः—विशेषतया बालक कृष्ण; हि—क्योंकि; असौ—वह; हरेः अनुग्रहात्—भगवान् की दया से; नूनम्—निस्सन्देह; अनः च—तथा छकड़ा; उपरि—बालक के ऊपर; न—नहीं; अपतत्—गिरा।

यह बालक कृष्ण, एकमात्र भगवान् की दया से किसी न किसी तरह राक्षसी पूतना के हाथों से बच सका क्योंकि वह उन्हें मारने पर उतारू थी। फिर यह भगवान् की कृपा ही थी कि वह छकड़ा इस बालक पर नहीं गिरा।

चक्रवातेन नीतोऽयं दैत्येन विपदं वियत् ।
शिलायां पतितस्तत्र परित्रातः सुरेश्वरैः ॥ २५॥

शब्दार्थ

चक्र-वातेन—बवंडर के रूप में असुर (तृणावर्त) द्वारा; नीतः अयम्—यह कृष्ण उड़ा ले जाया गया; दैत्येन—असुर द्वारा; विपदम्—भयानक; वियत्—आकाश में; शिलायाम्—पत्थर पर; पतितः—गिरा हुआ; तत्र—वहाँ; परित्रातः—बचा लिया गया; सुर-ईश्वरैः—भगवान् विष्णु या उनके संगियों द्वारा।

इसके बाद बवंडर के रूप में आया तृणावर्त असुर इस बालक को मार डालने के लिए संकटमय आकाश में ले गया किन्तु वह असुर पत्थर की एक शिला पर गिर पड़ा। तब भी भगवान् विष्णु या उनके संगियों की कृपा से यह बालक बच गया था।

यन्न म्रियेत द्रुमयोरन्तरं प्राप्य बालकः ।
असावन्यतमो वापि तदप्यच्युतरक्षणम् ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

यत्—पुनः; न म्रियेत—नहीं मरा; द्रुमयोः अन्तरम्—दो वृक्षों के बीच; प्राप्य—बीच में होते हुए; बालकः असौ—वह बालक, कृष्ण; अन्यतमः—दूसरा बालक; वा अपि—अथवा; तत् अपि अच्युत-रक्षणम्—तब भी भगवान् द्वारा बचा लिया गया।

यहाँ तक कि किसी और दिन, न तो कृष्ण न ही उनके खिलाड़ी साथी उन दोनों वृक्षों के गिरने से मरे यद्यपि ये बालक वृक्षों के निकट या उनके बीच ही में थे। इसे भी भगवान् का अनुग्रह मानना चाहिये।

यावदौत्पातिकोऽरिष्टो व्रजं नाभिभवेदितः ।
तावद्बालानुपादाय यास्यामोऽन्यत्र सानुगाः ॥ २७॥

शब्दार्थ

यावत्—जब तक; औत्पातिकः—उत्पात मचाने वाले; अरिष्टः—असुर; व्रजम्—यह गोकुल व्रजभूमि; न—नहीं; अभिभवेत् इतः—इस स्थान से चले जाँय; तावत्—तब तक; बालान् उपादाय—बालकों के लाभ के लिए; यास्यामः—हम चले जाँय; अन्यत्र—किसी दूसरी जगह; स-अनुगाः—अपने अनुयायियों समेत।

ये सारे उत्पात कुछ अज्ञात असुर द्वारा किये जा रहे हैं। इसके पूर्व कि वह दूसरा उत्पात करने आये, हमारा कर्तव्य है कि हम तब तक के लिए इन बालकों समेत कहीं और चले जायँ जब तक कि ये उत्पात बन्द न हो जायँ।

तात्पर्य : उपानन्द ने प्रस्ताव रखा, ''भगवान् विष्णु की कृपा से कृष्ण अनेकानेक घातक घटनाओं से सदा बचता रहा है। अब हमको चाहिए कि किसी और आक्रमणकारी असुर से मृत्यु का कारण उत्पन्न होने से पहले, हम इस स्थान को छोड़ कर किसी दूसरे स्थान चले जाँय जहाँ हम अविचलित रह कर विष्णु की पूजा कर सकें।'' भक्त की यही अभिलाषा रहती है कि वह अविचल-भाव से भक्ति करता रहे। किन्तु हम देखते हैं कि नन्द महाराज तथा अन्य ग्वालों के बीच भगवान् कृष्ण के होते हुए भी उत्पात हो रहे थे। हाँ, यह दूसरी बात है कि हर बार कृष्ण विजयी होते रहे। इससे हमें यही शिक्षा मिलती है कि तथाकथित उत्पातों से हमें विचलित नहीं होना चाहिए। हमारे कृष्णभावनामृत आन्दोलन

के साथ अनेक उत्पात होते रहे हैं किन्तु हम अपना आगे बढ़ना नहीं छोड़ सकते। उल्टे, संसार-भर में लोग इस आन्दोलन का बड़े उत्साह से स्वागत कर रहे हैं और दूने उत्साह से कृष्णभावनामृत विषयक साहित्य खरीद रहे हैं। इस तरह प्रोत्साहन तथा उत्पात दोनों रहते हैं। कृष्ण के समय में भी ऐसा ही था।

वनं वृन्दावनं नाम पशव्यं नवकाननम् ।
गोपगोपीगवां सेव्यं पुण्याद्रितृणवीरुधम् ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

वनम्—दूसरा वन; वृन्दावनम् नाम—वृन्दावन नामक; पशव्यम्—गौवों तथा अन्य पशुओं के पालन के लिए उपयुक्त स्थान; नव-काननम्—कई नये बगीचों जैसे स्थान हैं; गोप-गोपी-गवाम्—सारे ग्वालों, उनके परिवार वालों तथा गौवों के लिए; सेव्यम्—अत्यन्त उपयुक्त स्थान; पुण्य-अद्रि—सुन्दर पर्वत हैं; तृण—पौधे; वीरुधम्—तथा लताएँ।.

नन्देश्वर तथा महावन के मध्य वृन्दावन नामक एक स्थान है। यह स्थान अत्यन्त उपयुक्त है क्योंकि इसमें गौवों तथा अन्य पशुओं के लिए रसीली घास, पौधे तथा लताएँ हैं। वहाँ सुन्दर बगीचे तथा ऊँचे पर्वत हैं और वह स्थान गोपों, गोपियों तथा हमारे पशुओं के सुख के लिए सारी सुविधाओं से युक्त है।

तात्पर्य : वृन्दावन वह स्थान है, जो नन्देश्वर तथा महावन के बीच में है। पहले ग्वाले महावन चले गये थे फिर भी उत्पात होते रहते थे। अत: ग्वालों ने वृन्दावन को चुना जो दो गाँवों के बीच है और वहीं जाने का निश्चय किया।

तत्तत्राद्यैव यास्याम: शकटान्युङ्क्त मा चिरम् ।
गोधनान्यग्रतो यान्तु भवतां यदि रोचते ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

तत्—इसलिए; तत्र—वहाँ; अद्य एव—आज ही; यास्याम:—चले चलें; शकटान्—सारी बैलगाड़ियों को; युङ्क्त —जोत कर; मा चिरम्—देरी लगाये बिना; गो-धनानि—सारी गौवों को; अग्रत:—आगे आगे; यान्तु—चलने दें; भवताम्—आप सबों को; यदि—यदि; रोचते—अच्छा लगे।.

अतएव हम आज ही तुरन्त चल दें। अब और अधिक प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं है। यदि आप सबों को मेरा प्रस्ताव मान्य हो तो हम अपनी सारी बैलगाड़ियाँ तैयार कर लें और गौवों को आगे करके वहाँ चले जायें।

तच्छ्रुत्वैकधियो गोपाः साधु साध्विति वादिनः ।
व्रजान्स्वान्स्वान्समायुज्य ययू रूढपरिच्छदाः ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

तत् श्रुत्वा—उपानन्द की यह सलाह सुन कर; एक-धियः—एकमत होकर; गोपाः—सारे ग्वालों ने; साधु साधु—अति उत्तम, अति उत्तम; इति—इस प्रकार; वादिनः—घोषित करते हुए; व्रजान्—गौवों को; स्वान् स्वान्—अपनी अपनी; समायुज्य—एकत्र करके; ययुः—रवाना हो गये; रूढ-परिच्छदाः—सारा साज-सामान गाड़ियों में रख कर।

उपानन्द की यह सलाह सुन कर ग्वालों ने इसे एकमत से स्वीकार कर लिया और कहा, ''बहुत अच्छा, बहुत अच्छा।'' इस तरह उन्होंने अपने घरेलू मामलों की छान-बीन की और अपने वस्त्र तथा अन्य सामान गाड़ियों पर रख लिये और तुरन्त वृन्दावन के लिए प्रस्थान कर दिया।

वृद्धान्बालान्स्त्रियो राजन्सर्वोपकरणानि च ।
अनःस्वारोप्य गोपाला यत्ता आत्तशरासनाः ॥ ३१ ॥
गोधनानि पुरस्कृत्य शृङ्गाण्यापूर्य सर्वतः ।
तूर्यघोषेण महता ययुः सहपुरोहिताः ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

वृद्धान्—सर्वप्रथम सारे बूढ़ों को; बालान्—बालकों को; स्त्रियः—स्त्रियों को; राजन्—हे राजा परीक्षित; सर्व-उपकरणानि च—तथा सारी आवश्यक एवं घरेलू वस्तुएँ; अनःसु—बैलगाड़ियों पर; आरोप्य—लाद कर; गोपालाः—सारे ग्वाले; यत्ताः—सावधानीपूर्वक; आत्त-शर-असनाः—तीरों तथा धनुषों से लैस होकर; गो-धनानि—सारी गौवों को; पुरस्कृत्य—आगे रख कर; शृङ्गाणि—सींग की बनी तुरही; आपूर्य—बजाकर; सर्वतः—चारों ओर; तूर्य-घोषेण—तुरही की ध्वनि से; महता—उच्च; ययुः—रवाना हो गये; सह-पुरोहिताः—पुरोहितों सहित।

सारे बूढ़ों, स्त्रियों, बालकों तथा घरेलू सामग्री को बैलगाड़ियों में लाद कर एवं सारी गौवों को आगे करके, ग्वालों ने सावधानी से अपने अपने तीर-कमान ले लिये और सींग के बने बिगुल बजाये। हे राजा परीक्षित, इस तरह चारों ओर बिगुल बज रहे थे तभी ग्वालों ने अपने पुरोहितों सहित अपनी यात्रा के लिए प्रस्थान किया।

तात्पर्य : इस सम्बन्ध में यह ध्यान देने की बात है कि यद्यपि गोकुल के वासी अधिकांशतः ग्वाले तथा कृषक थे किन्तु वे संकट से अपनी रक्षा करना तथा स्त्रियों, वृद्धों, बालकों एवं ब्राह्मण पुरोहितों को संरक्षण प्रदान करना जानते थे।

गोप्यो रूढरथा नूत्नकुचकुङ्कुमकान्तयः ।
कृष्णलीला जगुः प्रीत्या निष्ककण्ठ्यः सुवाससः ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

गोप्यः—सारी गोपियाँ; रूढ-रथाः—बैलगाड़ियों पर चढ़ी हुई; नूत्न-कुच-कुङ्कुम-कान्तयः—उनके शरीर, विशेषतया उनके स्तन ताजे कुंकुम से सजाये गये; कृष्ण-लीलाः—कृष्ण-लीलाएँ; जगुः—उच्चारण कर रही थीं; प्रीत्या—बड़े हर्ष से; निष्क-कण्ठ्यः—अपने गलों में लाकेट पहने; सु-वाससः—अच्छे वस्त्रों से सज्जित।

बैलगाड़ियों में चढ़ी हुई गोपियाँ उत्तम से उत्तम वस्त्रों से सुसज्जित थीं और उनके शरीर, विशेषतया स्तन ताजे कुंकुम-चूर्ण से अलंकृत थे। बैलगाड़ियों पर चढ़ते समय वे अत्यन्त हर्षपूर्वक कृष्ण की लीलाओं का कीर्तन करने लगीं।

तथा यशोदारोहिण्यावेकं शकटमास्थिते ।
रेजतुः कृष्णरामाभ्यां तत्कथाश्रवणोत्सुके ॥ ३४॥

शब्दार्थ

तथा—और; यशोदा-रोहिण्यौ—यशोदा तथा रोहिणी दोनों; एकम् शकटम्—एक बैलगाड़ी पर; आस्थिते—बैठी; रेजतुः—अत्यन्त सुन्दर; कृष्ण-रामाभ्याम्—अपनी माताओं के साथ कृष्ण तथा बलराम; तत्-कथा—कृष्ण तथा बलराम की लीलाओं का; श्रवण-उत्सुके—बड़ी ही उत्सुकता से सुनते हुए।

इस तरह माता यशोदा तथा रोहिणीदेवी कृष्ण तथा बलराम की लीलाओं को बड़े हर्ष से सुनती हुईं, जिससे वे क्षण-भर के लिए भी उनसे वियुक्त न हों, एक बैलगाड़ी में उन दोनों के साथ चढ़ गईं। इस दशा में वे सभी अत्यन्त सुन्दर लग रहे थे।

तात्पर्य : ऐसा लगता है कि माता यशोदा तथा रोहिणी क्षण-भर भी कृष्ण तथा बलराम से विलग नहीं की जा सकतीं थीं। वे या तो कृष्ण तथा बलराम के पालन-पोषण में अथवा उनकी लीलाओं का कीर्तन करने में अपना समय बिताती थीं। इस तरह माता यशोदा तथा रोहिणी अत्यन्त सुन्दर दिखती थीं।

वृन्दावनं सम्प्रविश्य सर्वकालसुखावहम् ।
तत्र चक्रुर्व्रजावासं शकटैरर्धचन्द्रवत् ॥ ३५॥

शब्दार्थ

वृन्दावनम्—वृन्दावन नामक पवित्र स्थान में; सम्प्रविश्य—प्रविष्ट होकर; सर्व-काल-सुख-आवहम्—जहाँ सभी ऋतुओं में रहना सुहावना लगता है; तत्र—वहाँ; चक्रुः—बनाया; व्रज-आवासम्—व्रज का निवास; शकटैः—बैलगाड़ियों से; अर्ध-चन्द्रवत्—आधे चन्द्रमा जैसा अर्धवृत्त बनाकर।

इस तरह वे वृन्दावन में प्रविष्ट हुए जहाँ सभी ऋतुओं में रहना सुहावना लगता है। उन्होंने अपनी बैलगाड़ियों से अर्धचन्द्राकार अर्धवृत्त बनाकर अपने रहने के लिए अस्थायी निवास बना लिया।

तात्पर्य : *विष्णु पुराण* में कहा गया है—

शकटीवाटपर्यन्तश्चन्द्रार्धकार संस्थिते

और हरिवंश में कहा गया है—

कण्टकीभिः प्रवृद्धाभिस्तथा कण्टकीभिर्द्रुमैः।

निखातोच्छ्रितशाखाभिरभिगुप्तं समन्ततः॥

चारों ओर बाड़ा बनाने की आवश्यकता न थी। एक ओर पहले से ही कँटीले वृक्ष थे। इस तरह कँटीले वृक्ष, बैलगाड़ियाँ तथा पशुओं से उनके अस्थायी निवास घिर गये।

वृन्दावनं गोवर्धनं यमुनापुलिनानि च ।
वीक्ष्यासीदुत्तमा प्रीती राममाधवयोर्नृप ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

वृन्दावनम्—वृन्दावन नामक स्थान; गोवर्धनम्—गोवर्धन पर्वत; यमुना-पुलिनानि च—तथा यमुना नदी के किनारे; वीक्ष्य—देखकर; आसीत्—हो उठे; उत्तमा प्रीती—उच्च कोटि का हर्ष; राम-माधवयोः—कृष्ण तथा बलराम का; नृप—हे राजा परीक्षित।

हे राजा परीक्षित, जब राम तथा कृष्ण ने वृन्दावन, गोवर्धन तथा यमुना नदी के तट देखे तो दोनों को बड़ा आनन्द आया।

एवं व्रजौकसां प्रीतिं यच्छन्तौ बालचेष्टितैः ।
कलवाक्यैः स्वकालेन वत्सपालौ बभूवतुः ॥ ३७॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; व्रज-ओकसाम्—सारे व्रजवासियों को; प्रीतिम्—हर्ष; यच्छन्तौ—प्रदान करते हुए; बाल-चेष्टितैः—बाल-लीलाओं से; कल-वाक्यैः—मीठी तोतली बोली से; स्व-कालेन—समयानुसार; वत्स-पालौ—बछड़ों की रखवाली करने के लिए; बभूवतुः—बड़े हो गये।

इस तरह कृष्ण और बलराम छोटे बालकों की तरह क्रीड़ाएँ करते तथा तोतली बोली बोलते हुए व्रज के सारे निवासियों को दिव्य आनन्द देने लगे। समय आने पर वे बछड़ों की देखभाल करने के योग्य हो गये।

तात्पर्य : ज्योंही कृष्ण तथा बलराम कुछ बड़े हुए त्योंही उन्हें बछड़ों की रखवाली का काम सौंप दिया गया। यद्यपि वे समृद्ध परिवार में उत्पन्न हुए थे तो भी उन्हें बछड़ों की रखवाली करनी पड़ती थी। यह शिक्षा की पद्धति थी। जो ब्राह्मण परिवारों में जन्म नहीं लेते थे उन्हें उच्च शिक्षा नहीं दी जाती थी। ब्राह्मणों को साहित्यिक उच्च शिक्षा दी जाती थी; क्षत्रियों को राज्य की रक्षा करने का प्रशिक्षण मिलता

था और वैश्यों को खेती करने तथा गौवों-बछड़ों की रखवाली करना सिखलाया जाता था। उन्हें झूठी शिक्षा प्राप्त करने के लिए स्कूल जाने और समय बर्बाद करने की आवश्यकता नहीं थी क्योंकि इससे बाद में बेरोजगारी ही बढ़ती। कृष्ण तथा बलराम ने अपने निजी आचरण से हमें शिक्षा दी। कृष्ण गायों की रखवाली करते और अपनी बाँसुरी बजाते तथा बलराम अपने हाथ में हल लेकर कृषि कार्यों की देखरेख करते।

अविदूरे व्रजभुवः सह गोपालदारकैः ।
चारयामासतुर्वत्सान्नानाक्रीडापरिच्छदौ ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

अविदूरे—व्रजवासियों के आवासीय घरों से अधिक दूर नहीं; व्रज-भुवः—व्रजभूमि से; सह गोपाल-दारकैः—उसी व्यवसाय वाले अन्य बालकों (ग्वालों) के साथ; चारयाम् आसतुः—चराया करते; वत्सान्—बछड़ों को; नाना—तरह तरह के; क्रीडा—खेल; परिच्छदौ—भाँति-भाँति की सुन्दर वेशभूषाओं से युक्त तथा औजारों से लैस।

कृष्ण तथा बलराम अपने मकान के पास ही सभी तरह के खिलौनों से युक्त होकर अन्य ग्वालों के साथ खेलने लगे एवं छोटे-छोटे बछड़ों को चराने लगे।

क्वचिद्वादयतो वेणुं क्षेपणैः क्षिपतः क्वचित् ।
क्वचित्पादैः किङ्किणीभिः क्वचित्कृत्रिमगोवृषैः ॥ ३९ ॥
वृषायमाणौ नर्दन्तौ युयुधाते परस्परम् ।
अनुकृत्य रुतैर्जन्तूंश्चेरतुः प्राकृतौ यथा ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

क्वचित्—कभी; वादयतः—बजाते हुए; वेणुम्—बाँसुरी को; क्षेपणैः—फेंकने की रस्सी (गुलेल) से; क्षिपतः—फल पाने के लिए पत्थर फेंकते; क्वचित्—कभी; क्वचित् पादैः—कभी पाँवों से; किङ्किणीभिः—पैजनियों की आवाज से; क्वचित्—कभी; कृत्रिम-गो-वृषैः—नकली गाय तथा बैल बन कर; वृषायमाणौ—पशुओं की नकल उतारते; नर्दन्तौ—नादते, जोर से शब्द करते; युयुधाते—लड़ने लगते; परस्परम्—एक-दूसरे से; अनुकृत्य—नकल करके; रुतैः—आवाज निकालते हुए; जन्तून्—सारे पशुओं की; चेरतुः—घूमा करते; प्राकृतौ—दो सामान्य बालकों; यथा—की तरह।

कृष्ण और बलराम कभी अपनी बाँसुरी बजाते, कभी वृक्षों से फल गिराने के लिए गुलेल चलाते, कभी केवल पत्थर फेंकते और कभी पाँवों के घुँघरुओं के बजते रहने के साथ साथ, वे बेल तथा आमलकी जैसे फलों से फुटबाल खेलते। कभी कभी वे अपने ऊपर कम्बल डाल कर गौवों तथा बैलों की नकल उतारते और जोर-जोर से शब्द करते हुए एक-दूसरे से लड़ते। कभी वे पशुओं की बोलियों की नकल करते। इस तरह वे दोनों सामान्य मानवी बालकों की तरह खेल का आनन्द लेते।

तात्पर्य : वृन्दावन मोरों से भरा हुआ है। *कूजत्-कोकिल-हंस-सारस-गणाकीर्णे मयूराकुले।* वृन्दावन का जंगल कोयलों, बत्तखों, हंसों, सारसों, मोरों तथा बन्दरों, बैलों और गौवों से भरा-पुरा था। अत: कृष्ण तथा बलराम इन पशुओं की बोली की नकल उतारते तथा खेल का आनन्द लेते।

कदाचिद्यमुनातीरे वत्सांश्चारयतोः स्वकैः ।
वयस्यैः कृष्णबलयोर्जिघांसुर्दैत्य आगमत् ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

कदाचित्—कभी; यमुना-तीरे—यमुना के तट पर; वत्सान्—बछड़ों को; चारयतोः—चराते हुए; स्वकैः—अपने; वयस्यैः—अन्य साथियों के साथ; कृष्ण-बलयोः—कृष्ण तथा बलराम दोनों को; जिघांसुः—मारने की इच्छा से; दैत्यः—अन्य असुर; आगमत्—आ पहुँचा।

एक दिन जब राम तथा कृष्ण अपने साथियों के साथ यमुना नदी के किनारे अपने बछड़े चरा रहे थे तो उन्हें मारने की इच्छा से वहाँ एक अन्य असुर आया।

तं वत्सरूपिणं वीक्ष्य वत्सयूथगतं हरिः ।
दर्शयन्बलदेवाय शनैर्मुग्ध इवासदत् ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

तम्—असुर को; वत्स-रूपिणम्—बछड़े का वेश धारण किये; वीक्ष्य—देख कर; वत्स-यूथ-गतम्—जब वह असुर अन्य बछड़ों के समूह के बीच घुसा; हरिः—भगवान् कृष्ण; दर्शयन्—सूचित करते हुए; बलदेवाय—बलदेव को; शनैः—अत्यन्त धीमे धीमे; मुग्धः इव—मानो कुछ समझ ही न रहे हों; आसदत्—पास आये।

जब भगवान् ने देखा कि असुर बछड़े का वेश धारण करके अन्य बछड़ों के समूह के बीच घुस आया है, तो उन्होंने बलदेव को इङ्गित किया, ''यह रहा दूसरा असुर।'' फिर वे उस असुर के पास धीरे-धीरे पहुँच गये मानो वे असुर के मनोभावों को समझ नहीं रहे थे।

तात्पर्य : *मुग्ध इव* शब्दों का आशय यह है कि यद्यपि कृष्ण सब जानते हैं किन्तु यहाँ वे ऐसा बन रहे थे जैसे वे यह नहीं जानते कि असुर बछड़ों के बीच में क्यों घुस आया है, अत: उन्होंने बलदेव को संकेत से बताया।

गृहीत्वापरपादाभ्यां सहलाङ्गूलमच्युतः ।
भ्रामयित्वा कपित्थाग्रे प्राहिणोद्गतजीवितम् ।
स कपित्थैर्महाकायः पात्यमानैः पपात ह ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

गृहीत्वा—पकड़ कर; अपर-पादाभ्याम्—पिछले पाँव से; सह—साथ; लाङ्गूलम्—पूँछ को; अच्युतः—भगवान् कृष्ण ने; भ्रामयित्वा—तेजी से घुमाकर; कपित्थ-अग्रे—कैथे के पेड़ की चोटी पर; प्राहिणोत्—फेंक दिया; गत-जीवितम्—प्राणहीन

शरीर; सः—वह असुर; कपित्थैः—कैथे के वृक्ष समेत; महा-कायः—विशाल शरीर धारण किये; पात्यमानैः—गिरता हुआ वृक्ष; पपात ह—मृत होकर भूमि पर गिर पड़ा।

तत्पश्चात् श्रीकृष्ण ने उस असुर की पिछली टाँगें तथा पूँछ पकड़ ली और वे उसके शरीर को तब तक तेजी से घुमाते रहे जब तक वह मर नहीं गया। फिर उसे कैथे के पेड़ की चोटी पर फेंक दिया। वह वृक्ष उस असुर द्वारा धारण किये गये विशाल शरीर को लेकर भूमि पर गिर पड़ा।

तात्पर्य : कृष्ण ने असुर को इस तरह मारा कि उससे कैथे के फल नीचे गिरें जिन्हें बलराम, वे तथा अन्य बालक उस अवसर का लाभ उठाकर, खा सकें। *कपित्थ* को कभी कभी *क्षतबेलफल* भी कहा जाता है। इसका गूदा बहुत स्वादिष्ट होता है—मीठा तथा खट्टा अत: इसे हर कोई पसंद करता है।

तं वीक्ष्य विस्मिता बालाः शशंसुः साधु साध्विति ।
देवाश्च परिसन्तुष्टा बभूवुः पुष्पवर्षिणः ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ

तम्—इस घटना को; वीक्ष्य—देखकर; विस्मिताः—चकित; बालाः—सारे बालक; शशंसुः—खूब प्रशंसा की; साधु साधु इति—''बहुत अच्छा बहुत अच्छा'' चिल्लाते हुए; देवाः च—तथा स्वर्गलोक से सारे देवता; परिसन्तुष्टाः—अत्यन्त संतुष्ट; बभूवुः—हो गये; पुष्प-वर्षिणः—कृष्ण पर फूलों की वर्षा की।

असुर के मृत शरीर को देखकर सारे ग्वालबाल चिल्ला उठे, ''बहुत खूब कृष्ण, बहुत अच्छे, बहुत अच्छे, धन्यवाद,'' स्वर्गलोक में सारे देवता प्रसन्न थे अत: उन्होंने भगवान् पर फूल बरसाये।

तौ वत्सपालकौ भूत्वा सर्वलोकैकपालकौ ।
सप्रातराशौ गोवत्सांश्चारयन्तौ विचेरतुः ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

तौ—कृष्ण तथा बलराम; वत्स-पालकौ—मानो बछड़ों की रखवाली करने वाले; भूत्वा—बन कर; सर्व-लोक-एक-पालकौ—यद्यपि वे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के जीवों के पालनकर्ता हैं; स-प्रातः-आशौ—सुबह का नाश्ता करके; गो-वत्सान्—सारे बछड़ों को; चारयन्तौ—चराते हुए; विचेरतुः—इधर-उधर विचरण करने लगे।

असुर को मारने के बाद कृष्ण तथा बलराम ने अपना सुबह का नाश्ता (कलेवा) किया और बछड़ों की रखवाली करते हुए वे इधर-उधर टहलते रहे। भगवान् कृष्ण तथा बलराम ने जो सम्पूर्ण सृष्टि के पालक हैं, ग्वालबालों की तरह बछड़ों का भार सँभाला।

तात्पर्य : *परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।* इस भौतिक जगत में कृष्ण का नित्य कार्य था दुष्कृतियों को मारना। इससे उनके दैनिक कार्य में बाधा नहीं आती थी क्योंकि यह नित्य कर्म था। जब

वे यमुना के तट पर बछड़े चराते तो नित्य ही दो-तीन घटनाएँ घटतीं किन्तु गम्भीर होने पर भी असुरों का वध उनका नित्य का कार्य बन गया था।

स्वं स्वं वत्सकुलं सर्वे पाययिष्यन्त एकदा ।
गत्वा जलाशयाभ्याशं पाययित्वा पपुर्जलम् ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

स्वम् स्वम्—अपने अपने; वत्स-कुलम्—बछड़ों के समूह को; सर्वे—सारे लड़के तथा कृष्ण एवं बलराम; पाययिष्यन्तः—पानी पिलाने की इच्छा से; एकदा—एक दिन; गत्वा—जाकर; जल-आशय-अभ्याशम्—तालाब के निकट; पाययित्वा—पशुओं को पानी पिला कर; पपुः जलम्—स्वयं भी जल पिया।

एक दिन कृष्ण तथा बलराम समेत सारे बालक, अपने अपने बछड़ों का समूह लेकर, जलाशय के पास बछड़ों को पानी पिलाने लाये। जब पशु जल पी चुके तो बालकों ने भी वहाँ पानी पिया।

ते तत्र ददृशुर्बाला महासत्त्वमवस्थितम् ।
तत्रसुर्वज्रनिर्भिन्नं गिरेः शृङ्गमिव च्युतम् ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ

ते—उन; तत्र—वहाँ; ददृशुः—देखा; बालाः—बालकों ने; महा-सत्त्वम्—विशाल शरीर; अवस्थितम्—स्थित; तत्रसुः—डर गये; वज्र-निर्भिन्नम्—वज्र से टूटा; गिरेः शृङ्गम्—पर्वत की चोटी; इव—सदृश; च्युतम्—वहाँ पर गिरी हुई।

जलाशय के पास ही बालकों ने एक विराट शरीर देखा जो उस पर्वत की चोटी के समान था, जो वज्र के द्वारा टूट पड़ी हो। वे ऐसे विशाल जीव को देखखर ही भयभीत थे।

स वै बको नाम महानसुरो बकरूपधृक् ।
आगत्य सहसा कृष्णं तीक्ष्णतुण्डोऽग्रसद्बली ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ

सः—वह प्राणी; वै—निस्सन्देह; बकः नाम—बकासुर नामक; महान् असुरः—विशाल असुर; बक-रूप-धृक्—बगुले का शरीर धारण करके; आगत्य—वहाँ आकर; सहसा—अचानक; कृष्णम्—कृष्ण को; तीक्ष्ण-तुण्डः—तेज चोंच वाला; अग्रसत्—निगल गया; बली—अत्यन्त बलशाली।

वह विशालकाय असुर बकासुर था। उसने अत्यन्त तेज चोंच वाले बगुले का शरीर धारण कर लिया था। वहाँ आकर उसने तुरन्त ही कृष्ण को निगल लिया।

कृष्णं महाबकग्रस्तं दृष्ट्वा रामादयोऽर्भकाः ।
बभूवुरिन्द्रियाणीव विना प्राणं विचेतसः ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ

कृष्णम्—कृष्ण को; महा-बक-ग्रस्तम्—विशाल बगुले द्वारा निगला हुआ; दृष्ट्वा—देखकर; राम-आदयः अर्भकाः—बलराम इत्यादि सारे बालक; बभूवुः—हो गए; इन्द्रियाणि—इन्द्रियाँ; इव—सदृश; विना—रहित; प्राणम्—प्राण; विचेतसः—अत्यधिक मोहग्रस्त, प्रायः अचेत।

जब बलराम तथा अन्य बालकों ने देखा कि कृष्ण विशाल बगुले द्वारा निगले जा चुके हैं, तो वे बेहोश जैसे हो गये मानों प्राणरहित इन्द्रियाँ हों।

तात्पर्य : यद्यपि बलराम सब कुछ कर सकते हैं किन्तु अपने भाई के लिए उत्कट स्नेह के कारण वे क्षण-भर के लिए मोहित हो गये। ऐसी ही घटना रुक्मिणी-हरण के समय हुई बतलाई जाती है। रुक्मिणी-हरण करने के बाद कृष्ण पर सारे राजाओं ने आक्रमण कर दिया तो रुक्मिणी क्षण-भर के लिए मोहग्रस्त हो गई थीं जब तक कि भगवान् ने उचित कदम नहीं उठाये।

तं तालुमूलं प्रदहन्तमग्निवद्
गोपालसूनुं पितरं जगद्गुरोः ।
चच्छर्द सद्योऽतिरुषाक्षतं बक-
स्तुण्डेन हन्तुं पुनरभ्यपद्यत ॥ ५० ॥

शब्दार्थ

तम्—उसको; तालु-मूलम्—गले के नीचे; प्रदहन्तम्—जलाते हुए; अग्नि-वत्—आग की तरह; गोपाल-सूनुम्—ग्वाल-पुत्र, कृष्ण को; पितरम्—पिता को; जगत्-गुरोः—ब्रह्मा के; चच्छर्द—उसके मुँह से निकल आये; सद्यः—तुरन्त; अति-रुषा—अत्यधिक क्रोध से; अक्षतम्—बिना किसी तरह चोट खाये; बकः—बकासुर; तुण्डेन—तेज चोंच से; हन्तुम्—मार डालने के लिए; पुनः—फिर; अभ्यपद्यत—प्रयास किया।

कृष्ण जो ब्रह्मा के पिता हैं किन्तु ग्वाले के पुत्र की भूमिका निभा रहे थे, अग्नि के समान बन कर असुर के गले के निचले भाग को जलाने लगे जिससे बकासुर ने तुरन्त ही उन्हें उगल दिया। जब असुर ने देखा कि निगले जाने पर भी कृष्ण को कोई क्षति नहीं पहुँची तो तुरन्त ही उसने अपनी तेज चोंच से कृष्ण पर फिर वार कर दिया।

तात्पर्य : यद्यपि कृष्ण कमल की भाँति कोमल हैं किन्तु बकासुर के गले में उन्होंने अग्नि से भी बढ़कर जलन उत्पन्न कर दी। यद्यपि कृष्ण का सारा शरीर मिश्री से भी मीठा है किन्तु वह बकासुर को इतना कड़ुवा लगा कि उसने तुरन्त ही कृष्ण को उगल दिया। *भगवद्गीता* (४.११) में ठीक ही कहा गया है—*ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।* जब कृष्ण को शत्रु मान लिया जाता है, तो वे अभक्त के लिए असह्य बन जाते है और वह उन्हें भीतर-बाहर से सहन नहीं कर सकता है। यहाँ पर बकासुर इसका साक्षात् प्रमाण है।

तमापतन्तं स निगृह्य तुण्डयो-
दोर्भ्यां बकं कंससखं सतां पतिः ।
पश्यत्सु बालेषु ददार लीलया
मुदावहो वीरणवद्दिवौकसाम् ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ

तम्—बकासुर को; आपतन्तम्—उन पर आक्रमण करने के लिए पुनः उद्यत; सः—भगवान् कृष्ण ने; निगृह्य—पकड़ कर; तुण्डयोः—चोंच; दोर्भ्याम्—अपनी बाहुओं से; बकम्—बकासुर को; कंस-सखम्—कंस के संगी; सताम् पतिः—वैष्णवों के स्वामी कृष्ण ने; पश्यत्सु—देखते देखते; बालेषु—ग्वालबालों के; ददार—दो टुकड़े कर दिये; लीलया—आसानी से; मुदा-आवहः—मनमोहक कार्य; वीरण-वत्—वीरण घास के तुल्य; दिवौकसाम्—स्वर्ग के निवासियों केलिए।.

जब वैष्णवों के नायक कृष्ण ने यह देखा कि कंस का मित्र बकासुर उन पर आक्रमण करने का प्रयास कर रहा है, तो उन्होंने अपने हाथों से उसकी चोंच के दोनों भागों (ठोरों) को पकड़ लिया और सारे ग्वालबालों की उपस्थिति में उसे उसी प्रकार चीर डाला जिस तरह वीरण घास (गाँडर) के डंठल को बच्चे चीर डालते हैं। कृष्ण द्वारा इस प्रकार असुर के मारे जाने से स्वर्ग के निवासी अत्यन्त प्रसन्न हुए।

तदा बकारिं सुरलोकवासिनः
समाकिरन्नन्दनमल्लिकादिभिः ।
समीडिरे चानकशङ्खसंस्तवै-
स्तद्वीक्ष्य गोपालसुता विसिस्मिरे ॥ ५२ ॥

शब्दार्थ

तदा—उस समय; बक-अरिम्—बकासुर के शत्रु को; सुर-लोक-वासिनः—स्वर्गलोक के वासियों ने; समाकिरन्—फूल बरसाये; नन्दन-मल्लिका-आदिभिः—नन्दन कानन में उत्पन्न मल्लिका आदि फूलों से; समीडिरे—उनको बधाई भी दी; च—तथा; आनक-शङ्ख-संस्तवैः—दुन्दुभी, शंख तथा स्तुतियों द्वारा; तत् वीक्ष्य—यह देखकर; गोपाल-सुताः—ग्वालबाल; विसिस्मिरे—आश्चर्यचकित थे।.

उस समय स्वर्गलोक के वासियों ने बकासुर के शत्रु कृष्ण पर नन्दन-कानन में उगी मल्लिका के फूलों की वर्षा की। उन्होंने दुन्दुभी तथा शंख बजाकर एवं स्तुतियों द्वारा उनको बधाई दी। यह देखकर सारे ग्वालबाल आश्चर्यचकित थे।

मुक्तं बकास्यादुपलभ्य बालका
रामादयः प्राणमिवेन्द्रियो गणः ।
स्थानागतं तं परिरभ्य निर्वृताः
प्रणीय वत्सान्व्रजमेत्य तज्जगुः ॥ ५३ ॥

शब्दार्थ

मुक्तम्—इस प्रकार छूटा हुआ; बक-आस्यात्—बकासुर के मुख से; उपलभ्य—वापस पाकर; बालका:—सारे बालक, संगी; राम-आदय:—बलराम इत्यादि; प्राणम्—प्राण; इव—के समान; इन्द्रिय:—इन्द्रियाँ; गण:—समूह; स्थान-आगतम्—अपने अपने स्थान पर जाकर; तम्—कृष्ण को; परिरभ्य—चूमते हुए; निर्वृता:—संकट से मुक्त हुए; प्रणीय—एकत्र करके; वत्सान्—बछड़ों को; व्रजम् एत्य—व्रजभूमि लौट कर; तत् जगु:—घटना का जोर-जोर से बखान किया।

जिस प्रकार चेतना तथा प्राण वापस आने पर इन्द्रियाँ शान्त हो जाती हैं उसी तरह जब कृष्ण इस संकट से उबर आये तो बलराम समेत सारे बालकों ने सोचा मानो उन्हें फिर से जीवन प्राप्त हुआ हो। उन्होंने कृष्ण का पूरी चेतना के साथ आलिंगन किया और अपने बछड़ों को समेट कर वे व्रजभूमि लौट आये जहाँ उन्होंने जोर-जोर से इस घटना का बखान किया।

तात्पर्य : जब भी कृष्ण असुरों को मारने की विभिन्न लीलाएँ करते तो व्रजभूमि के वासी जंगल में हुई घटनाओं पर कविता बनाते। वे सारी कहानियाँ पद्यबद्ध कर लेते या पेशेवर कवियों से करवा लेते और तब इन घटनाओं को गाया करते। अत: इस श्लोक में कहा गया है कि लड़के जोर-जोर से गा रहे थे।

श्रुत्वा तद्विस्मिता गोपा गोप्यश्चातिप्रियादृताः ।
प्रेत्यागतमिवोत्सुक्यादैक्षन्त तृषितेक्षणाः ॥ ५४॥

शब्दार्थ

श्रुत्वा—सुन कर; तत्—वह घटना; विस्मिता:—आश्चर्यचकित; गोपा:—ग्वाले; गोप्य: च—तथा गोपियाँ; अति-प्रिय-आदृता:—समाचार को बड़े आदर से सुना; प्रेत्य आगतम् इव—मानों ये बालक मृत्यु के मुख से लौट कर आये हों; उत्सुक्यात्—बड़ी उत्सुकता से; ऐक्षन्त—बालकों पर दृष्टि डालते हुए; तृषित-ईक्षणा:—पूर्ण सन्तोष से, कृष्ण तथा बालकों से आँखें फेरने का मन नहीं हो रहा था।

जब ग्वालों तथा गोपियों ने जंगल में बकासुर के मारे जाने का समाचार सुना तो वे अत्यधिक विस्मित हो उठे। कृष्ण को देखकर तथा उनकी कहानी सुन कर उन्होंने कृष्ण का स्वागत बड़ी उत्सुकता से यह सोचते हुए किया कि कृष्ण तथा अन्य बालक मृत्यु के मुख से वापस आ गये हैं। अत: वे कृष्ण तथा उन बालकों को मौन नेत्रों से देखते रहे। अब जबकि बालक सुरक्षित थे, उनकी आँखें उनसे हटना नहीं चाह रही थीं।

तात्पर्य : कृष्ण के प्रति प्रगाढ़ प्रेम के कारण ग्वाले तथा गोपियाँ यह सोचते हुए कि कृष्ण तथा अन्य बालक किस तरह बच कर आये हैं, शान्त रह गईं। वे सब उन्हें देखते ही रहे तथा उन्होंने अपनी आँखों को दूसरी ओर घुमाना नहीं चाहा।

अहो बतास्य बालस्य बहवो मृत्यवोऽभवन् ।
अप्यासीद्विप्रियं तेषां कृतं पूर्वं यतो भयम् ॥ ५५ ॥

शब्दार्थ

अहो बत—यह अत्यन्त आश्चर्य की बात है; अस्य—इस; बालस्य—कृष्ण का; बहवः—अनेक; मृत्यवः—मृत्यु के कारण; अभवन्—आये; अपि—फिर भी; आसीत्—था; विप्रियम्—मृत्यु का कारण; तेषाम्—सबों का; कृतम्—किया हुआ; पूर्वम्—पहले; यतः—जिससे; भयम्—मृत्यु-भय था।

नन्द महाराज तथा अन्य ग्वाले विचार करने लगे: यह बड़े आश्चर्य की बात है कि यद्यपि इस बालक कृष्ण ने अनेक बार मृत्यु के विविध कारणों का सामना किया है किन्तु भगवान् की कृपा से भय के इन कारणों का ही विनाश हो गया और उसका बाल बाँका भी नहीं हुआ।

तात्पर्य : ग्वालों ने सहज भाव से सोचा, ''क्योंकि हमारा कृष्ण निर्दोष है, अतः मृत्यु के वे कारण ही विनष्ट हो गये जो उनके समक्ष उपस्थित हुए। कृष्ण का बाल बाँका भी नहीं हुआ। यह भगवान् की सबसे बड़ी कृपा है।''

अथाप्यभिभवन्त्येनं नैव ते घोरदर्शनाः ।
जिघांसयैनमासाद्य नश्यन्त्यग्नौ पतङ्गवत् ॥ ५६ ॥

शब्दार्थ

अथ अपि—यद्यपि उन्होंने आक्रमण करना चाहा; अभिभवन्ति—मारने में सक्षम हैं; एनम्—इस बालक को; न—नहीं; एव—निश्चय ही; ते—वे सब; घोर-दर्शनाः—देखने में भयावने; जिघांसया—ईर्ष्या के कारण; एनम्—कृष्ण के; आसाद्य—पास आकर; नश्यन्ति—नष्ट हो जाते हैं (आक्रामक की मृत्यु होती है); अग्नौ—अग्नि में; पतङ्ग-वत्—कीटों के समान।

यद्यपि मृत्यु के कारणरूप दैत्यगण अत्यन्त भयावने थे किन्तु वे इस बालक कृष्ण को मार नहीं पाये। चूँकि वे निर्दोष बालकों को मारने आये थे इसलिए ज्योंही वे उनके निकट पहुँचे त्योंही वे उसी तरह मारे गये जिस तरह अग्नि पर आक्रमण करने वाले पतङ्गे मारे जाते हैं।

तात्पर्य : नन्द महाराज ने सहज भाव से सोचा, ''शायद इस बालक ने पूर्वजन्म में इन असुरों को मारा हो इसलिए इस जीवन में वे उससे ईर्ष्या करके उस पर आक्रमण कर रहे हैं। लेकिन कृष्ण अग्नि हैं और वे पतङ्गे हैं और अग्नि तथा पतङ्गों की लड़ाई में अग्नि ही विजयी होती है।'' असुरों तथा भगवान् की शक्ति के बीच सदैव युद्ध चलता रहता है। *परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्* (*भगवद्गीता* ४.८)। जो भी भगवान् के नियंत्रण के विरुद्ध हो उसका वध जन्म-जन्मांतर किया जाना चाहिए। सामान्य प्राणी कर्म के वशीभूत हैं किन्तु भगवान् सदा ही असुरों पर विजय पाते हैं।

अहो ब्रह्मविदां वाचो नासत्याः सन्ति कर्हिचित् ।
गर्गो यदाह भगवानन्वभावि तथैव तत् ॥ ५७ ॥

शब्दार्थ

अहो—कितना आश्चर्यजनक है; ब्रह्म-विदाम्—ब्रह्म-ज्ञान से युक्त व्यक्तियों के; वाचः—शब्द; न—कभी नहीं; असत्याः—झूठ; सन्ति—होते हैं; कर्हिचित्—किसी भी समय; गर्गः—गर्गमुनि ने; यत्—जो भी; आह—भविष्यवाणी की थी; भगवान्—परम शक्तिशाली; अन्वभावि—वही हो रहा है; तथा एव—जैसा; तत्—वह।

ब्रह्म-ज्ञान से युक्त पुरुषों के शब्द कभी झूठे नहीं निकलते। यह बड़े ही आश्चर्य की बात है कि गर्गमुनि ने जो भी भविष्यवाणी की थी उसे ही हम विस्तार से वस्तुतः अनुभव कर रहे हैं।

तात्पर्य : मानव जीवन के उद्देश्य का ब्रह्मसूत्र में संकेत किया है—*अथातो ब्रह्मजिज्ञासा।* अपना जीवन पूर्ण बनाने के लिए—चाहे भूत हो, वर्तमान या भविष्य—मनुष्य को ब्रह्म के विषय में जानना चाहिए। तीव्र स्नेह के कारण नन्द महाराज कृष्ण को यथार्थ रूप में नहीं समझ पाये। गर्गमुनि वेदों का अध्ययन करने से भूत, वर्तमान तथा भविष्य की हर बात जान सकते थे किन्तु नन्द महाराज कृष्ण को सीधे नहीं समझ पाये। कृष्ण के प्रति गहन प्रेम के कारण वे भूल गये कि कृष्ण कौन हैं और वे कृष्ण की शक्ति को समझ नहीं पाये। यद्यपि कृष्ण साक्षात् नारायण हैं किन्तु गर्गमुनि ने इसको प्रकट नहीं किया। इसलिए नन्द महाराज को गर्गमुनि के शब्द अच्छे लगे किन्तु गहन प्रेम के कारण वे यह नहीं समझ पाये कि कृष्ण कौन हैं यद्यपि गर्गमुनि ने कहा था कि कृष्ण के सारे गुण नारायण के ही समान होंगे।

इति नन्दादयो गोपाः कृष्णरामकथां मुदा ।
कुर्वन्तो रममाणाश्च नाविन्दन्भववेदनाम् ॥ ५८ ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; नन्द-आदयः—नन्द महाराज इत्यादि; गोपाः—ग्वाले; कृष्ण-राम-कथाम्—भगवान् कृष्ण तथा राम सम्बन्धी घटनाओं की कथा को; मुदा—बड़े ही आनन्द से; कुर्वन्तः—करते हुए; रममाणाः च—आनन्द लेते हुए तथा कृष्ण के प्रति प्रेम बढ़ाते हुए; न—नहीं; अविन्दन्—अनुभव किया; भव-वेदनाम्—इस संसार के कष्टों को।

इस तरह नन्द समेत सारे ग्वालों को कृष्ण तथा बलराम की लीलाओं सम्बन्धी कथाओं में बड़ा ही दिव्य आनन्द आया और उन्हें भौतिक कष्टों का पता तक नहीं चला।

तात्पर्य : यहाँ पर *श्रीमद्भागवत* में आई कृष्ण-लीलाओं के अध्ययन या विचार-विमर्श करने के परिणाम के विषय में शिक्षा है। *सद्यो हृद्यवरुध्यतेऽत्र कृतिभिः शुश्रूषुभिस्तत्क्षणात्* (भागवत १.१.२)। नन्द महाराज तथा यशोदा का प्राकट्य वृन्दावन में इस भौतिक जगत के सामान्य व्यक्तियों की ही तरह

हुआ किन्तु उन्हें इस जगत के कष्टों का कभी अनुभव नहीं हुआ, भले ही उन्हें कभी कभी असुरों के उत्पातों का सामना करना पड़ा हो। यह व्यावहारिक उदाहरण है। यदि हम नन्द महाराज तथा गोपों के चरणचिह्नों का अनुसरण करें तो हम कृष्ण-लीलाओं के विषय में विचार-विमर्श करने से ही सुखी बन सकते हैं।

अनर्थोपशमं साक्षाद् भक्तियोगमधोक्षजे।

लोकस्याजानतो विद्वांश्चक्रे सात्वतसंहिताम्॥

(*भागवत* १.७.६)

व्यासदेव ने यह ग्रंथ इसीलिए लिखा है कि हर व्यक्ति *भागवत-कथा* की विवेचना करने से ही अपने दिव्य पद को समझ सके। आज भी *श्रीमद्भागवत* का अनुसरण करके प्रत्येक व्यक्ति कहीं रह कर भी भौतिक कष्टों से मुक्त हो सकता है। उसके लिए किसी प्रकार की तपस्या करने की आवश्यकता नहीं क्योंकि इस युग में तपस्या करना अत्यन्त कठिन है। इसीलिए चैतन्य महाप्रभु ने कहा है—*सर्वात्मस्नपनं परं विजयते श्रीकृष्णसङ्कीर्तनम्।* हम अपने कृष्णभावनामृत आन्दोलन द्वारा *श्रीमद्भागवत* का वितरण करने में लगे हैं जिससे संसार के किसी भी कोने में रहने वाला व्यक्ति कृष्ण की लीलाओं के विषय में कीर्तन एवं श्रवण करके कृष्णभावनामृत आन्दोलन में समा सके तथा समस्त भौतिक तापों से मुक्त हो सके।

एवं विहारैः कौमारैः कौमारं जहतुर्व्रजे ।
निलायनैः सेतुबन्धैर्मर्कटोत्प्लवनादिभिः ॥५९॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; विहारैः—विभिन्न लीलाओं द्वारा; कौमारैः—बाल्योचित; कौमारम्—बाल्यावस्था; जहतुः—बिताई; व्रजे—व्रजभूमि में; निलायनैः—आँख-मिचौनी खेलते हुए; सेतु-बन्धैः—समुद्र में नकली पुल बनाते हुए; मर्कट—वानरों की तरह; उत्प्लवन-आदिभिः—इधर-उधर कूदते-फाँदते।

इस तरह कृष्ण तथा बलराम ने व्रजभूमि में बच्चों के खेलों में, यथा आँख-मिचौनी खेलने, समुद्र में पुल बनाने का स्वांग करने तथा बन्दरों की तरह इधर-उधर कूदने-फाँदने में अपनी बाल्यावस्था व्यतीत की।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध के अन्तर्गत ''कृष्ण की बाल-लीलाएँ'' नामक ग्यारहवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter बारह

अघासुर का वध

इस अध्याय में अघासुर वध नामक कृष्ण-लीला का विस्तार से वर्णन हुआ है।

एक दिन कृष्ण ने जंगल में विहार गोष्ठी (पिकनिक) करनी चाही अतएव वे प्रात:काल ही अन्य ग्वालबालों के साथ अपने अपने बछड़ों की टोली समेत जंगल में चले गये। जब वे भोजन-पान कर रहे थे तभी पूतना तथा बकासुर का भाई अघासुर कृष्ण तथा उनके संगियों को मारने के उद्देश्य से प्रकट हुआ। कंस द्वारा भेजे गये इस असुर ने अजगर का रूप बनाया और उसने अपना विस्तार आठ मील तक कर लिया। उसकी ऊँचाई पर्वत जैसी हो गई, उसका मुँह पृथ्वी से लेकर आकाश तक फैल गया। अघासुर ऐसा वेश बनाकर रास्ते में लेट गया। कृष्ण के मित्रों ने सोचा कि यह असुर-रूप वृन्दावन का कोई रमणीक स्थल है। इस तरह वे इस विशाल अजगर के मुख के भीतर घुसने के लिए इच्छुक हो उठे। उनके लिए अजगर का विशाल रूप खिलवाड़ बन गया। वे हँसने लग पड़े क्योंकि वे आश्वस्त थे कि यदि यह रूप खतरनाक भी हो तो उन्हें डरने की कोई बात नहीं क्योंकि कृष्ण उनकी रक्षा करने के लिए साथ हैं। इस तरह वे विशाल आकृति के मुख की ओर बढ़ने लगे।

कृष्ण अघासुर के बारे में अच्छी तरह जानते थे अतएव वे अपने मित्रों को असुर के मुख में घुसने से मना करना चाह रहे थे किन्तु तब तक सारे ग्वाले अपने अपने बछड़ों की टोलियों समेत उस विशाल आकृति के मुख में घुस चुके थे। कृष्ण बाहर प्रतीक्षा कर रहे थे और अघासुर यह सोच कर कृष्ण की प्रतीक्षा में था कि ज्योंही वे घुसें कि वह अपना मुँह बन्द कर ले तो सारे लोग मर जायेंगे। कृष्ण की प्रतीक्षा में उसने बालकों को नहीं निगला। तभी कृष्ण सोच में थे कि किस तरह बालकों को बचाया जाय और अघासुर का वध किया जाये। अत: वे भी उस विशाल असुर के मुँह में घुस गये और जब वे अपने मित्रों समेत उस असुर के मुख में थे तो उन्होंने अपने शरीर को इतना बढ़ाया कि असुर का श्वास रुक गया और वह मर गया। इसके बाद कृष्ण ने अमृत-दृष्टि फेर कर अपने मित्रों को जीवित किया जिससे सभी हँसते-खेलते बाहर आ गये। इस तरह कृष्ण ने देवताओं को प्रोत्साहित किया और उन्होंने परम प्रसन्नता व्यक्त की। दुष्ट तथा पापी व्यक्ति के लिए *सायुज्यमुक्ति* की कोई गुंजाईश नहीं

रहती किन्तु कृष्ण द्वारा अघासुर के शरीर में प्रविष्ट होने तथा उनके स्पर्शमात्र से उस असुर को सायुज्य मुक्ति प्राप्त हुई।

जब यह लीला सम्पन्न हुई तो कृष्ण अभी केवल पाँच वर्ष के थे। एक वर्ष बाद जब वे छः वर्ष के हुए और उन्होंने *पौगण्ड* अवस्था में प्रवेश किया तब व्रजवासियों को यह लीला बतलाई गई। परीक्षित महाराज ने पूछा, ''क्या कारण है कि यह लीला एक वर्ष बाद प्रकट की गई फिर भी व्रजवासियों ने सोचा कि यह उसी दिन घटित हुई है?'' इसी प्रश्न के साथ बारहवें अध्याय का अन्त होता है।

श्रीशुक उवाच
क्वचिद्वनाशाय मनो दधद्व्रजात्
प्रातः समुत्थाय वयस्यवत्सपान् ।
प्रबोधयञ्छृङ्गरवेण चारुणा
विनिर्गतो वत्सपुरःसरो हरिः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; क्वचित्—एक दिन; वन-आशाय—जंगल में विहार करने हेतु; मनः—मन; दधत्—ध्यान दिया; व्रजात्—व्रजभूमि से बाहर गये; प्रातः—सुबह होते ही; समुत्थाय—जग कर; वयस्य-वत्स-पान्—ग्वालबालों तथा बछड़ों को; प्रबोधयन्—जगाकर बतलाते हुए; शृङ्ग-रवेण—सींग के बने बिगुल से आवाज करते हुए; चारुणा—अत्यन्त सुन्दर; विनिर्गतः—व्रजभूमि से बाहर आये; वत्स-पुरःसरः—बछड़ों को आगे करके; हरिः—भगवान्।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे राजन्, एक दिन कृष्ण ने जंगल में विहार करते हुए कलेवा करना चाहा। उन्होंने बड़े सुबह उठ कर सींग का बिगुल बजाया तथा उसकी मधुर आवाज से ग्वालबालों तथा बछड़ों को जगाया। फिर कृष्ण तथा सारे बालक अपने अपने बछड़ों के समूहों को आगे करके व्रजभूमि से जंगल की ओर बढ़े।

तेनैव साकं पृथुकाः सहस्रशः
स्निग्धाः सुशिग्वेत्रविषाणवेणवः ।
स्वान्स्वान्सहस्रोपरिसङ्ख्ययान्वितान्
वत्सान्पुरस्कृत्य विनिर्ययुर्मुदा ॥ २ ॥

शब्दार्थ

तेन—उनके; एव—निस्सन्देह; साकम्—साथ; पृथुकाः—बालक; सहस्रशः—हजारों; स्निग्धाः—अत्यन्त आकर्षक; सु—सुन्दर; शिक्—कलेवा की पोटली; वेत्र—बछड़े हाँकने के लिए लाठियाँ; विषाण—सींग के बने बिगुल; वेणवः—बाँसुरियाँ; स्वान् स्वान्—अपनी अपनी; सहस्र-उपरि-सङ्ख्यया अन्वितान्—संख्या में एक हजार से ऊपर; वत्सान्—बछड़ों को; पुरः-कृत्य—आगे करके; विनिर्ययुः—बाहर आ गये; मुदा—प्रसन्नतापूर्वक।

उस समय लाखों ग्वालबाल व्रजभूमि में अपने अपने घरों से बाहर आ गये और अपने साथ

के लाखों बछड़ों की टोलियों को अपने आगे करके कृष्ण से आ मिले। ये बालक अतीव सुन्दर थे। उनके पास कलेवा की पोटली, बिगुल, वंशी तथा बछड़े चराने की लाठियाँ थीं।

कृष्णवत्सैरसङ्ख्यातैर्यूथीकृत्य स्ववत्सकान् ।
चारयन्तोऽर्भलीलाभिर्विजह्रुस्तत्र तत्र ह ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

कृष्ण—कृष्ण का; वत्सैः—बछड़ों के साथ; असङ्ख्यातैः—अनन्त; यूथी-कृत्य—उन्हें एकत्र करके; स्व-वत्सकान्—अपने बछड़ों को; चारयन्तः—चराते हुए; अर्भ-लीलाभिः—बाल-लीलाओं द्वारा; विजह्रुः—आनन्द मनाया; तत्र तत्र—यहाँ वहाँ; ह—निस्सन्देह।

कृष्ण ग्वालबालों तथा उनके बछड़ों के समूहों के साथ बाहर निकले तो असंख्य बछड़े एकत्र हो गये। तब सारे लड़कों ने जंगल में परम प्रसन्न होकर खेलना प्रारम्भ कर दिया।

तात्पर्य : इस श्लोक में *कृष्णवत्सैरसंख्यातै* शब्द महत्त्वपूर्ण है। *असंख्यात्* का अर्थ है ''अनन्त।'' कृष्ण के बछड़े अनन्त थे। अनन्त का अर्थ है सौ, हजार, लाख, करोड़ नहीं अपितु इन सबसे अधिक। कृष्ण अनन्त हैं और उनकी शक्ति अनन्त है। उनकी गौवें तथा बछड़े अनन्त हैं और उनका स्थान भी अनन्त है। इसीलिए *भगवद्गीता* में उन्हें परब्रह्म कहा गया है। *ब्रह्मन्* का अर्थ ही है ''अनन्त।'' कृष्ण परब्रह्म हैं अतएव हमें इस श्लोक के कथनों को काल्पनिक नहीं मानना चाहिए। वे यथार्थ हैं किन्तु हैं अचिन्त्य। कृष्ण असंख्य बछड़ों को तथा असंख्य स्थानों को सँभाल सकते हैं। यह न तो काल्पनिक है, न मिथ्या किन्तु यदि हम अपने सीमित ज्ञान से कृष्ण की शक्ति को जानना चाहें तो यह शक्ति कभी समझ में नहीं आयेगी। *अतः श्रीकृष्णनामादि न भवेद्ग्राह्यमिन्द्रियै* (*भक्तिरसामृत सिन्धु* १.२.९)। हमारी इन्द्रियाँ इसका अनुमान ही नहीं लगा सकतीं कि कृष्ण ने किस तरह असंख्य बछड़ों तथा गौवों को सँभाला होगा और ऐसा करने के लिए उनके पास असीम स्थान रहा होगा। किन्तु इसका उत्तर *बृहद् भागवतामृत* में मिलता है—

एवं प्रभोः प्रियानां च धाम्नश्च समयस्य च।
अविचिन्त्यप्रभावत्वाद् अत्र किञ्चिन्न दुर्घटम्॥

श्री सनातन गोस्वामी ने *बृहद् भागवतामृत* में बतलाया है कि कृष्ण विषयक हर वस्तु असीम है अतएव उनके लिए कुछ भी असम्भव नहीं है। हमें इसी परिप्रेक्ष्य में इस श्लोक को समझना चाहिए।

फलप्रबालस्तवकसुमनःपिच्छधातुभिः ।
काचगुञ्जामणिस्वर्णभूषिता अप्यभूषयन् ॥ ४॥

शब्दार्थ

फल—जंगल के फल; प्रबाल—हरी पत्तियाँ; स्तवक—गुच्छे; सुमनः—सुन्दर फूल; पिच्छ—मोरपंख; धातुभिः—रंगीन खनिज पदार्थ, गेरू द्वारा; काच—एक प्रकार का पत्थर; गुञ्जा—छोटे छोटे शंख; मणि—मोती; स्वर्ण—सोना; भूषिताः—अलंकृत; अपि अभूषयन्—माताओं द्वारा सजाये जाने पर भी स्वयं इन वस्तुओं से अपने को सजाने लगे।

यद्यपि इन बालकों की माताओं ने पहले से इन्हें काच, गुञ्जा, मोती तथा सोने के आभूषणों से सजा रखा था किन्तु फिर भी जंगल में जाकर उन्होंने फलों, हरी पत्तियों, फूलों के गुच्छों, मोरपंखों तथा गेरू से अपने को सजाया।

मुष्णन्तोऽन्योन्यशिक्यादीन्ज्ञातानाराच्च चिक्षिपुः ।
तत्रत्याश्च पुनर्दूराद्धसन्तश्च पुनर्ददुः ॥ ५॥

शब्दार्थ

मुष्णन्तः—चुराते हुए; अन्योन्य—एक-दूसरे से; शिक्य-आदीन्—कलेवा के डिब्बे तथा अन्य वस्तुएँ; ज्ञातान्—उसके असली मालिक द्वारा जान लिये जाने पर; आरात् च—दूर स्थान को; चिक्षिपुः—फेंक दिया; तत्रत्याः च—जो उस स्थान पर थे, वे भी; पुनः दूरात्—और आगे; हसन्तः च पुनः ददुः—हँसते हुए फिर से मालिक को लौटा दिया।

सारे ग्वालबाल एक-दूसरे की कलेवा की पोटली चुराने लगे। जब कोई बालक जान जाता कि उसकी पोटली चुरा ली गयी है, तो दूसरे लड़के उसे दूर फेंक देते और वहाँ पर खड़े बालक उसे और दूर फेंक देते। जब पोटली का मालिक निराश हो जाता तो दूसरे बालक हँस पड़ते और मालिक रो देता तब वह पोटली उसे लौटा दी जाती।

तात्पर्य : इस तरह का खेल और चोरी अब भी भौतिक जगत में पाई जाती है क्योंकि इस प्रकार का मनोरंजन आध्यात्मिक जगत में विद्यमान है जहाँ से यह आनन्द का भाव प्रस्तुत होता है। *जन्माद्यस्य यतः* (*वेदान्त सूत्र* १.१.२)। यही भाव आध्यात्मिक जगत में कृष्ण तथा उनके संगियों द्वारा प्रदर्शित किया जाता है किन्तु वहाँ का यह उल्लास शाश्वत है, जबकि भौतिक जगत में वही क्षणिक होता है। वहाँ का उल्लास ब्रह्म होता है और यहाँ का *जड़*। कृष्णभावनामृत आन्दोलन मनुष्य को यह शिक्षा देने के लिए है कि वह किस तरह अपने को जड़ से ब्रह्म में स्थानान्तरित कर सकता है क्योंकि मनुष्य जीवन इसी के निमित्त है। *अथातो ब्रह्मजिज्ञासा* (*वेदान्त सूत्र* १.१.१)। कृष्ण हमें यह शिक्षा देने के लिए अवतरित होते हैं कि हम किस तरह आध्यात्मिक जगत में उनके साथ आध्यात्मिक पद पर आनन्द पा सकते हैं। वे न केवल आते हैं अपितु वृन्दावन में लीलाओं का प्रदर्शन करते हैं और लोगों

को आध्यात्मिक भोग के प्रति आकृष्ट करते हैं।

यदि दूरं गतः कृष्णो वनशोभेक्षणाय तम् ।
अहं पूर्वमहं पूर्वमिति संस्पृश्य रेमिरे ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

यदि—यदि; दूरम्—दूर स्थान को; गतः—गये; कृष्णः—कृष्ण; वन-शोभ—जंगल का सौन्दर्य; ईक्षणाय—देखने तथा आनन्द लेने के लिए; तम्—कृष्ण को; अहम्—मैं; पूर्वम्—प्रथम; अहम्—मैं; पूर्वम्—प्रथम; इति—इस प्रकार; संस्पृश्य—उन्हें छू कर; रेमिरे—जीवन का आनन्द लेते।

कभी कभी कृष्ण जंगल की शोभा देखने के लिए दूर तक निकल जाते। तो सारे बालक उनके साथ जाने के लिए, यह कहते हुए दौते, ''दौड़ कर कृष्ण को छूने वाला मैं पहला हूँगा! मैं कृष्ण को सबसे पहले छुऊँगा।'' इस तरह वे कृष्ण को बारम्बार छू-छू कर जीवन का आनन्द लेते।

केचिद्वेणून्वादयन्तो ध्मान्तः शृङ्गाणि केचन ।
केचिद्भृङ्गैः प्रगायन्तः कूजन्तः कोकिलैः परे ॥ ७॥
विच्छायाभिः प्रधावन्तो गच्छन्तः साधुहंसकैः ।
बकैरुपविशन्तश्च नृत्यन्तश्च कलापिभिः ॥ ८ ॥
विकर्षन्तः कीशबालानारोहन्तश्च तैर्द्रुमान् ।
विकुर्वन्तश्च तैः साकं प्लवन्तश्च पलाशिषु ॥ ९ ॥
साकं भेकैर्विलङ्घन्तः सरितः स्त्रवसम्प्लुताः ।
विहसन्तः प्रतिच्छायाः शपन्तश्च प्रतिस्वनान् ॥ ॥
इत्थं सतां ब्रह्मसुखानुभूत्या
दास्यं गतानां परदैवतेन ।
मायाश्रितानां नरदारकेण
साकं विजह्रुः कृतपुण्यपुञ्जाः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

केचित्—उनमें से कोई; वेणून्—बाँसुरियों को; वादयन्तः—बजाते हुए; ध्मान्तः—बजाते; शृङ्गाणि—सींग का बिगुल; केचन—अन्य कोई; केचित्—कोई; भृङ्गैः—भौंरों के साथ; प्रगायन्तः—गाते हुए; कूजन्तः—कूजते हुए; कोकिलैः—कोयलों के साथ; परे—अन्य; विच्छायाभिः—दौड़ती परछाइयों के साथ; प्रधावन्तः—चिड़ियों के पीछे दौते हुए; गच्छन्तः—साथ साथ जाते हुए; साधु—सुन्दर; हंसकैः—हंसों के साथ; बकैः—एक स्थान पर बैठे बगुलों के साथ; उपविशन्तः च—उन्हीं के समान चुपचाप बैठते हुए; नृत्यन्तः च—तथा नाचते हुए; कलापिभिः—मोरों के साथ; विकर्षन्तः—आकर्षित करते हुए; कीश-बालान्—बन्दरों के बच्चों को; आरोहन्तः च—चढ़ते हुए; तैः—बन्दरों के साथ; द्रुमान्—वृक्षों पर; विकुर्वन्तः च—उनकी नकल करते हुए; तैः—उनके; साकम्—के साथ; प्लवन्तः च—कूदते हुए; पलाशिषु—वृक्षों पर; साकम्—साथ; भेकैः—मेंढ़कों के; विलङ्घन्तः—उन्हीं की तरह कूदते हुए; सरितः—जल; स्त्रव-सम्प्लुताः—नदी के जल में भीग गये; विहसन्तः—हँसते हुए; प्रतिच्छायाः—परछाईं पर; शपन्तः च—निन्दा करते हुए; प्रतिस्वनान्—अपनी प्रतिध्वनि की आवाज; इत्थम्—इस प्रकार; सताम्—अध्यात्मवादियों का; ब्रह्म-सुख-अनुभूत्या—ब्रह्म-सुख के उद्गम, कृष्ण के साथ; दास्यम्—दास्यभाव; गतानाम्—भक्तों का जिन्होंने स्वीकार किया है; पर-दैवतेन—भगवान् के साथ; माया-आश्रितानाम्—माया के वशीभूतों के लिए; नर-

दारकेण—जिन्होंने सामान्य बालक के सदृश उनके साथ; साकम्—साथ में; विजह्रुः—आनन्द लूटा; कृत-पुण्य-पुञ्जाः—ये सारे बालक जिन्होंने जन्म-जन्मांतर के पुण्यकर्मों के फल एकत्र कर रखे थे।

सारे बालक भिन्न भिन्न कार्यों में व्यस्त थे। कुछ अपनी बाँसुरियाँ बजा रहे थे, कुछ सींग का बिगुल बजा रहे थे। कुछ भौरों की गुंजार की नकल तो अन्य बालक कोयल की कुहू कुहू की नकल कर रहे थे। कुछ बालक उड़ती चिड़ियों की भूमि पर पड़ने वाली परछाइयों के पीछे दौड़ कर उनकी नकल कर रहे थे, तो कुछ हंसों की सुन्दर गति तथा उनकी आकर्षक मुद्राओं की नकल उतार रहे थे। कुछ चुपचाप बगुलों के पास बैठ गये और अन्य बालक मोरों के नाच की नकल करने लगे। कुछ बालकों ने वृक्षों के बन्दरों को आकृष्ट किया, कुछ इन बन्दरों की नकल करतेहुए पेड़ों पर कूदने लगे। कुछ बन्दरों जैसा मुँह बनाने लगे और कुछ एक डाल से दूसरी डाल पर कूदने लगे। कुछ बालक झरने के पास गये और उन्होंने मेंढ़कों के साथ उछलते हुए नदी पार की और पानी में अपनी परछाईं देख कर वे हँसने लगे। वे अपनी प्रतिध्वनि की आवाज की निन्दा करते। इस तरह सारे बालक उन कृष्ण के साथ खेला करते जो ब्रह्मज्योति में लीन होने के इच्छुक ज्ञानियों के लिए उसके उद्‌गम हैं और उन भक्तों के लिए भगवान् हैं जिन्होंने नित्यदासता स्वीकार कर रखी है किन्तु सामान्य व्यक्तियों के लिए वे ही एक सामान्य बालक हैं। ग्वालबालों ने अनेक जन्मों के पुण्यकर्मों का फल संचित कर रखा था फलतः वे इस तरह भगवान् के साथ रह रहे थे। भला उनके इस महाभाग्य का वर्णन कौन कर सकता है?

तात्पर्य : श्रील रूप गोस्वामी ने संस्तुति की है (*भक्तिरसामृत सिन्धु* १.२.४)—*तस्मात् केनाप्युपायेन मनः कृष्णे निवेशयेत्।* कृष्ण को कोई चाहे सामान्य बालक समझे, चाहे ब्रह्मतेज का उद्‌गम, चाहे परमात्मा का उत्स या भगवान् माने, उसे चाहिए कि वह कृष्ण के चरणकमलों में अपना ध्यान पूरी तरह से केन्द्रित करे। यही *भगवद्‌गीता* का भी (१८.६६) उपदेश है—*सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।* कृष्ण तक सीधे पहुँचने का सरलतम साधन *श्रीमद्‌भागवत* है। *ईश्वरः सद्यो हृद्यवरुध्यतेऽत्र कृतिभिः शुश्रूषुभिस्तत्क्षणात्* (*भागवत* १.१.२)। यदि मनुष्य अपना थोड़ा भी ध्यान कृष्ण तथा उनके कार्यकलापों की ओर लगाये तो उसे जीवन की सर्वोच्च सिद्धि प्राप्त हो सकती है। कृष्णभावनामृत आन्दोलन का यही उद्देश्य है। *लोकस्याजानतो विद्वांश्चक्रे सात्वतसंहिताम्* (*भागवत* १.७.६)। सफलता का रहस्य सामान्य लोगों को ज्ञात नहीं इसीलिए इस जगत के दीनजनों के प्रति

दया-भाव से, विशेष रूप से इस कलियुग में, श्रील व्यासदेव ने हमें *श्रीमद्भागवत* प्रदान किया है। *श्रीमद्भागवतं पुराणं अमलं यद् वैष्णवानां प्रियम्* (*भागवत* १२.१३.१८)। वे वैष्णवजन, जो कुछ बढ़े-चढ़े हैं या जो भगवान् की महिमा तथा शक्ति से भलीभाँति परिचित हैं उनके लिए *श्रीमद्भागवत* प्रिय वैदिक ग्रंथ है। अन्ततः हमें इस शरीर को बदलना होगा (*तथा देहान्तरप्राप्तिः*)। यदि हम *भगवद्गीता* तथा *श्रीमद्भागवत* की परवाह नहीं करेंगे तो न जाने हमें अगला शरीर कैसा मिले। किन्तु जो व्यक्ति इन दोनों ग्रंथों पर अटल रहता है उसे अगले जीवन में अवश्य ही कृष्ण की संगति प्राप्त होगी। (*त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मां एति सोऽर्जुन*)। अतः सारे विश्व में *श्रीमद्भागवत* का वितरण धर्मज्ञों, दार्शनिकों, अध्यात्मवादियों तथा योगियों, यहाँ तक कि आम जनता के लिए एक महान् कल्याण-कार्य है। (*योगिनां अपि सर्वेषाम्*)। *जन्मलाभः परः पुंसामन्ते नारायणस्मृतिः* (*भागवत* २.१.६)—यदि हम अपने जीवन के अन्तिम क्षण में कृष्ण या नारायण का येनकेन प्रकारेण स्मरण कर सकें तो हमारा जीवन सफल हो जायेगा।

यत्पादपांसुर्बहुजन्मकृच्छ्रतो
धृतात्मभिर्योगिभिरप्यलभ्यः ।
स एव यद्दृग्विषयः स्वयं स्थितः
किं वर्ण्यते दिष्टमतो व्रजौकसाम् ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

यत्—जिसके; पाद-पांसुः—चरणकमलों की धूल; बहु-जन्म—अनेक जन्मों में; कृच्छ्रतः—योग, ध्यान आदि के लिए कठिन तपस्या करने से.; धृत-आत्मभिः—मन को वश में रखने वालों के द्वारा; योगिभिः—ऐसे योगियों द्वारा (ज्ञानयोगी, राजयोगी, ध्यानयोगी इत्यादि); अपि—निस्सन्देह; अलभ्यः—प्राप्त न किया जा सकने वाली; सः—भगवान्; एव—निस्सन्देह; यत्-दृक्-विषयः—साक्षात् दर्शन की वस्तु बन गया है; स्वयम्—स्वयं; स्थितः—उनके समक्ष उपस्थित; किम्—क्या; वर्ण्यते—वर्णन किया जा सकता है; दिष्टम्—भाग्य के विषय में; अतः—इसलिए; व्रज-ओकसाम्—व्रजभूमि वृन्दावन के वासियों के।.

भले ही योगी अनेक जन्मों तक यम, नियम, आसन तथा प्राणायाम द्वारा जिनमें से कोई भी सरलता से नहीं किया जा सकता है, कठोर से कठोर तपस्या करें फिर भी समय आने पर जब इन योगियों को मन पर नियंत्रण करने की सिद्धि प्राप्त हो जाती है, तो भी वे भगवान् के चरणकमलों की धूल के एक कण तक का आस्वाद नहीं कर सकते। तो भला व्रजभूमि वृन्दावन के निवासियों के महाभाग्य के विषय में क्या कहा जाय जिनके साथ साथ साक्षात् भगवान् रहे और जिन्होंने उनका प्रत्यक्ष दर्शन किया?

तात्पर्य : हम वृन्दावनवासियों के महाभाग्य का केवल अनुमान लगा सकते हैं। यह वर्णन कर पाना असम्भव है कि किस तरह अनेकानेक जन्मों के पुण्यकर्मों के परिणामस्वरूप वे इतने भाग्यशाली बन सके।

अथाघनामाभ्यपतन्महासुर-
स्तेषां सुखक्रीडनवीक्षणाक्षमः ।
नित्यं यदन्तर्निजजीवितेप्सुभिः
पीतामृतैरप्यमरैः प्रतीक्ष्यते ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

अथ—तत्पश्चात्; अघ-नाम—अघ नामक शक्तिशाली असुर; अभ्यपतत्—उस स्थान पर प्रकट हुआ; महा-असुरः—महान, अत्यन्त शक्तिशाली असुर; तेषाम्—ग्वालबालों की; सुख-क्रीडन—दिव्य लीलाओं का आनन्द; वीक्षण-अक्षमः—देख कर सहन कर पाने में अक्षम; नित्यम्—शाश्वत; यत्-अन्तः—अघासुर का अन्त; निज-जीवित-ईप्सुभिः—अघासुर द्वारा बिना सताये हुए जीने के लिए; पीत-अमृतैः अपि—प्रतिदिन अमृत-पान करते हुए भी; अमरैः—देवताओं द्वारा; प्रतीक्ष्यते—प्रतीक्षा की जा रही थी (देवता भी अघासुर के वध की प्रतीक्षा कर रहे थे)।

हे राजा परीक्षित, तत्पश्चात् वहाँ पर एक विशाल असुर प्रकट हुआ जिसका नाम अघासुर था और देवता तक जिसकी मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहे थे। यद्यपि देवता प्रतिदिन अमृत-पान करते थे फिर भी वे इस महान् असुर से डरते थे और उसकी मृत्यु की प्रतीक्षा में थे। यह असुर जंगल में ग्वालबालों द्वारा मनाये जा रहे दिव्य आनन्द को सहन नहीं कर सका।

तात्पर्य : यह प्रश्न किया जा सकता है कि किसी असुर द्वारा कृष्ण-लीलाओं में विघ्न कैसे पहुँचाया जा सकता है? श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर इस प्रश्न का उत्तर यह कहते हुए देते हैं कि यद्यपि ग्वालबालों द्वारा मनाया जा रहा दिव्य आनन्द रोका नहीं जा सकता था किन्तु यदि उन्हें रोका न जाता तो वे अपना कलेवा न खा पाते। अतः उनके कलेवा के समय योगमाया की व्यवस्थानुसार वह अघासुर प्रकट हुआ जिससे वे थोड़ी देर के लिए अपनी क्रीड़ाएँ छोड़ कर कलेवा खा सकें। आनन्द तो परिवर्तन से आता है। ग्वालबाल लगातार खेलते रहते, फिर रुक जाते और तब दूसरी प्रकार से आनन्द मनाते। इसीलिए प्रतिदिन एक असुर आता और उनकी क्रीड़ाओं में बाधा डालता। तब वह असुर मारा जाता और बच्चे फिर से अपनी दिव्य लीलाओं में लग जाते।

दृष्ट्वार्भकान्कृष्णमुखानघासुरः
कंसानुशिष्टः स बकीबकानुजः ।

अयं तु मे सोदरनाशकृत्तयो-
द्वयोर्ममैनं सबलं हनिष्ये ॥ १४॥

शब्दार्थ

दृष्ट्वा—देख कर; अर्भकान्—सारे ग्वालबालों को; कृष्ण-मुखान्—कृष्ण आदि; अघासुरः—अघासुर नामक राक्षस; कंस-अनुशिष्टः—कंस द्वारा भेजा गया; सः—वह (अघासुर); बकी-बक-अनुजः—पूतना तथा बकासुर का छोटा भाई; अयम्—यह कृष्ण; तु—निस्सन्देह; मे—मेरा; सोदर-नाश-कृत्—भाई तथा बहिन का मारने वाला; तयोः—अपने भाई तथा बहिन के लिए; द्वयोः—दोनों के लिए; मम—मेरा; एनम्—कृष्ण को; स-बलम्—उसके सहायक ग्वालबालों समेत; हनिष्ये—जान से मारूँगा।

कंस द्वारा भेजा गया अघासुर पूतना तथा बकासुर का छोटा भाई था। अतएव जब वह आया और उसने देखा कि कृष्ण सारे ग्वालबालों का मुखिया है, तो उसने सोचा, ''इस कृष्ण ने मेरी बहन पूतना तथा मेरे भाई बकासुर का वध किया है। अतएव इन दोनों को तुष्ट करने के लिए मैं इस कृष्ण को इसके सहायक अन्य ग्वालबालों समेत मार डालूँगा।''

एते यदा मत्सुहृदोस्तिलापः
कृतास्तदा नष्टसमा व्रजौकसः ।
प्राणे गते वर्ष्मसु का नु चिन्ता
प्रजासवः प्राणभृतो हि ये ते ॥ १५॥

शब्दार्थ

एते—यह कृष्ण तथा उसके संगी ग्वालबाल; यदा—जब; मत्-सुहृदोः—मेरे भाई तथा बहिन का; तिल-आपः कृताः—तिल तथा जल से अन्तिम संस्कार हो; तदा—उस समय; नष्ट-समाः—प्राणविहीन; व्रज-ओकसः—व्रजभूमि वृन्दावन के सारे निवासी; प्राणे—प्राण के; गते—निकल जाने पर; वर्ष्मसु—जहाँ तक शरीर का सम्बन्ध है; का—क्या; नु—निस्सन्देह; चिन्ता—सोच-विचार; प्रजा-असवः—अपने बच्चों के लिए जिनका प्रेम अपने जीवन के प्रति प्रेम जैसा ही है; प्राण-भृतः—वे जीव; हि—निस्सन्देह; ये ते—ये सारे व्रजभूमिवासी।

अघासुर ने सोचाः यदि मैं किसी तरह कृष्ण तथा उनके संगियों को अपने भाई तथा बहिन की दिवंगत आत्माओं के लिए तिल तथा जल की अन्तिम भेंट बना सकूँ तो व्रजभूमि के सारे वासी, जिनके लिए ये बालक प्राणों के तुल्य हैं, स्वयमेव मर जायेंगे। यदि प्राण नहीं रहेंगे तो फिर शरीर की क्या आवश्यकता? फलस्वरूप अपने अपने पुत्रों के मरने पर व्रज के सारे वासी स्वतः मर जायेंगे।

इति व्यवस्याजगरं बृहद्वपुः
स योजनायाममहाद्रिपीवरम् ।
धृत्वाद्भुतं व्यात्तगुहाननं तदा
पथि व्यशेत ग्रसनाशया खलः ॥ १६॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; व्यवस्य—निश्चय करके; आजगरम्—अजगर; बृहत् वपुः—अत्यन्त भारी शरीर; सः—अघासुर ने; योजन-आयाम—आठ मील भूमि घेरने वाला; महा-अद्रि-पीवरम्—विशाल पर्वत के समान मोटा; धृत्वा—रूप धारण कर; अद्भुतम्—अद्भुत; व्यात्त—फैला दिया; गुहा-आननम्—विशाल पर्वत-गुफा जैसे मुँह वाला; तदा—उस समय; पथि—रास्ते में; व्यशेत—घेर लिया; ग्रसन-आशया—सारे ग्वालबालों को निगलने की आशा से; खलः—दुष्ट।

यह निश्चय करने के बाद उस दुष्ट अघासुर ने एक विशाल अजगर का रूप धारण कर लिया, जो विशाल पर्वत की तरह मोटा तथा आठ मील तक लम्बा था। इस तरह अद्भुत अजगर का शरीर धारण करने के बाद उसने अपना मुँह पर्वत की एक बड़ी गुफा के तुल्य फैला दिया और रास्ते में कृष्ण तथा उनके संगी ग्वालबालों को निगल जाने की आशा से लेट गया।

धराधरोष्ठो जलदोत्तरोष्ठो
दर्याननान्तो गिरिशृङ्गदंष्ट्रः ।
ध्वान्तान्तरास्यो विततध्वजिह्वः
परुषानिलश्वासदवेक्षणोष्णः ॥ १७॥

शब्दार्थ

धरा—पृथ्वी; अधर-ओष्ठः—जिसका निचला होंठ; जलद-उत्तर-ओष्ठः—जिसका ऊपरी होंठ बादलों को छू रहा था; दरी-आनन-अन्तः—जिसका मुँह पर्वत-गुफा के समान चौड़ाई में फैल गया था; गिरि-शृङ्ग—पर्वत की चोटी के समान; दंष्ट्रः—दाँत; ध्वान्त-अन्तः-आस्यः—मुँह के भीतर का वायुमण्डल यथासम्भव अंधकारपूर्ण था; वितत-अध्व-जिह्वः—जिसकी जीभ चौ रास्ते की भाँति थी; परुष-अनिल-श्वास—जिसकी श्वास गर्म हवा की तरह थी; दव-ईक्षण-उष्णः—जिसकी चितवन आग की लपटों जैसी थी।

उसका निचला होठ पृथ्वी पर था और ऊपरी होठ आकाश के बादलों को छू रहा था। उसके मुख की बगलें पर्वत की विशाल गुफाओं के समान थीं और मुख का मध्य भाग अत्यन्त अंधकारमय था। उसकी जीभ चौ मार्ग के तुल्य थी, उसकी श्वास गर्म हवा जैसी थी और उसकी आँखें आग की लपटों जैसी जल रही थीं।

दृष्ट्वा तं तादृशं सर्वे मत्वा वृन्दावनश्रियम् ।
व्यात्ताजगरतुण्डेन ह्युत्प्रेक्षन्ते स्म लीलया ॥ १८॥

शब्दार्थ

दृष्ट्वा—देख कर; तम्—उस अघासुर को; तादृशम्—उस अवस्था में; सर्वे—कृष्ण तथा सारे बालकों ने; मत्वा—सोचा कि; वृन्दावन-श्रियम्—वृन्दावन की सुन्दर मूर्ति; व्यात्त—फैला हुआ; अजगर-तुण्डेन—अजगर के मुँह जैसा; हि—निस्सनदेह; उत्प्रेक्षन्ते—मानों देख रहा हो; स्म—भूतकाल में; लीलया—लीला के रूप में।

इस असुर का अद्भुत रूप विशाल अजगर के समान था। इसे देख कर बालकों ने सोचा कि हो न हो यह वृन्दावन का कोई रम्य स्थल है। तत्पश्चात् उन्होंने कल्पना की कि यह विशाल अजगर के मुख के समान है। दूसरे शब्दों में, निर्भीक बालकों ने सोचा कि विशाल अजगर रूपी

यह मूर्ति उनके क्रीड़ा-आनन्द के लिए बनाई गई है।

तात्पर्य : इस अद्‌भुत दृश्य को देख कर कुछ बालकों ने सोचा कि यह सचमुच का अजगर है, अत: वे वहाँ से भागने लगे। किन्तु अन्यों ने कहा, "क्यों भाग रहे हो? ऐसा नहीं हो सकता कि कोई अजगर यहाँ रह सके। यह तो खेलने का रमणीक स्थल है।" उन सबों ने ऐसी ही कल्पना की।

अहो मित्राणि गदत सत्त्वकूटं पुर: स्थितम् ।
अस्मत्सङ्ग्रसनव्यात्तव्यालतुण्डायते न वा ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

अहो—ओह; मित्राणि—सारे मित्र; गदत—हमें बताओ तो; सत्त्व-कूटम्—मृत अजगर; पुरः स्थितम्—पहले से पड़ा हुआ; अस्मत्—हम सबों को; सङ्ग्रसन—निगलने के लिए; व्यात्त-व्याल-तुण्डा-यते—अजगर ने मुख फैला रखा है; न वा—यह तथ्य है अथवा नहीं।

बालकों ने कहा : मित्रो, क्या यह मृत है या सचमुच यह जीवित अजगर है, जिसने हम सबों को निगलने के लिए अपना मुँह फैला रखा है? इस सन्देह को दूर करो न!

तात्पर्य : सारे मित्र अपने समक्ष पड़े हुए उस अद्‌भुत जीव की सत्यता के विषय में परस्पर विचार-विमर्श करने लगे। क्या यह मृत है या उन्हें निगलने का प्रयास कर रहा जीवित अजगर है?

सत्यमर्ककरारक्तमुत्तराहनुवद्घनम् ।
अधराहनुवद्रोधस्तत्प्रतिच्छाययारुणम् ॥ २० ॥

शब्दार्थ

सत्यम्—यह सचमुच जीवित अजगर है; अर्क-कर-आरक्तम्—धूप जैसा लगने वाला; उत्तरा-हनुवत् घनम्—बादल पर ऊपरी होंठ की तरह; अधरा-हनुवत्—निचले होंठ की तरह; रोधः—विशाल किनारा; तत्-प्रतिच्छायया—धूप के प्रतिबिम्ब से; अरुणम्—लाल-लाल।

तत्पश्चात् उन्होंने निश्चय किया : मित्रो, यह निश्चित रूप से हम सबों को निगल जाने के लिए यहाँ बैठा हुआ कोई पशु है। इसका ऊपरी होंठ सूर्य की धूप से रक्तिम हुए बादल की तरह है और निचला होंठ बादल की लाल-लाल परछाईं-सा लगता है।

प्रतिस्पर्धेते सृक्कभ्यां सव्यासव्ये नगोदरे ।
तुङ्गशृङ्गालयोऽप्येतास्तद्दंष्ट्राभिश्च पश्यत ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

प्रतिस्पर्धेते—के सदृश; सृक्कभ्याम्—मुँह की बगलें, गलफड़; सव्य-असव्ये—बाएँ-दाएँ; नग-उदरे—पर्वत की गुफाएँ; तुङ्ग-शृङ्ग-आलयः—उच्च पर्वत-चोटियाँ; अपि—यद्यपि ऐसा है; एताः तत्-दंष्ट्राभिः—पशु के दाँतों के ही सदृश; च—तथा; पश्यत—देखो न।

बाएँ तथा दाएँ दो खड्ड जैसी पर्वत-गुफाएँ दिखती हैं, वे इसकी गलफड़ें हैं और पर्वत की ऊँची चोटियाँ इसके दाँत हैं।

आस्तृतायाममार्गोऽयं रसनां प्रतिगर्जति ।
एषां अन्तर्गतं ध्वान्तमेतदप्यन्तराननम् ॥ २२॥

शब्दार्थ

आस्तृत-आयाम—लम्बाई तथा चौड़ाई; मार्गः अयम्—चौड़ा रास्ता; रसनाम्—जीभ; प्रतिगर्जति—के सदृश है; एषाम् अन्तः-गतम्—पर्वतों के भीतर; ध्वान्तम्—अँधेरा; एतत्—यह; अपि—निस्सन्देह; अन्तः-आननम्—मुँह के भीतर।

इस पशु की जीभ की लम्बाई-चौड़ाई चौ मार्ग जैसी है और इसके मुख का भीतरी भाग अत्यन्त अंधकारमय है मानो पर्वत के भीतर की गुफा हो।

दावोष्णखरवातोऽयं श्वासवद्भाति पश्यत ।
तद्दग्धसत्त्वदुर्गन्धोऽप्यन्तरामिषगन्धवत् ॥ २३॥

शब्दार्थ

दाव-उष्ण-खर-वातः अयम्—अग्नि के समान गर्म श्वास बाहर निकल रही है; श्वास-वत् भाति पश्यत—देखो न उसकी श्वास के सदृश है; तत्-दग्ध-सत्त्व—जलते अस्थिपंजरों की; दुर्गन्धः—बुरी महक; अपि—निस्सन्देह; अन्तः-आमिष-गन्ध-वत्—मानों भीतर से आ रही मांस की दुर्गंध हो।

यह अग्नि जैसी गर्म हवा उसके मुँह से निकली हुई श्वास है, जिससे जलते हुए मांस की दुर्गंध आ रही है क्योंकि उसने बहुत शव खा रखे हैं।

अस्मान्किमत्र ग्रसिता निविष्टा-
नयं तथा चेद्बकवद्विनङ्क्ष्यति ।
क्षणादनेनेति बकार्युशन्मुखं
वीक्ष्योद्धसन्तः करताडनैर्ययुः ॥ २४॥

शब्दार्थ

अस्मान्—हम सबों को; किम्—क्या; अत्र—यहाँ; ग्रसिता—निगल जायेगा; निविष्टान्—प्रवेश करने का प्रयत्न करने वाले; अयम्—यह पशु; तथा—अतः; चेत्—यदि; बक-वत्—बकासुर के समान; विनङ्क्ष्यति—विनष्ट कर दिया जायेगा; क्षणात्—तुरन्त; अनेन—इस कृष्ण के द्वारा; इति—इस प्रकार; बक-अरि-उशत्-मुखम्—बकासुर के शत्रु कृष्ण के सुन्दर मुखमंडल को; वीक्ष्य—देखकर; उद्धसन्तः—जोर से हँसते हुए; कर-ताडनैः—ताली बजा-बजा कर; ययुः—मुँह के भीतर चले गये।

तब बालकों ने कहा, ''क्या यह प्राणी हम लोगों को निगलने आया है? यदि वह निगलेगा तो तुरन्त ही बकासुर की भाँति मार डाला जायेगा।'' इस तरह उन्होंने बकासुर के शत्रु कृष्ण के सुन्दर मुख की ओर निहारा और ताली बजा कर जोर-जोर से हँसते हुए वे अजगर के मुँह में प्रविष्ट हो गये।

तात्पर्य : इस भीषण पशु के विषय में तर्क-वितर्क करने के बाद उन्होंने असुर के मुख में प्रवेश करने का निश्चय किया। उन्हें कृष्ण पर पूरा-पूरा विश्वास था क्योंकि उन्हें अनुभव हो चुका था कि कृष्ण ने किस प्रकार उन सबों को बकासुर के मुख से बचाया था। अब यह दूसरा असुर अघासुर था। अत: वे इस असुर के मुख में घुस कर खेल का आनन्द लेना और बकासुर के शत्रु कृष्ण द्वारा बचाया जाना चाहते थे।

इत्थं मिथोऽतथ्यमतज्ज्ञभाषितं
श्रुत्वा विचिन्त्येत्यमृषा मृषायते ।
रक्षो विदित्वाखिलभूतहृत्स्थित:
स्वानां निरोद्धुं भगवान्मनो दधे ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

इत्थम्—इस प्रकार; मिथ:—अथवा दूसरा; अतथ्यम्—जो तथ्य नहीं है, ऐसा विषय; अ-तत्-ज्ञ—बिना जाने; भाषितम्—जब वे बातें कर रहे थे; श्रुत्वा—कृष्ण ने सुन कर; विचिन्त्य—सोच कर; इति—इस प्रकार; अमृषा—सचमुच; मृषायते—जो झूठा लग रहा था (वस्तुत: वह पशु अघासुर था किन्तु अल्प-ज्ञान के कारण वे उसे मृत अजगर समझ रहे थे); रक्ष:—(किन्तु कृष्ण समझ गये थे कि) वह असुर है; विदित्वा—जान कर; अखिल-भूत-हृत्-स्थित:—अन्तर्यामी अर्थात् हर एक के हृदय में स्थित होने के कारण; स्वानाम्—अपने संगियों का; निरोद्धुम्—उन्हें मना करने के लिए; भगवान्—भगवान् ने; मन: दधे—संकल्प किया।

हर व्यक्ति के हृदय में स्थित अन्तर्यामी परमात्मा भगवान् श्रीकृष्ण ने बालकों को परस्पर नकली अजगर के विषय में बातें करते सुना। वे नहीं जानते थे कि यह वास्तव में अघासुर था, जो अजगर के रूप में प्रकट हुआ था। यह जानते हुए कृष्ण अपने मित्रों को असुर के मुख में प्रवेश करने से रोकना चाहते थे।

तावत्प्रविष्टास्त्वसुरोदरान्तरं
परं न गीर्णा: शिशव: सवत्सा: ।
प्रतीक्षमाणेन बकारिवेशनं
हतस्वकान्तस्मरणेन रक्षसा ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

तावत्—तब तक; प्रविष्टा:—सभी बालक घुस गये; तु—निस्सन्देह; असुर-उदर-अन्तरम्—उस असुर के पेट के भीतर; परम्—लेकिन; न गीर्णा:—निगले नहीं जा सके; शिशव:—सारे बालक; स-वत्सा:—अपने अपने बछड़ों समेत; प्रतीक्षमाणेन—प्रतीक्षारत; बक-अरि—बकासुर के शत्रु का; वेशनम्—प्रवेश; हत-स्व-कान्त-स्मरणेन—वह असुर अपने मृत सम्बन्धियों के बारे में सोच रहा था और तब तक संतुष्ट नहीं होगा जब तक कृष्ण मर न जाय; रक्षसा—असुर द्वारा।

जब तक कि कृष्ण सारे बालकों को रोकने के बारे में सोचें, तब तक वे सभी असुर के मुख में घुस गये। किन्तु उस असुर ने उन्हें निगला नहीं क्योंकि वह कृष्ण द्वारा मारे गये अपने

सम्बन्धियों के विषय में सोच रहा था और अपने मुख में कृष्ण के घुसने की प्रतीक्षा कर रहा था।

तान्वीक्ष्य कृष्णः सकलाभयप्रदो
ह्यनन्यनाथान्स्वकरादवच्युतान् ।
दीनांश्च मृत्योर्जठराग्निघासान्
घृणार्दितो दिष्टकृतेन विस्मितः ॥ २७॥

शब्दार्थ

तान्—उन बालकों को; वीक्ष्य—देखकर; कृष्णः—भगवान् कृष्ण; सकल-अभय-प्रदः—जो सबों को अभय प्रदान करने वाले हैं; हि—निस्सन्देह; अनन्य-नाथान्—विशेषतया उन ग्वालबालों के लिए जो कृष्ण के अतिरिक्त और किसी को नहीं जानते थे; स्व-करात्—अपने हाथ से; अवच्युतान्—गये हुए; दीनान् च—तथा असहाय; मृत्योः जठर-अग्नि-घासान्—जो अघासुर के पेट की अग्नि में तिनकों की तरह प्रविष्ट हो चुके थे और जो असुर बहुत दिलेर और साक्षात् मृत्यु की तरह भूखा था (विशाल शरीर धारण करने से असुर काफी भूखा रहा होगा); घृणा-अर्दितः—अहैतुकी कृपा के कारण दयालु; दिष्ट-कृतेन—भगवान् की अन्तरंगा शक्ति से नियोजित वस्तुओं द्वारा; विस्मितः—वे भी क्षण-भर के लिए आश्चर्यचकित थे।.

कृष्ण ने देखा कि सारे ग्वालबाल, जो उन्हें ही अपना सर्वस्व मानते थे, उनके हाथ से निकल कर साक्षात् मृत्यु रूपी अघासुर के उदर की अग्नि में तिनकों जैसे प्रविष्ट हो जाने से असहाय हैं। कृष्ण के लिए अपने इन ग्वालबाल मित्रों से विलग होना असह्य था। अतएव यह देखते हुए कि यह सब उनकी अन्तरंगा शक्ति द्वारा नियोजित किया प्रतीत होता है, कृष्ण आश्चर्यचकित हो उठे और निश्चय न कर पाये कि क्या किया जाय।

कृत्यं किमत्रास्य खलस्य जीवनं
न वा अमीषां च सतां विहिंसनम् ।
द्वयं कथं स्यादिति संविचिन्त्य
ज्ञात्वाविशत्तुण्डमशेषदृग्घरिः ॥ २८॥

शब्दार्थ

कृत्यम् किम्—क्या किया जाय; अत्र—इस दशा में; अस्य खलस्य—इस ईर्ष्यालु असुर का; जीवनम्—जीवन; न—नहीं; वा—अथवा; अमीषाम् च—तथा निर्दोषों का; सताम्—भक्तों का; विहिंसनम्—मृत्यु; द्वयम्—दोनों कार्य (असुर वध तथा बालकों की रक्षा); कथम्—कैसे; स्यात्—सम्भव हो सकता है; इति संविचिन्त्य—इस विषय के बारे में भलीभाँति सोच कर; ज्ञात्वा—और यह निश्चय करके कि क्या करना है; अविशत्—घुस गये; तुण्डम्—असुर के मुख में; अशेष-दृक् हरिः—कृष्ण, जो अपनी असीम शक्ति से भूत, वर्तमान तथा भविष्य को जान सकते हैं।.

अब क्या करना होगा? इस असुर का वध और भक्तों का बचाव—एकसाथ दोनों को किस तरह सम्पन्न किया जाय? असीम शक्तिशाली होने से कृष्ण ने ऐसी बुद्धिगम्य युक्ति निकल आने तक प्रतीक्षा करने का निश्चय किया जिसके द्वारा वे बालकों को बचाने के साथ साथ उस असुर का वध भी कर सकें। तत्पश्चात् वे अघासुर के मुख में घुस गये।

तात्पर्य : कृष्ण *अनन्तवीर्यसर्वज्ञ* कहे जाते हैं क्योंकि उन्हें हर बात ज्ञात है। हर बात पूर्णतया जानने के कारण उनके लिए ऐसी युक्ति ढूँढ़ लेना कोई कठिन काम न था जिससे वे बालकों को बचाने के साथ ही असुर को भी मार सकते। इसलिए उन्होंने भी असुर के मुख में घुसने का निश्चय किया।

तदा घनच्छदा देवा भयाद्धाहेति चुक्रुशुः ।
जहृषुर्ये च कंसाद्याः कौणपास्त्वघबान्धवाः ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

तदा—उस समय; घन-छदाः—बादलों के पीछे; देवाः—सारे देवता; भयात्—असुर के मुँह में कृष्ण के घुस जाने से डर कर; हा-हा—हाय, हाय; इति—इस प्रकार; चुक्रुशुः—पुकारने लगे; जहृषुः—प्रसन्न हुए; ये—जो; च—भी; कंस-आद्याः—कंस तथा अन्य लोग; कौणपाः—असुरगण; तु—निस्सन्देह; अघ-बान्धवाः—अघासुर के मित्र।.

जब कृष्ण अघासुर के मुख में घुस गये तो बादलों के पीछे छिपे देवतागण हाय हाय करने लगे। किन्तु अघासुर के मित्र, यथा कंस तथा अन्य असुरगण अत्यन्त हर्षित थे।

तच्छ्रुत्वा भगवान्कृष्णस्त्वव्ययः सार्भवत्सकम् ।
चूर्णीचिकीर्षोरात्मानं तरसा ववृधे गले ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

तत्—वह हाय हाय की पुकार; श्रुत्वा—सुन कर; भगवान्—भगवान्; कृष्णः—कृष्ण; तु—निस्सन्देह; अव्ययः—कभी विनष्ट न होने वाले; स-अर्भ-वत्सकम्—ग्वालबालों तथा बछड़ों समेत; चूर्णी-चिकीर्षोः—उस राक्षस का जो उन्हें अपने पेट के भीतर चूर्ण कर देना चाहता था; आत्मानम्—स्वयं; तरसा—जल्दी से; ववृधे—; गले—.

तत्—वह हाय हाय की पुकार; श्रुत्वा—सुन कर; भगवान्—भगवान्; कृष्णः—कृष्ण; तु—निस्सन्देह; अव्ययः—कभी विनष्ट न होने वाले; स-अर्भ-वत्सकम्—ग्वालबालों तथा बछड़ों समेत; चूर्णी-चिकीर्षोः—उस राक्षस का जो उन्हें अपने पेट के भीतर चूर्ण कर देना चाहता था; आत्मानम्—स्वयं; तरसा—जल्दी से; विवृधे—बढ़ा लिया; गले—गले के भीतर।

जब अजेय भगवान् कृष्ण ने देवताओं को बादलों के पीछे से हाय हाय पुकारते सुना तो तुरन्त ही उन्होंने स्वयं तथा अपने संगी ग्वालबालों को असुर से बचाने के लिए, जिन्हें वह चूर्ण-चूर्ण कर देना चाहता था, उसके गले के भीतर अपना विस्तार कर लिया।

तात्पर्य : कृष्ण के कार्य ऐसे ही होते हैं। *परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्* (*भगवद्गीता* ४.८)। कृष्ण ने असुर के गले में अपना विस्तार करके उसकी श्वास अवरुद्ध कर दी और उसे मार डाला। इस तरह उन्होंने अपनी तथा अपने संगियों की आसन्न मृत्यु से रक्षा की तथा देवताओं को भी उनके संताप से मुक्त किया।

ततोऽतिकायस्य निरुद्धमार्गिणो
ह्युद्गीर्णदृष्टेर्भ्रमतस्त्वितस्ततः ।
पूर्णोऽन्तरङ्गे पवनो निरुद्धो
मूर्धन्विनिर्भिद्य विनिर्गतो बहिः ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्, असुर के गले में शरीर बढ़ा कर मारने के बाद; अति-कायस्य—विशाल शरीर वाले असुर का; निरुद्ध-मार्गिणः—दम घुट जाने से, सारे निकास मार्ग रुकने से; हि उद्गीर्ण-दृष्टेः—आँखें बाहर निकल आई हुईं; भ्रमतः तु इतः ततः—पुतलियाँ या प्राणवायु इधर-उधर चलती हुईं; पूर्णः—पूरी तरह मरा; अन्तः-अङ्गे—शरीर के भीतर; पवनः—प्राणवायु; निरुद्धः—रुका हुआ; मूर्धन्—सिर के ऊपर का छेद; विनिर्भिद्य—तोड़ कर; विनिर्गतः—निकल गया; बहिः—बाहर।

चूँकि कृष्ण ने अपने शरीर का आकार बढ़ा दिया था इसलिए असुर ने अपने शरीर को काफी बड़ा कर लिया। फिर भी उसकी श्वास रुक गई उसका दम घुट गया और उसकी आँखें इधर-उधर भटकने लगीं तथा बाहर निकल आईं। किन्तु असुर के प्राण किसी भी छेद से निकल नहीं पा रहे थे अत: अन्त में उसके सिर के ऊपरी छेद से बाहर फूट पड़े।

तेनैव सर्वेषु बहिर्गतेषु
प्राणेषु वत्सान्सुहृदः परेतान् ।
दृष्ट्या स्वयोत्थाप्य तदन्वितः पुन-
र्वक्त्रान्मुकुन्दो भगवान्विनिर्ययौ ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

तेन एव—उसी ब्रह्मरन्ध्र अर्थात् सिर के ऊपरी छेद से; सर्वेषु—शरीर के भीतर की सारी वायु; बहिः गतेषु—बाहर जाने से; प्राणेषु—प्राणों के; वत्सान्—बछड़े; सुहृदः—ग्वालबाल मित्र; परेतान्—जो भीतर मर चुके थे; दृष्ट्या स्वया—कृष्ण की चितवन से; उत्थाप्य—पुनः जीवित करके; तत्-अन्वितः—उनके साथ; पुनः—फिर; वक्त्रात्—मुख से; मुकुन्दः—भगवान्; भगवान्—कृष्ण; विनिर्ययौ—बाहर आ गये।

जब उस असुर के सिर के ऊपरी छेद से सारी प्राणवायु निकल गई तो कृष्ण ने मृत बछड़ों तथा ग्वालबालों पर अपनी दृष्टि फेर कर उन्हें फिर से जीवित कर दिया। तब मुकुन्द जो किसी को भी मुक्ति दे सकते हैं अपने मित्रों तथा बछड़ों समेत उस असुर के मुख से बाहर आ गये।

पीनाहिभोगोत्थितमद्भुतं मह-
ज्ज्योतिः स्वधाम्ना ज्वलयद्दिशो दश ।
प्रतीक्ष्य खेऽवस्थितमीशनिर्गमं
विवेश तस्मिन्मिषतां दिवौकसाम् ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

पीन—अत्यन्त विशाल; अहि-भोग-उत्थितम्—भौतिक भोग के लिए बने सर्प के शरीर के निकलने वाली; अद्भुतम्—विचित्र; महत्—महान्; ज्योतिः—तेज; स्व-धाम्ना—अपने प्रकाश से; ज्वलयत्—चमकाता हुआ; दिशः दश—दशों दिशाएँ; प्रतीक्ष्य—

प्रतीक्षा करके; खे—आकाश में; अवस्थितम्—स्थित; ईश-निर्गमम्—भगवान् के बाहर आने तक; विवेश—प्रवेश किया; तस्मिन्—कृष्ण के शरीर में; मिषताम्—देखते देखते; दिवौकसाम्—देवताओं के।

उस विराट अजगर के शरीर से सारी दिशाओं को प्रकाशित करता हुआ एक प्रकाशमान तेज निकला और आकाश में अकेले तब तक रुका रहा जब तक कृष्ण उस शव के मुख से बाहर नहीं आ गये। तत्पश्चात् सारे देवताओं ने इस तेज को कृष्ण के शरीर में प्रवेश करते देखा।

तात्पर्य : ऐसा प्रतीत होता है कि अघासुर नामक सर्प को कृष्ण के शरीर में प्रवेश करने और उनकी संगति प्राप्त होने से मुक्ति मिली। कृष्ण के शरीर में प्रवेश करना *सायुज्यमुक्ति* कहलाती है किन्तु अगले श्लोकों से सिद्ध होता है कि दन्तवक्र तथा अन्यों की तरह अघासुर को *सारूप्यमुक्ति* प्राप्त हुई। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने श्रील जीव गोस्वामी कृत *वैष्णव तोषणी* से उद्धरण देते हुए इसका विशद वर्णन किया है। अघासुर को सारूप्यमुक्ति मिली अर्थात् विष्णु जैसे चतुर्भुज शरीर के साथ वैकुण्ठ लोक में रहने का अवसर मिला। ऐसा कैसे हुआ इसकी व्याख्या संक्षेप में इस प्रकार है—

जो तेज अजगर के शरीर से निकला वह आध्यात्मिक *शुद्धसत्त्व* पाकर और भौतिक कल्मष से मुक्त होकर शुद्ध बन गया क्योंकि उसकी मृत्यु के बाद भी कृष्ण उसके शरीर के भीतर रहते रहे। यह सन्देह व्यक्त किया जा सकता है कि ऐसे उत्पाती असुर को *सारूप्य* या *सायुज्य* मुक्ति कैसे प्राप्त हो सकी? और इस पर आश्चर्य भी होता है किन्तु कृष्ण इतने कृपालु हैं कि ऐसे संशयों को दूर करने के लिए उन्होंने अजगर के प्राण को तेज रूप में सभी देवताओं की उपस्थिति में कुछ काल तक प्रतीक्षा करने दिया।

कृष्ण पूर्ण तेज हैं और हर जीव उस तेज का अंश है। जैसाकि यहाँ सिद्ध है हर जीव का अपना अपना तेज होता है। असुर का तेज कुछ काल तक उसके शरीर के बाहर रहता रहा और वह पूर्ण तेज अर्थात् *ब्रह्मज्योति* से मिल नहीं पाया। यह ब्रह्मज्योति भौतिक आँखों को दिखाई नहीं पड़ती किन्तु यह सिद्ध करने के लिए हर व्यक्ति व्यष्टि है, कृष्ण ने व्यष्टि तेज को असुर के शरीर से बाहर कुछ समय तक खड़ा रहने दिया जिससे हर कोई उसे देख सके। तब कृष्ण ने यह सिद्ध किया कि जो भी उनके द्वारा मारा जाता है उसे मुक्ति मिलती है, चाहे वह सायुज्य हो, सारूप्य हो, सामीप्य हो या अन्य कुछ।

जो लोग प्रेम के दिव्य पद को प्राप्त हैं उनकी मुक्ति विशेष प्रकार की—*विमुक्ति*—होती है। इस तरह सर्प सर्वप्रथम कृष्ण के शरीर में प्रविष्ट हुआ और तब ब्रह्मज्योति से मिल गया। यह विलय

सायुज्यमुक्ति कहलाती है। किन्तु बाद के श्लोकों में हम देखते हैं कि अघासुर को *सारूप्यमुक्ति* मिली। श्लोक ३८ में बतलाया गया है कि अघासुर को विष्णु जैसा शरीर प्राप्त हुआ और अगले श्लोक में स्पष्ट तौर पर यह भी बताया गया है कि उसे नारायण जैसा पूरी तरह आध्यात्मिक शरीर प्राप्त हुआ। अतएव *भागवत* में दो-तीन स्थानों पर इसकी पुष्टि हुई है कि अघासुर को *सारूप्यमुक्ति* मिली। पुन: यह तर्क किया जा सकता है कि वह ब्रह्मज्योति में कैसे मिल गया? इसका उत्तर यह है कि जय तथा विजय को तीन जन्मों के बाद पुन: सारूप्यमुक्ति मिली और अघासुर को भी भगवान् के सान्निध्य के कारण ऐसी ही मुक्ति मिली।

ततोऽतिहृष्टा: स्वकृतोऽकृतार्हणं
पुष्पै: सुगा अप्सरसश्च नर्तनै: ।
गीतै: सुरा वाद्यधराश्च वाद्यकै:
स्तवैश्च विप्रा जयनि:स्वनैर्गणा: ॥ ३४॥

शब्दार्थ

तत:—तत्पश्चात्; अति-हृष्टा:—अत्यन्त प्रसन्न; स्व-कृत:—अपना अपना कार्य; अकृत—पूरा किया; अर्हणम्—भगवान् की पूजा रूप में; पुष्पै:—नन्दन कानन में उगे फूलों की वर्षा से; सु-गा:—दैवी गायक; अप्सरस: च—देवलोक की नर्तकियाँ; नर्तनै:—नाच से; गीतै:—देवलोक के गीत गाने से; सुरा:—सारे देवता; वाद्य-धरा: च—तथा ढोल बजाने वाले; वाद्यकै:—बाजा बजा करके; स्तवै: च—तथा स्तुतियों द्वारा; विप्रा:—ब्राह्मणगण; जय-नि:स्वनै:—भगवान् की महिमा गायन से; गणा:—हर कोई।

तत्पश्चात् हर एक के प्रसन्न होने पर देवता लोग नन्दन कानन से फूल बरसाने लगे, अप्सराएँ नाचने लगीं और गायन के लिए प्रसिद्ध गन्धर्वगण स्तुति गाने लगे। ढोलकिये दुन्दुभी बजाने लगे तथा ब्राह्मण वैदिक स्तुतियाँ करने लगे। इस प्रकार स्वर्ग तथा पृथ्वी दोनों पर हर व्यक्ति भगवान् की महिमा का गायन करते हुए अपना अपना कार्य करने लगा।

तात्पर्य : हर एक का विशेष कार्य होता है। शास्त्रों ने निरूपित किया है कि हर व्यक्ति अपनी अपनी योग्यताओं के अनुसार भगवान् की महिमाओं का गायन करे। यदि आप गायक हैं, तो अच्छी तरह गा कर भगवान् का गुणगान करें। यदि आप संगीतज्ञ हैं, तो वाद्ययंत्रों द्वारा उनका गुणगान करें। *स्वनुष्ठितस्य धर्मस्य संसिद्धिर्हरि तोषणम्* (*भागवत* १.२.१३)। जीवन का साफल्य भगवान् को तुष्ट करने में है। इसलिए पृथ्वी से लेकर देवलोक तक हर व्यक्ति भगवान् का गुणगान करने में लगा हुआ है। सभी महान् सन्त-पुरुषों का यही निर्णय है कि मनुष्य जो भी योग्यताएँ अर्जित कर चुका है उनका

उपयोग भगवान् का गुणगान करने में करे।

इदं हि पुंसस्तपसः श्रुतस्य वा

स्विष्टस्य सूक्तस्य च बुद्धिदत्तयोः।

अविच्युतोऽर्थः कविभिर्निरूपितो

यदुत्तमश्लोकगुणानुवर्णनम् ॥

"विद्वान मुनियों ने निश्चित निष्कर्ष निकाला है कि ज्ञान, तप, वैदिक अध्ययन, यज्ञ, स्तुति तथा दान की उन्नति का अमोघ उद्देश्य भगवान् के गुणों का उत्तम श्लोकों में दिव्य वर्णन करना है।" (*भागवत* १.५.२२)। यही जीवन की सिद्धि है। मनुष्य को उसके अपने गुणों के अनुसार भगवान् के गुणगान करने की शिक्षा दी जानी चाहिए। शिक्षा, तप या आधुनिक जगत में व्यापार, उद्योग, शिक्षा आदि—इन सबको भगवान् के गुणगान में लगाना चाहिए। तभी संसार का हर व्यक्ति सुखी हो सकेगा।

इसलिए कृष्ण अपनी दिव्य क्रीड़ाएँ प्रदर्शित करने हेतु आते हैं जिससे लोगों को हर तरह से उनका गुणगान करने का अवसर मिल सके। किन्तु भगवान् का गुणगान किस तरह किया जाय यह समझ पाना शोध का विषय है। ऐसा नहीं है कि ईश्वर के बिना हर बात समझी जा सके। इसकी निन्दा की जाती है।

भगवद्भक्तिहीनस्य जातिः शास्त्रं जपस्तपः।

अप्राणस्यैव देहस्य मण्डनं लोकरञ्जनम्॥

(*हरिभक्ति सुधोदय* ३.११)

भगवद्भक्ति अथवा भगवान् के गुणगान के बिना हमारे पास जो भी है, वह शव को सजाने के समान है।

तदद्भुतस्तोत्रसुवाद्यगीतिका-
जयादिनैकोत्सवमङ्गलस्वनान् ।
श्रुत्वा स्वधाम्नोऽन्त्यज आगतोऽचिराद्
दृष्ट्वा महीशस्य जगाम विस्मयम् ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

तत्—उस (स्वर्गलोक में देवताओं द्वारा मनाया गया उत्सव); **अद्भुत**—विचित्र; **स्तोत्र**—स्तुति; **सु-वाद्य**—अच्छे अच्छे बाजे; **गीतिका**—दैवी गीत; **जय-आदि**—जयजयकार इत्यादि.; **न-एक-उत्सव**—भगवान् के गुणगान के लिए ही उत्सव; **मङ्गल-**

स्वनान्—हर एक के लिए शुभ दिव्य ध्वनियाँ; श्रुत्वा—ऐसी ध्वनि सुन कर; स्व-धाम्नः—अपने धाम से; अन्ति—पास ही; अजः—ब्रह्म; आगतः—वहाँ आ गये; अचिरात्—तुरन्त; दृष्ट्वा—देखकर; महि—गुणगान; ईशस्य—कृष्ण का; जगाम विस्मयम्—विस्मित हो गये।

जब भगवान् ब्रह्मा ने अपने लोक के निकट ही ऐसा अद्‌भुत उत्सव होते सुना, जिसके साथ साथ संगीत, गीत तथा जयजयकार हो रहा था, तो वे तुरन्त उस उत्सव को देखने चले आये। कृष्ण का ऐसा गुणगान देखकर वे अत्यन्त विस्मित थे।

तात्पर्य : *अन्ति* का अर्थ है ''निकट'' जिससे सूचित होता है कि उच्च लोकों में भी ब्रह्मलोक के निकट महर्लोक, जनलोक, तपोलोक इत्यादि में भी कृष्ण के गुणगान का उत्सव चल रहा था।

राजन्नाजगरं चर्म शुष्कं वृन्दावनेऽद्भुतम् ।
व्रजौकसां बहुतिथं बभूवाक्रीडगह्वरम् ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

राजन्—हे महाराज परीक्षित; आजगरम् चर्म—अघासुर का शुष्क शरीर जो बड़े चमड़े के रूप में बचा था; शुष्कम्—सूखा; वृन्दावने अद्भुतम्—वृन्दावन में विचित्र अजायबघर की तरह; व्रज-ओकसाम्—व्रजभूमि के निवासियों के लिए; बहु-तिथम्—काफी दिनों तक; बभूव—बन गया; आक्रीड—क्रीड़ा स्थल; गह्वरम्—गुफा।

हे राजा परीक्षित, जब अघासुर का अजगर के आकार का शरीर सूख कर विशाल चमड़ा बन गया तो यह वृन्दावनवासियों के देखने जाने के लिए अद्‌भुत स्थान बन गया और ऐसा बहुत समय तक बना रहा।

एतत्कौमारजं कर्म हरेरात्माहिमोक्षणम् ।
मृत्योः पौगण्डके बाला दृष्ट्वोचुर्विस्मिता व्रजे ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ

एतत्—अघासुर तथा कृष्ण के संगियों के उद्धार की यह घटना; कौमार-जम् कर्म—कौमार (५ वर्ष की) अवस्था में सम्पन्न; हरेः—भगवान् की; आत्म—भक्तजन भगवान् की आत्मा हैं; अहि-मोक्षणम्—उनका मोक्ष तथा अजगर का मोक्ष; मृत्योः—जन्म-मरण के मार्ग से; पौगण्डके—पौगण्ड अवस्था में (जो ५ वर्ष के एक वर्ष बाद शुरू होती है); बालाः—सारे बालक; दृष्ट्वा ऊचुः—एक वर्ष बाद यह बात प्रकट की; विस्मिताः—मानो उसी दिन की घटना हो; व्रजे—वृन्दावन में।

स्वयं तथा अपने साथियों को मृत्यु से बचाने तथा अजगर रूप अघासुर को मोक्ष देने की घटना तब घटी जब कृष्ण पाँच वर्ष के थे। इसका उद्घाटन व्रजभूमि में एक वर्ष बाद हुआ मानो यह उसी दिन की घटना हो।

तात्पर्य : *मोक्षणम्* शब्द का अर्थ है ''मोक्ष।'' कृष्ण के साथियों के लिए तथा कृष्ण के अपने लिए, मोक्ष का प्रश्न ही नहीं उठता, वे आध्यात्मिक जगत में होने से पहले से मुक्त हैं। भौतिक जगत

में जन्म, मृत्यु, जरा तथा रोग होते हैं किन्तु आध्यात्मिक जगत में ऐसा कुछ नहीं है। वहाँ तो हर वस्तु शाश्वत है। किन्तु अघासुर ने भी कृष्ण तथा उनके भक्तों के सान्निध्य से शाश्वत जीवन की वही सुविधाएँ प्राप्त कर लीं। इसीलिए *आत्माहिमोक्षणम्* शब्द से इंगित किया गया है कि यदि अघासुर को भगवान् का सान्निध्य प्राप्त हो सका तो उनके विषय में क्या कहा जाय जो पहले से ही भगवान् के संगी हैं? *साकं विजह्रुः कृतपुण्यपुञ्जाः* (*भागवत* .१२.११)। यहाँ पर इसका प्रमाण है कि ईश्वर हर एक के लिए शुभ हैं। यहाँ तक कि जब वे किसी को मारते हैं, तो उसे मुक्ति मिल जाती है, अतः उनके विषय में क्या कहा जाये जो पहले से भगवान् की संगति में हैं।

नैतद्विचित्रं मनुजार्भमायिनः
परावराणां परमस्य वेधसः ।
अघोऽपि यत्स्पर्शनधौतपातकः
प्रापात्मसाम्यं त्वसतां सुदुर्लभम् ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; एतत्—यह; विचित्रम्—अद्भुत है; मनुज-अर्भ-मायिनः—कृष्ण के लिए जो नन्द तथा यशोदा पर दयालु होने के कारण उनके पुत्र रूप में प्रकट हुए; पर-अवराणाम्—समस्त कार्यों तथा कारणों का; परमस्य वेधसः—परम स्रष्टा का; अघः अपि—अघासुर भी; यत्-स्पर्शन—जिनके स्पर्श मात्र से; धौत-पातकः—संसार के सारे कल्मषों से मुक्त हो गया; प्राप—प्राप्त किया; आत्म-साम्यम्—नारायण जैसा शरीर; तु—लेकिन; असताम् सुदुर्लभम्—जो कलुषित आत्माओं के लिए संभव नहीं है किन्तु भगवान् की दया से सबकुछ संभव हो सकता है।

कृष्ण समस्त कारणों के कारण हैं। भौतिक जगत—उच्च तथा निम्न जगत—के कार्य-कारण आदि नियन्ता भगवान् द्वारा ही सृजित होते हैं। जब कृष्ण नन्द महाराज तथा यशोदा के पुत्र रूप में प्रकट हुए तो उन्होंने अपनी अहैतुकी कृपा से ऐसा किया। अतः उनके लिए अपने असीम ऐश्वर्य का प्रदर्शन कोई विचित्र बात न थी। हाँ, उन्होंने ऐसी महती कृपा प्रदर्शित की कि सर्वाधिक पापी दुष्ट अघासुर भी ऊपर उठ गया और उनके संगियों में से एक बन गया और उसने सारूप्य मुक्ति प्राप्त की जो वस्तुतः भौतिक कलुषों से युक्त पुरुषों के लिए प्राप्त कर पाना असम्भव है।

तात्पर्य : प्रेम के प्रसंग में *माया* शब्द भी व्यवहृत किया जाता है। मायावश ही पिता अपने पुत्र से प्रेम करता है। अतः *मायिनः* शब्द सूचित करता है कि कृष्ण प्रेमवश नन्द महाराज के पुत्र रूप में प्रकट हुए और मानवी शिशु (*मनुजार्भ*) का रूप धारण कर लिया। कृष्ण समस्त कारणों के कारण हैं। वे

कार्य–कारण के स्रष्टा हैं और परम नियन्ता हैं। उनके लिए कुछ भी असम्भव नहीं है। अत: अघासुर जैसे जीव को भी उन्होंने *सारूप्य मुक्ति* प्रदान की। कृष्ण के लिए यह तनिक भी विचित्र नहीं है। कृष्ण को अपने संगियों के साथ साथ अघासुर के मुँह में प्रवेश करने में आनन्द आया। अत: जब अघासुर को उनकी इस क्रीड़ा का सान्निध्य जो आध्यात्मिक जगत में होता है, प्राप्त हुआ तो उसके सारे कल्मष धुल गये और कृष्ण की कृपा से उसे सारुप्य मुक्ति तथा विमुक्ति प्राप्त हुई। कृष्ण के लिए यह कोई अनोखी बात न थी।

सकृद्यदङ्गप्रतिमान्तराहिता
मनोमयी भागवतीं ददौ गतिम् ।
स एव नित्यात्मसुखानुभूत्यभि-
व्युदस्तमायोऽन्तर्गतो हि किं पुनः ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

सकृत्—केवल एक बार; यत्—जिसका; अङ्ग-प्रतिमा—भगवान् का स्वरूप (वैसे रूप अनेक हैं किन्तु कृष्ण आदि रूप है); अन्तः-आहिता—अपने अन्तर में रखते हुए; मनः-मयी—बलपूर्वक उनका चिन्तन करते हुए; भागवतीम्—जो भगवान् की भक्ति प्रदान करने में सक्षम है; ददौ—कृष्ण ने प्रदान किया; गतिम्—सर्वोत्तम स्थान; सः—वे (भगवान्); एव—निस्सन्देह; नित्य—सदैव; आत्म—सारे जीवों का; सुख-अनुभूति—उनके चिन्तन मात्र से दिव्य आनन्द प्राप्त होता है; अभिव्युदस्त-मायः—क्योंकि वे सारे मोह को दूर कर देते हैं; अन्तः-गतः—हृदय के भीतर सदैव स्थित रहने वाले; हि—निस्सन्देह; किम् पुनः—क्या कहा जाय।.

यदि कोई केवल एक बार या बलपूर्वक भी अपने मन में भगवान् के स्वरूप को लाता है, तो उसे कृष्ण की दया से परम मोक्ष प्राप्त हो सकता है, जिस प्रकार अघासुर को प्राप्त हुआ। तो फिर उन लोगों के विषय में क्या कहा जाय जिनके हृदयों में भगवान् अवतार लेकर प्रविष्ट होते हैं अथवा उनका जो सदैव भगवान् के चरणकमलों का ही चिन्तन करते रहते हैं, जो सारे जीवों के लिए दिव्य आनन्द के स्रोत हैं और जो सारे मोह को पूरी तरह हटा देते हैं?

तात्पर्य : यहाँ भगवान् की कृपा प्राप्त करने की विधि बतलाई गई है। *यत्पादपंकजपलाश विलासभक्त्या* (*भागवत* ४.२२.३९)। कृष्ण का चिन्तन करने मात्र से उन्हें बड़ी आसानी से प्राप्त किया जा सकता है। यह भी बतलाया गया है कि कृष्ण के चरणकमल सदैव भक्तों के हृदयों में स्थित रहते हैं (*भगवान् भक्तहृदि स्थित:*)। अघासुर के बारे में यह तर्क किया जा सकता है कि वह भक्त न था। इसका उत्तर यह है कि उसने क्षण–भर भक्तिपूर्वक कृष्ण का चिन्तन किया। *भक्त्याहम् एकया ग्राह्य:।* बिना भक्ति के कोई कृष्ण का चिन्तन नहीं कर सकता, इसके विपरीत जब कोई कृष्ण का चिन्तन

करता है, तो उसमें निश्चित रूप से भक्ति होती है। यद्यपि अघासुर का उद्देश्य कृष्ण को मार डालना था किन्तु क्षण-भर उसने कृष्ण का चिन्तन भक्तिपूर्वक किया और कृष्ण तथा उनके संगियों ने अघासुर के मुख के भीतर क्रीड़ा करनी चाही। इसी तरह पूतना कृष्ण को विष देकर मारना चाहती थी किन्तु कृष्ण ने उसे माता का आदर किया क्योंकि उन्होंने उसका स्तन-पान किया था। *स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्* (*भगवद्गीता* २.४०)। विशेष रूप से जब कृष्ण अवतार के रूप में प्रकट होते हैं और जो कोई व्यक्ति कृष्ण के इन विविध अवतारों का (*रामादि मूर्तिषु कलानियमेन तिष्ठन्*) चिन्तन करता है, विशेष रूप से उनके आदि रूप कृष्ण का तो उसे मुक्ति प्राप्त होती है। इसके अनेक दृष्टान्त हैं जिनमें से अघासुर भी है, जिसने सारूप्य मुक्ति प्राप्त की। अतएव विधि यह है—*सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रता:* (*भगवद्गीता* ९.१४)। अत: भक्त लोग सदैव कृष्ण का गुणगान करने में लगे रहते हैं। *अद्वैतमच्युतमनादिमनन्तरूपम्*—जब हम कृष्ण का उल्लेख करते हैं, तो हम उनके सारे अवतारों यथा कृष्ण, गोविन्द, नारायण, विष्णु, चैतन्य, कृष्ण-बलराम तथा श्यामसुन्दर का उल्लेख करते हैं। जो सदैव कृष्ण का चिन्तन करता है उसे विमुक्ति जो भगवान् के निजी संगी के तौर पर विशेष मुक्ति होती है, प्राप्त होनी चाहिए, भले ही वह वृन्दावन में न हो, कम से कम वैकुण्ठ लोक में तो हो। यह *सारूप्य मुक्ति* कहलाती है।

श्रीसूत उवाच
इत्थं द्विजा यादवदेवदत्तः
श्रुत्वा स्वरातुश्चरितं विचित्रम् ।
पप्रच्छ भूयोऽपि तदेव पुण्यं
वैयासकिं यन्निगृहीतचेताः ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

श्री-सूतः उवाच—श्री सूत गोस्वामी ने नैमिषारण्य में एकत्र सन्तों से कहा; इत्थम्—इस प्रकार; द्विजाः—हे विद्वान ब्राह्मणो; यादव-देव-दत्तः—महाराज परीक्षित (या युधिष्ठिर) जिसकी रक्षा यादवदेव कृष्ण ने की थी; श्रुत्वा—सुन कर; स्व-रातुः—माता के गर्भ में अपने रक्षक कृष्ण का; चरितम्—कार्यकलाप; विचित्रम्—अत्यन्त अद्भुत; पप्रच्छ—पूछा; भूयः अपि—पुनः पुनः; तत् एव—ऐसे कार्यकलाप; पुण्यम्—पुण्यकर्मों से पूर्ण (शृण्वतां स्वकथाः कृष्णः पुण्यश्रवणकीर्तनः, कृष्ण का श्रवण करना सदैव पुण्य है); वैयासकिम्—शुकदेव गोस्वामी को; यत्—क्योंकि; निगृहीत-चेताः—परीक्षित महाराज पहले ही कृष्ण का स्थिर मन से श्रवण कर रहे थे।

श्री सूत गोस्वामी ने कहा : हे विद्वान सन्तो, श्रीकृष्ण की बाल्यकाल की लीलाएँ अत्यन्त अद्भुत हैं। महाराज परीक्षित अपनी माता के गर्भ में उन्हें बचाने वाले कृष्ण की उन लीलाओं के

विषय में सुन कर स्थिरचित्त हो गये और उन्होंने शुकदेव गोस्वामी से फिर कहा कि वे उन पुण्य लीलाओं को सुनायें।

श्रीराजोवाच
ब्रह्मन्कालान्तरकृतं तत्कालीनं कथं भवेत् ।
यत्कौमारे हरिकृतं जगुः पौगण्डकेऽर्भकाः ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

श्री-राजा उवाच—महाराज परीक्षित ने पूछा; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण (शुकदेव गोस्वामी); काल-अन्तर-कृतम्—भूतकाल में भिन्न अवस्था में (कौमार अवस्था) किये गये कर्म; तत्-कालीनम्—उसे अब घटित होते वर्णन किया (पौगण्ड अवस्था में); कथम् भवेत्—यह कैसे हो सकता है; यत्—जो लीला; कौमारे—कौमार अवस्था में; हरि-कृतम्—कृष्ण द्वारा की गई; जगुः—वर्णन किया; पौगण्डके—पौगण्ड अवस्था में (एक वर्ष बाद); अर्भकाः—सारे बालकों ने।

महाराज परीक्षित ने पूछा: हे मुनि, भूतकाल में घटित इन घटनाओं को वर्तमान में घटित होते क्यों वर्णन किया गया है? भगवान् कृष्ण ने अघासुर को मारने का कार्य तो अपनी कौमारावस्था में सम्पन्न किया था। तो फिर बालकों ने, उनकी पौगण्ड अवस्था में, इस घटना को अभी घटित क्यों बतलाया?

तद्ब्रूहि मे महायोगिन्परं कौतूहलं गुरो ।
नूनमेतद्धरेरेव माया भवति नान्यथा ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

तत् ब्रूहि—अतः आप बतलायें; मे—मुझको; महा-योगिन्—हे महान् योगी; परम्—अत्यन्त; कौतूहलम्—उत्सुकता; गुरो—हे गुरु; नूनम्—अन्यथा; एतत्—यह घटना; हरेः—भगवान् की; एव—निस्सन्देह; माया—माया; भवति—है; न अन्यथा—और कुछ नहीं।

हे महायोगी, मेरे आध्यात्मिक गुरु, कृपा करके बतलायें कि यह कैसे हुआ? मैं यह जानने के लिए परम उत्सुक हूँ। मैं सोचता हूँ कि यह कृष्ण की अन्य माया के अतिरिक्त और कुछ न था।

तात्पर्य : कृष्ण की अनेक शक्तियाँ हैं—*परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते* (*श्वेताश्वतर उपनिषद* ६.८)। अघासुर का वृतान्त एक वर्ष के बाद प्रकट किया गया। इसमें कृष्ण की कोई शक्ति निहित होगी। इसीलिए महाराज परीक्षित इसके विषय में जानने के लिए परम उत्सुक थे और उन्होंने शुकदेव गोस्वामी से इसे बतलाने के लिए प्रार्थना की।

वयं धन्यतमा लोके गुरोऽपि क्षत्रबन्धवः ।
वयं पिबामो मुहुस्त्वत्तः पुण्यं कृष्णकथामृतम् ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

वयम्—हम हैं; धन्य-तमाः—सर्वाधिक धन्य; लोके—इस जगत में; गुरो—हे प्रभु, हे मेरे आध्यात्मिक गुरु; अपि—यद्यपि; क्षत्र-बन्धवः—क्षत्रियों में निम्नतम (क्योंकि हमने क्षत्रियों जैसा कार्य नहीं किया); वयम्—हम है; पिबामः—पी रहे हैं; मुहुः—सदैव; त्वत्तः—तुमसे; पुण्यम्—पवित्र; कृष्ण-कथा-अमृतम्—कृष्ण-कथा का अमृत।

हे प्रभु, हे मेरे आध्यात्मिक गुरु, यद्यपि हम क्षत्रियों में निम्नतम हैं, फिर भी हमारा अहोभाग्य है कि हम लाभान्वित हुए हैं क्योंकि हमें आपसे भगवान् के अमृतमय पवित्र कार्यकलापों का निरन्तर श्रवण करते रहने का अवसर प्राप्त हुआ है।

तात्पर्य : भगवान् के पुण्य कार्यकलाप अत्यन्त गुह्य हैं। साधारणतया इन कार्यकलापों को सुन पाना संभव नहीं होता। जो अत्यन्त भाग्यशाली होता है, वही इन्हें सुन पाता है। परीक्षित महाराज ने अपने को *क्षत्रबन्धवः* माना है, जिसका अर्थ है ''क्षत्रियों में निम्नतम।'' क्षत्रियों के गुणों का वर्णन *भगवद्गीता* में हुआ है यद्यपि क्षत्रिय का सामान्य गुण *ईश्वर भाव* है अर्थात् शासन करने की प्रवृत्ति किन्तु ब्राह्मण के ऊपर शासन चलाने की उससे आशा नहीं की जाती। इस तरह महाराज परीक्षित पश्चाताप कर रहे थे कि उन्होंने ब्राह्मणों के ऊपर शासन करना चाहा इसीलिए उन्हें शापित होना पड़ा। वे अपने को क्षत्रियों में निम्नतम मानते थे। *दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्* (*भगवद्गीता* १८.४३)। इसमें संशय नहीं है कि महाराज परीक्षित में क्षत्रिय के अच्छे गुण थे किन्तु भक्त के रूप में उन्होंने दीनतावश तथा विनम्रतावश अपने को क्षत्रियों में निम्नतम रूप में प्रस्तुत किया क्योंकि उन्हें ब्राह्मण के गले में मृत सर्प डालने का अपना कार्य स्मरण था। विद्यार्थी तथा शिष्य को अधिकार है कि वह गुरु से किसी गुह्य सेवा के लिए पूछे और गुरु का कर्तव्य है कि वह अपने शिष्य को इन गुह्य विषयों को बतलाये।

श्रीसूत उवाच
इत्थं स्म पृष्टः स तु बादरायणि-
स्तत्स्मारितानन्तहृताखिलेन्द्रियः ।
कृच्छ्रात्पुनर्लब्धबहिर्दृशिः शनैः
प्रत्याह तं भागवतोत्तमोत्तम ॥ ४४॥

शब्दार्थ

श्री-सूतः उवाच—श्री सूत गोस्वामी ने कहा; इत्थम्—इस प्रकार; स्म—भूतकाल में; पृष्टः—पूछे जाने पर; सः—उसने; तु—निस्सन्देह; बादरायणिः—शुकदेव गोस्वामी; तत्—उनसे (शुकदेव गोस्वामी से); स्मारित-अनन्त—कृष्ण का स्मरण किये जाते

ही; हृत—भाव में लीन; अखिल-इन्द्रियः—बाह्य इन्द्रियों के सारे कार्य; कृच्छ्रात्—बड़ी मुश्किल से; पुनः—फिर; लब्ध-बहिः-दृशिः—बाह्य अनुभूति के जागृत होने पर; शनैः—धीरे धीरे; प्रत्याह—उत्तर दिया; तम्—महाराज परीक्षित को; भागवत-उत्तम-उत्तम—हे महान् सन्त-पुरुष, समस्त भक्तों में श्रेष्ठ (शौनक)।

सूत गोस्वामी ने कहा, ''हे सन्तों तथा भक्तों में सर्वश्रेष्ठ शौनक, जब महाराज परीक्षित ने शुकदेव गोस्वामी से इस तरह पूछा तो तुरन्त अपने अन्तःकरण में कृष्ण-लीलाओं का स्मरण करते हुए अपनी इन्द्रियों के कार्यों से उनका बाह्य सम्पर्क टूट गया। तत्पश्चात् बड़ी मुश्किल से उनकी बाह्य चेतना वापस आयी और वे कृष्ण-कथा के विषय में महाराज परीक्षित से बातें करने लगे।

इस तरह श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध के अन्तर्गत ''अघासुर का वध'' नामक बारहवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter तेरह

ब्रह्मा द्वारा बालकों तथा बछड़ों की चोरी

इस अध्याय में ब्रह्माजी द्वारा ग्वालबालों तथा बछड़ों को चुराने के प्रयास के वर्णन के साथ ही ब्रह्माजी के मोहित होने तथा मोह के हटने का वर्णन हुआ है।

यद्यपि अघासुर सम्बन्धी घटना एक वर्ष पूर्व घट चुकी थी जब ग्वालबाल पाँच वर्ष के थे किन्तु जब वे छह वर्ष के हुए तो उन्होंने कहा, ''यह घटना तो आज घटी है।'' जो हुआ था वह इस प्रकार है। अघासुर को मारने के बाद कृष्ण तथा उनके संगी जंगल में विहार करने चले गये। बछड़े हरी घास से आकृष्ट होकर चरते-चरते जब दूर चले गये तो कृष्ण के संगी कुछ-कुछ क्षुब्ध हुए और उन्होंने अपने बछड़ों को वापस लाना चाहा। किन्तु कृष्ण ने ग्वालबालों को यह कह कर प्रोत्साहित किया, ''तुम क्षुब्ध हुए बिना अपना भोजन करो। बछड़ों को ढूँढ़ने मैं जाऊँगा।'' इस तरह कृष्ण वहाँ से चले गये। तब कृष्ण की शक्ति की परीक्षा लेने के लिए ही ब्रह्माजी सारे बछड़ों तथा ग्वालबालों को चुरा ले गये और ले जाकर उन्हें एकान्त स्थान में रख दिया।

जब कृष्ण बछड़ों तथा बालकों को न ढूँढ़ पाये तो वे समझ गये कि यह ब्रह्मा की चाल है। फिर समस्त कारणों के कारण भगवान् ने ब्रह्माजी को तथा अपने संगियों और उनकी माताओं को प्रसन्न करने के लिए अपना विस्तार किया जिससे वे पूर्ववत् बछड़े तथा बालक बन जाँय। इस तरह उन्होंने

अन्य लीला खोज निकाली। इस लीला की विशेषता यह थी कि ग्वालबालों की माताएँ अपने अपने पुत्रों से और अधिक अनुरक्त हो गईं और गाएँ अपने बछड़ों से। लगभग एक वर्ष बाद बलदेव ने देखा कि सारे ग्वालबाल तथा सारे बछड़े कृष्ण के विस्तार हैं तब उन्होंने कृष्ण से पूछा और उन्होंने जो कुछ हुआ था बतला दिया।

पूरा एक वर्ष बीतने पर जब ब्रह्मा लौटे तो देखा कि कृष्ण पूर्ववत् अपने मित्रों, अपनी गौओं तथा बछड़ों के साथ खेल रहे थे। कृष्ण ने सारे बछड़ों तथा ग्वालबालों को नारायण के चतुर्भज रूप में प्रदर्शित किया। तब जाकर ब्रह्मा को कृष्ण की शक्ति का पता लग सका और वे अपने आराध्यदेव कृष्ण की लीलाओं पर आश्चर्यचकित रह गये। किन्तु कृष्ण ने ब्रह्मा को अपनी अहैतुकी कृपा प्रदान की और उन्हें मोह से मुक्त किया। इस तरह ब्रह्माजी भगवान् का गुणगान करने के लिए स्तुति करने लगे।

श्रीशुक उवाच
साधु पृष्टं महाभाग त्वया भागवतोत्तम ।
यन्नूतनयसीशस्य शृण्वन्नपि कथां मुहुः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; साधु पृष्टम्—आपके प्रश्न से मैं सम्मानित हुआ हूँ; महा-भाग—परम भाग्यशाली व्यक्ति; त्वया—तुम्हारे द्वारा; भागवत-उत्तम—हे सर्वश्रेष्ठ भक्त; यत्—क्योंकि; नूतनयसि—तुम नया से नया कर रहे हो; ईशस्य—भगवान् के; शृण्वन् अपि—निरन्तर सुनते हुए भी; कथाम्—लीलाओं को; मुहुः—बारम्बार।

श्रील शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे भक्त शिरोमणि, परम भाग्यशाली परीक्षित, तुमने बहुत सुन्दर प्रश्न किया है क्योंकि भगवान् की लीलाओं को निरन्तर सुनने पर भी तुम उनके कार्यों को नित्य नूतन रूप में अनुभव कर रहे हो।

तात्पर्य : कृष्णभावनामृत में प्रौढ़ हुए बिना भगवान् की लीलाओं का निरन्तर श्रवण कर पाना कठिन है। *नित्यं नवनवायमानम्*—यद्यपि अग्रगण्य भक्त भगवान् के विषय में वर्षों तक निरन्तर श्रवण करते हैं किन्तु तो भी उन्हें ये कथाएँ नित्य नूतन लगती हैं। अतएव ऐसे भक्त भगवान् कृष्ण की लीलाओं का श्रवण करना त्याग नहीं सकते। *प्रमाञ्जनच्छुरितभक्तिविलोचनेन सन्तः सदैव हृदयेषु विलोकयन्ति। सन्तः* शब्द उस व्यक्ति के लिए आया है, जिसमें कृष्ण-प्रेम उत्पन्न हो चुका है। *यं श्यामसुन्दरमचिन्त्यगुणस्वरूपं गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि* (ब्रह्म-संहिता ५.३८)। इसीलिए परीक्षित महाराज को *भागवतोत्तम* कह कर सम्बोधित किया गया है क्योंकि भक्ति में अग्रसर हुए बिना

अधिकाधिक श्रवण करने का आनन्द अनुभव नहीं हो सकता और कथाएँ नित्य नूतन नहीं लग सकतीं।

सतामयं सारभृतां निसर्गो
यदर्थवाणीश्रुतिचेतसामपि ।
प्रतिक्षणं नव्यवदच्युतस्य यत्
स्त्रिया विटानामिव साधु वार्ता ॥ २॥

शब्दार्थ

सताम्—भक्तों का; अयम्—यह; सार-भृताम्—परमहंसों का, जिन्होंने जीवन सार स्वीकार किया है; निसर्गः—लक्षण या गुण; यत्—जो; अर्थ-वाणी—जीवन का लक्ष्य, लाभ का लक्ष्य; श्रुति—समझने का उद्देश्य; चेतसाम् अपि—जिन्होंने दिव्य विषयों के आनन्द को ही जीवन लक्ष्य स्वीकार कर रखा है; प्रति-क्षणम्—हर क्षण; नव्य-वत्—मानो नवीन से नवीनतर हो; अच्युतस्य—भगवान् कृष्ण का; यत्—क्योंकि; स्त्रियाः—स्त्रियों या यौन की (कथाएँ); विटानाम्—स्त्रियों से अनुरक्तों या लम्पटों के; इव—सदृश; साधु वार्ता—वास्तविक वार्तालाप।

जीवन-सार को स्वीकार करने वाले परमहंस भक्त अपने अन्तःकरण से कृष्ण के प्रति अनुरक्त होते हैं और कृष्ण ही उनके जीवन के लक्ष्य रहते हैं। प्रतिक्षण कृष्ण की ही चर्चा करना उनका स्वभाव होता है, मानो ये कथाएँ नित्य नूतन हों। वे इन कथाओं के प्रति उसी तरह अनुरक्त रहते हैं जिस तरह भौतिकतावादी लोग स्त्रियों तथा विषय-वासना की चर्चाओं में रस लेते हैं।

तात्पर्य : *सारभृताम्* का अर्थ है "परमहंस।" "हंस" दूध तथा पानी के मिश्रण में से दूध ग्रहण कर लेता है और जल को अस्वीकार कर देता है। इसी तरह जो व्यक्ति आध्यात्मिक जीवन तथा कृष्णभावनामृत स्वीकार कर लेते हैं और कृष्ण को ही हर एक के प्राणाधार समझते हैं, वे स्वभावतः क्षण-भर के लिए भी *कृष्ण-कथा* का परित्याग नहीं कर सकते। ऐसे परमहंस सदैव अपने अन्तःकरण में कृष्णदर्शन करते हैं (*सन्तः सदैव हृदयेषु विलोकयन्ति*)। काम, क्रोध तथा भय इस जगत में तो सदैव बने रहते हैं किन्तु आध्यात्मिक जगत में इनका उपयोग कृष्ण के लिए ही किया जाता है। *कामं कृष्णकर्मार्पणे।* अतएव परमहंसों की यही अभिलाषा रहती है कि वे सदैव कृष्ण के लिए कर्म करें। *क्रोधं भक्तद्वेषि जने।* वे क्रोध का उपयोग अभक्तों के विरुद्ध करते हैं और भय को कृष्णभावनामृत से विचलित होने के भय में रूपान्तरित करते हैं। इस तरह परमहंस-भक्त का जीवन पूर्णतया कृष्ण के लिए प्रयुक्त होता है, जिस तरह भौतिक जगत में लिप्त व्यक्ति का जीवन एकमात्र स्त्रियों तथा धन के लिए होता है। भौतिकतावादी व्यक्ति के लिए जो दिन है, वही अध्यात्मवादी के लिए रात है। भौतिकतावादी के लिए जो मधुर है—स्त्रियाँ तथा धन—वही अध्यात्मवादी के द्वारा विष माना जाता है।

सन्दर्शनं विषयिनामथ योषितां च

हा हन्त हन्त विषभक्षणतोऽप्यसाधु।

यह श्री चैतन्य महाप्रभु का आदेश है। परमहंस के लिए कृष्ण ही सर्वस्व हैं किन्तु भौतिकतावादी के लिए स्त्रियाँ तथा धन ही सब कुछ हैं।

शृणुष्वावहितो राजन्नपि गुह्यं वदामि ते ।
ब्रूयुः स्निग्धस्य शिष्यस्य गुरवो गुह्यमप्युत ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

शृणुस्व—कृपया सुनें; अवहितः—ध्यानपूर्वक; राजन्—हे राजा (महाराज परीक्षित); अपि—यद्यपि; गुह्यम्—अत्यन्त गोपनीय (क्योंकि सामान्य व्यक्ति कृष्ण-लीलाओं को नहीं समझ सकते); वदामि—मैं कहूँगा; ते—तुमसे; ब्रूयुः—बताते हैं; स्निग्धस्य—विनीत; शिष्यस्य—शिष्य के; गुरवः—गुरुजन; गुह्यम्—अत्यन्त गोपनीय; अपि उत—ऐसा होने पर भी।

हे राजन्, मेरी बात ध्यानपूर्वक सुनें। यद्यपि भगवान् की लीलाएँ अत्यन्त गुह्य हैं और सामान्य व्यक्ति उन्हें नहीं समझ सकता किन्तु मैं तुमसे उनके विषय में कहूँगा क्योंकि गुरुजन विनीत शिष्य को गुह्य से गुह्य तथा कठिन से कठिन विषयों को भी बता देते हैं।

तथाघवदनान्मृत्यो रक्षित्वा वत्सपालकान् ।
सरित्पुलिनमानीय भगवानिदमब्रवीत् ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

तथा—तत्पश्चात्; अघ-वदनात्—अघासुर के मुख से; मृत्योः—साक्षात् मृत्यु; रक्षित्वा—रक्षा करके; वत्स-पालकान्—सारे ग्वालबालों तथा बछड़ों को; सरित्-पुलिनम्—नदी के तट पर; आनीय—लाकर; भगवान्—भगवान् कृष्ण ने; इदम्—ये शब्द; अब्रवीत्—कहे।

मृत्यु रूप अघासुर के मुख से बालकों तथा बछड़ों को बचाने के बाद भगवान् कृष्ण उन सब को नदी के तट पर ले आये और उनसे निम्नलिखित शब्द कहे।

अहोऽतिरम्यं पुलिनं वयस्याः
स्वकेलिसम्पन्मृदुलाच्छबालुकम् ।
स्फुटत्सरोगन्धहृतालिपत्रिक-
ध्वनिप्रतिध्वानलसद्द्रुमाकुलम् ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

अहो—ओह; अति-रम्यम्—अतीव सुन्दर; पुलिनम्—नदी का किनारा; वयस्याः—मेरे मित्रो; स्व-केलि-सम्पत्—खेलने की सामग्री से युक्त; मृदुल-अच्छ-बालुकम्—मुलायम तथा साफ बालूदार किनारा; स्फुटत्—खिला हुआ; सरः-गन्ध—कमल की गंध से; हृत—आकृष्ट; अलि—भौंरें का; पत्रिक—तथा पक्षियों की; ध्वनि-प्रतिध्वान—उनकी चहचहाहट तथा उसकी प्रतिध्वनि; लसत्—गतिशील; द्रुम-आकुलम्—सुन्दर वृक्षों से पूर्ण।

मित्रो, देखो न, यह नदी का किनारा अपने मोहक वातावरण के कारण कितना रम्य लगता है! देखो न, खिले कमल किस तरह अपनी सुगन्ध से भौरों तथा पक्षियों को आकृष्ट कर रहे हैं। भौरों की गुनगुनाहट तथा पक्षियों की चहचहाहट जंगल के सभी सुन्दर वृक्षों से प्रतिध्वनित हो रही है। और यहाँ की बालू साफ तथा मुलायम है। अतः हमारे खेल तथा हमारी लीलाओं के लिए यह सर्वोत्तम स्थान है।

तात्पर्य : वृन्दावन के जंगल का यह वर्णन पाँच हजार वर्ष पूर्व कृष्ण द्वारा किया गया था और यही स्थिति ३००-४०० वर्ष पूर्व वैष्णव आचार्यों के समय तक बनी रही। *कूजत्कोकिलहंससारसगणाकीर्णे मयूराकुले।* वृन्दावन का जंगल सदैव कोकिल, हंस, सारस जैसे पक्षियों की चहक तथा कुहू-कुहू से पूरित रहता है और इसमें मोर भी रहते हैं (*मयूराकुले*)। आज भी वही ध्वनि तथा वातावरण उस क्षेत्र में विद्यमान हैं जहाँ हमारा कृष्ण-बलराम मन्दिर स्थित है। जो भी इस मन्दिर को देखने आता है, वह यहाँ पर वर्णित पक्षियों के कलरव को सुन कर प्रसन्न हो जाता है (*कूजत्कोकिल-हंससारस*)।

अत्र भोक्तव्यमस्माभिर्दिवारूढं क्षुधार्दिताः ।
वत्साः समीपेऽपः पीत्वा चरन्तु शनकैस्तृणम् ॥ ६॥

शब्दार्थ

अत्र—यहाँ, इस स्थान पर; भोक्तव्यम्—भोजन किया जाय; अस्माभिः—हम लोगों के द्वारा; दिव-आरूढम्—काफी देर हो चुकी है; क्षुधा अर्दिताः—भूख से थके; वत्साः—बछड़े; समीपे—पास ही; अपः—जल; पीत्वा—पीकर; चरन्तु—चरने दें; शनकैः—धीरे धीरे; तृणम्—घास।

मेरे विचार में हम यहाँ भोजन करें क्योंकि विलम्ब हो जाने से हम भूखे हो उठे हैं। यहाँ बछड़े पानी पी सकते हैं और धीरे धीरे इधर-उधर जाकर घास चर सकते हैं।

तथेति पाययित्वार्भा वत्सानारुध्य शाद्वले ।
मुक्त्वा शिक्यानि बुभुजुः समं भगवता मुदा ॥ ७॥

शब्दार्थ

तथा इति—कृष्ण के प्रस्ताव को ग्वालबालों ने स्वीकार कर लिया; पाययित्वा अर्भाः—पानी पीने दिया; वत्सान्—बछड़ों को; आरुध्य—वृक्षों में बाँध कर चरने दिया; शाद्वले—हरी मुलायम घास में; मुक्त्वा—खोल कर; शिक्यानि—पोटली, जिनमें खाने की तथा अन्य वस्तुएँ थीं; बुभुजुः—जाकर आनन्द मनाया; समम्—समान रूप से; भगवता—भगवान् के साथ; मुदा—दिव्य आनन्द में।

भगवान् कृष्ण के प्रस्ताव को मान कर ग्वालबालों ने बछड़ों को नदी में पानी पीने दिया

और फिर उन्हें वृक्षों से बाँध दिया जहाँ हरी मुलायम घास थी। तब बालकों ने अपने भोजन की पोटलियाँ खोलीं और दिव्य आनन्द से पूरित होकर कृष्ण के साथ खाने लगे।

कृष्णस्य विष्वक्पुरुराजिमण्डलै-
रभ्याननाः फुल्लदृशो व्रजार्भकाः ।
सहोपविष्टा विपिने विरेजु-
श्छदा यथाम्भोरुहकर्णिकायाः ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

कृष्णस्य विष्वक्—कृष्ण को घेर कर; पुरु-राजि-मण्डलैः—संगियों के विभिन्न घेरों से; अभ्याननाः—बीचोबीच देखते हुए, जहाँ कृष्ण बैठे थे; फुल्ल-दृशः—दिव्य आनन्द से प्रफुल्लित चेहरे; व्रज-अर्भकाः—व्रजभूमि के सारे ग्वालबाल; सह-उपविष्टाः—कृष्ण के साथ बैठे हुए; विपिने—जंगल में; विरेजुः—सुन्दर ढंग से बनाये गये; छदाः—पंखड़ियाँ तथा पत्तियाँ; यथा—जिस प्रकार; अम्भोरुह—कमल के फूल की; कर्णिकायाः—कोश की।

जिस तरह पंखड़ियों तथा पत्तियों से घिरा हुआ कोई कमल-पुष्प कोश हो उसी तरह बीच में कृष्ण बैठे थे और उन्हें घेर कर पंक्तियों में उनके मित्र बैठे थे। वे सभी अत्यन्त सुन्दर लग रहे थे। उनमें से हर बालक यह सोच कर कृष्ण की ओर देखने का प्रयास कर रहा था कि शायद कृष्ण भी उसकी ओर देखें। इस तरह उन सबों ने जंगल में भोजन का आनन्द लिया।

तात्पर्य : जैसाकि *ब्रह्म-संहिता* में कहा गया है (*सन्तः सदैव हृदयेषु विलोकयन्ति*) कृष्ण अपने शुद्ध भक्तों को सदैव दिखते हैं। *भगवद्गीता* में भी कृष्ण ने इसी ओर संकेत किया है (*सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्*)। यदि पुण्यकर्मों को संचित करके (*कृतपुण्यपुञ्जाः*) कोई व्यक्ति शुद्ध भक्ति पा लेता है, तो उसके हृदय में कृष्ण सदैव दृष्टिगोचर होते हैं। जिसने ऐसी सिद्धि पा ली है, वह दिव्य आनन्द में परम सुन्दर बन जाता है। वर्तमान कृष्णभावनामृत आन्दोलन कृष्ण को केन्द्र में रखने का एक प्रयास है क्योंकि यदि ऐसा किया जाता है, तो सारे कार्य स्वयमेव सुन्दर तथा आनन्दमय बन जाते हैं।

केचित्पुष्पैर्दलैः केचित्पल्लवैरङ्कुरैः फलैः ।
शिग्भिस्त्वग्भिर्दृषद्भिश्च बुभुजुः कृतभाजनाः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

केचित्—कोई; पुष्पैः—फूलों पर; दलैः—फूलों की सुन्दर पत्तियों पर; केचित्—कोई; पल्लवैः—पत्तियों के गुच्छों पर; अङ्कुरैः—फूलों के अंकुरों पर; फलैः—तथा कोई फलों पर; शिग्भिः—कोई डलिया-से डिब्बे में; त्वग्भिः—पेड़ की छाल से; दृषद्भिः—चट्टानों पर; च—और; बुभुजुः—आनन्द मनाया; कृत-भाजनाः—खाने की प्लेटें बनाकर।

ग्वालबालों में से किसी ने अपना भोजन फूलों पर, किसी ने पत्तियों, फलों या पत्तों के गुच्छों पर, किसी ने वास्तव में ही अपनी डलिया में, तो किसी ने पेड़ की खाल पर तथा किसी ने

चट्टानों पर रख लिया। बालकों ने खाते समय इन्हें ही अपनी प्लेटें (थालियाँ) मान लिया।

सर्वे मिथो दर्शयन्तः स्वस्वभोज्यरुचिं पृथक् ।
हसन्तो हासयन्तश्चाभ्यवजह्रुः सहेश्वराः ॥ ॥

शब्दार्थ

सर्वे—सभी ग्वालबाल; मिथः—परस्पर; दर्शयन्तः—दिखाते हुए; स्व-स्व-भोज्य-रुचिम् पृथक्—घर से लाये गये भोज्य पदार्थों की भिन्न भिन्न किस्में तथा उनके पृथक्-पृथक् स्वाद; हसन्तः—चखने के बाद सभी हँसते हुए; हासयन्तः च—तथा हँसाते हुए; अभ्यवजह्रुः—भोजन का आनन्द लिया; सह-ईश्वराः—कृष्ण के साथ।

अपने अपने घर से लाये गये भोजन की किस्मों के भिन्न भिन्न स्वादों को एक-दूसरे को बतलाते हुए सारे ग्वालों ने कृष्ण के साथ भोजन का आनन्द लिया। वे एक-दूसरे का भोजन चख-चख कर हँसने तथा हँसाने लगे।

तात्पर्य : कभी कोई मित्र कहता, ''कृष्ण! देखो मेरा भोजन कितना स्वादिष्ट है'' तो कृष्ण थोड़ा-सा ले लेते तथा हँसते। इसी प्रकार बलराम, सुदामा तथा अन्य मित्र एक-दूसरे का भोजन चख-चख कर हँसते। इस तरह सारे मित्र परम हर्षित होकर घर से लाया हुआ अपना अपना भोजन करने लगे।

बिभ्रद्वेणुं जठरपटयोः शृङ्गवेत्रे च कक्षे
वामे पाणौ मसृणकवलं तत्फलान्यङ्गुलीषु ।
तिष्ठन्मध्ये स्वपरिसुहृदो हासयन्नर्मभिः स्वैः
स्वर्गे लोके मिषति बुभुजे यज्ञभुग्बालकेलिः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

बिभ्रत् वेणुम्—वंशी को रख कर; जठर-पटयोः—कसे हुए चुस्त वस्त्र तथा पेट के बीच; शृङ्ग-वेत्रे—सींग का बना बिगुल तथा गाय हाँकने की छड़ी; च—भी; कक्षे—कमर में; वामे—बाएँ; पाणौ—हाथ में लेकर; मसृण-कवलम्—चावल तथा दही से बना सुन्दर भोजन; तत्-फलानि—बेल जैसे फल; अङ्गुलीषु—अँगुलियों के बीच; तिष्ठन्—इस प्रकार रखी; मध्ये—बीच में; स्व-परि-सुहृदः—अपने निजी संगी; हासयन्—हँसाते हुए; नर्मभिः—हास्य; स्वैः—अपने; स्वर्गे लोके मिषति—स्वर्गलोक के निवासी इस अद्‌भुत दृश्य को देख रहे थे; बुभुजे—कृष्ण ने आनन्द लिया; यज्ञ-भुक् बाल-केलिः—यद्यपि वे यज्ञ की आहुति स्वीकार करते हैं किन्तु बाल-लीला हेतु वे अपने ग्वालबाल मित्रों के साथ बड़ी ही प्रसन्नतापूर्वक भोजन कर रहे थे।

कृष्ण यज्ञ-भुक् हैं—अर्थात् वे केवल यज्ञ की आहुतियाँ ही खाते हैं किन्तु अपनी बाल-लीलाएँ प्रदर्शित करने के लिए वे अपनी वंशी को अपनी कमर तथा दाहिनी ओर कसे वस्त्र के बीच तथा सींग के बिगुल और गाय चराने की लाठी को बाईं ओर खोंस कर बैठ गये। वे अपने हाथ में दही तथा चावल का बना सुन्दर व्यंजन लेकर और अपनी अँगुलियों के बीच में उपयुक्त फलों के टुकड़े पकड़कर इस तरह बैठे थे जैसे कमल का कोश हो। वे आगे की ओर अपने सभी मित्रों को देख रहे थे और खाते-खाते उनसे उपहास करते जाते थे जिससे सभी ठहाका

लगा रहे थे। उस समय स्वर्ग के निवासी देख रहे थे और आश्चर्यचकित थे कि किस तरह यज्ञ-भुक् भगवान् अब अपने मित्रों के साथ जंगल में बैठ कर खाना खा रहे हैं।

तात्पर्य : जब कृष्ण अपने मित्रों के साथ बैठ कर खाना खा रहे थे तो एक भौंरा उड़ कर खाने में हिस्सा बँटाने के लिए वहाँ आ गया। इस पर कृष्ण ने उपहास किया, ''तुम मेरे ब्राह्मण मित्र मधुमंगल को तंग करने क्यों आये हो? क्या उस ब्राह्मण को मारना चाहते हो? यह अच्छी बात नहीं।'' खाते समय ऐसे परिहासपूर्ण शब्द बोलने से सारे बालक हँस रहे थे और खूब आनन्द ले रहे थे। इस प्रकार स्वर्ग के निवासी चकित थे कि जो भगवान् केवल यज्ञ में अर्पित भोजन करते हैं, वे अब किस तरह सामान्य बालक की तरह अपने मित्रों के साथ जंगल में भोजन कर रहे हैं।

भारतैवं वत्सपेषु भुञ्जानेष्वच्युतात्मसु ।
वत्सास्त्वन्तर्वने दूरं विविशुस्तृणलोभिताः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

भारत—हे महाराज परीक्षित; एवम्—इस प्रकार (भोजन करते हुए); वत्स-पेषु—बछड़े चराने वाले बालकों के साथ; भुञ्जानेषु—भोजन करने में व्यस्त; अच्युत-आत्मसु—अच्युत अर्थात् कृष्ण के अभिन्न होने से; वत्साः—बछड़े; तु—फिर भी; अन्तः-वने—गहन जंगल के भीतर; दूरम्—काफी दूर; विविशुः—घुस गये; तृण-लोभिताः—हरी घास से लुब्ध होकर।

हे महाराज परीक्षित, एक ओर जहाँ अपने हृदय में कृष्ण के अतिरिक्त अन्य किसी को न जानने वाले ग्वालबाल जंगल में भोजन करने में इस तरह व्यस्त थे वहीं दूसरी ओर बछड़े हरी घास से ललचाकर दूर घने जंगल में चरने निकल गये।

तान्दृष्ट्वा भयसन्त्रस्तानूचे कृष्णोऽस्य भीभयम् ।
मित्राण्याशान्मा विरमतेहानेष्ये वत्सकानहम् ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

तान्—उन दूर जा रहे बछड़ों को; दृष्ट्वा—देखकर; भय-सन्त्रस्तान्—उन ग्वालबालों को जो भय से क्षुब्ध थे कि गहन वन के भीतर बछड़ों पर कोई खूनी जानवर आक्रमण न कर दे; ऊचे—कृष्ण ने कहा; कृष्णः अस्य भी-भयम्—कृष्ण, जो स्वयं सभी प्रकार के भय का भी भय हैं (कृष्ण के रहने पर कोई भय नहीं रहता); मित्राणि—हे मित्रो; आशात्—भोजन के आनन्द से; मा विरमत—मत रुको; इह—इस स्थान में; आनेष्ये—वापस लाये देता हूँ; वत्सकान्—बछड़ों को; अहम्—मैं।

जब कृष्ण ने देखा कि उनके ग्वालबाल मित्र डरे हुए हैं, तो भय के भी भीषण नियन्ता उन्होंने उनके भय को दूर करने के लिए कहा, ''मित्रो, खाना मत बन्द करो। मैं स्वयं जाकर तुम्हारे बछड़ों को इसी स्थान में वापस लाये दे रहा हूँ।''

तात्पर्य : कृष्ण की मैत्री होने पर भक्त को कोई भय नहीं रह जाता। कृष्ण परम नियन्ता हैं, यहाँ

तक कि वे मृत्यु के भी नियन्ता हैं, जो इस जगत के लिए परम भय है। *भयं द्वितीयाभिनिवेशत: स्यात्* (भागवत ११.२.३७)। यह भय कृष्णभावनामृत के अभाव के कारण उदय होता है अन्यथा भय हो ही नहीं सकता। जिसने कृष्ण के चरणकमलों में शरण ले रखी है उसे इस भय-रूपी जगत में कुछ भी भयावह नहीं है।

भवाम्बुधिर्वत्सपदं परं पदं

पदं पदं यद् विपदां न तेषाम्।

भवाम्बुधि: अर्थात् भय का भौतिक सागर परम नियन्ता की कृपा से आसानी से पार किया जा सकता है। इस भौतिक जगत में पग पग पर भय तथा विपदा है (*पदं पदं यद् विपदाम्*) किन्तु जो लोग भगवान् कृष्ण के चरणकमलों में शरणागत हैं उनके लिए ऐसा नहीं है। ऐसे व्यक्ति इस भयावह जगत से मुक्त कर दिये जाते हैं—

समाश्रिता ये पदपल्लवप्लवं

महत्पदं पुण्ययशो मुरारे:।

भवाम्बुधिर्वत्सपदं परं पदं

पंद पदं यद् विपदां न तेषाम्॥

(*भागवत .१४.५८*)

अतएव हर व्यक्ति को चाहिए कि निर्भीकता के स्रोत भगवान् की शरण ग्रहण करे और इस तरह सुरक्षित हो ले।

इत्युक्त्वाद्रिदरीकुञ्जगह्वरेष्वात्मवत्सकान् ।
विचिन्वन्भगवान्कृष्ण: सपाणिकवलो ययौ ॥१४॥

शब्दार्थ

इति उक्त्वा—यह कह कर (कि मुझे बछड़े लाने दो); अद्रि-दरी-कुञ्ज-गह्वरेषु—पर्वतों, पर्वत की गुफाओं, झाड़ियों तथा सँकरी जगहों में; आत्म-वत्सकान्—अपने मित्रों के बछड़ों को; विचिन्वन्—ढूँढ़ते हुए; भगवान्—भगवान्; कृष्ण:—कृष्ण; स-पाणि-कवल:—दही तथा चावल अपने हाथ में लिए; ययौ—चल पड़े।

कृष्ण ने कहा, "मुझे जाकर बछड़े ढूँढ़ने दो। अपने आनन्द में खलल मत डालो।" फिर हाथ में दही तथा चावल लिए, भगवान् कृष्ण तुरन्त ही अपने मित्रों के बछड़ों को खोजने चल पड़े। वे अपने मित्रों को तुष्ट करने के लिए सारे पर्वतों, गुफाओं, झाड़ियों तथा सँकरे मार्गों में

खोजने लगे।

तात्पर्य : वेद (*श्वेताश्वतर उपनिषद* ६.८) बलपूर्वक कहते हैं कि भगवान् को अपने लिए कुछ भी नहीं करना होता (*न तस्य कार्यं करणं च विद्यते*) क्योंकि वे अपनी शक्तियों के द्वारा हर कार्य करते रहते हैं (*परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते*)। फिर भी हम यहाँ देखते हैं कि वे अपने मित्रों के बछड़ों को ढूँढ़ने स्वयं जाते हैं। यह कृष्ण की अहैतुकी कृपा है। *मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्*—सारे जगत और समस्त ब्रह्माण्ड के जितने भी कार्य हैं, वे उन्हीं के निर्देशन में उन्हीं की विभिन्न शक्तियों द्वारा सम्पन्न होते हैं। तो भी जब अपने मित्रों की रखवाली करने की आवश्यकता होती है वे उसे स्वयं करते हैं। कृष्ण ने अपने मित्रों को आश्वासन दिया, ''डरो नहीं, मैं स्वयं तुम लोगों के बछड़ों को ढूँढ़ने जा रहा हूँ।'' यह कृष्ण की अहैतुकी कृपा थी।

अम्भोजन्मजनिस्तदन्तरगतो मायार्भकस्येशितु-
र्द्रष्टुं मञ्जु महित्वमन्यदपि तद्वत्सानितो वत्सपान् ।
नीत्वान्यत्र कुरूद्वहान्तरदधात्खेऽवस्थितो यः पुरा
दृष्ट्वाघासुरमोक्षणं प्रभवतः प्राप्तः परं विस्मयम् ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

अम्भोजन्म-जनिः—कमल से उत्पन्न ब्रह्माजी; तत्-अन्तर-गतः—ग्वालबालों के साथ भोजन कर रहे कृष्ण के कार्यों में फँस गये; माया-अर्भकस्य—कृष्ण की माया से बनाए गये बालकों के; ईशितुः—परम नियन्ता का; द्रष्टुम्—दर्शन करने के लिए; मञ्जु—अत्यन्त रोचक; महित्वम् अन्यत् अपि—भगवान् की अन्य महिमाओं को भी; तत्-वत्सान्—उनके बछड़ों को; इतः—जहाँ थे उसकी अपेक्षा; वत्स-पान्—तथा बछड़ों की रखवाली करने वाले ग्वालबालों को; नीत्वा—लाकर; अन्यत्र—दूसरे स्थान पर; कुरूद्वह—हे महाराज परीक्षित; अन्तर-दधात्—छिपा दिया; खे अवस्थितः यः—यह पुरुष ब्रह्मा, जो आकाश में स्वर्गलोक में स्थित था; पुरा—प्राचीनकाल में; दृष्ट्वा—देख कर; अघासुर-मोक्षणम्—अघासुर के अद्भुत वध तथा उद्धार को; प्रभवतः—सर्वशक्तिमान परम पुरुष का; प्राप्तः परम् विस्मयम्—अत्यन्त विस्मित था।

हे महाराज परीक्षित, स्वर्गलोक में वास करने वाले ब्रह्मा ने अघासुर के वध करने तथा मोक्ष देने के लिए सर्वशक्तिमान कृष्ण के कार्यकलापों को देखा था और वे अत्यधिक चकित थे। अब वही ब्रह्मा कुछ अपनी शक्ति दिखाना और उस कृष्ण की शक्ति देखना चाह रहे थे, जो मानो सामान्य ग्वालबालों के साथ खेलते हुए अपनी बाल-लीलाएँ कर रहे थे। इसलिए कृष्ण की अनुपस्थिति में ब्रह्मा सारे बालकों तथा बछड़ों को किसी दूसरे स्थान पर लेकर चले गये। इस तरह वे फँस गये क्योंकि निकट भविष्य में वे देखेंगे कि कृष्ण कितने शक्तिशाली हैं।

तात्पर्य : जब कृष्ण अघासुर का वध कर रहे थे तो वे अपने मित्रों के साथ थे। ब्रह्मा अघासुर का

वध देख कर चकित थे किन्तु जब उन्होंने देखा कि कृष्ण भोजन-लीला में मस्त हैं, तो वे और भी चकित हो उठे अत: उन्होंने परीक्षा लेनी चाही कि कृष्ण वहाँ वास्तव में हैं कि नहीं। इस तरह वे कृष्ण की माया में फँस गये। कुछ भी हो ब्रह्मा का जन्म भौतिक रूप से हुआ था—जैसा यहाँ वर्णित है *अम्भोजन्मजनि:—अम्भोज* अर्थात् वे कमल से जन्मे थे। इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता कि वे कमल से उत्पन्न हुए थे, किसी मनुष्य, पशु या भौतिक पिता से नहीं। कमल भी भौतिक होता है और जो भी भौतिक शक्ति के माध्यम से उत्पन्न होता है उसमें चार भौतिक दोष होंगे—भ्रम (त्रुटियाँ करने की प्रवृत्ति), प्रमाद (भ्रान्त होने की प्रवृत्ति), विप्रलिप्सा (छल-कपट करने की प्रवृत्ति) तथा करणापाटव (अपूर्ण इन्द्रियाँ)। इस तरह ब्रह्मा भी फँस गये।

ब्रह्मा ने अपनी माया द्वारा यह परीक्षा लेनी चाही कि कृष्ण वहाँ वास्तव में उपस्थित हैं या नहीं। ये ग्वालबाल तो कृष्ण के स्वांश हैं ही (*आनन्दचिन्मय-रसप्रतिभाविताभि:*)। बाद में कृष्ण ब्रह्मा को यह दिखलायेंगे कि किस प्रकार वे अपना विस्तार हर वस्तु में अपनी ह्लादिनी शक्ति के रूप में करते हैं—*आनन्दचिन्मयरस। ह्लादिनी शक्तिरस्मात*—कृष्ण की एक दिव्य शक्ति है, जो ह्लादिनी शक्ति कहलाती है। वे भौतिक शक्ति से उत्पन्न किसी भी वस्तु का भोग नहीं करते। अत: ब्रह्मा देखेंगे कि भगवान् कृष्ण किस तरह अपनी शक्ति का विस्तार करते हैं।

ब्रह्माजी कृष्ण के संगियों को उठा ले जाना चाहते थे किन्तु धोखे से वे अन्य बालकों तथा बछड़ों को लेते गये। रावण सीताजी को ले जाना चाहता था किन्तु यह असम्भव था अतएव वह माया सीता को ले गया। इसी प्रकार ब्रह्माजी *मायार्भका:*—कृष्ण की माया द्वारा प्रकट बालकों को ले गये। ब्रह्मा इन मायार्भकों को तो कोई अद्वितीय ऐश्वर्य दिखला सकते थे किन्तु वे कृष्ण के संगियों को कोई अद्वितीय शक्ति नहीं दिखला सकते थे। इसे वे स्वयं आगे देखेंगे। *मायार्भकस्य ईशितु:।* यह माया परम नियन्ता—*प्रभवत:*—सर्वशक्तिमान परम पुरुष कृष्ण द्वारा उत्पन्न की गई थी और इसका परिणाम हम आगे देखेंगे। भौतिक जगत में उत्पन्न कोई भी व्यक्ति माया के वश में रहता है। इसीलिए यह लीला *ब्रह्मविमोहन लीला* कहलाती है। *मोहितं नाभिजानाति मामेभ्य: परमव्ययम्* (भगवद्गीता ७.१३)। भौतिक विधि से उत्पन्न व्यक्ति कृष्ण को पूरी तरह नहीं समझ पाते। यहाँ तक कि देवता भी उन्हें नहीं समझ पाते (*मुह्यन्ति यत् सूरय:*)। *तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये* (भागवत १.१.१)। ब्रह्मा से लेकर

छोटे से छोटे कीट तक को कृष्ण से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए।

ततो वत्सानदृष्ट्वैत्य पुलिनेऽपि च वत्सपान् ।
उभावपि वने कृष्णो विचिकाय समन्ततः ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; वत्सान्—बछड़ों को; अदृष्ट्वा—जंगल में न देख कर; एत्य—बाद में; पुलिने अपि—यमुना के तट में भी; च—भी; वत्सपान्—ग्वालबालों को; उभौ अपि—दोनों ही को (बछड़ों तथा बालकों को); वने—जंगल में; कृष्णः—भगवान् कृष्ण ने; विचिकाय—सर्वत्र ढूँढ़ा; समन्ततः—इधर-उधर।

तत्पश्चात् जब कृष्ण बछड़ों को खोज न पाये तो वे यमुना के तट पर लौट आये किन्तु वहाँ भी उन्होंने ग्वालबालों को नहीं देखा। इस तरह वे बछड़ों तथा बालकों को ऐसे ढूँढ़ने लगे, मानों उनकी समझ में न आ रहा हो कि यह क्या हो गया।

तात्पर्य : कृष्ण तुरन्त समझ गये कि ब्रह्मा ही बालकों तथा बछड़ों को चुरा ले गये हैं किन्तु वे अबोध बालक की तरह उन्हें इधर-उधर ढूँढ़ने लगे जिससे ब्रह्मा कृष्ण की माया को न समझ सकें। यह सब नाटकीय ढंग से हुआ। नाटक का पात्र हर बात जानता रहता है किन्तु मंच पर वह इस तरह कार्य करता है कि लोग उसे समझ नहीं पाते।

क्वाप्यदृष्ट्वान्तर्विपिने वत्सान्पालांश्च विश्ववित् ।
सर्वं विधिकृतं कृष्णः सहसावजगाम ह ॥ १७॥

शब्दार्थ

क्व अपि—कहीं भी; अदृष्ट्वा—न देखकर; अन्तः-विपिने—जंगल के भीतर; वत्सान्—बछड़ों को; पालान् च—तथा उनकी रक्षा करने वाले ग्वालबालों को; विश्व-वित्—इस जगत में हो रही प्रत्येक बात को जानने वाले कृष्ण; सर्वम्—हर वस्तु को; विधि-कृतम्—ब्रह्मा द्वारा सम्पन्न; कृष्णः—कृष्ण; सहसा—तुरन्त; अवजगाम ह—समझ गये।

जब कृष्ण बछड़ों तथा उनके पालक ग्वालबालकों को जंगल में कहीं भी ढूँढ़ न पाये तो वे तुरन्त समझ गये कि यह ब्रह्मा की ही करतूत है।

तात्पर्य : यद्यपि कृष्ण *विश्ववित्*—सारे ब्रह्माण्ड में घटने वाली प्रत्येक बात को जानते हैं किन्तु उन्होंने अबोध बालक की तरह ब्रह्मा की करतूत के प्रति अनभिज्ञता प्रकट की, यद्यपि वे तुरन्त ही जान गये थे कि यह सब ब्रह्मा की करनी-धरनी है। यह लीला *ब्रह्मविमोहन* कहलाती है। ब्रह्मा पहले से ही अबोध बालक कृष्ण की क्रीड़ाओं से मोहित थे और अब तो वे और भी अधिक मोहित हो गये।

ततः कृष्णो मुदं कर्तुं तन्मातॄणां च कस्य च ।
उभयायितमात्मानं चक्रे विश्वकृदीश्वरः ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; कृष्णः—भगवान्; मुदम्—आनन्द; कर्तुम्—उत्पन्न करने के लिए; तत्-मातॄणाम् च—ग्वालबालों तथा बछड़ों की माताओं के; कस्य च—तथा ब्रह्मा के (आनन्द के लिए); उभयायितम्—बछड़ों तथा बालकों, दोनों के रूप में विस्तार; आत्मानम्—स्वयं; चक्रे—किया; विश्व-कृत् ईश्वरः—सम्पूर्ण जगत के स्रष्टा होने के कारण उनके लिए यह कठिन न था।

तत्पश्चात् ब्रह्मा को तथा बछड़ों एवं ग्वालबालों की माताओं को आनन्दित करने के लिए, समस्त ब्रह्माण्ड के स्रष्टा कृष्ण ने बछड़ों तथा बालकों के रूप में अपना विस्तार कर लिया।

तात्पर्य : यद्यपि ब्रह्मा पहले ही माया में फँस चुके थे किन्तु वे ग्वालबालों को अपनी शक्ति का प्रदर्शन करना चाहते थे। जब वे बालकों तथा बछड़ों को चुरा कर अपने घर पहुँचे तो कृष्ण ने ब्रह्मा के लिए तथा बालकों की माताओं के लिए दूसरा चमत्कार उत्पन्न कर दिया—उन्होंने फिर से जंगल में भोजन-लीला स्थापित कर दी और उसी तरह बालकों को भोजन करते और बछड़ों को चरते प्रकट कर दिया। वेदों के अनुसार *एकं बहुस्याम्*—भगवान् अपने आपको असंख्य बछड़ों तथा बालकों में बदल सकते हैं जैसाकि ब्रह्मा को मोहित करने के लिए उन्होंने किया।

यावद्वत्सपवत्सकाल्पकवपुर्यावत्कराङ्घ्र्यादिकं
यावद्यष्टिविषाणवेणुदलशिग्यावद्विभूषाम्बरम् ।
यावच्छीलगुणाभिधाकृतिवयो यावद्विहारादिकं
सर्वं विष्णुमयं गिरोऽङ्गवदजः सर्वस्वरूपो बभौ ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

यावत् वत्सप—ग्वालबालों की ही तरह के; वत्सक-अल्पक-वपुः—तथा बछड़ों के कोमल शरीरों जैसे ही; यावत् कर-अङ्घ्रि-आदिकम्—वैसी ही नाप के हाथ-पैर वाले; यावत् यष्टि-विषाण-वेणु-दल-शिक्—जैसे उनके बिगुल, वंशी, लाठियाँ, भोजन के छींके आदि थे ठीक वैसे ही; यावत् विभूषा-अम्बरम्—जैसे उनके गहने तथा वस्त्र थे ठीक वैसे ही; यावत् शील-गुण-अभिधा-आकृति-वयः—वैसे ही गुण, आदत, स्वरूप, लक्षण तथा शारीरिक स्वरूप वाले; यावत् विहार-आदिकम्—वैसी ही रुचि या मनोरंजन वाले; सर्वम्—हर वस्तु; विष्णु-मयम्—विष्णु या वासुदेव के अंश; गिरः अङ्ग-वत्—उन्हीं की तरह की वाणी; अजः—कृष्ण ने; सर्व-स्वरूपः बभौ—स्वयं हर वस्तु उत्पन्न कर दी।

अपने वासुदेव रूप में कृष्ण ने खोये हुए ग्वाल-बालकों तथा बछड़ों की जितनी संख्या थी, उतने ही वैसे ही शारीरिक स्वरूपों, उसी तरह के हाथों, पाँवों तथा अन्य अंगों वाले, उनकी लाठियों, तुरहियों तथा वंशियों, उनके भोजन के छींकों, विभिन्न प्रकार से पहनी हुई उनकी विशेष वेशभूषाओं तथा गहनों, उनके नामों, उम्रों तथा विशेष कार्यकलापों एवं गुणों से युक्त स्वरूपों में अपना विस्तार कर लिया। इस प्रकार अपना विस्तार करके सुन्दर कृष्ण ने यह उक्ति सिद्ध कर दी— *समग्र जगद् विष्णुमयम्*—भगवान् विष्णु सर्वव्यापी हैं।

तात्पर्य : *ब्रह्म-संहिता* (५.३३) में कहा गया है—

अद्वैतमच्युतमनादिमनन्तरूपम्

आद्यम् पुराणपुरुषं नवयौवनं च॥

कृष्ण *परं ब्रह्म* तथा *आद्यम्*—हर वस्तु के आदि हैं। वे आदि पुरुष, सर्वदा यौवन से पूर्ण रहने वाले हैं। वे कल्पना से अधिक रूपों में विस्तार कर सकते हैं फिर भी वे अपने आदि रूप से नहीं गिरते इसलिए वे अच्युत हैं। यही भगवान् हैं। *सर्वं विष्णुमयं जगत्। सर्वं खल्विदं ब्रह्म।* इस तरह कृष्ण ने सिद्ध कर दिया कि वे सर्वस्व हैं और वे कुछ भी बन सकते हैं फिर भी वे हर वस्तु से भिन्न रहते हैं (*मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः*)। ऐसे कृष्ण *अचिन्त्य भेदाभेद तत्त्व* दर्शन द्वारा जाने जाते हैं। *पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते*—कृष्ण पूर्ण हैं और सभी ऐश्वर्यों से पूर्ण लाखों ब्रह्माण्डों की सृष्टि करने पर भी वे बिना किसी परिवर्तन के पूर्ववत् ऐश्वर्यवान बने रहते हैं (*अद्वैतम्*)। विभिन्न वैष्णव आचार्य विशुद्धाद्वैत, विशिष्टाद्वैत तथा द्वैताद्वैत दर्शनों के माध्यम से इसी की व्याख्या करते हैं। अतएव मनुष्य को चाहिए कि आचार्यों से कृष्ण के विषय में जानें। *आचार्यवान् पुरुषो वेद*—जो व्यक्ति आचार्यों के मार्ग का अनुसरण करता है, वह वस्तुओं को यथारूप में जानता है। ऐसा व्यक्ति कृष्ण को यथारूप में जान सकता है, चाहे कुछ हद तक ही सही और कृष्ण को समझ लेने पर (*जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः*) वह भवबन्धन से मुक्त हो जाता है (*त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन*)।

स्वयमात्मात्मगोवत्सान्प्रतिवार्यात्मवत्सपैः ।
क्रीडन्नात्मविहारैश्च सर्वात्मा प्राविशद्व्रजम् ॥ २० ॥

शब्दार्थ

स्वयम् आत्मा—परमात्मा स्वरूप कृष्ण; आत्म-गो-वत्सान्—अपने ही स्वरूप बछड़ों में अपना विस्तार कर लिया; प्रतिवार्य आत्म-वत्सपैः—पुनः उन्होंने बछड़ों को चराने वाले ग्वालों में परिणत कर लिया; क्रीडन्—इस तरह उन लीलाओं में होने वाली हर वस्तु स्वयं बन गये; आत्म-विहारैः च—स्वयं ही अनेक प्रकार से आनन्द लेने लगे; सर्व-आत्मा—परमात्मा, कृष्ण; प्राविशत्—प्रविष्ट किया; व्रजम्—व्रजभूमि में जो महाराज नन्द तथा यशोदा की भूमि है।.

इस तरह अपना विस्तार करने के बाद जिससे वे सभी बछड़ों तथा बालकों की तरह लगें और साथ ही उनके अगुवा भी लगें, कृष्ण ने अब अपने पिता नन्द महाराज की व्रजभूमि में इस तरह प्रवेश किया जिस तरह वे उन सबके साथ आनन्द मनाते हुए सामान्यतया किया करते थे।

तात्पर्य : अपने संगी ग्वालबालों के साथ बछड़ों तथा गौवों की रखवाली करते हुए कृष्ण सामान्यतया जंगल तथा चरागाह में रहा करते थे। अब जबकि उस असली टोली को ब्रह्मा चुरा ले गये थे कृष्ण ने ही उन सबों का रूप धारण कर लिया था। इसे कोई भी, यहाँ तक कि बलदेव भी, नहीं जान पाये और वे अपना काम करते रहे। वे अपने मित्रों को काम करने के लिए आदेश देते जा रहे थे, वे बछड़ों पर नियंत्रण रख रहे थे और जब नई घास के लोभ में वे इधर-उधर चले जाते तो उन्हें जंगल में ढूँढ़ने भी स्वयं जाते। वे ही बछड़े और ग्वालबाल बने हुए थे। यह कृष्ण की अचिन्त्य शक्ति थी। श्रील जीव गोस्वामी ने कहा है—*राधाकृष्णप्रणयविकृतिर्ह्लादिनी शक्तिरस्मात्।* राधा और कृष्ण एक हैं। कृष्ण अपनी ह्लादिनी शक्ति का विस्तार करके राधारानी बन जाते हैं। वही ह्लादिनी शक्ति (*आनन्दचिन्मयरस*) तब भी विस्तृत हुई जब वे स्वयं बछड़े तथा बालक बन गए और व्रजभूमि में आनन्द-मंगल मनाने लगे। यह सब *योगमाया* शक्ति द्वारा किया गया था। जो महामाया शक्ति के अधीन हैं उनके लिए यह अचिन्त्य है।

तत्तद्वत्सान्पृथङ्नीत्वा तत्तद्गोष्ठे निवेश्य सः ।
तत्तदात्माभवद्राजंस्तत्तत्सद्म प्रविष्टवान् ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

तत्-तत्-वत्सान्—जिन जिन गायों के जो जो बछड़े थे, उन्हें; पृथक्—अलग अलग; नीत्वा—ले जाकर; तत्-तत्-गोष्ठे—उनकी अपनी अपनी गोशालाओं में; निवेश्य—भीतर करके; सः—कृष्ण ने; तत्-तत्-आत्मा—पहले जैसे विभिन्न व्यक्तियों के रूप में; अभवत्—अपना विस्तार कर लिया; राजन्—हे राजा परीक्षित; तत्-तत्-सद्म—उन उन घरों में; प्रविष्टवान्—घुस गये (इस तरह कृष्ण सर्वत्र थे)।

हे महाराज परीक्षित, जिन कृष्ण ने अपने को विभिन्न बछड़ों तथा भिन्न भिन्न ग्वालबालों में विभक्त कर लिया था वे अब बछड़ों के रूप में विभिन्न गोशालाओं में और फिर विभिन्न बालकों के रूपों में विभिन्न घरों में घुसे।

तात्पर्य : कृष्ण के अनेकानेक मित्र थे जिनमें से श्रीदामा, सुदामा तथा सुबल प्रमुख थे। इस तरह कृष्ण स्वयं श्रीदामा, सुदामा तथा सुबल बन कर उनके घरों में उनके ही बछड़ों समेत घुसे।

तन्मातरो वेणुरवत्वरोत्थिता
उत्थाप्य दोर्भिः परिरभ्य निर्भरम् ।
स्नेहस्नुतस्तन्यपयःसुधासवं

मत्वा परं ब्रह्म सुतानपाययन् ॥ २२॥

शब्दार्थ

तत्-मातरः—उन उन ग्वालबालों की माताएँ; वेणु-रव—ग्वालबालों द्वारा वंशी तथा बिगुल बजाये जाने की ध्वनि से; त्वर—तुरन्त; उत्थिताः—अपने गृहकार्यों को छोड़ कर उठ गईं; उत्थाप्य—तुरन्त अपने पुत्रों को उठाकर; दोर्भिः—दोनों बाँहों से; परिरभ्य—आलिंगन करके; निर्भरम्—किसी प्रकार का भार अनुभव किये बिना; स्नेह-स्नुत—प्रगाढ़ प्रेम से बहते हुए; स्तन्य-पयः—अपने स्तन का दूध; सुधा-आसवम्—अमृतमय प्रेम की तरह सुस्वादु; मत्वा—मान कर; परम्—परम्; ब्रह्म—कृष्ण; सुतान् अपाययन्—अपने पुत्रों को पिलाया।

बालकों की माताओं ने अपने अपने पुत्रों की वंशियों तथा बिगुलों की ध्वनि सुन कर अपना अपना गृहकार्य छोड़ कर उन्हें गोदों में उठा लिया, दोनों बाँहों में भर कर उनका आलिंगन किया और प्रगाढ़ प्रेम के कारण, विशेष रूप से कृष्ण के प्रति प्रेम के कारण स्तनों से बह रहा दूध वे उन्हें पिलाने लगीं। वस्तुतः कृष्ण सर्वस्व हैं लेकिन उस समय अत्यधिक स्नेह व्यक्त करती हुईं वे परब्रह्म कृष्ण को दूध पिलाने में विशेष आनन्द का अनुभव करने लगीं और कृष्ण ने उन माताओं का क्रमशः दूध पिया मानो वह अमृतमय पेय हो।

तात्पर्य : यद्यपि सारी वृद्धा गोपियाँ जानती थीं कि कृष्ण तो यशोदा के पुत्र हैं फिर भी उनकी अभिलाषा थी, ''यदि कृष्ण मेरा पुत्र होता तो मैं भी यशोदा की तरह उसकी देख-भाल करती।'' यही उनकी आन्तरिक इच्छा थी। इसीलिए उन्हें तुष्ट करने के लिए अब उनका पुत्र रूप धारण करके कृष्ण ने उनकी अभिलाषा पूरी की। उन्होंने कृष्ण का आलिंगन करके तथा दूध पिलाकर कृष्ण के लिए अपने विशेष प्रेम को बढ़ाया और कृष्ण ने उनका स्तन-पान अमृतमय पेय के रूप में किया। इस तरह ब्रह्मा को मोहित करते हुए स्वयं उन्होंने अन्य माताओं तथा अपने बीच योगमाया द्वारा उत्पन्न दिव्य आनन्द का भोग किया।

ततो नृपोन्मर्दनमज्जलेपना-
लङ्कारक्षातिलकाशनादिभिः ।
संलालितः स्वाचरितैः प्रहर्षयन्
सायं गतो यामयमेन माधवः ॥ २३॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; नृप—हे राजा (महाराज परीक्षित); उन्मर्दन—उनकी तेल से मालिश करके; मज्ज—स्नान कराकर; लेपन—शरीर में उबटन लगाकर; अलङ्कार—आभूषणों से सजाकर; रक्षा—रक्षा-मंत्रों का उच्चारण करके; तिलक—शरीर में बारह स्थानों पर तिलक लगाकर; अशन-आदिभिः—तथा खूब खिलाकर; संलालितः—इस तरह माताओं द्वारा लाड़-प्यार से; स्व-आचरितैः—उनके अपने आचरण से; प्रहर्ष-यन्—माताओं को प्रसन्न करते हुए; सायम्—संध्या समय; गतः—आ गये; याम-यमेन—हर काम के लिए समय पूरा होने पर; माधवः—भगवान् कृष्ण।

तत्पश्चात्, हे महाराज परीक्षित, अपनी लीलाओं के कार्यक्रमानुसार कृष्ण शाम को लौटते,

हर ग्वालबाल के घर घुसते और असली बच्चों की तरह कार्य करते जिससे उनकी माताओं को दिव्य आनन्द प्राप्त होता। माताएँ अपने बालकों की देखभाल करतीं, उन्हें तेल लगातीं, उन्हें नहलातीं, चन्दन का लेप लगातीं, गहनों से सजातीं, रक्षा-मंत्र पढ़तीं, उनके शरीर पर तिलक लगातीं और उन्हें भोजन करातीं। इस तरह माताएँ अपने हाथों से कृष्ण की सेवा करतीं।

गावस्ततो गोष्ठमुपेत्य सत्वरं
हुङ्कारघोषैः परिहूतसङ्गतान् ।
स्वकान्स्वकान्वत्सतरानपाययन्
मुहुर्लिहन्त्यः स्त्रवदौधसं पयः ॥ २४॥

शब्दार्थ

गावः—बछड़े; ततः—तत्पश्चात्; गोष्ठम्—गोशालाओं में; उपेत्य—पहुँच कर; सत्वरम्—शीघ्र ही; हुङ्कार-घोषैः—रँभाती हुई; परिहूत-सङ्गतान्—गाएँ बुलाने के लिए; स्वकान् स्वकान्—अपनी अपनी माताओं को; वत्सतरान्—अपने अपने बछड़ों को; अपाययन्—पिलाती हुईं; मुहुः—बारम्बार; लिहन्त्यः—बछड़ों को चाटतीं; स्त्रवत् औधसम् पयः—उनके थनों से प्रचुर दूध बहता हुआ।

तत्पश्चात् सारी गौवें अपने अपने गोष्ठों में घुसतीं और अपने अपने बछड़ों को बुलाने के लिए जोर से रँभाने लगतीं। जब बछड़े आ जाते तो माताएँ उनके शरीरों को बारम्बार चाटतीं और उन्हें अपने थनों से बह रहा प्रचुर दूध पिलातीं।

तात्पर्य : बछड़ों तथा उनकी माताओं के बीच के सारे कार्यकलाप स्वयं कृष्ण चला रहे थे।

गोगोपीनां मातृतास्मिन्नासीत्स्नेहर्धिकां विना ।
पुरोवदास्वपि हरेस्तोकता मायया विना ॥ २५॥

शब्दार्थ

गो-गोपीनाम्—गौवों तथा गोपियों दोनों के लिए; मातृता—मातृ-स्नेह; अस्मिन्—कृष्ण के प्रति; आसीत्—सामान्यतया था; स्नेह—स्नेह की; ऋधिकाम्—वृद्धि; विना—रहित; पुरः-वत्—पहले की तरह; आसु—गौवों तथा गोपियों के बीच था; अपि—यद्यपि; हरेः—कृष्ण का; तोकता—मेरा पुत्र कृष्ण है; मायया विना—बिना माया के।

प्रारम्भ से ही गोपियों का कृष्ण के प्रति मातृवत स्नेह था। कृष्ण के प्रति उनका यह स्नेह अपने पुत्रों के प्रति स्नेह से भी अधिक था। इस तरह अपने स्नेह-प्रदर्शन में वे कृष्ण तथा अपने पुत्रों में भेद बरतती थीं किन्तु अब वह भेद दूर हो चुका था।

तात्पर्य : अपने तथा पराये पुत्र के बीच भेद होना अस्वाभाविक नहीं है। अनेक वृद्धा महिलाएँ अन्यों के पुत्रों से मातृवत् स्नेह रखती हैं। किन्तु वे भी अपने तथा परायों में भेद बरतती हैं। किन्तु अब वृद्धा गोपिकाएँ अपने पुत्रों तथा कृष्ण में यह भेद नहीं बरत पाईं क्योंकि उनके पुत्रों को तो ब्रह्मा चुरा

ले गये थे और कृष्ण ही उनके पुत्र बने हुए थे। अतएव अपने पुत्रों के लिए जो अब कृष्ण स्वयं ही थे, यह अधिक स्नेह मोह के कारण था, जो ब्रह्मा जैसा ही था। पहले श्रीदामा, सुदामा, सुबल और कृष्ण के अन्य मित्रों की माताएँ एक-दूसरे के पुत्रों से ऐसा स्नेह नहीं करती थीं किन्तु अब गोपियाँ सारे बालकों को अपना ही पुत्र मान रही थीं। इसीलिए शुकदेव गोस्वामी स्नेह की इस वृद्धि को ब्रह्मा, गोपियों, गौवों इत्यादि के मोह के रूप में बतलाना चाहते थे।

व्रजौकसां स्वतोकेषु स्नेहवल्ल्याब्दमन्वहम् ।
शनैर्निःसीम ववृधे यथा कृष्णे त्वपूर्ववत् ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

व्रज-ओकसाम्—व्रज के सारे निवासियों का; स्व-तोकेषु—अपने अपने पुत्रों के लिए; स्नेह-वल्ली—स्नेह रूपी लता; आ-अब्दम्—एक वर्ष तक; अनु-अहम्—प्रतिदिन; शनैः—धीरे धीरे; निःसीम—अपार; ववृधे—बढ़ता गया; यथा कृष्णे—कृष्ण को पुत्र रूप मानने से; तु—निस्सन्देह; अपूर्व-वत्—जैसाकि पहले कभी न था।

यद्यपि व्रजभूमि के सारे निवासियों—ग्वालों तथा गोपियों—में पहले से ही कृष्ण के लिए अपने निजी पुत्रों से अधिक स्नेह था किन्तु अब एक वर्ष तक उनके अपने पुत्रों के प्रति यह स्नेह लगातार बढ़ता ही गया क्योंकि अब कृष्ण उनके पुत्र बन चुके थे। अब अपने पुत्रों के प्रति, जो कि कृष्ण ही थे, उनके प्रेम की वृद्धि का कोई वारापार न था। नित्य ही उन्हें अपने पुत्रों से कृष्ण जितना प्रेम करने की नई प्रेरणा प्राप्त हो रही थी।

इत्थमात्मात्मनात्मानं वत्सपालमिषेण सः ।
पालयन्वत्सपो वर्षं चिक्रीडे वनगोष्ठयोः ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

इत्थम्—इस प्रकार; आत्मा—परमात्मा, कृष्ण ने; आत्मना—अपने आप से; आत्मानम्—पुनः अपने को; वत्स-पाल-मिषेण—ग्वालों तथा बछड़ों के वेश में; सः—साक्षात् कृष्ण; पालयन्—पालन करते हुए; वत्स-पः—बछड़ों को चराते हुए; वर्षम्—लगातार एक वर्ष तक; चिक्रीडे—क्रीडाओं का आनन्द लिया; वन-गोष्ठयोः—वृन्दावन तथा जंगल दोनों में ही।

इस तरह अपने को ग्वालबालों तथा बछड़ों का समूह बना लेने के बाद भगवान् श्रीकृष्ण अपने को उसी रूप में बनाये रहे। वे उसी प्रकार से वृन्दावन तथा जंगल दोनों ही जगहों में एक वर्ष तक अपनी लीलाएँ करते रहे।

तात्पर्य : जो कुछ था वह कृष्ण था। बछड़े, ग्वालबाल तथा उनके पालक स्वयं सभी कृष्ण थे। दूसरे शब्दों में, कृष्ण ने अपना विस्तार नाना प्रकार के बछड़ों तथा ग्वालबालों में कर लिया था और

एक वर्ष तक वे अनवरत अपनी क्रीडाएँ करते रहे। *भगवद्गीता* में कहा गया है कि कृष्ण का विस्तार (अंश) हर एक के हृदय में परमात्मा रूप में विद्यमान है। इसी तरह अपने को परमात्मा रूप में विस्तार न देकर उन्होंने बछड़ों तथा ग्वालबालों के अंश रूप में लगातार एक वर्ष के लिए विस्तार कर लिया।

एकदा चारयन्वत्सान्सरामो वनमाविशत् ।
पञ्चषासु त्रियामासु हायनापूरणीष्वजः ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

एकदा—एक दिन; चारयन् वत्सान्—बछड़ों को चराते हुए; स-रामः—बलराम समेत; वनम्—वन में; आविशत्—घुसे; पञ्च-षासु—पाँच या छह; त्रि-यामासु—रातें; हायन—पूरा वर्ष; अपूरणीषु—पूरी न होने पर (एक वर्ष में पाँच-छह दिन शेष रहने पर); अजः—भगवान् श्रीकृष्ण।

एक दिन जबकि वर्ष पूरा होने में अभी पाँच-छः रातें शेष थीं कृष्ण बलराम सहित बछड़ों को चराते हुए जंगल में प्रविष्ट हुए।

तात्पर्य : इस समय तक बलराम भी ब्रह्मा जैसे मोह से आवृत थे। बलराम भी यह नहीं जानते थे कि ये सारे बछड़े तथा ग्वालबाल कृष्ण के ही विस्तार हैं या स्वयं वे भी कृष्ण के विस्तार हैं। बलराम को यह बात वर्ष पूरा होने के केवल पाँच-छः दिन पूर्व बतलाई गई।

ततो विदूराच्चरतो गावो वत्सानुपव्रजम् ।
गोवर्धनाद्रिशिरसि चरन्त्यो ददृशुस्तृणम् ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; विदूरात्—अधिक दूर स्थान से नहीं; चरतः—चरती हुई; गावः—सारी गौवें; वत्सान्—तथा उनके बछड़े; उपव्रजम्—वृन्दावन के निकट चरते हुए; गोवर्धन-अद्रि-शिरसि—गोवर्धन पर्वत की चोटी पर; चरन्त्यः—चरती हुई; ददृशुः—देखा; तृणम्—पास ही मुलायम घास।

तत्पश्चात् गोवर्धन पर्वत की चोटी पर चरती हुई गौवों ने कुछ हरी घास खोजने के लिए नीचे देखा तो उन्होंने अपने बछड़ों को वृन्दावन के निकट चरते देखा जो अधिक दूरी पर नहीं था।

दृष्ट्वाथ तत्स्नेहवशोऽस्मृतात्मा
स गोव्रजोऽत्यात्मपदुर्गमार्गः ।
द्विपात्ककुद्ग्रीव उदास्यपुच्छो
'गाद्धुङ्कृतैरास्रुपया जवेन ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

दृष्ट्वा—देख कर; अथ—तत्पश्चात्; तत्-स्नेह-वशः—अपने बछड़ों के लिए बढ़े हुए स्नेह के कारण; अस्मृत-आत्मा—मानों अपने आप को भूल गईं; सः—वह; गो-व्रजः—गौवों का समूह; अति-आत्म-प-दुर्ग-मार्गः—मार्ग के अत्यन्त दुर्गम होते हुए भी

बछड़ों के लिए अति स्नेह के कारण चराने वालों से बिछड़ कर दूर निकल आईं; द्वि-पात्—पैरों की जोड़ी; ककुत्-ग्रीवः—उनकी गर्दन के साथ ही उनके डिल्ले (कूबड़) हिल रहे थे; उदास्य-पुच्छः—अपने सिर तथा पूछें उठाये; अगात्—आईं; हुङ्कृतैः—हुंकार करती; आस्रु-पयाः—उनके थनों से दूध बह रहा था; जवेन—बलपूर्वक।

जब गायों ने गोवर्धन पर्वत की चोटी से अपने अपने बछड़ों को देखा तो वे अधिक स्नेहवश अपने आप को तथा अपने चराने वालों को भूल गईं और दुर्गम मार्ग होते हुए भी वे अपने बछड़ों की ओर अतीव चिन्तित होकर दौंीं मानो वे दो ही पाँवों से दौड़ रही हों। उनके थन दूध से भरे थे और उनमें से दूध बह रहा था, उनके सिर तथा पूछें उठी हुई थीं और उनके डिल्ले (कूबड़) उनकी गर्दन के साथ साथ हिल रहे थे। वे तब तक तेजी से दौड़ती रहीं जब तक वे अपने बच्चों के पास दूध पिलाने पहुँच नहीं गईं।

तात्पर्य : सामान्यतया गाय तथा बछड़े अलग-अलग चराये जाते हैं। बड़े लोग गौवों की रखवाली करते हैं और छोटे लड़के बछड़ों की। किन्तु इस बार गौवों ने ज्योंही गोवर्धन पर्वत के नीचे अपने बछड़ों को देखा वे अपनी स्थिति भूल गईं और तेजी से अपनी पूँछ उठाये, अगले तथा पिछले पैर जोड़े दौड़ती रहीं जब तक वे अपने बछड़ों के पास पहुँच नहीं गईं।

समेत्य गावोऽधो वत्सान्वत्सवत्योऽप्यपाययन् ।
गिलन्त्य इव चाङ्गानि लिहन्त्यः स्वौधसं पयः ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

समेत्य—एकत्र करके; गावः—सारी गौवें; अधः—नीचे, गोवर्धन पर्वत के नीचे; वत्सान्—अपने बछड़ों को; वत्स-वत्यः—मानों उन्हें नये बछड़ें उत्पन्न हुए हों; अपि—यद्यपि नये बछड़े उपस्थित थे; अपाययन्—उन्हें पिलाया; गिलन्त्यः—निगलते हुए; इव—मानो; च—भी; अङ्गानि—उनके शरीरों को; लिहन्त्यः—चाटते हुए मानो नवजात बछड़े हों; स्व-ओधसम् पयः—अपने थन से बहता हुआ दूध।

गौवों ने नये बछड़ों को जन्म दिया था किन्तु गोवर्धन पर्वत से नीचे आते हुए, अपने पुराने बछड़ों के लिए अतीव स्नेह के कारण इन्हीं बछड़ों को अपने थन का दूध पीने दिया। वे चिन्तित होकर उनका शरीर चाटने लगीं मानो उन्हें निगल जाना चाहती हों।

गोपास्तद्रोधनायासमौघ्यलज्जोरुमन्युना ।
दुर्गाध्वकृच्छ्रतोऽभ्येत्य गोवत्सैर्ददृशुः सुतान् ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

गोपाः—ग्वाले; तत्-रोधन-आयास—गायों को बछड़ों की ओर जाने से रोकने के अपने प्रयास का; मौघ्य—निराशा के कारण; लज्जा—लज्जित होकर; उरु-मन्युना—साथ ही काफी क्रुद्ध होकर; दुर्ग-अध्व-कृच्छ्रतः—बड़ी कठिनाई से दुर्गम मार्ग पार करते हुए; अभ्येत्य—वहाँ पहुँच कर; गो-वत्सैः—बछड़ों समेत; ददृशुः—देखा; सुतान्—अपने अपने पुत्रों को।

गौवों को उनके बछड़ों के पास जाने से रोकने में असमर्थ ग्वाले लज्जित होने के साथ साथ क्रुद्ध भी हुए। उन्होंने बड़ी कठिनाई से दुर्गम मार्ग पार किया किन्तु जब वे नीचे आये और अपने अपने पुत्रों को देखा तो वे अत्यधिक स्नेह से अभिभूत हो गये।

तात्पर्य : हर एक में कृष्ण के लिए स्नेह बढ़ रहा था। जब ग्वालों ने पर्वत से नीचे आकर अपने अपने पुत्रों को देखा, जो कृष्ण के अतिरिक्त अन्य कोई न थे, तो उनका स्नेह बढ़ गया।

तदीक्षणोत्प्रेमरसाप्लुताशया
जातानुरागा गतमन्यवोऽर्भकान् ।
उदुह्य दोर्भिः परिरभ्य मूर्धनि
घ्राणैरवापुः परमां मुदं ते ॥ ३३॥

शब्दार्थ

तत्-ईक्षण-उत्प्रेम-रस-आप्लुत-आशयाः—ग्वालों के सारे विचार अपने पुत्रों को देख कर उठने वाले वात्सल्य-प्रेम में लीन हो गये; जात-अनुरागाः—अत्यधिक आकर्षण का अनुभव करते हुए; गत-मन्यवः—क्रोध दूर हो जाने से; अर्भकान्—अपने पुत्रों को; उदुह्य—उठाकर; दोर्भिः—अपनी बाँहों से; परिरभ्य—आलिंगन करके; मूर्धनि—सिर पर; घ्राणैः—सूँघ कर; अवापुः—प्राप्त किया; परमाम्—सर्वोच्च; मुदम्—आनन्द; ते—उन ग्वालों ने।

उस समय ग्वालों के सारे विचार अपने अपने पुत्रों को देखने से उत्पन्न वात्सल्य-प्रेम रस में विलीन हो गये। अत्यधिक आकर्षण का अनुभव करने से उनका क्रोध छू-मन्तर हो गया। उन्होंने अपने पुत्रों को उठाकर बाँहों में भर कर आलिंगन किया और उनके सिरों को सूँघ कर सर्वोच्च आनन्द प्राप्त किया।

तात्पर्य : ब्रह्मा द्वारा असली ग्वालबालों तथा बछड़ों के चुरा लिए जाने के बाद कृष्ण अपना विस्तार करके स्वयं ग्वालबाल तथा बछड़े बन गये थे। क्योंकि बालक वस्तुतः कृष्ण के अंश थे, इसलिए ग्वाले इन बच्चों के प्रति अत्यधिक आकृष्ट हुए। पहले ये ग्वाले जब पर्वत की चोटी पर थे तो अत्यन्त क्रुद्ध थे। किन्तु कृष्ण होने के कारण उनके बालक अत्यधिक आकर्षक थे इसलिए विशेष प्रेमवश ग्वाले तुरन्त ही पर्वत से नीचे उतर आये।

ततः प्रवयसो गोपास्तोकाश्लेषसुनिर्वृताः ।
कृच्छ्राच्छनैरपगतास्तदनुस्मृत्युदश्रवः ॥ ३४॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; प्रवयसः—वयस्क; गोपाः—ग्वाले; तोक-आश्लेष-सुनिर्वृताः—अपने पुत्रों का आलिंगन करके परम प्रसन्न हुए; कृच्छ्रात्—कठिनाई से; शनैः—धीरे धीरे; अपगताः—आलिंगन करना छोड़ कर जंगल लौट गये; तत्-अनुस्मृति-उद्-श्रवः—अपने पुत्रों का स्मरण करने पर उनकी आँखों से आँसू आ गये।

तत्पश्चात् प्रौढ़ ग्वाले अपने पुत्रों के आलिंगन से अत्यन्त तुष्ट होकर बड़ी कठिनाई और अनिच्छा से उनका आलिंगन धीरे धीरे छोड़ कर जंगल लौट आये। किन्तु जब उन्हें अपने पुत्रों का स्मरण हुआ तो उनकी आँखों से आँसू लुढ़क आये।

तात्पर्य : प्रारम्भ में ग्वाले क्रुद्ध थे कि गौवें बछड़ों से आकृष्ट हो रही हैं लेकिन जब वे ग्वाले पहाड़ी से नीचे आए, तो वे स्वयं अपने पुत्रों से आकृष्ट हो गये और इसलिए उन्होंने अपने पुत्रों का आलिंगन किया। अपने पुत्र का आलिंगन करना और उसके सिर को सूँघना स्नेह के लक्षण हैं।

व्रजस्य रामः प्रेमर्धेर्वीक्ष्यौत्कण्ठ्यमनुक्षणम् ।
मुक्तस्तनेष्वपत्येष्वप्यहेतुविदचिन्तयत् ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

व्रजस्य—गायों के झुंड का; रामः—बलराम; प्रेम-ऋधेः—स्नेह बढ़ने के कारण; वीक्ष्य—देख कर; औत्-कण्ठ्यम्—अनुरक्ति; अनु-क्षणम्—निरन्तर; मुक्त-स्तनेषु—बड़े हो जाने के कारण अपनी माताओं का स्तन-पान छोड़ चुके थे; अपत्येषु—उन बछड़ों को; अपि—भी; अहेतु-वित्—कारण न समझने से; अचिन्तयत्—इस प्रकार सोचने लगे।

स्नेहाधिक्य के कारण गौवों को उन बछड़ों से भी निरन्तर अनुराग था, जो बड़े होने के कारण उनका दूध पीना छोड़ चुके थे। जब बलदेव ने यह अनुराग देखा तो इसका कारण उनकी समझ में नहीं आया अतः वे इस प्रकार सोचने लगे।

तात्पर्य : कुछ गायों के छोटे बछड़े थे, जो उनका दूध पीना शुरू कर चुके थे और कुछ ने अभी अभी बच्चे दिये थे किन्तु प्रेमवश गौवें भावावेश में आकर उन पुराने बछड़ों के प्रति भी स्नेह प्रदर्शित करने लगीं जिन्होंने दूध पीना छोड़ रखा था। ये बछड़े बड़े हो चुके थे किन्तु फिर भी माताएँ उन्हें दूध पिलाना चाह रही थीं। इसलिए बलराम को कुछ-कुछ आश्चर्य हुआ और उन्होंने कृष्ण से उनके इस व्यवहार का कारण पूछना चाहा। गौवें नए बछड़ों के उपस्थित होते हुए भी, अपने बड़े बछड़ों को दूध पिलाने के लिए अधिक उत्सुक थीं क्योंकि पुराने बछड़े कृष्ण के अंश थे। ये आश्चर्यजनक घटनाएँ योगमाया के प्रबन्ध से हो रही थीं। कृष्ण के निर्देशन में दो तरह की मायाएँ कार्य करती हैं—*महामाया* जो भौतिक जगत की शक्ति है तथा *योगमाया* जो आध्यात्मिक जगत की शक्ति है। ये असामान्य घटनाएँ *योगमाया* के प्रभाव से घट रही थीं। जिस दिन से ब्रह्मा ने बछड़ों तथा ग्वालबालों को चुराया था उसी

दिन से योगमाया इस तरह कार्य कर रही थी कि वृन्दावन के वासी, जिसमें भगवान् बलराम भी सम्मिलित थे, यह नहीं समझ पाये कि योगमाया किस तरह से इन असामान्य घटनाओं को घटित कर रही है। किन्तु ज्यों ज्यों योगमाया धीरे धीरे कार्य करने लगी, तो विशेषकर बलराम समझ गये कि क्या हो रहा है अतएव उन्होंने कृष्ण से पूछा।

किमेतदद्भुतमिव वासुदेवेऽखिलात्मनि ।
व्रजस्य सात्मनस्तोकेष्वपूर्वं प्रेम वर्धते ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

किम्—क्या; एतत्—यह; अद्भुतम्—अद्भुत; इव—जैसा; वासुदेवे—वासुदेव कृष्ण में; अखिल-आत्मनि—सारे जीवों के परमात्मा; व्रजस्य—सारे व्रजवासियों का; स-आत्मन:—मेरे समेत; तोकेषु—इन बालकों में; अपूर्वम्—अपूर्व; प्रेम—प्रेम; वर्धते—बढ़ रहा है।

यह विचित्र घटना क्या है? सभी व्रजवासियों का, मुझ समेत. इन बालकों तथा बछड़ों के प्रति अपूर्व प्रेम उसी तरह बढ़ रहा है, जिस तरह सब जीवों के परमात्मा भगवान् कृष्ण के प्रति हमारा प्रेम बढ़ता है।

तात्पर्य : प्रेम की यह वृद्धि माया नहीं थी। चूँकि कृष्ण ने अपना विस्तार प्रत्येक वस्तु के रूप में कर लिया था तथा वृन्दावन के हर वासी का संपूर्ण जीवन कृष्ण के निमित्त था, सारी गौवें कृष्ण-प्रेम के कारण नये बछड़ों की अपेक्षा पुराने बछड़ों में अधिक स्नेह दिखा रही थीं। इसी तरह पुरुष अपने पुत्रों के प्रति स्नेह में वृद्धि कर रहे थे। वृन्दावन के सारे वासियों में अपने अपने बच्चों के प्रति कृष्ण जैसा ही प्रेम देख कर बलराम चकित थे। इसी तरह गौवें अपने अपने बछड़ों के प्रति उतनी ही स्नेहिल हो उठी थीं जितनी कृष्ण के प्रति थीं। योगमाया का कार्य देख कर बलराम चकित थे। इसीलिए उन्होंने कृष्ण से पूछा, ''यह क्या हो रहा है? यह रहस्य क्या है?''

केयं वा कुत आयाता दैवी वा नार्युतासुरी ।
प्रायो मायास्तु मे भर्तुर्नान्या मेऽपि विमोहिनी ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ

का—कौन; इयम्—यह; वा—अथवा; कुत:—कहाँ से; आयाता—आयी है; दैवी—देवी; वा—अथवा; नारी—स्त्री; उत—अथवा; आसुरी—राक्षसी; प्राय:—अधिकांशत:; माया—माया; अस्तु—हो सकती है; मे—मेरे; भर्तु:—प्रभु, कृष्ण के; न—नहीं; अन्या—कोई दूसरा; मे—मेरा; अपि—निश्चित रूप से; विमोहिनी—मोहग्रस्त करने वाली।

यह योगशक्ति कौन है और वह कहाँ से आई है? क्या वह देवी है या कोई राक्षसी है?

अवश्य ही वह मेरे प्रभु कृष्ण की माया होगी क्योंकि उसके अतिरिक्त मुझे और कौन मोह सकता है?

तात्पर्य : बलराम चकित थे। उन्होंने सोचा कि प्रेम का यह असाधारण प्रदर्शन या तो देवताओं की या किसी अद्‌भुत व्यक्ति की माया है। अन्यथा ऐसा परिवर्तन कैसे होता? उन्होंने सोचा, ''यह माया कोई *राक्षसी माया* हो सकती है किन्तु वह मुझे कैसे वशीभूत कर सकती है? ऐसा सम्भव नहीं। अत: यह अवश्य ही कृष्ण की माया है।'' इसलिए उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि यह कृष्ण द्वारा उत्पन्न है, जिसे वे अपना आराध्यदेव मानते थे। उन्होंने सोचा, ''यह कृष्ण की करनी है और मैं भी इसकी योगशक्ति को रोक नहीं पाया।'' इस तरह बलराम समझ गये कि सारे लड़के तथा बछड़े कृष्ण के ही अंश हैं।

इति सञ्चिन्त्य दाशार्हो वत्सान्सवयसानपि ।
सर्वानाचष्ट वैकुण्ठं चक्षुषा वयुनेन सः ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

इति सञ्चिन्त्य—इस प्रकार सोच कर; दाशार्हः—बलदेव ने; वत्सान्—बछड़ों को; स-वयसान्—अपने साथियों समेत; अपि—भी; सर्वान्—सारे; आचष्ट—देखा; वैकुण्ठम्—केवल श्रीकृष्ण रूप में; चक्षुषा वयुनेन—दिव्य ज्ञान के चक्षुओं द्वारा; सः—उसने (बलदेव ने)।

इस प्रकार सोचते हुए बलराम अपने दिव्य ज्ञान के चक्षुओं से देख सके कि ये सारे बछड़े तथा कृष्ण के साथी श्रीकृष्ण के ही अंश हैं।

तात्पर्य : हर व्यक्ति भिन्न होता है। यहाँ तक कि जुड़वों में भी भेद होता है। फिर भी जब कृष्ण ने अपना विस्तार बालकों तथा बछड़ों के रूप में किया, तो हर बालक तथा हर बछड़ा अपने मूल रूप में प्रकट हुआ और हर एक में अपनी अपनी वही चाल-ढाल, वही रंग, वेश इत्यादि था क्योंकि कृष्ण इन सारे भेदों के साथ प्रकट हुए थे। यही कृष्ण का ऐश्वर्य था।

नैते सुरेशा ऋषयो न चैते
त्वमेव भासीश भिदाश्रयेऽपि ।
सर्वं पृथक्त्वं निगमात्कथं वदे-
त्युक्तेन वृत्तं प्रभुणा बलोऽवैत् ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; एते—ये लड़के; सुर-ईशाः—देवताओं में श्रेष्ठ; ऋषयः—ऋषिगण; न—नहीं; च—तथा; एते—ये बछड़े; त्वम्—तुम (कृष्ण); एव—केवल; भासि—प्रकट हो रहे हो; ईश—हे परम नियन्ता; भित्-आश्रये—नाना प्रकार के भेद में; अपि—होते हुए भी; सर्वम्—प्रत्येक वस्तु; पृथक्—विद्यमान; त्वम्—तुम (कृष्ण); निगमात्—संक्षेप में; कथम्—कैसे; वद—बतलाओ; इति—इस प्रकार; उक्तेन—(बलदेव द्वारा) प्रार्थना किये जाने पर; वृत्तम्—स्थिति; प्रभुणा—कृष्ण द्वारा (कही जाने पर); बलः—बलदेव; अवैत्—समझ गये।

भगवान् बलदेव ने कहा, ''हे परम नियन्ता, मेरे पहले सोचने के विपरीत ये बालक महान् देवता नहीं हैं न ही ये बछड़े नारद जैसे महान् ऋषि हैं। अब मैं देख सकता हूँ कि तुम्हीं अपने को नाना प्रकार के रूप में प्रकट कर रहे हो। एक होते हुए भी तुम बछड़ों तथा बालकों के विविध रूपों में विद्यमान हो। कृपा करके मुझे यह विस्तार से बतलाओ।'' बलदेव द्वारा इस प्रकार प्रार्थना किये जाने पर कृष्ण ने सारी स्थिति समझा दी और बलदेव उसे समझ भी गये।

तात्पर्य : कृष्ण से असली स्थिति जानने के लिए बलराम ने पूछा, ''हे कृष्ण! पहले तो मैं समझ रहा था कि ये सारी गौवें, बछड़े तथा ग्वालबाल या तो महान् ऋषि या साधु-संत हैं अथवा देवता हैं किन्तु इस समय ऐसा लग रहा है कि वास्तव में ये तुम्हारे ही अंश हैं। ये सब तुम्हारे रूप हैं—तुम्हीं बछड़ों, गौवों और बालकों की भूमिका अदा कर रहे हो। इसका क्या रहस्य है? वे दूसरे बछड़े, गौवें तथा ग्वालबाल कहाँ गये? तुमने इन सब में अपना विस्तार क्यों किया? इसका कारण बतलाओ।'' बलराम के इस अनुरोध पर कृष्ण ने संक्षेप में सारी बात बतला दी—किस तरह ब्रह्मा ने बछड़ों और ग्वालबालों को चुराया और किस तरह कृष्ण अपना विस्तार करके इस घटना को छिपाये रहे जिससे लोग यह न जान पायें कि असली गौवें, बछड़े तथा लड़के खो गये हैं। इसलिए बलराम समझ गये कि यह माया नहीं अपितु कृष्ण का ऐश्वर्य है। कृष्ण सर्व-ऐश्वर्ययुक्त हैं और यह कृष्ण का एक और ऐश्वर्य ही था।

बलराम ने कहा, ''पहले तो मैंने समझा कि ये लड़के तथा बछड़े नारद जैसे महान् ऋषियों की शक्ति का प्रदर्शन हैं किन्तु अब मैं देख रहा हूँ कि ये लड़के तथा बछड़े तुम्हारे ही रूप हैं।'' कृष्ण से पूछने पर भगवान् बलराम को पता चला कि कृष्ण ही अनेक रूपों में उपस्थित थे। भगवान् ऐसा कर सकते हैं इसका उल्लेख *ब्रह्म-संहिता* (५.३३) में हुआ है—*अद्वैतं अच्युतं अनादिं अनन्तरूपम्*—यद्यपि वे एक हैं किन्तु अनेक रूपों में विस्तार कर सकते हैं। वैदिक प्रमाण के अनुसार *एकं बहु स्याम्*—वे करोड़ों रूपों में विस्तार करके भी एक बने रहते हैं। इस दृष्टि से हर वस्तु आध्यात्मिक है क्योंकि वह कृष्ण का विस्तार (अंश) होती है अर्थात् सारी वस्तुएँ स्वयं कृष्ण या उनकी शक्ति की ही विस्तार हैं।

चूँकि शक्ति शक्तिमान से अभिन्न है, अत: शक्ति तथा शक्तिमान एक ही हैं (*शक्तिशक्तिमतोरभेद:*)। लेकिन मायावादियों का कहना है—*चिदचित्समन्वय:*—आत्मा तथा पदार्थ एक हैं। यह धारणा गलत है। आत्मा (*चित्*) पदार्थ (*अचित्*) से भिन्न है जैसाकि स्वयं कृष्ण ने *भगवद्गीता* (७.४-५) में कहा है—

भूमिरापोऽनलो वायु: खं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥
अप्रमेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्॥

"भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि तथा मिथ्या अहंकार—ये आठों मिलकर मेरी भिन्न भौतिक प्रकृति बनती हैं। किन्तु इस अपरा प्रकृति के अतिरिक्त भी, हे महाबाहु अर्जुन! एक पराशक्ति है, जो उन सारे जीवों से बनी हुई है, जो भौतिक प्रकृति से संघर्ष कर रहे हैं और ब्रह्माण्ड को धारण करते हैं।" आत्मा तथा पदार्थ को एक नहीं किया जा सकता क्योंकि वे परा तथा अपरा शक्तियाँ हैं। फिर भी मायावादी अथवा अद्वैतवादी उन्हें एक बनाने का प्रयास करते हैं। यह ठीक नहीं है। यद्यपि आत्मा तथा पदार्थ अन्तत: एक ही स्रोत से आते हैं किन्तु उन्हें एक नहीं बनाया जा सकता। उदाहरणार्थ, ऐसी अनेक वस्तुएँ हैं, जो हमारे शरीर से निकलती हैं किन्तु एक ही स्रोत से आने पर भी उन्हें एक नहीं कहा जा सकता। हमें ध्यान रखना चाहिए कि यद्यपि परम स्रोत एक है किन्तु इस स्रोत से निकलने वाली वस्तुओं को अपर तथा पर मानना चाहिए। मायावाद तथा वैष्णव दर्शनों का अन्तर इतना ही है कि वैष्णव दर्शन में इस तथ्य को मान्यता दी जाती है। इसीलिए श्री चैतन्य महाप्रभु का दर्शन *अचिन्त्य भेदाभेद* कहलाता है। उदाहरणास्वरूप, अग्नि तथा उष्मा को विलग नहीं किया जा सकता क्योंकि जहाँ अग्नि है, वहीं उष्मा है और जहाँ उष्मा है, वहीं अग्नि है। तो भी जहाँ हम अग्नि को छू नहीं सकते वहीं उष्मा को हम सहन कर लेते हैं। इस तरह वे एक हो करके भी भिन्न भिन्न हैं।

तावदेत्यात्मभूरात्ममानेन त्रुट्यनेहसा ।
पुरोवदाब्दं क्रीडन्तं ददृशे सकलं हरिम् ॥४०॥

शब्दार्थ

तावत्—तब तक; एत्य—लौट कर; आत्म-भूः—ब्रह्मा ने; आत्म-मानेन—अपनी माप के अनुसार; त्रुटि-अनेहसा—क्षण-भर में; पुरः-वत्—पहले की तरह; आ-अब्दम्—एक वर्ष तक; क्रीडन्तम्—खेलते हुए; ददृशे—देखा; स-कलम्—अपने अंशों सहित; हरिम्—भगवान् हरि (श्रीकृष्ण) को।.

जब ब्रह्मा एक क्षण के बाद (अपनी गणना के अनुसार) वहाँ लौटे तो उन्होंने देखा कि यद्यपि मनुष्य की माप के अनुसार पूरा एक वर्ष बीत चुका है, तो भी कृष्ण उतने समय बाद भी उसी तरह अपने अंशरूप बालकों तथा बछड़ों के साथ खेलने में व्यस्त हैं।

तात्पर्य : ब्रह्मा तो अपने समय के अनुसार क्षण-भर के लिए गये थे किन्तु जब वे लौटे तो मनुष्य की माप के अनुसार एक वर्ष बीत चुका था। विभिन्न लोकों में काल की गणना भिन्न भिन्न होती है। उदाहरणार्थ, मनुष्य द्वारा निर्मित अन्तरिक्षयान एक घंटा पच्चीस मिनट में पृथ्वी का चक्कर लगा सकता है—और इस तरह एक दिन पूरा कर सकता है, जबकि पृथ्वी पर रहने वाले लोगों के लिए दिन में चौबीस घण्टे होते हैं। इसलिए ब्रह्मा का एक क्षण पृथ्वी पर एक वर्ष के तुल्य था। कृष्ण पूरे एक वर्ष इतने रूपों में अपना विस्तार किये रहे किन्तु योगमाया की योजना के फलस्वरूप बलराम के अतिरिक्त अन्य कोई इसे जान नहीं पाया।

ब्रह्मा अपनी गणना के अनुसार एक क्षण बाद यह देखने के लिए लौटे कि उनके द्वारा बालकों तथा बछड़ों को चुराने से कैसा कौतुक हुआ होगा। किन्तु साथ ही वे भयभीत थे कि यह तो आग के साथ खिलवाड़ करना है। कृष्ण उनके स्वामी हैं और कौतुक के लिए उन्होंने कृष्ण के बछड़ों तथा मित्रों को चुराकर शैतानी की है। वे सचमुच उत्सुक थे इसीलिए उन्होंने देरी नहीं की, अपने हिसाब से क्षण-भर बाद ही वे लौट आये। जब ब्रह्मा लौटे तो उन्होंने देखा कि सारे बालक, बछड़े और गौवें कृष्ण के साथ पूर्ववत् खेल रहे हैं। कृष्ण की योगमाया से वही क्रीड़ाएँ बिना किसी परिवर्तन के चल रही थीं।

जिस दिन ब्रह्मा पहले पहल आये थे उस दिन कृष्ण तथा ग्वालबालों के साथ बलराम नहीं जा सके क्योंकि उस दिन उनका जन्मदिन था और उनकी माता ने *शान्तिक स्नान* के लिए उन्हें घर पर रोक लिया था। इसलिए ब्रह्माजी बलराम को चुरा नहीं पाये थे। अब एक वर्ष बाद ब्रह्मा लौटे, तो यह भी ठीक वही दिन था अत: उस दिन भी बलराम अपनी वर्षगाँठ मनाने के लिए घर पर ही थे। इसीलिए इस श्लोक में यद्यपि उल्लेख है कि ब्रह्मा ने कृष्ण तथा ग्वालबालों को देखा किन्तु बलदेव का उल्लेख नहीं है। यह तो पाँच-छह दिन पूर्व की बात है कि बलदेव ने कृष्ण से गौवों तथा ग्वालों के विलक्षण

स्नेह के विषय में पूछा था किन्तु अब जब ब्रह्मा लौट कर आये तो उन्होंने कृष्ण के साथ सारे ग्वालों तथा बछड़ों को उनके अंशरूप में खेलते देखा किन्तु उन्होंने बलदेव को नहीं देखा। पिछले वर्ष की तरह भगवान् बलदेव उस दिन जंगल नहीं गये जब ब्रह्माजी फिर से वहाँ प्रकट हुए थे।

यावन्तो गोकुले बालाः सवत्साः सर्व एव हि ।
मायाशये शयाना मे नाद्यापि पुनरुत्थिताः ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

यावन्तः—उतने ही; **गोकुले**—गोकुल में; **बालाः**—बालक; **स-वत्साः**—अपने अपने बछड़ों के साथ; **सर्वे**—सभी; **एव**—निस्सन्देह; **हि**—क्योंकि; **माया-आशये**—माया की सेज पर; **शयानाः**—सो रहे हैं; **मे**—मेरी; **न**—नहीं; **अद्य**—आज; **अपि**—भी; **पुनः**—फिर से; **उत्थिताः**—उठे हैं।

भगवान् ब्रह्मा ने सोचा: गोकुल के जितने भी बालक तथा बछड़े थे उन्हें मैंने अपनी योगशक्ति की सेज पर सुला रखा है और आज के दिन तक वे जगे नहीं हैं।

तात्पर्य : ब्रह्माजी ने अपनी योगशक्ति से सारे बछड़ों तथा बालकों को गुफा में एक वर्ष तक सुला रखा था। अत: जब ब्रह्मा ने अब भी भगवान् कृष्ण को सारी गौवों तथा बछड़ों के साथ खेलते देखा तो जो कुछ हो रहा था वे उसका कारण जानने का प्रयास करने लगे। उन्होंने सोचा, ''यह क्या है? हो सकता है कि मैं जिन बछड़ों तथा ग्वालों को चुरा ले गया था वे ही गुफा से पुन: यहाँ पर ला दिये गये हों। क्या ऐसा ही हुआ है? क्या कृष्ण उन्हें वापस ले आया है?'' किन्तु फिर ब्रह्माजी ने देखा कि जिन बछड़ों तथा बालकों को वे चुरा ले गये थे वे अब भी उसी योगमाया में हैं जिनमें उन्हें रखा गया था। अत: उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि कृष्ण के साथ अब खेल रहे बछड़े तथा ग्वालबाल गुफा वाले बछड़ों तथा बालकों से भिन्न हैं। वे समझ गये कि असली बछड़े तथा बालक गुफा में ही हैं जहाँ वे उन्हें रख आये थे किन्तु कृष्ण ने अपना विस्तार कर लिया है और सामने दिखने वाले ये बछड़े तथा बालक उन्हीं के अंश हैं। इन अंशों के वैसे ही स्वरूप थे, वही प्रवृत्ति और वही विचारधारा थी किन्तु थे वे भी कृष्ण ही।

इत एतेऽत्र कुत्रत्या मन्मायामोहितेतरे ।
तावन्त एव तत्राब्दं क्रीडन्तो विष्णुना समम् ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

इतः—इस कारण से; एते—अपने अपने बछड़ों समेत ये सारे बालक; अत्र—यहाँ पर; कुत्रत्याः—कहाँ से आये हैं; मत्-माया-मोहित-इतरे—मेरी माया से मोहित हुओं के अतिरिक्त; तावन्तः—उतने ही बालक; एव—निस्सन्देह; तत्र—वहाँ पर; आ-अब्दम्—एक वर्ष तक; क्रीडन्तः—खेल रहे हैं; विष्णुना समम्—कृष्ण के साथ।

यद्यपि पूरे एक वर्ष तक कृष्ण के साथ उतने ही बालक तथा बछड़े खेलते रहे फिर भी ये मेरी योगशक्ति से मोहित बालकों से भिन्न हैं। ये कौन हैं? ये कहाँ से आये?

तात्पर्य : यद्यपि वे बछड़ों, गौवों तथा ग्वालबालों जैसे लग रहे थे किन्तु वे सभी विष्णु थे। वस्तुतः वे *विष्णुतत्त्व* थे, *जीवतत्त्व* नहीं थे। ब्रह्मा को आश्चर्य हुआ। उन्होंने सोचा, "असली बालक तथा गौवें तो अब भी वहीं हैं जहाँ उन्हें मैंने पिछले वर्ष रखा था। तो फिर वह कौन है, जो पूर्ववत् कृष्ण के साथ हैं? वे कहाँ से आये?" ब्रह्मा को आश्चर्य हो रहा था कि मेरी योगशक्ति की उपेक्षा हुई है। कृष्ण ने ब्रह्मा द्वारा ले जाई गई गौवों तथा बालकों को बिना छुये ही बछड़ों तथा बालकों की दूसरी पूरी टोली उत्पन्न कर दी है, जो विष्णुतत्त्व के अंश हैं। इस तरह ब्रह्मा की योगशक्ति परास्त हुई।

एवमेतेषु भेदेषु चिरं ध्यात्वा स आत्मभूः ।
सत्याः के कतरे नेति ज्ञातुं नेष्टे कथञ्चन ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस तरह; एतेषु भेदेषु—इन बालकों के बीच, जो पृथक् विद्यमान हैं; चिरम्—दीर्घकाल तक; ध्यात्वा—सोच कर; सः—वह; आत्म-भूः—ब्रह्मा; सत्याः—असली; के—कौन; कतरे—कौन; न—नहीं हैं; इति—इस प्रकार; ज्ञातुम्—जानने के लिए; न—नहीं; इष्टे—समर्थ था; कथञ्चन—किसी भी तरह से।

इस तरह दीर्घकाल तक विचार करते करते भगवान् ब्रह्मा ने उन दो प्रकार के बालकों में अन्तर जानने का प्रयास किया जो एक-दूसरे से पृथक् रह रहे थे। वे यह जानने का प्रयास करते रहे कि कौन असली है और कौन नकली है किन्तु वे कुछ भी नहीं समझ पाये।

तात्पर्य : ब्रह्मा किंकर्तव्यविमूढ़ थे। उन्होंने सोचा, "असली लड़के तथा बछड़े तो वैसे ही सो रहे हैं जिस तरह मैंने उन्हें रखा था किन्तु कृष्ण के साथ यहाँ दूसरा समूह खेल रहा है। यह कैसे हुआ?" ब्रह्मा समझ नहीं पाये कि क्या हो रहा है। कौन से बालक असली हैं और कौन से नकली हैं? ब्रह्मा किसी ठोस निष्कर्ष पर नहीं पहुँच पा रहे थे। वे इस विषय पर दीर्घकाल तक मनन करते रहे—"बछड़ों तथा बालकों के एक ही समय दो समूह कैसे हो सकते हैं? क्या कृष्ण ने इन बालकों तथा बछड़ों को उत्पन्न किया है? या जो सोये हुए हैं उन्हें कृष्ण ने उत्पन्न किया है? या दोनों ही कृष्ण की सृष्टियाँ हैं?" ब्रह्मा ने इस विषय पर कई प्रकार से सोचा। "यदि मैं गुफा जाकर यह देखूँ कि बालक

तथा बछड़े वहाँ अब भी हैं, तो क्या कृष्ण वहाँ जाकर उन सबों को यहाँ लाकर रख देंगे जिससे मैं उन्हें यहाँ देख सकूँ और पुनः उन्हें यहाँ से वहाँ रख आयेंगे?" ब्रह्मा यह पता नहीं लगा पाये कि एक-जैसे बालकों तथा बछड़ों के एक ही साथ दो समूह कैसे सम्भव हैं। यद्यपि वे सोचते रहे, सोचते रहे किन्तु वे कुछ भी न समझ पाये।

एवं सम्मोहयन्विष्णुं विमोहं विश्वमोहनम् ।
स्वयैव माययाजोऽपि स्वयमेव विमोहितः ॥ ४४॥

शब्दार्थ

एवम्—इस तरह से; सम्मोहयन्—मोहित करने की इच्छा से; विष्णुम्—सर्वव्यापी भगवान् कृष्ण को; विमोहम्—जो कभी मोहित नहीं किये जा सकते; विश्व-मोहनम्—किन्तु जो सारे ब्रह्माण्ड को मोहित करने वाले हैं; स्वया—अपने ही द्वारा; एव—निस्सन्देह; मायया—योगशक्ति द्वारा; अजः—ब्रह्मा; अपि—भी; स्वयम्—स्वयं; एव—निश्चय ही; विमोहितः—मोहित हो गये।

चूँकि ब्रह्मा ने सर्वव्यापी भगवान् कृष्ण को, जो कभी मोहित नहीं किये जा सकते अपितु सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को मोहित करने वाले हैं, मोहित करना चाहा इसलिए वे स्वयं ही अपनी योगशक्ति द्वारा मोह में फँस गये।

तात्पर्य : ब्रह्मा ने उन कृष्ण को मोहित करना चाहा जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को मोहित करते हैं। सारा ब्रह्माण्ड कृष्ण की योगशक्ति के अधीन है (*मम माया दुरत्यया*) किन्तु ब्रह्मा ने उन्हें ही मोहित करना चाहा। इसका परिणाम यह हुआ कि ब्रह्मा स्वयं मोहित हो गये जिस तरह कि किसी अन्य को मारने का इच्छुक व्यक्ति स्वयं मार डाला जाय। दूसरे शब्दों में, ब्रह्मा अपनी ही चाल से पराजित हो गये। ऐसी ही स्थिति उन वैज्ञानिकों तथा दार्शनिकों की है, जो कृष्ण की योगशक्ति पर विजय पाना चाहते हैं। वे यह कह कर कृष्ण को ललकारते हैं, "ईश्वर क्या है? हम यह कर सकते हैं, हम वह कर सकते हैं।" किन्तु वे जितना ही अधिक कृष्ण को ललकारते हैं उतना ही अधिक कष्ट पाते हैं। हमें यहाँ यही शिक्षा मिलती है कि हम कृष्ण को पछाड़ने का प्रयत्न न करें। उन्हें पछाड़ने का प्रयास करने के बजाय हम उनकी शरण में जाँय (*सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज*)।

ब्रह्मा चाहते थे कृष्ण को हराना किन्तु स्वयं हार गये क्योंकि वे यह नहीं जान पाये कि कृष्ण क्या कर रहे हैं। जब इस ब्रह्माण्ड के मुख्य पुरुष ब्रह्मा इस तरह मोहित हों तो फिर तथाकथित वैज्ञानिकों तथा दार्शनिकों के विषय में क्या कहा जाये? *सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।* हमें चाहिए कि कृष्ण की व्यवस्था की अवज्ञा करने वाले अपने लघु प्रयासों को हम त्याग दें। हमें चाहिए कि वे जैसी

व्यवस्था करें उसे हम स्वीकार कर लें। यह सदैव श्रेयस्कर होता है क्योंकि इससे हम सुखी बन सकेंगे। हम उनकी व्यवस्था को पराजित करने का जितना ही अधिक प्रयास करेंगे उतना ही अधिक कृष्ण की माया में फँसते जायेंगे (*दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया*) किन्तु जो व्यक्ति भगवान् कृष्ण के आदेशों को मान कर शरण में जाते हैं (*मामेव ये प्रपद्यन्ते*) वे *कृष्ण-माया* से छूट जाते हैं (*मायाम् एतां तरन्ति ते*)। कृष्ण की शक्ति उस सरकारी शक्ति के समान है, जिसे जीता नहीं जा सकता। सर्वप्रथम सरकार के नियम होते हैं, तब पुलिस बल होता है और उसके ऊपर सैन्य बल होता है। अतएव सरकारी बल को पराजित करने से क्या लाभ? इसी तरह कृष्ण को ललकारने से क्या लाभ?

अगले श्लोक से स्पष्ट हो जायेगा कि कृष्ण को किसी भी प्रकार की माया-शक्ति से पराजित नहीं किया जा सकता। यदि किसी को थोड़ी भी वैज्ञानिक ज्ञान की शक्ति प्राप्त हो जाती है, तो वह ईश्वर की अवज्ञा करने का प्रयत्न करता है किन्तु कृष्ण को मोहित करने में कोई भी समर्थ नहीं होता। जब इस ब्रह्माण्ड के प्रधान पुरुष ब्रह्मा ने कृष्ण को मोहित करना चाहा तो वे स्वयं मोहित और आश्चर्यचकित हो गये। बद्धजीव की स्थिति ऐसी ही है। ब्रह्मा कृष्ण को मोहित करने चले तो स्वयं मोहित हो गये।

इस श्लोक में *विष्णु* शब्द महत्त्वपूर्ण है। विष्णु सम्पूर्ण भौतिक संसार में व्याप्त हैं किन्तु ब्रह्मा उनके अधीन एक पद पर नियुक्त हैं।

यस्यैकनिश्वसितकालमथावलम्ब्य

जीवन्ति लोमविलजा जगदण्डनाथा: ॥

(*ब्रह्म-संहिता* ५.४८)

नाथा: शब्द ब्रह्माजी के लिए आया है किन्तु है बहुवचन में क्योंकि ब्रह्माण्ड असंख्य हैं और ब्रह्मा भी असंख्य हैं। ब्रह्मा तो एक क्षुद्र शक्ति मात्र हैं। इस तथ्य का प्राकट्य द्वारका में हुआ था जब कृष्ण ने ब्रह्मा को बुला भेजा था। एक दिन जबब्रह्मा कृष्ण का दर्शन करने द्वारका आये तो द्वारपाल ने भगवान् कृष्ण के आदेश से यह पूछा, ''आप कौन से ब्रह्मा हैं?'' बाद में जब ब्रह्मा ने कृष्ण से पूछा कि क्या इसका अर्थ यह है कि हमारे अतिरिक्त और भी ब्रह्मा हैं, तो कृष्ण मुसकाये और तुरन्त ही अनेक

ब्रह्माण्डों के अनेक ब्रह्माओं को बुला भेजा। तब इस ब्रह्माण्ड के चतुरानन ब्रह्मा ने कृष्ण के पास असंख्य अन्य ब्रह्माओं को आते और कृष्ण को नमस्कार करते देखा। उनमें से कुछ के दस सिर थे, किसी के बीस, किसी के सौ और किसी के लाख लाख। यह अद्‌भुत दृश्य देख कर चतुरानन ब्रह्मा शिथिल हो गये और अपने को अनेक हाथियों के बीच में एक क्षुद्र मच्छर के बराबर समझने लगे। अतः ब्रह्मा कृष्ण को मोहित करके क्या कर सकते हैं?

तम्यां तमोवन्नैहारं खद्योतार्चिरिवाहनि ।
महतीतरमायैश्यं निहन्त्यात्मनि युञ्जतः ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

तम्याम्—अँधेरी रात में; तमः-वत्—अंधकार के समान; नैहारम्—बर्फ से उत्पन्न; खद्योत-अर्चिः—जुगनू का प्रकाश; इव—सदृश; अहनि—दिन के समय, सूर्य-प्रकाश में; महति—महापुरुष में; इतर-माया—अपरा शक्ति; ऐश्यम्—सामर्थ्य; निहन्ति—नष्ट करती है; आत्मनि—अपने को; युञ्जतः—प्रयोग करने वाले व्यक्ति को।

जिस तरह अँधेरी रात में बर्फ का अँधेरा तथा दिन के समय जुगनू के प्रकाश का कोई महत्व नहीं होता, उसी तरह निकृष्ट व्यक्ति की योगशक्ति महान् शक्तिशाली व्यक्ति के विरुद्ध प्रयोग किये जाने पर कुछ भी नहीं कर पाती, उलटे उस निकृष्ट व्यक्ति की शक्ति कम हो जाती है।

तात्पर्य : जब कोई व्यक्ति अपने से श्रेष्ठ शक्तिशाली को पछाड़ना चाहता है, तो उस निकृष्ट की अपनी शक्ति उपहासास्पद बन जाती है। जिस तरह दिन में जुगनू तथा रात में बर्फ का कोई मूल्य नहीं होता, उसी तरह कृष्ण के सामने ब्रह्मा की योगशक्ति व्यर्थ हो गई क्योंकि महान् योगशक्ति क्षुद्र योगशक्ति को व्यर्थ कर देती है। अँधेरी रात में बर्फ से उत्पन्न अँधेरे का कोई अर्थ नहीं होता। रात में तो जुगनू अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रहता है किन्तु दिन में उसके प्रकाश का कोई मूल्य नहीं रहता—इसका रहा-सहा मूल्य भी जाता रहता है। उसी तरह कृष्ण की योगशक्ति के समक्ष ब्रह्मा प्रभावहीन हो गये। कृष्ण की माया का तो महत्त्व नहीं घटा किन्तु ब्रह्मा की माया उपहासास्पद बन गई। इसलिए महान् शक्ति के समक्ष अपना क्षुद्र ऐश्वर्य प्रदर्शित करने का प्रयास नहीं करना चाहिए।

तावत्सर्वे वत्सपालाः पश्यतोऽजस्य तत्क्षणात् ।
व्यदृश्यन्त घनश्यामाः पीतकौशेयवाससः ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

तावत्—इतने लम्बे समय से; सर्वे—सभी; वत्स-पालाः—बछड़े तथा उन्हें चराने वाले बालक दोनों ही; पश्यतः—देखते हुए; अजस्य—ब्रह्मा के; तत्-क्षणात्—तुरन्त; व्यदृश्यन्त—दिखलाई पड़े; घन-श्यामाः—श्याम बादलों के स्वरूप वाले; पीत-कौशेय-वाससः—पीला रेशमी वस्त्र पहने हुए।

जब ब्रह्मा देख रहे थे तो तुरन्त ही सारे बछड़े तथा उन्हें चराने वाले बालक नीले बादलों के रंग वाले स्वरूप में पीले रेशमी वस्त्र पहने हुए प्रकट होने लगे।

तात्पर्य : जब ब्रह्मा मनन कर रहे थे तो सारे बछड़े तथा बालक तुरन्त ही *विष्णु मूर्तियों* में बदल गये। उनकी आकृतियाँ नीले रंग की थीं और वे पीले वस्त्र पहने थे। ब्रह्मा अपनी शक्ति तथा कृष्ण की अत्यधिक असीम शक्ति के विषय में सोच-विचार कर रहे थे किन्तु कोई भी निर्णय कर पाने के पूर्व उन्होंने यह अविलम्ब रूपान्तर देखा।

चतुर्भुजाः शङ्खचक्रगदाराजीवपाणयः ।
किरीटिनः कुण्डलिनो हारिणो वनमालिनः ॥ ४७॥
श्रीवत्साङ्गददोरत्नकम्बुकङ्कणपाणयः ।
नूपुरैः कटकैर्भाताः कटिसूत्राङ्गुलीयकैः ॥ ४८॥

शब्दार्थ

चतुः-भुजाः—चार भुजाओं वाले; शङ्ख-चक्र-गदा-राजीव-पाण-यः—अपने हाथों में शंख, चक्र, गदा तथा कमल का फूल धारण किये; किरीटिनः—अपने सिरों पर मुकुट पहने; कुण्डलिनः—कानों में कुण्डल पहने; हारिणः—मोती के हार पहने; वन-मालिनः—जंगल के फूलों की मालाएँ पहने; श्रीवत्स-अङ्गद-दो-रत्न-कम्बु-कङ्कण-पाणयः—अपने वक्षस्थलों में लक्ष्मी का चिह्न, भुजाओं में बाजूबन्द, गलों में कौस्तुभ मणि, जिसमें शंख जैसी तीन रेखाएँ अंकित थीं तथा हाथों में कंगन पहने हुए; नूपुरैः—पाँवों में घुंघुरू से युक्त; कटकैः—टखनों में चूड़ों से युक्त; भाताः—सुन्दर लग रहे थे; कटि-सूत्र-अङ्गुली-यकैः—कमर में पवित्र करधनी तथा अंगुलियों में अँगूठियों समेत।

इन सबों के चार हाथ थे जिनमें शंख, चक्र, गदा तथा कमल धारण किये थे। वे अपने सिरों पर मुकुट पहने थे, उनके कानों में कुंडल और गलों में जंगली फूलों के हार थे। उनके वक्षस्थलों के दाहिनी ओर के ऊपरी भाग में लक्ष्मी का चिन्ह था। वे अपनी बाहों में बाजूबन्द, शंख जैसी तीन रेखाओं से अंकित गलों में कौस्तुभ मणि तथा कलाइयों में कंगन पहने थे। उनके टखनों में पायजेब थीं, पाँवों में आभूषण और कमर में पवित्र करधनी थी। वे सभी अत्यन्त सुन्दर लग रहे थे।

तात्पर्य : सभी विष्णु रूपों के चार हाथ थे जिनमें शंख, चक्र आदि थे किन्तु ये लक्षण उनमें भी पाये जाते हैं जिन्होंने वैकुण्ठ में सारूप्य मुक्ति प्राप्त की है और जिनके रूप भगवान् जैसे ही हैं। किन्तु ब्रह्मा के समक्ष विष्णु के जो रूप प्रकट हुए थे उनमें श्रीवत्स का चिह्न तथा कौस्तुभ मणि भी थे, जो

केवल भगवान् के विशेष लक्षण हैं। इससे सिद्ध है कि ये सारे बालक तथा बछड़े यथार्थ में भगवान् विष्णु के अंश थे, केवल उनके वैकुण्ठ संगी नहीं। विष्णु स्वयं कृष्ण में समाहित हैं। विष्णु के सारे ऐश्वर्य कृष्ण में पहले से विद्यमान हैं फलतः इतने विष्णु-रूपों का प्रदर्शन कृष्ण के लिए कोई आश्चर्यजनक कार्य नहीं था।

वैष्णव तोषणी में श्रीवत्स चिह्न को भगवान् विष्णु के वक्षस्थल की दाहिनी ओर के ऊपरी भाग में सुन्दर पीले बालों का छल्ला (कुंचन) बतलाया गया है। यह चिह्न साधारण भक्तों के लिए नहीं है। यह विष्णु या कृष्ण का विशेष चिह्न है।

आङ्घ्रिमस्तकमापूर्णास्तुलसीनवदामभिः ।
कोमलैः सर्वगात्रेषु भूरिपुण्यवदर्पितैः ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ

आ-अङ्घ्रि-मस्तकम्—पाँव से लेकर सिर तक; **आपूर्णाः**—पूरी तरह सजा; **तुलसी-नव-दामभिः**—तुलसी की ताजी पत्तियों से बने हारों से; **कोमलैः**—कोमल; **सर्व-गात्रेषु**—पूरे शरीर में; **भूरि-पुण्यवत्-अर्पितैः**—पुण्यकर्मों में लगे भक्तों द्वारा अर्पित किये गये।

पाँव से लेकर सिर तक उनके शरीर के सारे अंग तुलसी दल से बने ताजे मुलायम हारों से पूरी तरह सज्जित थे जिन्हें पुण्यकर्मों (श्रवण तथा कीर्तन) द्वारा भगवान् की पूजा में लगे भक्तों ने अर्पित किया था।

तात्पर्य : *भूरि-पुण्यवद्-अर्पितै*—यह इस श्लोक का महत्त्वपूर्ण पद है। विष्णु के इन रूपों की पूजा उन भक्तों द्वारा की गई थी जिन्होंने अनेक जन्मों तक पुण्यकर्म (*सुकृतिभिः*) किये थे और जो भक्ति में निरन्तर लगे हुए थे (*श्रवणं कीर्तनं विष्णोः*)। भक्ति उन लोगों द्वारा की जाती है जिन्होंने अत्यन्त उच्च कोटि के पुण्यकर्म किये हों। *श्रीमद्भागवत* में अन्यत्र भी (. १२.११) पुण्यकर्मों के संचय का उल्लेख हुआ है जहाँ शुकदेव गोस्वामी कहते हैं—

इत्थं सतां ब्रह्मसखानुभूत्या

दास्यं गतानां परदैवतेन।

मायाश्रितानां नरदारकेण

साकं विजह्रुः कृतपुण्यपुञ्जाः ॥

“जो लोग भगवान् के ब्रह्मतेज की अनुभूति करते हुए आत्म-साक्षात्कार में लगे हैं और जो लोग

भगवान् को स्वामी मान कर भक्ति में लगे हुए हैं तथा वे लोग जो भगवान् को सामान्य व्यक्ति मानते हुए माया के वशीभूत हैं, वे यह नहीं समझ सकते कि पुण्यकर्म संचित किये हुए ऐसे कुछ महापुरुष हैं, जो भगवान् के साथ ग्वालबालों के रूप में मित्र बनकर खेल रहे हैं।''

वृन्दावन के हमारे कृष्ण-बलराम मन्दिर में एक तमाल वृक्ष है, जो आँगन के पूरे एक कोने में छाया हुआ है। जब तक मन्दिर नहीं बना था, यह वृक्ष उपेक्षित रहता था किन्तु अब इसकी इतनी बाढ़ हो गई है कि इसने आँगन के पूरे कोने को घेर लिया है। यह *भूरिपुण्य* कहलाता है।

चन्द्रिकाविशदस्मेरैः सारुणापाङ्गवीक्षितैः ।
स्वकार्थानामिव रजःसत्त्वाभ्यां स्रष्टृपालकाः ॥५०॥

शब्दार्थ

चन्द्रिका-विशद-स्मेरैः—पूर्ण वर्द्धमान चन्द्रमा की तरह शुद्ध मुसकान से; स-अरुण-अपाङ्ग-वीक्षितैः—अपनी लाल-लाल आँखों की स्वच्छ चितवन से; स्वक-अर्थानाम्—अपने भक्तों की इच्छाओं के; इव—सदृश; रजः-सत्त्वाभ्याम्—रजो तथा सतो गुणों से; स्रष्टृ-पालकाः—स्रष्टा तथा पालनकर्ता थे।.

वे विष्णु रूप जो चंद्रमा के बढ़ते हुए प्रकाश के तुल्य थे, अपनी शुद्ध मुस्कान तथा अपनी लाल-लाल आँखों की तिरछी चितवन के द्वारा, अपने भक्तों की इच्छाओं को, मानो रजोगुण एवं तमोगुण से, उत्पन्न करते तथा पालते थे।

तात्पर्य : ये विष्णुस्वरूप पूर्ण चन्द्रमा के बढ़ते हुए प्रकाश के समान अपनी निर्मल कटाक्षों तथा मुसकानों से भक्तों को आशीर्वाद दे रहे थे (*श्रेयःकैरवचन्द्रिकावितरणम्*)। पालनकर्ताओं के रूप में वे अपने भक्तों पर कटाक्ष कर रहे थे और उनका आलिंगन कर रहे थे और अपनी मुसकान से उनकी रक्षा कर रहे थे। उनकी हँसी सतो गुण के तुल्य भक्तों की समस्त इच्छाओं को पूर्ण करने वाली थी और उनके कटाक्ष रजोगुण के समान थे। वस्तुतः इस श्लोक में आया हुआ *रजः* शब्द ''काम'' का नहीं अपितु ''स्नेह'' का सूचक है। भौतिक जगत में रजोगुण काम का सूचक है किन्तु आध्यात्मिक जगत में यही स्नेह होता है। भौतिक जगत में रजोगुण तथा तमोगुण से स्नेह कलुषित होता है किन्तु *शुद्ध सत्त्व* में भक्तों को पालन करने वाला स्नेह दिव्य होता है।

स्वकार्थानाम् सूचक है महती इच्छाओं का। जैसाकि इस श्लोक में उल्लेख है, भगवान् विष्णु की चितवन भक्तों में इच्छाओं को उत्पन्न करने वाली है। किन्तु शुद्ध भक्त में तो कोई इच्छा ही नहीं रहती। इसीलिए सनातन गोस्वामी की टीका है कि जिन भक्तों का ध्यान कृष्ण में लगा है ऐसे भक्तों की

इच्छाएँ पहले से पूरी हुई रहती हैं। अत: उनमें भगवान् के कटाक्षों से कृष्ण तथा भक्ति के प्रति तरह-तरह की इच्छाएँ उत्पन्न होती हैं। भौतिक जगत में इच्छा तो रजोगुण तथा तमोगुण की उपज होती है किन्तु आध्यात्मिक जगत में इच्छा से तरह-तरह की शाश्वत दिव्य भक्ति उत्पन्न होती है। इस प्रकार *स्वकार्थानाम्* शब्द कृष्ण की सेवा करने की उत्सुकता को प्रदर्शित करता है।

वृन्दावन में एक स्थान है जहाँ पर कोई मन्दिर नहीं था किन्तु एक भक्त ने चाहा कि यहाँ एक मन्दिर हो जाय और सेवा हो। अतएव जो कभी वीरान स्थान था वही अब तीर्थस्थान बन गया है। भक्तों की इच्छाएँ ऐसी ही होती हैं।

आत्मादिस्तम्बपर्यन्तैर्मूर्तिमद्भिश्चराचरैः ।
नृत्यगीताद्यनेकार्हैः पृथक्पृथगुपासिताः ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ

आत्म-आदि-स्तम्ब-पर्यन्तैः—ब्रह्मा से लेकर क्षुद्र जीव तक; **मूर्ति-मद्भिः**—वही रूप धारण करके; **चर-अचरैः**—चल तथा अचल प्राणियों द्वारा; **नृत्य-गीत-आदि-अनेक-अर्हैः**—पूजा के विविध साधनों द्वारा, यथा नाच और गाने से; **पृथक् पृथक्**—अलग अलग; **उपासिताः**—पूजित होकर।

चतुर्मुख ब्रह्मा से लेकर क्षुद्र से क्षुद्र जीव, चाहे वे चर हों या अचर, सबों ने स्वरूप प्राप्त कर रखा था और वे अपनी अपनी क्षमताओं के अनुसार नाच तथा गायन जैसी पूजा विधियों से उन विष्णु मूर्तियों की अलग अलग पूजा कर रहे थे।

तात्पर्य : असंख्य जीव अपनी अपनी शक्तियों तथा कर्म के अनुसार पुरुषोत्तम की विभिन्न प्रकार की उपासना में लगे हुए हैं—हर प्राणी व्यस्त है (*जीवेर 'स्वरूप' हय—कृष्णेर नित्यदास*)। कोई ऐसा नहीं मिलेगा जो सेवा न कर रहा हो। इसलिए जो *महाभागवत* है, वह हर एक को कृष्ण-भक्ति में लगा हुआ देखता है—केवल अपने को ही वह उसमें नहीं लगा हुआ पाता। हमें अपने को निम्न पद से उच्च पद तक उठाना होगा और उच्च पद वह है, जिसमें वृन्दावन में प्रत्यक्ष सेवा की जाती है। लेकिन हर व्यक्ति सेवा में लगा हुआ है। भगवान् की सेवा का निषेध करना ही *माया* है।

एकले ईश्वर कृष्ण, आर सब भृत्य।

यारे यैछे नाचाय, से तैछे करे नृत्य॥

''केवल कृष्ण सर्वोच्च प्रभु हैं, शेष सभी लोग उनके दास हैं। कृष्ण जैसा चाहते हैं उसी के अनुसार हर व्यक्ति नाचता है।'' (*चैतन्य चरितामृत आदि* ५.१४२)।

जीव दो प्रकार के हैं—चर तथा अचर। उदाहरणार्थ, वृक्ष एक स्थान पर खड़े रहते हैं जबकि चींटियाँ चलती-फिरती हैं। ब्रह्मा ने देखा कि क्षुद्र से क्षुद्र प्राणी भी विभिन्न रूप धारण करके भगवान् विष्णु की सेवा में लगे हुए हैं।

जो जिस विधि से भगवान् की पूजा करता है, उसी के अनुसार उसे रूप मिलता है। भौतिक जगत में जीव को जो शरीर मिलता है, वह देवताओं द्वारा नियंत्रित होता है। इसी को कभी कभी नक्षत्रों का प्रभाव कहा जाता है। *भगवद्गीता* (३.२७) में इसे ही *प्रकृते: क्रियमाणानि* शब्दों के द्वारा सूचित किया गया है, जिसका अर्थ है कि प्रकृति के नियमानुसार प्राणी का नियंत्रण देवताओं द्वारा होता है।

सारे जीव कृष्ण की सेवा विविध प्रकारों से करते हैं किन्तु जब वे कृष्णभावनाभावित रहते हैं, तो उनकी सेवा पूरी तरह प्रकट होती है। जिस प्रकार कली में छिपा फूल क्रमश: खिल कर अपनी सुगन्ध तथा सुन्दरता बिखेरता है उसी तरह जब जीव कृष्णभावनामृत पद तक पहुँच जाता है, तो उसके असली स्वरूप का सौन्दर्य पूरी तरह खिल उठता है। यही चरम सौन्दर्य तथा चरम इच्छापूर्ति है।

अणिमाद्यैर्महिमभिरजाद्याभिर्विभूतिभि: ।
चतुर्विंशतिभिस्तत्त्वै: परीता महदादिभि: ॥ ५२ ॥

शब्दार्थ

अणिमा-आद्यै:—अणिमा इत्यादि; **महिमभि:**—महिमा आदि; **अजा-आद्याभि:**—अजा आदि; **विभूतिभि:**—शक्तियों से; **चतु:-विंशतिभि:**—चौबीस; **तत्त्वै:**—जगत की सृष्टि के तत्त्वों द्वारा; **परीता:**—(सारी विष्णु मूर्तियाँ) घिरी हुई; **महत्-आदिभि:**—महत् तत्त्व इत्यादि से।.

वे सारी विष्णु मूर्तियाँ अणिमा इत्यादि सिद्धियों, अजा इत्यादि योगसिद्धियों तथा महत तत्त्व आदि सृष्टि के २४ तत्त्वों से घिरी हुई थीं।

तात्पर्य : इस श्लोक में आये *महिमभि:* शब्द का अर्थ *ऐश्वर्य* है। भगवान् जो चाहे सो कर सकता है। यही उसका ऐश्वर्य है। उस पर कोई आज्ञा नहीं चला सकता है किन्तु वह हर एक को आज्ञा दे सकता है। *षड्ऐश्वर्य पूर्णम्*—भगवान् छहों ऐश्वर्यों से पूर्ण हैं। योगसिद्धियाँ—जिनके अन्तर्गत अणिमा या महिमा सिद्धि आती हैं विष्णु में उपस्थित रहती हैं। *षड् ऐश्वर्यै पूर्णो य इह भगवान्* (*चैतन्य-चरितामृत आदि* १.३)। *अजा* का अर्थ है माया। समस्त मायामय वस्तुएँ विष्णु में निहित होती हैं।

जिन २४ तत्त्वों का उल्लेख हुआ है वे हैं—पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच महाभूत, पाँच तन्मात्रा, मन, अहंकार, महत् तत्त्व तथा प्रकृति। इस भौतिक जगत की अभिव्यक्ति में इन सारे चौबीस

तत्त्वों का प्रयोग हुआ है। महत् तत्त्व के भी विभिन्न सूक्ष्म विभाग किये जाते हैं किन्तु मूल रूप से इसे महत् तत्त्व कहा जाता है।

कालस्वभावसंस्कारकामकर्मगुणादिभिः ।
स्वमहिध्वस्तमहिभिर्मूर्तिमद्भिरुपासिताः ॥ ५३ ॥

शब्दार्थ

काल—समय; स्वभाव—स्वभाव; संस्कार—संस्कार; काम—इच्छा; कर्म—सकाम कर्म; गुण—तीन गुण; आदिभिः—इत्यादि के द्वारा; स्व-महि-ध्वस्त-महिभिः—जिसकी स्वतंत्रता भगवान् की शक्ति के अधीन थी; मूर्ति-मद्भिः—स्वरूप वाली; उपासिताः—पूजित हो रहे थे।

तब भगवान् ब्रह्मा ने देखा कि काल, स्वभाव, संस्कार, काम, कर्म तथा गुण—ये सभी अपनी स्वतंत्रता खो कर पूर्णतया भगवान् की शक्ति के अधीन होकर स्वरूप धारण किये हुए थे और उन विष्णु मूर्तियों की पूजा कर रहे थे।

तात्पर्य : केवल विष्णु को स्वतंत्रता प्राप्त है। यदि हममें यह चेतना जागृत हो सके तो हम यथार्थ में कृष्णभावनाभावित हैं। हमें सदैव स्मरण रखना चाहिए कि कृष्ण ही एकमात्र परम स्वामी हैं और अन्य हर व्यक्ति उनका दास है (*एकले ईश्वर कृष्ण, आर सब भृत्य*)। चाहे कोई नारायण हो या शिवजी, प्रत्येक जीव कृष्ण के अधीन है (*शिवविरिञ्चिनुतम्*)। यहाँ तक कि बलदेव भी कृष्ण के अधीन हैं। यह तथ्य है।

एकले ईश्वर कृष्ण, आर सब भृत्य।
यारे यैछे नाचाय, से तैछे करे नृत्य॥

(*चैतन्य-चरितामृत आदि* ५.१४२)

मनुष्य को यह समझना चाहिए कि कोई भी स्वतंत्र नहीं है क्योंकि हर कोई कृष्ण का अंश है और कृष्ण की इच्छानुसार काम करता और चलता-फिरता है। यही समझ या चेतना कृष्णभावनामृत है।

यस्तु नारायणं देवं ब्रह्मरुद्रादिदैवतै।
समत्वेनैव वीक्षेत स पाषण्डी भवेद् ध्रुवम्॥

"जो व्यक्ति ब्रह्मा तथा शिव जैसे देवताओं को नारायण के समकक्ष मानता है, वह निश्चित रूप से अपराधी समझा जाना चाहिए।" नारायण या कृष्ण की समता कोई भी नहीं कर सकता। कृष्ण ही नारायण हैं और नारायण ही कृष्ण हैं क्योंकि कृष्ण आदि नारायण हैं। कृष्ण को स्वयंब्रह्मा *नारायणस्त्वं*

न हि सर्वदेहिनाम् कह कर सम्बोधित करते हैं जिसका अर्थ है कि तुम नारायण भी हो, तुम्हीं आदि नारायण हो (*भागवत* .१४.१४)।

काल के अनेक सहायक हैं यथा स्वभाव, संस्कार, काम, कर्म तथा गुण। *स्वभाव* भौतिक गुणों के मेल के अनुसार बनता है। *कारणं गुण-संगोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु* (*भगवद्गीता* १३.२२)। *सत्* तथा *असत्* स्वभाव का निर्माण विभिन्न गुणों—सत्त्व गुण, रजोगुण तथा तमो गुण—के मेल से होता है। हमें क्रमश: सत्त्व गुण प्राप्त करना चाहिए जिससे दो निम्न गुणों से बचा जा सके। यदि हम श्रीमद्भागवत का नित्य मनन करें और कृष्ण के कार्यकलापों को सुनें तो ऐसा हो सकता है। *नष्ट प्रायेष्वभद्रेषु नित्यं भागवतसेवया* (*भागवत* १.२.१८)। *श्रीमद्भागवत* में वर्णित कृष्ण की पूतना सम्बन्धी लीला से लेकर सारी लीलाएँ दिव्य हैं। अतएव *श्रीमद्भागवत* पर विचार-विमर्श करने तथा इसका श्रवण करने से रजो तथा तमो गुणों का दमन हो जाता है और एकमात्र सत्त्वगुण बच रहता है। तब रजो तथा तमोगुण हमें हानि नहीं पहुँचा पाते।

इसीलिए *वर्णाश्रम धर्म* अनिवार्य है क्योंकि इससे लोग सत्त्व गुण प्राप्त कर सकते हैं। *तदा रजस्तमोभावा: कामलोभादयश्च ये* (*भागवत* १.२.१९)। तमोगुण तथा रजोगुण काम तथा लोभ को बढ़ाने वाले हैं जिससे जीव इस तरह बँध जाता है कि उसे अनेकानेक रूपों में इस जगत में रहना पड़ता है। यह बहुत ही घातक है। इसलिए वर्णाश्रम धर्म की स्थापना करके मनुष्य को सत्त्व गुण प्राप्त कराना होगा। उसमें शुद्ध तथा स्वच्छ रहने, प्रात:काल जल्दी उठने तथा मंगल आरात्रिक देखने जैसे ब्राह्मण-गुणों को विकसित करना होगा। इस तरह सत्त्व गुण प्राप्त होने पर मनुष्य तमोगुण तथा रजोगुण द्वारा प्रभावित नहीं हो सकेगा।

तदा रजस्तमोभावा: कामलोभादयश्च ये।
चेत एतैरनाविद्धं स्थितं सत्त्वे प्रसीदति॥

(*भागवत* १.२.१९)

इस शुद्धि का सुअवसर मानव जीवन का विशेष अंग है, दूसरे जीवनों में यह सम्भव नहीं। ऐसी शुद्धि *राधा-कृष्ण भजन* द्वारा भी आसानी से प्राप्त की जा सकती है। इसीलिए नरोत्तमदास ठाकुर ने गाया है—*हरि हरि विफले जन्म गँवाइनु*—जिसका अर्थ है कि जब तक राधा-कृष्ण की पूजा नहीं की

जाती यह मनुष्य-जीवन व्यर्थ हो जाता है। *वासुदेवे भगवति भक्ति-योग:प्रयोजित: जनयत्याशु वैराग्यम्* (*भागवत* १.२.७)। वासुदेव की सेवा में लगने पर मनुष्य को इस भौतिक जीवन से शीघ्र ही विरक्ति हो जाती है। उदाहरणार्थ, कृष्णभावनामृत आन्दोलन के सदस्य वासुदेव-भक्ति में लगे रहने से तुरन्त ही अच्छे वैष्णव बन जाते हैं—यहाँ तक कि लोगों को यह देख कर आश्चर्य होता है कि म्लेच्छ तथा यवन इस अवस्था को प्राप्त हो सके हैं। यह वासुदेव-भक्ति से सम्भव है। किन्तु यदि हम इस मनुष्य जीवन में सत्त्व गुण प्राप्त नहीं कर पाते तो जैसाकि नरोत्तमदास ठाकुर गाते हैं—*हरि हरि विफले जन्म गँवाइनु*—तो इस मनुष्य जीवन को प्राप्त करने से कोई लाभ नहीं है।

श्री वीरराघव आचार्य की टीका है कि इस श्लोक के प्रथम पद में उल्लिखित एक एक बात भवबन्धन की कारण है। काल प्रकृति के गुणों को क्षुब्ध करता है और स्वभाव इन गुणों के मेल का प्रतिफल होता है। इसलिए नरोत्तमदास ठाकुर कहते हैं— *भक्तसने वास।* यदि भक्तों की संगति की जाती है, तो मनुष्य का स्वभाव बदल जाता है। हमारा कृष्णभावनामृत आन्दोलन लोगों को सत्संगति प्रदान करने के हेतु है, जिससे यह परिवर्तन आ सके और हम देख रहे हैं कि इस विधि से सारे विश्व के लोग धीरे-धीरे भक्त बन रहे हैं।

जहाँ तक *संस्कार* का सम्बन्ध है यह अच्छी संगति से संभव है, क्योंकि अच्छी संगति से अच्छी आदतें बनती हैं और आदत ही द्वितीय स्वभाव बन जाती है। इसलिए *भक्तसने वास*—लोगों को भक्तों के साथ रहने का अवसर मिलना चाहिए। तभी उनकी आदतें बदलेंगी। मनुष्य जीवन में यह अवसर मिलता है किन्तु नरोत्तमदास ठाकुर गाते हैं—*हरि हरि विफले जनम गँवाइनु*—यदि लोग इस अवसर का लाभ उठाने में विफल रहते हैं, तो उनका मनुष्य-जीवन व्यर्थ जाता है। इसलिए मानव समाज को नीचे जाने से बचाने का और लोगों को वास्तव में ऊपर उठाने का हम प्रयास कर रहे हैं।

जहाँ तक काम तथा कर्म की बात है, यदि मनुष्य अपने को भक्ति में लगाता है, तो उसका स्वभाव इन्द्रिय-भोग में अपने को लगाने से बने स्वभाव की अपेक्षा भिन्न होता है। इसका परिणाम भी निस्संदेह भिन्न होता है। मनुष्य को विभिन्न स्वभावों की संगति के अनुसार ही विशेष प्रकार का शरीर प्राप्त होता है। *कारणं गुणसंगोऽस्य सदसद्योनि जन्मसु* (*भगवद्गीता* १३.२२)। इसलिए हमें अच्छी संगति—भक्तों की संगति—खोजनी चाहिए। तभी हमारा जीवन सार्थक होगा। मनुष्य की पहचान उसकी संगति से

होती है। यदि मनुष्य को भक्तों की सत्संगति में रहने का अवसर मिलता है, तो वह ज्ञान का अनुशीलन करने में समर्थ होता है और उसका चरित्र अथवा स्वभाव भी उसी के अनुसार उसके स्थायी लाभ के लिए बदल जाता है।

सत्यज्ञानानन्तानन्दमात्रैकरसमूर्तयः ।
अस्पृष्टभूरिमाहात्म्या अपि ह्युपनिषद्दृशाम् ॥ ५४॥

शब्दार्थ

सत्य—शाश्वत; ज्ञान—ज्ञान से युक्त; अनन्त—असीम; आनन्द—आनन्द से पूर्ण; मात्र—केवल; एक-रस—सदैव स्थित; मूर्तयः—स्वरूप; अस्पृष्ट-भूरि-माहात्म्याः—जिसकी महती महिमा छू तक नहीं जाती; अपि—भी; हि—क्योंकि; उपनिषत्-दृशाम्—उपनिषदों का अध्ययन करने वाले ज्ञानियों द्वारा।

वे समस्त विष्णु मूर्तियाँ शाश्वत, असीम स्वरूपों वाली, ज्ञान तथा आनन्द से पूर्ण एवं काल के प्रभाव से परे थीं। उपनिषदों के अध्ययन में रत ज्ञानीजन भी उनकी महती महिमा का स्पर्श तक नहीं कर सकते थे।

तात्पर्य : केवल शास्त्र-ज्ञान से भगवान् को समझने में सहायता नहीं मिल सकती। जिस पर भगवान् की कृपा होती है, वही उन्हें समझ पाता है। उपनिषदों में (*मुण्डक उपनिषद* ३.२.३) भी इसकी व्याख्या की गई है—

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो

न मेधसा न बहुना श्रुतेन।

यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष

आत्मा विवृणुते तनुं स्वाम्॥

"परमेश्वर की प्राप्ति न तो दक्ष व्याख्याओं द्वारा, न ही विशाल बुद्धि द्वारा न ही अधिक श्रवण करने से होती है। वे तो उसे प्राप्त होते हैं जिसे वे स्वयं चुनते हैं। ऐसे व्यक्ति को वे अपना स्वरूप प्रदर्शित करते हैं।"

ब्रह्म का एक वर्णन है—*सत्यं ब्रह्म, आनन्दरूपम्*—ब्रह्म परम सत्य तथा पूर्ण आनन्द है। यद्यपि विष्णु अर्थात् परब्रह्म के स्वरूप एक थे किन्तु वे भिन्न भिन्न प्रकार से व्यक्त थे। किन्तु उपनिषदों के अनुयायी ब्रह्म द्वारा प्रकट नाना रूपों को नहीं समझ पाते। इसका अर्थ यह हुआ कि ब्रह्म तथा परमात्मा को केवल भक्ति द्वारा जाना जा सकता है, जिसकी पुष्टि भगवान् ने *श्रीमद्भागवत* (११.१४.२१) में की

है— *भक्त्याहमेकया ग्राह्य:।* ब्रह्म के दिव्य स्वरूप की स्थापना हेतु श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर शास्त्रों से विविध उद्धरण देते हैं। *श्वेताश्वतर उपनिषद* (३.८) में ब्रह्म को *आदित्यवर्णं तमस: परस्तात्*— जिनका स्वरूप सूर्य के समान ज्योतिमान तथा अज्ञान के अंधकार से परे है। *आनन्दमात्रम् अजरं पुराणमेकं सन्तं बहुधा दृश्यमानम्*—ब्रह्म आनन्दपूर्ण हैं, उनमें दुख का लेश नहीं। वे सबसे पुराने होकर भी कभी बूढ़े नहीं होते हैं और एक होते हुए भी अनेक रूपों में अनुभव किये जाते हैं *सर्वे नित्या: शाश्वताश् च देहास् तस्य परात्मन:।* उन परम पुरुष के सभी रूप शाश्वत हैं (*महावराह पुराण*)। परम पुरुष का रूप हाथ-पाँव आदि से युक्त होता है लेकिन उनके हाथ-पाँव भौतिक नहीं होते। भक्तगण जानते हैं कि ब्रह्म अथवा कृष्ण का स्वरूप रंच-भर भी भौतिक नहीं होता प्रत्युत ब्रह्म दिव्य स्वरूप वाले हैं और जब कोई व्यक्ति भक्तिपूर्वक उनमें लीन होता है तभी वह उन्हें समझ सकता है (*प्रेमाञ्जनच्छुरितभक्तिविलोचनेन*)। किन्तु मायावादी इस दिव्य रूप को नहीं समझ सकते क्योंकि वे इसे भौतिक मानते हैं।

भगवान् के साकार दिव्य रूप इतने महान् हैं कि उपनिषदों के निर्विशेष अनुयायी उन्हें समझने के लिये ज्ञान के उस पद तक पहुँच नहीं सकते। विशेष रूप से भगवान् के दिव्य रूप उन निर्विशेषवादियों की पहुँच के परे होते हैं, जो उपनिषदों के अध्ययन के द्वारा इतना ही समझ पाते हैं कि परब्रह्म पदार्थ नहीं है और वह सीमित शक्ति द्वारा बँधा नहीं है।

यद्यपि कृष्ण का दर्शन उपनिषदों के माध्यम से नहीं किया जा सकता किन्तु कहीं कहीं ऐसा कहा गया है कि इस विधि से वस्तुत: कृष्ण को जाना जा सकता है। *औपनिषदं पुरुषम्*—वह उपनिषदों के द्वारा जाना जाता है। इसका अर्थ यह हुआ कि वैदिक ज्ञान से शुद्ध होने पर मनुष्य को भक्ति ज्ञान में प्रविष्ट होने दिया जाता है (*मद्भक्तिं लभते पराम्*)।

तच्छ्रद्दधाना मुनयो ज्ञान वैराग्ययुक्तया।
पश्यन्त्यात्मनि चात्मानं भक्त्या श्रुतगृहीतया॥

''एक जिज्ञासु अथवा मुनि, जो ज्ञान तथा वैराग्य से भलीभाँति युक्त होता है, वह परब्रह्म की अनुभूति वेदान्त श्रुति से सुनी हुई भक्ति करके करता है।'' (*भागवत* १.२.१२)। *श्रुतगृहीतया* सूचक है वेदान्त ज्ञान का, किसी भावना या अनुभूति का नहीं। *श्रुतगृहीत* गम्भीर ज्ञान होता है।

इस प्रकार ब्रह्मा को लगा कि भगवान् विष्णु सत्य, ज्ञान तथा आनन्द के आगार हैं। वे इन तीन दिव्य स्वरूपों से युक्त हैं और उपनिषदों के अनुयायियों के आराध्य हैं। ब्रह्मा ने अनुभव किया कि गौवों, बछड़ों तथा लड़कों को जो विष्णु रूप प्राप्त हुए हैं, वे किसी योगी या देवता में निहित विशेष शक्ति के प्रदर्शन नहीं हैं। विष्णु मूर्तियों के रूप में ये गौवें, बछड़े तथा बालक विष्णु-माया के प्रदर्शन न होकर साक्षात् विष्णु हैं। विष्णु तथा विष्णु माया के क्रमिक गुण अग्नि तथा उष्मा जैसे हैं। उष्मा में अग्नि का गुणहै किन्तु वह अग्नि नहीं है। बछड़ों, गौवों तथा बालकों के रूप में विष्णु स्वरूपों की अभिव्यक्ति उष्मा के तुल्य नहीं अपितु अग्नि के तुल्य थी—वे सचमुच विष्णु थे। यथार्थरूप में विष्णु तो सच्चिदानन्द विग्रह हैं। दूसरा उदाहरण भौतिक पदार्थों से दिया जा सकता है, जो कई रूपों में प्रतिबिम्बित होते हैं। इसी तरह सूर्य अनेक जलपात्रों में प्रतिबिम्बित होता है किन्तु पात्रों में दिखने वाले प्रतिबिम्ब सूर्य नहीं होते। इन प्रतिबिम्बों में सूर्य का वास्तविक प्रकाश तथा उष्मा नहीं रहते यद्यपि यह सूर्य की भाँति ही दिखाई देता है। किन्तु कृष्ण ने जितने सारे स्वरूप धारण कर रखे थे वे सबके सब विष्णु थे।

हमें चाहिए कि यथासम्भव हम प्रतिदिन *श्रीमद्भागवत* के बारे में चर्चा करें जिससे हर बात स्पष्ट हो सके क्योंकि *भागवत* समस्त वैदिक वाङ्मय का सार है (*निगमकल्पतरोर्गलितं फलम्*)। इसे व्यासदेव ने तब लिखा जब वे आत्मज्ञान प्राप्त कर चुके थे (*महामुनिकृते*)। अत: हम *भागवत* का जितना ही अध्ययन करेंगे, ज्ञान उतना ही स्पष्ट होता जायेगा। इसका प्रत्येक श्लोक दिव्य है।

एवं सकृद्ददर्शाजः परब्रह्मात्मनोऽखिलान् ।
यस्य भासा सर्वमिदं विभाति सचराचरम् ॥ ५५ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; सकृत्—एक ही साथ; ददर्श—देखा; अजः—ब्रह्मा ने; पर-ब्रह्म—परम सत्य के; आत्मनः—अंश; अखिलान्—सारे बछड़ों तथा बालकों को.; यस्य—जिसके; भासा—प्रकट होने से; सर्वम्—सभी; इदम्—यह; विभाति—व्यक्त है; स-चर-अचरम्—जो कुछ भी चर तथा अचर है।

इस प्रकार भगवान् ब्रह्मा ने परब्रह्म को देखा जिसकी शक्ति से यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड सारे चर तथा अचर प्राणियों समेत व्यक्त होता है। उन्होंने उसी के साथ ही सारे बछड़ों तथा बालकों को भगवान् के अंशों के रूप में देखा।

तात्पर्य : इस घटना से ब्रह्माजी यह देख सके कि किस तरह कृष्ण सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का नाना

प्रकार से भरण करते हैं। चूँकि वे हर वस्तु को प्रकट करते हैं इसलिए हर वस्तु दिखती है।

ततोऽतिकुतुकोद्वृत्यस्तिमितैकादशेन्द्रियः ।
तद्धाम्नाभूदजस्तूष्णीं पूर्देव्यन्तीव पुत्रिका ॥ ५६ ॥

शब्दार्थ

ततः—तब; अतिकुतुक-उद्वृत्य-स्तिमित-एकादश-इन्द्रियः—जिनकी ग्यारह इन्द्रियाँ आश्चर्य के कारण क्षुब्ध हो चुकी थीं और दिव्य आनन्द के कारण स्तम्भित हो गई थीं; तद्-धाम्ना—उन विष्णु मूर्तियों के तेज से; अभूत्—हो गया; अजः—ब्रह्मा; तूष्णीम्—मौन; पूः-देवी-अन्ति—ग्राम्य देवता की उपस्थिति में; इव—जिस तरह; पुत्रिका—बच्चे द्वारा बनाया गया मिट्टी का खिलौना।

तब उन विष्णु मूर्तियों की तेज शक्ति से ब्रह्मा की ग्यारहों इन्द्रियाँ आश्चर्य से क्षुब्ध तथा दिव्य आनन्द से स्तब्ध हो चुकी थीं अतः वे मौन हो गये मानो ग्राम्य देवता की उपस्थिति में किसी बच्चे की मिट्टी की बनी गुड़िया हो।

तात्पर्य : दिव्य आनन्द से ब्रह्मा स्तब्ध थे (*मुह्यन्ति यत् सूरयः*)। आश्चर्यचकित होने से उनकी सारी इन्द्रियाँ स्तब्ध हो गई थीं और वे कुछ भी कह पाने में असमर्थ थे। ब्रह्मा ने अपने आपको एकमात्र शक्तिमान देवता मान कर सर्वोच्च समझ रखा था किन्तु उनका वह गर्व अब चूर-चूर हो गया और वे पुनः मात्र एक देवता रह गये। अतः ब्रह्मा कभी ईश्वर—कृष्ण या नारायण—की समता नहीं कर सकते। नारायण की तुलना ब्रह्मा तथा शिव जैसे देवताओं से भी करना वर्जित है, तो अन्य देवताओं से तुलना तो की ही नहीं जा सकती।

यस्तु नारायणं देवं ब्रह्मरुद्रादिदैवतै।

समत्वेनैव वीक्षेत स पाषण्डी भवेद्ध्रुवम् ॥

"जो व्यक्ति ब्रह्मा तथा शिव जैसे देवताओं को नारायण के समकक्ष मानता है उसे निस्संदेह अपराधी समझना चाहिए।" हमें चाहिए कि नारायण की समता किसी देवता से न करें क्योंकि शंकराचार्य तक ने इसके लिए वर्जित किया है (*नारायणः परोऽव्यक्तात्*)। यही नहीं, वेदों में भी उल्लेख है—*एको नारायण आसीन्न ब्रह्मा नेशानः*—सृष्टि के प्रारम्भ में केवल नारायण थे। ब्रह्मा या शिव का अस्तित्व तक न था—इसीलिए जो भी अपने जीवन के अन्त समय में नारायण का स्मरण करता है उसे जीवन-सिद्धि प्राप्त होती है (*अन्ते नारायणस्मृतिः*)।

इतीरेशेऽतर्क्ये निजमहिमनि स्वप्रमितिके
परत्राजातोऽतन्निरसनमुखब्रह्मकमितौ ।
अनीशेऽपि द्रष्टुं किमिदमिति वा मुह्यति सति
चच्छादाजो ज्ञात्वा सपदि परमोऽजाजवनिकाम् ॥ ५७॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; इरा-ईशे—इरा अर्थात् सरस्वती के स्वामी, ब्रह्मा के; अतर्क्ये—परे; निज-महिमनि—अपनी महिमा; स्व-प्रमितिके—स्वतः व्यक्त तथा आनन्दमय के; परत्र—परे; अजातः—भौतिक शक्ति (प्रकृति); अतत्—अप्रासंगिक; निरसन-मुख—अप्रासंगिक के परित्याग द्वारा; ब्रह्मक—वेदान्त द्वारा; मितौ—ज्ञानवान; अनीशे—असमर्थ होने से; अपि—भी; द्रष्टुम्—देखने के लिए; किम्—क्या; इदम्—यह; इति—इस प्रकार; वा—अथवा; मुह्यति सति—मोहित होकर; चच्छाद—हटा दिया; अजः—भगवान् कृष्ण ने; ज्ञात्वा—जान कर; सपदि—तुरन्त; परमः—सर्वश्रेष्ठ; अजा-जवनिकाम्—माया का पर्दा।

परब्रह्म मानसिक तर्क के परे है। वह स्वतः व्यक्त, अपने ही आनन्द में स्थित तथा भौतिक शक्ति के परे है। वह वेदान्त के द्वारा अप्रासंगिक ज्ञान के निरसन करने पर जाना जाता है। इस तरह जिस भगवान् की महिमा विष्णु के सभी चतुर्भुज स्वरूपों की अभिव्यक्ति से प्रकट हुई थी उससे सरस्वती के प्रभु ब्रह्माजी मोहित थे। उन्होंने सोचा, "यह क्या है?" और उसके बाद वे देख भी नहीं पाये। तब भगवान् कृष्ण ने ब्रह्मा की स्थिति समझते हुए तुरन्त ही अपनी योगमाया का परदा हटा दिया।

तात्पर्य : ब्रह्मा पूरी तरह मोहित थे। वे यह समझ नहीं पाये कि वे क्या देख रहे हैं और उसके बाद तो वे देख भी नहीं सके। तब भगवान् कृष्ण ने ब्रह्मा की स्थिति समझ कर उस योगमाया के आवरण को हटा लिया। इस श्लोक में ब्रह्मा को *इरेश* कहा गया है। *इरा* का अर्थ है सरस्वती अर्थात् विद्या की देवी और इरेश हुए उनके पति ब्रह्मा। अतः ब्रह्मा अत्यन्त बुद्धिमान हैं। किन्तु सरस्वती-पति ब्रह्मा तक कृष्ण के विषय में मोहग्रस्त हो गये। प्रयास करने पर भी वे कृष्ण को नहीं समझ पाये। प्रारम्भ में बालक, बछड़े तथा स्वयं कृष्ण योगमाया द्वारा आच्छादित थे। इस योगमाया ने बछड़ों तथा बालकों की दूसरी जोड़ी प्रकट कर दी थी जो कृष्ण के अंश थे और इसके बाद उसने अनेक चतुर्भुज रूप दिखलाये। अब ब्रह्मा के मोह को देखते हुए भगवान् कृष्ण ने उस माया को अदृश्य कर दिया। हो सकता है कि कोई यह सोचे कि कृष्ण ने जिस माया को समेट लिया वह *महामाया* रही हो किन्तु श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर की टीका है कि वह *योगमाया* थी—वह शक्ति जिससे कृष्ण कभी प्रकट दिखते हैं और कभी नहीं। जो माया वास्तविकता को आवृत करके अवास्तविक वस्तुएँ दिखलाती है, वह महामाया होती है किन्तु जिस माया से परम सत्य कभी प्रकट दिखते हैं और कभी नहीं वह

योगमाया है। इसलिए इस श्लोक में *अजा* शब्द *योगमाया* का सूचक है।

कृष्ण की शक्ति—उनकी मायाशक्ति या स्वरूपशक्ति—एक है किन्तु विविध रूपों में प्रकट होती है। *परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते* (*श्वेताश्वतर उपनिषद* ६.८)। वैष्णवों तथा मायावादियों में अन्तर यही है कि मायावादी इस माया को एक बतलाते हैं जबकि वैष्णव इसकी विविधता को मान्यता प्रदान करते हैं। विविधता में एकता है। उदाहरणार्थ, एक वृक्ष में अनेक प्रकार की पत्तियाँ, फल तथा फूल लगते हैं। सृष्टि में नाना प्रकार के कार्यों को करने के लिए नाना प्रकार की शक्तियों की आवश्यकता पड़ती है। दूसरा उदाहरण लें। किसी मशीन के सारे अंग लोहे के हो सकते हैं किन्तु मशीन के अन्तर्गत विविध कार्य आते हैं। यद्यपि सारी मशीन लोहे की है किन्तु उसका एक अंग एक प्रकार से चलता है, तो दूसरे अंग दूसरी तरह से। जो मशीन की कार्य-प्रणाली को नहीं समझता वह तब भी कह सकता है कि यह तो लोहा ही है। लोहा होने के बावजूद भी मशीन में विभिन्न अंग होते हैं, जो भिन्न भिन्न ढंग से चल कर उस उद्देश्य को पूरा करते हैं जिसके लिए मशीन बनाई गई थी। एक पहिया इधर घूमता है, तो दूसरा पहिया दूसरी ओर किन्तु वे इस तरह चलते हैं कि मशीन का कार्य चलता रहता है। इसीलिए हम मशीन के विभिन्न अंगों को भिन्न-भिन्न नाम प्रदान करते हैं—यह पहिया है, यह पेंच है, यह धुरी है, यह स्नेहक है, आदि आदि। इसी तरह वेदों में बतलाया गया है—

परास्य शक्तिविविधैव श्रूयते

स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च॥

कृष्ण की शक्ति विविधरूपा है अतएव वही शक्ति विविध प्रकार से कार्य करती है। *विविधा* का अर्थ है ''विविधता।'' विविधता में एकता है। इस तरह योगमाया तथा महामाया एक ही शक्ति के विविध अंग हैं और ये शक्तियाँ अपने अपने विभिन्न ढंगों से कार्य करती हैं। संवित, सन्धिनी तथा आह्लादिनी शक्तियाँ—कृष्ण की अस्तित्व-शक्ति, उनकी ज्ञान-शक्ति तथा उनकी आनंद-शक्ति—योगमाया से पृथक् हैं। इनमें से हर एक व्यष्टि शक्ति है। आह्लादिनी शक्ति राधारानी है। स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने बतलाया है—*राधा कृष्णप्रणयविकृतिर्ह्लादिनी शक्तिरस्मात्* (*चैतन्य-चरितामृत आदि* १.५)। आह्लादिनी शक्ति राधारानी के रूप में प्रकट होती है किन्तु कृष्ण तथा राधारानी एक हैं यद्यपि इनमें से एक शक्तिमान है, तो दूसरी शक्ति है।

ब्रह्मा को कृष्ण के ऐश्वर्य के विषय में (*निजमहिमनि*) मोह था क्योंकि यह ऐश्वर्य *अतर्क्य* अर्थात् अचिन्त्य था। अपनी सीमित इन्द्रियों से कोई अतर्क्य के विषय में तर्क नहीं कर सकता है। इसीलिए वह *अचिन्त्य* भी कहलाता है अर्थात् जो हमारे विचारों तथा तर्कों द्वारा चिन्त्य नहीं है। अचिन्त्य सूचक है उसका जिसको हम सोच नहीं पाते अपितु जिसे स्वीकार करना पड़ता है। श्रील जीव गोस्वामी ने कहा है कि जब तक हम ब्रह्म को अचिन्त्य स्वीकार नहीं कर लेते तब तक ईश्वर की धारणा बन नहीं पाती। इसे अच्छी तरह समझ लेना चाहिए। इसीलिए हम कहते हैं कि शास्त्र के वचनों को बिना किसी परिवर्तन के उसी रूप में मान लिया जाय क्योंकि वे अतर्क्य हैं। *अचिन्त्याः खलु ये भावा न तांस्तर्केण योजयेत्*—जो अचिन्त्य है उसे तर्क द्वारा नहीं जाना जा सकता। सामान्यतया लोग तर्क करते हैं किन्तु हमारी विधि तर्क करने की न होकर वैदिक ज्ञान को यथारूप में स्वीकार कर लेने की है। जब कृष्ण कहते हैं, "यह परा तथा यह अपरा है" तो हम उनके कहे हुए को मान लेते हैं। ऐसा नहीं है कि हम तर्क करें "यह परा क्यों है और वह अपरा क्यों है ?" जो तर्क करता है, उसके लिए ज्ञान नहीं है।

स्वीकार करने का यह पंथ *अवरोहपन्था* कहलाता है। *अवरोह* शब्द का सम्बन्ध *अवतार* शब्द से है, जिसका अर्थ है "जो नीचे आता है।" भौतिकतावादी तर्क के द्वारा अर्थात् *आरोहपन्था* द्वारा हर वस्तु को जानना चाहता है किन्तु दिव्य विषयों को इस तरह से नहीं जाना जा सकता। इसके लिए *अवरोहपन्था* का अनुसरण करना होता है। इसीलिए *परम्परा* पद्धति स्वीकार करनी चाहिए। सर्वश्रेष्ठ परम्परा वह है, जो कृष्ण से आगे की ओर चलती है (*एवं परम्पराप्राप्तम्*)। हमें चाहिए कि कृष्ण जो भी कहते हैं उसे स्वीकार करें (*इमं राजर्षयो विदुः*)। यही *अवरोहपन्था* है।

किन्तु ब्रह्मा ने *आरोहपन्था* ग्रहण किया। वे अपनी सीमित चिन्त्य शक्ति से कृष्ण की माया को समझना चाह रहे थे इसलिए वे स्वयं मोहित हो गये। हर व्यक्ति को अपने ज्ञान में आनन्द आता है। वह सोचता है, "मैं कुछ जानता हूँ।" लेकिन कृष्ण के सामने यह धारणा नहीं चल सकती क्योंकि कृष्ण को प्रकृति की सीमाओं में नहीं बाँधा जा सकता। मनुष्य को समर्पण करना ही होगा। इसका कोई विकल्प नहीं है। *न तांस्तर्केण योजयेत्।* यही समर्पण कृष्णवादियों तथा मायावादियों का अन्तर है।

अतन्-निरसन सूचक है अप्रासंगिक का निराकरण (*अतत्* का अर्थ है "जो तथ्य नहीं है")।

कभी कभी ब्रह्म को *अस्थूलमनण्वह्रस्वमदीर्घम्* कहा जाता है अर्थात् "जो न दीर्घ है, न सूक्ष्म, न छोटा, न लम्बा" (*बृहदारण्यक उपनिषद* ५.८.८)। *नेति नेति*—"यह नहीं है, वह नहीं है" परन्तु वह है क्या? एक कलम का वर्णन करने में कोई कह सकता है कि "यह यह नहीं है; यह वह नहीं है," पर इससे यह ज्ञात नहीं होता है कि कलम है क्या। इसे ही निषेध द्वारा परिभाषा करना कहते हैं। *भगवद्गीता* में कृष्ण ने भी निषेधात्मक परिभाषाएँ देकर आत्मा की व्याख्या की है। *न जायते म्रियते वा*—यह न जन्म लेता है, न मरता है। इससे अधिक और कुछ नहीं समझा जा सकता। किन्तु यह है क्या? यह शाश्वत है। *अजो नित्य: शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे*—यह अजन्मा, शाश्वत, पुरातन, न मरने वाला तथा सनातन है। जब शरीर की हत्या कर दी जाती है, तो इसकी हत्या नहीं होती—(*भगवद्गीता* २.२०)। प्रारम्भ में आत्मा को समझ पाना कठिन है इसीलिए कृष्ण ने निषेधात्मक परिभाषाएँ दी हैं—

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावक:।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुत:॥

"आत्मा को न तो किसी हथियार से खण्ड खण्ड किया जा सकता है, न ही आग में जलाया जा सकता है, न पानी से भिगोया जा सकता है न हवा से सुखाया जा सकता है।" (*भगवद्गीता* २.२३)। कृष्ण कहते हैं, "इसे अग्नि से जलाया नहीं जा सकता।" इसलिए यह कल्पना करनी होती है कि ऐसा क्या है, जो अग्नि से जलता नहीं। यह निषेधात्मक परिभाषा है।

ततोऽर्वाक्प्रतिलब्धाक्ष: क: परेतवदुत्थित:।
कृच्छ्रादुन्मील्य वै दृष्टीराचष्टेदं सहात्मना॥५८॥

शब्दार्थ

तत:—तब; अर्वाक्—बाह्य; प्रतिलब्ध-अक्ष:—चेतना जागृत होने पर; क:—ब्रह्मा; परेत-वत्—मृत व्यक्ति की तरह; उत्थित:—उठ खड़े हुए; कृच्छ्रात्—कठिनाई से; उन्मील्य—खोल कर; वै—निस्सन्देह; दृष्टी:—अपनी आँखें; आचष्ट—देखा; इदम्—इस ब्रह्माण्ड को; सह-आत्मना—अपने सहित।

तब ब्रह्मा की बाह्य चेतना वापस लौटी और वे इस तरह उठ खड़े हुए मानो मृत व्यक्ति जीवित हो उठा हो। बड़ी मुश्किल से अपनी आँखें खोलते हुए उन्होंने अपने सहित ब्रह्माण्ड को देखा।

तात्पर्य : वास्तव में हम मरते नहीं। मृत्यु के समय हम कुछ समय तक निश्चल रहते हैं जैसे नींद

में हों। रात्रि में जब हम सोते हैं, तो हमारे सारे कार्य ठप्प हो जाते हैं किन्तु ज्योंही हम जग जाते हैं, तो हमारी स्मृति तत्क्षण लौट आती है और हम सोचने लगते हैं, ''अरे मैं कहो हूँ? मुझे क्या करना है?'' यह *सुप्तोत्थितन्याय* कहलाता है। मान लीजिये हम मर जाते हैं। ''मरने'' का अर्थ है कुछ काल तक निष्क्रिय रहना और फिर से अपने कार्य चालू कर देना। यह क्रम हमारे कर्म तथा स्वभाव के अनुसार जन्म-जन्मांतर तक चलता रहता है। यदि मनुष्य-जीवन में हम अपने कार्यकलाप आध्यात्मिक जीवन के कार्य से शुरू करें तो हम असली जीवन में लौट आते हैं और सिद्धि प्राप्त करते हैं। अन्यथा कर्म, स्वभाव, प्रकृति इत्यादि के अनुसार तरह-तरह के जीवन तथा कार्य चलते रहते हैं और उसी तरह हमारे जन्म तथा मृत्यु भी चलते हैं। भक्तिविनोद ठाकुर ने बतलाया है—*मायार वशे याच्छ भेसे, खाच्छ हाबुडुब भाइ*—प्यारे भाइयो! तुम माया की लहरों में क्यों बहे चले जा रहे हो? आध्यात्मिक पद को प्राप्त करने पर ही कार्य स्थायी हो सकते हैं। *कृतपुण्यपुञ्जाः*—अनेकानेक जीवन के पुण्यकर्मों के संचित होने पर ही यह अवस्था प्राप्त होती है। *जन्मकोटिसुकृतैर्न लभ्यते* (*चैतन्य-चरितामृत मध्य* ८.७०)। कृष्णभावनामृत आन्दोलन जन्म-मृत्यु के चक्र, *कोटिजन्म,* को रोकना चाहता है। एक जन्म में सब ठीक करके स्थायी जीवन बिताना यही कृष्णभावनामृत है।

सपद्येवाभितः पश्यन्दिशोऽपश्यत्पुरःस्थितम् ।
वृन्दावनं जनाजीव्यद्रुमाकीर्णं समाप्रियम् ॥ ५९ ॥

शब्दार्थ

सपदि—तुरन्त; **एव**—निस्सन्देह; **अभितः**—चारों ओर; **पश्यन्**—देखते हुए; **दिशः**—दिशाओं में; **अपश्यत्**—ब्रह्मा ने देखा; **पुरः-स्थितम्**—सामने स्थित; **वृन्दावनम्**—वृन्दावन; **जन-आजीव्य-द्रुम-आकीर्णम्**—वृक्षों से पूरित, जो निवासियों की जीविका के साधन थे; **समा-प्रियम्**—और जो सारी ऋतुओं में समान रूप से सुहावने थे।

तब सारी दिशाओं में देखने पर भगवान् ब्रह्मा ने तुरन्त अपने समक्ष वृन्दावन देखा जो उन वृक्षों से पूरित था, जो निवासियों की जीविका के साधन थे और सारी ऋतुओं में समान रूप से प्रिय लगने वाले थे।

तात्पर्य : *जनजीव्यद्रुमाकीर्णम्*—वृक्ष तथा वनस्पतियाँ अनिवार्य हैं और वे सभी ऋतुओं में सुख देने वाली होती हैं। वृन्दावन में ऐसी ही व्यवस्था है। ऐसा नहीं है कि वृक्ष एक ऋतु में सुहावने लगें और दूसरी ऋतु में न लगें, प्रत्युत वे समस्त ऋतु-परिवर्तनों में सुहावने लगने वाले हैं। वृक्ष तथा वनस्पति हर एक के लिए वास्तविक जीविका के साधन हो सकते हैं। *सर्वकामदुघामही* (*भागवत*

१..४)। वृक्ष तथा वनस्पति जीवन के वास्तविक साधन प्रदान करते हैं, उद्योग नहीं।

यत्र नैसर्गदुर्वैराः सहासन्नृमृगादयः ।
मित्राणीवाजितावासद्रुतरुट्तर्षकादिकम् ॥ ६० ॥

शब्दार्थ

यत्र—जहाँ; नैसर्ग—प्रकृति द्वारा; दुर्वैराः—वैर होने पर; सह आसन्—साथ साथ रहते हैं; नृ—मनुष्य; मृग-आदयः—तथा पशु; मित्राणि—मित्रगण; इव—सदृश; अजित—श्रीकृष्ण के; आवास—निवासस्थान; द्रुत—चले गये; रुट्—क्रोध; तर्षक-आदिकम्—प्यास इत्यादि।

वृन्दावन भगवान् का दिव्य धाम है जहाँ न भूख है, न क्रोध, न प्यास। यद्यपि मनुष्यों तथा हिंस्र पशुओं में स्वाभाविक वैर होता है किन्तु वे यहाँ दिव्य मैत्री-भाव से साथ साथ रहते हैं।

तात्पर्य : *वन* का अर्थ है जंगल। हम जंगल से डर कर वहाँ नहीं जाना चाहते किन्तु वृन्दावन के जंगली जीव देवताओं के ही समान हैं क्योंकि वे वैर नहीं रखते। इस भौतिक जगत में भी जंगल में पशु एकसाथ रहते हैं और जब वे पानी पीने जाते हैं, तो किसी पर आक्रमण नहीं करते। वैर उपजने का कारण इन्द्रियभोग है लेकिन वृन्दावन में इन्द्रियभोग है ही नहीं क्योंकि वहाँ तो कृष्ण की तुष्टि ही सबों का एकमात्र लक्ष्य रहता है। इस भौतिक जगत में भी वृन्दावन के पशु जंगल में रहने वाले साधुओं से वैर नहीं रखते। साधुगण गौवें पालते हैं और सिंहों को दूध पिलाते हैं और उन्हें कहते हैं कि यहाँ आओ और थोड़ा-सा दूध पी लो। इस तरह वृन्दावन में वैर तथा ईर्ष्या का नामोनिशान नहीं है। वृन्दावन तथा सामान्य जगत में यही अन्तर है। हम वन का नाम सुन कर डर जाते हैं किन्तु वृन्दावन में ऐसा भय नहीं है। वहाँ प्रत्येक व्यक्ति कृष्ण को प्रसन्न करके सुखी है। *कृष्णोत्कीर्तनगाननर्तनपरौ।* चाहे वह गोस्वामी हो, अथवा सिंह या कोई अन्य हिंस्र पशु—हर एक का कार्य एक ही है—कृष्ण को तुष्ट रखना। सिंह भी भक्त हैं। वृन्दावन की यह विशेषता है। वृन्दावन में हर व्यक्ति सुखी है। वहाँ बछड़ा सुखी है, बिल्ली तथा कुत्ता सुखी हैं और मनुष्य भी सुखी है। हर कोई अपनी अपनी क्षमता के अनुसार कृष्ण की सेवा करना चाहता है, अतः वैर का नामोनिशान नहीं रहता। कोई कभी कभी यह सोच सकता है कि वृन्दावन के बन्दर वैर रखते हैं क्योंकि वे भोजन छीन लेते हैं और उत्पात मचाते हैं किन्तु हम देखते हैं कि वहाँ बन्दरों को भी मक्खन खाने दिया जाता है जैसाकि श्रीकृष्ण स्वयं करते हैं। कृष्ण ने यह स्वयं दिखला दिया है कि हर प्राणी को जीवित रहने का अधिकार है। यह वृन्दावन का जीवन है। भला मैं क्यों जीवित रहूँ और आप मरें? नहीं। यह तो भौतिक जीवन है। वृन्दावन के निवासी

सोचते हैं, ''कृष्ण ने जो कुछ दिया है उसे हम प्रसाद के रूप में बाँट कर खायें।'' यह मनोवृत्ति एकाएक नहीं उत्पन्न हो सकती, इसका विकास कृष्णभावनामृत के साथ साथ धीरे-धीरे होगा। *साधन* द्वारा इस पद तक पहुँचा जा सकता है।

इस भौतिक जगत में नि:शुल्क भोजन वितरण के लिए सारे विश्व से चन्दा एकत्र किया जा सकता है किन्तु जिनको यह भोजन दिया जाता है, हो सकता है वे इसे पसन्द न करें। किन्तु कृष्णभावनामृत के महत्त्व को क्रमश: पसन्द किया जायेगा। उदाहरणार्थ, डर्बन दक्षिण अफ्रीका में हरे कृष्ण आन्दोलन के मन्दिर के विषय में *डर्बन पोस्ट* समाचार-पत्र ने समाचार छापा है : ''यहाँ सारे भक्त भगवान् कृष्ण की सेवा में तत्पर हैं जिसके परिणाम सुस्पष्ट हैं—सुख, उत्तम स्वास्थ्य, मन:शान्ति तथा सभी सद्‌गुणों का विकास।'' वृन्दावन की प्रकृति ऐसी ही है। *हरावभक्तस्य कुतो महद्‌गुणा:*—कृष्णभावनामृत के बिना सुख असम्भव है। कोई भले ही संघर्ष करे किन्तु सुख नहीं पा सकता। अतएव हम कृष्णभावनामृत के माध्यम से मानव समाज को जीवन-सुख, उत्तम स्वास्थ्य, मन:शान्ति तथा समस्त सद्‌गुण प्रदान करने के लिए अवसर देने का प्रयास कर रहे हैं।

तत्रोद्वहत्पशुपवंशशिशुत्वनाट्यं
ब्रह्माद्वयं परमनन्तमगाधबोधम् ।
वत्सान्सखीनिव पुरा परितो विचिन्व-
देकं सपाणिकवलं परमेष्ठ्यचष्ट ॥ ६१ ॥

शब्दार्थ

तत्र—वहाँ (वृन्दावन में); उद्वहत्—धारण करते हुए; पशुप-वंश-शिशुत्व-नाट्यम्—ग्वालों के परिवार में शिशु बनने की क्रीड़ा (कृष्ण का अन्य नाम गोपाल है अर्थात् वह जो गौवें पालता है); ब्रह्म—ब्रह्म; अद्वयम्—अद्वितीय; परम्—परम; अनन्तम्—असीम; अगाध-बोधम्—अपार ज्ञान से युक्त; वत्सान्—बछड़ों को; सखीन्—तथा उनके संगी बालकों को; इव पुरा—पहले की तरह; परित:—सर्वत्र; विचिन्वत्—खोजते हुए; एकम्—अकेले, अपने आप; स-पाणि-कवलम्—हाथ में भोजन का कौर लिये; परमेष्ठी—ब्रह्माजी ने; अचष्ट—देखा।

तब भगवान् ब्रह्मा ने उस ब्रह्म (परम सत्य) को जो अद्वय है, ज्ञान से पूर्ण है और असीम है ग्वालों के परिवार में बालक-वेश धारण करके पहले की ही तरह हाथ में भोजन का कौर लिए बछड़ों को तथा अपने ग्वालमित्रों को खोजते हुए एकान्त में खड़े देखा।

तात्पर्य : *अगाध-बोधम्* शब्द इस श्लोक में महत्त्वपूर्ण है, जिसका अर्थ है ''असीम ज्ञान से युक्त।'' भगवान् का ज्ञान असीम है अतएव उसके छोर का उसी तरह कोई छू नहीं सकता जिस तरह

समुद्र को मापा नहीं जा सकता। समुद्र-जल के विस्तार के समक्ष हमारी बुद्धि का प्रसार कितना हो सकता है? अमरीका की यात्रा के दौरान मेरा जहाज कितना महत्त्वहीन लग रहा था। वह समुद्र में दियासलाई की डिब्बी जैसा लग रहा था। कृष्ण की बुद्धि समुद्र के समान है क्योंकि इसकी विशालता का अनुमान नहीं लगाया जा सकता। अतएव यही सर्वश्रेष्ठ उपाय है कि कृष्ण की शरण ग्रहण की जाय, कृष्ण को मापने का हम प्रयत्न न करें।

अद्वयम् शब्द भी महत्त्वपूर्ण है। इसका अर्थ है "अद्वितीय।" चूँकि ब्रह्मा कृष्ण की माया से आच्छादित थे अतएव वे अपने को सर्वोच्च मान रहे थे। भौतिक जगत में प्रत्येक व्यक्ति सोचता है, "मैं इस जगत का सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति हूँ। मैं सब जानता हूँ।" वह सोचता है, "मैं भगवद्गीता क्यों पढ़ूँ? मुझे सब आता है। मेरी अपनी व्याख्या है।" किन्तु ब्रह्मा यह जान गये कि परम पुरुष तो कृष्ण हैं। *ईश्वर: परम: कृष्ण:।* इससे कृष्ण का अन्य नाम *परमेश्वर* भी है।

अब ब्रह्मा ने भगवान् कृष्ण को वृन्दावन में ग्वालबाल के रूप में प्रकट होते देखा जहाँ वे अपने ऐश्वर्य का प्रदर्शन नहीं कर रहे थे अपितु अपने हाथ में भोजन लिए, अपने मित्रों, बछड़ों तथा गौवों के साथ इधर-उधर घूमने वाले अबोध बालक के रूप में खड़े थे। ब्रह्मा ने कृष्ण को चतुर्भुज ऐश्वर्यपूर्ण नारायण के रूप में नहीं अपितु अबोध बालक के रूप में देखा। फिर भी वे समझ गये कि यद्यपि कृष्ण अपनी शक्ति प्रदर्शित नहीं कर रहे थे किन्तु हैं, वे वही परम पुरुष। लोग सामान्यतया किसी को तब तक सम्मान नहीं देते जब तक वह कोई अद्भुत कार्य न कर दिखाये किन्तु यहाँ पर यद्यपि कृष्ण कोई अद्भुत कार्य नहीं दिखला रहे थे तब भी ब्रह्मा जान गये कि वे वही अद्भुत व्यक्ति, सम्पूर्ण सृष्टि का स्वामी होने पर भी एक अबोध बालक के रूप में उपस्थित हैं। अत: ब्रह्मा ने स्तुति की—*गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि*—हे आदि-पुरुष, आप सभी वस्तुओं के कारण हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। यह उनकी अनुभूति थी। *तमहं भजामि।* यही इष्ट वस्तु है। *वेदेषु दुर्लभम्*—मात्र वैदिक ज्ञान द्वारा कृष्ण तक नहीं पहुँचा जा सकता। *अदुर्लभम् आत्मभक्तौ*—किन्तु भक्त बन जाने पर मनुष्य उनका अनुभव कर सकता है। अत: ब्रह्माजी उनके भक्त बन गये। प्रारम्भ में उन्हें ब्रह्माण्ड का स्वामी होने का गर्व था किन्तु अब वे समझ चुके थे कि ब्रह्माण्ड के स्वामी तो ये (कृष्ण) हैं। मैं तो एक क्षुद्र प्रतिनिधि हूँ। *गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।*

कृष्ण नाटक के एक पात्र की तरह कार्य कर रहे थे। चूँकि ब्रह्मा को यह सोच कर कि उनके पास कुछ शक्ति है मिथ्या प्रतिष्ठा का भ्रम हो गया था अतः कृष्ण ने उन्हें उनकी असली स्थिति दिखला दी। ऐसी ही घटना तब घटी जब ब्रह्माजी कृष्ण से भेंट करने द्वारका गये। जब कृष्णजी के द्वारपाल ने सूचना दी कि ब्रह्माजी आये हैं, तो कृष्ण ने पूछा, ''कौन से ब्रह्मा? उनसे पूछो कौन से ब्रह्मा?'' द्वारपाल ने जाकर यही प्रश्न पूछा तो ब्रह्माजी चकित रह गये। उन्होंने सोचा, ''क्या मेरे अतिरिक्त भी कोई अन्य ब्रह्मा है?'' जब द्वारपाल ने जाकर सूचित किया कि ''चतुरानन ब्रह्मा आये हैं'' तो भगवान् कृष्ण ने कहा, ''अरे! चतुरानन! दूसरों को भी बुलाओ और चतुरानन को दिखाओ।'' यह है कृष्ण की स्थिति। कृष्ण के लिए चतुरानन ब्रह्मा महत्त्वहीन हैं, तो भला ''चार सिर वाले वैज्ञानिकों'' की क्या बिसात! भौतिकतावादी वैज्ञानिक सोचते हैं कि यह पृथ्वीलोक तो सारे ऐश्वर्य से पूर्ण है किन्तु अन्य लोक रिक्त हैं। चूँकि वे केवल सोचते हैं इसलिए उनका यह वैज्ञानिक निष्कर्ष निकलता है। किन्तु *भागवत* से हम जानते हैं कि सारा ब्रह्माण्ड जीवों से पूरित है। यह तो वैज्ञानिकों की मूर्खता है कि वे कुछ भी न जानते हुए अपने को वैज्ञानिक, दार्शनिक तथा ज्ञानी मानते हुए लोगों को भ्रान्त करते हैं।

दृष्ट्वा त्वरेण निजधोरणतोऽवतीर्य
पृथ्व्यां वपुः कनकदण्डमिवाभिपात्य ।
स्पृष्ट्वा चतुर्मुकुटकोटिभिरङ्घ्रियुग्मं
नत्वा मुदश्रुसुजलैरकृताभिषेकम् ॥ ६२ ॥

शब्दार्थ

दृष्ट्वा—देख कर; त्वरेण—तेजी से; निज-धोरणतः—अपने वाहन हंस से; अवतीर्य—उतरे; पृथ्व्याम्—पृथ्वी पर; वपुः—उनका शरीर; कनक-दण्डम् इव—सोने की छड़ी जैसा; अभिपात्य—गिर पड़े; स्पृष्ट्वा—छूकर; चतुः-मुकुट-कोटि-भिः—अपने चारों मुकुटों के सिरों से; अङ्घ्रि-युग्मम्—दोनों चरणकमलों को; नत्वा—नमस्कार करके; मुत्-अश्रु-सु-जलैः—अपने प्रसन्नता के अश्रुओं के जल से; अकृत—सम्पन्न किया; अभिषेकम्—उनके चरणकमल पखारने का उत्सव।

यह देख कर ब्रह्मा तुरन्त अपने वाहन हंस से नीचे उतरे और भूमि पर सोने के दण्ड के समान गिर कर भगवान् कृष्ण के चरणकमलों का स्पर्श अपने सिर में धारण किये हुए चारों मुकुटों के अग्रभागों (सरों) से किया। उन्होंने नमस्कार करने के बाद अपने हर्ष-अश्रुओं के जल से कृष्ण के चरणकमलों को नहला दिया।

तात्पर्य : ब्रह्माजी दण्ड के समान नतमस्तक हुए और चूँकि ब्रह्मा का रंग सुनहरा है, अतः वे कृष्ण के सामने सुनहरे दंड के समान प्रतीत हुए। जब कोई व्यक्ति अपने गुरुजन के समक्ष दण्ड के समान

गिरता है, तो उसका नमस्कार *दण्डवत्* (''दंड के समान'') कहलाता है। 'दण्ड' का अर्थ है 'दंड' और 'वत्' का अर्थ है 'के समान'। ऐसा नहीं है कि कोई केवल *दण्डवत्* कहे, अपितु उसे गिरना चाहिए। इस तरह ब्रह्मा ने दण्डवत् किया, कृष्ण के चरणकमलों को अपने मस्तकों से छुआ और प्रेमवश उनके क्रन्दन को कृष्ण के चरणकमलों का *अभिषेक* समझना चाहिए।

ब्रह्मा के समक्ष जो व्यक्ति बालक रूप में प्रकट हुआ था वह वास्तव में परम सत्य परब्रह्म था (*ब्रह्मेति परमात्येति भगवान् इति शब्द्यते*)। परमेश्वर *नराकृति* हैं अर्थात् वे मनुष्य जैसे लगते हैं। वे *चतुर्बाहु* नहीं हैं। नारायण चतुर्बाहु हैं किन्तु परम पुरुष नराकृति हैं। बाइबिल से भी इसकी पुष्टि होती है जहाँ कहा गया है कि मनुष्य को ईश्वर की मूर्ति सदृश बनाया गया।

ब्रह्मा ने देखा कि ग्वालबाल के वेश में कृष्ण परब्रह्म हैं, जो सर्वकारणों के कारण हैं किन्तु अब वे ही बालक रूप में अपने हाथ में भोजन का कौर लिए वृन्दावन में इधर-उधर टहल रहे हैं। आश्चर्यचकित ब्रह्माजी अपने वाहन हंस से उतर पड़े और भूमि पर गिर कर उन्हें नमस्कार किया। सामान्यतया देवता पृथ्वी का स्पर्श नहीं करते किन्तु ब्रह्मा ने स्वेच्छा से देवता की प्रतिष्ठा त्याग कर कृष्ण के समक्ष पृथ्वी पर दण्डवत किया। यद्यपि ब्रह्मा का हर दिशा में एक सिर है, वे स्वेच्छा से अपने सभी सिरों को पृथ्वी पर लाए और उन्होंने कृष्ण के चरणों को अपने चारों मुकुटों के अग्रभागों से छुआ। यद्यपि उनकी बुद्धि सभी दिशाओं में कार्य करती है किन्तु उन्होंने बालक कृष्ण के समक्ष आत्म-समर्पण कर दिया।

उल्लेख हुआ है कि ब्रह्मा ने कृष्ण के चरणों को अपने अश्रुओं से प्रक्षालित किया। यहाँ पर *सुजलै* शब्द सूचित करता है कि उनके अश्रु शुद्ध थे। भक्ति के उदय होने पर प्रत्येक वस्तु शुद्ध बन जाती है (*सर्वोपाधि विनिर्मुक्तम्*)। इसलिए ब्रह्मा का क्रन्दन *भक्त्यनुभाव* अर्थात् दिव्य आह्लाद का एक रूप था।

उत्थायोत्थाय कृष्णस्य चिरस्य पादयोः पतन् ।
आस्ते महित्वं प्राग्दृष्टं स्मृत्वा स्मृत्वा पुनः पुनः ॥ ६३ ॥

शब्दार्थ

उत्थाय उत्थाय—बारम्बार उठ कर; कृष्णस्य—कृष्ण के; चिरस्य—दीर्घकाल से; पादयोः—चरणकमलों पर; पतन्—गिर कर; आस्ते—पड़े रहे; महित्वम्—महानता; प्राक्-दृष्टम्—जिसे उन्होंने पहले देखा था; स्मृत्वा स्मृत्वा—स्मरण कर करके; पुनः पुनः—बारम्बार।

काफी देर तक भगवान् कृष्ण के चरणकमलों पर बारम्बार उठते हुए और फिर नमस्कार करते हुए ब्रह्मा ने भगवान् की उस महानता का पुनः पुनः स्मरण किया जिसे उन्होंने अभी अभी देखा था।

तात्पर्य : एक स्तुति में कहा गया है :

श्रुतिमपरे स्मृतिमितरे

भारतमन्ये भजन्तु भवभीतः।

अहमिह नन्दं वन्दे

यस्यालिन्दे परं ब्रह्म॥

"भौतिक संसार से डर कर कोई भले ही वेदों, स्मृतियों तथा महाभारत का अध्ययन करे किन्तु मैं तो उन नन्द महाराज की पूजा करूँगा जिनके आँगन में परब्रह्म रेंग रहे हैं। नन्द महाराज इतने महान् हैं कि उनके आँगन में परब्रह्म रेंग रहे हैं अतएव मैं उनकी पूजा करूँगा।" (*पद्यावली* १२६)।

ब्रह्मा हर्षातिरके से गिरे जा रहे थे। मनुष्य के बालक सदृश भगवान् की उपस्थिति के कारण ब्रह्माजी आश्चर्यचकित थे। अतएव यह समझते हुए कि यही परम पुरुष हैं उन्होंने रुद्ध कण्ठ से स्तुति की।

शनैरथोत्थाय विमृज्य लोचने
मुकुन्दमुद्वीक्ष्य विनम्रकन्धरः ।
कृताञ्जलिः प्रश्रयवान्समाहितः
सवेपथुर्गद्गदयैलतेलया ॥ ६४॥

शब्दार्थ

शनैः—धीरे-धीरे; अथ—तब; उत्थाय—उठ कर; विमृज्य—पोंछ कर; लोचने—अपनी दोनों आँखें; मुकुन्दम्—मुकुन्द या भगवान् कृष्ण को; उद्वीक्ष्य—ऊपर देखते हुए; विनम्र-कन्धरः—अपनी गर्दन झुकाये; कृत-अञ्जलिः—हाथ जोड़े हुए; प्रश्रय-वान्—अत्यन्त विनीत; समाहितः—मन को एकाग्र किये; स-वेपथुः—काँपते हुए शरीर से; गद्गदया—अवरुद्ध; ऐलत—ब्रह्मा प्रशंसा करने लगे; ईलया—शब्दों से।

तब धीरे-धीरे उठते हुए और अपनी दोनों आँखें पोंछते हुए ब्रह्मा ने मुकुन्द की ओर देखा। फिर अपना सिर नीचे झुकाये, मन को एकाग्र किये तथा कंपित शरीर से वे लड़खड़ाती वाणी

से विनयपूर्वक भगवान् कृष्ण की प्रशंसा करने लगे।

तात्पर्य : प्रसन्नता के मारे ब्रह्मा अश्रुपात करने लगे और उन्होंने अपने आँसुओं से कृष्ण के चरणकमलों को धो दिया। वे कृष्ण की अद्‌भुत लीलाओं का स्मरण कर करके बारम्बार गिरने और उठने लगे। दीर्घकाल तक नमस्कार करते रहने के बाद ब्रह्माजी उठ खड़े हुए और अपने अश्रुओं को पोंछा। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर की टीका है कि *लोचने* शब्द इंगित करता है कि उन्होंने दोनों हाथों से अपने चारों मुखों की दो-दो आँखों को पोंछा। अपने समक्ष भगवान् को देख कर ब्रह्माजी ने अत्यन्त विनय, आदर तथा मनोयोग से स्तुति करनी शुरू की।

इस प्रकार श्रीमद्‌भागवत के दशम स्कंध के अन्तर्गत ''ब्रह्मा द्वारा बालकों तथा बछड़ों की चोरी'' नामक तेरहवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।

PRELIMINARY PAGES

श्री श्रीगुरु-गौराङ्गौ जयत:

कृष्णद्वैपायन व्यास

कृत

श्रीमद्‌भागवतम्

येऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्तमानिन-
स्त्वय्यस्तभावादविशुद्धबुद्धय: ।
आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं तत:
पतन्त्यधोऽनादृतयुष्मदङ्घ्रय: ॥

(श्रीमद्‌भागवत .२.३२)

कृष्णकृपामूर्ति श्री श्रीमद् ए. सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद द्वारा विरचित वैदिक ग्रंथरत्न :

श्रीमद्‌भगवद्‌गीता यथारूप
श्रीमद्‌भागवतम् स्कन्ध १-१२ (१८ खण्ड)
श्री चैतन्य-चरितामृत (१७ खण्ड)
भगवान् चैतन्य महाप्रभु का शिक्षामृत
श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु
श्रीउपदेशामृत
श्रीईशोपनिषद्
अन्य लोकों की सुगम यात्रा
कृष्णभावनामृत सर्वोत्तम योगपद्धति
लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण (३ खण्ड)
पूर्ण प्रश्न : पूर्ण उत्तर

द्वन्द्वात्मक अध्यात्मवाद:पाश्चात्य दर्शन का वैदिक दृष्टिकोण
देवहूतिनन्दन भगवान् कपिल का शिक्षामृत
प्रह्लाद महाराज की दिव्य शिक्षाएँ
रसराज श्रीकृष्ण
जीवन का स्रोत जीवन
योग की पूर्णता
जन्म-मृत्यु से परे
श्रीकृष्ण की ओर
कृष्णभावनामृत की अनुपम भेंट
राजविद्या
कृष्णभावनामृत की प्राप्ति
पुनरागमन:पुनर्जन्म का विज्ञान
गीतार गान (बाँग्ला)
भगवद्दर्शन (मासिक पत्रिका) : संस्थापक
अधिक जानकारी तथा सूचीपत्र के लिए लिखें
भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट,
हरे कृष्ण धाम, जुहू, बम्बई-४०००४९

श्रीमद्भागवतम्
(भगवत्-सन्देश)
दशम स्कन्ध
''परम पुरुषार्थ''
(भाग एक—अध्याय १-१३)
मूल संस्कृत पाठ, शब्दार्थ,
अनुवाद तथा विस्तृत तात्पर्य कृष्णकृपामूर्ति
श्री श्रीमद् अभयचरणारविन्द भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद
संस्थापकाचार्य: अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ
भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट
लॉस एंजिलिसलंदनस्टॉकहोमसिडनीबम्बई

इस ग्रंथ की विषयवस्तु के जिज्ञासु पाठकगण अपने निकटस्थ किसी भी इस्कॉन केन्द्र के सचिव से अथवा निम्नलिखित पते पर पत्र-व्यवहार करने के लिए आमंत्रित हैं

भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट
हरे कृष्ण धाम,
जुहू, बम्बई-४०००४९

अनुवादक
(अंग्रेजी-हिन्दी)
डॉ. शिवगोपाल मिश्र

हिन्दी अनुवाद संपादक

श्रीनिवास आचार्य दास

पहला अंग्रेजी संस्करण, १९७५, २०,००० प्रतियाँ

पहला हिन्दी संस्करण, मार्च, १९९३, २,००० प्रतियाँ

भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट के लिए श्रील गोपालकृष्ण गोस्वामी द्वारा हरे कृष्ण धाम, जुहू, बम्बई ४०००४९ से प्रकाशित एवं सन्मान एण्ड कं., शिवशक्ति इंडस्ट्रियल एस्टेट, एम. वसनजी रोड, साकीनाका, अंधेरी (पूर्व) बम्बई-४०००४९ में मुद्रित।

श्रीमद्‌भागवतम्

विषय-सूची